॥ ओ३म् ॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती

का

जीवन-चरित

भाग २

लेखक—

श्री पं० घासीराम, एम्. ए., एलएल. बी., एडवोकेट, मेरठ

स्वर्गीय बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर रचित, जिसमें स्व० पंडित लेखराम कृत उर्दू ऋषि जीवन-चरित तथा श्री स्वामी सत्यानन्दजी कृत दयानन्द-प्रकाश से भी सहायता ली गई है।

प्रकाशक—

आर्य्य-साहित्य-मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

प्रथमावृत्ति १०००

संवत् १९९० वि०

मूल्य सजिल्द ४) रु०

विषय सूची

सप्तदश अध्याय (पृ० ३१७—४०५)

अष्टादश अध्याय (पृ० ४०७-४२८)

एकोनविंश अध्याय (पृ० ४२९-४४३)

विंश अध्याय (पृ० ४४५-४८०)

पढ़ूंगा, सन्ध्या किया करूँगा—गायत्री मन्त्र सब के सामने पढ़ा—स्वामीजी छद्मवेषी ईसाई हैं—जम्मू का परिडत—जम्मू के परिडत से शास्त्रार्थ—एक ही पुस्तक में सब कुछ है—पुस्तक कोरी थी—परिडतजी पंसारी भी हैं और परिडत भी—मैं ब्राह्मणों का शत्रु नहीं हूँ—परिडतजी कुछ न बोले—स्वामीजी के प्राणहरण का षड्यन्त्र—अन्हीं दा पुत्तर—स्वामीजी को गालियां—मुझ पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता—मार्ग में और व्याख्यान में ईटों की वर्षा—ईट मारने वालों को क्षमा दान—संन्यासी-मराडली—आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी—हमें चेला बना लीजिये—एक स्त्री को उपदेश—विरोधी परिडत अनुकूल—स्वामीजी को वेद कंठस्थ थे—वजीराबाद—मुख्य पंडित नगर छोड़कर चले गये—दक्षिणालोलुप पंडित से विचार—स्वामीजी के मन्त्रार्थ पर सन्तोष—शास्त्रार्थ—यह वाक्य वेद का है नहीं—उपद्रव की आशंका—परिडत मन्त्र प्रस्तुत न कर सका—उपद्रव आरम्भ हो गया—महाराज के हिन्दुस्तानी क्लर्क को खूब पीटा गया—स्वामीजी के गर्जन से भीड़ भाग गई—गुजरानवाला—व्याख्यानों का आरम्भ—पादरियों की हिन्दुओं को स्वामीजी के विरुद्ध उत्तेजना—पंडित विद्याधर की बुद्धिमत्ता—शास्त्रार्थ की छेड़छाड़—शास्त्रार्थ विवरण—स्वामीजी का सद्-व्यवहार—मध्यस्थ की सम्मति—पादरियों का मिथ्या व्यवहार—पादरियों की धूर्त्तता से सब रुष्ट हो गये—स्वामीजी का ईसाई मत खंडन पर व्याख्यान—ईसाई मत की पोल खुल गई—वजीराबादी मनुष्यों की अनुरक्ति—परिडत वासुदेव की क्षमा प्रार्थना—मैं द्वेष बुद्धि से खराडन नहीं करता—स्वामीजी ज्ञान और विद्या के अथाह समुद्र हैं—स्वामीजी का प्रभाव—विरोधी अनुगामी—पुजारी अनुयायी—पुजारी की भेंट—ब्रह्मचर्य्य की महिमा—आर्य्यसमाज स्थापित हो गया—लाहौर—इसलाम पर व्याख्यान—ऐसा न हो, नवाब अप्रसन्न हो जायं—मुझे परमात्मा के भिन्न किसी का भय नहीं है—स्वामीजी के मुलतान पधारने के लिये आयोजन—पहला व्याख्यान—गोकुलिये गोसाई चिढ़गये—गोपालदास गोसाईं की धूर्त्तता—धूर्त्तता की पुनरावृत्ति—छावनी में व्याख्यान—पारसी सज्जनों की भेंट—वैदिक अलंकारों का स्पष्टीकरण—होली दीपावली का स्वरूप—स्वास्थ्यरक्षा पर व्याख्यान—साथ भोजन करने के दोष—शिखा कब रक्खी जाय कब नहीं—ईसाईयों से शास्त्रार्थ की शर्तें—ब्राह्मसमाजी आर्यसमाजी होने से रुक गये—काबुल के ब्राह्मण का उजड्डपन—वेदान्तियों के चार महावाक्य—सन्त मत की आलोचना—प्राचीन काल की प्राकृतिक उन्नति—मुसलमान परास्त—नास्तिक की शेखी किरकिरी—महाराज के महामना होने का प्रमाण—हिन्दू सत्सभा का नाम आर्यसमाज रक्खो—यह महात्मा होनहार है—मुक्ति पर बातचीत—ब्राह्मणों की वर्तमान अवस्था का दृष्टान्त—रेशमी छाता किसी नटवे को देना—गोमेध, अश्वमेध के सत्य अर्थ—मांस-भक्षण निषेध—बिना पूछे प्रश्नों का उत्तर—मांसभक्षण पर प्रश्नोत्तर—परिडत कृष्णनारायण का अनुभव—मैक्स मूलर वेद-विद्या में लड़का है—गायत्री का महत्व—३५ व्याख्यान दिये—एक मुसलमान की सम्मति—आर्यसमाज स्थापित हो गया—मुहम्मद साहब की तो एक स्त्री ही सहायक थी, हमारे सहायक तो सात पुरुष हैं—मुझे काशी में विष दिया गया था—स्वामीजी की नियमबद्धता—आप लोगों के हित-चिन्तन ने दुबला कर दिया—चिड़-चिड़ा क्लर्क—धर्मोपदेश में श्रोता क्यों सोजाते हैं—हम एक जगह बाध्य हो कर नहीं रह सकते—अमृतसर—विद्याभि-

से भिन्न क्यों है—बन्दी होने की किंवदन्ती—भक्तों की चिन्ता—रिवाड़ी—राव साहब का आतिथ्य—११ व्याख्यान—राव साहब की वैदिक धर्म में निष्ठा—गायत्री के जाप से पाप होता है—पाप हमारा और पुण्य तुम्हारा—वेदान्ती साधु निरुत्तर—चार प्रकार के मनुष्य—अभी जाकर पढ़ो—शास्त्रार्थ करने कोई न आया—दिल्ली।

अष्टाविंश अध्याय (पृ० ५१६-५४१)

हरिद्वार—गोभक्षक से गोरक्षक—नित्य स्नान करना स्वास्थ्यप्रद है—विज्ञापन—मेले में महाराज के आगमन की धूम मच गई—व्याख्यानों में भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था—निरन्तर परिश्रम का फल—कर्नल और मैडम का भारत में आगमन—मेले में जन-संख्या कम थी—देहरादून जाने का संकल्प—विशेष घटनायें—यह छोटा परन्तु तुम बड़े बुत्-परास्त हो—आप मुसलमानों को भी आर्य बना लेते हैं—झूठा खाना निषिद्ध है—एक जाट की कहानी—सतुवा स्वामी शास्त्रार्थ से पराङ्मुख—तुम लकड़-पंथी हो—अंग्रेज भारत में पहले आते तो क्या देखते?—शरीर पर मिट्टी क्यों लगाते हो—बूढ़े ब्राह्मण का क्रोध—दो दण्डधारी साधु—निर्मले साधु की बकवाद—विधवाओं और गौओं की हाय से देश नष्ट हो गया—जटाधारी नागा—बहिष्कृत आर्य-समाजी—प्रारब्ध कैसे पूरा होगा—उपर्युक्त की आलोचना—अचारज के पुत्र के प्रश्न—दो नागे—दो और नागे—तत्काल नागा बाना छोड़ दिया—निर्मले साधु को वेदों के दर्शन—निर्मले साधु से प्रश्नोत्तर—देश की धार्मिक दशा पर खेद—तीर्थ यात्रा की व्यर्थता—आपका पक्ष सत्य है—आश्रम में स्त्रियां नहीं ठहर सकतीं—सत्याग्रही मुसलमान तहसीलदार—स्वामीजी वली हैं—हर की नहीं हाड़ की पैड़ी है—तीन जिज्ञासु विद्वान—अलीक किंवदन्ती—महाराजा काश्मीर का पत्र—कटुभाषी साधु अनुगत—तुम्हारी बातों से अभ्यास में विघ्न पड़ता है—वृद्ध संन्यासी का आदर—नवीन वेदान्त पर वार्त्तालाप—मैंने दयानन्द का मत स्वीकार कर लिया—कुरूप और कर्कश पण्डित—ब्वांड घर दा पानी कौन पिये—मुर्दे को आश्रम के पास मत गाड़ो—कमिश्नर साहब आदि सन्तुष्ट होकर गये—तीन पौराणिक विद्वानों का पत्र—यूरोपियन डाक्टर से वार्त्तालाप—डाक्टरों को परामर्श—मैं तो ईश्वरोक्त वेद को ही मानता हूं—आत्मा की न्यूनतायें ईश्वराराधना से पूरी होती हैं—स्वामीजी अपने ग्रन्थों का अनुवाद कराना नहीं चाहते थे—तर्क शस्त्र छोड़ने पड़े—विचित्र वार्त्तालाप—गुरुजी के आदेश से ही मैंने प्रचार-कार्य आरम्भ किया है—दयानन्द हमारे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करे नहीं तो पराजित समझा जावे—सनातनियों का पत्र—दयानन्द यहाँ आवे तो सिर फोड़ दो—तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते—स्वामी विशुद्धानन्द का पत्र—हमारा प्रायश्चित्त कराया जावे—यह पं० श्रद्धाराम की बनावट थी—पं० श्रद्धाराम से घृणा—मुझे बड़ी लज्जा आई और भय लगा—श्रद्धाराम का शिष्य अनुगत—पं० श्रद्धाराम का वास्तविक स्वरूप—ईसाइयों से दक्षिणा लेकर ईसा का गुणगान—पं० श्रद्धाराम नास्तिक थे—लोगों को चेतावनी—देहरा-दून—महाराज की शारीरिक दशा—ब्राह्म-समाजियों पर भरोसा न करना चाहिये—व्याख्यानों का आरम्भ—पादरी साहब का कोप—ज्वालामुखी फट गया—पादरी अपने साथी से भी नाराज—आपस में ही एक दूसरे का खण्डन करने लगे—ब्राह्म-समाजी विरुद्ध होगये

चतुर्विंश अध्याय (पृ० ५४१-५८२)

पञ्चविंश अध्याय (पृ० ५८३-६११)

आर्यसमाज-स्वागत का समारोह--हमारे वचन सुई के समान अन्दर चुभ जायेंगे--कैम्प मैजिस्ट्रेट की आज्ञा--आगमन की सूचना--व्याख्यानमाला--पण्डित चतुर्भुज पौराणिक राज--पौराणिक राज को निकाल दिया--पौराणिक राज की नीचता--स्वामीजी को पीटने का षड्यन्त्र--कैम्प मैजिस्ट्रेट की आज्ञा--सब इन्सपैक्टर का पक्षपात--मौलवी का व्याख्यान--इस्लाम के विरुद्ध न कहो--अंग्रेजी राज्य की बड़ाई--जंगी लाट के सामने ईसाई मत का खण्डन--भूतों का भय कैसे जावे--एक विवाह और कर लो--नियम विरुद्ध कार्य के हम पक्षपाती नहीं—सोमलता – चित्त भाँग पीने से एकाग्र होगा—फूल तोड़ा अच्छा न किया—तीन वर्ष का दर्द एक क्षण में दूर—ईश्वर ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष होता है—हम पण्डित चतुर्भुज को ५००) देंगे—स्वामीजी का शिष्टाचार—योरोपियन लोगों से वार्त्तालाप—एक पादरी से बातचीत—गोरक्षा—साहब की प्रतिज्ञा—दिनचर्या—श्रीमुख से उपदेश सुनने की इच्छा—अपने चरण मेरे मस्तक पर लगा दो—देव-मूर्त्ति पर पदाघात – दलितों की चिन्ता ने विकल कर दिया—मैं साधारण विद्वान भी न गिना जाता—काशी – विज्ञापन पत्र--काशी की दशा—कर्नल और मैडम—राजा शिवप्रसाद—किसी को शास्त्रार्थ का साहस न हुआ—मैजिस्ट्रेट के कान भरे गये—व्याख्यान बन्द—मैजिस्ट्रेट को पत्र—लाट साहब को पत्र—लाट साहब का निर्णय—समाचार पत्रों में आन्दोलन—पायोनियर का लेख—थियोसोफिस्ट का लेख—प्रतिबन्ध हटा लिया गया—आत्म-चरित—प्रमदादास की अशिष्टता--कर्नल से स्वामीजी की प्रशंसा—वैदिक-यन्त्रालय की स्थापना—व्याख्यानमाला—आर्यसमाज की स्थापना—ब्रह्म-भोज में सम्मिलित—मिस्टर सिनेट का पत्र—प्रयाग में सिनेट साहब से साक्षात्कार—बाबू सीताराम की सम्मति—यह जल स्वामीजी के पीने योग्य नहीं है—वह स्त्री दुष्टा थी—तिरस्कार के पश्चात् प्रीति—हमें बाबाजी न कहो—आप भी तो बच्चे के बच्चे हैं—स्वयं आटा मांड़ा—आपका छुआ भोजन न खायेंगे—पण्डितों का गुप्त रूप से व्याख्यान श्रवण—कथकड़ व्यासों की आलोचना—प्रेस मैनेजर की चिन्ता—आज हम गृहस्थ हो गये—कार्यव्यस्तता—स्वास्थ्य-चिन्ता—यज्ञोपवीत प्रदान - स्वामीजी महापुरुष थे—योगाभ्यास—हम ऐसे गन्दे अर्थों को नहीं मानते—गीता के श्लोक के अर्थ—मूर्त्ति पूजा का खण्डन मैं नहीं, तुम करते हो—हम दयानन्द का सिर काट लेंगे—जन्मगत वर्णव्यवस्था का खण्डन—क्या आप को गद्दी पर बैठकर अभिमान नहीं होता—मैडम की ऐन्द्रजालिक क्रियायें--भूल स्वीकार—मुक्ति से पुनरावृत्ति—पण्डित बालशास्त्री और पण्डित बापूदेव शास्त्री की सत्यप्रियता—स्वामी विशुद्धानन्द का द्रोह—वेद ही ईश्वर की वाणी हैं—मैं दूकानदार नहीं हूँ—विभु के अर्थ पत्थर के महादेव के नहीं हैं—अद्भुत स्मृति– वैद्यजी को नाड़ी दिखाई –वर्ण जन्मगत नहीं हैं –विषकुम्भं पयोमुखम्—कर्मचारियों को भर्त्सना --बेर क्यों तोड़ा--कोतवाल की भक्ति--मैं हित के लिये खण्डन करता हूँ—उपदेश—लखनऊ—अतप्ततनू का अर्थ--तुम से बकरी की टेव नहीं जाती--आर्यसमाज की स्थापना –भक्त को ढाढ़स--देश-दशा पर खेद–फर्रुखाबाद—मैं किसी मत को नहीं मानता--आर्यसमाज की स्थापना--योग पर व्याख्यान--मैजिस्ट्रेट से वार्त्तालाप--विना सूँड़ का गणेश--वेद का अपौरुषेयत्व--वेदभाष्य की सहायता--धर्मार्थ कोष--एक आर्यसमाजी

पौराणिकराज—शास्त्रार्थ के नियम—नियम सुन कर सब गर्व जाता रहा—स्वामीजी की मितव्ययता—पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता निरुत्तर—सिर कटाने के लिये गर्दन झुका दी—मसूदा—पादरी शूलब्रेड ने शास्त्रार्थ न किया—पाप क्यों होता है—विहारीलाल ईसाई—जैनियों से शास्त्रार्थ का प्रस्ताव—धर्मचर्चा के लिये उद्यत हूं—स्वामीजी और जैन साधु की भेंट—मैं भी धर्मचर्चा पर उद्यत हूँ—रावसाहब भी आ पहुँचे—मुख पर पट्टी क्यों बांधते हो—जैन साधु को शास्त्रार्थ का आवाहन-पट्टी-तीन प्रश्न—अपनी ही ओर से उत्तर प्रत्युत्तर—साधु प्रश्न पत्र पाकर अन्दर चले गये—साधु के उत्तर-प्रत्युत्तर—हम से उत्तर नहीं बन आता—किले में व्याख्यान—जैनियों का वैदिक धर्म में प्रवेश—एक लज्जास्पद प्रथा—विहारीलाल ईसाई फिर आये—वैदिक धर्मी शिष्य का ईसाई शिष्य से शास्त्रार्थ—सम्मान-प्रदर्शन—रामपुर—स्वामीजी के चोट आगई—रायपुराधीश के आदर्श नौकर—स्वामीजी और राव की भेंट—स्वामीजी के पीटने का षड्यन्त्र—रायपुराधीश की उदासीनता—काजीजी से वार्त्तालाप—कुरान का अपमान क्यों किया—राव साहब की रानी का देहान्त—मैं किसी का हर्ष शोक नहीं करता—ब्यावर—मसूदा—कबीरपन्थी साधू से बातचीत—बनेड़ा—सुपठित राजा—शक्ति हो तो स्वामीजी से प्रश्न किया जाय—चारों वेदों के प्रदर्शन—राज गुरु से बात-चीत—पुस्तकालय का उपयोग—सस्वर वेदपाठी राजकुमार—किले में उपदेश—पहिले प्रश्न का उत्तर—महाराणा सज्जनसिंह का चरित्र—स्वामीजी के समाचार सुनने में महाराणा की रुचि—दर्शनों की इच्छा—महाराणा ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा—महाराणा और स्वामीजी के मिलने का सुयोग—स्वामीजी का चित्तौड़ जाने का संकल्प—तैलिंगी शास्त्री—शाहपुराधीश—निर्भय वाणी—महाराणा स्वामीजी के आसन पर पधारे—चित्तौड़ की सैर—जीवनगिरि का द्वेष—सम्मान-प्रदर्शन—मातृशक्ति को प्रणाम—इन्दौर।

सप्तविंश अध्याय (पृ० ६५७—६८६)

बम्बई—ठाकुर साहब मोर्वी व्याख्यान में पधारे—वक्ता आप के राज्य का ही निवासी है—प्राचीन काल में दूध दही की बहुतायत—हमें व्यापार में प्रवृत्त होना चाहिये—वेद में मूर्त्ति पूजा नहीं है—मन्त्र शब्द का अर्थ—श्राद्ध की अप्रामाणिकता है—मैं वेद से मूर्त्ति पूजा सिद्ध करूँगा—स्वामीजी मेरे सामने आने से डरते हैं—दूर से ढोल पीटते रहे—वेद से मूर्त्ति पूजा सिद्ध करने वाले को ५०००) का पुरस्कार—गोरक्षा का समर्थन—ठाकुरदास जैन का नोटिस—प्रचार में परिवर्त्तन—मुसलमान वेदान्ती का वैर-त्याग—रानडे महोदय से भी न मिले—विलक्षण धारणा शक्ति—चतुर्मुख ब्रह्मा—मनोहर सामगान—स्वयमेव शंका समाधान हो गये—उपासना की रीति—मन की एकाग्रता का उपाय—यम-नियम का सेवन करो—एक मुकद्दमें में झूठी साक्षी देकर आये थे—सेठ के लज्जालु पुत्र को उपदेश...पेंशनर—ब्राह्मण को उपदेश—१०००) में से ९००) वापस कर दिये—आर्यसमाज के नियमों में परिवर्त्तन—पादरी जोजेफ कुक को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान—पादरी साहब ने कोई उत्तर न दिया—विचित्र किंवदन्ती—समालोचना—उपकार के बदले प्रत्युपकार करो—ठाली रह कर मत खाओ—शिष्टचार की शिक्षा—श्यामजीकृष्ण वर्मा—स्वामीजी का संस्कृत-पत्र—पत्र पर मोनियर विलियम्स मुग्ध—संस्कृत मृत भाषा नहीं है—मोनियर विलि-

अष्टाविंश अध्याय (पृ० ६८७–७२६ (ग))

—बेड़ा कभी का डूब जाता—परिहितचिन्ता—पहलवान का मद चूर्ण—पिता पुत्र ठाकुर की भक्ति—राव राजा पर प्रभाव—सर प्रतापसिंह—न्याय से मोक्ष—सभी आर्यसमाजी मेरे शिष्य हैं—जोधपुर जाने का उद्देश्य—स्वामीजी आम बहुत खाते थे—कहार ने चोरी करली—धूर्त्त सेवक—रोग का आक्रमण—विष का संदेह—डाक्टर अलीमरदानखां का परिचय—इन्हें चौगुनी मात्रा दो—डाक्टर सूरजमल का अपराध—रोग की वृद्धि—स्वामीजी के रोगी होने की प्रथम सूचना—यह तो शरीर का धर्म ही है—आर्यसमाज अजमेर को सूचना—दो योग्य डाक्टर होते हुए अयोग्य की चिकित्सा—राव राज तेजसिंह का अपराध हिन्दू से मुसलमान डाक्टर के हाथों में—अलीमरदानखां का असद्भाव—जगन्नाथ रसोइया कौन था—मनगढ़न्त गाथा—राव राजा तेजसिंह का मिथ्या विचार—पिसेहुए काँच के चिन्ह न थे—मलेरिया का विष या आमों का विकार—रोग वृद्धि का मुख्य कारण—एक और सन्देह—इस राक्षस भूमि में क्यों आगये—आबू भेजने का प्रस्ताव—जोधपुराधीश का मद् व्यवहार—और सम्मान प्रदर्शन-पालकी का फ़र्श टूट गया—रोग का भयंकर रूप-दो ब्राह्मणों को दान—आबू की चढ़ाई का प्रबन्ध—विपन्न दशा—डाक्टर लछमनदास का मिलना—मुझे किसी ने अमृत दिया है—आबू पहुँच गये—डाक्टर लछमनदास का प्रेम और परिश्रम—दशा सुधरने लगी—डाक्टर लछमनदास को छुट्टी न मिली—स्वामीजी ने त्यागपत्र फाड़ डाला—त्यागपत्र दिया पर अस्वीकार—डाक्टर लछमनदास—रोग का पुनः आक्रमण—भक्तों का समूह—भक्त भूपालसिंह की सेवा—रात्रि में दही खाया—सब लोग घबरा गये—दशा कुछ सुधरी—स्वामीजी का अपथ्य—डाक्टर लछमनदास ने पुरस्कार न लिया—डाक्टर लछमनदास के प्रति कृतज्ञता—औषधि में विष—पण्डित गुरुदत्त का अजमेर में आगमन—महाराणा की चिन्ता—एक और किंवदन्ती—रोग फिर कम हुआ—पुनः कुपथ्य—मुमूर्षु दशा—भ्रान्त सम्मति—रात्रि को घबराहट—डाक्टर लछमनदास का वर्णन सत्य है—अब चिकित्सा न करूंगा—अंग्रेज सिविल सर्जन का परामर्श—डाक्टर न्यूमैन का आश्चर्य—डाक्टरों में मत भेद—डाक्टर न्यूमैन से परामर्श—मरना जीना दोनों सम्भव हैं—राई की खूब गर्म पुल्टिस—आज आराम का दिवस है—शिष्य से प्रश्न—शिष्य का उत्तर—संन्यासी से भी वही प्रश्न—मृत्युसानिध्य में अपूर्व सावधानी—तेज और अन्धकार का भाव है—वेदपाठ और ईश्वर स्तुति—तेरी यही इच्छा है—मृत्यु दृश्य ने नास्तिक को आस्तिक बना दिया—हम शव को गाड़ेंगे—पण्डित सुन्दरलाल आये—नाई को ५) रुपये—जो इच्छा हो वह भोजन बनाओ—दो सुधारक एक ही समय में रुग्ण—महाराणा की अन्तिम दर्शन की कामना—शव दाह की तैयारी—श्मशान यात्रा—अन्त्येष्टि क्रिया—दाह संस्कार की सामग्री—पण्डित गट्टूलाल की समवेदना—सर्वत्र शोक की घटा—महाराणा का शोकोद्गार—एक ललित मर्मस्पृक् उद्गार।

परिशिष्ट संख्या १ (पृष्ठ ७२६—७४६)

जन्मस्थान और नाम—भगवान् दयानन्द के पिता कौन थे—कर्शनजीलालजी साहूकार—कर्शनजीलालजी जमींदार—कर्शनजीलालजी जमेदार—कर्शनजी घोर शिव-भक्त—कर्शनजी के पुत्र का गृह त्याग—ऋषि का आदि नाम क्या था—भगवान् के पूर्व पुरुष।

परिशिष्ट संख्या २ (पृष्ठ ७४६-७७८)

आर्य्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी—कर्नल आलकाट का पत्र - महाराज के संस्कृत पत्र का अनुवाद—कर्नल, मैडम के ऊपर सन्देह—थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल।

परिशिष्ट संख्या ३ (पृष्ठ ७८१–७८५)

मुन्शी इन्द्रमणि का मुकद्दमा।

परिशिष्ट संख्या ४ (पृष्ठ ७८७–७९२)

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश।

परिशिष्ट संख्या ५ (पृष्ठ ७९३–७९५)

महर्षि दयानन्द सरस्वती रचित ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय।

महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका लेखक रामानन्द ब्रह्मचारी

(इस चित्र का असली फ़ोटो महर्षि के पत्रों के साथ महाशय मामराजजी रिसर्च डिपार्टमेंट, दयानन्द कॉलेज लाहौर ने ३ फ़रवरी सन् १९२७ को फ़र्रुख़ाबाद से प्राप्त किया)

महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित

सप्तदश अध्याय

ज्येष्ठ संवत् १९३३–चैत्र संवत् १९३४

फ़र्रुखाबाद

ज्येष्ठ कृष्णा १ संवत् १९३३ वि० अर्थात् ९ मई सन् १८७६ ई० को स्वामीजी फ़र्रुखाबाद पहुँचे और लाला जगन्नाथ के विश्रान्त घाट पर उतरे।

व्याख्यान

इस बार महाराज के लाला जगन्नाथ के गृह पर धर्म्म का वास्तविक स्वरूप, ईसाई-मत, मूर्त्तिपूजा और अवतारवाद पर चार व्याख्यान हुए। पाठशाला की अवस्था ठीक न रही थी। विद्यार्थी पुराने विचारों को न छोड़ते थे और अध्यापक भी ऐसा ही करते थे।

इससे पूर्व की घटना है कि स्वामीजी ने इस पाठशाला का हेड-अध्यापक अपने गुरु-भाई पण्डित उदयप्रकाश को नियत किया था। वह पौराणिक विचारों के थे। स्वामीजी जब उन्हें नियत करके फ़र्रुखाबाद से चले गये तो उन्होंने शैवमत का मण्डन करना आरम्भ कर दिया, जिसका स्वामीजी खण्डन करते थे। जब स्वामीजी को यह बात ज्ञात हुई तो स्वामीजी फ़र्रुखाबाद आये और पण्डित उदयप्रकाश को शैवमत का मण्डन करने से निषेध किया तो उन्होंने कहा कि हम मण्डन करना न छोड़ेंगे, क्योंकि यह तो हमारा स्वभाव ही है कि यदि कोई किसी बात का खण्डन करता है तो हम उसका मण्डन करते हैं और यदि कोई किसी बात का मण्डन करता है तो हम उसका खण्डन करते हैं, ऐसा हम अपनी विद्या दिखाने के लिये किया करते हैं। अतः स्वामीजी ने उन्हें मुख्याध्यापक के पद से अलग कर दिया था।

स्वामीजी के गुरु-भाई पण्डित उदयप्रकाश

हम अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिये अन्य विद्वानों के विपरीत करते हैं

पाठशाला तोड़ दी

पाठशाला तोड़ दी गई। जो धन पाठशाला के नाम से जमा था, वह दानियों और सञ्चालकों की अनुमति से वेदभाष्य की सहायतार्थ दे दिया गया।

एक अंग्रेज़ पादरी से वार्त्तालाप

२३ मई सन् १८७६ को एक अंग्रेज़ पादरी दो देशी ईसाइयों के साथ स्वामीजी से धर्म्म विषय पर वार्त्तालाप करने आया। जब वह निरुत्तर होगया तो चला गया। चलते समय उसने कहा कि मुझे विश्वास है कि आप बहुत शीघ्र हमारे अनुयायी हो जायँगे। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह तो परम असम्भव है, परन्तु थोड़े दिन में देखोगे कि बहुत से ईसाई वैदिक मत की प्रशंसा करते हुए उसे स्वीकार करेंगे।

विदा होते समय स्वामीजी अपने भक्तों से कह गये कि यदि यहाँ आर्य्यसमाज स्थापित हुआ तो फिर मिलेंगे, नहीं तो हम कदापि न आवेंगे।

फर्रुखाबाद

ज्येष्ठ संवत् १९३३ में स्वामीजी फर्रुखाबाद पधारे।

उस समय पण्डित ज्वालादत्त पाठशाला में पढ़ाते थे। उन्होंने स्वामीजी की स्तुति में एक कविता लिख कर उन्हें सुनाई थी। उसे सुन कर उन्होंने कहा था कि मैं मनुष्य हूँ, मेरी इस प्रकार की स्तुति करना कदापि उचित नहीं है। तुम्हारी कविता कठिन और जटिल है।

एक दिन पण्डित राधाचरण गोस्वामी वृन्दावन निवासी और पण्डित बलदेवप्रसाद स्वामीजी से मिलने गये तो उन्होंने पण्डित बलदेवप्रसाद से पूछा कि मैक्समूलर भारतवर्ष कब आवेंगे। इससे ज्ञात होता है कि उन दिनों मैक्समूलर के भारतवर्ष आने की चर्चा थी।

इससे अगले दिन निर्जला एकादशी थी। पण्डित राधाचरण गङ्गा स्नान करने गये थे, स्नान करके घर लौटते समय वह स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए तो उन्होंने देखा कि स्वामीजी से दो पादरियों की धर्म्म विषय पर बात-चीत हो रही है। उनमें से एक पादरी का नाम लूकस था। दूसरा देशी ईसाई था।

लूकस—आप के मत में मोक्ष का क्या उपाय है?

दया०—हमसे पादरी विल्सन ने भी यही प्रश्न किया था। उन्होंने कहा था कि मोक्ष का साधारण मनुष्यों के लिये एक प्रकार का उपाय है, अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति और ईसाइयों के लिये अन्य प्रकार का, अर्थात् ईसा पर विश्वास लाना। हमने इस पर उनसे कहा था कि पहला ही उपाय ठीक है।

लूकस—मनुष्य ईसा पर विश्वास करने से ही मुक्ति पा सकता है, क्योंकि वह ईश्वर का पुत्र और मनुष्यों का परित्राता था और इसीलिये ईश्वर ने उसे भेजा था। इसका प्रमाण यह है कि ईसा ने बहुत से मृत पुरुषों को जिलाया था।

दया०—सत्य वेदोक्त धर्म्म में ईश्वर के अवलम्बन से ही मोक्ष होती है। महाभारत में लिखा है कि शुक्राचार्य्य ने सञ्जीविनी विद्या से मृत पुरुषों को जिलाया था। अब हम शुक्राचार्य्य को ईश्वर का अवतार मानें वा उन्हें ईश्वर का भेजा हुआ मानें। यदि उत्तम उपदेश देने से ही ईसा को परित्राता कहते हो तो बाइबिल की अपेक्षा भगवद्गीता में अधिक उत्तम उपदेश हैं, इसलिये भगवद्गीता के वक्ता श्री कृष्ण भी परित्राता हैं। यदि कहते हो कि ईसा इसलिये परित्राता थे कि उन्होंने उत्तम कर्म्म किये थे, तो शङ्कराचार्य्य अपेक्षाकृत उत्तमोत्तम कर्म्म कर गये हैं, इस लिये शङ्कराचार्य्य भी परित्राता हैं।

पादरी साहब इन बातों का कुछ उत्तर न दे सके।

स्वामीजी ने पादरी साहब से यह भी कहा था कि तुम्हारे देशों में बहुत बल है इस लिये तुम्हारी परिश्रम में अनास्था होगई है। अतएव तुम्हारी मध्यस्थ अवस्था नहीं रही है और तुम क्रमशः अवनति की ओर जा रहे हो।

इसके पश्चात् स्वामीजी ने शर्बतादि से सत्कार करके पादरी साहब को विदा किया।

पादरी जे० जे० लूकस से देवेन्द्रबाबू ने उनके स्वामीजी के संसर्ग में आने का वृत्त पूछा था। उनके उत्तर में जो पत्र उन्होंने लिखा उसमें उस बात-चीत का भी कुछ उल्लेख किया था जो उनकी स्वामीजी से धर्म्म विषय पर हुई थी और अन्य बातें भी लिखी थीं। हम उनके पत्र को उपयोगी समझ कर यहाँ उद्धृत करते हैं। इसमें स्वामीजी के आकार, प्रकार और एक व्याख्यान का मनोरञ्जक वर्णन है। अन्त में उन्होंने कुछ अपने विचार भी आर्य्यसमाज और ख्रीस्त धर्म्म के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकट किये हैं।

"जब मैं सन् १८७७ ई० के निकट फ़र्रुख़ाबाद में रहता था तो मैंने स्वामी दयानन्दजी को एक बृहत् समुदाय के सामने, जिसमें प्रायः हिन्दू ही थे, व्याख्यान देते हुए सुना था। मैं पण्डित मोहनलाल के साथ, जो कनौजिया ब्राह्मण थे और कुछ वर्ष पूर्व ईसाई हो चुके थे, उनसे मिलने भी गया था।

पहली बात, जिससे मैं प्रभावित हुआ, बल था जो स्वामीजी के समस्त शरीर और आकृति पर बृहदक्षरों में अङ्कित था। उनकी आकृति तपस्वियों जैसी नहीं थी। उससे पूर्व उन्होंने चाहे जो तपस्या की हो, परन्तु जब मैंने उन्हें देखा था उस समय उनका जीवन एक तपस्वी वा संन्यासी का नहीं था। यह सच है कि उनके वस्त्र बहुत पुष्कल नहीं थे। जब मैंने उन्हें देखा था, वह केवल एक वा दो वस्त्र पहने हुए थे परन्तु वह किसी सुन्दर श्वेत वस्तु के बने हुए थे। उनके देह के ऊपर का भाग प्रायः नग्न था। उन्होंने मेरा और पण्डित मोहनलाल का हृदय से स्वागत किया था और वह हमसे बात-चीत करने और अपने मन्तव्यों को स्पष्टतया वर्णन करने पर सर्वथा उद्यत थे। वह मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध इतने बल और इतने स्पष्ट विश्वास के साथ बोलते थे कि मुझे फ़र्रुख़ाबाद की जनता की ओर से उनका हार्दिक स्वागत किये जाने पर आश्चर्य्य हुआ। मुझे उनका यह कथन स्मरण है कि जब मैंने उनसे कहा कि यदि आप को तोप के मुँह पर रख कर आपसे कहा जाय कि यदि तुम मूर्त्ति को मस्तक नहीं नवाओगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायगा, तो आप क्या कहेंगे। स्वामीजी ने उत्तर दिया था कि मैं कहूँगा कि उड़ा दो। मैं उस समय उनके मिलने से यह भाव लेकर आया कि स्वामी दयानन्द एक बलवान् पुरुष हैं और मूर्त्ति-पूजा से उन्हें प्रबल और सच्ची घृणा है।

हिन्दुओं की बड़ी संख्या उनका व्याख्यान सुनने को आई थी और इसमें सन्देह नहीं कि उस सायङ्काल को उनकी वाग्मिता और सत्यमनस्कता ने उनके लिये बहुत से अनुयायी प्राप्त किये होंगे।

आगे चल कर पादरी साहब कहते हैं:—"हिन्दुओं में मूर्त्ति-पूजा के प्रति अश्रद्धा ईसाइयों के स्कूलों और बाजार के व्याख्यानों और ईसाइयों की लाखों पुस्तकों के प्रचार से उत्पन्न होगई थी जिनमें मूर्त्ति-पूजा की मूर्खता, उसके पाप और लज्जा को स्पष्टरूप से वर्णन किया गया था और इस प्रकार उन्होंने सारे भारतवर्ष में लोगों को मूर्त्ति-पूजा का परित्याग

करने पर उद्यत कर दिया था और जब दयानन्द ने वेदों के बल पर मूर्त्ति-पूजा का प्रत्याख्यान किया तो उन्होंने लोगों को मूर्त्ति-पूजा के परित्याग पर उद्यत पाया और लोगों ने उनकी शिक्षा को इसलिये ग्रहण किया कि उन्होंने समझा कि वह मूर्त्ति-पूजा को छोड़ कर भी वेदों को रख सकते हैं। मेरी सम्मति की सत्यता इससे भी प्रकट होती है कि आर्य्यसमाज के लोग सदा उस अभियोग से अपनी रक्षा करते चले आये हैं जो हिन्दू उन पर लगाते रहे हैं अर्थात् यह कि वास्तव में आर्य्यसमाजी हिन्दू मन्दिरों के विनाश के लिये ईसाइयों से मिल गये हैं और यही कारण है, जो आर्य्य-समाजी इतनी तीव्र भाषा ईसाइयों के लिये प्रयुक्त करते हैं। आर्य्यसमाजी समझते हैं कि ईसाइयों के विरुद्ध रहने से ही हिन्दू उन्हें उस अभियोग से मुक्त कर सकते हैं।"

अन्त में पादरी साहब ने लिखा था कि "इसमें कोई हानि नहीं है, यदि आर्य्यसमाजी यह स्वीकार करलें कि ईसाइयों ने मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचार करके उनका मार्ग सुगम कर दिया है।"

हमें पादरी साहब की बातों पर हँसी आती है। यह किसी अंश में भी सत्य नहीं है कि लोग ईसाई पादरियों के खण्डन करने के कारण मूर्त्ति-पूजा से विरक्त होगये हैं। बङ्गाल, मद्रास आदि जिन २ प्रान्तों में ईसाइयों का प्रचार बहुत समय से और बड़े बल के साथ होता रहा है, उन-उन प्रान्तों में मूर्त्ति-पूजा का सबसे अधिक प्राबल्य है और यही वह प्रान्त हैं जिनमें आर्य्य-समाज का बहुत कम प्रचार है। इससे स्पष्ट है कि ईसाइयों के प्रचार ने लोगों को मूर्त्ति-पूजा के त्यागने पर उद्यत नहीं किया।

यह सत्य है कि कहीं-कहीं सनातन धर्मियों ने स्वामीजी के विषय में यह किंवदन्ती फैलाई थी कि उन्हें अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिये नियत किया है, परन्तु न किसी ने उस समय इसे सत्य समझा और न स्वामीजी के देहावसान के पीछे ही किसी ने आर्य्य-समाजियों पर यह अभियोग लगाया और यदि किसी ने लगाया भी हो तो न कभी आर्य्य-समाजियों ने उसकी परवाह की और न जनसाधारण ने उसे सत्य समझा। यह कहना कि आर्य्यसमाजी केवल इस दोषारोपण से मुक्त होने के अभिप्राय से ईसाई मत की तीव्र आलोचना करते हैं, सर्वथा मिथ्या है। प्रथम तो यह बात है कि ईसाई जैसी तीव्र भाषा हिन्दुओं और आर्य्यों के लिये प्रयुक्त करते हैं आर्य्य-समाजी वैसी ईसाइयों के लिये नहीं करते, दूसरे-आर्य्यसमाज जिस भाव से पौराणिक आदि वेद-विरुद्ध मतों का खण्डन करता है उसी भाव से ईसाई मत का भी करता है।

हां, यह अवश्य किसी अंश तक ठीक है कि अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त समुदाय में मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध कुछ भाव उत्पन्न होगया है, परन्तु यह ईसाई मत के प्रचार का नहीं, प्रत्युत पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रसार का प्रभाव है।

काशी

स्वामीजी २४ मई सन् १८७६ ई० को फ़र्रुख़ाबाद से चलकर ज्येष्ठ शुक्ला ४ संवत् १९३३ वि० अर्थात् २७ मई सन् १८७६ ई० को काशी पहुँचे और उत्तमगिरी गोसाईं के बाग़ में ठहरे। *

* देवेन्द्रबाबू ने इस बाग़ के स्वामी का नाम शिवदत्तगिरि लिखा है। —संग्रहकर्त्ता.

इस बार स्वामीजी का अधिक समय वेदभाष्य के चिन्तन और उसके मुद्रित कराने के प्रबन्ध करने में व्यय होता था। ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका के लाज़रस कम्पनी के छापेख़ाने में छपवाने का उन्होंने प्रबन्ध किया और वेदभाष्य के सम्बन्ध में विज्ञापन छपवाये।

वेदभाष्य-भूमिका

स्वामीजी ने वेदभाष्य के कार्य में योग देने के लिये फ़र्रुख़ाबाद से पण्डित भीमसेन को अपने पास काशी बुलाया। एक मास तक ग्रन्थ-संग्रह का प्रबन्ध होता रहा और फिर वेदभाष्य की रचना आरम्भ हुई।

वेदभाष्य के लिये ग्रन्थ-संग्रह

पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती जो पहले कुछ दिन तक स्वामीजी के साथ रह चुके थे नैपाल जारहे थे। वह स्वामीजी के दर्शन करने आये। स्वामीजी ने उन्हें योगदर्शन का व्यासभाष्य तथा महाभाष्य प्रदान किया।

शिष्य-गुरु-सम्मिलन

स्वामीजी भाद्रपद कृष्णा १४ संवत् १९३३ वि० अर्थात् १४ अगस्त सन् १८७६ ई० तक काशी रहे।

स्वामीजी काशी से चलकर भाद्रपद कृष्णा ११ संवत् १९३३ अर्थात् १५ अगस्त सन् १८७६ ई० को जौनपुर पहुँचे। यहाँ उनके साथ पं० भीमसेन और एक रसोइया था। यहाँ कोई व्याख्यान नहीं हुआ। जो लोग उनके पास आते रहे उन्हें ही उपदेश देते रहे। यहाँ स्वामीजी केवल ३ दिन रहे और यहाँ से चल कर अयोध्या चले गये।

जौनपुर

भाद्रपद कृष्णा १४ संवत् १९३३ वि० अर्थात् १८ अगस्त सन् १८७६ ई० को स्वामीजी अयोध्या पहुँचकर सरयूबाग़ में चौधरी गुरुचरणलाल के मन्दिर में उतरे। अयोध्या में भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा संवत् १९३३ वि० अर्थात् २० अगस्त सन् १८७६ ई० को ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका का लिखना प्रारम्भ हुआ।

अयोध्या

स्वामीजी ने विज्ञापन छपवा कर नगर में बँटवाया और उसमें पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये चैलेंज दिया। विज्ञापन देते ही पौराणिक-दल में खलबली मच गई। मन्दिरों, ठाकुरद्वारों तथा अन्य स्थानों में सभाएँ होने लगी। पण्डित और वैरागी सब के सब मिल कर अयोध्या के रईस राजा त्रिलोकीलाल के पास गये और उनसे दयानन्द के विज्ञापन देने का समाचार कहा। उन्होंने कहा—तो फिर दयानन्द से नियमानुसार शास्त्रार्थ क्यों नहीं कर लिया जाता। तब पण्डितों ने शास्त्रार्थ का आयोजन किया और स्वामीजी को एक पत्र लिखा जिसमें यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि स्वामीजी अयोध्या नगर में आकर शास्त्रार्थ करें। इस प्रतिबन्ध के लगाने से पण्डितों का विशेष अभिप्राय था। वैरागियों का अयोध्या में बहुत ज़ोर है और वह झगड़ा बखेड़ा करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं। पण्डितों ने सोच लिया था कि हम शास्त्रार्थ में यदि न जीतेंगे

शास्त्रार्थ के लिये विज्ञापन

राजा का पण्डितों को परामर्श

पण्डितों की कूट नीति

तो शास्त्रार्थ करेंगे, हुल्लड़बाजी और धींगामुश्ती से जीतेंगे, दयानन्द अकेला है, वह कर ही क्या सकेगा, हम जीत का ढोल पीट ही देंगे। परन्तु दयानन्द भी कच्ची गोलियों का खेला हुआ न था, वह इनकी चाल जान गया। उसने पत्रोत्तर में कहला भेजा कि यदि शास्त्रार्थ करना है तो सरयू बाग़ में ही करना होगा। पण्डित लोग इसे क्यों मानने लगे थे, उन्हें तो शास्त्रार्थ से बचने के लिए कोई बहाना चाहिये था और वह उन्हें अनायास ही मिल गया।

शास्त्रार्थ सरयू बाग़ में ही होगा

इसमें कोई सन्देह ही नहीं था कि यदि स्वामीजी अयोध्या शास्त्रार्थ करने जाते तो वैरागी उन पर आक्रमण किये और टंटा बखेड़ा उठाये बिना कभी न रहते।

अयोध्या में उन दिनों एक पण्डितम्मन्य श्रीहर्षजी निवास करते थे। देवेन्द्रबाबू को तो यह धुन थी कि जिस व्यक्ति का भी उन्हें पता लगता था कि उसका स्वामीजी से संसर्ग रहा था चट उसी के पास पहुँच जाते थे। इसी प्रकार वह श्रीहर्ष के भी पास पहुँचे और उनसे पूछा कि महाराज स्वामीजी के विषय में यदि कोई घटना याद हो तो कृपया बताइए।

एक पण्डितम्मन्य

श्रीहर्षजी हर्षित और पुलकित होकर बोले, "अजी याद क्यों नहीं है, हमने तो उन्हें शास्त्रार्थ में हराया ही था, यह बात कैसे याद न रहती"। देवेन्द्रबाबू ने उनसे पूछा कि आप में और दयानन्द में क्या प्रश्नोत्तर हुए थे ? तो गर्व से उद्ग्रीव होकर निम्न लिखित प्रश्नोत्तर उन्होंने वर्णन किये।

हमने दयानन्द को हराया था

पण्डितम्मन्य की मनघड़न्त—

श्रीहर्ष—शिष्टाचार प्रमाण है वा नहीं ?

दया०—है।

श्रीहर्ष—तो फिर तीर्थभ्रमण आदि जो शिष्ट परम्परासे चला आता है, क्यों मान्य नहीं है ?

दया०—चुप।

श्रीहर्ष—यदि व्यास, वशिष्ठ सभी के शास्त्र असत्य हैं तो यह कैसे माना जाय कि आज आपने इतने दिनों बाद सत्यार्थ का प्रकाश किया है ?

दया०—चुप।

श्रीहर्ष—विधवा-विवाह विहित है वा नहीं ?

दया०—विहित है।

श्रीहर्ष—परन्तु भारतवर्ष में द्रौपदी के स्वयंवर-प्रसङ्ग में टीकाकार नीलकण्ठ ने वेद का एक मन्त्र उद्धृत करके विधवा-विवाह का अनौचित्य दिखाया है ?

दया०—चुप।

पाठकों ने देखा कि पण्डित श्रीहर्ष के प्रश्न कैसे दुरूह और गूढ़ हैं। स्वामीजी इस बुद्धि के हिमालय के प्रश्नों के उत्तर में चुप न होते तो क्या करते। हमें श्रीहर्षजी की सरलता पर हँसी आती है, वह सबको या तो मूर्ख समझते थे जो उनके कथन को ब्राह्मण-

वचन प्रमाण कहकर मानलें या स्वयं उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि जो बात वह कह रहे हैं उस पर कोई बुद्धिमान् विश्वास भी करसकता है वा नहीं। वास्तव में बात यह है कि यह प्रश्नोत्तर स्वयं श्रीहर्षजी के मस्तिष्क की उपज हैं। उनका कोई शास्त्रार्थ स्वामीजी से हुआ ही नहीं।

अयोध्या में एक मास और नौ दिन ठहर कर महाराज लखनऊ चले गये।

लखनऊ

स्वामीजी २६ सितम्बर सन् १८७६ ईस्वी अर्थात् आश्विन शुक्ला ९ संवत् १९३३ को लखनऊ पहुँचे और हुसैनाबाद में सर्दार विक्रमसिंह अहलूवालिया की कोठी में ठहरे। अधिकतर वह ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के रचने में व्याप्त रहते थे। स्वामीजी का विचार इंग्लैण्ड जाकर प्रचार करने का भी था और इसी उद्देश्य से उन्होंने बनमाली बाबू एक बङ्गाली से जिसे उन्होंने मिर्ज़ापुर में नियत करके साथ रक्खा था, अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया था। १८ अक्टूबर सन् १८७६ ई० के 'बिहारबन्धु' पटना में लिखा था कि पण्डित दयानन्द सरस्वती विलायत जाना चाहते हैं। इसलिये आजकल लखनऊ में अंग्रेजी पढ़ रहे हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उक्त महाशय के विलायत जाने से वहाँ के विद्वानों को बड़ा आनन्द होगा।

स्वामीजी इंग्लैण्ड जाना चाहते थे

पहला व्याख्यान

३० सितम्बर सन् १८७६ को स्वामीजी ने छोटेलाल रोटी वाले के बाग़ में ईश्वर की एकता के विषय में व्याख्यान दिया जिसमें श्रोता अत्यधिक संख्या में उपस्थित हुए और व्याख्यान का अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। व्याख्यान में स्वामीजी ने ब्राह्म-समाज और उसके नेता की प्रशंसा की थी कि ब्राह्म लोग जो प्रयत्न एकेश्वर पूजा के फैलाने में कर रहे हैं, वह श्लाघनीय है।

इस बार स्वामीजी के लाला ब्रजलाल रईस लखनऊ के साथ धर्म्म विषय में प्रश्नोत्तर हुए थे। हम स्वामीजी के दिये हुए उत्तरों को यहां उद्धृत करते हैं। उनसे ही प्रश्नों का पता लग जायगा कि क्या थे।

प्रश्नों के उत्तर

वर्ण कर्मों के अनुसार ठीक हैं, (वर्तमान) लोक-व्यवहार के अनुसार ठीक नहीं हैं। ब्रह्मविद्या का ज्ञाता ब्राह्मण, युद्ध करने वाला क्षत्रिय, लेन देन आदि करने वाला वैश्य, सेवा करने वाला शूद्र है। यदि ब्राह्मण वा क्षत्रिय शूद्र का काम करने लगे तो वह ब्राह्मण नहीं। वर्ण कर्म से होता है, कुल से नहीं। वतमान चारों वर्ण * १२०० वर्ष के लगभग बने हैं ......। जैसे शरीर में मुख श्रेष्ठ है वैसे ही सब वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, इसीलिए ऐसा कहा गया है कि ब्राह्मण मुख से हुआ। यज्ञोपवीत केवल विद्या का चिन्ह है। उत्तम कर्म्म, सत्य बोलना, परोपकारादि हैं, उन्हें ही करना चाहिये। वाणी से सत्य बोलना अर्थात् जो मन में हो वही जिह्वा से कहना वा ऐसा विचार करके कहना जो कभी झूठ न हो सत्य कहाता है। मूर्त्ति पूजना बुरा है, मूर्त्ति कदापि न पूजनी चाहिये, इसी मूर्त्ति-पूजा के कारण संसार में अन्धकार फैल गया है। जैसे सुख दुःख का ध्यान मनमें होता है वैसे ही परमेश्वर का ध्यान मनसे होना चाहिये

* यहाँ चारों वर्णों से अभिप्राय आज कल की जन्मगत अनेक विरादरियों से है। —संग्रहकर्त्ता

मूर्त्ति की कोई आवश्यकता नहीं। सन्ध्या केवल दो समय सायं व प्रातः करनी चाहिये, तीन काल नहीं। सत्य बोलना और परोपकार के उत्तम कर्म्म करने चाहिएँ। विना समझे वार २ मन्त्र जपना वा लाख दो लाख मन्त्र जप कर पुरश्चरण करना अनावश्यक है, मनन करना चाहिए। परमेश्वर का कोई रङ्ग व रूप नहीं है, वह अरूप है। जो कुछ इस संसार में दिखाई देता है वही उसका रूप है। परमेश्वर एक है और वही सब का बनाने और उत्पन्न करने वाला है। यदि ईश्वर दिखाई देता तो स्यात् सब कोई अपनी-अपनी मनोवाञ्छा पूरी करने की प्रार्थना करता और उसे हैरान करता। दूसरे, जिन तत्वों से मनुष्य का यह शरीर बना है उनसे उस को देखना असम्भव है। तीसरे, जिसने जिसे उत्पन्न किया उसे वह क्योंकर देख सकता है। परन्तु परमेश्वर दिखाई भी देता है, यह मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि सब पदार्थ जो इस संसार में दिखाई देते हैं, इनका कोई एक बनाने वाला जान पड़ता है, यही उसका देखना है और जैसे सुख दुःख पहचाना जाता है वैसे ही परमेश्वर को पहचानो। ब्रह्म सबमें है और हम में भी है और जैसे सुख दुःख की प्रतीति मन में होती है वैसे ही उसकी भी हो सकती है। ब्रह्म सब जगह एकसा है। परन्तु यह बात है कि उस चेतन का जितना जिसके आत्मा में प्रकाश है, अर्थात् जितना जिसे ज्ञान है, उतना ही उसे ब्रह्म का अनुभव होता है। जो मनुष्य विद्वान्, बुद्धिमान् और पण्डित हो उसे 'देव' कहते हैं। रामलीला देखने में दोष है, सहस्र हत्या के बराबर दोष है और इसी प्रकार मूर्त्ति-पूजा सहस्र हत्या के बराबर पाप है, क्योंकि विना आकार के प्रतिविम्ब नहीं उतर सकता और जब कि परमेश्वर का आकार नहीं तो उसकी मूर्त्ति झूठी। यदि किसी का फ़ोटो ठीक २ प्रतिकृति उतार कर स्मरण करने और देखने को सामने रक्खी जाय तो ठीक है परन्तु ब्रह्म की मूर्त्ति और अनुकृति बनाना और नक़ल करना कुछ का कुछ कर देना है और सर्वथा मिथ्या और अवैध है। संस्कृत भाषा सदा से है और अत्यन्त शुद्ध और परिष्कृत है, यदि फ़ारसी और अंग्रेजी में 'ब' बोलना चाहें तो स्पष्टतया प्रकट नहीं हो सकता, फ़ारसी में 'बे' और अंग्रेजी में 'बी' कहेंगे, परन्तु किसी अक्षर को विना दूसरे अक्षर की मिलावट के प्रकट करने का गुण केवल संस्कृत में ही है। जैसे माता-पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता-पिता और गुरु की सेवा करो, उनका कहा मानो, ऐसे ही भगवान् ने मनुष्यों को स्तुति सिखाने के लिये वेद में अपनी स्तुति लिखी है। भगवान् का मुख तो नहीं है उसने अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा चार ऋषियों के हृदय में प्रकाश करके वेद बनाया, परन्तु वेद उन ऋषियों के बनाये हुए नहीं हैं, वह भगवान् के बनाये और कहे हुए हैं, वह चारों ऋषि कुछ न पढ़े थे और न कुछ जानते थे, भगवान् ने उनके द्वारा वेद कहे हैं। जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्निपात में विवश होकर बोलने लगता है वैसे ही भगवान् ने उन चारों के घट में और वाणी में प्रकाश करके (वेदों को) कहा और उन्होंने उसके बल से विवश होकर कहा, अतः स्पष्ट है कि वेद भगवान् ने ही कहे हैं। जीव (अपनी प्रकृति वा स्वरूप में) एक हैं और जाति से (संख्या में) अनेक हैं। जैसे एक मनुष्य जाति है और दूसरी पशु जाति है इत्यादि। जैसे जल में जो रङ्ग मिलादोगे वैसा ही जल हो जावेगा, वैसे ही जिस देह में यह जीव जावेगा वैसा ही उसका रङ्ग-रूप और छोटा-बड़ा देह होगा, परन्तु जीव सबका एकसा है, जैसा चिउँटी का वैसा ही हाथी का।

स्वामीजी ने एक पुस्तक 'वाक्यप्रबोध' प्रकाशित की थी। वह छपी तो उनके ही नाम से थी, परन्तु उसके लिखने वाले, उनके साथ काम करने वाले पण्डित थे। उसमें संस्कृत की कुछ अशुद्धियां रह गई थीं। काशी के पण्डितों ने उस पर आक्षेप किया तो पण्डितवर्ग उन अशुद्धियों को शुद्ध सिद्ध करने लगे स्वामीजी ने उनसे कहा कि जो अशुद्धियां हैं उन्हें सरलता से मान लेना चाहिए और अगले संस्करण में उन्हें शुद्ध कर देना चाहिए।

अशुद्धियों को सरलता से मानलो

प्रसङ्ग उठने पर एक दिन स्वामीजी ने कहा कि जो लोग पूर्वमीमांसा के सूत्रों का यज्ञ में पशुवधपरक अर्थ करते हैं, वह भारी भूल करते हैं। बात यह है कि सूत्रों में 'आलम्भन' शब्द आया है जिसके दो अर्थ हैं वध करना और स्पर्श करना। सूत्रों में उसका अर्थ स्पर्श करना ही है।

पूर्व–मीमांसा के भ्रान्त अर्थ

एक दिन स्वामीजी ने यह भी कहा था कि मैंने वेदों के एक २ मन्त्र पर पूर्ण विचार किया है। उनमें कोई भी युक्ति-विरुद्ध बात नहीं है।

एक दिन एक व्यक्ति ने महाराज से कहा कि आप ग्रन्थों के शब्दों को उलट देते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो अर्थ नहीं उलटता, अर्थ उलटने वाले तो और ही होंगे। हां मैं उनके उल्टे अर्थों को अवश्य उलटता हूँ।

उलटे अर्थों को उलटता हूँ

१ नवम्बर सन् १८७६ ई० को स्वामीजी लखनऊ से शाहजहाँपुर पधारे और एक बाग़ में ठहरे जिसमें एक मन्दिर भी था, परन्तु पौराणिकों ने उन्हें वहाँ न रहने दिया अतः वह एक दूसरे बाग़ में चले गये। ५ दिन ठहर कर बरेली चले गये। शाहजहाँपुर में व्याख्यान का प्रबन्ध नहीं हुआ। स्वामीजी का अधिक समय ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के बनाने में व्यय होता था।

शाहजहाँपुर

शाहजहाँपुर से चल कर स्वामीजी कार्त्तिक शुक्ला १५ अर्थात् ६ नवम्बर को बरेली पधारे। लाला लक्ष्मीनारायण खज़ान्ची को उनके आगमन की पहले सूचना थी। उन्होंने अपने एक प्रतिष्ठित कर्म्मचारी को स्वामीजी के स्वागत के लिये रेल्वे स्टेशन पर भेज दिया था। खज़ान्ची साहब ने स्वामीजी को सत्कारपूर्वक अपनी कोठी बेगम बाग़ में ठहराया। उसी कोठी में स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। मूर्ख जन चिढ़ते और बुद्धिमान् प्रसन्न होते थे। नगर के सब महात्मा, महाजन, सेठ, साहूकार, कालेज के विद्यार्थी व्याख्यान सुनने जाते थे। स्वामीजी के मूर्त्तिपूजादि के खण्डन से पौराणिक दल में व्याकुलता फैल गई थी। स्वामीजी के ३-४ व्याख्यान होने पाये थे कि पण्डितों, महन्तों और मूर्त्तिपूजकों ने हाहाकार मचा दिया और दल के दल सेठ लक्ष्मीनारायण के पास जाकर स्वामीजी के व्याख्यान बन्द कराने के लिये कहने लगे। उन्होंने इन हुल्लड़ करने वालों की तो कुछ परवाह न की, परन्तु जब पण्डितों, पुरोहितों और पुजारियों ने उनके घर के लोगों और स्त्रियों को बहकाया और धर्म्म-

बरेली

व्याख्यान होने लगे

पौराणिक दल में हाहाकार

खज़ान्ची स्त्रियों के दबाव में आगये

नाश की दुहाई देकर भड़काया और परिवार के पुरुषों और स्त्रियों ने आग्रह किया तो उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की कि महाराज ऐसी दशा में यदि आप व्याख्यान देना बन्द करदें तो बड़ी कृपा होगी। स्वामीजी ने उनकी विवशता पर विचार करके व्याख्यान देने बन्द कर दिये, परन्तु ठहरे उसी कोठी में रहे और ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका का प्रणयन करते रहे।

व्याख्यान बन्द कर दिये

पौराणिकों ने पण्डित अङ्गदराम शास्त्री को पीलीभीत से स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलाया। उसने आकर बहुत हल्ला-गुल्ला किया, शास्त्रार्थ के लिये उत्सुकता प्रकट की। स्वामीजी शास्त्रार्थ से कब हटने वाले थे, उन्होंने शास्त्रार्थ करना प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ के नियम भी निश्चित होगये और शास्त्रार्थ का दिवस और समय भी नियत होगया। उक्त दिवस और समय पर शास्त्रीजी ५००० पुरुषों की भीड़ लेकर जिन में प्रायः सभी उजड्ड, उपद्रवी लोग थे आवाजें कसते और शोर मचाते स्वामीजी के निवास-स्थान पर पहुँचे। सेठ लक्ष्मीनारायण ने जो इस हुरदंगा समुदाय को देखा तो उन्हें निश्चय होगया कि शास्त्री का अभिप्राय शास्त्रार्थ करना नहीं, प्रत्युत दंगा-बखेड़ा करना ही है, अतः उन्होंने उस भीड़ को कोठी के अहाते में घुसने से रोक दिया। इस पर शास्त्री ने कहना आरम्भ कर दिया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ से हट गये और जिस ठाठ से आये थे उसी ठाठ से वापस चले गये। बुद्धिमान् तो समझ ही गये कि शास्त्रीजी ने शास्त्रार्थ से बचने का एक ढंग निकाला था, मूर्ख-मण्डली अवश्य यह कहती रही कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिये शास्त्रीजी के सन्मुख नहीं आये।

अङ्गद शास्त्री को बुलाया गया

अङ्गद शास्त्री से शास्त्रार्थ

५००० पुरुषों का हुल्लड़

सेठ लक्ष्मीनारायण ने २००) रुपये वेदभाष्य की सहायतार्थ स्वामीजी की भेट किये।

गवर्नमेंट हाई स्कूल के पण्डित लक्ष्मण शास्त्री भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये थे, परन्तु वह संस्कृत शुद्ध न बोल सकते थे। स्वामीजी ने उनकी अशुद्धियाँ पकड़ कर ही उन्हें चुप कर दिया था।

लक्ष्मण शास्त्री परास्त

पाठकों को स्मरण होगा कि स्वामीजी ने मिर्ज़ापुर में एक बङ्गाली को अंग्रेजी सीखने के लिये रक्खा था। वह कुछ समय उनके साथ रहा, परन्तु फिर वह चला गया था। बरेली आकर उन्होंने बनमाली बाबू एक दूसरे बङ्गाली को रक्खा, परन्तु उससे उन्होंने अंग्रेजी नहीं पढ़ी। उन्हें उपदेश, वार्त्तालाप, व्याख्यान और ग्रन्थ रचने से इतना समय ही नहीं मिलता था, जो वह अंग्रेजी पढ़ सकते। बनमाली बाबू से तो उन्होंने यही काम लिया कि वह उससे मैक्समूलर के वेद मन्त्रों के अंग्रेजी अनुवाद का भाषानुवाद सुन लिया करते थे।

पण्डित गङ्गाराम बरेली के प्रसिद्ध रईस दीवान हेतराम के कर्म्मचारी थे, उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। वह आरम्भ से ही स्वामीजी के उपदेशों को शास्त्रसम्मत और युक्तिसङ्गत समझकर मानने लगे थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी की प्रशंसा में कतिपय श्लोक रचकर सभा में सुनाये थे।

एक सदाशय विद्वान्

कहते हैं कि स्वामीजी इन दिनों विशेष खण्डन मण्डन नहीं करते थे, वह अधिकतर लोगों के हृदयों पर वेदों का महत्व अङ्कित करने में अपना समय व्यय करते थे और कहते थे कि वेदों में तड़ित आदि विद्याएँ हैं।

मुरादाबाद

स्वामीजी बरेली से चलकर मुरादाबाद पधारे और राजा जयकिशनदास की कोठी में ठहरे।

व्याख्यान होने लगे

स्वामीजी ने उक्त कोठी में ५-६ व्याख्यान दिये। व्याख्यान सायङ्काल को हुआ करते थे। व्याख्यानों के पश्चात् शङ्का-समाधान के लिए समय दिया जाता था। लोग रात्रि के १०-११ बजे तक अपने सन्देहों की निवृत्ति करते रहते थे। पण्डितों ने शास्त्रार्थ के कोलाहल तो बहुत मचाये, परन्तु सामने कोई न आया।

ब्राह्मण के कटु वचन

एक दिन व्याख्यान होरहा था कि एक ब्राह्मण ने महाराज को कटु वचन कहने आरम्भ किये कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, इसका मुँह नहीं देखना चाहिए। परन्तु महाराज ने अपनी नैसर्गिक सहिष्णुता से उसकी असभ्योक्तियों पर कुछ ध्यान नहीं दिया और शान्तिपूर्वक व्याख्यान देते रहे।

यज्ञोपवीत दिये

इस वार स्वामीजी ने कई पुरुषों को यज्ञोपवीत भी दिया था, और किसी के शङ्का करने पर कहा था कि संन्यासी से यज्ञोपवीत लेना शास्त्रोक्त है।

पादरी से शास्त्रार्थ

इस वार की सबसे अधिक उल्लेख्य घटना स्वामीजी और पादरी डब्ल्यु. पार्कर का शास्त्रार्थ है। पादरी साहब के साथ उनके सहयोगी मिस्टर बेली और रामचन्द्र बोस और थे। यह शास्त्रार्थ १५ दिन तक प्रतिदिन २, ३ घंटे तक होता था और दोनों पक्षों के प्रश्नोत्तर लिखे जाते थे। दुःख है कि शास्त्रार्थ की रिपोर्ट सुरक्षित नहीं रक्खी गई। स्वामीजी ने शास्त्रार्थ में पादरी साहब को निरुत्तर कर दिया था। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि किसी मनुष्य को ईश्वर और उसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति मानना मूर्त्तिपूजा से भी बुरा है। एक दिन शास्त्रार्थ का विषय सृष्टि-उत्पत्ति था। पादरी साहब को अपने पक्ष के समर्थन में कि सृष्टि को उत्पन्न हुए ※ सहस्र वर्ष हुए, जब असफलता हुई तो उन्होंने यह पक्ष

पादरी का असमंजस

लिया कि मनुष्य की सृष्टि को ५००० वर्ष हुए, भौतिक सृष्टि उसके पहले से थी। परन्तु स्वामीजी ने इस पर भी आक्षेप किया कि सृष्टि की उत्पत्ति का प्रश्न है जिसमें मनुष्य भी आगया। इस पर पादरी साहब निरुत्तर होगये †।

※ पादरी साहब ने ५ नहीं ६ सहस्र वर्ष कहा होगा क्योंकि बाइबिल के अनुसार गणना करने से ६ सहस्र वर्ष ही होते हैं —संग्रहकर्त्ता.

† पं० लेखराम कृत जीवनचरित में लिखा है कि उसी कोठी में जिसमें शास्त्रार्थ होता था बृटिश इण्डियन एसोसिएशन के भी अधिवेशन हुआ करते थे। जब पादरी साहब ने यह पक्ष लिया कि सृष्टि को ५००० वर्ष हुए तो स्वामीजी एसोसिएशन के कमरे से एक बिल्लोर पत्थर उठा लाये और पूछा कि आप लोग साइंस जानते हैं, यह पत्थर इस रूप में कितने वर्षों में आया होगा तो

शास्त्रार्थ में स्वामीजी आदम वा हव्वा (ईसाई व मुसलमानों के अनुसार मनुष्य जाति के प्रथम पिता माता) का नाम आने पर आदमजी और हव्वाजी कहते थे, परन्तु पादरी साहब आदम को पापी बताते थे इस पर डिप्टी कलक्टर इमदाद अली बिगड़ बैठे! उन्होंने कहा कि स्वामीजी तो उनका नाम सम्मान के साथ लेते हैं और आप इस अपमान के साथ। पादरी साहब ने उत्तर दिया कि मेरा कार्य आदम को पापी कहे बिना नहीं चलता, आप शान्त रहें, यहाँ डिप्टीपन का काम नहीं है।

मुसलमान डिप्टी कलक्टर का रोष

मुं० इन्द्रमणि का नामोल्लेख पहले हो चुका है। जब स्वामीजी छलेसर से अलीगढ़ गए थे तो वह स्वामीजी से मिलने गये थे। वह मुरादाबाद निवासी वैश्य-कुलोत्पन्न एक व्यक्ति थे। फ़ारसी, अरबी के तो वह पण्डित ही थे, परन्तु संस्कृत में भी प्रवेश रखते थे। अबैदुल्ला नामक क़स्बा वनत ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर के रहने वाले एक खत्री थे जो मुसलमान होगये थे। मुसलमान होने के पश्चात् उनकी मुसलमानों में बड़ी प्रतिष्ठा हुई और उन्हें मौलवी की पदवी प्राप्त हुई। कहावत है कि नया मुसलमान अल्ला ही अल्लाह पुकारता है, मुसलमान होजाने पर उन्होंने हिन्दू धर्म्म पर अत्यन्त कठोर भाषा में आक्षेप करने आरम्भ किये और कई पुस्तकें हिन्दूधर्म्म के विरुद्ध लिखीं, उनका उत्तर मुंशी इन्द्रमणि ने दिया और वैसा ही तीव्र भाषा में दिया। इससे उनकी ख्याति पश्चिमोत्तर प्रान्त (वर्तमान संयुक्तप्रान्त) में सर्वत्र फैल गई और वह अत्यन्त लोकप्रिय होगये। स्वामीजी के संसर्ग में आकर वह उनके अनुयायी होगये। स्वामीजी भी उनका बहुत मान करते थे। उनके एक शिष्य थे जगन्नाथदास। गुरु की देखा देखी वह भी स्वामीजी के विचारों से सहमत होगये। पीछे आकर मुंशी इन्द्रमणि लोभवश स्वामीजी के विरुद्ध होगये थे। वह क्यों विरुद्ध हुए थे? इसका वर्णन अपने स्थान पर आवेगा। जब गुरु विरुद्ध हुए तो शिष्य भी विरुद्ध होगये और जबतक जगन्नाथदास जीवित रहे तब तक स्वामीजी और आर्यसमाज के विरुद्ध विष ही उगलते रहे और इसी में अपनी गुरुभक्ति का परिचय देते रहे। जब देवेन्द्र बाबू ने उनसे स्वामीजी के सम्बन्ध की घटनाओं के विषय में प्रश्न किये तो उन्होंने एक दो अत्यन्त ऊटपटांग बातें इस विषय में उनसे कह डालीं। पहली बेतुकी बात जो उन्होंने कही यह थी कि जब स्वामीजी मुरादाबाद आये तो वह जीव को सृष्ट मानते थे और मुंशी इन्द्रमणि अनादि मानते थे और एक व्याख्यान में स्वामीजी ने उसे सृष्ट ही वर्णन किया था। किसी ने मुंशी इन्द्रमणि से भी कह दिया कि स्वामीजी का जीव के विषय में ऐसा मन्तव्य है। इस पर मुं० इन्द्रमणि स्वामीजी के पास गये और कहा कि मैं जीव के अनादित्व पर सौ प्रमाण दे सकता हूं। स्वामीजी बोले इस विषय पर हमारी बात चीत फिर होगी। दूसरे दिन जो स्वामीजी ने व्याख्यान दिया तो जीव का अनादित्व प्रतिपादित किया और कहा कि जीव को सृष्ट मानना मुसलमानों का मत है।

मुं० इन्द्रमणि का परिचय

इन्द्रमणि के शिष्य का बेतुकापन

उत्तर मिला कि कई लाख वर्ष में। इस पर पादरी साहब ने कहा कि मेरा अभिप्राय यह है कि मनुष्य-सृष्टि को ५००० वर्ष हुए। —संग्रहकर्त्ता.

ला० जगन्नाथदास को यह सब मिथ्या और युक्तिशून्य बातें कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं हुआ। स्वामीजी के लिये जो आवागमन में विश्वास करते थे, जीव को सृष्ट मानना सम्भव हो ही नहीं सकता और आज उसे सृष्ट बता कर और मुं० इन्द्रमणि के इस कथन से भयभीत होकर कि मैं जीव के अनादित्व के सौ प्रमाण दे सकता हूँ, कल ही उसे अनादि बताना स्वामीजी जैसे तार्किक और दार्शनिक व्यक्ति के लिये कभी बन ही नहीं सकता। ऐसा मनुष्य जो आज कुछ कहे और कल कुछ, जनसाधारण पर क्या प्रभाव डाल सकता है। इन सब बातों के अतिरिक्त इस बात को मुरादाबाद का कोई व्यक्ति जिसे स्वामीजी के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इस विषय में कुछ नहीं कहता। फिर सब से बड़ी बात यह है कि कलकत्ते और प्रयाग में स्वामीजी ने जीव का अनादित्व मुरादाबाद आने से बहुत पहले प्रतिपादित किया था, इसकी हमें असन्दिग्ध साक्षी मिलती है, जैसा कि पाठक देख चुके हैं। इन सब बातों के होते हुए यही कहना पड़ता है कि जगन्नाथदास ने यह बात स्वामीजी के सम्बन्ध में द्वेष से परिचालित होकर ही कही थी।

जगन्नाथ के बेतुकेपन की समालोचना

एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे स्वामीजी से प्रार्थना की कि महाराज आज आप मेरे गृह पर पधार कर भोजन कीजिये, स्वामीजी ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया। परन्तु उसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने ऐसी ही प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू श्यामसुन्दर ने स्वामीजी को उपालम्भ दिया तो उस समय तो उन्होंने कुछ न कहा, परन्तु व्याख्यान में इस घटना का उल्लेख करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा कि जबतक तू कुकर्म न छोड़ेगा हम तेरे घर पर जाकर भोजन न करेंगे।

दुराचारी रईस का निमन्त्रण अस्वीकृत

कुकर्मी के घर पर भोजन न करेंगे

एक दिन मुरादाबाद का टीका सुपरिण्टेण्डेण्ट जो ब्राह्मण था व्याख्यान में आया और मूर्त्तिपूजा का खण्डन सुनकर इतना आवेश में आया कि स्वामीजी को गालियाँ देने लगा और यह कह कर कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है इसका मुख न देखना चाहिये चला गया। स्वामीजी ने उसकी गालियों पर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया।

ब्राह्मण का गाली-प्रदान

एक दिन एक चक्राङ्कित व्याख्यान के बीच में ही 'आकृष्णेन रजसा०' आदि मन्त्र पढ़कर कहने लगा कि दयानन्द इसका अर्थ बता। लोगों ने उसे बहुतेरा समझाया कि व्याख्यान के पश्चात् जो चाहो सो पूछ लेना, व्याख्यान में विघ्न मत डालो, परन्तु वह न माना। अन्त को स्वामीजी ने दुर्जनतोष-न्याय के अनुसार मन्त्र का अर्थ भी कर दिया, फिर भी वह बक २ करता ही रहा। जब देखा कि किसी प्रकार चुप ही नहीं होता तो महाराज ने उससे कहा कि यदि मेरा अर्थ ठीक नहीं है तो तुम ही अर्थ करके बताओ। इस पर उसके दीपक ठण्डे हो गये, क्योंकि वह वास्तव में निरक्षर भट्टाचार्य था। वहाँ अर्थ कौन करता ?

चक्रांकित की धूर्त्तता

सुरापायी का सुरात्याग

महाशय रामदयालसिंह रईस कुन्दरकी जिला मुरादाबाद को सुरापान का व्यसन था। महाराज ने एक दिन व्याख्यान में सुरापान के दोष ऐसे मर्म्म-भेदी शब्दों में दर्शाये कि उन्होंने उसके त्याग का प्रण कर लिया और अत्यन्त शारीरिक कष्ट सहने पर भी उसे मरण पर्यन्त निबाहा। वह अपने अन्तिम श्वास तक आर्यधर्म के सेवक रहे।

साधन का उपदेश

महाशय बख़्शीराम के आग्रहपूर्वक योग के साधन पूछने पर महाराज ने उन्हें यह अभ्यास बताया था, जिसके विषय में उन्होंने कहा था कि मैंने भी किया है।

ओम् भूः ओम् भुवः ओम् स्वः ओम् महः ओम् जनः ओम् तपः ओम् सत्यम्। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओम् आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा।

इसका अभ्यास करके बख़्शीरामजी ने परम शान्ति लाभ की।

छलेसर

बरेली से महाराज कर्णवास गये और वहाँ से दिसम्बर सन् १८७६ में स्वामीजी छलेसर पधारे। अतरौली रेल्वे स्टेशन पर उतरे। वहाँ पहले से ही ठाकुर मुकुन्दसिंह आदि उनके स्वागत को पहुँच गये थे।

पाठशाला का वृत्तान्त

पंडित कुमारसेन पाठशाला से संवत् १९३१ में चले गये थे और उनके स्थान पर पंडित दिनेशराम अध्यापक नियत हो गये थे। वह संवत् १९३४ तक पाठशाला में अध्यापन का कार्य करते रहे। पाठशाला से अधिक लाभ न हुआ। विद्यार्थी वैदिक ग्रन्थों को पढ़कर भी लोभवश पाखण्ड में फँस गये। अतः स्वामीजी ने स्वयं ही पाठशाला तोड़ दी। यह पाठशाला ७ वर्ष तक चली और इसका समस्त व्ययभार ठाकुर मुकुन्दसिंह ने ही वहन किया।

दिल्ली दरबार जाने की तैयारी

१ जनवरी सन् १८७७ से दिल्ली में लार्ड लिटन का दरबार होने वाला था। उसमें भारतवर्ष के समस्त राजगण उपस्थित होने को थे। महाराज ने भी वहाँ वेदोपदेश का सुयोग समझा, अतः वहाँ जाने की इच्छा प्रकट की। अतः ठाकुर मुकुन्दसिंह ने दिल्ली में गाड़ी, घोड़े, डेरे आदि भेज दिये और दिल्ली से दक्षिण की ओर अवध नरेशों के कैम्प के पास एक वन-वाटिका में उनके निवास का प्रबन्ध कर दिया।

स्वामीजी छलेसर ७ दिन के लगभग रहे। छलेसर से अलीगढ़ आये और वहाँ से दिल्ली चले गये।

दिल्ली दरबार

जनवरी सन् १८७७ में दिल्ली में लार्ड लिटन गवर्नर जनरल व वाइसराय ने एक बहुत बड़ा दरबार किया था जिसमें भारतवर्ष के सब राजा, महाराजा, नव्वाब, गवर्नर, लेफ्टिनेण्ट गवर्नर आदि सम्मिलित हुए थे। वह दरबार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के बल और वैभव की प्रदर्शिनी था। स्वामीजी भी उस अवसर पर इस अभिप्राय से पधारे थे कि वह अवसर

भारत के राजाओं-महाराजाओं से मिलकर धर्मप्रचार के कार्य्य को अग्रसर करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होगा। यह भी कहा जाता है कि दिल्ली दरबार के अवसर पर महाराजा इन्दौर ने उन्हें निमंत्रित किया था। ठाकुर मुकुन्दसिंह व कर्णवास के रईस ठाकुर गोपालसिंह, भूपालसिंह, किशनसिंह आदि श्री महाराज की सेवा के लिये उनके साथ दिल्ली गये थे। महाराज के निवास के लिए अजमेरी दरवाज़े से पश्चिम दक्षिण की ओर कुतुब की सड़क पर शेरमल का अनारबाग़ स्थिर किया गया था। दिल्ली पहुँचकर महाराज उसी बाग़ में ठहरे। इसी बाग़ के आस पास अवध के ताल्लुक़ेदारों तथा महाराजा काश्मीर के भी कैम्प थे। स्वामीजी के साथ पं० भीमसेन थे और मुरादाबाद निवासी मुं० इन्द्रमणि भी आगये थे। दरबार में ब्राह्मसमाज नव्य विधान के प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्रसेन तथा राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई., अलीगढ़ के मुसलिम नेता और सुधारक सर सैयद अहमदखाँ, मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी प्रभृति गये थे।

विज्ञापन-वितरण

स्वामीजी के निवासस्थान के द्वार पर एक बोर्ड लगा दिया गया था जिस पर यह शब्द लिखे हुए थे "स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवासस्थान"। स्वामीजी ने दरबार के सब कैम्पों के दरवाज़ों पर नोटिस लगवा दिये थे और राजाओं महाराजाओं के पास भी पहुँचवा दिये थे कि अपने पण्डितों को एकत्र करके सत्यासत्य के निर्णय करने का यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर है। यह नोटिस दिल्ली नगर और दरबार शिविर में सर्वसाधारण में भी बँटवाये गये थे। महाराज के पधारने की सारे दरबार में धूम मच गई थी और नित्यप्रति १०-२० पण्डित स्वामीजी के पास आते और धर्म्म-चर्चा करते रहते थे।

यह मिट्टी श्रीकृष्णजी ने खाई थी

चौबे का क्रोध

क्रुद्ध चौबे लज्जित

एक दिन मथुरा का एक चौबा महाराज के पास आया और 'जयजय राधाकृष्ण' कह कर बैठ गया। फिर उसने थोड़ी सी मिट्टी उन्हें देनी चाही। उन्होंने पूछा यह कैसी मिट्टी है तो उसने कहा कि यह मिट्टी श्री कृष्णजी ने खाई थी। महाराज ने कहा कि खाई होगी, बच्चे मिट्टी खाया ही करते हैं, परन्तु बड़ी आयु के मनुष्यों को तो मिट्टी खाना योग्य नहीं। फिर स्वामीजी ने उससे कहा कि तुम्हारी स्त्री सुरूपा और चतुर है। इस पर वह क्रोध करने लगा, तो स्वामीजी ने उससे कहा कि तुम छोटी स्थिति के मनुष्य हो, तुमने इस बात पर कितना बुरा माना। यदि तुम श्रीकृष्णजी से कहते कि आप परस्त्रीगमन करते हैं और आपकी गोपियाँ कैसी सुन्दर हैं तो वह तुम्हारे साथ क्या बर्ताव करते। यह सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और उठकर चला गया।

ईरानी मौलवी निरुत्तर

एक दिन एक ईरानी मौलवी स्वामीजी के पास आया जो केवल फ़ारसी बोलता था और एक दिन एक अन्य मौलवी आया जिसके साथ चार अरब के मुसलमान थे जो केवल अरबी बोलते थे। इन सब से धर्मविषय में स्वामीजी की बातचीत हुई थी। स्वामीजी ने उनके प्रश्नों के ऐसे युक्तियुक्त उत्तर दिये कि वह निरुत्तर होगये।

अवध के कतिपय ताल्लुकेदार स्वामीजी के पास आया करते थे और शङ्का निवारण करके चले जाया करते थे।

महाराजा इन्दौर से साक्षात्

महाराजाओं में से केवल महाराजा तुकोजी राव होल्कर से स्वामीजी का साक्षात् हुआ, अन्य कोई महाराजा उनके पास नहीं आये। स्वामीजी यदि स्वयं महाराजाओं के पास जाते तो सबसे मिल सकते थे, परन्तु वह ऐसा करने वाले न थे। काश्मीर-नरेश महाराजा रणवीरसिंह स्वयं स्वामीजी से मिलने के इच्छुक थे और इसी अभिप्राय से उन्होंने अपने मन्त्री नीलाम्बर बाबू और दीवान अनन्तराम को स्वामीजी की सेवा में भेजा भी था। इन दोनों महानुभावों ने स्वामीजी से महाराजा की इच्छा निवेदन की तो स्वामीजी ने महाराजा से मिलना स्वीकार कर लिया परन्तु पण्डितों के सिखाने बहकाने से वह स्वामीजी से न मिले।

महाराजा को पंडितों ने नहीं मिलने दिया

पं० गणेश शास्त्री ने जो जम्बू में धर्म्मशास्त्र के जज थे पं० लेखराम से फरवरी सन् १८८७ में यह स्वीकार किया था कि महाराजा रणवीरसिंह की स्वामीजी से मिलने की इच्छा थी, परन्तु हम लोगों ने नहीं मिलने दिया था। जब स्वामीजी लाहौर गये तो उस समय भी महाराजा ने स्वामीजी को श्रीनगर बुलाने का विचार प्रकट किया था, परन्तु तब भी इन्हीं शास्त्री महोदय ने यह कह कर कि यदि आप दयानन्द को बुलाना चाहते हैं तो पहिले देव-मन्दिरों को गिरवा दीजिए, उन्होंने स्वामीजी को निमंत्रित करने से रोक दिया। परन्तु ईश्वर-गति देखिये कि सन् १८९२ में जब काश्मीर में आर्यसमाज का पौराणिकों से बहुत बड़ा शास्त्रार्थ हुआ था तो इन्हीं गणेश शास्त्री ने महाराजा प्रतापसिंह से जम्मूँ में स्पष्ट कह दिया कि महाराज! वेद में तो मूर्त्तिपूजा है नहीं।

दयानन्द से मिलो तो पहिले देव-मन्दिरों को गिरा दो

वेद में तो मूर्त्तिपूजा है नहीं

स्वामीजी की इच्छा पूरी न हो सकी

स्वामीजी की यह प्रबल इच्छा थी कि एक बार सब राजे महाराजे एकत्र होकर हमारा व्याख्यान सुन लें और महाराजा तुकोजी राव ने सब को एक सभा में एकत्र करने का वचन भी दिया था परन्तु उन्होंने प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया वा वह नहीं कर सके और स्वामीजी की यह इच्छा पूरी न हो सकी और इस प्रकार उनका दिल्ली दरबार में जाना एक अर्थ में असफल ही रहा, क्योंकि यही उनके दरबार में जाने का मुख्य अभिप्राय था।

सुधारकों की सभा

स्वामीजी ने यह भी प्रयत्न किया था कि उस समय के सब सुधारकगण आपस में मिलकर कार्य्य करें जिससे सुधार के कार्य्य में अधिक सफलता हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने एक दिन अपने निवास-स्थान पर एक कान्फ्रेंस की जिसमें मुंशी कन्हैयालाल, अलखधारी, बा० नवीनचन्द्र राय, बाबू केशवचन्द्रसेन, मुंशी इन्द्रमणि, सर सैयद अहमदखाँ, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि सम्मिलित हुए। स्वामीजी ने उसमें कहा कि यदि हम सब लोग एकमत हो

महारानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक के देहली दरबार के अवसर पर सुधारकों की विचार सभा।
इस में महर्षि दयानन्द सरस्वती, मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द्र राय,
बाबू केशवचन्द्रसेन, मुंशी इन्द्रमणि, सर सैयद अहमदखां, बाबू हरिश्चन्द्र
चिन्तामणि सुधारक गण सम्मिलित थे।

(पृष्ठ ३८६)

जावें और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि देश शीघ्र सुधर सकता है। स्वामीजी यह चाहते थे कि सब लोग वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करलें और वेदों के अनुकूल ही धर्म्मप्रचार का कार्य्य करें परन्तु इस पर सब सहमत न हुए।

वेदों में मांसभक्षण नहीं है

ठाकुर गोपालसिंह आदि से स्वामीजी ने कहा था कि हमने चारों वेद देख लिये हैं, परन्तु उनमें कहीं भी मद्यमांस-भक्षण का विधान नहीं, अतः दोनों वस्तुएँ त्याज्य हैं।

दो और विज्ञापन

दिल्ली से स्वामीजी ने दो विज्ञापन जिनमें से एक वेदभाष्य के विषय में था और दूसरे में आर्य्यसमाज के नियम थे 'इंडियन मिरर' कलकत्ता व 'हिन्दू बांधव' लाहौर तथा अन्य समाचारपत्रों को भेजे थे। पहले विज्ञापन में यह सूचना थी कि वेदभाष्य अमुक रीति से किया जायगा और वह मासिक अङ्कों के रूप में प्रकाशित किया जायगा जिनका वार्षिक मूल्य ४।।) होगा और वह काशी की लाजरस कम्पनी को व स्वामीजी को लिखने से प्राप्त हो सकेगा। उसमें यह भी उल्लेख था कि जब लोग इस वेदभाष्य को पढ़ेंगे तब लोगों को वेद का सत्यार्थ ज्ञात होगा और उन पर प्रकट हो जायगा कि वेदों में केवल एक अद्वितीय, निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, अजर, अमर, सच्चिदानन्द आदि गुण विशिष्ट परमेश्वर की ही पूजा-उपासना का विधान है, भौतिक पदार्थों, वा अनेक देवी-देवताओं की उपासना वा मूर्तिपूजा, अवतार आदि का लवलेश भी नहीं है। यह विज्ञापन दिल्ली नगर व दर्बार में आये हुए लोगों में भी बांटे गये थे। इन विज्ञापनों को लाजरस कम्पनी काशी के छापेखाने में छपवाने के लिये स्वामीजी ने बरेली से ही बनमाली बाबू को काशी भेज दिया था और उन्हींको वेदभाष्य के अङ्कों को शुद्ध कराके छपवाने का काम सौंप दिया था। स्वामीजी हिन्दी भले प्रकार नहीं जानते थे और हिन्दी का अंश पण्डितों का किया हुआ था, अतः बनमाली बाबू को उसे शुद्ध कराने के लिये काशी में किसी २ पण्डित के पास जाना पड़ता था इसी से विज्ञापनों के छपाने में विलम्ब हो गया था। स्वामीजी की यह आज्ञा थी कि वेदभाष्य के १००० अङ्क और १००० विज्ञापन साथ साथ दिल्ली भेजे जावें। विना वेदभाष्य के अङ्कों के विज्ञापनों का भेजना व्यर्थ होता। जब यह दोनों वस्तुएँ न आई तो स्वामीजी ने दिल्ली से उनके शीघ्र भेजने के लिये पत्र लिखा।

वेदों में एक ही ईश्वर की पूजा है

बाज़ीगर के करतब

एक दिन स्वामीजी के डेरे पर एक बाज़ीगर ने अपने करतब दिखलाये। स्वामीजी ने पं० भीमसेन से कहा कि इससे कोई वस्तु मँगाओ। पण्डितजी ने उससे आम मँगाने को कहा, परन्तु वह न मँगा सका। फिर उसने एक स्लेट पर स्वामीजी तथा अन्य कई लोगों के हस्ताक्षर कराकर उस स्लेट को तोड़ कर फिर जोड़ दिया, ऐसे ही एक अँगूठी को तोड़ कर जोड़ दिया।

मरा हुआ जल-मानस

मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी को स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश, वेदविरुद्ध मत-खण्डन, पञ्चमहायज्ञविधि, नित्यकर्मव्यवहार, उपकार सभा और आर्याभिविनय की प्रतियाँ दीं थीं। मुन्शीजी की उपस्थिति में ही एक

मनुष्य एक मरा हुआ जलमानस दिखाने लाया था जिसका नीचे का आधा शरीर मछली और ऊपर का आधा शरीर, मुख और हाथ मनुष्य के आकार के थे।

पंजाब पधारने का निमन्त्रण

सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया व पं० मनफूल व मुन्शी हरसुखराय कोहेनूर प्रेस के स्वामी तथा मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी स्वामीजी के पास बहुत आया करते थे। इन सज्जनों ने स्वामीजी से पंजाब में पधारने की प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

महाराजा डुमराऊँ से साक्षात्

महाराजा डुमराऊँ भी एक से अधिक बार स्वामीजी के पास आये और शङ्का-निवृत्ति करके चले गये।

मेरठ

१६ जनवरी सन् १८७७ को स्वामीजी दिल्ली से मेरठ पधारे और सूर्यकुण्ड के पास डिप्टी महताबसिंह वाली कोठी में ठहरे। इसे बब्बू वाली कोठी भी कहते हैं। यह कोठी मेरठ के एक कलक्टर ग्रौडन साहब की स्मृति में योरोपियन लोगों के ठहरने के लिये बनाई गई थी, अतः उसमें कभी २ गोरे आकर टिका करते थे। स्वामीजी उसमें १० दिन के लगभग ठहरे और फिर लेखराज के बाग में चले गये।

मुन्शी इन्द्रमणि का आगमन

स्वामीजी के मेरठ पधारने से पहले मुन्शी इन्द्रमणि और उनके शिष्य जगन्नाथदास मुरादाबाद जाते हुए मेरठ आये थे और इस जीवन-चरित्र के सम्पादक के गृह पर ठहरे थे, कारण यह था कि जगन्नाथदास सम्पादक के पिताजी के दूर के सम्बन्धी थे। प्रशंसित मुन्शीजी से ही यह ज्ञात हुआ था कि स्वामीजी मेरठ पधारने वाले हैं। स्वामीजी के साथ उस समय एक रसोइया और एक काला कुत्ता था। स्वामीजी उन दिनों हुक्का पीते थे। सम्पादक के पिताजी ने उन्हें स्वयं हुक्का पीते देखा था अतः जो लोग यह कहते हैं कि यह कहना कि स्वामीजी हुक्का पीते थे अपवादमात्र है, ठीक नहीं कहते। परन्तु यह सत्य है कि स्वामीजी ने एक पण्डित भागीरथ के आक्षेप पर कि आप संन्यासी होकर हुक्का पीते हैं अच्छा नहीं करते, उन्होंने हुक्का तोड़ कर फेंक दिया था। स्वामीजी में यही बात तो लाख रुपये की थी कि वह दोष को दोष मानने पर सदा उद्यत रहते थे और कभी उसके विषय में हठ वा दुराग्रह नहीं करते थे।

स्वामीजी हुक्का पीते थे

आक्षेप करने पर हुक्का तोड़ दिया

स्वामीजी का इस बार कोई व्याख्यान नहीं हुआ परन्तु डेरे पर जो कोई आता था उससे धर्मालाप करते थे। बहुत लोग उनकी सेवा में जाते थे। एक दिन सम्पादक के मुहल्ले के निद्धी नामक पण्डित जो अधिक विद्वान् तो न थे परन्तु अपने बराबर दूसरे को विद्वान् नहीं समझते थे कई मनुष्यों को साथ लेकर और पुस्तकों की एक गठरी बाँध कर यह डींग मार कर कि आज मैं उस नास्तिक को शास्त्रार्थ में परास्त करके आऊँगा, स्वामीजी के पास गये। स्वामीजी उस समय बैठे हुए थे। कई लोग उनके पास उपस्थित थे और उपदेश

पण्डित की डींग

श्रवण में मग्न थे। निद्धी पण्डित की टोली भी पहुँची जिसके आगे पण्डितजी और पीछे उनके अनुयायी थे। सम्पादक के पिताजी, पण्डित गङ्गाप्रसाद एम० ए० आर्य्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् और अंग्रेजी की प्रसिद्ध पुस्तक Fountain head of Religions आदि के रचयिता के पितामह स्वर्गीय लाला फ़क़ीरचन्द तथा एक अन्य सज्जन स्वर्गीय लाला शिवलालजी भी उपस्थित थे। स्वामीजी में यह अद्भुत शक्ति थी कि वह मनुष्य की भाव-भङ्गी, चाल-ढाल से जान जाते थे कि वह किस योग्यता का है। स्वामीजी निद्धी पण्डित को देखते ही ताड़ गये कि वह कितने पानी में हैं और उनके आने का क्या अभिप्राय है। निद्धी पण्डित के कमरे में प्रविष्ट होते ही स्वामीजी ने विचित्र ढंग से मुस्कराते हुए पूछा कि कहिये पण्डितजी कैसे आना हुआ? इसके उत्तर में जो कुछ पण्डितजी ने कहा वह किसी की समझ में न आया, क्योंकि पण्डितजी की घिघ्घी सी बँध गई और एक अक्षर भी उनके मुख से स्पष्ट न निकला। यह दृश्य देख कर सब लोग हँस पड़े और पण्डितजी लज्जित होकर फिट्टे मुँह वापस चले गये।

विचित्र मुस्कान

पंडित की घिघ्घी बँध गई

सहारनपुर

४ फ़रवरी सन् १८७७ को स्वामीजी मेरठ से सहारनपुर पधारे और पनचक्की के पास लाला कन्हैयालाल के शिवालय के एक मकान में ठहरे।

मुन्शी चण्डीप्रसाद अम्बहटा निवासी ने स्वामीजी से कुछ प्रश्न किये उनके जो उत्तर स्वामीजी ने दिये उनका सारांश नीचे लिखा जाता है:—

वेदशास्त्र के अनुसार केवल परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिये। विद्या प्राप्त करके मनकी शुद्धि करनी चाहिये और सत्य व्यवहारपूर्वक जीविका करनी चाहिये। भूत, प्रेत, जिन्न, परी आदि का कोई अस्तित्व नहीं है, यह लोगों का केवल भ्रम है। मरने के पश्चात् जीव वायु में रहता है। पुनर्जन्म अवश्य होता है और स्वर्ग, नरक सब जगह है। परमेश्वर का सृष्टि उत्पन्न करना स्वभाव है। जैसे आँख का काम देखना और कान का सुनना है ऐसे ही परमेश्वर का काम सृष्टि उत्पन्न करना है। पुरुष का विवाह २४ वर्ष की आयु में और स्त्री का १६ वर्ष की आयु में होना चाहिये और स्त्री को अपनी इच्छा के अनुसार विवाह करना चाहिये क्योंकि स्त्री-पुरुष को सारी आयु साथ २ बितानी है। जब स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे के रंग-रूप, चाल-चलन आदि को देख कर विवाह करेंगे तो उनमें कभी अप्रीति न होगी। विधवा का पुनर्विवाह होना चाहिये और पुरुष को एक स्त्री के जीवित होते हुए दूसरा विवाह न करना चाहिये। विधुर पुरुष को अधिकार है कि दूसरा विवाह करे या न करे, ऐसे ही विधवा को भी पुनर्विवाह करने का अधिकार है। मनुष्य के गुरु माता-पिता आदि हैं, आजीवन उनकी सेवा-सुश्रूषा करनी योग्य है। यदि कोई ब्राह्मण, वैश्य आदि धर्म से पतित होकर ईसाई मुसलमान होजावे और फिर पश्चात्ताप करके वैदिक धर्म में वापस आना चाहे तो उसे अवश्य वापस ले लेना चाहिये। परमेश्वर सर्वव्यापक है, जो ज्ञानी अपने हृदय के मल को दूर कर सकते हैं उन्हें वह दिखाई देता है, परन्तु अज्ञानियों की दृष्टि से वह अवश्य दूर रहता है। ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे, प्रत्युत चारों वेद उनके मुख में थे। यदि उनके चार मुख होते तो वह सो भी न सकते। चारों वेद उनको कण्ठ थे, मूर्खों ने उनके

चार मुख गढ़ लिये। वर्ण गुण कर्म के अनुसार होना चाहिये। यदि कोई चमार, भंगी, क़साई विद्या प्राप्त कर ले तो वह उच्च वर्ण का हो सकता है, परन्तु इस कारण से कि उसका बहुत दिनों तक अशुद्धाहार व्यवहार करने वालों में भरण-पोषण हुआ है उसके शरीर की शुद्धि नहीं होती, ब्राह्मण को उसका विवाह अपनी पुत्री से नहीं करना चाहिये। द्विरागमन (मुकलावा वा गौना) की रीति सर्वथा व्यर्थ है। दीपावली, होली आदि के उत्सव युक्ति-संगत ढंग से मनाने चाहियें। स्त्रियों को भी विद्या पढ़नी चाहिये, क्योंकि बिना विद्या के मनुष्य पशु समान रहता है। जन्मपत्र नहीं वह रोगपत्र है, ज्योतिषी खोटी दशा बता कर कुछ न कुछ रुपया ऐंठ लेता है, बुद्धिमान् लोग ऐसी बातों को नहीं मानते। स्त्रियों को पर्दे में रखना अनुचित है, यह नहीं है कि बिना पर्दे के स्त्रियाँ सदाचारिणी नहीं रह सकतीं, पर्दे में भी पाप होते हैं। सदाचारी बिना विद्याप्राप्ति के नहीं हो सकता। पर्दा मुसलमान राजाओं के समय में प्रचरित हुआ। वह जिस किसी की बहू बेटी को रूपवती देखते थे उसे बलात्कार पूर्वक छीन कर लौंडी बना लेते थे। इस अत्याचार के कारण हिन्दुओं ने अपनी बहू बेटियों को पर्दे में रखना आरम्भ कर दिया। अंग्रेज़ों की स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं और हिन्दुओं की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती, विदुषी, साहस और उच्चाशय वाली होती हैं।

तिल धरने को जगह न थी

सहारनपुर में पहला व्याख्यान स्वामीजी का चित्रगुप्त के मन्दिर में हुआ। व्याख्यान का विषय था 'आर्य्य कौन है और कहां है', दूसरा और तीसरा व्याख्यान भी उसी स्थान पर हुआ। दूसरे व्याख्यान का विषय 'सत्य' और तीसरे का 'सृष्ट्युत्पत्ति' थे। श्रोताओं की वह भीड़ होती थी कि मन्दिर में तिल धरने को जगह न रहती थी। छत और कमरे के दरवाज़ों तक श्रोताओं से भर जाते थे। तीन २ चार २ घण्टों तक व्याख्यान होते थे। नगर के गण्य-मान्य व्यक्ति व्याख्यान सुनने जाते थे। मूर्त्ति की पूजा और आरती तक न हो पाती थी। मन्दिर का पुजारी बहुतेरा कहता कि पूजा का समय हो गया है व्याख्यान बन्द होना चाहिए, परन्तु उस बेचारे की कोई न सुनता। हर एक श्रोता के मुख से वाह वाह निकलती थी, लोगों को स्वामीजी की विद्या, बुद्धि और वाग्मिता पर आश्चर्य्य होता था।

व्याख्यान के कारण आरती बन्द

दुखी सुखी का दृष्टान्त

एक व्याख्यान में 'सुखी कौन है और दुःखी कौन है', इसकी व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने यह दृष्टान्त दिया था कि एक धनाढ्य महाजन था। उसका एक मुक़द्दमा अदालत में चल रहा था। मुक़द्दमे की पेशी की तारीख से कई दिन पहले से उसे इस चिन्ता ने आ घेरा कि देखिए उस दिन क्या हो। इस चिन्ता के कारण उसे नींद तक न आती थी उसके नौकर चाकर अपना २ काम करके चले जाते और निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोते, परन्तु वह सारी रात पलँग पर करवटें बदलता रहता। पेशी के दिन वह पालकी में बैठकर अदालत में गया, कहार तो पालकी रख कर चिलम पीने लगे, उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी, परन्तु महाजन चिन्तित और उदास ही रहा। इससे सिद्ध होता है कि धन में सुख नहीं है। एक व्याख्यान में स्वामीजी ने यह कहा कि कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसे कोई

धर्म का बंधन अच्छा है

बन्धन न हो। यह विचार मूर्खों का है कि हम किसी बन्धन में नहीं हैं। धर्म्म का बन्धन अन्य बन्धनों की अपेक्षा अच्छा है।

इसके पश्चात् यह देख कर कि मन्दिर में व्याख्यान होने से पूजा नहीं होने पाती यह निश्चय हुआ कि महाराज के व्याख्यान उनके निवासस्थान पर ही हुआ करें। फिर वहां ही कई व्याख्यान हुए। वहां भी पुजारियों और ब्राह्मणों ने मन्दिर के स्वामी से शिकायत की। उसने स्वामीजी से अत्यन्त सभ्यता और नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि आप मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं और यह मन्दिर है यदि आप किसी अन्य स्थान पर चले जावें तो बड़ा अनुग्रह हो। इस पर स्वामीजी पास के ही रामबाग में चले गये और वहां उनके व्याख्यान होते रहे। स्वामीजी के पास अनेक लोग शङ्कानिवृत्ति के निमित्त आया करते थे, वह उनकी शङ्काओं का समाधान ऐसी उत्तम रीति से करते थे कि उनको पूरा सन्तोष हो जाता था। मन्दिर में अवस्थिति के दिनों में धूर्त्त लोग उन्हें दिक़ करने के अभिप्राय से बहुत ज़ोर से घण्टे-घड़ियाल बजाते और कोलाहल मचाते, परन्तु वह कुछ परवाह न करते। एक दिन सहारनपुर के प्रसिद्ध भागवती पण्डित बलदेव व्यास शास्त्रार्थ करने आये, परन्तु थोड़ी ही देर में निरुत्तर हो गये। तब कई ब्राह्मण साधु दीवानदास के पास गये जिनकी विद्या की बहुत प्रसिद्धि थी और उनसे जाकर कहा कि एक किस्तान ऐसा आया है जो किसी को बोलने नहीं देता, आप उससे शास्त्रार्थ कीजिए। पहले तो वह शास्त्रार्थ करने पर सहमत न हुए, परन्तु जब ब्राह्मणों ने बहुत आग्रह किया तो वह स्वामीजी के पास गये। उनकी भी वही गति हुई जो बलदेव व्यास की हुई थी।

पुजारी की मानरक्षा

दो पण्डित परास्त

११ मार्च को स्वामीजी नौकरों और पण्डित भीमसेन को सहारनपुर छोड़कर केवल बङ्गाली बाबू को साथ लेकर शाहजहांपुर चले गये।

चाँदापुर का मेला

शाहजहाँपुर जाने का कारण यह था कि चाँदापुर ज़िला शाहजहाँपुर के जमींदार मुन्शी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद कायस्थ थे। यह दोनों सहोदर थे। इनके पिता कबीरपन्थी थे और यह दोनों भी उसी मत के अनुयायी थे, परन्तु ज्येष्ठ भ्राता मुन्शी मुक्ताप्रसाद के विचार स्वामीजी के सिद्धान्तों की ओर झुक गये थे। अतः दोनों भाइयों में धर्म्म के विषय में मतभेद हो चला था और आपस में वाद-विवाद रहने लगा था। दोनों में यह परामर्श हुआ कि एक मेला किया जावे जिसमें सब धर्म्मों के प्रसिद्ध २ नेताओं को एकत्र किया जाय और वह अपने-अपने पक्ष को सिद्ध करें जिससे यह ज्ञात हो सके कि सत्य ईश्वरीय धर्म्म कौनसा है। मेला करना निश्चित होगया। मुसलमानी मत के प्रतिनिधि की स्थिति से देवबन्द ज़िला सहारनपुर के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मदक़ासिम को और ईसाई मत के प्रतिनिधि की स्थिति से बरेली के प्रसिद्ध पादरी जे० टी० स्काट को और आर्य्य धर्म्म के प्रतिनिधि की स्थिति से स्वामीजी को निमन्त्रित किया गया। पहले तो स्वामीजी मेले में जाने पर सहमत न हुए और उन्होंने लिख भेजा कि यदि शास्त्रार्थ कम से कम दो सप्ताह तक हो तो हम आ सकते हैं। इसके उत्तर में मेला-संस्थापकों ने लिखा कि हम दो सप्ताह का तो नहीं एक सप्ताह का

प्रबन्ध कर सकते हैं आप अवश्य पधारें और ५०) रु० मार्ग व्यय स्वामीजी के पास भेज दिया। लोगों के आग्रह करने पर स्वामीजी ने मेले में जाना स्वीकार कर लिया, परन्तु मार्ग-व्यय लौटा दिया और उत्तर लिख दिया कि हम १५ मार्च को चाँदापुर पहुँच जायंगे और आप मुरादाबाद से मुन्शी इन्द्रमणि को अवश्य बुलालें*।

१५ मार्च सन् १८७७ को चाँदापुर चले गये।

शास्त्रार्थ चाँदापुर

इस मेले का नाम 'मेला ब्रह्म-विचार' रक्खा गया था और १९ मार्च से २३ मार्च तक उसका समय नियत किया गया था। मेला-भूमि में डेरे तम्बू आदि लगा दिये गये थे। आगन्तुकों के सुभीते के लिये खाद्य पदार्थों की दुकानों आदि का भी प्रबन्ध था। मेला-स्थापकों ने मेले के विज्ञापन नगर-नगर में भेज दिये थे और आर्य्य धर्म्म, ईसाई और मुसलमानी मत के मुख्य उपदेशकों को भी निमन्त्रित किया था और उनके ठहरने, आहार पानादि का भी हरएक प्रकार से सुप्रबन्ध कर दिया था।

कबीर पन्थ के सिद्धान्त

१८ मार्च की रात्रि में मुन्शी प्यारेलाल मेला-संस्थापक तथा बाबू लेखराज स्कूल-मास्टर सहारनपुर, स्वामीजी के डेरे पर आये और बाबू लेखराज ने कबीर पन्थ के सिद्धान्तों का वर्णन किया कि काया में जो वीर अर्थात् आत्मा है वही कबीर है, आत्मा ही परमात्मा है, कबीर पर-मेश्वर का ही नाम है। जैसे अन्य भाषाओं में परमेश्वर के नाम हैं वैसे ही कबीर हिन्दी भाषा में उसका नाम है। बाबू लेखराज ने यह दोहा पढ़ा:—

कक्का केवल ब्रह्म है बब्बा बिशन शरीर।
रा रा सब में रम रहा ता का नाम कबीर॥

---

* दयानन्दप्रकाश में इस मेले के विषय में ऐसा लिखा है कि पादरी लोग चाँदापुर में ईसाई धर्म्म का प्रचार करने जाया करते थे। उनका कबीरपन्थियों से वाद-विवाद हुआ करता था। एक बार मुन्शी प्यारेलाल ने पादरियों के परामर्श से धार्मिक विषयों पर विचार करने के लिये चाँदा-पुर में 'ब्राह्म-मेला' लगाया। उसमें पादरियों, मौलवियों और कबीरपन्थियों में ईश्वर के विषय में वाद-विवाद होता रहा। एक वर्ष मेले की समाप्ति पर यह प्रसिद्ध होगया कि विचार में कबीरपंथियों की हार और मुसलमानों की जीत रही। इसके पश्चात् मुन्शी प्यारेलाल के भाई मुन्शी मुक्ताप्रसाद जब कभी चाँदापुर के आस पास के गावों में कार्य्यवश जाते तो मुसलमान उन्हें छेड़ते और कहते कि अब तो इस्लाम की सचाई सिद्ध हो गई, अब आप इस्लाम क्यों स्वीकार नहीं करते। इस पर दोनों भाइयों ने यह परामर्श किया कि मेले में हिन्दू, ईसाई और मुसलमानी धर्म्म के प्रतिनिधियों को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया जावे। तदनुसार उन्होंने हिन्दू धर्म्म के प्रतिनिधि की स्थिति से मुन्शी इन्द्रमणि को बुलाया। मुन्शीजी ने कहा कि मैं तो आजाऊँगा, परन्तु आप स्वामी दयानन्द सरस्वती को और बुलालें। इसी पर उन्होंने स्वामीजी को मेले में पधारने का निमन्त्रण दिया था। मुन्शीजी स्वामीजी के साथ सहारनपुर से चाँदापुर गये थे।

यह वर्णन ठीक प्रतीत नहीं होता। मुन्शी इन्द्रमणि स्वामीजी के साथ चाँदापुर नहीं गये थे, बल्कि स्वामीजी के पहुंचने से पीछे चाँदापुर पहुंचे थे। —संग्रहकर्त्ता.

ब्रह्म शब्दरूप है। कबीर साहब की पोथी विवेकसार ईश्वरीय पुस्तक है। उपासना की विधि सुरत को शब्द में लगाना है, परन्तु उसमें अन्तःकरण की भावना होनी चाहिए।

उक्त सिद्धान्तों का खण्डन

इस पर स्वामीजी ने बाबू लेखराज के उद्धृत दोहे के ऊपर कहा कि इस प्रकार किसी भी शब्द के एक एक अक्षर के अर्थ कल्पित किये जा सकते हैं। बाबू लेखराज ने कहा कि कबीर शब्द से हम ईश्वर का ग्रहण इस लिये करते हैं कि उसके अर्थ 'बड़े' के हैं॥। ततः स्वामीजी ने मुन्शी इन्द्रमणि से पूछा कि और कोई शब्द ऐसा है जिसके अर्थ इससे भी अधिक बड़े के हों? तो उन्होंने कहा कि अकबर शब्द है, जिसके अर्थ सबसे बड़े के हैं।

फिर स्वामीजी ने उनके कथन का खण्डन किया कि यह आवश्यक है कि ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य को मानव सृष्टि के आरम्भ में ही दिया जाय अन्यथा उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता और वह पशुवत् रहता। जैसे कि यदि किसी बालक को जन्मकाल से ही मनुष्यों से सर्वथा अलग किसी जंगल में रक्खा जाय तो वह पशु के समान रहेगा। अतः वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है जो सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को दिया गया। वेद से ही सब विद्याओं और ज्ञान का प्रकाश और विस्तार हुआ। परमेश्वर ने जब अनेक पदार्थ मनुष्य के सुख के लिये रचे तो सब सुखों के प्रकाश करने वाली वेद-विद्या को जिसमें सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं है, ईश्वर क्यों प्रकट न करता? अतः वेदों को ही ईश्वर रचित मानने में कल्याण है। फिर स्वामीजी ने कहा कि कबीरपन्थियों की पुस्तक बीजकसार आदि में यदि जीव को परमेश्वर माना गया है सो वह नवीन वेदान्तियों का सिद्धान्त है। फिर नवीन वेदान्तियों के चार महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म' हैं यह सब। ब्राह्मण, उपनिषद् वाक्य हैं, परन्तु नवीन वेदान्तियों ने इन्हें प्रकरण से अलग करके इनका अनर्थ कर दिया है। प्रकरण में इन का अर्थ परमेश्वर के सर्वव्यापक आदि गुणों का तथा उसके स्वरूप का वर्णन है इत्यादि बातें कह कर स्वामीजी ने नवीन वेदान्त के सिद्धान्तों का खण्डन किया।

स्वामीजी का उपदेश

एक महाशय ने एक अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ी और कहा कि यदि ध्यान करते समय चन्दन का एक चिन्ह बना लिया जावे और उस पर दृष्टि जमाई जावे तो ध्यान बहुत अच्छी तरह लगता है। स्वामीजी ने इस का भी खण्डन किया और कहा कि परमेश्वर मेरे आत्मा में और मेरे शब्द में भी व्यापक है, अतः सब को अपने आत्मा में ही सच्चे मन से ईश्वर का ध्यान करना चाहिये। चन्दन का चिन्ह बनाया जावेगा तो उससे भी ध्यान में विघ्न पड़ेगा। इसी प्रकार माला फेरने में भी गिनती में ध्यान रहेगा। फिर कहा कि परमेश्वर के अनेक नाम—परमेश्वर, ईश्वर, महादेव, शिव, देवी, शेष, कश्यप आदि हैं। परमेश्वर का नाम कबीर होने में कोई प्रमाण नहीं है। संसार में अन्धकार फैल रहा है, अनेक प्रकार से जनता को धोखा दिया जारहा है, लोग महन्त बन २ कर मनुष्यों को ठगते और उनका धन हरण करते हैं, कोई

॥ बाबू लेखराज यह भूल गये कि 'कबीर' को वह हिन्दी का शब्द बताते थे, परन्तु 'कबीर' जिसके अर्थ बड़े के हैं, अरबी का शब्द है। —संग्रहकर्त्ता.

कहता है कान बन्द करके अनहद* शब्द सुनो उसमें सब प्रकार के बाजों के शब्द सुनाई देते हैं, कोई कहता है कि 'सोऽहम्' आदि स्वर से जपो, फिर जब जीव मरेगा उसी शब्द में समा जायगा और उसका आवागमन न होगा, कोई कहता है श्वास साधो और एक नथने से श्वास लेकर दूसरे से निकालो, कोई कहता है श्वास को देखो इसमें ही पाँचों तत्व प्रकट हो जायँगे। कोई कहता है यह महन्तजी अन्तर्यामी हैं सबके मनकी बात जान लेते हैं, जो माँगोगे वही होजावेगा। इसी प्रकार कोई अपने को ईश्वर का अवतार कहते हैं और सैकड़ों मनुष्य उनके चेले होजाते हैं. सब को उचित है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें, आपस में प्रीतिपूर्वक रहें, परोपकार करें, धनकी वृद्धि करें, परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना करें और बुरे कर्म्मों से बचें। तब संसार में आनन्द ही आनन्द होजावे।

स्वामीजी का सत्-परामर्श

१९ मार्च को प्रातःकाल कुछ लोग स्वामीजी के डेरे पर गये और यह प्रस्ताव किया कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर ईसाइयों का खण्डन करें, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि हम और मौलवी और पादरी लोग सब मिलकर सत्य का निर्णय करें, किसीका पक्षपात न करें और न किसीका विरोध करें।

विषय-निर्धारिणी सभा

तत्पश्चात् एक सभा शास्त्रार्थ के नियम निर्धारण करने के लिये बनाई गई। सभा में यह निश्चय हुआ कि हरएक धर्म्म के प्रतिनिधि पहले आधा २ घण्टा विचारणीय प्रश्नों पर बोलें और जिन्हें कोई आक्षेप करना और उत्तर देना हो वह दस-दस मिनट बोलें। बीचमें कोई दूसरा न बोले। निम्न लिखित पाँच विषयों पर विचार होना निश्चय हुआ:—

शास्त्रार्थ के लिये ५ प्रश्न—

१—परमेश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस उद्देश्य से रचा?

२—ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है?

५—मुक्ति क्या पदार्थ है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?

मेले की अवधि पर वाद-विवाद

विज्ञापन तो यह दिया गया था कि मेला दो दिन १९-२० मार्च सन् १८७७ को होगा, परन्तु स्वामीजी ने जब सहारनपुर के मेले में जाना अस्वीकार कर दिया था और कहा था कि हम तब जा सकते हैं जब मेला दो सप्ताह तक रहे, तो उनसे कहा गयाथा कि पाँच दिन अवश्य रहेगा। परन्तु जब उक्त सभा में यह विषय प्रस्तुत हुआ, स्वामीजी ने कहा कि मेला पाँच दिन रहना चाहिए, तो पादरी लोगों ने आपत्ति की और कहा कि विज्ञापन में मेले की अवधि दो ही दिन रक्खी गई थी और हम दो ही दिन रहने का प्रबन्ध करके

* यह शब्द वास्तव में 'अनाहत' है अर्थात् जो विना किसी टकोर वा आघात के उत्पन्न हो और कान बन्द करने से चिड़ियों की सी चहकार सुनाई देती है, उसका नाम है। 'अनहद' इसीका अपभ्रंश है। —संग्रहकर्त्ता,
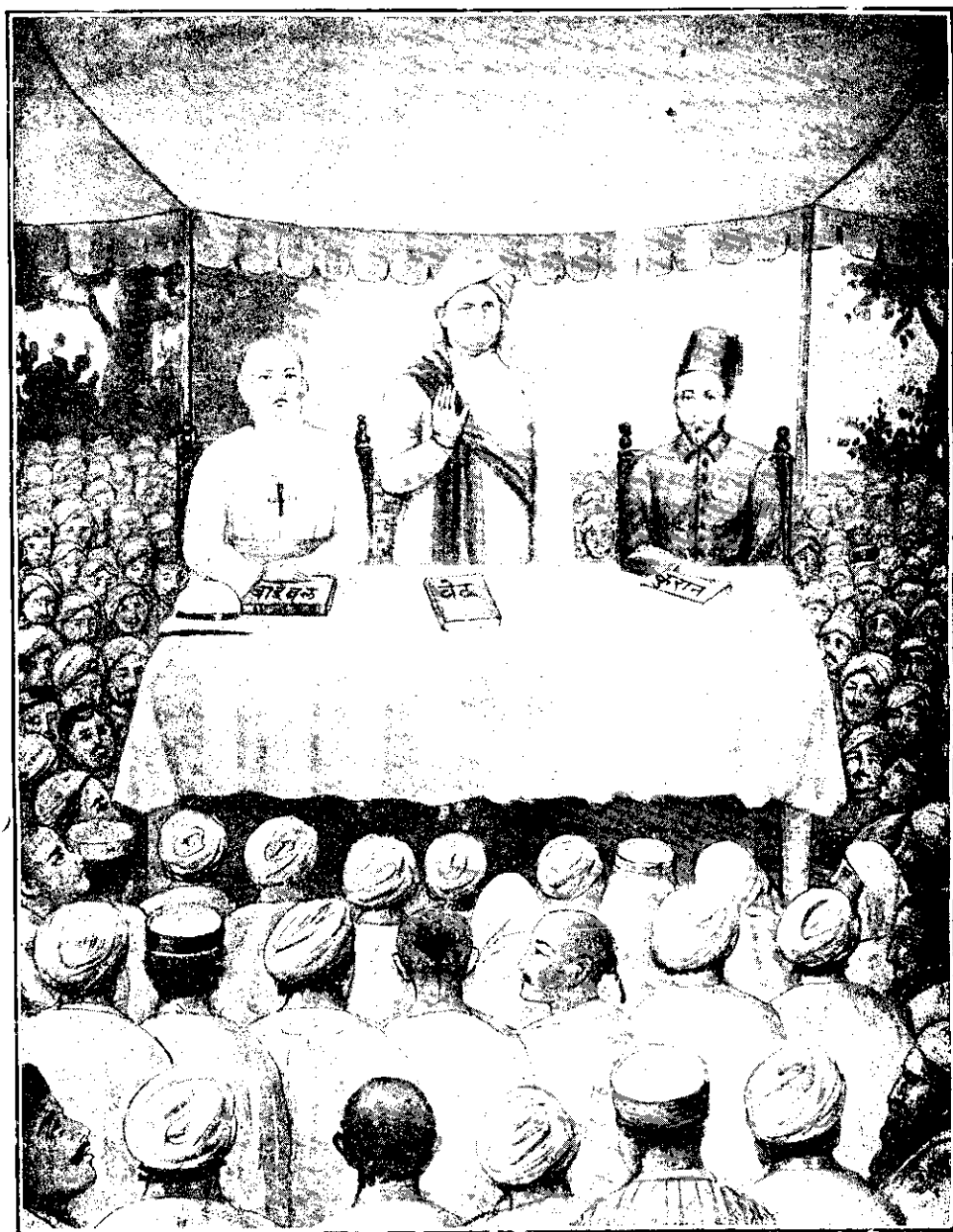
ईसाई और मुसलमानों के साथ "सत्यधर्म विचार" (मेला चान्दापुर)।

आये हैं इससे अधिक हम नहीं ठहर सकते। इस पर स्वामीजी ने पुनः आपत्ति की कि हमसे तो कहा गया था कि मेले की अवधि सात दिन होगी अब दो दिन की कैसे रक्खी जाती है? मुन्शी इन्द्रमणि ने कहा कि स्वामीजी आप चिन्ता न करें, एकही दिन में ज्ञात होजायगा कि सत्य धर्म्म कौनसा है, तो स्वामीजी चुप होगये।

सभा की कार्यवाही ९ बजे समाप्त हुई, तत्पश्चात् सब लोग भोजन करने को चले गये। एक बजे फिर सब लोग इकट्ठे हुए।

मेला संस्थापक का आरम्भिक कथन

सब से पूर्व मुन्शी प्यारेलाल ने खड़े होकर परमेश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने हमें ऐसे सम्राट् के राज्य में रक्खा है जिसमें सब लोग स्वतन्त्रतापूर्वक धर्म्म-विचार कर सकते हैं और जिला मैजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया कि उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मेले की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् विभिन्न धर्म्मों के प्रतिनिधियों को मेले में पधारने के लिये धन्यवाद दिया और आशा प्रकट की कि विद्वान् लोग जो इकट्ठे हुए हैं वह अपने २ धर्म्म के गुण अत्यन्त नर्मी और मधुरता के साथ वर्णन करेंगे।

शास्त्रार्थकर्त्ता कौन २ हों

तत्पश्चात् यह प्रश्न उठा कि कौन कौन किस २ धर्म्म की ओर से बोलेगा। इसपर बहुत वाद-विवाद हुआ। अन्त में ५ व्यक्ति ईसाइयों और ५ मुसलमानों की ओर से नियत हुए। हिन्दुओं की ओर से भी ५ व्यक्ति नियत करने के लिये कहा गया, परन्तु स्वामीजी और मुन्शी इन्द्रमणि ने कहा कि हम दो ही पर्य्याप्त हैं। इस पर मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मीदत्त शास्त्री का नाम जो शाहजहाँपुर हाई स्कूल के हेड पण्डित थे लिखवाना चाहा। इसपर स्वामीजी ने उनसे कहा कि आपको अपने धर्म्म का प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है, आर्य्यों के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है और पण्डित लक्ष्मीदत्त से भी कहा कि यह लोग हममें आपस में विरोध कराकर तमाशा देखना चाहते हैं। इतना होने पर भी एक मौलवी ने पण्डित लक्ष्मीदत्त का हाथ पकड़ कर कहा कि इनके कहने से क्या होता है, तुम अपना नाम लिखादो। इस पर फिर स्वामीजी ने कहा कि जैसे आप सुन्नत जमाअत हैं आप को शीओं की ओर से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं है, जैसे प्रोटेस्टेंन्टों को रोमन-कैथलिकों की ओर से वक्ता निर्वाचित करने का अधिकार नहीं है ऐसे ही आपको यह कहने का अधिकार नहीं है कि आर्य्यों की ओर से कौन नियत किया जाय और पण्डित लक्ष्मीदत्त को भी समझाया कि यह लोग घरमें फूट डलवाना चाहते हैं आप इनकी चाल में न आवें।

पादरी मौलवी में झपट

इसके बाद मौलवी मुहम्मदक़ासिम और पादरी नेविल में यह विवाद छिड़ा कि पहले किस प्रश्न पर विचार हो; अन्त को यह निश्चय हुआ कि प्रश्नों पर यथाक्रम ही विचार किया जावे और पहले मौलवी मुहम्मद-क़ासिम अपने सिद्धान्तों का वर्णन करें और उनपर जो आक्षेप करना चाहें करें और मौलवी उत्तर देवें। तदनुसार मौलवी ने कहा कि मुहम्मद ख़ुदा के आख़िरी पैग़म्बर हैं और क़ुरान ने पहली सारी आसमानी किताबों को

मनसूख कर दिया। इस पर पादरी नेविल ने कहा कि मुहम्मद साहब के पैग़म्बर और क़ुरान के ईश्वर-वाणी होने में सन्देह है। ईसामसीह पर ही विश्वास लाने से मोक्ष हो सकता है। क़ुरान में जो बात हैं वह सब बाइबल की हैं। मौलवी ने कहा बाइबल में बहुत अदल बदल हो गई है, इसलिये वह मानने योग्य नहीं है और एक आयत को दिखा कर कहा कि स्वयं पादरियों ने ही लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता। पादरियों ने कहा कि इसमें क्या दोष है, यह तो सत्य को ग्रहण करना है। मौलवी ने कहा कि ईसा ख़ुदा नहीं हो सकता, यदि था तो वह अपने आपको सलीब से क्यों न बचा सका, इत्यादि।

इसी प्रकार की बातों में सन्ध्या हो गई।

पहले प्रश्न पर विचार

अगले दिन २० मार्च सन् १८७७ को प्रातःकाल ७॥ बजे शास्त्रार्थ-सभा संगठित हुई और पहले प्रश्न पर विचार आरम्भ हुआ।

पादरी स्काट—हम ठीक ठीक नहीं जानते ईश्वर ने इस संसार को किस वस्तु से बनाया, कब बनाया और क्यों बनाया। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि ईश्वर हमारे सुख के लिये अपने हुक्म से सृष्टि को अभाव से भाव में लाया है।

मौलवी मुहम्मदक़ासिम—ख़ुदा ने दुनिया को अपने वजूदे ख़ास से प्रकट किया। सब वस्तुएँ मनुष्य के लिये बनाई हैं और मनुष्य को अपनी (इबादत) आराधना के लिये बनाया है।

स्वामीजी ने पहले तो सबको उपदेश दिया जिसका भाव था कि यह शास्त्रार्थ सत्य असत्य के निर्णय के लिये है न कि हार जीत के लिये, अतः सब लोगों को मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। कटु शब्दों का व्यवहार करना वा एक दूसरे की बात को मिथ्या बताना आदि उचित नहीं है, विचार प्रेमपूर्वक होना चाहिए और ऐसा ही अभिप्राय इस मेले को आरम्भ करने वालों का है। अतः सब प्रकार पक्षपात को छोड़कर सत्य भाषण करना उचित है।

इसके पश्चात् प्रथम प्रश्न पर अपना मन्तव्य प्रकट किया जिसका आशय यह था कि परमेश्वर ने जगत् को उसके उपादान कारण प्रकृति से बनाया है जिसे अव्यक्त, व्याकृत और परमाणु भी कहते हैं। वह अनादि है, और उसका अन्त भी नहीं। यह जगत् उसी कारण का कार्य्यरूप है। जब ईश्वर प्रलय करता है तो स्थूल जगत् सूक्ष्म होकर परमाणु-रूप हो जाता है। अभाव से भाव कभी नहीं हो सकता। यह कहना कि पहले किसी वस्तु का अत्यन्ताभाव था और फिर यह कहना कि उसका भाव होगया 'वदतो व्याघात' अर्थात् अपने कहे को स्वयं काटना है। बिना कारण के कोई कार्य्य नहीं हो सकता। कारण तीन प्रकार के होते हैं, प्रथम उपादान कारण जिसमें विकार उत्पन्न करके किसी वस्तु को बनाया जाय, जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है क्योंकि मिट्टी का ही दूसरा रूप घड़ा है। दूसरा निमित्त कारण अर्थात् उपादान कारण को कार्य्य रूप में लाने वाला जैसे घड़े का निमित्त कारण कुम्हार है जो मिट्टी से घड़ा बनाता है तीसरा साधारण कारण—दिशा, काल, उपकरण जैसे घड़े का साधारण कारण चाक, दिशा काल आदि हैं। ऐसे ही जगत् का उपादान कारण, प्रकृति, निमित्त कारण परमेश्वर, साधारण कारण दिशा, काल आदि। प्रकृति जड़ है वह स्वयं अपने आप को नहीं बना सकती। यदि यह कहा जाय कि ईश्वर ही स्वयं सब

कुछ बन गया तो ईश्वर ही चोर, जार, कुत्ता, बिल्ली, रोग आदि हो जायगा। जब ईश्वर के सिवाय कुछ भी न था तो अभाव से भाव मानना पड़ेगा जो किसी प्रकार भी युक्तिसङ्गत नहीं है। जीव भी अनादि हैं और यह सृष्टि प्रवाह रूप से अनादि है अर्थात् सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि। यह चक्र यों ही चलता रहता है, इसका कभी अन्त नहीं होता।

अब रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने जगत् को कब बनाया, तो इसका उत्तर वह धर्म्म तो क्या दे सकते हैं जिनको प्रचलित हुए १८०० वा १३०० वर्ष हुए हैं, इसका उत्तर तो सत्य सनातन वैदिक धर्म्म ही दे सकता है जो सृष्टि के आदि से है। वैदिक धर्म्म के अनुसार सृष्टि को बने हुए १९६०८५२९७६ वर्ष हुए और अभी २३३३२२७०२४ वर्ष सृष्टि और रहेगी। ज्योतिष शास्त्र में यह संख्या लिखी है और दान आदि शुभ कर्म्मों के अवसर पर जो सङ्कल्प पढ़ा जाता है उसमें यह संख्या पढ़ी जाती है यथाः—

ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणोद्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुक तिथावित्यादि।

यह इतिहास सिद्ध है और इसकी पुष्टि भूगर्भ विद्या से भी होती है।

ईश्वर ने सृष्टि किस लिये बनाई इसका उत्तर यह है कि यतः सृष्टि प्रवाह रूप से अनादि है अतः जब प्रलय होता है तो जीवों के कर्म्म विना फल भोगे हुए रह जाते हैं जिनका फल भोगना उनके लिए अनिवार्य्य है और फल विना जगत् के अन्यत्र भोगे नहीं जा सकते, इसलिये ईश्वर पुनः सृष्टि रचता है। दूसरे वह अपनी अनन्त विद्या, ज्ञान, बल, सृष्टि रचने की शक्ति को भी सृष्टि रच कर सफल करता है तथा सृष्टि से यह अभिप्राय भी सिद्ध होता है कि प्राणी सुख पाते हैं और उन्हें मोक्ष के साधन प्राप्त होते हैं।

स्वामीजी के कथन पर पादरी स्काट ने यह आक्षेप किया कि जगत् सीमावान् है और सीमावान पदार्थ अनादि नहीं हो सकता, कोई वस्तु अपने आप को नहीं बना सकती। परमेश्वर ने अपनी क़ुदरत से जगत् को बनाया है। जिस वस्तु से उसने जगत् को बनाया है हमें ज्ञात नहीं और पण्डितजी ने भी उसे नहीं बताया। मौलाना मुहम्मदक़ासिम ने यह आक्षेप किया कि जब सब चीजें अनादि हैं तो परमेश्वर को मानना व्यर्थ है और सृष्टि की रचना के समय को कोई नहीं बता सकता।

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि पादरी साहब मेरे कथन को नहीं समझे। मैंने कहा था कि ईश्वर ने जगत् को प्रकृति से बनाया, कार्य्य जगत् तो अनादि नहीं, परन्तु प्रकृति अनादि है, उसके एक अणु को भी नष्ट करने की शक्ति किसी में नहीं है। मैंने यह कभी नहीं कहा कि कोई वस्तु स्वयं अपने को बना सकती है। यदि ईश्वर ने अपनी क़ुदरत से जगत् को रचा तो मैं पूछता हूँ क़ुदरत कोई वस्तु है वा नहीं। यदि है तो अनादि हुई, यदि नहीं है तो उससे कोई वस्तु बन नहीं सकती। मैंने तो बता दिया था कि ईश्वर ने प्रकृति से जगत् को रचा। पादरी साहब का यह कहना कि मैंने जगत् के उपादान कारण को नहीं बताया ठीक नहीं है।

मौलवी साहब का भी कथन ठीक नहीं है। प्रकृति जड़ है, उसमें स्वयं कार्य रूप

होकर जगत् के बनाने का सामर्थ्य नहीं है, उसे कार्य्य रूप चेतन आत्मा परमेश्वर ही कर सकता है। जगत् में बुद्धि का कैसा अद्भुत चमत्कार है, जिसे देखकर मनुष्य चकित रह जाता है। परमेश्वर के अतिरिक्त और कौन ऐसे आश्चर्य्योत्पादक कार्य्य कर सकता है। अतः प्रकृति के अनादि होते हुए भी परमेश्वर का मानना आवश्यक है।

इतने में एक ईसाई महाशय बोल उठे कि जब दो वस्तुएँ हैं एक कार्य्य दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते अतः ईश्वर ने सृष्टि अपनी कुदरत से, नास्ति से, बनाई।

मौलवी साहब ने कहा कि गुण दो प्रकार के होते हैं—एक भीतर के (स्वाभाविक) दूसरे बाहर के (नैमित्तिक)। स्वाभाविक गुणी में होते हैं और नैमित्तिक दूसरे से गुणी में आते हैं। स्वाभाविक गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं, परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है, जैसे जिस बर्तन में सूर्य्य का प्रतिबिंब पड़ता है वह वैसा ही होजाता है, परन्तु सूर्य्य नहीं बन जाता अतः हमें ईश्वर ने अपनी इच्छा से बनाया है।

स्वामीजी ने ईसाई महाशय को तो यह उत्तर दिया कि जगत् का उपादान कारण प्रकृति (परमाणु) और जीव अनादि हैं। नास्ति से अस्ति हो नहीं सकती। यदि कुदरत कोई वस्तु है तो उसे भी अनादि मानना पड़ेगा क्योंकि, ईश्वर के गुण कर्म सब अनादि हैं और मौलवी साहब से यह कहा कि यदि कहो भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी ठीक न होगा, क्यों ? गुण द्रव्य से अलग रह नहीं सकता और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। दूसरे ऐसा मानने से तो जगत् ही ईश्वर हो जायगा। बाहर के गुणों से बना हुआ मानने में ईश्वर के सिवाय और गुण द्रव्य भी मानने पड़ेंगे और वह भी अनादि होंगे। इच्छा या तो कोई वस्तु है वा गुण। यदि वस्तु है तो अनादि होगी और गुण मानोगे तो उससे सृष्टि न बन सकेगी जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता।

इसके पश्चात् पादरी साहब ने तो यह कह कर पीछा छुड़ाया कि यह तो ईश्वर ही जानता है कि उसने किस चीज़ से जगत् को बनाया, हम नहीं जान सकते। परन्तु मौलवी साहब कहने लगे कि ईश्वर ने जगत् अपने नूर से बनाया है। इस पर स्वामीजी ने कहा कि नूर प्रकाश को कहते हैं। प्रकाश तो केवल मूर्त्तिमान् पदार्थ को प्रत्यक्ष दिखा सकता है और प्रकाश करने वाले पदार्थ से पृथक् नहीं रह सकता। अतः प्रकाश से सृष्ट्युत्पत्ति असम्भव है।

फिर एक ईसाई बोल उठे कि यदि संसार ईश्वर की जात (प्रकृति) में सनातन से था तो परमेश्वर ने अपनी जात से संसार को बनाया और यतः वह उसकी जात में अनादि था तो ईश्वर सीमित हो जायगा।

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जगत्-प्रकृति अनादि थी और वही रचे जाने से सीमा-बद्ध हुई, न कि ईश्वर।

तत्पश्चात् ईसाइयों ने कहा पण्डितजी इस बात का सहस्र प्रकार से उत्तर दे सकते हैं और हम सहस्रों मिलकर भी उन्हें निरुत्तर नहीं कर सकते। अब इस विषय पर शास्त्रार्थ करना व्यर्थ है।

इस पर सब लोग अपने-अपने डेरों को चले गये और जनता में स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

दोपहर के पश्चात् सभा फिर जुटी।

पहले तो सब ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि समय थोड़ा है, अतः इस प्रश्न पर ही विचार होना चाहिये कि मुक्ति क्या है ? और किस प्रकार मिल सकती है। फिर कुछ वाद-विवाद इस विषय में हुआ कि पहले कौन कथन करे, अन्त को यही स्थिर हुआ कि स्वामीजी ही पहले कथन करें।

पाँचवें प्रश्न पर विचार

स्वामीजी ने कहा कि मुक्ति छूट जाने को कहते हैं, अर्थात् सब दुःखों से छूट कर एक सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना और जन्म मरण आदि दुःख सागर में न गिरना।

मुक्ति-प्राप्ति का पहला साधन सत्य का आचरण है, सत्य वह है जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी हो। वह साक्षी यह है कि सत्य के बोलने में उत्साह, आनन्द और निर्भयता प्राप्त होती है और असत्य के आचरण में भय, शङ्का, लज्जा उत्पन्न होती है। यजुर्वेद अ० ४० के तीसरे मन्त्र में कहा है:—

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

परमेश्वर की आज्ञा भंग करने वाले अर्थात् आत्मा के ज्ञानविरुद्ध कहने, करने और मानने वाले का ही नाम असुर, राक्षस, दुष्ट और पापी है।

दूसरा साधन—सत्य विद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़ कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का यथावत् पालन करना।

तीसरा साधन—सत्पुरुष, ज्ञानियों का सङ्ग करना।

चौथा साधन—योगाभ्यास से मन, इन्द्रिय और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना।

पाँचवाँ साधन—ईश्वर-स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना।

छठा साधन—ईश्वर-प्रार्थना अर्थात् ईश्वर से असत्य, अज्ञान, अधर्म से पृथक् रहने, सत्य, ज्ञान, धर्म में स्थिर रहने और जन्म-मरण के दुःखों से छूटकर मुक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना करना।

जब मनुष्य अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को भजता है तो करुणामय परमेश्वर उसे अपने आनन्द में स्थिर कर देता है। मुक्ति धर्म, अर्थ, काम और सत्य पुरुषार्थ से प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। ईश्वराज्ञा का पालन धर्म और उसका उल्लंघन अधर्म है। धर्म से ही अर्थ और काम को सिद्ध करना चाहिये अर्थात् अपने सुख-साधन के लिये कोई काम पक्षपात, अन्याय, असत्य और अधर्म से न करना चाहिये।

पादरी साहब—दुःखों से छूटने का नहीं बल्कि पापों से बचने और स्वर्ग में पहुँचने का नाम मुक्ति है। ईश्वर ने आदम को पवित्र बनाया था, परन्तु उसने शैतान के बहकाने से पाप किया जिससे उसकी सब औलाद पापी होगई। मनुष्य अपनी इच्छा से पाप करता है, जैसे घड़ी अपने आप चलती है। अतः वह अपने सामर्थ्य से पापों से नहीं बच सकता और

मुक्ति नहीं पासकता। प्रभु ईसामसीह पर विश्वास करने से ही उसे मुक्ति मिल सकती है। हिन्दू कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों से पाप कराता है, परन्तु ईसामसीह पर विश्वास लाने से वह भी पाप से बच सकते और मुक्ति पासकते हैं।

जहाँ २ ईसामसीह की शिक्षा फैलती जाती है वहाँ २ लोग पाप से बचते जाते हैं। इंग्लैंड में एक मनुष्य आप जैसा बलवान् था परन्तु था बड़ा कुकर्मी। जब उसने ईसामसीह पर विश्वास किया तो वह पाप से बच गया। मैं भी ईसामसीह पर विश्वास करने से पापों से बच गया और मैंने मुक्ति को पालिया।

मौलवी साहब—ईश्वर की इच्छा है जिसको चाहे मुक्ति दे जिसको चाहे न दे। यदि हाकिम किसी अपराधी से प्रसन्न हो जाता है, उसे छोड़ देता है और जिससे अप्रसन्न होता है उसे दण्ड देता है। ईश्वर जो चाहता है वह करता है, उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं। परन्तु समय के हाकिम पर विश्वास करना चाहिये। इस समय का हाकिम हमारा पैग़म्बर है, उस पर विश्वास लाने से मुक्ति हो सकती है। विद्या से अवश्य अच्छे काम हो सकते हैं, परन्तु मुक्ति तो उसी के हाथ में है।

स्वामीजी—पादरी साहब ने जो यह कहा है कि मुक्ति दुःख से छुटने का नहीं प्रत्युत पापों से बचने का नाम है सो यह उन्होंने मेरे आशय को समझे बिना ही कह दिया है, क्योंकि मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मुमुक्षु को पाप का आचरण नहीं करना चाहिये। पाप का परिणाम भी दुःख ही होता है जो पाप से बचेगा वह दुःख से भी छूटेगा।

ईसाई भी परमेश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते हैं। परन्तु यह मानने से कि शैतान ने आदम को बहका कर उससे पाप कराया वह सर्वशक्तिमान् नहीं रहता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो आदम को जिसे उसने पवित्र बनाया था बहकाने की शक्ति शैतान में न होती। परमेश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता। यह बात तो कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता कि पाप तो किया आदम ने और पापी होगई उसकी सब सन्तान। जो पाप करता है वही दुःख भोगता है, दूसरा नहीं। केवल आदम और हव्वा से मनुष्य-जाति की उत्पत्ति मानने में बड़ा दोष यह आता है कि इससे सगे बहिन भाई का विवाह होना मानना पड़ता है। यह मानना चाहिए कि सृष्टि को आदि में परमेश्वर ने बहुत से स्त्री-पुरुष रचे थे।

यदि शैतान सबको बहकाता है तो मैं पूछता हूँ कि शैतान को किसने बहकाया? यदि कहो कि किसी ने नहीं तो जैसे शैतान अपने आप बहक गया वैसे ही आदम भी अपने आप बहक गया होगा, फिर शैतान के मानने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कहो कि किसी ने शैतान को भी बहकाया होगा तो उसका बहकाने वाला सिवाय ईश्वर के दूसरा हो नहीं सकता। ऐसी दशा में जब स्वयं ईश्वर ही बहकाने वाला और पाप कराने वाला है तो वह पापों से बचा कैसे सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसा मानना ईश्वर के स्वभाव के भी विरुद्ध है, क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कर्मों का ही कर्त्ता है।

शैतान परमेश्वर की सृष्टि में इतनी गड़बड़ डालता है। परन्तु वह उसे न दण्ड देता है, न मारता है, न क़ैद करता है। इससे सिद्ध होता है कि परमेश्वर में ऐसा करने की शक्ति ही नहीं है। शैतान के मानने वाले पाप से कभी नहीं बच सकते, क्योंकि वह समझते हैं

कि पाप शैतान कराता है हम तो पापी ही नहीं और फिर जब सबके पापों के बदले ईश्वर का इकलौता पुत्र सूली पर चढ़ गया तो हमें अब क्या डर है।

पादरी साहब ने घड़ी का दृष्टान्त भी ठीक नहीं दिया। घड़ी तो वही चाल चलती है जो उसके बनाने वाले ने उसमें रक्खी है, उसमें उसे बदलने की स्वतन्त्रता नहीं है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कर्म करने की है, बुरे कर्म करने की नहीं।

आपने जो यह कहा है कि मुक्ति स्वर्ग में पहुँचने का नाम है और कि शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में पाप से बचने की शक्ति नहीं है सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि शैतान कोई मनुष्य नहीं और मनुष्य स्वतन्त्र हैं, तो वह आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु आप स्वर्ग में भी कैसे रह सकेंगे। वहां आदम ने शैतान के बहकाने से गेहूँ खाया था। क्या आप उसे न खायँगे और स्वर्ग से न निकाले जायँगे?

आप लोगों ने तो ईश्वर को मनुष्य के समान मान रक्खा है। मनुष्य अल्पज्ञ है उसे सब बातें ज्ञात नहीं होतीं, अतः उसे किसी जानकार की सिफ़ारिश की आवश्यकता होती है, परन्तु परमेश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, उसे किसी पैग़म्बर की सहायता और सिफ़ारिश की आवश्यकता नहीं हो सकती और यदि होती है तो उसमें और मनुष्य में भेद ही क्या रहा। वह न्यायकारी भी नहीं रहता, क्योंकि यदि किसी पापी को वह किसी की सिफ़ारिश से क्षमा करता है तो न्याय नहीं करता। परमेश्वर के दरबार में फ़रिश्तों का मानना तो और भी आपत्तिजनक है। यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह शरीर वाला नहीं हो सकता, यदि सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य शरीर वाला होगा और सीमित हो जायगा और उसका जन्म-मरण भी अवश्य होगा।

पादरी साहब ने जो कलियुग के विषय में कहा है वह भी ठीक नहीं है। आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था उस प्रकार मानते हैं जिस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ७ कण्डिका १५ में लिखी है:—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठँस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

जो सर्वथा अधर्म करता है उसका नाम कलि, जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसका द्वापर, जो एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसका त्रेता और जो सर्वथा धर्म करता है उसका नाम सत् युग है।

बुरे कर्म्म करने वाला दुःख से नहीं बच सकता, अच्छे कर्म्म करने वाला ही बच सकता है।

क्या ईश्वर ईसामसीह के बिना अपने भक्तों को बचाने में समर्थ नहीं है? वह अवश्य बचा सकता है, उसे किसी पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं है। यह बात अवश्य है कि जब किसी देश में उत्तम पुरुष होते हैं, उनके उपदेश से लोगों का सुधार होजाता है; जहाँ ऐसे उपदेष्टा नहीं होते वहाँ बिगाड़ होता है। प्राचीन आर्य्यावर्त्त में ऐसे उपदेष्टा थे जिनसे लोग सुधरे हुए थे अब ऐसे उपदेशकों का अभाव है, अतः लोग बिगड़े हुए हैं। इससे आर्यों के

सनातन मत में कोई दोष नहीं आता। ईसाई और मुसलमानों के मत १८०० और १३०० वर्ष से हैं परन्तु उनमें आपस के विरोध से फिरके हो गये हैं। आर्यधर्म १९६०८५२९७६ वर्ष से है, फिर भी उसमें बिगाड़ बहुत कम हुआ है। ईसाइयों में जो सुधार है वह ईसाई मत के कारण नहीं है प्रत्युत पार्लिमेंट आदि के उत्तम प्रबन्ध के कारण है। पादरी साहब ने जो इंग्लिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिला कर दिया, सो यह उन्हें उचित न था।

मौलवी साहब का कहना कि ईश्वर जो चाहे सो करे, ठीक नहीं है इससे ईश्वर न्यायकारी नहीं रहता। वह मुक्ति उसी को देता है जो मुक्ति के काम करता है, बिना पाप-पुण्य के दुःख-सुख नहीं देता।

परमेश्वर ही सब समय का हाकिम है, दूसरा कोई नहीं।

दूसरे पर विश्वास करने से मुक्ति कभी नहीं मिल सकती। यदि ईश्वर दूसरे के कहने से मुक्ति देता है तो वह मुक्ति देने में पराधीन हो जायगा और पराधीन ईश्वर हो नहीं सकता। परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है वह अपने कामों में किसी की सहायता नहीं लेता। बड़ा आश्चर्य्य है कि मुसलमान परमेश्वर को लाशरीक भी मानते हैं और फिर पैगम्बरों को मुक्ति देने में उसके साथ मिला देते हैं।

स्वामीजी अपना वक्तव्य समाप्त न कर पाये थे कि चार बज गये। मौलवियों ने कहा कि हमारी नमाज़ का समय होगया है, पादरी स्काट ने कहा कि मैं आपसे एकान्त में कुछ बात करना चाहता हूँ। अतः मौलवी लोग नमाज़ को, और स्वामीजी और पादरी साहब एक ओर को, चले गये। पीछे एक मौलवी ने जूता पहने मेज पर खड़े होकर अपने मत का व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। इसी प्रकार एक ईसाई भी अपने धर्म का उपदेश देने लगा। इस प्रकार गड़बड़ होने पर किसी ने यह उड़ा दिया कि मेला समाप्त होगया।

मेले में गड़बड़ होगई

स्वामीजी ने जब यह हल्लागुल्ला सुना तो पूछा कि यह क्या गड़बड़ है, मौलवी लोग नमाज़ से आए वा नहीं? तो लोगों ने कहा कि मेला समाप्त होगया। स्वामीजी ने आश्चर्य्य प्रकट करते हुए पूछा कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया, न किसी की सम्मति लीगई, न किसी से कुछ पूछा गया, अब आगे कुछ बात-चीत होगी वा नहीं? परन्तु कुछ उत्तर न मिला। तब लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप भी चलिये। स्वामीजी ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि मेला कम से कम पाँच दिन रहता। पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते। तब स्वामीजी अपने डेरे पर चले गये। वहाँ भी जिज्ञासुओं से धर्म-संवाद होता रहा।

मेला समाप्त होगया

रात्रि में पादरी स्काट और दो पादरियों के साथ स्वामीजी के डेरे पर आये। पादरी स्काट ने पूछा कि आवागमन सत्य है वा असत्य और इसका क्या प्रमाण है?

पादरियों से बात-चीत

स्वामीजी—आवागमन सत्य है। जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है, अच्छे कर्म करने से मनुष्य का, और बुरे कर्म करने से पक्षी आदि का। बहुत उत्तम कर्म करने से मनुष्य देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। बालक उत्पन्न होते ही

अपनी माता का दूध पीने लगता है, क्योंकि उस को पहले जन्म का अभ्यास बना रहता है। संसार में लोगों को धनाढ्य कंगाल, सुखी, दुखी, अनेक प्रकार के ऊँच-नीच देखने से विदित होता है कि यह सब पूर्व जन्म के कर्मों के कारण है। जीव अनादि है। यदि जीव का एक ही जन्म हो तो जगत् में सुख दुःख की व्यवस्था नहीं रहती, फिर यह भी है कि मरने के पश्चात् क़यामत के दिन तक न्याय की प्रतीक्षा में जीव को हवालात में रहना होगा।

आप आर्य नहीं हैं

एक पादरी ने स्वामीजी से कहा कि महाराज हम भी तो आर्य्य हैं। स्वामीजी ने कहा कि आप सभ्य अवश्य हैं, परन्तु आर्य्य नहीं, क्योंकि आर्य्य कहते हैं श्रेष्ठ धर्मात्मा को और आप की धर्मपुस्तक आप को ऐसा नहीं बताती। महात्मा ईसा से उनके कुछ शिष्यों ने पूछा था कि आप अन्धों और कोढ़ियों को चंगा कर देते हैं, परन्तु हम नहीं कर सकते। इसका क्या कारण है? महात्मा ईसा ने उत्तर दिया कि तुम में राई बराबर भी विश्वास नहीं है। जब महात्मा ईसा के शिष्यों में ही विश्वास न था तो आप लोगों में कैसे हो सकता है? बाइबल कहीं भी नहीं कहती कि ईसा ईश्वर थे।

इसके पश्चात् पादरी साहब चले गये।

मौलवियों ने शाहजहाँपुर पहुँच कर मुन्शी इन्द्रमणि को लिखा कि आप यदि यहाँ आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। परन्तु जब स्वामीजी और मुन्शीजी वहाँ पहुँचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम भी न लिया।

विनोद-वार्त्ता

चाँदापुर अवस्थिति के दिनों में ही एक दिन महाराज ने मुंशी प्यारेलाल से भुने हुए चने मँगाये तो मुंशी इद्रमणि ने विनोद में कहा कि चनों में घुन हुआ करता है, चनों के साथ घुन भी भुन गया होगा। महाराज ने भी उन्हें वैसा ही उत्तर देकर निरुत्तर कर दिया कि गेहूँ में भी तो घुन होजाता है और गेहूँ के साथ पिस जाता है तो क्या आप आटे को फेंक दिया करते हैं।

स्वामीजी पूर्ण योगी थे

मुंशी प्यारेलाल का विचार था कि स्वामीजी केवल सभाजित् पण्डित ही हैं, परन्तु योग में उनकी गति नहीं है। उन्होंने अनहत शब्द, अजपाजाप आदि के विषय में स्वामीजी से प्रश्न किये। स्वामीजी ने उनके ऐसे उत्तम उत्तर दिये कि मुन्शी प्यारेलाल को स्वामीजी के पूर्ण योगी होने का विश्वास होगया।

दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि चाँदापुर में ही स्वामीजी ने आपबीती निम्न लिखित कथा म० बख़्शीराम और मुन्शी इन्द्रमणि को सुनाई थीः—

आप-बीती कथा

"मैं जिन दिनों में एकाकी घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। जब कई दिन के निवास के अनन्तर, मैं वहाँ से चलने लगा तो उन लोगों ने अत्याग्रह से मुझे ठहरा लिया, मैं समझता रहा कि ये भक्ति-भाव से मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आगया। उस दिन सारे शाक्त, देवी के मन्दिर में एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन, उन्होंने मुझे भी कहा

कि आज हमारे मन्दिर में महोत्सव है, आप वहाँ अवश्य चलिये। मैंने बहुत समझाया कि देवी के दर्शन में मेरा निश्चय नहीं, परन्तु वे एक न सुनते थे। पाँव पकड़ कर वह कहने लगे कि यदि आज पर्व के दिन मन्दिर में न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भङ्ग हो जायगा। आप मूर्त्ति को नमस्कार आदि कुछ भी न करना, परन्तु हमारे लिये चलें तो चलिये।

"वह मन्दिर नगर से बाहर एक उजाड़ स्थान में था। उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा। उस समय वहाँ आँगन में होम होरहा था और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वह दुर्गा की मूर्त्ति दिखलाने के बहाने से भीतर लेगये। मैं सहज स्वभाव से दुर्गा की प्रतिमा के सम्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्त्ति के पास ही एक बलिष्ठ व्यक्ति नङ्गी तलवार लिये खड़ा था।

स्वामीजी के बलिदान की तैयारी

"वहाँ वे लोग मुझे कहने लगे 'महात्माजी! माता के आगे झुक कर नमस्कार अवश्य कीजिये'। मैंने उनको स्पष्ट शब्द में कहा कि मुझ से ऐसी आशा करना दुराशामात्र है। मेरे बचनों से पुजारी चिढ़ गया और पास आकर मेरी ग्रीवा को पकड़ कर मेरे सिर को नीचा करने लगा। उसके इस बर्ताव से मैं चकित होगया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूँ कि वह खड्गधारी मेरे पास आगया है और मेरी ग्रीवा पर खड्ग बरसाना ही चाहता है।

स्वामीजी बलिदान से कैसे बचे

"इस दृश्य को देखकर मैं तुरन्त सावधान होगया। मैंने झपट कर उसके हाथ से तलवार छीनली। पुजारी तो मेरे बायें हाथ के एक ही धक्के से मन्दिर की दीवार से जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिर के आँगन में आगया। उस समय आँगन के सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझ पर टूट पड़े। द्वार की ओर देखा, तो उसके ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदान से बचाने के लिये, मैं उछल कर दिवाल पर चढ़ गया और परले पार कूदकर भाग निकला। दिन भर तो मैं वहीं छिपा बैठा रहा, परन्तु जब रात का राज्य विस्तृत होगया तो रातों रात ग्रामान्तर में जा पहुँचा। उस दिन से मैंने शाक्त लोगों का कभी भी विश्वास नहीं किया।"

दयानन्दप्रकाश में यह भी लिखा है कि एक बार स्वामीजी गवर्नर जनरल से मिले थे। उन्होंने स्वामीजी की बातों पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की थी और उनकी विपत्तियों को सुनकर खेद और आश्चर्य प्रकट किया था। चलते समय स्वामीजी और गवर्नर जनरल की निम्न लिखित बातचीत हुई थी:—

गवर्नर जनरल—यदि आप चाहें तो आपकी रक्षा के निमित्त कुछ सैनिक नियत किये जायँ और भ्रमण में कष्ट न हो, इसलिये रेल के प्रथम दर्जे का आपको पास मिल जाय।

स्वामीजी—(धन्यवाद देते हुए) मैं आपकी इस सहायता को स्वीकार नहीं कर सकता। इसे स्वीकार करने पर लोग मुझे राजनौकर अथवा ईसाई धर्म का नौकर समझने लग जायँगे।

गवर्नर जनरल—क्या आप राजनौकरी को बुरा समझते हैं?

स्वामीजी—मैं संन्यासी हूँ, और सच्ची सरकार परमेश्वर का नौकर होगया हूँ। उसी पर भरोसा रखता हूँ। इसलिये किसी मनुष्य की नौकरी करना मैं अपने लिये अच्छा नहीं समझता।

गवर्नर जनरल—क्या आप वर्त्तमान सरकार को सच्चा नहीं मानते।

स्वामीजी—सच्चा से मेरा तात्पर्य्य न परिवर्त्तन होने वाली से है, सो ऐसा एक ईश्वर ही है। उसका नियम अटल और निर्भ्रान्त है। मनुष्यों के नियम और न्याय तो समयानुसार बदलते ही रहते हैं।' *

---

* सम्भव है कि शाक्तों का स्वामीजी को देवी पर बलि चढ़ाने का यत्न करना और उनका मन्दिर की दीवार पर से कूदकर उनके घेरे से निकल भागना सत्य हो। परन्तु स्वामीजी का गवर्नर जनरल से मिलना और उनका स्वामीजी की विपद्वार्त्ता सुनकर स्वामीजी की रक्षार्थ सैनिक नियत करने और रेल के प्रथम दर्जे का पास देने को कहना हमारे विश्वास की सीमा को उलंघन कर जाता है। यह गवर्नर जनरल कौन थे, वह स्वामीजी से कब और कहाँ मिले थे, स्वामीजी को उनसे मिलने का अवसर कैसे मिला था आदि प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। स्वामीजी ने अन्य किसी को भी यह घटना नहीं सुनाई।

—संग्रहकर्त्ता.

लुधियाना आर्यसमाज का मन्दिर । (पृष्ठ ४०७)

अष्टादश अध्याय

वैशाख संवत् १९३४-आषाढ़ संवत् १९३४

चाँदापुर से महाराज २३ मार्च सन् १८७८ को प्रस्थित हुए और सहारनपुर लौट आये। वहाँ कुछ दिन विश्राम करके वैशाख कृष्णा ५ संवत् १९३४ अर्थात् ३१ मार्च सन् १८७७ को लुधियाना पहुँचे। लुधियाना में महाराज का मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी ने अत्यन्त सम्मान और प्रेम से स्वागत किया। उन्होंने ही महाराज के ठहरने आदि का प्रबन्ध किया और महाराज को लाला वंशीधर वैश्य के बाग़ में ठहराया।

लुधियाना

महाराज के व्याख्यान जटमल ख़ज़ाञ्ची के घर पर होते थे जिनमें सहस्रों की संख्या में श्रोता उपस्थित होते थे। आप के व्याख्यानों से नगर में घोर आन्दोलन उपस्थित होगया था। महाराज ने पूर्व ही घोषित कर दिया था कि मैं सात दिन तक प्रतिदिन व्याख्यान दूँगा। उनके बीचमें कोई सज्जन न बोलें। आठवाँ दिन मैं शङ्का-समाधानार्थ रक्खूँगा। उस दिन जिस किसी के मन में कोई शङ्का मेरे व्याख्यानों को सुन कर उत्पन्न हुई हो मुझ से निवृत्त करले।

व्याख्यान-माला

महाराज ने ऐसा ही किया, परन्तु शङ्का-समाधान के दिन किसी ने कोई विशेष प्रश्न नहीं किया। पादरी वेरी साहब स्वामीजी के उपदेश सुनने बहुधा आया करते थे और निजू तौर पर भी मिलने आते थे और धार्मिक विषयों पर प्रश्न करते थे। पादरी साहब ने इञ्जील की एक प्रति भी महाराज को भेंट की थी। एक दिन पादरी वेरी साहब, मिस्टर कार स्टीफ़न जुडीशल असिस्टैन्ट कमिश्नर और पञ्जाब के इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस भी महाराज से मिलने आये थे। स्टीफ़न साहब ने आक्षेप किया कि कृष्णजी ने जब ऐसे २ बुरे कर्म किये तो उन्हें महात्मा कहना बुद्धि-सम्मत नहीं प्रतीत होता। महाराज ने उत्तर दिया कि श्रीकृष्णचन्द्र पर तो यह दोष झूठे लगाये जाते हैं, उन्होंने कभी ऐसे

पादरी और उच्च राज-कर्मचारी दर्शन करने आये

दुष्कर्म नहीं किये और बुद्धि-सम्मत होने के सम्बन्ध में तो क्या कहूँ, जब बुद्धि इस बात को सह लेती है कि परमेश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में एक मनुष्य पर उतरी तो कृष्णजी वाली बात को बुद्धि के न सहने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिये। इसे सुन कर साहब बहादुर चुप होगये।

परमेश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में

एक दिन महाराज मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के साथ कार स्टीफ़न साहब से मिलने उनके बंगले पर भी गये थे और उनसे अनेक विषयों पर वार्त्तालाप हुआ था। स्टीफ़न साहब वार्त्तालाप से बहुत प्रसन्न हुए, वेदभाष्य के ग्राहक हुए और चलते समय कुछ रुपये भी महाराज की भेंट किये।

स्वामीजी असिस्टेन्ट जुडिशल कमिश्नर के बंगले पर

महाराज का दूसरा व्याख्यान हुआ, उसे एक ब्राह्मण भी सुनने आया था। उसने अपने एक साथी से कहा कि यह दुष्ट है, इसका मुख देखना भी धर्म्म-विरुद्ध है, चलो! यह बात महाराज ने भी सुनली। महाराज ने उससे कहा कि मेरे मुख में तो कोई विशेष बात नहीं है जिसे तुम देखो, यदि उसके देखने में तुम्हें ग्लानि है तो मेरे पीछे खड़े होजाओ, मेरी बात केवल सुनलो।

मेरा मुख न देखो मेरी बात सुनो

रामशरण गौड़ ब्राह्मण बनत, ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर, का रहने वाला एक बार अलवर से दिल्ली जारहा था। मार्ग में उसके वस्त्र चोरी चले गये। केवल एक धोती उसके पास रह गई। वह इसी दशा में दिल्ली पहुँचा। घण्टाघर पर एक अंग्रेज़ पादरी अपने मत का प्रचार कर रहा था। उसने दुर्गापाठ का एक श्लोक अशुद्ध पढ़ा तो रामशरण ने उसकी अशुद्धि पकड़ ली। इस पर पादरी ने उससे कहा कि यदि तुम नौकरी करना चाहो तो हम तुम्हें नौकर रख सकते हैं। रामशरण ने यह स्वीकार कर लिया। पादरी ने ईसाई कन्याओं के पढ़ाने पर ५) रुपये मासिक पर नौकर रख लिया और वह उसे अपने साथ लुधियाना ले आया। यहाँ वह ६ मास तक नौकर रहा। इस बीचमें वह पादरी, वेरी साहब और अन्य दो पादरी उसे ईसाई मत ग्रहण करने का उपदेश देते रहे। उसका मन भी उक्त मत की ओर फिर गया यहाँ तक कि एक दिन उसने गिरजा में उसके मण्डन में एक वक्तृता भी दी। पादरी लोगों ने उसके बपतिस्मा लेने का दिन भी नियत कर दिया और वह किसी कार्यवश लाहौर चले गये। लाहौर से लौट कर वह चार पाँच दिन में आने वाले थे और उनके आने पर उसका बपतिस्मा होने वाला था। इतने में ही महाराज लुधियाना पहुँच गये। लोगों ने महाराज से निवेदन किया कि किसी प्रकार रामशरण को ईसाई होने से बचाइये। महाराज ने उसे उपदेश दिया और वह ईसाई न हुआ। उससे ईसाइयों की नौकरी भी महाराज ने छुड़वा दी। पादरी लोग जब लुधियाना वापस आये तो देखा कि चिड़िया उनके हाथ से निकल गई। और कुछ तो वह न कर सके, परन्तु जल कर उन्होंने रामशरण की ३) रुपये मूल्य की पुस्तकें उसे न दीं।

चिड़िया हाथ से निकल गई

पुनर्जन्म की विचित्र सिद्धि

एक दिन एक ईसाई ने पुनर्जन्म पर शङ्का की। स्वामीजी ने उससे कहा कि खाना पीना, सोना आदि देहधारी जीव के लिए सम्भव है वा देहरहित के। उसे कहना पड़ा कि देहधारी के लिये ही सम्भव है। फिर उस से कहा कि तुम यह मानते ही हो कि जीव का एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। उसने कहा कि ठीक है। तब महाराज ने कहा कि जो आत्माएँ स्वर्ग में जाकर अनेक भोग भोगेंगी वह बिना देह धारण किये कैसे भोगेंगी और जब देह धारण करेंगी तो क्या वह उनका पुनर्जन्म न होगा। इस पर ईसाई को कोई उत्तर न आया।

संस्कृत बोल चुके अब भाषा बोलो

एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजी के पास आया और संस्कृत में बात-चीत करने लगा। स्वामीजी भी उससे संस्कृत ही बोलते रहे। जब अधिक देर होगई तो स्वामीजी ने उससे कहा कि अब तो आप जान गये होंगे कि मैं संस्कृत जानता हूँ। अब आप भाषा में बात-चीत करें जिसे पास बैठे हुए सज्जन भी समझ सकें।

भूत के खण्डन में तमाशा

एक दिन महाराज ने भूत के खण्डन पर एक तमाशा दिखाया। जिस कमरे में महाराज ठहरे हुए थे उसके तीन दर थे और उसमें आमने सामने दो ताक़ थे। महाराज ने दोनों ताक़ों में दीपक जला कर रखवाये। दोनों ताक़ों में १०-१२ गज़ का अन्तर था। महाराज ने पहले एक ताक़ का दीपक बुझा दिया। फिर दूसरे ताक़ का भी बुझा दिया। दूसरे ताक़ का दीपक बुझा देने पर पहले ताक़ का दीपक स्वयमेव जल उठा और जब उसे फिर बुझाया तो पहले ताक़ का जल उठा। कई बार ऐसा किया। तब महाराज ने कहा कि यह विद्या की बात है, भूत वा जादू कोई वस्तु नहीं है। एक पुरुष की स्त्री को भूत का आवेश कहा जाता था तो महाराज ने कहा था कि उसे कोई रोग है अथवा वह फ़ैल भरती है।

लाहौर

स्वामीजी को लाहौर बुलाने वालों का गुप्त अभिप्राय

वैशाख शुक्ला ६ संवत् १९३४ अर्थात् १९ एप्रिल सन् १८७९ को महाराज लुधियाना से लाहौर पधारे। रेल्वे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये पण्डित मनफूल, भूतपूर्व मीरमुन्शी गवर्नमेंट पञ्जाब, मुन्शी हरसुखराय, अध्यक्ष 'कोहेनूर' समाचारपत्र तथा ब्राह्मसमाज के और सत् सभा के कतिपय सभासद् उपस्थित थे। इन्हीं लोगों ने महाराज से लाहौर पधारने की प्रार्थना की थी। ब्राह्मसमाज के सदस्यों का तो उनके बुलाने में यह अभिप्राय था कि यदि महाराज ब्राह्मसमाज के सभासद् बन जायंगे तो उक्त समाज का बल बहुत बढ़ जायगा और फिर वह लोग भी उसमें सम्मिलित हो जायँगे जो इस कारण से सम्मिलित नहीं होते कि ब्राह्म लोगों के सुधार के कार्य्य ने विजातीय रूप धारण कर लिया है। पण्डित मनफूल का भी एक अभिप्राय था। उनका एक पुत्र इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी की परीक्षा पास करके आया था। उसकी विवाहिता स्त्री का देहान्त होगया था और वह एक मेम से विवाह करना चाहता था। पण्डित मनफूल इसका निषेध करते थे, परन्तु उनका सुपुत्र उनके कथन पर कान न देता

था। उन्होंने समझा था कि सम्भव है कि महाराज के समझाने से वह मान जावे। कहते हैं कि महाराज ने उसे समझाया भी, परन्तु वह न माना और यह कहा कि जब आप गान्धार आदि देशों की स्त्रियों से विवाह करने का समर्थन करते हैं तो इस विवाह का क्यों निषेध करते हैं। स्टेशन पर चार घोड़े गाड़ियाँ महाराज के लाने के लिये गई थीं। एक में महाराज, पण्डित मनफूल और मुन्शी हरसुखराय सवार हुए, एक में उनके साथ के मनुष्य और भृत्य बैठे और एक में उनका सामान और पुस्तकें रक्खी गईं।

ब्राह्म-समाजियों का अशिष्टाचार

महाराज को दीवान रतनचन्द दाढ़ी वाले के बाग़ में ठहराया गया। महाराज के भोजन व्यय का भार ब्राह्म लोगों ने अपने ऊपर लिया था और इसके लिए उन्होंने चन्दा एकत्र किया था। दो सप्ताह तक वही सब व्ययभार वहन करते रहे, परन्तु जब उन्होंने देखा कि उनका रङ्ग महाराज पर नहीं चढ़ता और वह ब्राह्मसमाज की शिक्षा का भी खण्डन करते हैं तो वह चिढ़ गये और उन्होंने व्यय देना बन्द कर दिया। इतना ही नहीं बल्कि दो सप्ताह में जो २५) रुपये व्यय हुए थे वह भी महाराज से वसूल कर लिये। महाराज का तो इससे कुछ बिगड़ा नहीं, उलटा ब्राह्मसमाजियों का ही इसमें अपयश हुआ।

वेद पर व्याख्यान

लाहौर में महाराज का प्रथम व्याख्यान वेद और वेदोक्त धर्म्म पर २५ एप्रिल सन् १८७७ को हुआ। श्रोताओं की संख्या ५०० के लगभग थी। २८ एप्रिल के 'कोहेनूर' में इस व्याख्यान का सारांश छपा था। उसमें महाराज ने कहा था कि चारों वेद अनादि हैं, जब २ सृष्टि होती है तब २ प्रकट होते हैं और प्रलय होने पर अन्तर्हित होजाते हैं। वर्तमान सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने वेदों को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा चार ऋषियों के हृदय में प्रकट किया। वेदों में सब विद्याओं के मूल तत्व निहित हैं। वेद की ११२७ शाखाएं हैं जिनमें अनेक प्रकार की विद्याएं हैं। वेद के तीन विषय हैं, ज्ञान, उपासना, कर्मकाण्ड। देवता कोई विशेष योनि नहीं है, प्रत्युत विद्वान और बुद्धिमान् मनुष्यों को ही 'देव' कहते हैं। विश्वकर्मा कोई विग्रहवान् देव (अ-मानुष) नहीं था। वह एक अत्यन्त निपुण कला-कौशलाभिज्ञ था। अग्नि में हवन करने का प्रयोजन केवल वायु और वृष्टि जल की शुद्धि है। पहले सब मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र करते थे। अमावास्या और पूर्णिमा को विशेष यज्ञ होते थे और दीपावली, होली आदि पर बड़े २ यज्ञ हुआ करते थे। तब वायु और जल शुद्ध रहते थे और मनुष्य तथा पशुओं के मल मूत्र की दुर्गन्ध से जो वायु गन्दी होती है हवन से उसकी शुद्धि होती रहती थी और जैसे रोग और मरी आजकल होती हैं इनका नाम तक न था। वेदों के पढ़ने का मनुष्यमात्र को अधिकार है। यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के दूसरे मन्त्र में परमेश्वर ने कहा है कि जिस प्रकार मैंने इस कल्याणकारिणी वाणी का सब मनुष्यों के लिये उपदेश किया है, ऐसा ही तुम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अति शूद्र को उसका उपदेश

देव शब्द के अर्थ

अग्निहोत्र करने का हेतु

वेद पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार

करते रहो। महाराज ने अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए कहा कि स्वार्थ फैल रहा है और वेदों के असत्य अर्थ करके जनता को ठगा जारहा है। वेद में जो अलङ्कार आये हैं उनकी पुराणों में कहानियाँ गढ़ली गई हैं और वह सत्य घटनाओं के रूप में लोगों के सामने रक्खी जाती हैं, जैसे इन्द्र का गौतम ऋषि की स्त्री से व्यभिचार करना, ब्रह्मा का अपनी पुत्री के पीछे कामातुर होकर भागना, इत्यादि। [इन्द्र नाम सूर्य्य

वैदिक अलंकार

का, गौतम चन्द्रमा का और अहिल्या रात्रि का है। रात्रि का पति चन्द्रमा है, जब सूर्य्य निकलता है तो रात्रि शोभाहीन होजाती है। यही उसके साथ जार कर्म्म करना है। उषा सूर्य्य की ही पुत्री है क्योंकि सूर्य्य के प्रकाश से ही उसकी उत्पत्ति होती है, उषा सूर्योदय से पहले दिखाई देती है उसके पीछे सूर्योदय होता है यही ब्रह्मा का अपनी पुत्री के पीछे भागना है]*

दूसरा व्याख्यान भी महाराज ने बावली साहब में वेद और वेदोक्त धर्म्म पर ही

पुनः उसी विषय पर व्याख्यान

दिया, क्योंकि पहले व्याख्यान में विषय समाप्त नहीं हुआ था। इस व्याख्यान में आपने वर्णन किया कि वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार है, जन्म पर निर्भर नहीं है। ब्राह्मण वह है जो ब्राह्मण के कर्म करे

वर्ण कर्म पर निर्भर है, न कि जन्म पर

अन्यथा वह शूद्र है। मनुष्यों का इसी जन्म में वर्णपरिवर्त्तन होसकता है, शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र होसकता है। धर्म्म खाने पीने में नहीं है, एक वर्ण दूसरे वर्ण के हाथ का छुआ वा पकाया हुआ

बालविवाह निषेध

भोजन न खावे, ऐसा प्रतिबंध वेदों में कहीं नहीं है। बालविवाह शास्त्र-विरुद्ध और अत्यन्त हानिकारक है। विधवाओं का पुनर्विवाह शूद्रों

पुनर्विवाह और नियोग

में और नियोग द्विजातियों में शास्त्रसम्मत है। मूर्तिपूजा सर्वांश में वेद-विरुद्ध है।

पौराणिकों में महाराज के व्याख्यानों से खलबली मच गई, उन्हें अपने जन्मसिद्ध अधिकारों के जाते रहने और जीविका छिन जाने का भय हुआ।

स्वामीजी के विरुद्ध अपवाद

वह महाराज के तीव्र आक्रमणों का उत्तर न दे सकते थे, साथ ही उन्हें सह भी न सकते थे। उनकी दशा उस सर्प कीसी थी जिसे कोई मनुष्य सता रहा हो, परन्तु वह उसे डस न सकता हो और रोष में भरकर बार २ भूमि पर अपना फन पटक रहा हो। उनसे जब कुछ न बन पड़ा तो वह महाराज के विरुद्ध अलीक और द्वेषपूर्ण जनरव फैलाने लगे। कभी उन्हें ईसाइयों का गुप्तचर बताते, कभी उन्हें नास्तिक और वेद-निन्दक ठहराते।

पौराणिक असफल प्रयत्न

लाहौर के प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित भानुदत्त और हरप्रसाद ने तथा फिल्लौर के प्रसिद्ध पं० श्रद्धाराम ने भाई नन्दगोपाल की धर्म्मशाला में महाराज के आक्षेपों के उत्तर देने का प्रयत्न भी किया और मूर्त्तिपूजा के मण्डन पर व्याख्यान भी दिये, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। जनता की

---

* इन तथा अन्य वैदिक अलङ्कारों के लिए देखो महाराजकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका तथा वेदभाष्य।

—संग्रहकर्त्ता.

रुचि और श्रद्धा महाराज के उपदेशों में बढ़ती ही गई। जब वह सब प्रकार से हतोत्साह, हतोद्यम और हताश होगये तो और भी ओछे हथियारों पर उतर आये। वह दीवान रतनचंद दाढ़ी वाले के पुत्र दीवान भगवानदास के पास गये जिनके बाग़ में महाराज ठहरे हुए थे और उनसे कहा कि दयानन्द को ईसाइयों ने उत्कोच देकर सब मनुष्यों को ईसाई बनाने के लिए नियत किया है, ऐसे नास्तिक को अपने बाग़ में ठहराने से आपको घोर पातक लगेगा। दीवान साहब उनकी बातों में आगये और उन्होंने महाराज से अन्य स्थान में जाकर ठहरने के लिए कहा। यहाँ क्या था महाराज तुरन्त उनके बाग़ से निकल खड़े हुए। उन्हें इसकी कुछ भी चिन्ता न हुई कि कहाँ जाकर ठहरेंगे। कहीं भी आश्रय न मिलता तो वह खुले मैदान में रहकर उपदेश करते और मन पर तनिक मैल न लाते। कोई पौराणिक हिन्दू तो उन्हें क्यों आश्रय देने वाला था, ब्राह्म लोगों ने भी उन्हें आश्रय न दिया. कारण यह कि महाराज के दो व्याख्यान ब्राह्म-मन्दिर में होचुके थे जिन में आपने ब्राह्म लोगों की आशा और सिद्धान्तों के प्रतिकूल वेदों का ईश्वरोक्त होना और आवागमन का सत्य होना सिद्ध किया था। इससे ब्राह्म लोगों के दो मुख्य सिद्धान्तों का खण्डन होता था जो उन्हें बहुत ही अखरा और वह भी महाराज से द्वेष करने लगे।

ओछे हथियारों का प्रयोग

निवासस्थान छोड़ दिया

इस अवसर पर जिसने महाराज को आश्रय दिया वह खानबहादुर डाक्टर रहीम खाँ थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी कोठी महाराज के लिए देदी। इस उदारता के लिए आर्यसमाज उनका सदा के लिये ऋणी रहेगा।

एक मुसलमान की शिष्टता

एक दिन एक पुरुष ने महाराज से कहा कि आप संन्यासी होकर संन्यास धर्म्म के के विरुद्ध कार्य करते हैं। महाराज ने पूछा, कैसे। उसने उत्तर दिया कि आप शिवजी की निन्दा करते हैं। महाराज ने कहा कि मैं उस कल्याणस्वरूप शिव का इतना सम्मान करता हूं जितना और कोई कर सकता है, हाँ आपके पाषाण के शिव की प्रतिष्ठा नहीं करता और न वह प्रतिष्ठा के योग्य है।

मैं पाषाण के शिव की प्रतिष्ठा नहीं करता

एक दिन पं० शिवनारायण अग्निहोत्री महाराज को अर्पण करने के लिए एक पुष्प लाये। महाराज ने उनसे कहा कि आपने यह बुरा किया, क्योंकि प्रकृति ने उसे जितने दिन तक सुगंधि फैलाने के लिए उत्पन्न किया था उससे पूर्व ही आपने उसे तोड़ डाला। अब यह शीघ्र सड़ जायगा और दुर्गन्धि फैलायगा। यदि यह वृक्ष पर रहता तो बहुतसे मनुष्यों को लाभ पहुँचाता और यदि स्वयं सूख कर गिरता तो खाद का काम देता।

पुष्प तोड़ा, बुरा किया

डाक्टर रहीमखाँ की कोठी में जाने से पूर्व एक दिन पं० मनफूल ने महाराज से कहा कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो हिन्दू भी आपसे अप्रसन्न न होंगे और महाराजा जम्मूँ व काश्मीर भी आपसे प्रसन्न होंगे।

प्रलोभन

पं० मनफूल को यह बात कहते हुए यह ध्यान नहीं रहा कि वह ऐसे महात्मा से बातें कर रहे हैं कि जिनकी दृष्टि में संसार के बड़े २ प्रलोभन तुच्छ और हेय हैं, जो बड़े से बड़े मनुष्य की प्रसन्नता के लिये वेदोक्त पथ से तिल भर भी विचलित नहीं हो सकते और जो उसकी अप्रसन्नता की अणुमात्र भी चिन्ता नहीं करते। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं महाराजा जम्मूँ व काश्मीर को प्रसन्न करूँ, अथवा ईश्वर की आज्ञा पालन करूँ जो वेद में अङ्कित है।

मैं महाराजा काश्मीर को प्रसन्न करूं वा ईश्वर को

एक दिन डाक्टर हूपर जो एक संस्कृतज्ञ पादरी थे महाराज के पास आये। वह दिन शङ्का-समाधान के लिये नियत था। डाक्टर रहीमखाँ की कोठी में आने के पश्चात् महाराज ने यह नियम कर दिया था कि एक दिन व्याख्यान देते थे और एक दिन शङ्का-समाधान करते थे। पादरी साहब से प्रश्नोत्तर संस्कृत में हुए थे जो निम्न प्रकार थेः—

पादरी हूपर से वार्त्तालाप

पादरी साहब—वेदों में अश्वमेध, गोमेध आदि का वर्णन है उस समय लोग घोड़े, गौ आदि की बलि देते थे। इस विषय में आप क्या कहते हैं ?

स्वामीजी—वेदों में अश्वमेध, गोमेध का अर्थ घोड़े, गौ आदि की बलि नहीं है। उनके अर्थ इस प्रकार हैं—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। श० १३। १। ६। २॥

अन्नं हि गौः। श० १३। ४। ३१। २२॥

घोड़े, गौ, आदि पशु तथा मनुष्य को मार कर होम करना कहीं नहीं लिखा है। केवल वाममार्गियों ने ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ किया है। यह बात वाममार्गियों ने चलाई और जहाँ २ ऐसा लेख है वहाँ २ इन्हीं लोगों ने प्रक्षिप्त किया है।

राजा न्याय से प्रजा का पालन करे यही अश्वमेध है। अन्न, इन्द्रियों, अन्तःकरण और पृथ्वी आदि को पवित्र करने का नाम गोमेध है। जब मनुष्य मर जाय तब उसके शव को विधिपूर्वक जलाने का नाम नरमेध है। व्याकरण और निरुक्त के प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है।

पादरी साहब—वेदों के अनुसार जातिभेद किस प्रकार है ?

स्वामीजी—वेदों में जाति गुण-कर्मानुसार है।

पादरी साहब—यदि मेरे गुण कर्म अच्छे हों तो क्या मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूँ ?

स्वामीजी—निस्सन्देह। यदि आप के गुण कर्म ब्राह्मण होने के योग्य हों तो आप भी ब्राह्मण कहला सकते हैं। देवेन्द्र बाबू ने पादरी हूपर को इस प्रश्नोत्तर के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा था। उसके उत्तर में पादरी साहब ने लिखा था कि मैंने स्वामी दयानन्द का एक व्याख्यान सुना था। व्याख्यान में उन्होंने कहा था कि जिस किसी को कोई प्रश्न पूछना हो वह व्याख्यान के पश्चात् पूछ सकता है। तदनुसार मैंने गोमाँस-भक्षण के विषय में उनकी सम्मति पूछी थी। उन्होंने यदि मुझे ठीक स्मरण है तो यह उत्तर दिया था कि यद्यपि मैं उसे पाप कह कर उसका निषेध नहीं कर सकता तथापि उसका खाना वाञ्छनीय नहीं है।

पादरी हूपर का असत्य विचार

[हमारी सम्मति में स्वामीजी के लिये गोमाँस-भक्षण को पाप न कहना ऐसा ही है जैसे दिन को रात कहना। क्या दयानन्द, जिसने गोरक्षा के लिये इतना अतुल प्रयत्न किया, जो गौ को देशोन्नति का बड़ा भारी साधन समझता था, जो अहिंसा धर्म्म का पालन करने वाला था, गोमाँस भक्षण को पाप न बतलाता ? समस्त शास्त्र, वैदिक और पौराणिक, प्राचीन और अर्वाचीन, एक स्वर से जिस गौ के वध को महापातक कहते चले आये हैं दयानन्द-सा शास्त्रज्ञ और शास्त्रनिष्ठ उसी गौ के माँस को जो बिना उसके वध के प्राप्त नहीं हो सकता, भक्षण करने में पाप न बताये ! ऐसा हो नहीं सकता, यह अचिन्तनीय है, यह असम्भव है।]

—संग्रहकर्त्ता

लाट साहब के मंत्री तथा शिक्षाध्यक्ष से मिलन

एक दिन महाराज पंजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर के सेक्रेटरी जे. ग्रिफिथ साहब से मिले थे और एक दिन पंजाब के डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन से भी मिले थे। सेक्रेटरी ने लेफ्टिनेण्ट गवर्नर से मिलने के लिये एक दिन स्थिर कर दिया। इसी सम्बन्ध में महाराज ने १४ मई सन् १८७७ को एक पत्र लाट महोदय को लिखा कि मैं आप से मिलने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जैसा कि आप के सेक्रेटरी ने स्थिर कर दिया है। इसके पश्चात् किसी तारीख को महाराज उनसे भेंट करने गये। लाट महोदय से महाराज ने यह प्रस्ताव किया कि मेरे वेदभाष्य की सरकार सहायता करे और उसे सरकारी कालेजों में पढ़ाया जाय। महाराज ने प्रचलित संस्कृत पाठविधि के दोष भी लाट महोदय को दिखाये थे और उन्होंने महाराज से एक पाठविधि बना कर भेजने का अनुरोध किया था जिसके अनुसार महाराज ने एक पाठविधि * बना कर भेज दी थी, परन्तु उसका कुछ परिणाम न निकला।

स्वामीजी लाट साहब से मिले

वेदभाष्य की सहायता का अनुरोध

पाठ-विधि बनाकर भेजी

पुनः अनुरोध

१४ मई सन् १८७७ को ही महाराज ने एक दूसरा पत्र पंजाब गवर्नमेन्ट को भेजा था जिसमें सरकार से अनुरोध किया था कि सरकार वेदभाष्य की धन से सहायता करे और वह सरकारी कालेजों में पढ़ाया जाय। लाट महोदय ने उस पत्र को पाकर दो प्रति वेदभाष्य के क्रय करने की आज्ञा दी और वेदभाष्य के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय करने का भार पंजाब विश्वविद्यालय की सेनेट और डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन पर अर्पित कर दिया।

सरकार वेदभाष्य की सहायता नहीं कर सकती

१४ नवम्बर सन् १८७७ के पत्र संख्या ४३१८ द्वारा महाराज को सूचना दी गई कि लेफ्टिनेंट गवर्नर ने आप के मनोरञ्जक वेदभाष्य पर पूरा विचार कर लिया है, परन्तु उन्हें शोक है कि वह ऐसा नहीं है जो प्रकाशन में सरकारी सहायता पाने का अधिकारी हो।

* दुःख है कि महाराज ने जो पाठविधि बनाकर पंजाब सरकार को भेजी थी, उसकी प्रतिलिपि भी नहीं रक्खी गई। यदि वह होती तो बड़ी उपयोगी होती। उससे प्रकट होता कि गुरुकुलों के अतिरिक्त आधुनिक सरकारी विद्यालयों में संस्कृत किस ढंग से पढ़ानी चाहिये और प्रचलित पाठविधि में क्या २ दोष हैं। —संग्रहकर्त्ता.

महाराज को उन विद्वानों की सम्मति किसी प्रकार ज्ञात हो गई जिनके पास पंजाब सरकार ने उनका वेदभाष्य सम्मति के लिये भेजा था। उन्होंने समालोचकों की सम्मतियों का उत्तर लिख कर आर्य्यसमाज लाहौर के पास भेज दिया कि इसका अनुवाद अंग्रेज़ी में करके सरकार के पास भेज दिया जावे।

सरकारी समालोचकों का उत्तर

महाराज का उत्तर निम्न प्रकार था:—

ग्रिफ़िथ साहब का उत्तर

मिस्टर ग्रिफ़िथ, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज बनारस के आक्षेपों का उत्तर—

मुझे इस बात के कहने की आज्ञा हो कि उसकी सम्मति की कोई २ बात उपेक्षा करने योग्य है। ५००० वर्ष से वेदों का अभ्यास नहीं रहा। महाभारत से पहले सब कार्य वैदिक रीति के अनुसार होते थे इसलिये वह सदा पढ़े जाते थे और जो शब्द उनमें आये हैं उनके ठीक अर्थ लिये जाते थे। अतः जो भाष्य उस समय किये गये थे, उन्हें पक्का मार्ग-दर्शक समझना चाहिये। सायण का भाष्य जो बहुत देर पीछे हुआ ऐसा नहीं हो सकता। पुराने भाष्य कण्ठस्थ किये जाते थे। कोई विद्यालय भी ऐसा न था जहां वेदों की व्याख्या न की जाती हो। पुराने भाष्यों के बिना वेदों की व्याख्या असम्भव है। मेरा भाष्य सर्वथा उन पर आश्रित है। जो मन्त्र अब तक छप चुके हैं उन पर मैंने उनके प्रमाण दिये हैं और जो कुछ मैंने लिखा है वह उन प्रमाणों के अनुकूल है। मुझे विश्वास है कि यदि मिस्टर ग्रिफ़िथ के पास वह पुराने भाष्य या वह प्रमाण होते जो मैंने दिये हैं तो वह उस सम्मति के सर्वथा विरुद्ध सम्मति न देते जो अब उन्होंने दी है। सायण, महीधर और उवट के भाष्य पूर्व समय के भाष्यों से सर्वथा भिन्न हैं और यही वह भाष्य हैं जिनका अबतक मैक्समूलर और विलसन ने अनुवाद किया है, इसलिये वह प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते और इन्हीं पुस्तकों का मिस्टर ग्रिफ़िथ आदि ने प्रमाण माना है और इन्हीं पुस्तकों से मि० ग्रिफ़िथ और अन्य समालोचक भ्रम में पड़े हैं। मुझ पर यह अभियोग लगाया गया है कि मैंने शब्दों के वह अर्थ लिये हैं जिनसे मेरा प्रयोजन सिद्ध होता है, परन्तु यह अभियोग ठीक नहीं है, क्योंकि मैंने स्थल स्थल पर ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त और पाणिनीय व्याकरण के प्रमाण दिये हैं। मैं ऐसा विचार करने से नहीं रुक सकता कि मिस्टर ग्रिफ़िथ ने मेरी पूरी पुस्तकें पढ़े बिना सम्मति दे दी है अन्यथा मैं नहीं जानता कि वह मेरे परिश्रम को व्यर्थ क्यों समझता है। मैंने वेदभाष्य के १००० से अधिक ग्राहक बना लिये हैं और मेरे वेदभाष्य के लिये प्रतिदिन बहुतायत से निवेदन-पत्र आ रहे हैं। मैं यह बात कह दूँ कि मेरे भाष्य के ग्राहकों में संस्कृत और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं के विद्वानों के नाम अङ्कित हैं। अन्त में मिस्टर ग्रिफ़िथ कहते हैं कि जिन मन्त्रों में प्रत्यक्ष में बहुत से देवताओं का वर्णन है उनका विद्वान् और अविद्वान् के लिये सन्तोषजनक उत्तर नहीं हो सकता। मैं चाहता था कि वह ऐसे कुछ मन्त्र उद्धृत कर देते और फिर देखते कि सन्तोषजनक उत्तर दिया जाता है वा नहीं। उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि में कोलब्रुक की पुस्तक 'दि वेदाज़' चार्ल्स कौलमैन की हिन्दू-माईथालोजी, रेवरेण्ड केरट की 'भगवद्गीता' और मैक्समूलर की 'हिस्ट्री आफ़ एंशेण्ट संस्कृत लिटरेचर' से निम्न उद्धरण दिये जाते हैं:—

१—साधारण रीति से देखने से ज्ञात हो जाता है कि वेद के देवता उतने ही थे

जितनों को प्रार्थनाओं के रचयिताओं ने आहूत किया है, परन्तु भारत की पवित्र पुस्तक के अति प्राचीन भाष्यों के अनुसार वह अनगिनत मनुष्यों और पदार्थों के नाम तीन देवताओं में घट जाते हैं और अन्ततः एक ईश्वर में। निघण्टु या वैदिक शब्द तालिका देवताओं की तीन सूचियों में समाप्त हो जाती है, पहले वह जो आग के समानार्थक हैं, दूसरे वह जो वायु के, तीसरे वह जो सूर्य्य के। निरुक्त के अन्तिम भाग में जिसमें देवताओं का ही वर्णन है यह दोनों वर्णन आये हैं कि सब तीन देवता हैं और यह एक ईश्वर को ही प्रकट करते हैं, और यह वेदों के कई मन्त्रों से सिद्ध होता है, और यह स्पष्ट और खुले रूप से वेद के इंडेक्स में निरुक्त और वेद के प्रमाण से प्रकट किया गया है। इससे प्रकट होता है (" "") कि भारत का पुराना धर्म्म जो कि भारत की पवित्र पुस्तक पर अवलम्बित है, केवल एक ही ईश्वर को मानता है।

२—हिन्दुओं के पूर्वपुरुषों का धर्म्म जो वेद में प्रकट किया गया है वह महान् और केवल एक ईश्वर में विश्वास और उसकी उपासना है जो सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है जिसके गुण वेद आतङ्कोत्पादक शब्दों में प्रकट करता है। यह गुण वह कहता है कि आलङ्कारिक हैं जो केवल अलङ्कार के रूप में उसकी तीन प्रकार की शक्तियों—सर्जन, धारण, संहरण—को प्रकट करते हैं।

३—यह उच्च बातें हमें विश्वास दिलाने से नहीं रुक सकतीं कि वेद केवल एक ईश्वर को मानता है जो कि सर्वशक्तिमान, अनन्त, अनादि, स्वयम्भू और सब सृष्टि का स्वामी है। मैं एक और सूक्त उद्धृत करता हूँ कि जिसमें ईश्वर के एकत्व को बल के साथ और खुले तौर पर वर्णन किया गया है कि जो आर्य जाति को स्वाभाविक एकेश्वरवादी न कहने से पहले हमें संकोच में डाल देता है।

४—इसी सूक्त में एक और मन्त्र है कि जो खुले तौर पर एक ईश्वर के अस्तित्व को प्रकट करता है। "वह ईश्वर कई नामों से पुकारा जाता है। मेधावी पुरुष उसे इन्द्र, मित्र, वरुण कहते हैं, फिर वह अच्छे पंखों वाला (सुपर्ण) दिव्य गरुत्मान् है। उस एक को मेधावी पुरुष कई प्रकार से कहते हैं—अग्नि, यम, मातरिश्वा।

मिस्टर टानी प्रिंसिपल प्रेसिडेंसी कॉलेज कलकत्ता-ऋग्वेद के पहले मन्त्र में अग्नि शब्द है और मिस्टर टानी उसका अनुवाद 'आग' करते हैं, परन्तु उन्हें उनकी पूर्व स्थिरीकृत सम्मति भ्रम में डालती है कि आग भी उपासना की वस्तु है। अग्नि तत्व की उपासना कभी किसी ऋषि ने नहीं की। अग्नि शब्द प्राकृतिक अग्नि के अर्थों में केवल उन्हीं मन्त्रों में आता है जिनमें सांसारिक व्यवहार का वर्णन है। परन्तु अन्य मन्त्रों में जिनमें प्रार्थना, उपासना का वर्णन है यह ईश्वर का एक नाम है और यह मेरी गढ़न्त वा कल्पना नहीं है, प्रत्युत इसके दोनों अर्थ ब्राह्मणों और निरुक्त में स्पष्टतया प्रकट हैं। अन्त में मिस्टर टानी ने यह सम्मति दी है कि मेरा वेदभाष्य सायण और अंग्रेजी के भाष्यों का खण्डन करता है। इसके कारण मुझ पर कोई दोष नहीं आ सकता। यदि सायण ने भूल की है और अंग्रेजी अनुवाद-कर्त्ताओं ने उसे अपना मार्गप्रदर्शक बनाना अच्छा समझा है तो यह भ्रान्ति अधिक समय तक नहीं रह सकती, केवल सचाई ही ठहर सकती है और झूठ उन्नतिशील सभ्यता की कसौटी पर अवश्य गिरेगा।

पण्डित गुरुप्रसाद, हेड पण्डित ओरिएण्टल कालेज लाहौर—

पण्डितजी कहते हैं कि छापने वाले ने वही छाप दिया जो उसे दिया गया। यह ऐसा ही लिखना है कि छापे वाले की भूल भी मेरी ही भूल है।

मुझ पर यह दोष लगाया है कि मैं अपना एक मत गढ़ता हूं। मुझे शोक है कि इस बात से उनकी वेदों से अनभिज्ञता प्रकट होती है। यदि उन्होंने प्राचीन भाष्य पढ़े होते तो वह उन युक्तियों के होते हुए जो पहले दी गई हैं ऐसा कभी न कहते।

मुझ पर यह दोष लगाया जाता है कि मैंने वृत्र, इन्द्र, नहुष के अपने अर्थ लगाये हैं। इस आक्षेप के उत्तर में मैं उसका वेदभाष्य के विज्ञापन की ओर ध्यान दिलाता हूं जिसमें इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या की गई है, और जिसकी एक प्रति साथ में नत्थी है। यह केवल उनकी प्राचीन संस्कृत की अनभिज्ञता का परिणाम है।

वह मेरी व्याकरण की अशुद्धि निकालते हैं। मुझ पर परस्मैपद के स्थान में आत्मनेपद के प्रयोग का दोष लगाते हैं। इस बात का विश्वास दिलाने के लिये कि वह व्याकरण की बातों में अत्यन्त भूल में हैं मैंने कैयट, नागेश, रामशरणाचार्य, अनुभूतिस्वरूपाचार्य के चार वाक्य-खण्ड दिये हैं जो मेरे 'वेदमधीमहि' के प्रयोग का ठीक होना प्रकट करते हैं। वदामहे के प्रयोग के लिए मैंने पाणिनि की अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के तीसरे पाद के ४७ वें सूत्र* का प्रमाण दिया है।

जो लक्षण छन्दों का मैंने लिखा है इस पर भी आक्षेप है। यह सब आक्षेप उनके हास्यजनक हैं! यदि मैं अपने कथन के लिये प्रमाण दूँ तो यह छोटासा खर्रा भर जायगा। मैं पिङ्गल के सूत्रों से केवल एक उपयुक्त प्रमाण देने पर ही सन्तोष करूँगा और उसके भाष्यकर्त्ता भट्ट हलायुध से एक उदाहरण दूँगा।...........

पं० हृषीकेश, सेकण्ड टीचर ओरिएंटल कालेज लाहौरः—

ऐसा ज्ञात होता है कि पं० हृषीकेश ने पं० गुरुप्रसाद का पदानुसरण किया है। जिनके आक्षेपों का उत्तर दे दिया गया है। वह 'अपचकृत' शब्द पर आक्षेप करते हैं। मैं इस बात को प्रकट करने के लिये कि मेरा प्रयोग ठीक है केवल पाणिनि अ० १। पा० ३। सू० ३२। † का प्रमाण देता हूँ।

पं० भगवानदास, प्रोफेसर संस्कृत कालेज लाहौर—

पं० भगवानदास किसी नई बात का उल्लेख नहीं करते और इसलिये जो कुछ मैं पहले कह चुका हूँ उसी की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ।

अन्त में मुझे यह कहने की आज्ञा हो कि इन सारे आक्षेपों का बल मेरे वेदभाष्य के विद्यालयों में प्रचरित होने के विरुद्ध लगाया गया है। परन्तु मेरे न्याय-विधाता बड़ी भूल करते हैं। मेरा वेदभाष्य महाभारत से पहले के भाष्यों के प्रमाणों द्वारा योरोपीय विद्वानों के भाष्यों के विरुद्ध अन्वेषण की प्रबल सामग्री उपस्थित करेगा जो सत्य को प्रकट

---

* भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः। अ० १।३।४७॥

† गन्धनावक्षेपण......कथनोपयोगेषु कृञः। अ० १।३।३२॥

करेगा और विद्यालयों के चरित्रसंबंधी स्वर को उन्नत करेगा। यतः यह ऐसा करेगा इसलिये यह सरकार की पृष्ठ-पोषकता का अधिकारी है।

पश्चात् सरकार ने स्वामीजी के निवेदन-पत्र को पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल, काशी और मद्रास में सम्मत्यर्थ भेज दिया, परन्तु इन सब ने भाष्य के विरुद्ध सम्मति दी जैसा कि उपरि लिखित से प्रकट होता है। यतः उन्हें सायण, महीधर के भाष्यों के पक्ष में दुराग्रह था, सफलता न हुई।

२५ अगस्त सन् १८७७ को आर्य्यसमाज लाहौर के कतिपय सभासदों ने भी एक आवेदन-पत्र पञ्जाब सरकार की सेवा में भेजा था जिसमें यह दिखाते हुए कि किस प्रकार वेद के अभ्यास में महाभारत के पश्चात् बौद्धधर्म्म के प्रचार और पौराणिक शिक्षा के विस्तार और मुसलमानों के अत्याचार के कारण उत्तरोत्तर न्यूनता आती गई थी और कि सायण आदि के भाष्य इसी काल की प्रसूति होने के कारण पौराणिक विचारों से पूर्ण हैं, निम्न लिखित कारण दयानन्द वेदभाष्य की सहायता करने के लिये दर्शाये थेः—

१—यदि भारत का वाङ्मय नैसर्गिक रीति पर चले तो अवश्यमेव वेदों से आरम्भ होगा और इसलिये वेदों का प्रचार अत्यन्तावश्यक है।

२—इस वेदभाष्य के प्रकाशित होने से जो खोज का भाव उत्पन्न होगा उस की उन्नति में सहायता होगी।

३—वेदविद्या का प्रसार हिन्दू मस्तिष्क को मिथ्या विश्वास और अविद्वानोचित हठ से मुक्त करेगा।

४—स्वामी दयानन्द का भाष्य बड़े प्रबल प्रमाणों की भित्ति पर है, जिन प्रमाणों को योरोपीय विद्वान् भी स्वीकार करते हैं यद्यपि वह उन्हें अभीतक काम में नहीं लाते।

५—यतः स्वार्थपर ब्राह्मणों और भ्रान्तिपूर्ण अभिज्ञता रखने वाले योरोपीय विद्वानों से संप्रति निष्पक्ष सम्मति मिलने की आशा नहीं है इसलिये इस दशा में उक्त भाष्य को परीक्षा का अवसर मिलना चाहिये।

इस पत्र में उन्होंने योरोपीय विद्वानों के अधूरे वैदिक ज्ञान को प्रकट करने के लिये यह भी दिखाया थाः—

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः॥
उत नः सुभगा अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि। (ऋ० १।४।५।७)

इस मन्त्र के छः विद्वानों ने छः प्रकार से भिन्न २ अर्थ किये हैं ऐसी अवस्था में किसे ठीक माना जाय। मैक्समूलर ने अपने अनुवाद के संबन्ध में स्वयं लिखा है कि मेरा अनुवाद कई जगह शुद्ध करने योग्य है। इस के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने अपने अर्थों को वेदों, ब्राह्मणों, निरुक्त, निघण्टु, अष्टाध्यायी आदि के प्रमाणों और प्रबल युक्तियों से सिद्ध किया है। *

* दयानन्द-प्रकाश में स्वामीजी का पंजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर से वेदभाष्य की सहायता के लिये मिलना और प्रार्थना करना, सन् १८७८ की घटना बताई गई है। यह सत्य नहीं है।—संग्रहकर्त्ता,

[परन्तु सरकार में कुछ सुनाई न हुई और ऋषिभाष्य की सहायता में एक भंभी न मिली। क्या योरोप के और क्या भारत के सभी विद्वान् सायण, महीधरादि के क्रीत-दास हैं। वह अपने और अपने गुरुओं के विरुद्ध दयानन्द की बात कैसे सुनते और सरकार को सुनने देते? फिर भारत के विद्वानों की बपौती कैसे रहती जो सायणादि अपने असत् भाष्यों द्वारा स्थापित कर गये हैं! और योरोपीय विद्वानों को तो बिल्कुल ही किरकिरी हो जाती, जन्म २ का परिश्रम मिट्टी में मिल जाता। फिर उन्हें संसार को वेदों के विषय में मिथ्या बातें कहने और प्रचार करने का अवसर कैसे प्राप्त रहता और यह भ्रम कैसे फैलाते कि प्राचीन आर्य आग, पानी, वायु, सूर्य, चन्द्र की उपासना करते थे, आदि।

विद्वानों ने दयानन्द के भाष्य को तिरस्कारा सही, परन्तु समय आचुका है कि जब स्वयं उनमें से ही ऐसे लोग उत्पन्न होंगे जो दयानन्द के चरणों में बैठने से अपना गौरव समझेंगे और ऋषिभाष्य के आगे नवीन कालीन सभी भाष्यों को हेय समझेंगे।

लाहौर की स्थिति के समय कालेज के कुछ विद्यार्थी महाराज के पास संस्कृत पढ़ने आया करते थे उनमें एक नव-युवक गणपतिराय भी था। उससे

तुम विवाह न करना

महाराज ने कहा था कि तुम विवाह न करना क्योंकि तुम्हारी आयु ३० वर्ष के भीतर है। उसने यह सुन कर विवाह का विचार त्याग दिया, परन्तु फिर पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के आग्रह पर उसे विवाह करने पर विवश होना पड़ा। किन्तु वह २८ वर्ष की आयु में ही मृत्यु का ग्रास होगया। उसने मरण समय कहा कि स्वामीजी ने पहले ही कह दिया था कि मेरी आयु अल्प है इसी से मैं विवाह करना नहीं चाहता था। यह घटना स्वयं उसके भाई ताराचन्द ने पण्डित लेखराम से वर्णन की थी जो उस समय मुज़फ़्फ़रपुर में पुलिस विभाग में क्लर्क थे।

मूर्त्ति-पूजक ब्राह्मणों के नेता पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी थे। उन्होंने महाराज के आक्रमणों से मूर्त्ति-पूजा आदि की रक्षा करने के लिए सनातनधर्म्म-

सनातनधर्मरक्षिणी सभा

रक्षिणी सभा स्थापित की थी जिसमें उनके सहायक पण्डित भानुदत्त थे। इन भानुदत्तजी की कथा बड़ी मनोरञ्जक है और उससे पता लगता है कि स्वार्थ में फँस कर मनुष्य कहाँतक गिर सकता है।

पण्डित भानुदत्त की कलाबाज़ी

उनके विषय में ब्राह्मसमाज लाहौर के समाचार पत्र 'बिरादरे हिन्द' भाग ३ के अङ्क ६ के पृष्ठ १८२-१८६ में निम्न प्रकार लिखा गया था:—

"...पण्डित भानुदत्त एक ऐसी सभा (सत्सभा) के आचार्य्य थे जिसका प्रकट में उद्देश्य लोगों में निराकार ईश्वर की उपासना का प्रचार करना था और वह स्वयं भी यहाँ के पढ़े लिखे लोगों में इस विचार के लिये प्रसिद्ध हो रहे थे कि वह मूर्त्ति-पूजा के मार्ग को अच्छा नहीं जानते हैं और आरम्भ में जब स्वामी दयानन्दजी यहाँ पधारे तो यह उनके यहाँ भी आते जाते थे। सभा के समस्त पण्डितों ने एक मुख होकर उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि जान पड़ता है कि आप भी पण्डित दयानन्द सरस्वती का मत रखते हो। पण्डितों का यह कहना था कि पण्डितजी घबराये और बोले कि मेरा मत उनके अनुकूल क्यों होने लगा था, मेरा मत वही है जो आप लोगों का है। अतः आप यदि उनके प्रतिकूल कुछ कह-

लाना चाहें तो मैं हृदय से आप की सहायता के लिये उपस्थित हूँ। इस बात को सुन कर सब उपस्थित गण प्रसन्न होगये और पण्डितजी सभा के मन्त्री नियत किये गये।"

"जब पण्डितजी के उस सभा में जिसका उद्देश्य मूर्त्ति-पूजा को स्थिर रखना और वेदों से उसे विहित सिद्ध करना है सम्मिलित होने की सूचना लोगों को मिली तो उनके सुशिक्षित मित्रों को जो उनके विचारों को भली प्रकार जानते थे अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ। विशेषतः हमें आश्चर्य्य के अतिरिक्त दुःख भी हुआ, क्योंकि पण्डितजी हमारे बड़े कृपालु मित्र थे और जब कभी हमारा उनसे इस विषय में वार्त्तालाप होता था तो वह मूर्त्ति-पूजा का समर्थन न करते थे, यहाँतक कि कुछ दिन हुए उन्होंने हमसे यह भी कहा था कि पण्डित दयानन्द सरस्वती चाहते हैं कि मैं उनके साथ रहूँ और प्रचारक के रूप में उनके साथ २ लोगों को उपदेश देने में इस जातीय कार्य्य में उनका समर्थक और सहायक बनूँ, परन्तु मैं पारिवारिक मोह में कुछ ऐसा फँसा हुआ हूँ कि यद्यपि वह मेरे और मेरे परिवार के पर्याप्त निर्वाह का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं और मेरा हृदय भी इस कार्य्य को बहुत चाहता है, तथापि मुझ में इतना साहस उत्पन्न नहीं हुआ कि मैं इस उत्तम कार्य्य में उनका सहायक बन सकूँ।"

अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ

एक दिन पण्डित मथुरादास वेदान्ती से महाराज का वेदान्त के महावाक्यों पर वार्त्तालाप हुआ। महाराज ने कहा कि 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्य वेदों में नहीं आया है, प्रत्युत उपनिषद् में आया है और वहाँ भी यदि उसे अगले शब्दों से मिलाकर पढ़ा जाय तो यह आशय नहीं निकलता कि जीव ब्रह्म है जिससे पण्डितजी का सन्तोष होगया।

शिवनारायण अग्निहोत्री का असद् व्यवहार

एक दिन महाराज भाई दत्तसिंह वेदान्ती से वार्तालाप कर रहे थे; पं० शिवनारायण अग्निहोत्री भी वहाँ उपस्थित थे। एक अवसर पर पंडितजी बोल उठे कि स्वामीजी उत्तर न दे सके और हार गये। महाराज ने कहा कि बताइये हमने क्या कहा था ?

पण्डितजी ने कुछ कहा।

स्वामीजी—(भाई दत्तसिंह को संबोधन करके) क्या हमने यही कहा था ?

भाई - आप ने यह नहीं कहा, पण्डितजी ने कुछ नहीं सुना।

स्वामीजी—भला बताइये तो सही भाई दत्तसिंहजी ने क्या कहा था ?

पण्डितजी फिर कुछ बोले।

भाई - मैंने यह नहीं कहा।

स्वामीजी—पण्डितजी! आप विना सोचे समझे सम्मति दे देते हैं।

इस पर पण्डित शिवनारायण अप्रसन्न हो गये।

स्वामीजी का विस्तृत साहित्य ज्ञान

महाराज का संस्कृत के धार्मिक साहित्य का ज्ञान कितना विस्तृत था और उन्हें ग्रन्थ कितने उपस्थित थे इस का प्रमाण निम्न लिखित घटनाओं से मिलता है:—

एक दिन पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री ने आक्षेप किया कि सामवेद में उल्लू की

कहानी है। महाराज ने कहा कि नहीं है और सामवेद की पुस्तक उन्हें देकर कहा कि यदि है तो इस में दिखा दो। कुछ देर तक पुस्तक देख कर बोले कि इस में तो नहीं मिलती। इस पर महाराज तो चुप रहे, परन्तु अन्य लोगों ने पण्डितजी को बहुत लज्जित किया।

सामवेद में उल्लू की कहानी

ऐसे ही एक बार मूर्त्ति-पूजा पर बात चीत करते हुए एक पण्डित ने मूर्त्ति-पूजा के समर्थन में एक श्लोक पढ़ कर कहा कि मनुस्मृति में मूर्त्ति-पूजा का विधान है। महाराज ने कहा कि यदि मनुस्मृति में यह श्लोक न निकला तो क्या आप मूर्त्ति-पूजा छोड़ देंगे और मनुस्मृति की पुस्तक उन्हें देकर कहा कि इस में से उक्त श्लोक निकाल कर दिखाइये। पण्डितजी ने कहा कि हम आप की पुस्तक का प्रमाण नहीं करते अपनी पुस्तक में देखेंगे। तीसरे दिन पण्डितजी फिर महाराज के पास आये। महाराज ने उन से प्रश्न किया कि आप की पुस्तक में वह श्लोक निकला वा नहीं तो पण्डितजी को मानना पड़ा कि वह मनुस्मृति का नहीं था।

मनुस्मृति में मूर्तिपूजा

इसी प्रकार एक बार एक पण्डित ने एक श्लोक पढ़ कर महाराज से कहा कि देखिये योगवासिष्ठ में मूर्त्ति-पूजा की आज्ञा है। महाराज ने कहा कि यद्यपि हम योगवासिष्ठ को प्रामाणिक नहीं मानते परन्तु आप के श्लोक में आधा योगवासिष्ठ का है और आधा अन्य किसी का रचित है। योगवासिष्ठ को देखा गया तो ऐसा ही पाया गया।

योगवासिष्ठ में मूर्तिपूजा

एक दिन एक पण्डित ने वेद का 'आ यान्तु नः पितरः सोम्यासः' आदि मन्त्र पढ़ कर मृतक श्राद्ध को वैदिक सिद्ध करने की चेष्टा की। महाराज ने उस के अर्थ कर के बतलाया कि इसका मृतक श्राद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर पण्डितजी को और कोई उत्तर तो बन न आया, केवल इतना कहा कि आप के अनुयायियों में से एक भी ऐसा नहीं है जो एक मन्त्र भी शुद्ध पढ़ सके। इसे सुन कर पं० बिहारीलाल शास्त्री ने पण्डितजी का उद्धृत मन्त्र शुद्ध पढ़ कर सुना दिया और स्वयं पंडितजी को उच्चारण की अशुद्धियाँ प्रकट करदीं।

मृतक श्राद्ध पर वेद मन्त्र

एक दिन दोपहर के समय कुछ स्त्रियाँ महाराज के दर्शन करने आईं और पूछा कि ज्ञान और शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती हैं महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पति ही तुम्हारे गुरु हैं। उन्हीं की सेवा किया करो, किसी साधु को गुरु मत बनाओ, विद्या पढ़ो। अपने पतियों को हमारे पास भेजा करो और उन के द्वारा हमारे उपदेश से लाभ उठाया करो।

स्त्रियों को उपदेश

महाराज ने कई दिन तक डाक्टर रहीमखाँ की कोठी में अपने जीवन की घटनाएँ वर्णन की थीं जिनमें से तीन निम्न लिखित घटनाएँ दयानन्द-प्रकाश में लिखी हैं:—

आत्मचरित वर्णन

एक बार गङ्गा तट पर विचरते हुए स्वामीजी एक सघन वन में जा निकले। वहां उन्हें सामने से एक सिंह आता हुआ दिखाई दिया। वह सीधे चलते रहे जब वह उस सिंह के निकट पहुँचे तो उसने उन की ओर देख कर मुँह फेर लिया और जंगल में घुस गया।

सिंह मुझे देख कर मुँह फेर कर चला गया

एक बार महाराज एक पर्णकुटी में निवास करते थे। समीप ही कुछ साधुओं का भी डेरा था। वह साधु उन से अकारण वैर रखते थे। एक दिन रात्रि के समय जब कि घोर अन्धकार छाया हुआ था वह पर्णकुटी के पास गये और स्वामीजी को वध करने का परामर्श करने लगे। स्वामीजी ने भी उन की बातें सुन पाईं। उन लोगों ने थोड़ी देर पीछे कुटी में आग लगा दी। जब वह जलने लगी तो स्वामीजी छप्पर को उठा कर बाहर निकल आये।

पर्णकुटी में आग लगादी

एक दिन महाराज काशी में व्याख्यान दे रहे थे कि एक ब्राह्मण ने उन्हें पान लाकर दिया। उन्होंने सरल स्वभाव से लेकर खालिया। खाते ही उन्हें ज्ञात हो गया कि उस में विष था। तब उन्होंने वमन द्वारा विष को शरीर से निकाला। दुःख है कि किसी को उस समय इतनी बुद्धि न हुई जो उन घटनाओं को लिख लेता। संभव है उन में उपर्युक्त घटनाओं के समान बहुत सी घटनाएँ ऐसी हों जिन का उल्लेख महाराज के स्वलिखित आत्म-चरित में न आया हो। आर्य्यसमाजियों की ओर से इस विषय में जो कर्तव्यच्युति हुई है वह कदापि क्षन्तव्य नहीं है। यदि पूना के सज्जनों ने वहाँ वर्णित किये हुए महाराज के चरित को लिपिबद्ध न किया होता और कर्नल आलकाट के अनुरोध पर महाराज ने आत्मचरित न लिखा होता तो आज संसार उन के उपदेश-युग के पूर्व के वृत्तान्त के ज्ञान से सर्वथा वञ्चित रह जाता। अतः पूना के सज्जन और कर्नल आलकाट सदैव के लिये आर्य्य-जनता के धन्यवाद के पात्र रहेंगे।

पान में विष

आर्यसमाजियों की कर्त्तव्यच्युति

लाहौर में भी महाराज के मूर्त्ति-पूजा के खण्डन का वही प्रभाव और परिणाम हुआ जो अन्य स्थानों में हुआ था। अनेक लोगों का विश्वास मूर्त्ति-पूजा के ऊपर से उठ गया, अनेक लोगों ने अपनी देव-मूर्त्तियों को फेंक दिया, कितनों ने रावी नदी में डाल दिया। इन्हीं लोगों में एक जन लाला बालकराम खत्री थे जिन्होंने अपने ठाकुरों की चौकी बाजार में पटक दी थी।

उपदेश का प्रभाव

जब महाराज के दो मास के उपदेशों से श्रोताओं की शङ्काएँ निर्मूल हो गईं तो वैदिक धर्म्म में उन की श्रद्धा बढ़ी और उन की रुचि आर्य-समाज स्थापित करने की हुई। महाराज ने भी यह अनुरोध किया कि वैदिक धर्म्म की उन्नति के लिए आर्य-समाज का नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में स्थापित होना आवश्यक है। श्रद्धालु जन ने इस प्रस्ताव को प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार किया और ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् १९३४ वि० तदनुसार तारीख २४ जून सन् १८७७ को आर्य्यसमाज लाहौर की स्थापना हो गई। इस की स्थापना डाक्टर रहीमखाँ की कोठी में हुई। पहले महाराज ने ईश्वरोपासना की और फिर हवन हुआ। तत्पश्चात् नियमपूर्वक आर्य्यसमाज की नींव रक्खी गई। लाहौर आर्य्यसमाज की स्थापना के संबंध में एक विशेष बात यह है कि जो नियम आर्यसमाज के बंबई में बने थे वह संख्या और विस्तार में अधिक थे और उन में कितनी ही बातें ऐसी थीं जो उपनियमों मे जानी

आर्य्यसमाज लाहौर की स्थापना

चाहिए थीं, क्योंकि वह आर्य्यसमाज के उद्देश्य और मन्तव्य से नहीं प्रत्युत आर्य्यसमाज के संगठन और सदस्यों के परस्पर व्यवहार से सम्बन्ध रखती थीं। अतः महाराज ने उनका संशोधन करना उचित समझा और उनके स्थान में निम्न लिखित दस नियम प्रचरित किये।

आर्यसमाज के नियम–

१—सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म्म है।

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—हर एक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

कई लोग कहते हैं कि महाराज ने इन नियमों का निर्माण अन्य सज्जनों की सहायता और मन्त्रणा से किया था, परन्तु उनकी यह धारणा असत्य है।*

आज यही नियम सब आर्यसमाजों में प्रचलित हैं और दयानन्दप्रवर्तित आर्य्य-समाज ही वह है, जो इन नियमों को स्वीकार करता हो।

आर्यसमाज लाहौर का दूसरा अधिवेशन १ जुलाई सन् १८७७ ई० को सत्सभा के

* दयानन्द प्रकाश में लिखा है कि ब्राह्मसमाज के सभासदों ने महाराज से कहा था कि यदि आप तीसरा नियम न रक्खें तो हम भी आर्यसमाज में सम्मिलित हो सकते हैं। महाराजने उन के कथन को स्वीकार न किया।

राय मूलराज ने महाराज को सम्मति दी कि तीसरे नियम में यह वाक्य लिखा है कि वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है, इस में से यदि सत्य शब्द निकाल दिया जाय तो नियम बहुत व्यापक हो जायगा और किसी को आर्यसमाज में प्रवेश करने में संकोच न होगा, परन्तु स्वामीजी ने उनकी बात न मानी।

सत्सभा वाले रुष्ट होगये

स्थान पर हुआ। उसमें महाराज ने पुराणों का बड़ी प्रबल युक्तियों से खण्डन किया और उनकी वेद-विरुद्ध बातों को दर्शाकर उनकी समीक्षा की। इस पर सत्सभा वाले रुष्ट होगये और ३ जुलाई सन् १८७७ ई० को अन्तरङ्ग सभा आर्यसमाज लाहौर के सदस्यों को एक पत्र लिखा कि "स्वामीजी

रुष्ट होने का परिणाम

ने गत रविवार को अपने व्याख्यान में शास्त्रों और पुराणों को मानना अविहित बताया है और यह बात सत्सभा के सिद्धान्तों के विरुद्ध है, वल्कि इसी कारण से कई लोगों में झगड़ा खड़ा हो गया है और साधारण दुकानदार लोग जो सत्सभा के सिद्धान्तों पर अपना विश्वास रखने लगे थे, इस बात के सुनने और देखने से फिरे हुए दिखाई देते हैं और सत्सभा जो स्थापित हुई है सर्वथा जन-साधारण की भलाई के उद्देश्य से है अतः आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा से निवेदन है कि अगले रविवार को जो उस समाज वालों की उपासना इस मकान में एकत्रित होकर नियत की गई है, किसी अन्य मकान में की जावे ………।"

जब सत्सभा ने आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों के लिये अपना स्थान देने से निषेध कर दिया तो अनारकली मुहल्ले में एक मकान २०) रु० मासिक

आर्यसमाज की उन्नति

किराये पर लिया गया और उसमें अधिवेशन होते रहे। आर्यसमाज के सभासदों की संख्या अल्प समय में ही १०० तक पहुँच गई और जुलाई के अन्त से पहले पहले ३०० के लगभग हो गई।

महाराज अपने स्थितिकाल में आर्यसमाज में बहुधा व्याख्यान देते रहे। एक दिन बा० शारदाप्रसाद भट्टाचार्य ने अन्य सभासदों की अनुमति से आर्य

मैं आर्यसमाज का संरक्षक नहीं बन सकता

समाज के अधिवेशन में यह प्रस्ताव किया कि महाराज को आर्यसमाज लाहौर के संरक्षक वा अधिनायक की पदवी दी जावे, अन्य सभासद् भी सहमत होगये, परन्तु महाराज ने उसे अस्वीकार किया और कहा कि इसमें गुरुपन की गन्ध आती है और मेरा उद्देश्य ही गुरुपन को तोड़ने का है, न कि स्वयं गुरु बनकर एक नया पन्थ स्थापित करने का। यदि कल को इस पदवी से मेरा ही मस्तिष्क फिर जाय अथवा ऐसा न हो और मेरा स्थानापन्न घमण्ड में आकर कोई (अन्यथा) कार्य करने लगे तो तुम लोगों को बड़ी कठिनता होगी और वही दोष उत्पन्न हो जायंगे जो दूसरे नवीन पन्थों में हो गये हैं।

इसके पश्चात् यह प्रस्ताव हुआ कि महाराज को आर्यसमाज लाहौर के परम सहायक की पदवी दी जाय। इसे भी महाराज ने अस्वीकार किया और

परम सहायक की पदवी भी अस्वीकृत

कहा कि यदि मुझे परम सहायक मानोगे तो उस जगदीश, जगद्गुरु सर्वशक्तिमान् को क्या मानोगे। अन्त में सभासदों के आग्रह पर आपने साधारण सहायक (सभासद्) बनाना स्वीकार किया

केवल सभासद बनालो

और अन्य सभासदों की भाँति आप का शुभ नाम भी सभासदों की सूची में अङ्कित किया गया।

एक दिन महाराज आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में पधारे। उस समय ईश्वरो-

उपासना धर्म का निरादर न करो

पासना हो रही थी। महाराज को आता देखकर सब लोग सम्मान प्रदर्शनार्थ खड़े हो गये। उपासना की समाप्ति पर महाराज ने उपदेश दिया कि उपासनाकाल में उपासक ईश्वर के सत्संग में मग्न होते हैं। ऐसे समय में कोई कितना ही बड़ा मनुष्य आवे उपासकों को खड़े न होना चाहिये क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है, अतः ऐसा करने से उपासना-धर्म का निरादर होता है।

दयानन्द का वास्तविक स्वरूप

संसार में कितने लोगों ने अपने को ईश्वर का सन्देशहर कह कर अपने नाम से पन्थ चलाये और आज उनके लाखों करोड़ों अनुयायी दृष्टिगोचर होते हैं। कितनों ने गुरु बन कर अपने चेले चेलियों की बुद्धि की आँखों पर पट्टी बाँधी और उनका तन, मन और धन हड़प किया। कोई २ तो इतने बढ़े कि स्वयं परमेश्वर बन बैठे और लाखों मनुष्यों को अज्ञान के घोर अन्धकार में ढकेल दिया। एक ओर यह लोग हैं और एक ओर दयानन्द है, लोग उसे गुरु बनाना चाहते हैं और वह इन्कार करता है और उन्हीं के समान धर्म का साधारण सेवक कहलाने में ही सन्तुष्टि लाभ करता है। हम देखते हैं कि योग की अति साधारण क्रियाओं के द्वारा कई लोग गुरु बने बैठे हैं और शिष्य-मण्डली के हृदय और मस्तिष्क के स्वामी बने हुए हैं। परन्तु एक दयानन्द है जो पूर्ण योगी, पूर्ण विद्वान् होता हुआ भी गुरु बनने से भागता है। निःस्पृहता, निरभिमान की पराकाष्ठा है। यह है दयानन्द का वास्तविक स्वरूप। दयानन्द जो कुछ था वह औरों के लिये, अपने लिये कुछ नहीं। फिर हम श्रद्धा भक्ति से नमस्कार क्यों न करें, क्यों उसके चरण-रज को मस्तक पर लगा कर अपने को गौरवान्वित न समझें। दयानन्द कितना निर्लेप था इसके विषय में हम

दयानन्द की निर्लेपता

कलकत्ता के 'ब्राह्म पत्र' धर्मतत्व १ आग्रहायण शाक १७९९ के अङ्क से एक उद्धरण देते हैं, जिसमें लेखक ने दयानन्द के वेष आदि के सम्बन्ध में कुछ शङ्का की थी:—

"पण्डित दयानन्द सरस्वती के वाह्य वेष और आचार व्यवहार में बहुत परिवर्तन हो गया है। इस समय वह अन्य हिन्दू संन्यासियों के समान नहीं हैं। भद्र लोक के समान खान पान और भद्र परिच्छद व्यवहार करते हैं। स्वामीजी का इस प्रकार का घोर परिवर्तन कहाँ तक मङ्गलप्रद होगा यह भविष्यत् के गर्भ में छिपा हुआ है।"

जो लोग दयानन्द के चरित्र से पूर्णतया अभिज्ञ न थे वह ही उसके रहन सहन में इस प्रकार के परिवर्तन से यह शङ्का करने लगे थे कि स्वामी दयानन्द सांसारिक बन्धनों में फंस कर वैराग्य पथ से विचलित हो जायेंगे। उनकी यह शङ्का सर्वथा निर्मूल थी। दयानन्द तो जैसा दिगंबर अवस्था में था वैसा ही वस्त्र धारण करने की अवस्था में था। वह पूर्णज्ञानी और योगी था। उसके हृदय को संसार का वैभव विडोलित नहीं कर सकता था। जब उसे उसके भक्त दिव्य व्यञ्जन खिलाते थे वह तब भी खिचड़ी खाकर अक्षुण्ण भाव से रह सकता था। बड़ौदे में नर्म तकियों, गदेलों और पर्य्यङ्कों के होते हुए भी वह केवल दरी पर भूमि में शयन कर सकता था। उसे संसार की कौनसी सम्पत्ति विचलित कर सकती

थी। भर्तृहरि के अनुसार वह मनस्वी, था कार्यार्थी था। जो न दुःख को गिनता था न सुख को, वह चिथड़े भी पहन सकता था और दिव्य वस्त्र भी धारण कर सकता था, वह शाक खाकर भी रह सकता था और शाल्योदन खाकर भी, वह भूमि पर सो सकता था और पर्य्यङ्क पर भी *। दयानन्द तो पद्मपत्र के समान था। वह संसार के भोगों और प्रलोभनों से क्लेद को प्राप्त न होता था।

दयानन्द के कार्य की आलोचना

लाहौर में श्री महाराज के प्रचारकार्य तथा उस के फल के सम्बन्ध में तत्कालीन समाचारपत्रों में जो सम्मतियाँ प्रकट हुईं उन में से कुछ के अंश को हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

१ जुलाई सन् १८७७ ई० के 'बिरादरे हिन्द' तथा 'ब्राह्म समाचारपत्र' ने लिखा था:—

"उन के विचार अधिकांश में विस्तृत हैं और उनका अधिक भाग इस समय के विद्यासंगत विचारों के अनुकूल है। उनका मस्तिष्क अत्यन्त उन्नतिशील प्रतीत होता है और यद्यपि उन्होंने संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त अन्य भाषा का साहित्य नहीं पढ़ा है तथापि उन्होंने इस एक ही साहित्य द्वारा और प्रशस्तबुद्धि शिक्षित लोगों की संगति से अपने विचारों को इतना परिमार्जित और विस्तृत बना लिया है कि वह न केवल अपने सब समकालीन पण्डितों के दुराग्रहयुक्त और संकुचित विचारों के पद का अतिक्रमण कर के एक सच्चे विद्वान् और प्रशस्त-प्रभ पण्डित का आदर्श बन गये हैं, प्रत्युत हमारे देश के अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए सर्वसाधारण के विचारों से भी किसी अंश में उत्तम विचार रखते हैं। प्रकट रूप में इस व्यक्ति के हृदय में जातीय-समवेदना और जातीय-सुधार का बहुत बड़ा उत्साह भासित होता है, यद्यपि इस समय यह कहना बहुत कठिन है कि वह उत्साह कहाँतक स्वार्थरहित और स्वार्थ के मेल से शून्य है क्योंकि इसका प्रमाण अनुभव पर अवलम्बित है और उसका दिखलाने वाला केवल समय है, तथापि जहाँतक हम अनुमान कर सकते हैं उनके व्यक्तित्व से देश में बहुत कुछ उन्नति और सुधार की आशा है। धार्मिक सुधार के सम्बन्ध में यह पुरुष मूर्तिपूजा का बहुत बड़ा शत्रु है। उन सब पुरुषों में जो इन दिनों मूर्त्ति-पूजा को समूल नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं, यदि इस पुरुष को इस समय का सब से बड़ा मूर्त्ति-खण्डक कहा जाय तो अनुचित न होगा। ब्राह्मसमाज के उस धर्मसुधार सम्बन्धी शाखा का तो, जिसका सिद्धान्त हर प्रकार की मूर्त्ति-पूजा को दूर करना और संसार में परमेश्वर की उपासना का फैलाना है, यह पुरुष एक ऐसा दिव्य दूत है कि इस की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यह पुरुष संसार में केवल धार्मिक सुधार का ही इच्छुक नहीं है वरन् जाति की बालविवाह आदि सब बुराइयों के सुधार पर भी जो देश में फैल रही हैं इस की दृष्टि है, स्त्रियों की शिक्षा और स्वतन्त्रता का विशेषकर इच्छुक है। उसकी यह सम्मति है कि जबतक उन में शिक्षा का प्रसार न होगा और उन्हें

* क्वचिद्भूमौ शायी क्वचिदपि च पर्य्यङ्कशयनः,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः,
मनस्वी कार्य्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ भर्तृहरिः ॥

ज़नाने के बन्दीगृह से मुक्ति न मिलेगी तबतक इस देश में किसी दृष्टि-आकर्षक उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। सारांश यह है कि जाति से अविद्या, हठ और दुराग्रह का दूर करना, विद्या का प्रचार करना, जाति में एकता उत्पन्न करना और उसे साधारण सभ्यता के रूप में लाकर एक अच्छा आदर्श बनाने में प्रयत्न करना इस पुरुष का साधारण, और विशेष अन्तिम ध्येय है।"

एक लेखक ने कलकत्ते के अंग्रेज़ी दैनिक 'इण्डियन मिरर' के २२ जून सन १८७७ के अङ्क में लिखा थाः—

"नगर में स्वामीजी के विरोध में सभाएँ होने पर भी प्रायः जिनके संयोजक और संचालक पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी हैं, आर्य्यसमाज * के सभासदों की संख्या १०० हो गई है और थोड़े से ही दिनों में २०० हो जायगी। पण्डित दयानन्द सरस्वती अपने व्याख्यान डाक्टर रहीमख़ाँ के बँगले पर देते हैं। उनके श्रोता १०० से अधिक शिक्षित पुरुष होते हैं जिनमें से अधिकांश को स्वामीजी का पक्षसमर्थक कहा जा सकता है। उनकी शिक्षा के परिणाम के विषय में कहा जाता है कि एक भद्र पुरुष ने अपने कुल के देवी-देवताओं को उनके सिंहासन से च्युत कर दिया है। विश्वस्त सूत्र से यह भी ज्ञात हुआ है कि नगर के पण्डित, पुरोहित, महिलागण को उकसा रहे हैं कि वह अपने सम्बन्धी पुरुषों को स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों में जाने से रोकें। स्वार्थपर मनुष्य स्वामीजी के विरुद्ध सब प्रकार के जनरव फैला रहे हैं, परन्तु वह यह देख कर दुःखी होते हैं कि पण्डित दयानन्द श्रोताओं के मनों को वैदिक सचाइयों के ग्रहण करने के लिये तैयार कर रहे हैं। मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध उन के प्रबल और सशक्त कटाक्षों ने उनके बहुत से शत्रु बना दिये हैं। वह कहते हैं कि ब्राह्मण भारत के अधःपतन के मुख्य कारण हैं और वह सब दोष उन्हीं के ऊपर लगाते हैं।.......परन्तु वह दो बातों के लिये ब्राह्मणों की प्रशंसा भी करते हैं अर्थात् मुसलमानों से शास्त्रों की रक्षा करने के लिये और लोगों को दूसरा धर्म्म ग्रहण करने से रोकने के लिये। वह ब्राह्मणों को पोप-कुटुम्ब कहते हैं अर्थात् पोप के सम्बन्धी। यह एक नवीन शब्द है और इससे ब्राह्मणों के प्रति उनके विचार प्रकट होते हैं, जिन्होंने बदला लेने के अभिप्राय से उन पर ऐसे विचार आरोपित किये हैं जो न सच्चे ही हैं और न प्रशंसनीय ही। कोई २ कहते हैं कि वह ईसाई पादरियों के वेतन-भोगी हैं और उन्होंने स्वामीजी को मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचार करने को भेजा है और कोई २ तो इतने गिर गये हैं कि उन्हें नास्तिक तक कहते हैं।"

फिर २३ जून सन् १८७७ ई० के उक्त दैनिक में एक लेखक ने लिखा थाः—

"यद्यपि शिक्षित पुरुष इस प्रशंसनीय कार्य में योग देते हैं, परन्तु नगर के ब्राह्मणों के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता जो हरएक सामाजिक और धार्मिक सुधार के खुले हुए शत्रु पंडित श्रद्धाराम के नेतृत्व में इस अल्पवयस्क समाज को जन्मते ही नष्ट करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं। उन्होंने केवल एक सभा सनातनधर्म्मरक्षिणी के नाम से स्थापित की है, जिस के उद्देश्य आर्य्यसमाज के उद्देश्यों से सर्वथा प्रतिकूल हैं, प्रत्युत वह पण्डित

* इस से ज्ञात होता है कि नियमपूर्वक आर्यसमाज के स्थापित होने से पहले ही भावी सभासदों की सूची तैयार की जा रही थी। —संग्रहकर्त्ता.

दयानन्द सरस्वती के चरित्र और उद्देश्य के सम्बन्ध में भी सब प्रकार की झूठी बातें फैला रहे हैं।"

एक लेखक ने उर्दू पत्र 'कोहेनूर' लाहौर के २८ जुलाई सन् १८७७ के भाग ९ अङ्क ३३ के पृष्ठ ६४० पर लिखा था:—

"पहले २, ३, मासों में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी जो उपदेश करते रहे हैं उसके सुनने से लोगों के हृदय में जातीय सहानुभूति का इतना उत्साह उत्पन्न हुआ कि उन्होंने २४ जून सन् १८७७ को आर्य्यसमाज स्थापित किया। अब इस समाज के लगभग २०० सभासद् हैं और दिन प्रतिदिन उन्नति होती जाती है। इस समाज का वास्तविक उद्देश्य आर्य धर्म्म, संस्कृत और वैदिक विद्या की उन्नति और प्रचार करना है। इसी उद्देश्य से अब एक संस्कृत पाठशाला वेदों की शिक्षा के लिए खोली गई है जिसमें संप्रति १०० मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। यह समाज केवल स्वामीजी के पधारने का परिणाम है। इतिहास के देखने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस २५०० वर्ष के समय में स्वामी शङ्कराचार्य्यजी के काल से कोई श्रेष्ठ नेता और ऋषीश्वर उत्पन्न न हुआ जो सन्मार्ग बताता।"

एकोनविंश अध्याय

आषाढ़ संवत् १९३४–आश्विन संवत् १९३४

जब महाराज ने लाहौर से अमृतसर जाने की इच्छा प्रकट की तो लाहौर के प्रसिद्ध रईस सरदार दयालसिंह मजीठिया अंग्रेज़ी दैनिक 'ट्रिब्यून' के संस्थापक ने उनके निवास के लिए मियाँ मुहम्मदजान रईस की कोठी ४०) रुपये मासिक किराये पर ले दी। महाराज ५ जुलाई सन् १८७७ को अमृतसर जाकर उसी कोठी में उतरे। महाराज के आगमन का समाचार नगर में फैलते ही, क्या धनपति क्या निर्धन, क्या विद्वान् क्या अविद्वान्, क्या उच्चपदस्थ क्या निम्नश्रेणियुक्त, सैकड़ों की संख्या में लोग उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे। कुछ तो उनकी दिव्य और भव्य ज्योतिःस्नात मूर्त्ति के दर्शन से ही अपने को कृतकृत्य समझ कर चले जाते, अधिकतर उनके उपदेशामृतपान के लिए ठहर जाते। महाराज ने उसी कोठी में व्याख्यानों का तार बाँध दिया जिनमें श्रोताओं की संख्या शतशः और सहस्रशः होती थी। विरोधीजन के हृदयों पर आरे से चलते थे, परन्तु कुछ कर न सकते थे। अलीक जनरव फैला कर मन के फफोले फोड़ते थे, परन्तु यह अस्त्र भी उनका कुण्ठित हो जाता था, जो एक बार महाराज का एक उपदेश भी सुन लेता था उसका उद्धार हो जाता था। वर्षों की शङ्काएँ एक क्षण में इसी प्रकार उड़ जाती थीं जैसे वायु के सामने तूल का टुकड़ा। धर्म्मपिपासा जागृत हो उठती थी और धर्म्म के तत्व हृदयङ्गम होजाते थे। व्याख्यान में महाराज एक कुर्सी अपने सामने डलवा दिया करते थे ताकि व्याख्यान समाप्ति पर जिसे कोई शङ्का करनी हो वह उस पर बैठ कर करले। एक दिन एक पण्डित आया, उससे कुर्सी पर बैठने को कहा तो वह न बैठा और स्वामीजी को सम्बोधन करके कहने लगा कि आपने मुझे नीचा आसन दिया है, मुझे भी आप के समान ही कुर्सी मिलनी चाहिये। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो व्याख्यान देता हूँ इस लिये ऊँचे आसन पर बैठा हूँ आप यदि कुर्सी पर बैठने में अपमान समझते हैं तो कुर्सी को मेज़ पर रख कर बैठ जाइये। आश्चर्य्य है कि आप विद्वान् होकर भी बैठने में आसन के ऊँचे नीचे होने का विचार करते हैं। क्या किसी चक्रवर्ती के मुकुट पर बैठने से मक्खी-मच्छर बड़े हो सकते हैं।

अमृतसर

नीचे आसन पर बैठने में अपमान

एक दिन एक ब्राह्मण ने आकर कहा कि हम ऐसी सभा में क्या आयें जिसमें ऐसे विरुद्ध और अनर्थ वचन कहे जाते हैं, जैसे इस देश के ब्राह्मणों का गोदान लेने का अधिकार नहीं है, न इन्हें कोई श्लोक याद है। यदि हम दान न लें तो क्या खाक खायें। महाराज ने कहा कि हमने ऐसी बात नहीं कही। हमने तो यह कहा है कि यतः तुम विद्वान् नहीं हो और न तुम्हें वेदमन्त्र याद हैं, अतः तुम्हें दान लेने का अधिकार नहीं है; तुम दान लेते हो और उसकी विष्ठा बना डालते हो, तुम खाक न खाओ, घास खाओ। राजा दयाल साहब ने कहा कि महाराज घास तो गदहे खाते हैं। महाराज ने कहा कि आपको इनसे चुहल होगी हमने तो साधारण रीति से कहा है। फिर वह ब्राह्मण कुछ न बोला और चला गया।

हम ऐसी सभा में क्या आयें

खाक नहीं घास खाओ

महाराज के व्याख्यानों को सुन कर लोग चकित हो उठे। सब की जिह्वा से यही शब्द निकलते थे कि यह तो कोई अवतार आया है जो साक्षात् ईश्वर-पूजा का उपदेश करता है।

१२ जुलाई सन् १८७७ रविवार को महाराज लाहौर गये और सन्ध्या समय अनारकली में आर्य्यसमाज में 'धर्म्म की आवश्यकता' और 'आर्य्यसमाज से लाभ' पर व्याख्यान देकर अमृतसर लौट आये।

कुछ व्याख्यान महाराज के घण्टाघर पर भी हुए थे। उनमें से पहले में उन्होंने ठाकुरव्रत के विषय में कहा था कि यह तो भीख माँगने के लिये एक लीला रची गई है। लोग पत्थर को ठाकुर कहते हैं और अजन्मा परमेश्वर का जन्म बताते हैं। इन बातों का वेदशास्त्र में पता नहीं। उस दिन श्रोताओं की बहुत अधिक भीड़ थी। महाराज ने मूर्त्ति-पूजा का ऐसी सुन्दरता से खण्डन किया और इतनी अकाट्य युक्ति और प्रमाण उसके विरुद्ध दिये कि अनेक लोगों की मूर्त्ति-पूजा के ऊपर से श्रद्धा उठ गई।

ठाकुर-पूजा पर व्याख्यान

११ अगस्त सन १८७७ तक महाराज के सदुपदेशों का प्रवाह बहता रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि १२ अगस्त को आर्य्य-समाज अमृतसर की स्थापना होगई। आर्य्य-समाज उसी कोठी में स्थापित हुआ जिसमें महाराज ठहरे हुए थे। स्वयं महाराज ने हवन कराया और ईश्वरोपासना करने के पश्चात् सदुपदेश दिया और ५० सज्जन उस के सदस्य हुए, अधिकारियों का निर्वाचन होकर आर्य्य-समाज का कार्य्य सुचारु रूप से चलने लगा। लाहौर से बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य्य और लाला श्रीराम एम० ए० समाज के स्थापनोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पधारे थे और महाराज के उपदेश के पश्चात् बाबू शारदाप्रसाद का व्याख्यान भी हुआ था।

आर्यसमाज अमृतसर की स्थापना

इसके कुछ दिन पश्चात् आर्य्य-समाज के लिए मलवई बुङ्गे के मोहल्ले में एक मकान ले लिया गया और प्रथम अधिवेशन के दिन महाराज ने ही हवन कराया।

मनसुखराय को गुरुमन्त्र

एक जन मनसुखराय था। उसका पिता चाहता था कि वह किसी को गुरु बनाले, क्योंकि उसके विचार के अनुसार निगुरे मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता था। पुत्र किसी को गुरु न बनाता था, परन्तु महाराज के उपदेशों को सुनकर उसके सब संशयों का उच्छेद होगया और श्री महाराज के चरणों में उसकी श्रद्धा इतनी बढ़ी कि एक दिन उसने मिश्री का थाल भरकर महाराज को भेट में दिया और आर्य्य-समाज का सदस्य बन गया। महाराज से उसने गुरुमन्त्र देने की प्रार्थना की तो बोले कि गायत्री-मन्त्र ही गुरुमन्त्र है।

मिश्री और २) रुपये की भेट

एक दिन महाराज बग्घी पर सवार होकर मलबई बुङ्गे व्याख्यान देने जा रहे थे कि एक जन पण्डित तुलसीराम ने बड़े प्रेम और नम्रता से उन्हें नमस्कार किया और अपनी बैठक में पधारने की प्रार्थना की। महाराज ने कृपापूर्वक उसे स्वीकार किया और उसकी बैठक में पधारे। उसने महाराज की स्तुति करने के पश्चात् मिश्री के कुछ कूजे और २) रु० नक़द भेट किये जो महाराज ने स्वीकार कर लिये। कैसी अद्भुत बात है कि जिस दयानन्द ने सर० टी० माधवराय रियासत बड़ौदा जैसे गण्यमान्य पुरुष की १०००) रुपये की भेट को स्वीकार नहीं किया आज वही दयानन्द एक साधारण मनुष्य की २) रुपये और मिश्री के कूजों की तुच्छ भेट को निःसंकोच भाव से स्वीकार कर लेता है। प्रेम, श्रद्धा, भक्ति में शक्ति ही ऐसी है। महाराज श्रीकृष्णचन्द्र ने भी तो इसी कारण सुदामा के तण्डुल स्वीकार किये थे। धन्य हो कृष्ण और धन्य हो दयानन्द।

देवमूर्त्तियाँ फेंकदीं

अमृतसर में भी दो चार व्यक्तियों ने ठाकुर आदि की मूर्त्तियाँ फेंक दीं थीं और मूर्त्ति-पूजा के ऊपर से विश्वास तो सैकड़ों मनुष्यों का उठ गया था।

विद्वान् ब्राह्मण घर छोड़ कर चला गया

अमृतसर में उन दिनों एक पण्डित रामदत्तजी निवास करते थे जो उच्च कोटि के विद्वान् थे। जब मूर्त्ति-पूजकों ने देखा कि दिन प्रतिदिन मूर्त्ति-पूजा को अनेक लोग तिलाञ्जलि देते चले जारहे हैं तो वह बहुत घबराये और पण्डित रामदत्तजी से जाकर प्रार्थना की कि आप स्वामी दयानन्द से मूर्त्ति-पूजा के ऊपर शास्त्रार्थ करें। उन्होंने कहा कि मैं वेद नहीं जानता, शास्त्रार्थ कैसे करूँ। परन्तु लोग न माने और आग्रह करते रहे। अन्त को जब उन्हें बहुत दिक़ किया गया तो एक दिन चुपके से हरिद्वार चले गये। अनेक पण्डित ऐसे थे जो हृदय से महाराज के उपदेशों को स्वीकार करते थे, परन्तु लोकापवाद के कारण इस नीति पर कार्य्य करते थे कि:—

यद्यपि सिद्धं लोकविरुद्धं ना चरणीयं ना चरणीयम्।

अर्थात्—ऐसा कार्य्य न करना चाहिए जो यद्यपि शास्त्र से सिद्ध हो परन्तु लोकविरुद्ध हो।

एक दिन पण्डित बिहारीलाल एक्स्ट्रा-असिस्टैण्ट कमिश्नर ने महाराज से कहा कि महाराज आपके अन्य सब विचार उत्तम हैं और हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं, यदि आप मूर्त्ति-

मूर्ति-पूजा का खण्डन न करो

पूजा का खण्डन न करें तो सब लोग आप के अनुकूल होजावें और आपकी आज्ञा को स्वीकार करलें। इसके उत्तर में महाराज ने वही कहा जो वह सदा ऐसे प्रस्तावों के उत्तर में कहा करते थे कि मैं सत्यको नहीं छोड़ सकता।

स्थूलकाय सरदार

एक दिन सरदार हरचरणदास महाराज से मिलने आये। वह इतने स्थूलकाय थे कि चल फिर भी कठिनता से सकते थे। महाराज ने उन्हें देख कर कहा कि यह हमारे देश के हतहृदय लोग हैं जिनमें चलने फिरने की भी शक्ति नहीं रही। ऐसे मनुष्य देश का क्या उपकार कर सकते हैं।

कमिश्नर से बात-चीत

महाराज के उपदेशों की चर्चा सुन कर परकिंस साहब कमिश्नर ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की और एक दिन लाला गुरुमुखराय वकील के साथ जो कमिश्नर साहब का यह सन्देश उनके पास लाये थे कमिश्नर साहब से मिलने गये। अन्य बात-चीत होने के उपरान्त दोनों में धर्म्म विषय पर निम्न कथनोपकथन हुआ:—

परकिंस—हिन्दू-धर्म्म सूत के धागे की न्याईं कच्चा है।

स्वामीजी—यह धर्म्म सूत के धागे की न्याईं कच्चा नहीं, बल्कि लोहे से भी अधिक पक्का है, लोहा टूट जाय तो टूट जाय, परन्तु यह कभी टूटने में नहीं आता।

परकिंस—आप कोई उदाहरण दें तो हमें विश्वास आवे।

स्वामीजी—हिन्दू-धर्म्म समुद्र के समान है; जैसे समुद्र में असंख्य लहरें उठती हैं, यही दशा इसकी है। देखिये इसमें ऐसे लोग भी हैं जो पानी को छानकर पीते हैं ताकि कोई अदृश्य जीव उनके उदर में न चला जावे; ऐसे लोग भी हैं जो दुग्धाहारी हैं, केवल दूध ही पीते हैं अन्य कोई वस्तु नहीं खाते पीते और ऐसे लोग भी इसी में हैं जो वाममार्गी कहलाते हैं जो पवित्र अपवित्र और योग्य अयोग्य का विचार किये बिना जो कुछ पाते हैं, खाजाते हैं। इसमें ऐसे लोग भी हैं जो आयुभर यति रहते हैं, न तो किसी स्त्री से विवाह करते हैं और न किसी को बुरी दृष्टि से देखते हैं और ऐसे लोग भी इसी में हैं जो पराई स्त्रियों से मुँह काला करते हैं। एक वह हैं जो केवल निराकार परमात्मा की ही उपासना करते हैं और उसी का ध्यान करते हैं और एक वह हैं जो अवतारों को पूजते हैं। एक वह हैं जो केवल ज्ञानी हैं और एक वह हैं जो केवल ध्यानी हैं। इसमें वह लोग भी हैं जो छूतछात का इतना बचाव करते हैं कि अन्यधर्मी तो एक ओर शूद्रों के हाथ से न पानी पीते हैं न उनके हाथ का भोजन करते हैं और वह लोग भी इसमें ही हैं जो शूद्रों के हाथ से पानी भी पीते हैं और उनसे भोजन बनवाकर भी खाते हैं। इन सब बातों के होते हुए भी यह सब के सब हिन्दू कहलाते हैं और वास्तव में हैं भी हिन्दू ही और कोई इनका हिन्दू-धर्म्म से बहिष्कार नहीं करता। अतः समझना चाहिये कि हिन्दू-धर्म्म बहुत पक्का है, कच्चा नहीं।

परकिंस—आप किस प्रकार के धर्म्म का प्रचार करना चाहते हैं।

स्वामीजी—हम केवल यह चाहते हैं कि लोग वेद की आज्ञाओं का पालन करें और केवल निराकार, अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें, शुभ गुणों को ग्रहण करें और अवगुणों को त्याग दें।

एकोनविंश अध्याय

१३ अगस्त सन् १८७७ को अमृतसर में एक मौलवी साहब से करामात विषय पर शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। महाराज ने कहा कि शास्त्रार्थ-सभा में एक अरबी भाषा जानने वाले का होना आवश्यक है, क्योंकि मौलवी साहब अरबी शब्दों और प्रमाणों का प्रयोग करेंगे और हम अरबी जानते नहीं हैं, अतः लाहौर आर्यसमाज के मन्त्री को पत्र भेजा गया कि वहाँ से पादरी इमामुद्दीन को भेजदें। परन्तु पादरी साहब समय पर न मिले और जब मिले तो उन्होंने अमृतसर जाना स्वीकार न किया, अतः यह शास्त्रार्थ न होसका।

मौलवी से शास्त्रार्थ का आयोजन

१५ अगस्त सन् १८७७ अर्थात् श्रावण शुक्ला ६ संवत् १९३४ को महाराज ने अमृतसर में 'आर्य्योद्देश्य-रत्नमाला' की रचना की।

एक बाल-पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों से कहा कि आज कथा में चलेंगे, तुम अपनी २ झोलियों में ईंटरोड़े और कंकर भरकर मेरे साथ चलना और जब मैं संकेत करूँ तो कथा कहने वाले पर ईंटरोड़े और कंकर फेंक देना, मैं तुम्हें लड्डू दूँगा।

अबोध बालकों ने अपनी झोलियाँ ईंटरोड़े और कंकरों से भरलीं और दुष्ट अध्यापक के साथ स्वामीजी के व्याख्यान में पहुंचे। व्याख्यान रात्रि के ८ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ कुछ अँधेरा होगया तो अध्यापक का संकेत पाकर बालक महाराज पर ईंटरोड़े और कंकर फेंकने लगे। सभा में हलचल मचगई, परन्तु महाराज ने सबको शान्त करदिया। पुलिस कुछ बालकों को पकड़ कर उनके सामने लाई तो बालक फूट २ कर रोने लगे। महाराज ने उन्हें ढाढस बँधाकर उनसे ऐसे कार्य करने का कारण पूछा तो उन्होंने सारा वृत्त सच २ कह दिया। तब महाराज ने बाज़ार से लड्डू मंगाकर बालकों को दिये और कहा कि तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे इसलिये मैं ही दिये देता हूँ।

दयानन्द-प्रकाश में ऊपर की घटना के अतिरिक्त निम्नलिखित तीन घटनाएँ और लिखी हैं:—

एक दिन स्वामीजी अपने कमरे में बैठे हुए पण्डितों को वेदभाष्य लिखाते २ सहसा कमरे से बाहर आगये और कर्मचारियों से कहा कि झटपट कमरे की सब चीज़ें बाहर ले आओ। कर्मचारियों ने आज्ञा का पालन तो किया परन्तु वह न समझ सके कि स्वामीजी ने ऐसी आज्ञा क्यों दी। जब सब वस्तुएँ कमरे में से हटाली गईं तो कमरे की छत धड़ाम से गिरपड़ी।

एक दिन महाराज का उपदेश होरहा था कि एक प्रचण्ड आँधी उठी और धूलि से भूतलाकाश एक करने लगी। श्रोतागण विचलित होगये और उससे बचने के लिए इधर उधर झाँकने लगे। महाराज ने मेज़ पर हाथ मारकर उच्च स्वर से कहा कि घबराइये नहीं, आँधी यहाँ न आयगी और ऐसा ही हुआ भी।

एक साधारण स्थिति का मनुष्य महाराज के सत्सङ्ग में आया करता था। एक दिन उसने महाराज से निवेदन किया कि महाराज धनी लोग तो परोपकार और दान-पुण्य करके संसार-सागर से पार हो सकते हैं, परन्तु मुझ जैसे निर्धन का निस्तार कैसे होगा। महाराज ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम अपने हृदय से पर-अपकार और अनिष्ट-चिन्तन के भावों को निकाल दो। ऐसा करना भी संसार का उपकार है।

श्रावण शुक्ला ९ संवत् १९३४ अर्थात् १८ अगस्त सन् १८७७ को महाराज शिकरम में सवार होकर सायङ्काल के पाँच बजे गुरदासपुर पहुँचे। महाराज के आगमन के लिए नगर के लोग पहले से ही उत्सुक हो रहे थे, क्योंकि यह समाचार कि महाराज १८ अगस्त को गुरदासपुर पधारेंगे डाक्टर बिहारीलाल द्वारा जिन्होंने अपने भाई वल्लभदास को उन्हें अमृतसर से लाने के लिए भेजा था नागरिकों को ज्ञात होचुका था। नगर के अनेक सज्जन और सरकारी कर्मचारी बड़ी संख्या में नगर से एक मील दूर उनके स्वागत के लिये पहुँच गये थे। जब उस स्थान पर जहाँ यह सब लोग एकत्र थे महाराज की शिकरम पहुँची तो महाराज उतर पड़े। सबने बड़े प्रेम से महाराज को नमस्ते की और उन्हें गाड़ी पर बिठा कर डाक्टर साहब के गृह पर, जिसे उन्होंने खूब सजा रक्खा था, ठहर गए। १५-२० मिनिट विश्राम के पश्चात् महाराज ने स्नान किया और फिर एक व्याख्यान मूर्ति-पूजा पर दिया। फिर तो महाराज के कई व्याख्यान अवतार, ईश्वर, गोरक्षा, आवागमन, श्राद्ध, आर्य्यावर्त की पुरानी दशा, आर्यों के कर्तव्य आदि विषयों पर हुए। श्रोताओं की संख्या दो दो सहस्र तक पहुँच जाती थी। व्याख्यान-समय के अतिरिक्त अन्य समय भी नगर के सुप्रतिष्ठित सज्जन और उच्च राजकर्मचारी तथा जनसाधारण महाराज से धर्म्म-विषय पर बातचीत करने तथा शङ्का-निवारणार्थ महाराज के पास आते रहते थे और महाराज सब की जिज्ञासाओं का यथायोग्य उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट और शान्त कर दिया करते थे।

गुरदासपुर

व्याख्यान आरम्भ होगये

महाराज के आगमन के तीसरे दिन मियाँ हरिसिंह और शेरसिंह नगर के दो प्रतिष्ठित रईस जो मूर्त्ति-पूजक थे और जिन्हें महाराज के मूर्त्तिपूजा के खण्डन से बहुत आघात पहुँचा था, स्वामी गणेशगिरिजी के पास पहुँचे। यह एक विद्वान् और विरक्त पुरुष थे जो नगर से बाहर एकान्त स्थान में निहालशाह के तालाब पर रहा करते थे। दोनों मियाँ महोदयों ने उनसे प्रार्थना की कि आप स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि हम नगर में जाते भी नहीं हैं और शास्त्रार्थ करने का हमारा नियम भी नहीं है, हम विरक्त साधु हैं, यदि आप को शास्त्रार्थ कराना है तो किसी पण्डित को बुलाइये। इस पर दोनों महोदयों ने कहा कि यदि आप नगर में वा स्वामी दयानन्द के स्थान पर जाने में अपना अपमान समझते हैं तो महन्तों के बाग वा अन्य किसी स्थान में जहाँ आप चाहें हम शास्त्रार्थ मण्डप बनादें आप वहाँ चलकर शास्त्रार्थ करें। इस पर गिरिजी ने कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, झगड़ा होता है और विरोध बढ़ता है, यदि आप तंग करेंगे तो हम अन्यत्र चले जायंगे। अन्त को उक्त रईसों ने दीनानगर से दो पण्डितों, पं० लक्ष्मीधर और पं० दौलतराम, को शास्त्रार्थ के निमित्त बुलाया। यह साधारण कोटि के पण्डित थे और इनमें स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य न था।

दो मूर्तिपूजक रईसों की घबराहट

विरक्त साधु से शास्त्रार्थ की प्रार्थना

शास्त्रार्थ के लिये दो पण्डितों का आगमन

जिस दिन दोनों पण्डित गुरदासपुर में अवतीर्ण हुए उस दिन महाराज का शिवपुराण के खण्डन पर व्याख्यान था। जब यह पण्डित और उनके पृष्ठपोषक सभास्थल में पहुँचे तो महाराज यह कहानी सुना रहे थे कि शिवजी का लिङ्ग बढ़ा और ब्रह्मा सूकर का और विष्णु हँस का रूप धारण करके उसे नापने के लिये एक पाताल की ओर और दूसरा आकाश की ओर चला, इत्यादि। इस पर उपरोक्त चारों जन कहने लगे कि झूठ बकता है। तब डाक्टर बिहारीलाल ने उनसे निवेदन किया कि सभा का यह नियम नहीं है। पहले सब सुन लीजिये पीछे जो आक्षेप करना हो कीजिये, परन्तु वह न माने और ऊल-जलूल बकते और शोर करते रहे। यह देखकर महाराज ने व्याख्यान देना स्थगित कर दिया और कहा जिसे आक्षेप करना हो करे। श्रोताओं को भी शास्त्रार्थ सुनने का बहुत चाव था। महाराज के सामने एक कुर्सी डाल दीगई और डाक्टर बिहारीलाल ने कहा कि पण्डितों में से जो शास्त्रार्थ करना चाहें कुर्सी पर आकर विराज जावें, परन्तु दूसरे पक्ष की यह इच्छा थी कि सब मिलकर प्रश्नोत्तर करें। इस पर महाराज ने कहा कि जो पण्डित प्रश्न करना चाहें वह सामने आजावें। इस पर मियाँ साहबों ने कहा कि कोई पण्डित आप से अकेला शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, दो वा अधिक मिलकर करेंगे। महाराज ने कहा कि अच्छा जिसकी इच्छा हो यहाँ आकर शास्त्रार्थ-कर्त्ता को बारी बारी से बतलाता रहे। इस पर मियाँ हरिसिंह ने कहा कि यह बन्दरकला कौन खेल सकता है। तत्पश्चात् डाक्टर साहब ने आग्रह किया कि शास्त्रार्थ की रीति यह है कि दोनों पक्ष आमने सामने बैठकर विचार करें, अतः पण्डितजी को महाराज के सम्मुख बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहिये। इस पर मियाँ हरिसिंह ने कहा कि यह क्या कंजरियों का नाच है जो बीच में आने की आवश्यकता हो? उनकी सभी असभ्य और नियम-विरुद्ध बातों को सहन किया गया और जैसे वह चाहते थे वैसे ही बातचीत आरम्भ हुई।

रईसों की असभ्यता

दुर्जनतोष

प्रथम मूर्त्ति-पूजा पर बात चली तो विपक्ष की ओर से "गणानां त्वा" आदि मन्त्र प्रस्तुत करके कहा कि इससे गणेशजी की मूर्त्ति सिद्ध होती है। स्वामीजी ने उक्त मन्त्र का भाष्य माँगा तो पण्डितों ने कहा कि इस पर महीधर का भाष्य है। महाराज ने झट महीधर का भाष्य मँगवा कर आगे रख दिया और महीधर के अश्लील अर्थ श्रोताओं को सुना कर कहा कि न तो इससे मूर्त्ति-पूजा ही सिद्ध होती है और न गणेश-पूजा ही, यह तो अत्यन्त अश्लील अनुवाद है और फिर उक्त मन्त्र के सत्य अर्थ भी करके सुनाये। यह बात मियाँ साहबों को बहुत अखरी और कहने लगे कि अंग्रेजी राज्य है, यदि कोई देशी राज्य होता तो कोई आपका सिर काट डालता। परन्तु महाराज पर इन बातों का क्या प्रभाव पड़ना था, वह पूर्ववत् खण्डन करते रहे। तब मियाँ साहब और तो कुछ कर न सके, यह कहने लगे कि यहाँ मैजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों उपस्थित हैं इसका भी ध्यान रखना। डाक्टर बिहारीलाल से सहन न होसका और उन्होंने मियाँ साहबों को मुँह

शास्त्रार्थ का आरम्भ

महीधरभाष्य की अश्लीलता

अंग्रेज़ी राज्य न होता तो सिर काट डालता

तोड़ उत्तर दिया जिस पर आपस में तेजी से बात-चीत होने लगी और इस गड़बड़ में सभा विसर्जन होगई। दो मास के पश्चात् मियाँ साहबों को अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ और एक मुसलमान सज्जन बीचमें पड़े और मियाँ साहबों ने डाक्टर साहब से क्षमा-याचना की।

किये पर पश्चात्ताप

एक दिन व्याख्यान में महाराज ने कहा कि यद्यपि अंग्रेजों को इस देश में आये इतना समय होगया, परन्तु उनका उच्चारण अबतक शुद्ध नहीं हुआ; वह तकार की जगह टकार, तुम की जगह टुम ही बोले जाते हैं। मिस्टर काक इञ्जीनियर भी खड़े हुए सुन रहे थे, उन्हें यह सच्ची बात भी बुरी लगी और यह कहते हुए चले गये कि यदि तुम पश्चिम में पेशावर की ओर जाओ तो तुम्हारी खबर ली जाय।

अंग्रेज़ इंजीनियर चिढ़ गया

मौलवी बाकरअली से महाराज की आवागमन पर बात-चीत हुई थी।

एक दिन श्राद्ध पर व्याख्यान देते हुए महाराज ने कहा था कि ब्राह्मण पितरों को तो तिल और जौ देते हैं और स्वयं खीर और लड्डू उड़ाते हैं। एक अनपढ़ ब्राह्मण की कहानी भी सुनाई थी कि वह तिथि का ज्ञान न रखता था। प्रतिपदा के दिन से हर तिथि को कोने में एक-एक लाठी रखता जाता था और इस प्रकार वह लोगों को तिथि बतलाया करता था।

पितरों को तिल और जौ अपने को खीर और लड्डू

मूर्ख ब्राह्मण की कहानी

एक दिन यह भी कहा था कि हिन्दू तो छोटीसी चुहिया की ही पूजा करते हैं मुसलमान तो बिल्ली को पूजते हैं, अर्थात् हिन्दू तो छोटे से शालिग्राम को ही पूजते और मुसलमानों का काबा तो बहुत बड़ा बुतखाना है।

मुसलमानों की मूर्तिपूजा

महाराज के उपदेशों का यह परिणाम निकला कि २४ अगस्त को गुरदासपुर में आर्य्यसमाज स्थापित होगया और महाराज एक दिन और ठहर कर बटाला होते हुए अमृतसर जा विराजे।

आर्यसमाज स्थापित होगया

गुरदासपुर से २६ अगस्त सन् १८७७ को महाराज अमृतसर लौट आये और २७ अगस्त से ११ सितम्बर तक वहाँ ही विराजे रहे और वेदभाष्य की रचना और सत्य सनातन वैदिक-धर्म्म के उपदेश में व्यापृत रहे। आर्य्योद्देश्य रत्नमाला भी छपकर तैयार होगई। पञ्जाब सरकार की ओर से नियत जिन विद्वानों ने उनके वेदभाष्य के सम्बन्ध में विरुद्ध सम्मति प्रकट की थी उनका उत्तर छपवाकर बम्बई भेजने तथा समाचारपत्रों में प्रकाशित कराने का उपक्रम किया।

अमृतसर

एक दिन व्याख्यान के पश्चात् महाराज डेरे को जाते थे। मार्ग में लाला मुरलीधर ने जो पीछे आकर आर्य्यसमाज होशियारपुर के मन्त्री हुए एकान्त पाकर महाराज से निवेदन किया कि मुझे गुरुमन्त्र दीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि सदा सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करो और इसी को गुरुमन्त्र जानो।

गुरुमन्त्र की दीक्षा

एक दिन पादरी फ़ोरमैन महाराज से मिलने आये और उसी समय म० कन्हैयालाल वकील भी आगये। यह समझ कर कि महाराज का व्यय बहुत है और आय कुछ है नहीं वह २००) रु० उनको भेट करने के लिये लाये थे। वह २००) रु० के नोट महाराज के सम्मुख रख कर चले गये। पादरी साहब बैठे हुए महाराज से वार्तालाप करते रहे। इतने में एक वणिक् भी महाराज के दर्शनों को आगया। उसने देखा कि एक ओर महाराज बैठे हैं और दूसरी ओर पादरी साहब और बीच में कुछ नोट रक्खे हैं। थोड़ी देर बैठ कर वह चला गया। उसने नगर में जाकर यह जनरव फैला दिया कि स्वामी दयानन्द ईसाई होगये हैं और पादरियों से रुपया लेते हैं। जब यह जनरव नगर में फैला तो एक अनुरागी ने महाराज से आकर कहा कि नगर में ऐसी किंवदन्ती हो रही है। महाराज इसे सुन कर कुछ भी विचलित न हुए और उन्होंने यह कहा कि जो व्यक्ति अपने को किसी अवलम्बित कार्य्य के लिए उत्तरदायी नहीं समझते और अपने को किसी कार्य्य वा कर्त्तव्य में न लगा कर संसार में व्यर्थ घूमते हैं उन की बात ध्यान देने योग्य नहीं है।

स्वामीजी के ईसाइयों के वेतनभोगी होने का प्रमाण

१३ सितम्बर सन १८७७ को ९॥ की गाड़ी से अमृतसर से जालंधर के लिये प्रस्थित होगये और २ बजे वहाँ पहुँच गये।

जालंधर

जालंधर में स्वामीजी सरदार सुचेतसिंहजी की कोठी में ठहरे।*

जिस समय सन १८७४ के अन्त से सन १८७५ के आरम्भ के समय में श्री महाराज बंबई में थे तो सरदार विक्रमसिंह और सरदार सुचेतसिंह उन से मिले थे और फिर १८७७ में दिल्ली दरबार में भी उन्होंने महाराज के दर्शन किये थे और महाराज से पञ्जाब प्रान्त में पधारने की प्रार्थना की थी। जब महाराज ने पञ्जाब में पदार्पण किया तो लुधियाना से लाहौर जाते हुए एक रात के लिये जालंधर ठहरे थे और सरदार सुचेतसिंह का आतिथ्य ग्रहण किया था।

सरदार विक्रमसिंह व सुचेतसिंह से परिचय

जालंधर पधारने के दूसरे दिन महाराज का प्रथम व्याख्यान सरदार सुचेतसिंह के गृह पर सृष्ट्युत्पत्ति पर हुआ। उसमें महाराज ने कहा था कि आदि में मनुष्य युवा उत्पन्न हुए थे, यदि बालक वा वृद्ध उत्पन्न होते तो वह कुछ कार्य न कर सकते थे।

प्रथम व्याख्यान

दूसरा व्याख्यान सरदार विक्रमसिंह के गृह पर हुआ। भीड़ इतनी थी कि छत और आँगन सब खचाखच भर गये थे।

३५ व्याख्यान

जालंधर में महाराज के ३४ वा ३५ व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान में महाराज ने कहा कि जो राजा होकर कंजरी (वेश्या) रखता है वह कंजर है। सरदार साहब ने जिनमें यह अवगुण था व्याख्यान की समाप्ति पर कहा कि आज तो आप हम पर भी बरस पड़े। उत्तर में महाराज ने कहा कि हमतो सब को ही कहते हैं, किसी का पक्ष नहीं करते।

वेश्यागामी कंजर है

* दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि जालंधर में स्वामीजी सरदार विक्रमसिंह की कोठी में ठहरे थे।
—संग्रहकर्त्ता.

एक दिन सरदार विक्रमसिंह ने महाराज से कहा कि सुनते हैं ब्रह्मचर्य्य से बहुत बल बढ़ता है। महाराज ने कहा कि यह सत्य है और शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है। सरदार साहब ने कहा कि शास्त्र के कथन का सत्य सिद्ध होना कठिन है। आप भी तो ब्रह्मचारी हैं, परन्तु आप में इतना बल प्रतीत नहीं होता। महाराज उस समय तो चुप हो रहे, परन्तु जब सरदार साहब अपनी दो घोड़ों की गाड़ी पर सवार हुए तो महाराज ने चुपके से जाकर उन की गाड़ी का पिछला पहिया पकड़ लिया। कोचवान ने घोड़ों को बढ़ाना चाहा, परन्तु वह न बढ़े। उसने फिर उनके चाबुक रसीद किये। घोड़ों ने बहुतेरा बल लगाया, परन्तु वह टस से मस न हो सके। कोचवान और सरदार साहब ने पीछे मुड़ कर देखा तो महाराज को गाड़ी का पहिया पकड़े हुए पाया। महाराज ने ईषत्स्मित होकर कहा कि मैंने ब्रह्मचारी के बल का प्रमाण देदिया है।*

ब्रह्मचारी का बल-प्रदर्शन

महाराज बड़े विनोदप्रिय थे। उनमें यह शक्ति थी कि श्रोताओं को जब चाहें हँसा दें और जब चाहें रुलादें। जब वह देखते थे कि श्रोता गम्भीर विषयों को सुनते २ कुछ अन्यमनस्क होगये हैं तो कोई न कोई कथानक वा चुटकला ऐसा सुना देते थे कि श्रोता खिलखिला कर हँस पड़ते थे और फिर गम्भीर विषयों की ओर आकृष्ट होजाते थे। जालन्धर में उन्होंने कई ऐसी कथाएँ सुनाईं जिनका पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में उल्लेख है। हम केवल एक ही कथा यहाँ पाठकों के विनोदार्थ उद्धृत करते हैं।

स्वामीजी की विनोद-प्रियता

आजकल के देशी राजाओं के चरित का वर्णन करते हुए एक दिन आपने निम्न लिखित कथा सुनाई:—

एक बार एक राजा दिल्ली गये। वहाँ एक धूर्त्त ने उनसे कहा कि मुझे ऐसे वस्त्र बनाने आते हैं कि वह किसी को दिखाई नहीं देते, परन्तु उस मनुष्य को दिखाई देते हैं जो जारज हो। राजा थे बुद्धि के सागर, उसके झांसे में आगये। वस्त्रों का मूल्य १००००) रु० ठहरा जिनमें से ५०००) उसने अग्रिम लेलिया जब कई महीने होगये और वह न आया तो राजा ने उसे बुलवाया। राजा ने कहा कि वस्त्र लाये? उसने कहा कि लाया हूँ। राजा बोले हमें तो दिखाई नहीं देते। वह धूर्त्त बोला कि यदि दिखाई देते तो बात ही क्या होती। आप अन्दर चलिये मैं आपको पहना दूँ। राजा साहब उसके साथ एक कमरे में चले गये। वहाँ जाकर उसने राजा के सब वस्त्र उतरवाकर नंगा करदिया और फिर झूठमूठ राजा के शरीर पर हाथ फेर कर कहता रहा कि यह कुर्त्ता पहनाता हूँ, यह पगड़ी इत्यादि। राजा कपड़े पहनना स्वीकार करते

मूर्ख राजा की कथा

* दयानन्दप्रकाश में इस घटना का उल्लेख रावलपिण्डी के वर्णन में किया है। पण्डित लेखरामकृत जीवनचरित में इस घटना का उल्लेख रावलपिण्डी के वर्णन में एक नोट में है, परन्तु उस में यह कहीं नहीं लिखा है कि यह घटना रावलपिण्डी की है। इसका भी कहीं प्रमाण नहीं मिलता कि उस समय सरदार विक्रमसिंह रावलपिण्डी थे। यह घटना जालंधर की है।

—संग्रहकर्त्ता.

महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य के बल का एक प्रमाण
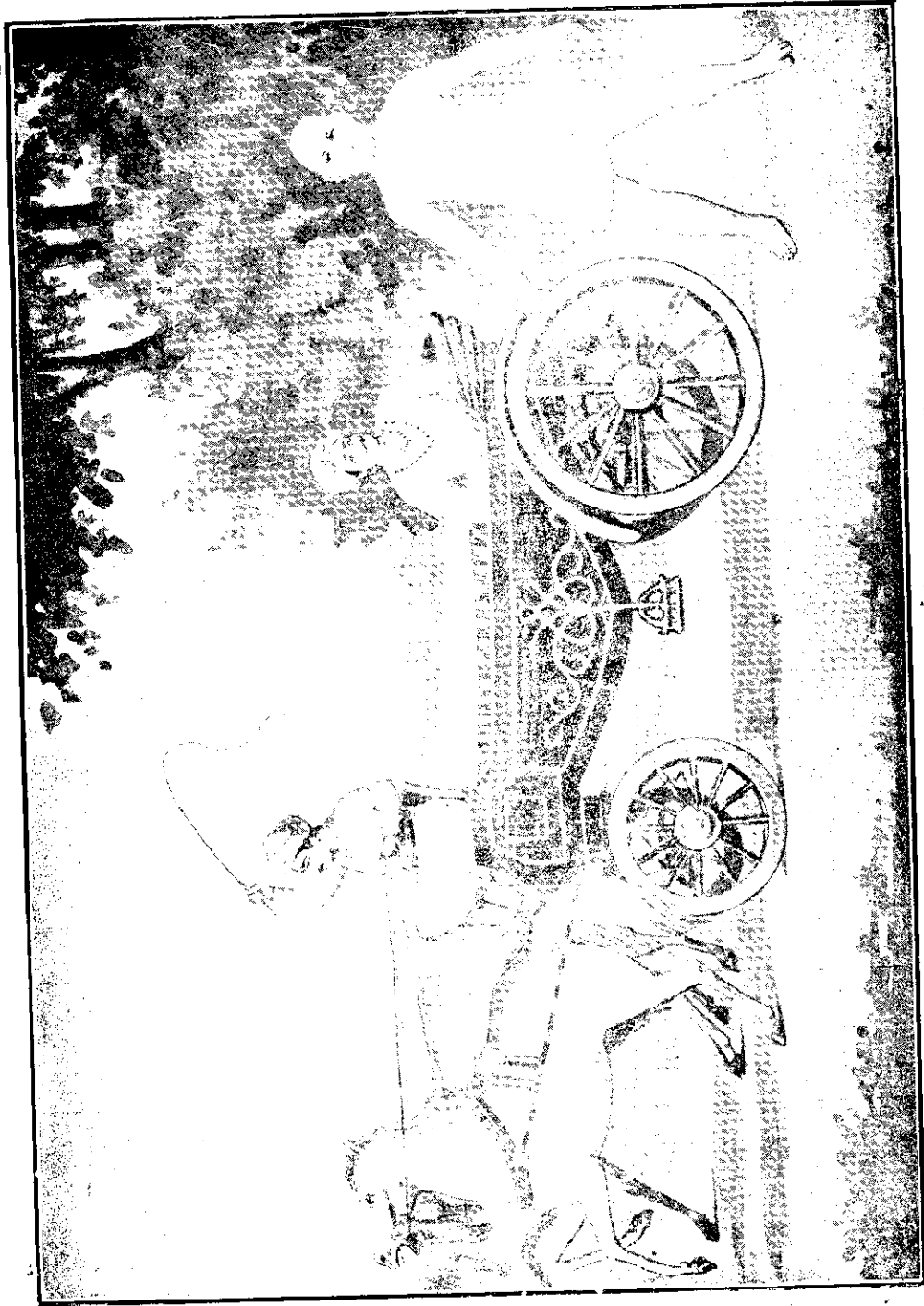
रहे और उसी नग्नावस्था में कचहरी में चले आये। मन्त्री बुद्धिमान् था, वह समझ गया कि राजा ठगे गये। उसने राजा से कहा कि सब वस्त्र तो आपने दिल्ली के पहने हैं केवल एक लंगोटी देशी पहन लीजिये ताकि नग्नता बुरी न लगे। राजा ने कहा तो क्या हम नंगे हैं। मन्त्री ने कहा कि अवश्य राजा को भी चेत हुआ और कहा कि उस धूर्त्त ने हमें ठग लिया।

श्राद्ध पर व्याख्यान

एक दिन महाराज ने मृतक श्राद्ध के खण्डन पर व्याख्यान दिया। दूसरे दिन पण्डित रामदत्त आनरेरी मैजिस्ट्रेट ने मृतक-श्राद्ध-मण्डन पर उसी स्थान पर व्याख्यान दिया, परन्तु वेदों का कोई प्रमाण न दिया केवल गरुड़ पुराण आदि के प्रमाण देते रहे। अगले दिन महाराज ने वेदों व मनुस्मृति के प्रमाणों से सिद्ध किया कि जीवित पिता आदि का ही नाम पितर है मृतक का नहीं। अग्निष्वात्त, अनग्निष्वात्त आदि के सत्य अर्थ किये। मनुस्मृति के प्रमाण से सिद्ध किया कि जो २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य्य रक्खे उसका नाम 'पिता' जो ३६ वर्ष रक्खे उसकी संज्ञा 'पितामह' और जो ४८ वर्ष का रक्खे उसकी संज्ञा 'प्रपितामह' है। पौराणिक लोग पिण्ड की वेदी बनाते समय वेद का यह मन्त्र (ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना०) पढ़कर कहते हैं कि इससे भूत-प्रेत निकट नहीं आते। महाराज ने कहा कि इससे मक्खी तक तो उड़ नहीं सकती, भूत-प्रेत कैसे दूर हो सकते हैं ? डेरे पर पहुँच कर पण्डित शिवराम ने स्वीकार किया कि व्याकरण के अनुसार रक्षा और पालन करने वाले को 'पिता' कह सकते हैं सो यह जीवित ही कर सकते हैं, मृत नहीं।

जीवित पितरों के श्राद्ध की सिद्धि

मन्त्र से मक्खी नहीं डरती, भूत-प्रेत क्या डरेंगे ?

तिलकाकार बीट से यम के दूत डर गए

एक दिन पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी भी तिलक और कण्ठी धारण किये हुए सभा-मण्डल में उपस्थित थे। महाराज ने कहा कि एक यात्री एक पेड़ के नीचे सो रहा था कि एक कौए की बीट उसके मस्तक पर गिर कर तिलकाकार होगई। घटनावशात् वह यात्री उसी अवस्था में मर गया। तब इधर तो यम के और उधर विष्णु के दूत उसे ले जाने को आये। दोनों में युद्ध हुआ। अन्त को विष्णु के दूत उसे वैकुण्ठ को लेगये। महाराज ने कहा तिलक से पुलिस का सिपाही तक तो डरता नहीं, यम के दूत क्या डरते। अगले दिन पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने लाहोरियों के ठाकुरद्वारे में व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने कहा कि जैसे कोई ठग बच्चों को लड्डू देकर उनके आभूषण उतार लेता है ऐसे ही दयानन्द ऐसी २ बातें सुना कर लोगों को ठगता है।

काशी-माहात्म्य आदि का खण्डन

एक दिन काशी माहात्म्य का खण्डन करते हुए महाराज ने कहा कि पाप किसी मन्दिर में जाने वा वहां 'नमः शिवाय' कहने से दूर नहीं होते, पाप तो शुद्ध सङ्कल्प, तप करने और फल भोगने से दूर होते हैं। उसी दिन गङ्गा-स्नान से पाप निवृत्त होने का भी खण्डन किया और यह भी कहा कि हमने अमृतसर की बड़ी महिमा सुनी थी कि उसमें अमृत है, परन्तु हमने जाकर जो देखा तो उसमें स्नान करना तो दूर रहा पैर डालने को भी

जी नहीं चाहता, क्योंकि दीपमालिका को सिक्ख लोग केश भी उसीमें डाल देते हैं। इस पर सरदार विक्रमसिंह ने कहा कि महाराज आज हम पर भी बरसे। महाराज ने उत्तर दिया कि हम तो सत्य कहते हैं।

स्त्रियों को बुलाने का बिगुल

एक दिन महाराज व्याख्यान दे रहे थे कि सन्ध्या समय हो गया और एक मन्दिर से शङ्ख घड़ियाल बजने की आवाज़ आई। इस पर महाराज ने कहा कि देखो यह स्त्रियों के बुलाने का बिगुल है। साधु पुजारी बच्चों को प्रसाद की चाट डाल देते हैं। जब शङ्ख घड़ियाल बजते हैं तो लड़का माता से कहता है, चलो माँ आरती देखें। उसको क्या ज्ञान है कि वहां माँ की क्या दुर्दशा होगी।

अथर्ववेद स्त्रियों का गीत है

महाराज के आगमन के समय पञ्जाब में वेदों के विषय में भारी अज्ञान था। पुरोहितगण अथर्ववेद को स्त्रियों के गीत बताया करते थे। महाराज के उपदेशों से ही घोर अज्ञानान्धकार दूर हुआ।

मौलवी से शास्त्रार्थ

जालन्धर में महाराज का एक जन मौलवी अहमदहसन से २४ सितम्बर १८७७ ई० को आवागमन और विभूति (करामात) पर शास्त्रार्थ हुआ था जो छप गया था और पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित के साथ परिशिष्ट के रूप में लगा हुआ है।

शास्त्रार्थ का सार

महाराज ने मौलवी साहब से प्रश्न किया कि आप 'करामात' किसे कहते हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य के स्वभाव वा शक्ति से बाहर काम को जो परमेश्वर अपने कृपापात्र मनुष्यों से कराता है। ऐसे कामों में कर्त्ता ईश्वर होता है मनुष्य तो उसके हाथ में कठपुतली के समान होता है। परमेश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध काम नहीं करता, परन्तु मनुष्य से उसके स्वभाव के विरुद्ध काम करा सकता है, सृष्टि-नियम (प्राणिमात्र के स्वभाव) के विरुद्ध भी वह काम हो सकता है। महाराज के प्रश्न करने पर मौलवी साहब ने कहा कि हज़रत मुहम्मद और हज़रत ईसा ने ऐसी करामात दिखाई थीं जिनका प्रमाण उन लोगों के वचन हैं जिन्होंने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। परन्तु इस आक्षेप पर कि उनके सच्चे होने का क्या प्रमाण है, संभव है उन्होंने झूठ ही लिखा हो, अब भी बहुत से ढोंगिये हैं जो लोगों को ठगते फिरते हैं, इस समय कोई करामात दिखाने वाला बताइये और जब अब नहीं तो पहले भी नहीं था और आगे को भी नहीं होगा। मौलवी साहब ने कहा कि यदि हर बात का समाचार झूठा हो तो लन्दन, कलकत्ता आदि के अस्तित्व और वेद के ईश्वरकृत होने को न मानना चाहिए। महाराज ने इसका उत्तर दिया कि यदि कोई लन्दन कलकत्ते के अस्तित्व को न माने तो उसे वहां लेजा कर दिखाया जा सकता है, ऐसे ही करामात को भी दिखाना चाहिए। वेद का ईश्वरकृत होना असंभव नहीं क्योंकि परमेश्वर अन्तर्यामी, पूर्ण विद्वान्, दयालु, न्यायकारी है वह जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप से अपना प्रकाश कर सकता है। ईश्वर के कामों की भी सीमा है, जैसे वह मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, अतः करामात किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती। मौलवी साहब को कोई उत्तर न आया और अन्त में यही कहा कि मक्के और शाम देश में चालीस मनुष्य करामात

दिखाने वाले हैं यदि किसी को सन्देह हो तो वहाँ जाकर देखले और भी दो चार अप्रासङ्गिक बातें कह कर अपना कथन समाप्त किया। परन्तु यह न बतालाया कि उन करामात दिखाने वालों का नाम और पता क्या है और वह क्या करामात दिखाते हैं।

इस के पश्चात् आवागमन पर बातचीत हुई। मौलवी साहब ने कहा कि किसी पदार्थ का अस्तित्व विना उसके वर्त्तमान रूप के सम्भव नहीं। अतः जब रूप ही सादि है तो प्रकृति भी अवश्य सादि होनी चाहिये। अतः संसार भी अनादि नहीं हो सकता जैसा कि आवागमन मानने वाले मानते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि रूप दो प्रकार का होता है, एक इन्द्रियग्राह्य दूसरा अतीन्द्रिय,—कार्यरूप प्रकृति में वह इन्द्रियग्राह्य और कारणरूप में अतीन्द्रिय। यदि कारण में रूप न हो तो कार्य्य में भी नहीं हो सकता, क्योंकि कार्य में कारण के ही गुण आते हैं। रूप विना वस्तु के अलग नहीं रह सकता, इससे सिद्ध है कि कारण नित्य है। मौलवी साहब का यह उत्तर था कि प्रकृति का इन्द्रिय-गोचर होना किसी अन्य वस्तु के संयोग से हो सकता है अतः वह वस्तु प्रकृति से पहले होगी। किसी विशेष रूप और आकृति वाले पदार्थ के वह रूप और आकृति उस से पहले नहीं हो सकते, अतः उन रूप और आकृति के प्रागभाव को ही नित्य कहा जावेगा। महाराज ने उत्तर में कहा कि स्वाभाविक गुण किसी पदार्थ के उससे पीछे नहीं हो सकते, वह साथ रहते हैं केवल निमित्त कारण के संयोग पर वह इन्द्रियग्राह्य हो जाते हैं। कार्य-जगत् प्रवाह रूप से अनादि है स्वरूप से नहीं। मौलवी साहब ने कहा कि गुणी का गुणों से प्रागभाव होता है, जैसे प्रकृति का अपने गुणरूप से, दूसरा प्रागभाव समय के सम्बन्ध से होता है सो यह प्रकृति में है नहीं। इस से मौलवी साहब ने यह सिद्ध करना चाहा कि जब रूप आदि के व्यक्त होने से ही प्रकृति का अस्तित्व हुआ तो प्रकृति का प्रागभाव था। महाराज ने उत्तर दिया कि द्रव्य उसे कहते हैं कि जिस में गुण, क्रिया, संयोग, वियोग होने का स्वभाव हो, परन्तु यह परिच्छिन्न द्रव्य में रहते हैं। जो द्रव्य विभु वा व्यापक हैं उन में से किसी में केवल गुण और किसी में गुण और क्रिया दोनों होते हैं, परन्तु संयोग वियोग से पृथक् रहते हैं, जैसे दिशा, काल, आकाश में केवल गुण है, क्रिया नहीं और परमेश्वर में गुण और क्रिया दोनों हैं। मौलवी साहब ने महाराज के कथन का उत्तर तो दिया नहीं केवल यह कहा कि मानो जैद का शरीर है, वह उसके उत्पन्न होने से पहले नहीं था, उसका अभाव अनादि था, परमेश्वर के ज्ञान में भी वह नहीं था। रूप का ज्ञान बाह्य वस्तुओं से इन्द्रिय द्वारा होता है और जब आर्य्य मानते हैं कि प्रकृति कारणरूप में इन्द्रियग्राह्य नहीं थी तो इस के अर्थ हैं कि प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं था, अतः आवागमन फिर कहाँ रहता है। कर्म आवागमन के कारण नहीं हो सकते, क्योंकि कर्म्म गतिजन्य होते हैं और गति काल में होती है और काल का आदि मध्य और अन्त इकट्ठा नहीं रह सकता, अतः कर्म्म नष्ट होगये। दूसरे, आवागमन से बहुतसी हानियाँ होंगी, क्योंकि एक शरीर में जो योग्यता प्राप्त की थी वह नीची योनि में जाने से नष्ट होजायगी। महाराज ने उत्तर दिया कि यह कहना ठीक नहीं है कि सब ज्ञान इन्द्रिय-जन्य ही हैं। जीवात्मा है, परन्तु इन्द्रियग्राह्य नहीं है। परमेश्वर, जीवात्मा और जगत् का कारण अनादि हैं और अभाव से भाव नहीं हो सकता। सुषुप्ति में जाग्रत अवस्था की प्राप्त की हुई योग्यता नहीं रहती, अतः मौलवी साहब को सोना कभी न चाहिये।

इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। मौलवी साहब का तर्क कितना दूषित था यह पाठक स्वयं देख सकते हैं। उनकी युक्ति स्वयं उनके ही पक्ष का खण्डन करती थी। शास्त्रार्थ की समाप्ति पर मौलवी साहब ने नासिरुद्दीन की खानकाह के द्वार पर जाकर अपनी जीत की बहुत डींग मारी और मूर्खमण्डली ने उन्हें घोड़े पर चढ़ा कर नगर में घुमाया। इसको समझदार मुसलमानों ने भी पसन्द न किया, क्योंकि यह पहले ही निश्चित हो गया था कि शास्त्रार्थ की समाप्ति पर कोई किसी की हार जीत न समझे। जब वह मुद्रित हो जायगा तो बुद्धिमान् लोग स्वयं ही परिणाम निकाल लेंगे।

जालंधर में महाराज ने एक ईसाई को शुद्ध किया था।

लाहौर

जालन्धर से १५ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को महाराज लाहौर पधारे, और नव्वाब रज़ाअली के उद्यान में ठहरे।

इस समय कई लोगों ने महाराज से प्राणायाम और उपासना की विधि सीखी।

धनकी अधिकता अवनति का कारण होती है

एक दिन एक पादरी और एक मिशनरी महिला महाराज से मिलने आये। उनसे महाराज ने कहा कि धनकी अधिकता जाति की अवनति का कारण हुआ करती है, जैसी कि वह आर्य्य-जाति के अधः पतन का कारण हुई और उदाहरण रूप से कहा कि इसी कारण से अंग्रेजों की दिनचर्य्या बिगड़ती जाती है। पहले हम जब सूर्य्योदय से पूर्व भ्रमण करने जाया करते थे तो बहुत से अंग्रेज स्त्री-पुरुषों को हवाखोरी करते देखते थे, परन्तु अब वह बहुत दिन चढ़े उठते हैं।

वेद में ऋषियों के नाम नहीं हैं

एक दिन एक पण्डित ने महाराज से प्रश्न किया कि सामवेद में भारद्वाज आदि ऋषियों के नाम आये हैं इससे सन्देह होता है कि वेद ऋषि-कृत हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि उन मन्त्रों में यह नाम ऋषियों के नहीं हैं, प्रत्युत उनके विशेष अर्थ हैं। पीछे से ऋषियों के नाम भी वेद के इन शब्दों से रख लिये गये हैं और कई एक मन्त्रों का जिनमें उक्त शब्द आये थे अर्थ करके सुनाया।

ऋषियों को ईश्वर का ज्ञान न था

एक दिन एक बिशप (लाट पादरी) महाराज से भेट करने आये और वार्त्तालाप में यह प्रसङ्ग उठाया कि वेद के ऋषियों को ईश्वर के विषय में कुछ ज्ञान न था और हिरण्यगर्भ सूक्त की ओर संकेत किया कि उसमें यह आता है कि हम किस देव की उपासना करें (कस्मै देवाय हविषा विधेम)। राय मूलराज ने उक्त सूक्त का अंग्रेज़ी अनुवाद महाराज को सुनाया तो उन्होंने बिशप साहब से कहा कि आप को अशुद्ध अनुवाद के कारण भ्रम हुआ है। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि किस देव की हम उपासना करें प्रत्युत यह हैं कि हम सर्वव्यापक, (सुखस्वरूप) परमात्मा की उपासना करते हैं।

बाइबल का प्रताप

फिर बिशप साहब बोले कि देखो, बाइबल का प्रताप कि वह संसार में इतने विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है कि उसमें सूर्य्य अस्त नहीं होता। महाराज ने कहा कि यह भी वेद का ही प्रताप है। हम लोग वैदिक धर्म्म को छोड़ बैठे हैं

और आप लोगों में वेदोपदिष्ट गुण हैं, यथा ब्रह्मचर्य्य, विद्याध्ययन, एकपत्नीव्रत, दूरदेश-यात्रा, स्वदेशप्रीति आदि। इसी से आपकी इतनी उन्नति होरही है, बाइबल के कारण से नहीं।

ब्राह्मसमाज का उत्सव

२१ अक्टूबर १८७७ को ब्राह्मसमाज लाहौर का चौदहवाँ वार्षिक उत्सव था। महाराज उसमें ३००, ४०० मनुष्यों के साथ पधारे। उस समय ब्राह्मसमाज के उपदेशक बाबू अघोरनाथ गुप्त उपासना कर रहे थे। उपासना के अन्त में महाराज उनसे कौलम-कौली होकर मिले। उनका मन प्रफुल्ल और चित्त प्रसन्न था। उनके पधारने से उत्सव-क्षेत्र ने आर्य्य ऋषियों के धर्म्मक्षेत्र नैमिषारण्य के समान श्री धारण करली थी।"

नियमों के प्रतिकूल कोई कथन न करे

जिन दिनों महाराज अमृतसर में उपदेश दे रहे थे उन्हीं दिनों में आर्य्य-समाज लाहौर के एक साप्ताहिक सत्सङ्ग में बाबू शारदाप्रसाद ने अपने व्याख्यान में यह कह दिया कि वेद, क़ुरान, बाइबल एक-से ईश्वरीय आदेश हैं। यह कथन सभासदों को बुरा लगा और जब इस वार स्वामीजी लाहौर पधारे तो उन्होंने उनसे व्यवस्था माँगी। उन्होंने शारदा बाबू के कथन को आर्य्य-समाज के नियमों के प्रतिकूल बताया और कहा कि किसी को नियमों के प्रतिकूल कहने का अधिकार नहीं है और यदि कोई ऐसा करे तो हरएक सभासद् को उसे रोकने का अधिकार है।

२६ अक्टूबर सन १८७७ को महाराज ने फ़ीरोज़पुर के लिये प्रस्थान किया।

विंश अध्याय

कार्त्तिक संवत् १९३४-आषाढ़ संवत् १९३५

फ़ीरोज़पुर

फ़ीरोज़पुर में महाराज का आगमन २६ अक्टूबर सन् १८७७ को हुआ। उनके पधारने से पहले ही वहाँ एक हिन्दू-सभा स्थापित थी। जब उसके सदस्यों ने महाराज के उपदेशों की चर्चा सुनी तो उन्हें उनके दर्शनों की लालसा हुई और उनकी यह भी इच्छा हुई कि उक्त सभा का कार्य श्रीमहाराज के सिद्धान्तों के अनुसार ही होना चाहिए। महाराज के आगमन के लिये उक्त सभा के प्रधान म० मथुरादास इतने उत्सुक हुए कि उन्होंने एक सज्जन को महाराज को फ़ीरोज़पुर लाने के लिये भेजा और वह उन्हें लिवाकर लाया। ला० मथुरादास ने उनके निवास के लिये एक गृह सुसज्जित कराया जो एकान्त स्थान में था, परन्तु महाराज ने उसके नगर के भीतर होने के कारण उसमें ठहरना न चाहा। तब उन्हें नगर के बाहर एक कोठी में ठहराया गया।

बेतुका शास्त्री

यहाँ महाराज के आठ व्याख्यान हुए। पहले ही व्याख्यान के आरम्भ होते ही एक जन गोपाल शास्त्री ने कुछ कहना चाहा। महाराज ने कहा कि व्याख्यान की समाप्ति पर जो पूछना चाहो पूछ लेना। उसने कहा कि मुझे आप के कथन पर बहुत से आक्षेप करने हैं, महाराज ने कहा कि लिखते जाओ अन्त में सब आक्षेप कर लेना। वह बोला मैं इतना नहीं लिख सकता। इस पर लोगों ने और महाराज ने भी उस से कहा कि शान्तिपूर्वक सुने जाओ, परन्तु वह महाराज के तेज से ऐसा अभिभूत हुआ कि तुतलाने लगा और विक्षिप्त सा होगया और यह बड़बड़ाता हुआ कि 'यह गप्पाष्टक है, जो कोई अपने माता पिता से उत्पन्न हिन्दू हो वह इसकी बात न सुने' सभा से चला गया। उसके साथ दस बारह मनुष्य उठ कर चले गये, शेष शान्तिपूर्वक सुनते रहे।

राजा का धूर्त्त कोठारी

एक दिन महाराज ने एक कथा सुनाई कि एक राजा था जिसका कोठारी बहुत अधिकारसम्पन्न था। जब कोई ब्राह्मण उसके पास आता और उससे कहता कि मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ आप मेरी सहायता कीजिये, तो वह उससे अपना भाग ठहरा लेता और कह देता कि पढ़े लिखे होने

की आवश्यकता नहीं है, मुख से चाहे जो कहते रहो केवल हाथ में माला और गोमुखी होनी चाहिये। एक बार एक मूर्ख ब्राह्मण आया और कोठारी ने अपना भाग ठहरा कर उसे नदी के घाट पर भेज दिया। वह घाट पर जाकर जप करने लगा, 'राजा का जप करूँ, राजा का जप करूँ'। फिर एक दूसरा ब्राह्मण आया और वह भी कोठारी का भाग ठहरा कर उसी स्थान पर जप करने लगा 'जो तू करे सो मैं करूँ, जो तू करे सो मैं करूँ'। फिर तीसरा आया, वह विद्वान् था। वह भी घाट पर गया तो उपर्युक्त दृश्य देखकर चकित हुआ और उसने यह कहना आरम्भ किया 'यह निभेगी कबतक, यह निभेगी कबतक'। इसी प्रकार चौथा पहुँचा वह यह जपने लगा 'जबतक निभेगी तबतक, जबतक निभेगी तबतक'।

यह दृष्टान्त देकर महाराज ने कहा कि आजकल के ब्राह्मणों की यही दशा है, जानते हुए भी अविद्या में धकेले जा रहे हैं।

एक क्लर्क से प्रश्नोत्तर

एक दिन पण्डित कृपाराम क्लर्क मैगेज़ीन फ़ीरोज़पुर सभा में आये और महाराज से प्रश्नोत्तर करने चाहे, परन्तु महाराज से कहा आप तो कुर्सी पर बैठे हैं, मैं आपसे कैसे प्रश्नोत्तर करूँ। महाराज ने उसके लिये भी कुर्सी लाने को कहा। उसमें कुछ देर हुई तो महाराज ने उनसे कहा कि यदि आपको यह अखरता हो कि मैं कुर्सी पर क्यों बैठा हूँ तो मैं भी नीचे बैठा जाता हूँ, आप प्रश्न कीजिये, परन्तु इतने में कुर्सी आगई। उन्होंने पूछा परमेश्वर महदूद है वा ग़ैर, महदूद। महाराज ने कहा कि मैं अरबी नहीं समझता, परन्तु आपका अभिप्राय सर्वव्यापक व एकदेशी से है तो परमेश्वर सर्वव्यापक है। इस पर पण्डित कृपाराम ने अपनी जेब से घड़ी निकाल कर मेज़ पर रखदी और महाराज से कहा कि बताओ इसमें परमेश्वर कहाँ है। महाराज ने उत्तर दिया कि आकाश सब जगह समाया है। सब वस्तुएँ आकाश के भीतर हैं और अपना सोटा खड़ा करके कहा कि जैसे यह मेरा सोटा आकाश से बाहर नहीं हो सकता वैसे ही आपकी घड़ी भी परमेश्वर के व्यापकत्व से पृथक् नहीं हो सकती।

विरोधी अनुकूल होगया

उस समय तो पण्डित कृपाराम यह कहकर चले गये कि आपको गपोड़े हाँकने ही आते हैं, परन्तु पीछे महाराज के कथन की सत्यता के सामने उन्होंने सिर झुकाया और वह आर्य्यसमाज के सभासद् बने।

पंजाबी तुक का अर्थ

एक दिन एक दफ़्तरी ने पञ्जाबी भाषा की एक तुक महाराज को सुनाई कि—

"ज्ञान कर ज्ञान कर, ज्ञान को खँडर कर खेल चौगान मैदान माँही।" वह दूसरी तुक पढ़ने को ही था कि महाराज ने उससे कहा कि पहले इसी तुक का अर्थ करो। वह न कर सका तो उन्होंने स्वयं उसका अर्थ किया कि कुछ पढ़ और भले प्रकार पढ़ फिर पढ़ा लिखा सब भूलजा और गिल्ली डण्डा खेल।

एक दिन नगर के पण्डितों ने कुछ प्रश्न बना कर भेजे जिनका महाराज ने तत्काल समुचित उत्तर दे दिया।

पूजा का शत्रु पुजारी

एक मन्दिर का पुजारी महाराज के पास आया और कुछ पूछना चाहा। महाराज ने उससे पूछा कि कुछ पढ़े हो कि नहीं। उसने कुछ ग्रन्थों के नाम बताये। फिर उससे पुजारी शब्द के अर्थ करने को कहा। वह न

कर सका। तब महाराज ने कहा कि इसके अर्थ हैं पूजा का अरि (शत्रु)। उसी पूजारी के यह कहने पर कि सब शास्त्र वेद के सहारे ही बने हैं, महाराज ने इसकी सत्यता स्वीकार करते हुए कहा कि जैसे थैली के रुपयों में खरा खोटा देखना सर्राफ़ का काम है ऐसे ही विद्वानों का काम सत्यासत्य के निर्णय करने का है।

भक्त से योग-चर्चा

फ़ीरोज़पुर में एक सज्जन थे जिनका नाम स्वरूपसिंह था। उनकी जप-पाठ में बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने बहुत देर तक महाराज से योग-चर्चा की और महाराज ने परम दयालुता से योग के कई बहुमूल्य रहस्य बताये।

आर्य्यसमाज स्थापित होगया

महाराज ४ नवम्बर की रात्रि को फ़ीरोज़पुर से प्रस्थित हुए और ५ नवम्बर को लाहौर पहुँच गये। महाराज के चले जाने के पश्चात् फ़ीरोज़पुर में नियम-पूर्वक आर्य्यसमाज स्थापित होगया।

लाहौर

मुझे सम्मति देने का अधिकार नहीं है

५ नवम्बर सन् १८७७ को महाराज प्रातःकाल फ़ीरोज़पुर से लाहौर पहुँच गये। उसी दिन सायंकाल को आर्य्यसमाज में व्याख्यान दिया। ६ नवम्बर को आर्य्यसमाज के उपनियम स्वीकार होने थे। तदर्थ अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन हुआ। महाराज उसमें विराजमान थे। अन्तरङ्ग सभासदों ने महाराज से सम्मति देने की प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया और कहा कि मैं आपकी सभा का सदस्य नहीं हूँ। मुझे सम्मति देने का कोई अधिकार नहीं है। तब उन्हें सभासद् बनाया गया और फिर उन्होंने अपनी सम्मति दी। इससे स्पष्ट है कि महाराज नियमों का कितना आदर करते थे।

७ नवम्बर सन् १८७७ को महाराज ने रावलपिण्डी के लिये प्रस्थान किया।

रावलपिण्डी

श्रीमहाराज की ख्याति पञ्जाब के नगर नगर में फैल गई थी। रावलपिण्डी में भी उनके उपदेशों की चर्चा होने लगी थी। वहाँ दो खत्री जवाहर व प्रभुदयाल थे जो घी तेल की दुकान करते थे और कुछ संस्कृत भी पढ़े थे। एक दिन रावलपिण्डी के रईस सरदार सुजानसिंह ने उन से कहा कि स्वामी दयानन्द तीर्थ, मूर्त्ति-पूजा, मृतकश्राद्ध आदि का खण्डन करते हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि स्वामीजी की बातें अयुक्त हैं, आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं, इसलिए आपको उनकी विद्या अधिक जान पड़ती है। इस पर सरदार साहब ने कहा कि आप प्रमाण संग्रह करके दो हम उन्हें स्वामीजी के पास उत्तरार्थ भेज देंगे इस पर उन्होंने कुछ प्रमाण लिख कर दिये जो सरदार साहब ने महाराज के पास दिये। महाराज ने उत्तर में लिख दिया कि आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं, इससे उत्तर नहीं भेजते हम स्वयं रावलपिण्डी आकर उत्तर देंगे। इस के कुछ दिन पश्चात् महाराज रावलपिण्डी में आकर विराजमान हो गये। बाबू निराशचन्द्र वन्द्योपाध्याय हेडक्लर्क, डिप्टी कमिश्नर, सदस्य ब्राह्मसमाज उन्हें लाहौर से लिवा कर लाये थे। रावलपिण्डी में वह पारसी सौदागर जामास्पजी की कोठी में, जो नदी के तट पर थी, ठहरे। उसी कोठी में उन के व्याख्यान होते रहे। यह व्याख्यान मूर्त्ति-पूजा आदि विषयों पर ही थे। पहले ही दिन के व्याख्यान में मूर्त्ति-पूजा का ऐसा भयानक

खण्डन किया कि रावलपिण्डी के जन साधारण और विशेषकर ब्राह्मणगण विक्षिप्तप्राय होगये। उसके पश्चात् अनेक लोगों ने उनके व्याख्यानों में जाना बन्द कर दिया।

एक दिन व्याख्यान के पश्चात् महाराज लोगों से बात-चीत कर रहे थे। प्रसङ्गवश वह हिन्दुओं की दशा पर खेद प्रकट कर रहे थे कि वह दूसरे मतों की पुस्तकें नहीं देखते और जब ईसाई वा मुसलमान मेलों में यह कहते हैं कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से जार कर्म्म किया तो निरुत्तर हो जाते हैं। यह कथा किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं है, परन्तु बाइबल में यह लिखा है कि लूत पैग़म्बर ने अपनी पुत्री से जार कर्म किया। यदि हिन्दू पादरियों और मौलवियों को ऐसी २ बातें बतलावें तो वह कदापि सम्मुख न ठहर सकें। एक पादरी और मिशन स्कूल के मौलवी भी उस समय उपस्थित थे, उन्होंने आपस में मन्त्रणा की कि स्वामीजी ने यह बात झूठ कही है, कल पुस्तकें लाकर उन पर आक्षेप करना चाहिये। अतः वह अगले दिन पुस्तकें लेकर आये और महाराज से कहा कि कल जो आप ने लूत की बात कही थी वह झूठ है। महाराज ने कहा पहले आप को चाहिये था कि घर में दिया जला कर अपनी चारपाई की दशा जान लेते तो भरी सभा में आपको लज्जित न होना पड़ता। परन्तु वह आग्रह करते रहे कि आपका कथन असत्य है, तो महाराज ने अपनी बाइबल की पुस्तक मंगाकर उन्हें दिखाई जिसपर वह बहुत लज्जित हुए और कहने लगे कि उसने मद्य की मत्तता में ऐसा किया। इस पर एक सज्जन ने कहा कि वह जानता था कि मेरी स्त्री का देहान्त होचुका है और वह मेरी पुत्री है, उसका पाप से छुटकारा नहीं हो सकता। इस पर वह लज्जित होकर चले गये।

हिन्दू दूसरे मतों की पुस्तकें नहीं देखते

मौलवी और पादरी चिढ़े

पादरी भी लज्जित

जामास्पजी अपनी कोठी में महाराज को रखना नहीं चाहते थे क्योंकि विपक्षी लोगों ने उन्हें महाराज के विरुद्ध भड़काना आरम्भ कर दिया था। जामास्पजी ने स्वयं तो यह बात महाराज से न कही, वरन अन्य लोगों से कहलवाई। इस पर महाराज के भक्तों ने सरदार सुजानसिंह से महाराज को अपनी कोठी में निवास स्थान देने की प्रार्थना की जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार की। शेष जितने दिन महाराज रावलपिण्डी में रहे उनकी ही कोठी में रहे। जामास्पजी की कोठी में वह केवल ८-१० दिन ही रहे थे।

हमारी कोठी में न रहिये

एक दिन नगर के लगभग ५०० मनुष्य पण्डित ब्रजलाल के नेतृत्व में सरदार साहब के बाग़ में गये*। भाई अतरसिंह ने महाराज से निवेदन किया कि नगर के लोगों की भीड़ आरही है। महाराज ने कहा आने दो, देखो क्या होता है।

भीड़ को आने दो

* दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि लोग ज्यों-त्यों करके सम्पद्‌गिरि को साथ लाये थे, परन्तु अन्त समय में वह किनारा कर गये और इसलिये पण्डित ब्रजलाल को ही 'गले पड़ा ढोल' बजाना पड़ा।
—संग्रहकर्त्ता.

सरदार कृपालसिंह ने कहा कि मूर्त्ति-पूजा को सनातन से लोग स्थापित करते चले आते हैं और आप उसका खण्डन करते हैं, तो लोगों को कैसे विश्वास हो। महाराज ने कहा यदि कोई शास्त्रद्रष्टा हो तो हम पत्र लिखते हैं, उसका उत्तर हमें दे, चाहे स्वामी सम्पद्गिरि से (जो कनखल की एक गद्दी के महन्त थे और उन दिनों रावलपिण्डी में ठहरे हुए थे और विद्वान् थे) सहायता लेले अथवा काशी की विद्वन्मण्डली से, परन्तु इस पर कोई सन्नद्ध न हुआ। पण्डित ब्रजलाल ने एक श्लोक पढ़ा तो महाराज ने उनसे पूछा कि वह कहाँ का और किस समय का है परन्तु वह कुछ उत्तर न दे सके। फिर

आपकी बातों का कैसे विश्वास हो

एक अन्य पण्डित ने एक श्लोक पढ़ा, परन्तु वह इतना अशुद्ध था कि महाराज को कुछ आवेश आगया और वह कड़क कर बोले कि यह बालकों की शाला नहीं है कि अशुद्ध बोल कर हमारा समय नष्ट करो। वह भी श्लोक का कुछ पता न बता सका और पण्डित ब्रजलाल को उसकी अशुद्धियाँ स्वीकार करनी पड़ीं।

स्वामाजी को आवेश आगया

जीवन की घटनाओं का वर्णन

निज स्थान पर महाराज ने अपने जीवन की घटनाएँ कई दिन तक वर्णन कीं, परन्तु अपना पितृदत्त नाम नहीं बतलाया।

महाराजा जम्मू व काश्मीर की एक पत्रिका आई थी। उसपर महाराज ने काश्मीर जाने में अनिच्छा प्रकट की कि महाराजा ने सैकड़ों मन्दिर बनवाये हैं और हम उनका खण्डन करेंगे इससे उपद्रव होने का भय है। इसी प्रसङ्ग में उन्होंने यह भी कहा था कि मारवाड़ का एक राजा १५ सेर रुद्राक्ष धारण किया करता और ५ सेर मिट्टी के शिवलिङ्ग प्रतिदिन बनाया करता था। उन्हें एक ब्राह्मण जल छोड़कर बहाता जाया करता था। महाराज ने उसे उपदेश दिया। ब्राह्मण ने कहा कि रुद्राक्ष गौरीशङ्कर हैं। महाराज ने कहा यह तो एक वृक्ष के बीज हैं। महाराज ने कहा कि वह राजा जब फिर हमें मिला तो उसने केवल एक रुद्राक्ष धारण कर रक्खा था। उसने प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकट की और कहा आपके उपदेश से मेरी अविद्या दूर हुई।

महाराजा काश्मीर का निमंत्रण अस्वीकृत

मारवाड़ का एक मूर्त्ति-पूजक राजा

एक दिन स्वामी सम्पद्गिरि ने ऋग्वेद की ऋचा 'इमंमे गङ्गे यमुने सरस्वति आदि' लिख कर पण्डित लक्ष्मीराम द्वारा जिनकी विद्वत्ता की रावलपिण्डी में बड़ी ख्याति थी महाराज के पास भेजी कि इसमें तीर्थों का प्रतिपादन है, फिर आप तीर्थों का कैसे खण्डन करते हैं। उत्तर में महाराज ने लिख भेजा कि उक्त मन्त्र में गङ्गा यमुना आदि नदियों के नाम नहीं हैं, प्रत्युत शरीर की नाड़ी विशेष के हैं और साथ ही में स्वामी सम्पद्गिरि की संस्कृत की अशुद्धियाँ भी लिख कर भेज दीं। स्वामी सम्पद्गिरि को फिर प्रत्युत्तर देने का साहस न हुआ।

सम्पद्गिरि का वृथा प्रयास

पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि एक दिन महाराज भ्रमणार्थ

जा रहे थे कि मार्ग में स्वामी सम्पद्गिरि मिल गये। प्रणाम और कुशल प्रश्न के पश्चात् महाराज ने उनसे पूछा कि कुछ सदुपदेश भी करते हो वा नहीं। फिर दोनों संस्कृत में भाषण करने लगे।

सम्पद्गिरि से साक्षात्

गृह पर जाकर लोगों ने महाराज का वृत्तान्त पूछा तो उन्होंने कहा कि वह ब्राह्मण है और बड़ा विद्वान् है, वह और हम साथ पढ़ते रहे हैं ❀। फिर लोगों ने कहा कि आप उनसे शास्त्रार्थ करें, तो उन्होंने उत्तर दिया कि तुम साधुओं का युद्ध देखना चाहते हो, हम ऐसा न करेंगे। इस पर लोगों ने कहा कि आप वैसा उपदेश क्यों नहीं करते तो वह बोले कि हमसे नहीं हो सकता, वह निःसङ्ग है।

हम ऐसा उपदेश नहीं कर सकते

उसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि पं० लक्ष्मीराम से और महाराज से सामने बात चीत नहीं हुई। † पं० लक्ष्मीराम ने महाराज के शास्त्रार्थ के चैलेंज के उत्तर में लिखा कि मैं आप से शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ, परन्तु उस पत्र में अशुद्धियों पर जगह जगह हरताल लगा रक्खी थी। महाराज ने उत्तर दिया कि वह लिखना ही नहीं जानता इतने छोटे पत्र में इतनी जगह हरताल लगा रक्खी है। उस से कहो कि शुद्ध लिख कर भेजे, परन्तु फिर पण्डित लक्ष्मीराम सामने न आये।

महाराज के सामने ही रावलपिण्डी में आर्य्यसमाज स्थापित होगया। महाराज उन दिनों तम्बाकू पीते थे। ‡ लाला गोपीचन्द ने जो आर्य्यसमाज के सहकारी मन्त्री नियत हुए थे इस पर आक्षेप किया तो महाराज ने उत्तर दिया कि कफ वात की निवृत्यर्थ पीता हूँ और वहीं तम्बाकू पीना त्याग दिया। भक्त किशनचन्द समाज के मन्त्री नियत हुए थे। उनके और लाला गोपीचन्द के प्रस्ताव पर ही महाराज ने वेदाङ्ग-प्रकाश प्रकाशित करना स्वीकार किया था।

आर्य्यसमाज की स्थापना

३० दिसम्बर सन् १८७७ को महाराज ने गुजरात जाने के विचार से प्रस्थान किया।

३० दिसम्बर सन् १८७७ को महाराज रावलपिण्डी से गुजरात जाने के विचार से शिकरम पर सवार हो कर ३१ दिसम्बर को जेहलम रेल्वे स्टेशन पर पहुँचे। साथ के लोगों को स्टेशन पर छोड़ कर आप परेड के मैदान की ओर भ्रमणार्थ चले गये वहाँ उनकी भेट मास्टर लछमन-प्रसाद से हुई। मास्टरजी ने उन्हें देखते ही पहचान लिया क्योंकि पहले लखनऊ में महाराज के दर्शन कर चुके थे। उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि कुछ दिन जेहलम रह कर नगर-

जेहलम

❀ स्वामीजी और सम्पद्गिरि के सहपाठी होने का कोई प्रमाण नहीं मिला।

† यह ठीक नहीं है क्योंकि ऊपर लिखा जाचुका है कि सम्पद्गिरि ने वेद की गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि ऋचा पण्डित लक्ष्मीराम के हाथ ही स्वामीजी के पास भेजी थी।

‡ महाराज दिल्ली दरबार के पश्चात् जब मेरठ गये थे तो हुक्का पीते थे, परन्तु उन्होंने एक ब्राह्मण के आक्षेप पर उसे वहीं छोड़ दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि रोग निवृत्यर्थ उन्होंने फिर पीना आरम्भ कर दिया था। —संग्रहकर्ता.

निवासियों को उपदेश से कृतार्थ करें। इस पर महाराज ने कहा कि यहाँ प्रबन्ध करने वाला कोई नहीं है। तब मास्टरजी ने प्रबन्ध का समस्त भार अपने ऊपर लेकर उन्हें नदी के निकट एक बँगले में ठहरा दिया।

पादरी शास्त्रार्थ का साहस न कर सके

पहला व्याख्यान महाराज का सराय मङ्गलसैन के निकट मैदान में हुआ, दूसरा निवास-स्थान पर। उस दिन गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेडमास्टर मिस्टर शिव-चरण घोष जो ईसाई थे, अन्य कई पादरियों के साथ शास्त्रार्थ के लिए आये, परन्तु अतिकाल हो जाने के कारण उस दिन कुछ परिणाम न निकला। तब पादरी लोगों की इच्छा पर महाराज के व्याख्यानों का प्रबन्ध गवर्नमेंट स्कूल के हॉल में हुआ और अन्त तक वहीं व्याख्यान होते रहे। दो तीन दिन तक तो पादरी लोग बड़े उत्साह से शास्त्रार्थ के लिए आते रहे, परन्तु महाराज की अकाट्य युक्तियों से इतने घबराये कि रोग के मिष से शास्त्रार्थ से जी चुराने लगे। हेडमास्टर साहब तो महाराज के उत्तरों और कटाक्षों से, जो बाइबल के प्रमाणों पर अवलम्बित होते थे, ऐसे चुप हुए कि फिर उन्होंने महाराज के कथन पर आक्षेप करने का साहस न किया। एक दिन एक ईसाई कुछ आक्षेप लिख कर लाया, परन्तु उसका शरीर थर थर काँपने लगा और अपने आक्षेपों को पढ़ भी न सका। अन्त को लज्जित होकर सभास्थल से चला गया।

महाराज के व्याख्यान सन्ध्या समय हुआ करते थे। आरम्भ में वह खड़े होकर उच्च और मधुर स्वर से वेद-मन्त्रों द्वारा ईश्वर-प्रार्थना करते और फिर व्याख्यान देते। महा-राज की वक्तृता अत्यन्त सरल, सुबोध और विनोदपूर्ण थी।

महाराज उन दिनों मध्यान्होत्तर में ४ बजे एक ही समय भोजन किया करते थे और हुक्का पिया करते थे। दो तीन पण्डित वेदभाष्य लिखने के लिए और एक अंग्रेज़ी जानने वाला बाबू पत्रव्यवहार के लिए साथ था।

ऐसा ज्ञात होता है कि रावलपिण्डी में हुक्का पीना छोड़ कर कफ वात का प्रशमन करने लिये फिर पीना आरम्भ कर दिया था।

आर्य-समाज की स्थापना

आर्यसमाजी से ब्राह्मसमाजी

ब्राह्मसमाजी होकर मिथ्याभाषण

महाराज की उपस्थिति में ही जेहलम में आर्य्य-समाज स्थापित होगया और उपर्य्युक्त मास्टर लछमनप्रसाद जो ब्राह्म-समाजी थे वैदिक मतानुयायी होगये और आर्य्यसमाज के प्रधान निर्वाचित हुए। कहते हैं कि कुछ काल के पश्चात् वह फिर ब्राह्मसमाजी बन गये और कहने लगे कि मैंने स्वामीजी के सामने वेदों को ईश्वरकृत नहीं माना था और स्वामीजी भी उन्हें ईश्वरकृत नहीं मानते थे। महा-राज के विषय में तो ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है, जिसे कोई भी बुद्धिमान् नहीं मान सकता, स्वयं मास्टरजी के विषय में भी मिथ्या है, क्योंकि उन्होंने अनेक वार अपने व्याख्यानों और लेखों में वेदों का ईश्वरकृत होना स्वीकार किया था। यहाँ हम केवल एक लेख में से जो 'आर्य्यदर्पण' मासिक पत्र शाहजहाँपुर के जनवरी सन् १८८० के अङ्क में मुद्रित हुआ था एक उद्धरण देते हैं जिससे मास्टरजी के कथन की असत्यता विस्पष्ट रूप में प्रकट होती है। उस लेख में उन्होंने लिखा था:—

"जो ईश्वरोक्त सत् विद्याओं से युक्त ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, चार पुस्तक हैं और जिनसे मनुष्य को सत्य सत्य ज्ञान होता है उन को वेद कहते हैं।"

वृद्ध महात्मा

उस समय एक वृद्ध महात्मा नदी के तट पर रहते थे और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। उनसे महाराज का संस्कृत में प्रेमालाप हुआ करता था। दोनों ही संस्कृत ऐसी सरलता से बोलते थे कि जैसे लोग अपनी मातृ-भाषा को बोलते हैं। पण्डित गुरुदत्त इन महात्मा को योगी कहा करते थे।

गानविद्या-विशारद मेहता अमीचन्द

आर्य्यसमाज में बड़े २ योग्य और विद्वान् पुरुष सम्मिलित हुए। गान विद्या-विशारद मेहता अमीचन्द महाराज की बहुत प्रशंसा किया करते थे और चार पांच वर्ष पश्चात् आर्य्यसमाज के सभासद् बन गये थे।

आर्य्यसमाज के प्रचार पर हर्ष

महाराज के जेहलम-त्याग से एक दिन पूर्व लाला गङ्गाराम धम ने एक सज्जन से आर्य्य-समाज की सभासदी का आवेदन पत्र लिखाया, वह उनकी जेब में पड़ा हुआ था। अगले दिन जब वह और अन्य लोग महाराज को स्टेशन पर पहुँचाने गये तो उन्होंने वह पत्र आर्य्यसमाज के मन्त्री को दिया। महाराजने पूछा कि कैसा कागज़ है, तो उन्होंने बतलाया कि एक सज्जन का सभासदी के लिए आवेदन पत्र है, महाराज गाड़ी में बैठ चुके थे, परन्तु इन शब्दों को सुन कर इतने हर्षित हुए कि गाड़ी से बाहर आ गये और प्रेम से लाला गङ्गाराम को गले लगा लिया।

१३ जनवरी सन १८७८ को महाराज गुजरात पहुंच गये।

गुजरात

जेहलम से महाराज १३ जनवरी सन् १८७८ को गुजरात पधारे और फतहसर नामी उद्यान में जो जलालपुर जट्टान को सड़क पर है, ठहरे।

सर्वत्र स्वामीजी की ही चर्चा थी

उनके पदार्पण करने के पहले से ही गुजरात में महाराज का नाम हर एक मनुष्य की जिह्वा पर था। बाजारों और गली कूचों में उन्हीं की चर्चा थी। विपक्षियों ने यह गप्प उड़ा रक्खी थी कि जब अंग्रेजों को हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सफलता नहीं हुई तो उन्होंने इस कार्य के लिये एक विद्वान् साधु को नियत किया है।

ईसाईयों का प्रचार-कार्य

गुजरात में पादरियों का प्रचारकार्य बड़े वेग से हो रहा था। उनका एक हाईस्कूल भी था, वह नगर की बड़ी मंडी में एक दुकान पर नित्यप्रति ईसाई मत का प्रचार किया करते थे और साथ ही हिन्दू धर्म्म पर मनमाने आक्षेप किया करते थे। श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण के चरित्र पर तीव्र से तीव्र कटाक्ष करते थे और उन पर अनेक मिथ्या दोषारोपण करते थे। वह कहते थे कि वेदों में अनेक प्रकार की मिथ्या कथाएं भरी पड़ी हैं। हिन्दू चुप चाप यह सब बातें सुनते थे। वह मन में अवश्य दुःखित होते थे, परन्तु अपने में उन आक्षेपों के उत्तर देने की शक्ति नहीं पाते थे। ईसाइयों के प्रचार का यह फल हुआ था कि गुजरात के कई निवासी ईसाई हो गये थे।

ईसाइयों के आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए गुजरात निवासियों ने एक हिन्दूसभा स्थापित की थी जिसमें पण्डित नन्दलाल, मुख्य संस्कृताध्यापक, गवर्नमेण्ट हाईस्कूल मनुस्मृति के श्लोकों की व्याख्या किया करते थे। पण्डित नन्दलाल संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे।

हिन्दू-सभा

जिस मकान में अब गवर्नमेंट हाईस्कूल का बोर्डिंग हाउस है, जो तहसील के निकट और पुराने क़िले के भीतर है, महाराज का पहला व्याख्यान उसी मकान में गवर्नमेण्ट हाईस्कूल के हेडमास्टर मिस्टर बुचानन की आज्ञा लेकर हुआ था। उसमें उन्होंने कहा था कि जब कोई श्रोता किसी वक्ता का व्याख्यान सुने तो उसे उस पर खूब मनन करके यह जानने का यत्न करना चाहिए कि उसके कथन में कितना सत्य है और कितना असत्य, यह जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिए।

पहला व्याख्यान

श्रोता का कर्त्तव्य

उन्होंने कहा कि मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं यह नहीं चाहता कि जो कुछ मैं कहूँ आप उस पर आँखें मींच कर चलने लगें। आप उस पर विचार करें, उसे जाँचें और परखें, यदि वह आपको सत्य जान पड़े तो उस पर चलें और यदि वह असत्य जान पड़े तो उस पर कोई ध्यान न दें। यह अन्धविश्वास ही हमारे नाश का मूल है। संस्कृत पुस्तकों में ज्ञान का बृहत् कोष भरा हुआ है, उन्हें पढ़ो और देखो कि उनमें क्या है। ऐसा मत कहो कि कोई बात केवल इसलिए माननीय वा त्याज्य है कि दयानन्द सरस्वती ऐसा कहता है।

मेरी बात यदि सत्य हो तो मानो

इस पर उन्होंने यह दृष्टान्त दिया था कि एक दिन एक राजा बैंगन खाकर सभा में आए, उस दिन उन्हें बैंगन बहुत स्वादिष्ट लगे थे। सभा में आकर उन्होंने कहा कि बैंगन बड़े स्वादिष्ट होते हैं, तो दरबारी कहने लगे कि महाराज बैंगन तो शाकों का राजा है, देखिए इसका वर्ण श्रीकृष्ण के वर्ण के समान है और इसके सिर पर मुकुट है। राजा ने बैंगन अधिक खा लिये थे, रात्रि में उन्होंने विकार किया, अतः अगले दिन सभा में आकर राजा ने बैंगन की बुराई की तो चाटुकार दरबारी झट कहने लगे कि महाराज इन्हीं अवगुणों के कारण तो इसका वर्ण काला हो गया है और इसे यह दण्ड मिला है कि शाखा से नीचे लटकता रहे।

राजा और बैंगन की कथा

यह दृष्टान्त देकर महाराज ने श्रोताओं से कहा कि आप इन दरबारियों के समान न बनिये कि जो कुछ मैं कहूँ उसे बिना विचारे ही स्वीकार वा अस्वीकार करने लगें।

मेहता ज्ञानचन्द जो पीछे आकर आर्य्यसमाज के प्रमुख व्यक्तियों में परिगणित हुए, उन दिनों गवर्नमेण्ट हाईस्कूल में पढ़ते थे। जिस दिन महाराज का पहला व्याख्यान होने को था उसी दिन वह अपने कई सहपाठियों के साथ महाराज के दर्शनार्थ गये। वह कहते हैं कि हम स्वामीजी की विशाल और विराट् मूर्त्ति को देख कर स्तम्भित हो गये। उस समय महाराज भगवाँ वस्त्र पहने हुए थे, शरीर पर पश्मीने का लांग कोट और सिर पर रेशमी पगड़ी थी।

स्वामीजी की विशाल मूर्त्ति देखकर स्तम्भित

पहले व्याख्यान में ही एक पण्डित होशनाकराय ने कुछ प्रश्न करने चाहे, परन्तु उन्हें रोक दिया गया कि व्याख्यान की समाप्ति पर करना। महाराज ने यह कहा था कि पौराणिकों ने बहुतसी मनगढ़न्त श्रुतियाँ बनाली हैं जैसे कि 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'। इस पर गोस्वामी शब्ददास ने कहा कि यह श्रुति है और हम इसे वेद में दिखा देंगे। महाराज ने कहा कि यह चार वेद उपस्थित हैं, इन में दिखाइए, तो वह बोले हम अपने वेदों में से कल दिखा देंगे।

मनगढ़न्त श्रुतियाँ

पण्डित होशनाकराय ने कहा कि मनुस्मृति में मूर्त्तिपूजा का विधान है। महाराज ने मनुस्मृति उनके सामने रख कर कहा कि दिखाइए मनुस्मृति में वह विधान कहाँ है। पंडितजी ने कहा कि हम अपनी मनुस्मृति में दिखा देंगे। अगले दिन पण्डित होशनाकराय से महाराज ने फिर कहा कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कीजिए तो पण्डितजी ने एक श्लोक पढ़ कर कहा कि इससे मूर्त्ति-पूजा सिद्ध होती है। स्वामीजी ने कहा आप झूठ कहते हैं, यह श्लोक मनुस्मृति का नहीं, यह तो विष्णुपुराण का है। इस पर पण्डितजी लज्जा के मारे पानी २ हो गये और एक शब्द भी न कह सके।

अगले दिन मूर्त्तिपूजा-खण्डन पर व्याख्यान था। इसमें महमूदगज़नवी के आक्रमणों से देश के धन की हानि का वर्णन किया था और स्त्रियों के मन्दिरों में जाने और वहाँ उनकी दुर्दशा होने का भी वर्णन था। व्याख्यान में ही किसी व्यक्ति ने जो एक छत पर बैठा था प्रश्न किया कि आपने कहा है कि स्त्री पतिव्रता रहे, परन्तु यदि किसी स्त्री का पति वेश्यागामी हो तो वह क्या करे। इसका उत्तर पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द चरित में लिखा है कि वह भी कोई मज़बूत सा आदमी रख ले। हमें विश्वास नहीं होता कि महाराज जो स्वयं अखण्ड ब्रह्मचर्य्यधारी थे किसी दशा में भी किसी को व्यभिचार की आज्ञा देते। महाराज विनोदप्रिय अवश्य थे और कहा जा सकता है कि उन्होंने विनोद में ऐसा कह दिया होगा; परन्तु उनका विनोद भी कभी सीमा को उल्लंघन नहीं करता था और वह विनोद में भी ऐसा नहीं कह सकते थे।

दूसरा व्याख्यान

गोस्वामी शब्ददास अगले दिन आये। महाराज ने कहा, वेद लाये हो। उन्होंने कहा कि वह श्रुति हमारे वेद में है। महाराज ने कहा कि हमारे वेद पुस्तक में दिखाओ। गोस्वामी ने कहा कि हमें क्या ज्ञात है आपके वेदों में गालियाँ ही लिखी हों। महाराज ने कहा, अपने ही वेदों में दिखाइए, परन्तु जो ग्रन्थ वह लाये थे वह वेद न थे अतः वह न दिखा सके। तब पण्डित होशनाकराय ने कहा, मैं आप से न्याय में प्रश्न करूँगा। पण्डित नन्दलाल मध्यस्थ बने। व्याप्तिवाद पर प्रश्न हुआ। महाराज ने महाभाष्य के अनुसार व्याप्ति के लक्षण किये और कहा कि हम आर्ष ग्रन्थों को मानते हैं, आपके लक्षण नहीं मानते, हमारे किये हुए लक्षण में अशुद्धि बताइए। परन्तु वह न बता सके और पण्डित नन्दलाल को भी कहना पड़ा कि स्वामीजी ठीक कहते हैं।

वेद में मनगढ़न्त श्रुति न दिखा सके

न्याय पर प्रश्नोत्तर

एक व्याख्यान में महाराज ने अपना जीवन-वृत्तान्त सुनाया था। पण्डित नन्दलाल से उनका कई बार वार्त्तालाप हुआ। एक बार उन्होंने महाराज के यह कहने पर कि 'पादस्य तले यो देशः स पातालः' आक्षेप किया कि आपकी यह व्युत्पत्ति ठीक नहीं है, परन्तु महाराज ने उसे सिद्ध कर दिया। उन्हीं से 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि मंत्र पर विचार हुआ था तो महाराज ने यह अर्थ किये थे कि वह पुरुष सहस्र सिर वाला नहीं है, प्रत्युत उसमें सहस्रों अर्थात् असंख्यात सिर हैं। चतुरानन शब्द को भी उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि इसके अर्थ चार मुख वाला नहीं, वरन् चार वेद जिसके मुख में हों अर्थात् चतुर्वेदवक्ता है।

जीवनचरित वर्णन

पूर्वोक्त मिस्टर बुचानन संस्कृतज्ञ होने की बहुत डींग मारा करते थे। स्कूल में भी स्वामीजी की ही चर्चा रहती थी। वह विद्यार्थियों से कहा करते थे कि स्वामीजी के वेद मन्त्रों के अर्थ अशुद्ध हैं। विद्यार्थियों ने एक दिन उनसे कहा कि यदि ऐसा है तो आप उनसे शास्त्रार्थ कर लें। उन्होंने स्वीकार किया। सारे दिन वह मोनियर विलियम्स की 'इंडियन विज़डम' नामक पुस्तक देखते रहे और उसमें से एक मन्त्र निकाल कर पण्डित नन्दलाल से कहा कि जब पढ़ने की बारी आये तो आप पढ़ देना और झगड़े के समय मैं खड़ा हो जाऊँगा। विद्यार्थियों ने जाकर महाराज से कहा कि हमारे हेडमास्टर आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, उन्होंने स्वीकार कर लिया।

मिस्टर बुचानन की डींग

अगले दिन मास्टर बुचानन और पण्डित नन्दलाल व्याख्यान में गये। उसमें महाराजने जयपुर के पण्डितों का वृत्तान्त सुनाया कि मैंने व्याकरण में उनसे कई प्रश्न किये जिनमें से मुझे इस समय एक याद है वह यह था **'कल्म च किं भवति'**। पण्डितों ने रात भर अनेक पुस्तक देखे, परन्तु वह उत्तर न दे सके।

मिस्टर बुचानन किसी बात में भी सद्भावयुक्त न रहते थे, वह सदा हँसी ठट्ठा किया करते थे और अश्लील शब्दों के प्रयोग में भी उन्हें कोई सङ्कोच न होता था।

मि० बुचानन कैसे थे

व्याख्यान की समाप्ति पर मिस्टर बुचानन खड़े हुए और कहने लगे कि ओ बाबा! तू इन लोगों की जीविका छीनता है, उसके बदले में उन्हें क्या देता है। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं इन्हें वेद देता हूं और योगाभ्यास। फिर मिस्टर बुचानन ने कहा कि मेरे आप पर कुछ प्रश्न हैं। महाराज ने कहा कि कीजिये। मि० बुचानन ने कहा कि बाबाजी आप कहते हैं कि शव को जलाना चाहिए और ऐसा करना विज्ञान के अनुकूल है और वेद भी यही आज्ञा देते हैं परन्तु देखो यह मन्त्र क्या कहता है। यह कह कर उन्होंने एक मन्त्र का कुछ भाग पढ़ा। महाराज ने कहा पूरा मन्त्र पढ़िये। इस पर मि० बुचानन ने पण्डित नन्दलाल से जो उनके समीप ही बैठे थे मन्त्र पढ़ने को कहा। पण्डितजी ने मन्त्र पढ़ा। मिस्टर बुचानन बोले कि देखो बाबा इस मन्त्र का अनुवाद इस प्रकार है कि हे भूमि! तू अपनी भुजाएं पसार और इसे अपने भीतर ले। इससे स्पष्ट है कि शव को गाड़ना चाहिए।

मि० बुचानन से प्रश्नोत्तर

महाराज उत्तर देने को ही थे कि मिस्टर बुचानन ने दूसरा प्रश्न कर दिया कि बाबाजी आप यह बताइए कि शिशु अपने मुंह में अपनी उँगलियों और अँगूठों को ही क्यों देता है, अपने उपस्थेन्द्रिय को क्यों नहीं देता ?

इससे महाराज समझ गये कि साहब बहादुर केवल ठिठोल करने आये हैं। उन्होंने उत्तर दे दिया कि उसका मुख वहाँ तक पहुँच नहीं सकता नहीं तो वह उसे भी मुख में देने में सङ्कोच न करता।

अतिकाल हो जाने के कारण शास्त्रार्थ यहीं समाप्त हो गया। अगले दिन महाराज ने एक अन्य मन्त्र उद्धृत करके उक्त मन्त्र का अर्थ कर दिया कि शव को भूमि खोद कर जलाना चाहिए। उस गर्त्त के दोनों किनारों को उसकी भुजाएं कहा गया है। इसका अर्थ शव को गाड़ने का कदापि नहीं है। बुचानन साहब निरुत्तर हो गये और आगे कुछ कहने का साहस न हुआ।

हिन्दू छात्र विधर्मियों से तर्क करने में समर्थ हो गये

स्वामीजी के व्याख्यानों को सुनने से पहले छात्रगण ईसाइयों और मुसलमानों के आक्षेपों का जो वह हिन्दू धर्म्म पर करते थे कोई उत्तर नहीं दे सकते थे, परन्तु स्वामीजी के केवल चार व्याख्यानों के सुनने से ही सारा दृश्य बदल गया। वह इतने शक्त और समर्थ हो गए कि किसी भी ईसाई वा मुसलमान से धर्म्म विषय पर तर्क करने को उद्यत होने लगे।

तीन महत्वपूर्ण व्याख्यान

महाराज के व्याख्यानों में तीन व्याख्यान बड़े महत्वपूर्ण थे और ऐसे थे कि जिनके सुनते समय हर एक श्रोता चाहे वह किसी जाति वा मत का हो यह अनुभव करता था कि वह हृदय में आर्य है।

वेद का महत्व

इनमें से पहला व्याख्यान वेदों के महत्व और उनके सत् विद्या के पुस्तक होने के विषय पर था। इसमें सब धर्म्मों की तुलना करके वैदिक धर्म का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया था।

ब्रह्मचर्य का महत्व

दूसरा व्याख्यान ब्रह्मचर्य पर था। इसे सुन कर स्कूल के छात्र बड़ी उलझन में पड़ गए थे। उनमें से जो विवाहित थे वह सोचने लगे कि यदि हम २५ वर्ष तक स्त्री सम्भोग न करेंगे तो हमारी स्त्रियों का चरित्र दूषित हो जायगा। उन्होंने डरते २ यह शङ्का महाराज से निवेदन की तो उन्होंने उत्तर दिया कि यदि तुम ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन न करोगे तो तुम और तुम्हारी स्त्रियाँ दोनों ही खराब होंगे और तुम्हारी जो सन्तति होगी वह ह्रस्वकाय होगी।

सन्ध्या

मैं नमाज़ नहीं पढूँगा, सन्ध्या किया करूँगा

तीसरा व्याख्यान सन्ध्या पर था। उसमें महाराज ने कहा कि यदि मैं केवल 'ओ३म्' शब्द की व्याख्या करने लगूँ तो उसे कई दिन और कई घण्टे चाहिएं, अतः उन्होंने ओ३म् की संक्षिप्त व्याख्या करके सन्ध्या की विधि बतलाई और गायत्री मन्त्र की ऐसी सुन्दर व्याख्या की कि गवर्नमेण्ट स्कूल के फ़ारसी के अध्यापक मौलवी मुहम्मददीन इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भरी सभा में खड़े होकर सबके सामने कहा कि यदि

गायत्री के यही अर्थ हैं जो स्वामीजी ने किये हैं तो मैं आगे से नमाज़ पढ़ने के स्थान में सन्ध्या ही किया करूँगा।

गायत्री मन्त्र सबके सामने पढ़ा

महाराज ने यह पहले ही जान लिया था कि वेद मन्त्रों और विशेषकर गायत्री मन्त्र को सबके सामने पढ़ने से ब्राह्मण लोग बहुत खिजेंगे और इस लिए उन्होंने उनके भावी आक्षेपों का उत्तर अपने व्याख्यान में ही दे दिया था। उन्होंने कहा था कि यद्यपि हमारे पास एक रत्न है जिसे संसार भर को दिखाना चाहिए, परन्तु स्वार्थी लोग स्वार्थ के कारण उसे छिपाते हैं। इन मूर्खों को यह ज्ञात नहीं कि यह रत्न चुराया नहीं जा सकता। मैं इसे संसार भर को दिखाऊँगा और फिर देखूँगा कि संसार में कौन है जो इसे बनावटी कहे।

स्वामीजी छद्मवेषी ईसाई हैं

महाराज को जो आशङ्का थी वह पूरी हुई। नगर के ब्राह्मण सहस्रजिह्व होकर महाराज को कोसने लगे कि यह संन्यासी के वेष में छिपा हुआ ईसाई है। म्लेच्छ और शूद्रों के सम्मुख गायत्री और वेद मन्त्रों का पाठ! हरे राम! हरे राम!! ब्राह्मणगण बड़े असमंजस में पड़ गये परन्तु उन्हें कुछ करते धरते न बन पड़ा। वह येन केन प्रकारेण महाराज को परास्त करना चाहते थे। अन्त में उन्होंने एक गुप्त सभा की और उसमें महाराज से शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया। शास्त्रार्थ करने के लिए उन्होंने अपनी ओर से एक प्रसिद्ध पण्डित को नियत किया जो थोड़े दिन पहले ही जम्मू से आया वा बुलाया गया था।

जम्मू का पण्डित

व्याख्यान के अन्त में महाराज आधा घण्टा शङ्का-समाधान के लिए रक्खा करते थे। एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर जम्मू के पण्डित खड़े हुए और महाराज से एक प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि पण्डितों से शास्त्रार्थ करने का मैं स्वयं बहुत इच्छुक हूं, परन्तु यह अच्छा होगा कि शास्त्रार्थ के समय उभय पक्ष के पास वह सब ग्रन्थ हों जिनसे प्रमाण दिये जावेंगे। इस पर शास्त्रार्थ अगले दिन सायङ्काल के लिए रक्खा गया।

जम्मू के पण्डित से शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ के समय की लोग बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे और नियत समय पर लोग दलबद्ध होकर शास्त्रार्थ स्थल की ओर जाने लगे और वह थोड़ी ही देर में मनुष्यों से भर गया। शास्त्रार्थ बोर्डिङ्ग हाउस में ही होने वाला था जहाँ पहले से महाराज के व्याख्यान हुआ करते थे। उसके पूर्व की ओर के बरामदे में एक कुर्सी पर महाराज विराजमान थे और सामने मेज़ पर बहुत-सी पुस्तकें रक्खी हुई थीं। मेज़ के दूसरे सिरे पर शास्त्रार्थ-कर्त्ता अपनी काँख में एक पुस्तक दबाये हुए समासीन थे।

एक ही पुस्तक में सब कुछ है

महाराज ने आरम्भ में ही पण्डितजी से पूछा कि आप अपने ग्रन्थ लाये हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि हाँ। इस पर महाराज ने कहा कि दिखलाइए आप के ग्रन्थ कहाँ हैं? पण्डितजी बोले कि सब कुछ इसी एक पुस्तक में विद्यमान है। इस पर महाराज ने वह पुस्तक पण्डितजी से लेकर खोली तो देखा कि केवल पहले पृष्ठ पर कुछ मन्त्र लिखे हुए हैं और

पुस्तक कोरी थी

शेष पृष्ठ कोरे हैं। महाराज ने पण्डितजी से प्रश्न किया कि आर्य्यों की सम्पत्ति केवल ५। ७ मन्त्र ही हैं? पण्डितजी ने उत्तर दिया कि यह मन्त्र वेद और शास्त्रों के सारभूत हैं। महाराज ने इस पर कहा कि पण्डितजी बहुत ही बड़े मनुष्य होंगे वह पंसारी भी हैं और पण्डित भी। पण्डितजी के उत्तर की प्रतीक्षा न करके उन्होंने एक लम्बा श्वास खींच कर कहा कि आह! गुजरात का सारा नगर वेदों की एक पुस्तक भी उपस्थित नहीं कर सकता! ईसाइयों को देखो वह इंजील का सारी भाषाओं में अनुवाद करते हैं और इंजील की पुस्तक दो २ आने में मिल सकती है। हे ब्राह्मणो! मैं आपका शत्रु नहीं हूँ मैं तो केवल अनपढ़ ब्राह्मणों का शत्रु हूँ।

पण्डितजी पंसारी भी हैं और पंडित भी

मैं ब्राह्मणों का शत्रु नहीं हूँ

पण्डितजी बराबर मौन धारण किये हुए बैठे रहे। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला और शास्त्रार्थ जिसके लिये इतना आयोजन किया गया था समाप्त हो गया। परन्तु पौराणिक दल ने फिर भी यही बात प्रसिद्ध की कि दयानन्द जम्मू के पण्डित से परास्त होगया।

पण्डितजी कुछ न बोले

एक दिन एक सिक्ख साधु लोई ओढ़े हुए स्वामीजी के पास आया। उस समय महाराज हुक्का पी रहे थे। साधु प्रारब्ध और पुरुषार्थ पर वार्त्तालाप करने लगा। महाराज ने कहा कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों ही ठीक हैं। प्रारब्ध पूर्वकर्मों के भोग का नाम है। पुरुषार्थ इस जीवन में शास्त्रीय कर्म करने का नाम है सो पुरुषार्थ करना ही चाहिये, परन्तु साधु हठ ही करता रहा और यही कहता रहा कि पुरुषार्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। तब महाराज ने एक सेवक को आज्ञा दी कि इसकी लोई उतार कर सड़क पर फेंक दो, देखें वह बिना पुरुषार्थ के इसके पास कैसे चली आयगी। सेवक ज्यों ही उसकी लोई उतारने लगा तो उसने लोई को इस ज़ोर से लपेट लिया कि बल लगाने पर भी सेवक लोई न उतार सका। तब साधु ने कहा कि पुरुषार्थ तो आपने सिद्ध कर दिया, परन्तु आप हुक्का क्यों पीते हैं। इसमें दूसरों की जूठन पीनी पड़ती है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं हुक्का कफ की निवृत्यर्थ पीता हूँ। मैं किसी की जूठन नहीं पीता क्योंकि अपना हुक्का न किसीको देता हूँ, न दूसरे का पीता हूँ।

स्वार्थपर ब्राह्मणों का महाराज के प्रति द्वेष सीमा को पार कर गया था। जब वह किसी उत्तम और निर्दोष उपाय से महाराज की उपदेशगङ्गा के प्रवाह को न रोक सके तो उन्होंने उनके प्राण-हरण के लिये षड्यन्त्र रचा।

स्वामीजी के प्राणहरण का षड्यन्त्र

नगर में एक प्रसिद्ध बदमाश था जिसे लोग 'अन्ही दा पुत्तर' (अंधी का पुत्र) कहते थे। उससे हर कोई भय खाता था। वह बाज़ार में खुल्लमखुल्ला कहता फिरने लगा कि मैं या तो दयानन्द को मार डालूँगा या उसकी नाक काट लूँगा। मेरे लिये छः मास वा

अन्ही दा पुत्तर

स्वामीजी को गालियाँ

एक वर्ष का कारागार कोई बड़ी बात नहीं है, परन्तु इससे हिन्दुओं की तो रक्षा हो जायगी। देखो यह दुष्ट स्वामी हिन्दू देवी देवताओं का कितना अपमान करता है। वह ब्राह्मणों को पोप कहता है, स्वयं हस्तक्रियां करता है और दूसरों को ब्रह्मचर्य्य का उपदेश करता है और रात भर फ़तहसर में नाच देखता है। गुलामहुसैन सौदागर ने छः बोतल शराब की उसके पास भेजी थीं जो वह पी गया। उस रात को नगर की सारी रण्डियाँ उसके पास गई थीं।

वह इसी प्रकार महाराज के प्रति गालियाँ निकालता फिरने लगा। पुलिस ने यही नहीं कि उसे डाँटा डपटा नहीं, महाराज की रक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं किया। आग बढ़ गई और लोग उसकी गालियों को सुन २ कर प्रसन्न होने लगे।

मुझ पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता

मेहता ज्ञानचन्द और उनके साथियों को यह भय हुआ कि यह दुष्ट जो कुछ कहता है कर गुजरेगा, अतः वह एक दिन महाराज के पास गये और उन्हें सब इतिवृत्त सुनाया और उनसे प्रार्थना की कि आज आप अपने स्थान से बाहर न जावें। महाराज ऐसी बातों से कहाँ डरने वाले थे। उन्होंने बिना किसी सङ्कोच के कहा कि मैं व्याख्यान देने आज अवश्य जाऊँगा। यह सब वृथा वाद है, मुझे कुछ भय नहीं है। तुम मेरा सोटा देखते हो, मुझ पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता। मैं अकेला ही दस बारह मनुष्यों पर भारी हूँ। यदि मैं ऐसे डर जाया करता तो देश में वेदों का उपदेश कैसे कर सकता था। मैं अवश्यमेव जाऊँगा। महाराज का उत्तर सुनकर मेहता ज्ञानचन्द आदि आश्चर्य से स्तम्भित हो गये।

मार्ग में और व्याख्यान में ईंटों की वर्षा

ला० परमानन्द डेंटिस्ट (दांतों के डाक्टर) लाहौर वाले महाराज के साथ रहा करते थे। उस दिन भी वह उनके साथ व्याख्यान-स्थल को गये। मार्ग में कुछ दुष्टों ने महाराज पर पत्थर और धूलि फेंकी, परन्तु वह कुछ भय न करते हुए बोर्डिङ्ग हाउस पहुँच गये और नियत समय पर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। व्याख्यान के बीच में भी उनकी मेज पर ईंटें आकर गिरीं, परन्तु उन्होंने तनिक भी उनकी चिन्ता न की और न भय का ही कोई चिन्ह प्रकट किया और सदा की भाँति प्रशान्त चित्त होकर व्याख्यान देते रहे और व्याख्यान की समाप्ति पर अकुतोभयता के साथ निज स्थान को लौट आये।

ईंट मारने वाले को क्षमा दान

एक दिन एक मनुष्य ने महाराज के ईंट मारी, परन्तु वह उनके लगी नहीं। जेल के क्लर्क एक बङ्गाली सज्जन ने पुलिसमैन को उसके पीछे भेजा, वह उसे पकड़ लाया। उसने ईंट फेंकने से नकार किया और महाराज ने उसे क्षमा कर दिया। ऐसे अवसरों को महाराज हँसकर टाल देते थे और जो लोग ऐसे दुष्टों को धमकाना चाहते थे, उनसे कह दिया करते थे कि आप विज्ञ हैं, ऐसे पागलों पर क्षमा करके उन्हें जाने दो। इनकी चिकित्सा यही है कि इन्हें सदुपदेश दिया जाय, हमारे साथ यह कोई नई बात नहीं है।

जिन दिनों महाराज गुजरात में विराजमान थे उन्हीं दिनों एक संन्यासी-मण्डली

संन्यासी-मण्डली

वाला भी वहां बड़ी तड़क भड़क के साथ आया था। एक दिन उसने अपने शिष्यों को महाराज के व्याख्यान में भेजकर यह प्रश्न कराया कि गङ्गा मानने के योग्य है वा नहीं। महाराज ने उत्तर दे दिया कि वह भी और पानियों के समान पानी है। लोगों ने दूध के समुद्र और नदियों की व्यर्थ कल्पना कर रक्खी है, वास्तव में न कहीं दूध का समुद्र है और न कोई दूध की नदी। हाँ यदि किसी नदी में श्वेत मृत्तिका घुलकर आती हो और उसे लोगों ने दूध की नदी मान लिया हो तो आश्चर्य नहीं।

आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी

एक दिन कुछ हिन्दुओं ने आपस में मन्त्रणा करके महाराज से यह प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी। इससे उनका अभिप्राय यह था कि यदि वह ज्ञानी कहेंगे तो हम कहेंगे कि आप अहङ्कार करते हैं और सन्तों को अहङ्कार नहीं करना चाहिये और यदि वह अज्ञानी कहेंगे कि तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो हमें आप क्या सिखावेंगे। महाराज ने उनके प्रश्न का ऐसा उत्तर दिया कि वह देखते रह गये और लज्जित होकर चले गए। महाराज ने कहा कि मैं कई बातों में ज्ञानी और कई में अज्ञानी हूँ। संस्कृत और धर्म्म विषय में ज्ञानी और फ़ारसी, दुकानदारी विषयों में अज्ञानी हूँ।

हमें चेला बना लीजिए

एक दिन कुछ छात्र महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे प्रार्थना की कि महाराज आप हमें अपना चेला बना लीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं गुरुआई की प्रथा को अच्छा नहीं समझता, परन्तु यदि तुम मेरे चेले बनना ही चाहते हो तो संस्कृत पढ़ो और जब प्राप्त-वयस्क होजाओ तो वैदिक सचाइयों का प्रचार करो। सम्प्रति तुम्हारा कर्तव्य यह है कि विद्या प्राप्त करो और २५ वर्ष की आयु तक स्त्री-सङ्ग से अलग रहो।

एक स्त्री को उपदेश

महाराज स्त्रियों को दर्शनार्थ नहीं आने दिया करते थे। फ़तहसर के द्वार पर एक पहरेदार बैठा रहता था। एक दिन उसने आकर कहा कि महाराज एक स्त्री आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषिणी है। महाराज ने बहुत सङ्कोच किया, परन्तु उसे अन्दर आने की आज्ञा देदी। वह जाट जाति की स्त्री थी और साधारण वस्त्र पहने हुए थी। उसने आकर निवेदन किया कि महाराज मुझे मारफ़त (ब्रह्मज्ञान) की राह बता दीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि वेद पढ़ो, यह सुन कर वह चुप होगई। फिर महाराज ने उससे पूछा कि और कुछ पूछना है, परन्तु फिर वह कुछ न बोली और उठकर चली गई।

विरोधी पण्डित अनुकूल

पंडित नन्दलाल से उनके छात्र पूछा करते थे कि क्या स्वामीजी वास्तव में बड़े विद्वान् हैं तो वह यह स्वीकार कर लिया करते थे कि स्वामीजी विद्वान् हैं। वह महाराज की बुराई तो कभी नहीं करते थे, परन्तु इतना कह दिया करते थे कि यद्यपि इस समय तुम लोग श्रद्धालु हिन्दू हो, परन्तु ज्यों ही तुम स्वामीजी के व्याख्यान सुनोगे त्यों ही तुम मूर्त्तियों को पूजना छोड़ दोगे। वास्तव में पंडित नन्दलाल महाराज के विरोधी थे और कई वर्ष तक उनका

और आर्यसमाज का विरोध करते रहे, परन्तु अन्त को उन्हें महाराज के उपदेशों की सत्यता स्वीकार करनी पड़ी और वह आर्यसमाज के सहायक होगये और कई वर्ष तक आर्यसमाज गुजरात के अध्यापक रहे।

यही गति पंडित होशनाकराय की भी हुई जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है और वह भी आर्यसमाज गुजरात में अध्यापक हुए।

स्वामीजी को वेद कंठस्थ थे

महाराज वेदभाष्य की रचना के कार्य में व्यापृत रहते थे। वह पण्डितों को वेद-भाष्य लिखाया करते थे। उनके हाथ में कोई पुस्तक नहीं रहती थी फिर भी लेखकों को लिखने से अवकाश नहीं मिलता था, वह इतनी शीघ्रता के साथ भाष्य लिखाते थे। उन्हें वेद कण्ठस्थ थे।

एक दिन दो उच्च राजकर्मचारी स्वामीजी से मिले और कहने लगे कि महाराज खण्डन में क्या धरा है, इससे लोग उत्तेजित होते हैं। हम तो उसी कर्म को अच्छा समझते हैं कि जिसमें अपना भला हो। परहित चिन्तन और परोपकार तो ढकोसला है। महाराज ने उत्तर दिया कि अपनी भलाई का काम तो गदहे और अन्य पशु पत्ती भी करते हैं। मनुष्य की मनुष्यता तो इसी में है कि दूसरों का उपकार करे।

गुजरात से २ फ़र्वरी सन् १८७८ को महाराज ने वज़ीराबाद के लिए प्रस्थान किया और रेल में सवार होकर उसी दिन वज़ीराबाद पहुँच गये।

वज़ीराबाद

महाराज २ फ़र्वरी सन् १८७८ को गुजरात से रेल में सवार होकर वज़ीराबाद पहुँच गये। स्टेशन पर आर्य्यसमाज वज़ीराबाद के सभासद् व अन्य सज्जनों ने उनका स्वागत किया और राजा फ़क़ीरुल्ला के उद्यान-गृह में ठहराया। अगले दिन से उनके व्याख्यान आरम्भ हुए। जनता का बड़ा जमाव था। व्याख्यान के मध्य में ही एक मनुष्य ने चिल्ला कर कहा कि जो इनका व्याख्यान सुने वह हिन्दू का वीर्य नहीं। इस पर कुछ लोग उठकर चले गये फिर भी श्रोता पर्याप्त संख्या में उपस्थित रहे और व्याख्यान शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।

मुख्य पण्डित नगर छोड़ कर चले गये

नगर के मुख्य पण्डित महाराज के आगमन का समाचार सुनकर पहले ही नगर छोड़कर चले गये थे, क्योंकि उनमें महाराज से शास्त्रार्थ करने की शक्ति न थी।

दक्षिणा लोलुप पण्डित से विचार

स्वामीजी के मन्त्रार्थ पर सन्तोष

शास्त्रार्थ

दूसरे दिन भी महाराज का व्याख्यान हुआ। उसमें हिन्दू लोग वासुदेव नामक एक ब्राह्मण को १००) दक्षिणा देकर महाराज से शास्त्रार्थ के लिये ले गये और उसे महाराज के सामने एक कुर्सी पर बैठा दिया। उक्त पण्डित ने एक मन्त्र प्रस्तुत करके महाराज से उसका अर्थ करने को कहा। महाराज ने उसका अर्थ कर दिया जिस पर पण्डितजी ने सन्तोष प्रकट किया और कहा कि कल वह एक मन्त्र शालिग्राम और तुलसी की पूजा की पुष्टि में प्रस्तुत करेगा। अतः उस दिन शास्त्रार्थ स्थगित रहा। अगले दिन पण्डित वासुदेव फिर आये और महाराज के सम्मुख कुर्सी पर बैठ गये। उनके साथ नगरनिवासियों की बड़ी भीड़ थी। शास्त्रार्थ के लिये यह नियम स्थिर किया गया

कि दोनों शास्त्रार्थी संस्कृत में भाषण करें और उनके कथोपकथन का हिन्दी अनुवाद जनता को सुना दिया जावे। पण्डित ने एक मन्त्र प्रस्तुत किया कि इससे शालिग्राम और तुलसी की पूजा सिद्ध होती है। महाराज ने कहा कि यह वेद का मन्त्र नहीं

यह वाक्य वेद का है नहीं है

यह किसी वाक्य की टीका है। अतः उस मन्त्र को प्रस्तुत करना चाहिये जिसकी यह टीका है। इतने में भीड़ बहुत बढ़ गई और महाराज को उपद्रव की शङ्का हुई। उन्होंने पण्डित शहजादानन्दजी लाहोर निवासी से जो वज़ीराबाद में महाराज के पधारने के समय से ही उनकी सेवा में

उपद्रव की आशंका

रहते थे कई बार पुलिस का प्रबन्ध कराने को कहा, परन्तु इन्होंने उसे अनावश्यक समझा क्योंकि पण्डित रामचन्द्र आनरेरी मैजिस्ट्रेट व्याख्यान में उपस्थित थे, किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् यह महानुभाव उठकर चले गये। उनसे बहुतेरा कहा गया कि आप ठहरें, परन्तु यह कहकर कि उन्हें एक आवश्यक कार्य है, वह चले गये। महाराज ने बार बार पण्डित महोदय से मन्त्र प्रस्तुत

पण्डित मन्त्र प्रस्तुत न कर सका

करने को कहा परन्तु उन्होंने न किया। इतने में ही एक लड़के ने कुछ शोर करना आरम्भ कर दिया। महाराज ने कहा कि इस लड़के को चुप करा दो। इस पर ला० लब्धाराम साहनी अप्रेंटिस इञ्जीनियर ने उसके एक दो छड़ी मार दीं। पौराणिकों का पक्ष गिर रहा था, वह खिजे बैठे थे और उपद्रव करने पर तुले हुए थे। उन्हें उपद्रव का यह बहाना मिल

उपद्रव आरम्भ हो गया

गया और उन्होंने महाराज और ला० लब्धाराम पर आक्रमण कर दिया। आर्यसमाज वज़ीराबाद तथा आर्यसमाज जेहलम के सभासदों ने जो वहाँ उपस्थित थे उनकी रक्षा की और ला० लब्धाराम और महाराज को निवास स्थान पर पहुँचा दिया और उसके द्वार बन्द कर दिये गये, परन्तु भीड़ डटी खड़ी रही और शोर मचाती रही। महाराज के हिन्दुस्तानी क्लर्क को जो

महाराज के हिन्दुस्तानी क्लर्क को खूब पीटा गया

आवेश आया तो वह लाठी लेकर भीड़ में चला गया। सैकड़ों मनुष्यों के सामने अकेले मनुष्य की पार ही क्या बसाती। लोगों ने उसे खूब पीटा। जब यह वृत्त महाराज को ज्ञात हुआ तो वह स्वयं

स्वामीजी के गर्जन से भीड़ भाग गई

लाठी लेकर बाहर निकले और इस जोर से गर्जन किया कि सब लोग भयभीत हो गये और भाग गये।

इसके पश्चात् भी महाराज कुछ दिन वज़ीराबाद में रहे और व्याख्यान भी देते रहे, परन्तु व्याख्यानों में श्रोताओं की संख्या कम होने लगी, अतः उन्होंने वहाँ अधिक ठहरना हितकर न समझा और ७ फ़र्वरी को गुजरानवाला चले गये।

गुजरानवाला

ला० लब्धाराम वज़ीराबाद से उनके साथ थे। उन्होंने अपने कई प्रतिष्ठित मित्रों को पहले से पत्र लिख दिये थे और वह स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये आ गये थे। गुजरानवाला में उन्हें सरदार महासिंह की समाधि के विशाल भवन में ठहराया गया।

पहले दो दिन तो महाराज का कोई व्याख्यान न हुआ। तीसरे दिन से व्याख्यान

व्याख्यानों का आरम्भ

आरम्भ हुए। प्रतिदिन वह आर्य्योद्देश्य-रत्नमाला में से एक उद्देश्य ले लेते थे और उसी पर व्याख्यान देते थे।

पादरियों की हिन्दुओं को स्वामीजी के विरुद्ध उत्तेजना

चार पाँच दिन बीत जाने पर कुछ पादरियों ने महाराज से उनके धार्मिक मन्तव्य पूछे तो उन्होंने आर्योद्देश्य-रत्नमाला की एक प्रति उन्हें दे दी। इसके पश्चात् उन्होंने नगर के पण्डितों को महाराज से शास्त्रार्थ करने को उकसाया और अन्य लोगों ने भी उनसे यही आग्रह किया। नगर के कुछ पण्डित तो पहले से ही नगर छोड़कर चले गये थे। एक पण्डित विद्याधरजी जो उच्च कोटि के विद्वान् थे, वहाँ विद्यमान थे। जब लोगों ने उनसे शास्त्रार्थ का अनुरोध किया तो उन्होंने कह दिया कि स्वामी दया-

पंडित विद्याधर की बुद्धिमत्ता

नन्द से जो हमारा मतभेद है, वह हमारे घर का मामला है, जिस पर हम उनसे इच्छानुसार वार्तालाप कर सकते हैं। इस समय पादरियों के उकसाने पर घर में झगड़ा खड़ा करना ठीक नहीं है। यही उत्तर पंडित विद्याधर के संकेत से पादरियों को दे दिया गया। पंडित विद्याधरजी एक दिन महाराज से स्वयं मिलने आये और देर तक प्रेमालाप करके चले गये।

शास्त्रार्थ की छेड़छाड़

अन्त को पादरियों ने ही शास्त्रार्थ की छेड़छाड़ आरम्भ की और यह निश्चय हुआ कि शास्त्रार्थ प्रतिदिन मध्यान्होत्तर में ४ बजे से हुआ करे और स्थान भी ईसाइयों का गिरजाघर ही नियत हुआ। अन्य समय दिन में महाराज वेदभाष्य के कार्य में संलग्न रहते थे, अतः उपर्य्युक्त समय ही शास्त्रार्थ के लिए नियत किया गया था।

शास्त्रार्थ-विवरण

१९ फरवरी सन् १८७८ को यह शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। ईसाइयों की ओर से कई अंग्रेज और देशी पादरी थे, उन में से पादरी सोलफीट उपनाम लाशादेसी पादरी शास्त्रार्थ करने के लिए निर्वाचित हुए। शास्त्रार्थ में उच्च राज कर्मचारी और नगर के प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त पुरुष उपस्थित थे। प्रवेश के लिए टिकट लगाया गया था। परन्तु जनता शास्त्रार्थ देखने की इतनी उत्सुक थी कि एक सहस्र से ऊपर लोग शास्त्रार्थ-स्थल में उपस्थित हुए थे और वह मनुष्यों से खचाखच भर गया था।

स्वामीजी का सद्व्यवहार

जब स्वामीजी शास्त्रार्थ-स्थल में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वजीराबाद के कुछ लोग जिनमें अधिकांश वहाँ के उपद्रवकारी ही थे, आँगन में टहल रहे हैं। स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आप लोग यहाँ क्यों घूम रहे हैं। भीतर क्यों नहीं जाते, तो उन्होंने कहा कि ईसाइयों ने हमें टिकट नहीं दिया। तब उन्हें स्वामीजी अपने साथ अन्दर लेगये। वह स्वामीजी के इस सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए।

डिप्टी गोपालदास एक्स्ट्रा असिस्टैन्ट कमिश्नर मध्यस्थ बनाये गये। पहले पादरी साहब ने प्रश्न किया कि यदि जीव भी अनादि हैं तो उनमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता। दो दिन तक इसी विषय पर प्रश्नोत्तर होते रहे और महाराज ने प्रबल युक्तियों से

सिद्ध कर दिया कि केवल अनादि होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं हो सकते। परमेश्वर के साथ जीव का सेव्यसेवक का सम्बन्ध है। श्रोताओं पर भी प्रकट हो गया कि महाराज ने अपना पक्ष सिद्ध कर दिया और मध्यस्थ महोदय ने भी पादरी लोगों से कह दिया कि स्वामीजी आपके प्रश्न का पर्याप्त उत्तर दे चुके हैं, यह आपका हठ है जो नहीं मानते हैं। दोनों दिन शास्त्रार्थ ४ बजे से ८ बजे तक हुआ। दूसरे दिन के शास्त्रार्थ की समाप्ति पर यह देखकर कि गिरजा-घर का स्थान बहुत संकुचित था और सैकड़ों लोगों को निराश होकर लौट जाना पड़ता था और इस विचार से कि अधिक लोग भीतर न आवें गिरजाघर के द्वार बन्द कर दिये जाते थे, जिससे लोगों का दम घुटने लगता था। महाराज ने पादरियों से कहा कि अन्य कोई खुला हुआ स्थान नियत कीजिए। उस समय तो पादरियों ने कुछ उत्तर न दिया, परन्तु अगले दिन १२ बजे दिन के कुछ ईसाई सज्जन आये और महाराज से कहा कि शास्त्रार्थ के लिए गिरजा-घर में पधारिये।

मध्यस्थ की सम्मति

पादरियों का मिथ्या व्यवहार

महाराज पादरी लोगों की इस उच्छृङ्खल कार्यवाही पर विस्मित हुए। वह कहने लगे कि आप लोग जानते हैं मैं वेदभाष्य के कार्य में व्याप्त रहता हूँ। समय के परिवर्तन की न मुझे सूचना है, न जनता को, मैंने कहा था कि गिरजाघर के बदले कोई अधिक विस्तृत स्थान नियत कीजिये सो तो न किया न सही, समय कैसे बदल दिया। मैं वेदभाष्य के कार्य को छोड़ कर इस समय कदापि नहीं आ सकता। शास्त्रार्थ नियत समय पर ही होगा। मध्यस्थ महोदय ने भी यही उत्तर दे दिया कि इस समय मैं नहीं आ सकता।

पादरियों ने कुछ ईसाइयों और लड़कों को गिरजाघर में इकट्ठा करके यह घोषणा कर दी कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिये नहीं आये अतः वह परास्त समझे जावें।

महाराज पादरियों की इस अयुक्तियुक्त कार्यवाही से बहुत विरक्त हुए और नगर के प्रतिष्ठित पुरुष भी पादरियों की इस मूर्खता पर बहुत हँसे। महाराज के अनुरोध पर गिरजाघर के समीप ही महाराज के व्याख्यान का प्रबन्ध कर दिया गया जहाँ श्रोता सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में उपस्थित हो गये। पादरियों को बहुत बुलाया गया परन्तु वह घर से बाहर न निकले। महाराज ने पौन घण्टा प्रतीक्षा करके ईसाई धर्म पर ही व्याख्यान दिया और ऐसे मनोरञ्जक और युक्तियुक्त ढंग से उसके सिद्धान्तों का खण्डन किया कि श्रोताओं के हृदयों पर ईसाई मत की असारता भलीभाँति अङ्कित हो गई। पादरियों के शास्त्रार्थ से जी चुराने का न केवल यह कारण था कि वह प्रकृत विषय पर निरुत्तर हो गये थे, प्रत्युत यह कारण भी था कि शास्त्रार्थ के बीचमें ही महाराज ने ईसामसीह के ईश्वर होने और बाइबल के अन्य मन्तव्यों पर ऐसे प्रबल कटाक्ष कर दिये थे कि उनका पादरी कुछ भी समाधान न कर सके थे।

पादरियों की धूर्तता से सब रुष्ट हो गये

स्वामीजी का ईसाई मत खंडन पर व्याख्यान

ईसाई मत की पोल खुल गई

यह शास्त्रार्थ लिपिबद्ध हुआ था परन्तु वह असावधानी से खोया गया।

वज़ीराबादी मनुष्यों की अनुरक्ति

पंडित वासुदेव की क्षमा-प्रार्थना

वज़ीराबाद के लोग स्वामीजी के सद्-व्यवहार से पहले ही उनके प्रति अनुरक्त हो गये थे, परन्तु जब उन्होंने स्वधर्म्म-रक्षा में उनकी अकाट्य युक्तियाँ सुनीं तब तो उनको पूर्णतया विश्वास हो गया कि हिन्दू धर्म्म का स्वामीजी जैसा कोई रक्षक नहीं है और उन्होंने स्वामीजी को भूल से ही हिन्दू धर्म्म का विरोधी समझा था। इस पर वह मन ही मन पश्चात्ताप करने लगे। उनमें वासुदेव पण्डित भी था जो दक्षिणा के लोभ से वज़ीराबाद में उनसे शास्त्रार्थ करने उनके सम्मुखीन हुआ था। उसे तो उसकी आत्मा ने इतना धिक्कारा कि वह स्वयं स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होकर क्षमाप्रार्थी हुआ। स्वामीजी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुमने उस समय जो कुछ किया अपने पक्ष के समर्थन के लिये किया। हमने तो तुम्हारे कार्य से उस समय ही बुरा नहीं माना था और अब तो कोई बात ही नहीं है जिसे मैं क्षमा करूँ, तुम शान्त हो। संन्यासियों का हृदय ऐसी बातों से कलुषित नहीं होता।

मैं द्वेष-बुद्धि से खण्डन नहीं करता

एक दिन भ्रमण में पादरी मैकी महाराज को मिल गये तो पादरी साहब ने उनसे कहा कि आप ईसाई धर्म का बड़ा कड़ा खण्डन करते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो जो कुछ कहता हूँ आप की पुस्तकों का पाठमात्र होता है। ऐसा खण्डन आप भी करते हैं। मैं द्वेष-बुद्धि से कुछ नहीं कहता और न अनुचित समालोचना करता हूँ।

स्वामीजी ज्ञान और विद्या के अथाह समुद्र हैं

एक दिन एक अंग्रेज़ी शिक्षाप्राप्त बङ्गाली दार्शनिक से महाराज का वार्त्तालाप हुआ। वह महाराज की दर्शन-विदग्धता पर परम सन्तुष्ट हुआ। उसने लोगों के पूछने पर स्पष्ट कह दिया कि स्वामीजी तो ज्ञान की अगाध गङ्गा और विद्या के अथाह समुद्र हैं, मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं जानता।

इसके पश्चात् ४ मार्च तक महाराज गुजरानवाला में रहे, परन्तु किसी ईसाई का शास्त्रार्थ करने का तो क्या शास्त्रार्थ के नाम लेने का भी साहस न हुआ।

स्वामीजी का प्रभाव

विरोधी अनुगामी

महाराज का लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ता इसके दो बड़े उत्तम उदाहरण हमें गुजरानवाला में मिलते हैं। एक जन मुंशी नारायण-कृष्ण अपने संबंध में लिखते हैं कि "मैं भी इस नगर में स्वामीजी का अद्वितीय और प्रसिद्ध विरोधी था, धार्म्मिक शास्त्रार्थों में मेरी बहुत मनोलग्नता थी और आरम्भ से ही स्वामीजी को अपशब्दों से संबोधित किया करता था, परन्तु जिस समय से उस पूर्ण-ऋषि और महान् विद्वान् के सदुपदेशों को सुना और उसकी पुस्तकों को पढ़ा तबसे उस 'यथा नाम तथा गुणः' के नाम और उसके पवित्र काम पर बलिदान होना अर्थात् उसके सदुपदेशों पर चलना सच्चे हृदय से मनुष्य-जीवन का फल मानता हूँ और उसके आविर्भाव को परमात्मा का एक बड़ा अनुग्रह मानता हूँ।"

पुजारी अनुयायी

गुजरानवाला के एक बड़े मन्दिर के पुजारी पंडित भगवद्दत्त को महाराज के उपदेश सुनने का इतना चाव बढ़ गया था कि वह मूर्त्तियों की समय से पहले ही आरती करके व्याख्यान सुनने चले जाया करते थे। जब महाराज गुजरानवाला से चलने लगे और रेल में बैठ गये तो पुजारीजी ने छिपकर मिठाई की टोकरी महाराज की भेट की। दो वर्ष तक तो वह पुजारी का काम करते रहे, परन्तु फिर उन्हें मूर्त्ति-पूजा में इतनी अश्रद्धा हुई कि उन्होंने मन्दिर की नौकरी छोड़ दी और आर्यसमाज के सभासद् होगये।

पुजारी की भेट

ब्रह्मचर्य्य की महिमा

एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में कहा था कि हरिसिंह नलवा बड़ा शूरवीर था। उसका कारण संभवतः यही था कि वह २५-२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की है मेरा ब्रह्मचर्य्य अखण्डित है। मैं दृढ़ता-पूर्वक कहता हूँ कि जिस किसी को अपने बल का घमण्ड हो मैं उसका हाथ पकड़ लेता हूँ, छुड़ा लेवे अथवा मैं अपना हाथ खड़ा करता हूँ उसे झुका देवे। उस समय लगभग ५०० की उपस्थिति होगी जिनमें कई कश्मीरी पहलवान भी थे, परन्तु किसी को महाराज के आह्वान के स्वीकार करने का साहस न हुआ।

आर्य्य-समाज स्थापित होगया

फाल्गुन कृष्णा १४ संवत् १९३४ अर्थात् ४ मार्च सन् १८७८ को गुजरानवाला का परित्याग करके महाराज ने लाहौर में पदार्पण किया। गुजरानवाला से प्रस्थान करने से एक दिन पहले वहाँ आर्य्य-समाज स्थापित होगया था।

लाहौर

लाहौर में महाराज नव्वाब रजाअलीखाँ के ही बगीचे में ठहरे और वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे।

इसलाम पर व्याख्यान

११ मार्च सन् १८७८ को उन्होंने मुसलमानी मत की आलोचना में व्याख्यान दिया। बगीचे के मालिक नव्वाब नवाजिशअलीखाँ पास ही टहल रहे थे और उनका व्याख्यान सुन रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर किसी ने उनसे कहा कि महाराज आपको न कोई हिन्दू ठहरने को स्थान देता है, न ईसाई, न मुसलमान, नव्वाब साहब ने कृपा करके आपको यह स्थान दिया था सो यहाँ भी आपने इसलाम का खण्डन किया, ऐसा न हो कि नव्वाब साहब आपसे अप्रसन्न हो जायँ। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं यहाँ इसलाम वा किसी अन्य मत की प्रशंसा करने नहीं आया हूँ। मैं तो केवल वैदिकधर्म्म को ही सच्चा मानता हूँ और उसी का उपदेश करता हूँ। मैंने देख लिया था कि नव्वाब साहब सुन रहे हैं। मैं जान-बूझ कर उन्हें वैदिकधर्म्म के गुण सुना रहा था। मुझे परमात्मा से भिन्न अन्य किसी का भय नहीं है।

ऐसा न हो नव्वाब अप्रसन्न हो जांय

मुझे परमात्मा से भिन्न किसी का भय नहीं है

१२ मार्च सन् १८७८ को महाराज लाहौर से मुलतान चले गये।

अन्य नगरों की भाँति महाराज की ख्याति मुलतान में भी पहुँच गई थी। कुछ ब्राह्म-समाजी सज्जनों और अन्य महानुभावों ने, जिनके मन मूर्त्ति-पूजा से हट चुके थे, आपस में मन्त्रणा की कि स्वामीजी को मुलतान बुलाना चाहिए और उनके व्यय आदि के लिए १३८) रुपये चन्दा एकत्र करके उनकी सेवा में तार भेजा। महाराज ने उत्तर दिया कि अभी कुछ दिन लाहौर और ठहरेंगे तत्पश्चात् मुलतान आवेंगे। तदनन्तर यह सम्मति हुई कि महाराज को मुलतान लाने के लिये ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द को भेजा जाय। तदनुसार वह लाहौर गये। वहाँ उन्होंने जाकर देखा कि महाराज के उस दिन के व्याख्यान से तुमुल आन्दोलन हो रहा था कि कई लोगों ने ठाकुरों के सिंहासन रावी नदी में फेंक दिये हैं। दूसरे दिन ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द महाराज को साथ लेकर ६॥ बजे सायंकाल के मुलतान पहुँचे। छावनी के स्टेशन पर ३० के लगभग सज्जन उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे। स्टेशन से महाराज को ब्राह्म-समाज के मन्दिर में ले गये। वहाँ कुछ देर ठहर कर और जलपान करके नगर में गये और बेगी बाग़ में उन्हें ठहराया गया।

स्वामीजी के मुलतान पधारने के लिये आयोजन

उसी दिन महाराज का व्याख्यान बेगी बाग़ में हुआ जिसकी सूचना डौंडी पिटवा कर जनता को दी गई। व्याख्यान सृष्ट्युत्पत्ति पर था। दो तीन दिन तक वहाँ ही व्याख्यान होते रहे। यह होलियों का समय था। होलिकाष्टक १२ मार्च से १८ मार्च सन् १८७८ तक था। १८ मार्च की होली थी। एक दिन महाराज ने गोकुलिये गोसाइयों के मत पर व्याख्यान दिया और उसकी लीलाओं का खूब खण्डन किया। उन दिनों वहां गोपालदास गोसाईं बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते थे। उन्हें महाराज के इस व्याख्यान से बड़ा आवेश आया जिसका कारण अनुमानतः यह था कि मुलतान में गोकुलिये गोसाइयों के मत के अनुयायी बहुत थे और गोपालदास को भय हुआ कि महाराज के उपदेश से चिड़ियां उसके जाल से निकल जायँगी। वह शँख घड़ियाल बजवाता हुआ घोड़े पर सवार होकर सभास्थल में पहुँचा। प्रबन्धार्थ और उपद्रव की रोक थाम के लिये पुलिस के चार काँस्टेबिल व्याख्यान के समय उपस्थित रहते थे। महाराज ने उनसे कहकर गोपालदास को शोर करने से रुकवा दिया और स्वयं पूर्ववत् प्रशान्त भाव से व्याख्यान देते रहे। दूसरे दिन गोपालदास अपने सेवक साथियों को लेकर, जिनके हाथ में लाठियाँ और छुरियाँ थीं, फिर व्याख्यान-स्थल में पहुँचा तो महाराज ने व्याख्यान बन्द कर दिया और वह लोग थोड़ी देर हायहुल्ला करके चले गये।

पहला व्याख्यान

गोकुलिये गोसाईं चिढ़ गये

गोपालदास गोसाईं की धूर्त्तता

धूर्त्तता की पुनरावृत्ति

इस प्रकार नगर में केवल चार व्याख्यान हुए। फिर लोगों की सम्मति हुई कि होलियों के हुल्लड़ के कारण नगर में व्याख्यान कराना श्रेयस्कर नहीं है, अतः हरमुजजी पेंशनर कोतवाल मुलतान छावनी तथा दिनशाजी बहरामजी सौदागर ने महाराज से छावनी में व्याख्यान देने की अभ्यर्थना की और उसके पश्चात् तीन व्याख्यान छावनी में हुए। पहला व्याख्यान यज्ञो-

छावनी में व्याख्यान

पवीत पर, दूसरा योरुप के बसने पर और तीसरा प्राचीन काल में विवाह की रीति पर था। उसी में महाराज ने बालक-बालिकाओं की पाठशालाओं, छात्रों के अध्ययन और रहन-सहन का विस्तृत वर्णन किया था। तीसरे व्याख्यान के अन्त में पारसी सज्जनों ने एक थाल किशमिशों का और १००) रुपये महाराज की भेंट किये। जिसे पारसी और अन्य सज्जनों के आग्रह पर उन्होंने स्वीकार किया। रुपया वेदभाष्य फ़ण्ड में जमा करा दिया गया।

पारसी सज्जनों की भेंट

एक व्याख्यान में गौतम अहिल्या और इन्द्र की अश्लील पौराणिक कथा का मिथ्यात्व सिद्ध करके महाराज ने कहा था कि यह एक वैदिक अलङ्कार है। गौतम चन्द्रमा का, अहिल्या रात्रि का और इन्द्र सूर्य्य का नाम है। लोगों ने सत्य अर्थ न समझ कर यह गपोड़ा रच लिया है। इस पर एक महाब्राह्मण को बहुत क्रोध आया। वह भङ्ग भी पिये हुए था। उसने अण्ड बण्ड बकना आरम्भ किया तो महाराज ने पुलिसमैन से कह कर उसे हटवा दिया।

वैदिक अलंकारों का स्पष्टीकरण

इस अलङ्कार का स्पष्टीकरण महाराजकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में है। पाठक वहाँ देख सकते हैं।

महाराज ने होली के विषय में ऐसा कहा था कि प्राचीन काल में ज्ञानी आर्य्य लोग होली की तिथि को परस्पर आलिङ्गन कर के पर्वतों को जाया करते थे उन के उपलक्ष्य में यह उत्सव हुआ करता था और दीपावली को वह पर्वतों से लौट कर मैदानों में आते थे तो लोग उन के पथ-प्रदर्शन के लिये दीपक जलाया करते थे। तब से ही दीपदान की प्रथा चली आती है।

होली-दीपावली का स्वरूप

हमें उपर्य्युक्त कथन सन्देहयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि गोपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि होलिकोत्सव नव शस्येष्टि यज्ञ था। यथा:—

अथातश्चातुर्मास्यानां प्रयोगः फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां चातुर्मास्यानि प्रयुञ्जीत। मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी, मुखमुत्तरे फाल्गुन्यौ, पुच्छं पूर्वे, तद्यथा प्रवृत्तस्यान्तौ समेतौ स्याताम्, एवमेवैतत्संवत्सरस्यान्तौ समेतौ भवतः। तद्यत्फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां चातुर्मास्यैर्यजते, मुखत एवैतत्संवत्सरं प्रयुङ्क्ते। अथो भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते॥ गोपथ उत्तर प्रपा० १। कं० १९॥

अर्थ—अब चातुर्मास्यों का प्रयोगः—फाल्गुनी पूर्णमासी में चातुर्मास्यों का प्रयोग करे। फाल्गुनी पूर्णमासी वर्ष का मुख है, उत्तरा फाल्गुनी मुख और पूर्वा-पुच्छ हैं, जैसे वृत्त के दोनों अन्त मिल जाते हैं ऐसे ही वर्ष के दोनों अन्त मिल जाते हैं। जो फाल्गुनी पौर्णमासी में चातुर्मास्यों से यज्ञ किया जाता है तो मुख से ही वर्ष का प्रयोग किया जाता है। अथवा चातुर्मास्य भैषज्य यज्ञ हैं, इसीलिए ऋतु की सन्धियों में इन का प्रयोग किया जाता है ऋतु की सन्धियों में ही रोग उत्पन्न होते हैं। (गोपथ उत्तर० प्रपा० १। कं० १९)

अतः हमें विश्वास नहीं होता कि महाराज ने होलिका तथा दीपावली का उद्गम ऐसा बताया हो जैसा ऊपर लिखा गया है। होलिका शब्द के अर्थ ही अधभुने अन्न के हैं जिससे महाराज अपरिचित नहीं हो सकते और अब होली की अग्नि में यव की बालों के भूनने की प्रथा प्रचलित है।

स्वास्थ्य-रक्षा पर व्याख्यान

साथ भोजन करने के दोष

एक व्याख्यान महाराज ने स्वास्थ्य-रक्षा पर दिया था। इस पर हरमुजजी पारसी ने महाराज से प्रश्न किया कि जब आप कहते हैं कि आर्य्य और पारसी एक ही पूर्वजों की सन्तति हैं तो आप हमारे साथ खानपान का व्यवहार क्यों नहीं करते। इसका उत्तर महाराज ने यह दिया कि आप मुसलमान आदि के साथ ऐसा व्यवहार रखते हैं इसी से हिन्दू आप के साथ नहीं खाते पीते। यदि आप कुछ काल तक आर्य्यों से मिलते रहें तो यह प्रतिबन्ध दूर हो जावेगा। फिर महाराज ने उनसे प्रश्न किया कि एक साथ (एक थाली में) भोजन करने में क्या लाभ और न करने में क्या हानि हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि इससे प्रीति बढ़ती है। महाराज ने प्रत्युत्तर में कहा कि एक दूसरे का जूठा खाने में बहुत दोष हैं। कितने ही रोग ऐसे हैं जो जूठा भोजन करने, जूठा पानी पीने, साथ हुक्का पीने तथा संसर्गमात्र से एक मनुष्य से दूसरे को लग जाते हैं। डा० जसवन्तराय असिस्टेंट सर्जन ने महाराज के कथन की पुष्टि की और कई छूत से लगजाने वाले रोगों को गिनाया। फिर महाराज ने कहा कि यह भी ठीक नहीं है कि जूठा खाने से प्रीति बढ़ती है; यदि ऐसा होता तो मुसलमानों में जो एक दूसरे का उच्छिष्ट खाते हैं बड़ा प्रेम होता, परन्तु उन में आपस में कितने झगड़े हैं और एक दूसरे की जान के ग्राहक बने हुए हैं, तथा यदि ऐसा होता तो रूस-रूम युद्ध में अमीर काबुल रूम की सहायता करने से इन्कार न करता।

यह कि अमीर काबुल रूस के विरुद्ध रूस-रूम युद्ध में रूम की सहायता करने पर उद्यत न हुआ था, हम नहीं कह सकते। सम्भवतः ऐसी किंवदन्ती उस समय फैली हुई होगी और उसी को सत्य मान कर महाराज ने उपर्युक्त बात कही होगी।

शिखा कब रखी जाय कब नहीं

शिखा के सम्बन्ध में महाराज ने कहा था कि हिमालय आदि शीतप्रधान देशों में सारे सिर पर केश रखने चाहियें, पंजाब में केवल शिखा पर्याप्त है, उष्ण देशों में यदि सिर के सब बाल मुँडवा दिये जावें तो कुछ भी हानि नहीं।

ईसाइयों से शास्त्रार्थ की शर्तें

दो ईसाई व्याख्यान सुनने आया करते थे। उन्हों ने महाराज से कहा कि मिशन स्कूल में पादरियों से शास्त्रार्थ कीजिये। महाराज ने गुजरान वाले का दृष्टान्त दिया कि वहाँ गिरजा-घर में शास्त्रार्थ हुआ करता था, परन्तु ईसाई अपने मनुष्यों को भीतर जाने के टिकट देदिया करते थे और हमारे सहायकों को नहीं देते थे, अतः शास्त्रार्थ करना हो तो व्याख्यान-स्थल पर ही होगा। इस पर वे ईसाई चुप होगए।

महाराज ने बा० केशवचन्द्र सेन से अपने मिलने का उल्लेख करते हुए कहा था कि

ब्राह्मसमाजी आर्य-समाजी होने से रुक गये

उनसे हमारी बातचीत वेदों के ईश्वरोक्त होने और षड्दर्शन पर हुई थी। महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर मुलतान के कुछ ब्राह्मसमाजियों ने आर्य्यसमाज में प्रवेश करने का विचार किया, परन्तु उनके अन्य साथियों ने उन्हें यह समझाकर कि यदि कोई अपनी युक्तियों से निरुत्तर करदे तो भी अपने धर्म्म को त्यागना ठीक नहीं है। भविष्य में यदि कोई अन्य अधिक प्रबल युक्ति देने वाला आवेगा तो फिर हमें उसका धर्म्म स्वीकार करना होगा।

काबुल के ब्राह्मण का उजड्डपन

एक दिन एक काबुल-निवासी ब्राह्मण आया और उसने वेद का पुस्तक उठाकर एक मन्त्र पढ़ा, परन्तु उसका अर्थ न कर सका। फिर इस पर बातचीत हुई कि आर्य्यावर्त्त की सीमाएँ कौनसी हैं, परन्तु वह बड़ा क्रोधी और उजड्ड था, महाराज उसकी अनर्गल बातों पर हँस देते थे।

वेदान्तियों के चार महावाक्य

एक दिन एक व्यक्ति ने नवीन वेदान्तियों के चार महावाक्यों पर बातचीत की। महाराज ने कहा यह वाक्य अधूरे हैं और पूरे वाक्य पढ़ कर उनके अर्थ किये और कहा पूरे वाक्य वेद के विरुद्ध नहीं हैं और उसी दिन नवीन वेदान्त के खण्डन और सनातन वेदान्त के मण्डन पर व्याख्यान दिया।

सन्त मत की आलोचना

प्राचीनकाल की प्राकृतिक उन्नति

एक व्याख्यान में महाराज ने सन्तमत की और दूसरे में सिक्खमत की आलोचना की थी। एक व्याख्यान में प्राचीनकाल की प्राकृतिक उन्नति का वर्णन किया था, जिसमें कहा था कि पृथ्वी गोल है और सूर्य्य के चारों ओर घूमती है। ग्रहों, उपग्रहों और नक्षत्रों का भी उल्लेख किया था और यह भी कहा था कि शीघ्रगामी रथ (रेल) के सिद्धान्त भी प्राचीनों को ज्ञात थे। त्रिपुरारि के विषय में कहा था कि वह अपनी कलाभिज्ञता के कारण एक ही समय में तीन स्थानों में युद्ध करता था।

मुसलमान परास्त

कई मुसलमान भी महाराज के पास आये और धर्म्म-चर्चा में परास्त होकर चले गये। एक दिन उनका सब से बड़ा मौलवी भी आया था और उसकी भी वही गति हुई जो अन्यों की हुई थी।

नास्तिक की शेखी किरकिरी

सागरचन्द इञ्जीनियर, जो बड़ा पक्का नास्तिक था और यह डींग मारा करता था कि मैं १४०० पुस्तकें पढ़कर नास्तिक हुआ हूँ, जब महाराज के सम्मुख आया तो महाराज की युक्तियों के आगे उसकी कुछ न चल सकी। तीन दिन तक उससे वार्त्तालाप हुआ और अन्त को उसे ईश्वर की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

महाराज के महामना होने का प्रमाण

महाराज के हृदय में ईश्वर पर कितना अटल विश्वास था, स्वदेश से कितना दृढ़ प्रेम था, पारस्परिक व्यवहार में वह भ्रातृभाव के कितने इच्छुक थे और सर्वहितकारी कार्यों के लिये उन में कितनी महदाकाँक्षा थी इसके उदाहरणार्थ हम उनके एक पत्र का जो उन्हों ने मुलतान से दानापुर की हिन्दू सत्सभा के मन्त्री बाबू माधोलाल को आर्य्यसमाज

के नियम और उप-नियमों की पुस्तक भेजते हुए १ अप्रेल सन् १८७८ को लिखी थी, कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"इन नियमों को ठीक २ समझ कर वेद की आज्ञा के अनुसार सब के हित में प्रवृत्त होना चाहिये, विशेष कर के अपने आर्यावर्त्त देश के सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति, सब के परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मेटने में सत्य व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ अपने ही शरीर के सुख दुःख के समान जान कर सर्वदा यत्न और उपाय करना चाहिये। सब के साथ हित करने ही का नाम परम धर्म्म है। इसी प्रकार वेद में बराबर आज्ञा पाई जाती है।"

हिन्दू सत्सभा का नाम आर्य समाज रक्खो

इसी पत्र में बाबू माधोलाल को महाराज ने यह भी आदेश किया था कि हिन्दू सत्सभा का नाम आर्य्यसमाज रखना चाहिये, क्योंकि हमारा नाम आर्य्य और हमारे देश का नाम सनातन वेदोक्त है। आर्य के अर्थ श्रेष्ठ, विद्वान्, धर्म्मात्मा के तथा हिन्दू शब्द यवन आदि ईर्ष्यक लोगों का बिगाड़ा और बदला हुआ है, जिसके अर्थ ग़ुलाम, काफ़िर, काला आदमी आदि हैं। ....और सब सभासदों को नमस्ते कहना चाहिए, सलाम व बंदगी नहीं।"

यह महात्मा होनहार हैं

एक वृद्ध पण्डित की महाराज पर बड़ी श्रद्धा थी। वह प्रतिदिन उनके पास जाया करते थे और बहुधा कहा करते थे कि यह महात्मा होनहार हैं, इनका सम्प्रदाय ख़ूब चलेगा।

महाराज ने प्रसङ्ग चलने पर कहा था कि प्रातःकाल मलोत्सर्ग से पूर्व अढ़ाई आचमन जल पीना गर्मी और ख़ुशकी की निवृत्ति के लिये बहुत लाभदायक है।

मुक्ति पर बातचीत

एक दिन मुक्ति पर बातचीत होने पर महाराज ने पण्डित बरातीलाल डेराग़ाज़ीखां निवासी से कहा था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है, पण्डितजी का मत इस के विरुद्ध था।

ब्राह्मणों की वर्त्तमान अवस्था का दृष्टान्त

एक व्याख्यान में महाराज ने ब्राह्मणों की इस समय की दशा का वर्णन करते हुए निम्नलिखित दृष्टान्त दिया था:—

एक बार यात्रा में एक पठान और एक हिन्दू साहूकार का साथ हो गया। साहूकार के साथ उसका एक भृत्य भी था जो ब्राह्मण था। जब प्रातःकाल होता तो साहूकार उस भृत्य से कहता, महाराज पाँव लागूँ, जब आवश्यकता होती तो भृत्य उसके पीने, हाथ धुलाने और स्नान कराने के लिये जल लाता, उसकी रसोई बनाता और यात्रा में उसका बोझा उठा कर चलता। एक दिन पठान आगे निकल गया और साहूकार पीछे रह गया। पठान उसे साथ लेने के लिये ठहर गया। थोड़ी देर के पश्चात् साहूकार तो आगया, परन्तु उसका भृत्य उसके साथ न था। यह देख कर पठान ने कहा कि कहाँ है तुम्हारा नर, पीर, बावरची, बहिश्ती (शक्का, जलवाहक), ख़र।

रेशमी छाता किसी नटवे को देना

एक दिन एक ब्राह्मण महाराज के लिये एक रेशमी छाता लाया और उनके पास रख दिया। उन्हों ने कहा कि यह कैसा रक्खा है। उसने कहा कि आप के लिये लाया हूँ। महाराज ने कहा कि सुनो भाई! हम

साधु हैं, यह हमारे काम का नहीं। यदि हम सरदी में जावें तो सरदी नहीं सताती और गरमी में जावें तो धूप नहीं सताती। यह तो तुम किसी नटवे को दो जो लाहोरी जोड़ा पहन कर खूब गलियों में घूमा करे। हमें ऐसी वस्तु नहीं चाहिये।

गोमेध, अश्वमेध के सत्य अर्थ

मांस-भक्षण-निषेध

महाराज ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि गोमेध में गौ और अश्वमेध में अश्व के बध करने का शास्त्र में कहीं विधान नहीं है और उनके सत्य अर्थ बतलाये थे। मदिरा-पान व मांस-भक्षण का भी बड़े प्रबल शब्दों में निषेध किया था। जिस प्रकार पिंजरे में पक्षी को बंद करके उसके नीचे अग्नि जलाने से उसे कष्ट होगा उसी प्रकार उस प्राणी को कष्ट होता है जिसे खाने के लिये मारा जाता है। मांस में स्वयं कुछ बलवर्धक गुण नहीं है। वह अपना उदाहरण देकर कह देते थे कि देखो मैं मांस नहीं खाता परन्तु कोई मांसाहारी, जिसका जी चाहे, मेरे सामने आजावे। मांस में स्वयं स्वाद भी नहीं है, जो कुछ स्वाद है वह घृत और मसाले का है। कन्याओं पर रुपये लेकर उनका विवाह करने की भी निन्दा करते थे और कहते थे कि यह ऐसा है जैसा कोई रुपया लेकर किसी वेश्या का प्रसङ्ग किसी से करावे।

बिना पूछे प्रश्नों का उत्तर

पण्डित कृष्णनारायण अपने अन्य कई मुसलमान, ईसाई मित्रों के साथ एक दिन महाराज का व्याख्यान सुनने गये और सब लोग कुछ प्रश्न उनसे पूछने के लिये लेगये, परन्तु उनके आश्चर्य्य की कोई सीमा न रही जब महाराज ने उनके हरएक प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ कर दिया। अन्त में किसी का कोई आक्षेप भी बिना उत्तर दिये शेष न रहा। उन लोगों को विश्वास होगया कि महाराज सच्चे योगी हैं।

मांस-भक्षण पर प्रश्नोत्तर

पण्डित कृष्णनारायण ने एक दिन महाराज से मांस-भक्षण के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर किये तो महाराज ने कहा कि मांस-भक्षण वेदविरुद्ध है। पण्डितजी ने कहा कि मांस-भक्षण से कोई हानि होती हुई प्रतीत नहीं होती, तो महाराज ने कहा कि ईश्वर की आज्ञाएं हमें लाभदायक हैं और उनका उल्लंघन हानिकारक। मांस-भक्षण शरीर के लिए हानिकारक यदि न भी हो, परन्तु आत्मिकोन्नति के लिए अवश्य हानिकारक है। मांसाहारी को योगविद्या नहीं आती और उसे सिद्धि अर्थात् परमेश्वर का साक्षात् प्राप्त नहीं होता। महाराज ने पण्डित कृष्णनारायण से कहा कि यदि आप को विश्वास न हो तो मैं आप को एक विधि बताता हूँ। निरामिष भोजन कीजिए और ४० दिन तक उसके अनुसार कार्य कीजिये। पण्डित कृष्णनारायण कहते हैं कि मैंने ३० दिन तक उस विधि को किया तो मेरे शरीर में बल और स्वास्थ्य बढ़ गया जिसके आनन्द को मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता और मेरा मस्तिष्क इतना प्रकाशयुक्त होगया जैसे सूर्य्योदय से सब संसार होजाता है और मुझमें भविष्य के जान लेने के चिह्न प्रकट होने लगे। परन्तु ३१ वें दिन मैंने मांस खालिया जिससे तुरन्त ही मेरा मस्तिष्क अन्धकार-मय होगया और जो कुछ मैंने प्राप्त किया था वह सब जाता रहा।

पण्डित कृष्णनारायण का अनुभव

मैक्समूलर वेद-विद्या में लड़का है

मैक्समूलर के वेदों के ज्ञान के सम्बन्ध में महाराज कहा करते थे कि वैदिक विद्या में वह एक लड़के के समान है, जब तक कोई गुरु उसे शिक्षा न देवेगा वह सायण और महीधर का अनुकरण न छोड़ेगा।

गायत्री का महत्व

महाराज कहते थे कि गायत्री मन्त्र एक ही है और उसका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया करते थे। वह कहते थे कि आर्य्य ऋषि मुनि सदा से इसी मन्त्र का जाप करते चले आये हैं, अब लोगों ने अनेक प्रकार की पूजाएं और अनेक प्रकार के मन्त्र बना लिये हैं। मद्य मांस का प्रचार होगया और लोग सत्य धर्म्म से पतित होगए और इसी कारण अन्य लोग आकर यहाँ राज्य करने लगे।

महाराज ने यह भी कहा था कि राजा को चाहिए कि वह ऐसा प्रबन्ध करे कि ग्राम के चारों ओर क्षेत्र हों और एक ओर गोचारण भूमि। उसी से देश की उन्नति होगी।

३५ व्याख्यान दिये

महाराज मुलतान १२ मार्च से १६ एप्रिल सन् १८७८ तक ३६ दिन रहे और ३५ व्याख्यान दिये, केवल एक दिन रुग्ण होजाने के कारण व्याख्यान नहीं हो सका। व्याख्यानों में प्रायः सभी धार्म्मिक और लौकिक विषय आगये थे। लोग चाहे किसी मत वा सम्प्रदाय के हों उनकी विद्या और बुद्धि के वैभव को देख कर स्तम्भित रह जाते थे।

एक मुसलमान की सम्मति

एक मुसलमान सज्जन की सम्मति थी कि स्वामीजी की विद्या, योग्यता और युक्तियुक्त कथन के कारण उनसे शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा किसी का उनसे किसी बात के पूछने का भी साहस नहीं होता था।

महाराज ने विज्ञापन द्वारा नगर के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया, परन्तु कोई सम्मुख न आया।

आर्यसमाज स्थापित होगया

मुहम्मद साहब की तो एक स्त्री ही सहायक थी, हमारे सहायक तो सात पुरुष हैं

४ एप्रिल सन् १८७८ को मुलतान में आर्य्यसमाज स्थापित हुआ और उसके केवल ७ सभासद् बने। इस पर ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द ने हँस कर कहा कि केवल ७ ही सभासद् हैं, तो महाराज ने हँस कर ही उत्तर दिया कि मुसलमानों के पैगम्बर की तो केवल एक स्त्री ही सहायक थी परन्तु उसने इतनी उन्नति की और हमारे धर्म्म के तो सात सहायक हैं।

मुझे काशी में विष दिया गया था

मुलतान में महाराज ने कलकत्ता निवासी एक बङ्गाली सज्जन बाबू शरच्चन्द्र चौधरी से कहा था कि एक वार हमें काशी में पान में विष दिया गया था। हमें ज्ञात होगया तो हमने वार २ जल पीकर वमन करके, कुछ देर अविश्रान्त रूप से टहल कर और प्राणायामादि करके विष की शक्ति को नष्ट कर दिया था।

१६ एप्रिल सन् १८७८ को महाराज मुलतान से चले और १७ एप्रिल को लाहौर पहुँच गये।

१४ मई सन् १८७८ तक लाहौर ही विराजे रहे और सत्य उपदेश करते रहे।

८ मई सन् १८७८ को आर्य्यसमाज लाहौर की अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन था।

स्वामीजी की नियमबद्धता

एक सदस्य ने यह प्रस्ताव किया कि महाराज को उस अधिवेशन का प्रधान नियत किया जावे, परन्तु उन्हों ने यह कह कर कि 'सभा के प्रधान उपस्थित हैं, उनकी उपस्थिति में मैं प्रधान नहीं बन सकता' उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

आप लोगों के हित-चिन्तन ने दुबला कर दिया

एक बार महाराज ने अपने भक्तों से बातचीत करते हुए कहा था कि आप लोग मुझे बहुत हृष्ट-पुष्ट समझते हैं, परन्तु जब मैं गङ्गा-तट पर विचरण करता था उस समय की अपेक्षा अब कृश होगया हूँ। आप लोगों की हितचिन्ता ने मुझे दुबला कर दिया है।

चिड़चिड़ा क्लर्क

महाराज का बंगाली क्लर्क बड़े चिड़चिड़े स्वभाव का था, परन्तु वह उसके चिड़-चिड़ेपन को सहन करते थे। जब वह नौकरी छोड़ कर जाने लगा तो महाराज ने उस के वेतन का रुपया करंसी नोटों में दिया। उस ने बिगड़ कर कहा—आपको अपने हस्ताक्षर भी तो करने थे। महाराज ने अपना नाम लिख दिया। फिर उसने कहा कि मेरा नाम तो लिखा ही नहीं। उन्होंने उसका नाम बंकुबिहारी भी लिख दिया। इस पर वह और बिगड़ा और बोला कि मेरा नाम बंकुबिहारी ठठेरा तो लिखा ही नहीं। महाराज ने कहा कि कुपित न हूजिये यदि आप को ठठेरा ही बनना है तो यह भी और लिखे देता हूँ।

धर्मोपदेश में श्रोता क्यों सो जाते हैं

एक दिन किसी ने महाराज से शङ्का की कि इसका क्या कारण है कि लोग नाच रंग तो सारी २ रात जग कर देखते रहते हैं, परन्तु धर्मोपदेश में सो जाते हैं। महाराज ने कहा कि उस में उत्तेजना होती है, अतः नींद नहीं आती और इस में शान्ति, फिर वह न सोवे तो क्या करे।

हम एक जगह बाध्य होकर नहीं रह सकते

जब महाराज ने लाहौर से अन्य प्रान्तों में जाने का विचार किया तो लाहौर के आर्य्यभाइयों ने उनसे उत्कट इच्छा की कि लाहौर में कुछ काल और विराजे रहें, परन्तु उन्होंने कहा कि जैसा आप लोग हमारे यहाँ रहने की आवश्यकता समझते हैं, ऐसे ही अन्य स्थानों में भी हमारे जाने की आवश्यकता है। हम किसी एक स्थान पर बाध्य हो कर नहीं रह सकते। जहाँ तक हम से हो सकेगा सारे देश में वैदिकधर्म्म का प्रचार करेंगे।

अमृतसर

१५ मई सन् १८७८ को महाराज लाहौर से अमृतसर जा विराजे, सरदार भगवानसिंह का उद्यान उनके निवास के लिये स्थिर हुआ।

इस बार भी उनके व्याख्यान मलवईबुङ्गे में ही हुए, जहाँ पहली बार के आगमन-काल में होते थे।

एक दिन एक ब्राह्मण ने यह लीला की कि व्याख्यान के मध्य में उच्च स्वर से संस्कृत

बोलना आरम्भ किया। महाराज ने उससे नम्र शब्दों में कहा कि *विद्याभिमानी पण्डित* आप शान्त रहिये, मैं व्याख्यान समाप्त करलूँ तब आप से वार्त्तालाप करूँगा, परन्तु वह चुप न हुआ। इस पर लोगों ने चुप कराकर उसे एक ओर को बिठा दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर महाराज ने आसन पर बैठ कर कहा कि उन महाराज को बुलाओ। वह पास ही बैठे थे, बोले कि मैं उपस्थित हूँ। महाराज ने उनसे पूछा आप कहाँ से पधारे हैं, तो कहा कि मैं कुरुक्षेत्र से केवल शास्त्रार्थ करने के लिये ही आया हूँ। फिर उनमें निम्न प्रश्नोत्तर हुए:—

प्रश्न—आपने वेद पढ़े हैं ? उत्तर—हाँ।
प्रश्न—कौन २ से वेद पढ़े हैं ? उत्तर—सारे वेद।
प्रश्न—व्याकरण भी देखा है ? उत्तर—हाँ।
प्रश्न—महाभाष्य भी पढ़ा है ? उत्तर—हाँ।

इस पर महाराज ने उनसे एक प्रश्न व्याकरण में किया, तो उन्होंने एक संस्कृत वाक्य पढ़ा और यह पूछने पर कि यह क्या है, उन्होंने कहा कि सूत्र *पोल खुल गई* है, महाराज ने उन्हें कागज़ पेंसिल देकर कहा कि इस वाक्य को भी लिख दो और यह भी लिख दो कि यह सूत्र है। इस पर वह महात्मा घबरा गये और फिर बात-चीत करने से कतराने लगे और अन्त को चले गये।

पहली वार जब महाराज अमृतसर पधारे थे तो किसी पण्डित ने शास्त्रार्थ का नाम तक न लिया था और इस वार भी एक मास तक महाराज के *पौराणिकों की लीला* व्याख्यान होते रहे, परन्तु किसी ने शास्त्रार्थ की चर्चा न की। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज अमृतसर से जाने वाले हैं तो कहने लगे हम शास्त्रार्थ करेंगे। इस पर आर्य्यसमाज की ओर से उत्तर भेज दिया गया कि यदि शास्त्रार्थ करना है तो आर्य्य-समाज में आकर समय और नियमादि निश्चित करलें, परन्तु कोई भी न आया बल्कि अपनी ओर से ही विना महाराज वा आर्य्य-समाज की अनुमति के एक विज्ञापन छपाकर नगर में वितरित कर दिया कि १४, १५ जून सन् १८७८ को घण्टाघर और तेजासिंह के शिवालय में बसन्तगिरि साधु की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ होगा। इसका उत्तर मन्त्री आर्य्य-समाज ने देदिया कि उक्त स्थानों पर ही शास्त्रार्थ करना स्वीकार है, परन्तु यदि कोई उपद्रव हुआ तो उत्तरदायित्व पौराणिकों पर होगा। मध्यस्थ यदि वेदविरुद्ध निर्णय करेगा तो वह माननीय न होगा। इस पर दूसरी ओर से अन्य स्थानों के नाम बताये गये, परन्तु मलबई बुङ्गे में, जहाँ हर प्रकार का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने पर आर्य्य-समाज उद्यत था, शास्त्रार्थ करने पर सहमत न हुए।

इस पर उत्तर दे दिया गया कि शास्त्रार्थ की तारीख़ १८ जून १८७८, समय ६॥ बजे सायङ्काल और स्थान सरदार भगवानसिंह का तबेला नियत किया जाता है। सभापति निर्वाचित होगा, मध्यस्थ कोई न होगा और शास्त्रार्थ लिखा जावेगा। इस पत्र को ५ आर्य सज्जन पण्डित चन्द्रभानु के पास, जिनका नाम विज्ञापन देने वालों में था, लेकर पहुँचे तो उन्होंने पत्र लेने और हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया और कहा कि मैंने विज्ञापन पर हस्ताक्षर

नहीं किये और चिट्ठी पर भी मेरे हस्ताक्षर बलात् कराये गये हैं। उधर वसन्तगिरि ने भी कहला भेजा कि मेरा नाम मध्यस्थ के लिये बिना मेरी अनुमति के लिख दिया गया है और मुझ में स्वामीजी के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनने का सामर्थ्य नहीं है।

शास्त्रार्थ के लिये कोई न आया

आर्य्यों ने अपने विज्ञापन के अनुसार १८ जून को शास्त्रार्थ का सब प्रबन्ध सरदार भगवानसिंह के तबेले में कर लिया और डिप्टी कमिश्नर से आज्ञा लेकर पुलिस का भी प्रबन्ध करा लिया। नियत समय पर महाराज वहाँ पहुँच गये एक कुर्सी उनके लिये डाली गई और एक मेज़ पर पुस्तकें सजा कर रक्खी गईं और एक कुर्सी और एक मेज़ विपक्ष के पण्डित के लिये। जनता शास्त्रार्थ देखने की इतनी उत्सुक थी कि छतें तक मनुष्यों से भरी हुई थीं। दर्शकों की संख्या ५, ६ सहस्र से कम न थी। जब कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिए न आया तो महाराज ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। अभी व्याख्यान को आरम्भ हुए थोड़ा ही समय हुआ था कि बाबू मोहनलाल वकील आये और कहा कि मैं पण्डितों की ओर से वकील होकर आया हूँ, वह सभा में आना चाहते हैं, उन्हें बुलवा लिया जावे। इस पर दो तीन प्रतिष्ठित सज्जन गये और उन्हें लिवा लाये। उनके साथ बहुत शोर होता आया और जयकारे बुलते आये और चार पण्डित कुर्सियों पर आकर बैठ गये। तब शास्त्रार्थ के नियम उन्हें दिये गये। उन्हें पढ़ कर पण्डितजी बोले, इनका उत्तर इस समय नहीं दिया जा सकता, हम भी अपने नियम भेजेंगे और आर्य्य-समाज के मँगायेंगे। इतने में ही चिल्ल पौं मचने लगी और ईंट रोड़े सभास्थल में आकर गिरने लगे। एक रोड़ा महाराज के भी मारा गया, परन्तु उनके चारों ओर मनुष्य खड़े थे, अतः वह तो बच गए, परन्तु अन्य लोगों के ऊपर रोड़े गिरे और उनके चोटें आईं, कई एक के शरीर से रुधिर भी बह निकला। पुलिस खड़ी देखती रही, उसने न किसी को रोका न किसी को पकड़ा। बड़ी कठिनता से उपद्रव शान्त हुआ।

अन्ततः पंडित लोग आये

हल्ला गुल्ला और ईंटों की वर्षा

पंडितों ने कोई उत्तर न दिया

दूसरे दिन बाबू मोहनलाल वकील को पत्र लिखा गया कि पण्डितों का उत्तर भेज दीजिए। उन्हों ने कह दिया कि मैं तो उसी समय का वकील था, पण्डितों ने कोई उत्तर मेरे पास नहीं भेजा, वह लोग आपस में ही झगड़ रहे हैं, उत्तर कौन दे, उन का कोई विचार शास्त्रार्थ का नहीं जान पड़ता। इधर शास्त्रार्थ का सब प्रबन्ध कर लिया गया था, प्रवेश-पत्र भी छपवा लिये गये थे, परन्तु कोई परिणाम न निकला। २० जून तक प्रतीक्षा करके पब्लिक को विज्ञापन द्वारा सब घटनाओं से सूचित कर दिया गया और इस प्रकार शास्त्रार्थ का यह तमाशा समाप्त हुआ।

निर्धन होने की चिन्ता न करो

एक दिन महाराज ने व्याख्यान में कहा था कि लोग कहते हैं कि अंग्रेज लोग धनी और देशी निर्धन होते जाते हैं। इसकी चिन्ता न करनी चाहिये, क्योंकि अंग्रेज़ जितने अधिक धनी होते जायंगे उतने ही इन्द्रियाराम

होते जायंगे। इस से वह आलसी होंगे और आलस्य से निर्बल। देशी लोग जितने ही निर्धन होंगे उतने ही परिश्रमी बनेंगे और परिश्रम से बलवान् बनेंगे, इस से देशी लोग लाभ में रहेंगे।

मुझे सत्य कहने में कोई भय नहीं है

इस पर पं० बिहारीलाल ऐक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर ने महाराज को यह सन्देश भेजा कि ऐसे पब्लिक अवसर पर इस प्रकार का कथन उचित न था। महाराज ने उत्तर दे दिया कि सत्य बात के प्रकट करने में मुझे कुछ भय न था।

भँगेडी ब्राह्मणों ने सोटा मारना चाहा

एक दिन चरस भाँग पीने वाले एक ब्राह्मण ने महाराज के उपदेशों से चिढ़ कर उनके सोटा मारना चाहा, लोगों ने उसे पकड़ लिया, परन्तु महाराज ने उसे छुड़वा दिया।

केवल साथ भोजन करने से प्रीति नहीं बढ़ती

पादरी क्लर्क साहब से और महाराज से एक दिन खान पान के विषय में बातचीत हुई थी। पादरी साहब ने महाराज से कहा कि हम और आप एक मेज़ पर भोजन करें। महाराज ने कहा इससे क्या लाभ होगा? पादरी साहब ने महाराज से कहा कि इससे मित्रता बढ़ेगी महाराज ने उत्तर दिया कि सुन्नी और शीआ एक बरतन में खालेते हैं और रूसी और अंग्रेज़ और आप और रौमनकैथलिक लोग एक मेज़ पर खा लेते हैं, फिर भी आपस में एक दूसरे के शत्रु हैं, इस पर पादरी निरुत्तर हो गये।

स्वामीजी के वध के लिये सिक्ख निहंगों का षड्यंत्र

देखें कोई निहंग हमारा क्या करेगा

एक दिन महाराज ने हर की पौड़ी और अमृतसर के गौण नामों का खण्डन किया। इस से सिक्खों का निहंग दल बहुत रुष्ट हुआ और कुछ निहंगों ने यहाँ तक कहा कि स्वामी के पास रात्रि को मनुष्य रहते हैं, कभी हम उन्हें अकेला पायेंगे तो अवश्य मार डालेंगे। यह बात महाराज के किसी हितेच्छु ने महाराज से जाकर कहदी। महाराज का परमेश्वर पर अटल विश्वास था। उन्हों ने उस रात्रि को अपने पास किसी को न रहने का आदेश कर दिया और कहा जिस परमेश्वर ने हमें जगत् का उपकार करने की प्रेरणा की है हम सदा उसी के आश्रय रहते हैं किसी मनुष्य के आश्रय नहीं। देखें कोई निहंग हमारा क्या कर सकता है, परन्तु कोई निहंग उनके पास तक न फटका।

पौराणिक भी सब के सामने वेदमंत्र पढ़ने लगे

महाराज के आगमन से पहले कोई ब्राह्मण भरी सभा में वेदमन्त्र नहीं पढ़ा करता था, परन्तु महाराज के सामने अपनी विद्वत्ता प्रकट करने के लिये शूद्रों और यवनों तक के सामने पण्डितगण वेदमन्त्र पढ़ने लगे।

चालीस हिन्दू युवक ईसाई होने से बचे

अमृतसर में लगभग चालीस हिन्दू नवयुवकों के विचार मिशन स्कूल में ईसाई धर्म्म की शिक्षा पाने और ईसाईयों के संसर्ग से ईसाई धर्म्म की ओर झुक गये थे। वह नाममात्र के हिन्दू रह गये थे और हृदय से ईसाई हो गए थे, यहाँ तक कि वह अपने को Unbaptised, Christians (बिपतस्मा न पाये हुए ईसाई) कहने लगे थे और उन्हों ने

अपनी एक सभा अलग बनाली थी जिसका नाम Prayer Meeting (उपासना सभा) रख छोड़ा था और प्रति रविवार को उसका अधिवेशन हुआ करता था। जब उन्हों ने महाराज के उपदेश सुने और वैदिक धर्म्म की सचाइयाँ और ईसाई धर्म्म के भ्रममूलक सिद्धान्त उन पर प्रकट हुए, तब वह ईसाई होने से बचे।*

विचित्र परिवर्त्तन

एक जन पण्डित खड्गसिंह पादरी बेरिङ्ग के उपदेश से ईसाई हुए थे और उन्हें ईसाई हुए बारह वर्ष हो चुके थे। वह ईसाई धर्म्म के एक स्तम्भ समझे जाते थे। पादरी साहब ने उन्हें महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिये उनके ग्राम से अमृतसर बुलाया और जब वह आगये तो पादरी साहब ने कहा कि पण्डित साहब आगये हैं, अब अच्छी तरह शास्त्रार्थ होगा।

पादरी साहब इधर स्वप्न देख रहे थे कि उनके दिग्गज पण्डित अजेय दयानन्द को परास्त करके ईसाइयों का सिर ऊँचा करेंगे। उधर परमेश्वर की कुछ और ही लीला हो रही थी।

पण्डित खड्गसिंह बाबू सिंही के गृह पर बाबू ज्ञानसिंह से मिले और उनसे कहा कि आप जानते हैं वह कौन है जिससे शास्त्रार्थ करने के लिये मुझे बुलाया गया है। बाबू ज्ञानसिंह ने कहा कि उनका नाम दयानन्द सरस्वती है और वह सरदार भगवानसिंह के बाग में ठहरे हुए हैं, आप अवश्य चलिए। एक दिन मध्याह्नोत्तर में ४ बजे बाबू ज्ञानसिंह पण्डित खड्गसिंह को महाराज के निवासस्थान पर लेगये। पण्डित खड्गसिंह प्रणाम करके महाराज के समीप बैठ गये। इसके पश्चात् जो दृश्य बाबू ज्ञानसिंह ने देखा, वह अदृष्टपूर्व था। उसे देखकर वह आश्चर्य्य-सागर में मग्न हो गये। हुआ यह कि महाराज से एक ब्राह्मण धर्म्म विषय पर बात-चीत कर रहा था। स्वामीजी उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे, अब पण्डित खड्गसिंह उसे उत्तर देने लगे। ब्राह्मण ने कहा मैं तो स्वामीजी से बातें कर रहा हूँ आप बीच में क्यों बोलते हैं? तो पण्डितजी ने कहा कि यदि मेरे उत्तर से आपका सन्तोष न होगा तो स्वामीजी से पूछ लेना। पंडित खड्गसिंह उसी क्षण से ईसाई नहीं रहे थे, वह महाराज के पक्के अनुयायी बन गये थे। बाबू ज्ञानसिंह उन्हें अपने घर लेगये और उनका आतिथ्य-सत्कार किया। इसके पश्चात् उन्होंने वैदिक-धर्म्म का उपदेश देना आरम्भ कर दिया। उनकी दो कन्याएं थीं। उनका विवाह भी उन्होंने आर्य्यों में ही किया।

पादरी बहुत घबराए

पादरी बेरिंग साहब और अन्य पादरी इस घटना से बहुत घबराये और उन्होंने कलकत्ते के प्रसिद्ध पादरी के० एन० बनरजी को शास्त्रार्थ के लिये तार द्वारा बुलाया, उनका उत्तर आया कि मैं आता हूँ। महाराज अमृतसर छोड़ने वाले थे, परन्तु उनसे प्रार्थना की गई कि के० एन० बनरजी कलकत्ते से आरहे हैं, आप अभी न जाइए। इसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया, परन्तु जब फिर के० एन० बनरजी को तार दिया गया कि आप शीघ्र आवें तो उनका उत्तर आया कि मेरी पुत्री रोगग्रस्त है, मैं नहीं आ सकता। पादरियों से बहुत कुछ कहा गया कि एक लड़की मर जावे तो क्या हानि है, वह मर कर मसीह की गोद में जाती है, इसमें क्या

* दयानन्दप्रकाश में इस घटना का उल्लेख महाराज के पहली बार अमृतसर पधारने के वर्णन में है।

—संग्रहकर्त्ता.

भय है यहाँ अनेक आत्माओं (रूहों) का कल्याण है। परन्तु पादरी साहब न आये। इसका यह परिणाम हुआ कि कई लोगों के विचार ईसाई-मत से फिर गये और वह आर्य्य-समाज के सभासद् बन गये।

कई ईसाई वैदिक-धर्मी बन गये

इसके पश्चात् एक दिन मिशन स्कूल में आवागमन पर वाद-प्रतिवाद हुआ। महाराज के उपदेशों से बाबू ज्ञानसिंह का आवागमन पर दृढ़ विश्वास होगया था। उन्होंने आवागमन का पक्ष लिया और बड़े बल के साथ उसका समर्थन किया। परिणाम यह हुआ कि उन्हें स्कूल की नौकरी से पृथक् कर दिया गया। बाबू सिंही ने उन्हें पहले ही कह दिया था कि यदि आप एक जन्मवाद का समर्थन करेंगे तो ही अपने पद पर रह सकेंगे, बहुजन्मवाद का पक्ष लेकर स्कूल में नौकर न रह सकोगे। परन्तु उन्होंने इसकी कुछ परवाह न की।

विश्वास पर नौकरी का बलिदान

बाबू सिंही के द्वारा कई ईसाइयों की शुद्धि हुई थी।

सरदार दयालसिंह मजीठिया प्रसिद्ध रईस लाहौर से महाराज की वेद-विषय पर बात-चीत हुई थी। वह ब्राह्म-समाजी थे और वेद को ईश्वरोक्त नहीं मानते थे। इस वार्त्तालाप के लिये एक विशेष दिन नियत किया गया था। सरदार साहब प्रसङ्ग से अलग हो जाते थे और इधर उधर की बातों में अधिक समय नष्ट करते थे, अतः महाराज को उनसे कहना पड़ा कि यह स्थिर होजाना चाहिए कि इतनी देर मैं बोलूँ और इतनी देर आप। परन्तु यह नियम होजाने पर भी उन्होंने उसका व्यतिक्रम किया। महाराज ने उन्हें रोका। वह रईस थे, यह उनसे सहन न हो सका और रुष्ट होकर चले गये। महाराज ने उनसे कहा था कि आप अभी लड़के हैं। बाबू केशवचन्द्र सेन जिनके आप शिष्य हैं, अभी जीवित हैं। आप उन्हें कलकत्ते से यहां बुला लीजिए अथवा मुझे वहाँ ले चलिए और इस विषय में मेरी उनसे बात-चीत करा दीजिये, तब आपको सन्तोष हो जायगा कि कौन सच्चा है।

सरदार साहब रूठ गये

पण्डित पोहलोराम स्वामीजी के एक अनन्य भक्त थे। एक दिन उन्होंने नैराश्य भाव में स्वामीजी से कहा कि आर्य्य-समाजियों की संख्या बहुत न्यून है, इतने थोड़े से मनुष्यों से क्या हो सकेगा। स्वामीजी ने उन्हें ढाढस बँधाते हुए कहा कि आप तो बहुत हैं, सहस्रों को अपना साथी बना सकते हैं। मैंने जब कार्य्य प्रारम्भ किया था, तो मैं अकेला ही था! आज परमेश्वर की कृपा से मेरे सहस्रों साथी हैं। यदि बाल शास्त्री और विशुद्धानन्द मेरा साथ देते तो हम तीनों संसार को जीत लेते, परन्तु शोक है कि वह मेरे भावों को जाने बिना ही मुझ से विरोध करने लगे।

निराश क्यों होते हो

एक दिन पण्डित पोहलोराम को किसी दाता ने एक नई कुर्ती दान दी। वह उसे लेकर महाराज की सेवा में पहुँचे और भक्ति-भरित शब्दों में निवेदन किया कि यह कुर्ती आज ही मुझे दान में प्राप्त हुई है, मेरी हार्दिक इच्छा है कि इससे श्रीचरणों को पोंछ कर आपके किसी सेवक को देदूँ। महाराज ऐसी बातों को व्यर्थ जानते थे। उन्होंने इसे स्वीकार न किया

भक्त की भावना

परन्तु पण्डित पोहलोराम ने उनके चरण पकड़ कर कुर्ती से उन्हें झाड़ ही डाला और फिर कुर्ती स्वामीजी के एक भृत्य को देदी।

भक्त को उपदेश

पण्डित पोहलोराम को स्वामीजी ने प्रतिदिन गायत्री मन्त्र जपने का आदेश किया था और उनसे यह भी कहा था कि रात्रि को शय्या पर जाकर प्रणव का जप किया करो और जप करते-करते ही सो जाओ। स्वामीजी ने उन्हें प्राणायाम की विधि भी बतलाई थी।

११ जुलाई तक महाराज का निवास अमृतसर में रहा; तत्पश्चात् उन्होंने संयुक्त-प्रान्त आगरा व अवध को, जो उस समय पश्चिमोत्तर प्रान्त के नाम से प्रसिद्ध था, अपने चरणों से पवित्र करने का सङ्कल्प किया। अमृतसर से महाराज जालंधर पधारे और वहाँ केवल एक दिन ठहर कर १३ जुलाई सन् १८७८ को लुधियाना पहुँचकर लाला वंशीधर के बाग़ में ३-४ दिन ठहरे। इस बार कोई व्याख्यान नहीं दिया। लुधियाना से अम्बाला ठहरते हुए रुड़की चले गये।

अमृतसर में स्वामीजी के व्याख्यानों में पत्थरों की वर्षा और स्वामीजी का कहना कि "मेरे आक्षेपों के उत्तर में प्रतिवादियों के पास यही पत्थर हैं, मेरे पर यह पुष्पों की वर्षा है"।

एकविंशति अध्याय

आषाढ़ संवत् १९३५–कार्त्तिक संवत् १९३५

महाराज की कीर्त्ति चन्द्रिका की किरणें चारों ओर फैल रहीं थीं। रुड़की में जब उनकी छटा पहुँची तो लोगों को उनके दर्शनों की अभिलाषा हुई और पंडित उमरावसिंह अध्यापक ताम्पसन इञ्जीनियरिङ्ग कालेज रुड़की और कतिपय रईसों और राजकर्म्मचारियों ने एक निवेदनपत्र महाराज की सेवा में रुड़की पधारने के लिए भेजा। उसका महाराज ने उत्तर दिया कि अभी तो हमारा विचार अन्यत्र जाने का है अतः हम नहीं कह सकते कि रुड़की कब आना होगा। जब सम्भव होगा हम सूचना देंगे। इसके थोड़े दिन पीछे ही महाराज का पत्र आया कि हमने पूर्वोक्त स्थान पर जाने का विचार शिथिल कर दिया है, यदि हमारा इस समय रुड़की आना अनुचित हो तो सूचित कीजिए, अन्यथा हम समझेंगे कि आप लोगों को हमारे आने में विरोध नहीं है। इस पत्र के आते ही लोगों के हृदय-कमल विकसित होगए और उन्होंने महाराज के निवास का लाला शम्भूनाथ दिल्ली वाले के बङ्गले में प्रबन्ध कर दिया।

रुड़की

महाराज के पधारते ही दर्शकों का आगमन आरम्भ हो गया। उनमें अधिक संख्या तामसन कालेज के अध्यापकों और छात्रों की थी, कुछ मुसलमान भी थे। महाराज से वार्त्तालाप करके सब ही उनकी विद्या, बुद्धि को देख कर चकित रह जाते थे और अपने प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर पाकर शान्ति लाभ करते थे।

स्वामीजी का सत्सङ्ग

पहिले ही दिन पण्डित उमरावसिंह के निवेदन पर निज स्थान पर महाराज ने ईश्वरोक्त ज्ञान के सिद्धान्त पर एक अत्यन्त हृदय-ग्राही वक्तृता दी, जिसे सुन कर सबने और विशेष कर मुसलमानों ने उनकी योग्यता की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की।

निज स्थान पर उपदेश

उसी दिन अमेरिका से कर्नल अल्काट की चिट्ठी महाराज के पास आई थी, जिसका उत्तर उस समय तक नहीं दिया गया था। वह चिट्ठी भी उपस्थित सज्जनों को सुनाई गई और फिर पण्डित उमरावसिंह ने उसका भाषानुवाद करके सुनाया। उसके उत्तर की पाण्डुलिपि भी पण्डित उमरावसिंह ने महाराज के आदेशानुसार तय्यार की जिसमें

अमेरिका की चिट्ठी और उसका उत्तर

महाराज के मन्तव्यामन्तव्य का विशद विवरण था। उसे सुनकर सब लोगों को महाराज के सिद्धान्तों से अभिज्ञता प्राप्त होगई। महाराज ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि अन्य धर्म्म और अन्य देश वालों को तो हमारे धर्म्म के जानने का उत्साह हो और हम इस भूमि के रहने वाले और अपने को आर्य्य पूर्वजों की सन्तान कहाने वाले उससे उपेक्षा करें।

स्वामीजी का अछूतों से प्रेम

सफरमैना की पल्टन का एक मजहबी सिक्ख भी श्रोताओं के समुदाय में था और एक ओर को बैठा हुआ बड़े चाव से महाराज की बातें सुन रहा था। वह श्वेत वस्त्र धारण किये हुए था। इतने में छावनी का पोस्ट-मैन महाराज की डाक लेकर आया। वह मुसलमान था और उस सिक्ख को पहचानता था। उसे वहाँ बैठा देख कर वह आग-बबूला होगया और उससे बोला, 'रे मनहूस नापाक! तू ऐसे बड़े बुजुर्ग और मशहूरज़माना शख्स की ख़िदमत में इस बे-अदबी से आ बैठा और अपनी जात से उन्हें इत्तिला न दी।' यह सुन कर वह बहुत लज्जित हुआ और अलग जा बैठा। पोस्टमैन ने उसे वहाँ से भी निकालना चाहा। परन्तु अछूतोद्धारक दयानन्द को यह कब सह्य हो सकता था। महाराज ने अत्यन्त कोमल शब्दों में उस पोस्टमैन से कहा, 'निस्सन्देह इस मनुष्य से थोड़ी सी भूल होगई थी जिसका उसे पर्याप्त दण्ड मिल गया, अब उसके अलग बैठकर सुनने में कोई हानि नहीं है, उससे कुछ न कहना चाहिए।' उस मनुष्य ने आँखों में अश्रु भरकर और हाथ जोड़ कर कहा कि मैंने किसी की कुछ हानि नहीं की, मैं सबसे पीछे जूतियों की जगह अलग बैठा हूँ। महाराज ने उस पोस्टमैन से कहा तुम्हें ऐसा कठोर व्यवहार न करना चाहिए और समझाया कि परमेश्वर की सृष्टि में सब समान हैं और उस मनुष्य से कहा कि तुम प्रतिदिन उपदेश सुनने आया करो। मुसलमानों के निकट तुम चाहे कैसे ही हो, परन्तु यहाँ तुम्हें कोई घृणा की दृष्टि से नहीं देखता। महाराज के इस सान्त्वना-वाक्य से वह बहुत प्रसन्न हुआ और फिर प्रतिदिन उपदेश सुनने आता रहा।

व्याख्यानों का प्रबन्ध होगया

दूसरे दिन प्रातःकाल ही से महाराज के पास जिज्ञासुओं की भीड़ लग गई। उस दिन यह निश्चय हुआ कि महाराज के व्याख्यान नगर में कराये जावें। अतः कैम्प मजिस्ट्रेट से आज्ञा प्राप्त करके आरमन स्कूल के समीप के मैदान में उनके व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया।

समय का मूल्य

पहले दिन व्याख्यान का समय ५ बजे अपराह्न था। महाराज को व्याख्यान-स्थल पर लेजाने के लिए बग्घी ४॥ बजे ही आगई। उन्होंने घड़ी देखकर कहा मार्ग १५ मिनट का है। आधा घण्टा पहले जाने से क्या लाभ। मैं समय से ५ मिनट पहले वहाँ पहुँचना चाहता हूँ। अतः उन्होंने ऐसा ही किया और ठीक ५ बजे व्याख्यान आरम्भ कर दिया। व्याख्यान का विषय, सत्य-धर्म्म और वेद था। दूसरा व्याख्यान मूर्त्ति-पूजा के खण्डन और आवागमन पर हुआ। उसे सुनकर रुड़की के असिस्टेंट सर्जन बाबू सुरेशचन्द्र ने कहा कि मैंने अपनी सारी आयु में आवागमन के समर्थन में ऐसी प्रबल युक्तियाँ कभी नहीं सुनी थीं। मेरा आवागमन पर विश्वास न था, परन्तु अब मुझे ज्ञान होगया कि मैं भूला हुआ था।

मैंने ऐसी प्रबल युक्तियां नहीं सुनी थीं

रुड़की में उस समय एक विद्वान् ब्राह्मण पण्डित त्रिलोकचन्द निवास करते थे जो आरमन स्कूल में संस्कृताध्यापक थे। उनसे लोगों ने जाकर कहा कि स्वामीजी के सम्मुख अपनी विद्या का परिचय दीजिए और मूर्त्ति-पूजा को सिद्ध कर दीजिए, तो उन्होंने उत्तर दिया कि मूर्त्ति-पूजा तो वेदप्रतिपादित है और सनातन से चली आती है उसके मण्डन की क्या आवश्यकता है और आप लोगों को उसमें सन्देह न करना चाहिए। दयानन्द बड़ा वाचाल है, उसके सामने कोई नहीं बोल सकता, अतः उससे शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ, परन्तु मैं अपने घर पर व्याख्यान दे दूँगा। अतः जिस दिन महाराज का तीसरा व्याख्यान था, एक हिन्दू सज्जन के गृह पर लोग एकत्र हुए और टामसन कॉलेज के पुस्तकालय से जर्मनी का छपा हुआ ऋग्वेद मँगाकर पण्डितजी ने सब लोगों को बार २ दिखाया और कहा कि यह ऋग्वेद है, मेरा छपाया हुआ नहीं है, विलायत में मुद्रित हुआ है, इस पर ऋषियों का भाष्य है, मेरा अनुवाद किया हुआ नहीं है, इसे मानो, दयानन्द जो कहता है उसे मत मानो। तब एक व्यक्ति ने कहा कि यह तो बता दीजिए कि इसमें क्या लिखा है। इस पर पण्डितजी ने कहा कि देखलो, यहाँ कोई यवन तो नहीं बैठा है। वहाँ एक यवन चपरासी बैठा था, लोगों ने उसे हटा दिया तब उन्होंने 'सहस्र शीर्षा पुरुषः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर सुनाया और कहा कि इससे मूर्त्ति-पूजा सिद्ध होती है। तब किसी ने पण्डितजी को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिये कहा, तो पण्डितजी ने कहा कि मैं उसके दर्शन नहीं कर सकता। इसपर एक उपस्थित सज्जन ने कहा कि काशी में तो काशी के सब पण्डित और राजा साहब स्वामीजी के सामने मोर्चे में बैठे थे, आपने यह ढकोसला कहाँ से निकाला, ज्ञात होता है कि आप शास्त्रार्थ नहीं कर सकते।

स्वामीजी बड़ा वाचाल है मैं उससे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता

केवल वेद का पुस्तक दिखा कर मूर्त्ति-पूजा का मंडन

इसके पश्चात् शंख घड़ियाल बजे और जय बोल कर सभा विसर्जन हुई। इन्हीं पण्डितजी ने मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए हकीम थानसिंह से कहा था कि यदि मेरे पिता जीवित न होते तो मैं निस्सन्देह आर्य्य-धर्म्म स्वीकार कर लेता।

तीसरे दिन महाराज का व्याख्यान इञ्जील और क़ुरान की शिक्षा पर था। मुसलमान पहले से ही उत्तेजित होरहे थे, कारण कि रुड़की में महाराज के आगमन से पहले ही एक मौलवी बाजार में खड़ा होकर हिन्दुओं और ईसाइयों के विरुद्ध प्रचार किया करता था। वह कटु-भाषी और असभ्य था। हिन्दू तो उसके सामने बोलते न थे परन्तु ईसाई उससे बातचीत करने को उद्यत होजाते थे। वह उनसे भी कठोर भाषा का प्रयोग किया करता था और इसी कारण एक बार उसका पादरी हापनर से झगड़ा हो गया था। महाराज के विषय में मुसलमानों की यह धारणा हो गई थी कि उन्हें हिन्दुओं ने मुसलमानों से शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया है। मुसलमानों ने आरम्भ से ही महाराज के व्याख्यान में विघ्न डालने

मुसलमान उत्तेजित

मुसलमानों की ओर से विघ्न

की ठानली और वह हल्ला गुल्ला करते रहे। पुलिस व्याख्यान में उपस्थित थी, परन्तु वह भी अधिकतर मुसलमान थी, राजकर्मचारियों की भी अधिक संख्या मुसलमान थी। उन में से किसी ने भी विघ्नकारियों से कुछ न कहा। यह दशा देख कर किसी ने एक पर्चा महाराज के पास भेजा कि दुष्ट लोगों की ओर से उपद्रव का भय है अतः इसलाम पर अधिक न कहें, महाराज ने उसे देख कर संकेत कर दिया कि उन्हों ने उसे देख लिया है।

इसलाम का खण्डन न कीजिए

वह इन बातों से डरने वाले न थे। सिंह गीदड़-भबकियों से कहीं भयभीत हो सकता है! उन्होंने उसकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए अपने विषय को जारी रक्खा और वह प्रबल आक्षेप इसलाम पर किया कि लोग देखते रह गए, इसलाम का फ़ोटो खींच कर रख दिया। मुसलमान महाराज के आक्षेपों को सुनते रहे और जी में कटते रहे, परन्तु कुछ कह न सके क्योंकि महाराज जो कुछ कहते थे, पते की कहते थे। उधर प्रबन्धकर्त्ता भी सावधान थे, उनके सुप्रबन्ध के कारण कोई उत्पात न हुआ।

इसलाम पर प्रबल आक्षेप

चौथे व्याख्यान में उपद्रव की आशङ्का से सरकारी सहायता का प्रबन्ध कर लिया गया था। उस व्याख्यान में महाराज ने पाश्चात्यदर्शन, डारविन के सिद्धान्त, इसलाम और ईसाई मत के दार्शनिक सिद्धान्त तथा पुराणों की बुद्धि-विरुद्ध गाथाओं पर प्रकाश डाला था। डारविन की कल्पना के विरुद्ध उन्होंने यह युक्ति दी थी कि जिस समय वानर से नर उत्पन्न हुआ, कोई बन्धन इस प्रकार का नहीं लगाया गया था कि आगे को वानर उसी प्रकार का कर्म करके नर को उत्पन्न नहीं करेगा फिर क्या कारण है कि उस काल के पश्चात् अब तक एक नर भी वानर से उत्पन्न नहीं हुआ, जब कि वह सब नर पशु और नारी पशु, जिनके संयोग से नर हुआ था, पृथ्वी पर उपस्थित रहे। दूसरे यह कहा जाता है कि दो भिन्न जातियों के नर और नारी के मेल से एक नई जाति के पशु उत्पन्न हुए और फिर उनके अन्य जातियों के पशुओं से समागम करने से एक और नई जाति उत्पन्न हुई और इस प्रकार होते २ मनुष्य का पृथ्वी पर आविर्भाव हुआ। इस पर महाराज ने कहा कि दो भिन्न जातियों के पशुओं के मेल से सन्तान ही नहीं होती और जब अब नहीं होती तो पहले भी नहीं होसकी होगी।

डारविन की कल्पना का खण्डन

इन युक्तियों को सुन कर अंग्रेज़ी शिक्षित समुदाय बहुत आश्चर्यान्वित हुआ। अनेक शिक्षित लोगों ने ऐसे विषयों पर महाराज से प्रश्न किये जिनके आविष्कारकर्त्ता योरुपीय विद्वान् हो माने जाते हैं जैसे कि सूर्य्य का न घूमना, पृथ्वी का परिभ्रमण, अमेरिका का वर्णन, मेघ आदि का वर्णन, भूकम्प आदि। परन्तु महाराज ने संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाणों से सब के समीचीन उत्तर दिये जो सर्वांश में आधुनिक विज्ञान के अनुकूल थे। आकर्षण के सिद्धान्त का आविष्कर्त्ता न्यूटन को समझा जाता है, परन्तु महाराज ने वेद-मंत्रों तथा अन्य ग्रन्थों के प्रमाण से उसका प्राचीनत्व सिद्ध करके उपस्थित जन को आश्चर्य से अवाक् कर दिया था।

शिक्षित समुदाय आश्चर्यान्वित

लाला कन्हैयालाल (विद्यार्थी, इञ्जीनियरिंग क्लास) ने प्रश्न किया कि नशे की दशा में ध्यान खूब जमता है और मनुष्य उसी में मग्न हो जाता है, अतः जैसा अच्छा ध्यान परमेश्वर का नशे की दशा में हो सकता है, वैसा अन्य दशा में नहीं हो सकता। महाराज ने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है कि नशे की अवस्था में जिस वस्तु का ध्यान आता है मनुष्य उसमें मग्न हो जाता है, परन्तु उसे उस वस्तु का तात्त्विक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ऐसा ज्ञान एक वस्तु का दूसरी वस्तुओं के साथ यथार्थ सम्बन्ध स्थिर करने से होता है और यह नशे की दशा में होना असम्भव है। उसमें गुणों का गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसी दशा में ईश्वर का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इस उत्तर को सुन कर वह बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए।

मनोरंजक प्रश्नोत्तर

एक दिन कर्नल मानसल कमांडिङ्ग ऑफीसर रुड़की और कप्तान स्टुआर्ट, क्वार्टर मास्टर महाराज के व्याख्यान में आए। महाराज उस समय इञ्जील के विषय में कथन कर रहे थे। महाराज के आक्षेपों को सुनकर वह उत्तेजित होते थे, परन्तु कुछ कहते न थे। व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने महाराज से वाद-प्रतिवाद किया। जब वह महाराज की युक्तियों का उत्तर न दे सकते थे तो कुछ भड़क उठते थे। अन्त को वह सर्वथा निरुत्तर होगए और यह कह कर चले गए कि इसका उत्तर हम कल देंगे, परन्तु अगले दिन वह न आये।

कर्नल और कप्तान से वार्त्तालाप

महाराज के व्याख्यान सब चार ही हुए। उसके पश्चात् हरिद्वार के पण्डों ने मजिस्ट्रेट से शिकायत की कि स्वामी दयानन्द तीर्थों के माहात्म्य का खण्डन करते हैं जिससे हमारी हानि होती है। इस पर मजिस्ट्रेट ने महाराज को धर्म्मसम्बन्धी व्याख्यान देने से निषेध कर दिया, परन्तु वह निज स्थान पर बराबर उपदेश करते रहे।

मजिस्ट्रेट ने व्याख्यान बन्द कर दिये

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि मुसलमानों में महाराज के विरुद्ध उत्तेजना होगई थी। उन्होंने महाराज से शास्त्रार्थ करने का आयोजन किया और मौलवी अहमदअली और हाफ़िज़ रहीमुल्ला शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हुए, परन्तु मौलवी साहब तो कटु-भाषी प्रसिद्ध थे और हाफ़िज़जी अरबी से अनभिज्ञ थे, अतः महाराज ने उनसे शास्त्रार्थ करना उचित न समझा। महाराज ने कहा कि यदि मुसलमानों के सब से बड़े इसलाम के विद्वान् मौलवी मुहम्मदक़ासिम देवबन्द वाले आवें तो हम उनसे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं।

मुसलमानों से शास्त्रार्थ का आयोजन

८ अगस्त सन् १८७८ को मौलवी मुहम्मदक़ासिम को मुसलमानों ने बुलाया और उन्होंने आते ही एक विज्ञापन छपवा कर वितरण किया और एक पत्र भी रजिस्ट्री करा कर महाराज के पास भेजा जिस पर उनके हस्ताक्षर न थे। अतः वह पत्र मौलवी साहब के पास वापस भेज कर १० अगस्त को उनसे उस पर हस्ताक्षर कराये गये। उक्त पत्र में अप्रासङ्गिक बातें लिख कर यह लिखा था कि कोई ऐसी तिथि नियत की जाय जिस पर निकट और दूर के स्थानों के लोग आसकें और साथ ही यह भी कि तिथि दूर की न हो, अन्यथा हमें ठहरना कठिन होगा। दूसरे मौलवी साहब का यह आग्रह था कि महाराज उर्दू में

बोले और तीसरे यह कि जब तक एक विषय पर बात-चीत समाप्त न हो जाय दूसरे विषय पर बात चीत न की जावे ।

१० अगस्त को ही महाराज के पक्ष की ओर से मौलवी साहब के विज्ञापन के उत्तर में विज्ञापन दिया गया जिसमें मौलवी साहब के विज्ञापन की सब विरुद्ध बातों का उत्तर दिया गया । मौलवी साहब ने लिखा था कि हमने अपने मित्रों द्वारा बहुत चाहा कि शास्त्रार्थ की तिथि नियत होजाय ... परन्तु पण्डितजी किसी प्रकार तिथि नियत करने पर सम्मत न हुए, यह बात सर्वथा मिथ्या थी । मौलवी साहब का कोई मित्र महाराज के पास नहीं आया था । केवल एक मनुष्य आया था और उससे सब कुछ स्थिर होगया था, केवल एक बात निर्णय के लिए रह गई थी जिसके विषय में उसने कहा था कि मौलवी साहब की सम्मति लेकर उत्तर दूँगा । उसके पश्चात् कोई आया न गया ।

साथ ही महाराज ने एक पत्र ११ अगस्त को रजिस्ट्री कराकर मौलवी साहब के पास भेजा जिसमें उनकी सब बातों का यथावत् उत्तर था । उसमें यह भी लिखा था कि शास्त्रार्थ की तिथि और समय निश्चित हो ही गया अन्य जो नियम आप चाहें लिख भेजने की कृपा करें । मैं भी जो नियम उचित समझूँगा लिख भेजूँगा । इसके उत्तर में मौलवी साहब ने हाफ़िज़ रहीमुल्ला को भेजा कि उन्हें मेरी ओर से नियम निश्चित करने का अधिकार है, परन्तु महाराज ने आग्रह किया कि नियम स्वीकार करने के लिये मौलवी साहब को स्वयं आना चाहिये ।

इस पर महाराज और मौलवी साहब तथा ३०,४० अन्य सज्जन तथा कर्नल मानसल और कप्तान स्टुअार्ट एक स्थान पर एकत्र हुए और सब के सामने दोनों शास्त्रार्थ-कर्त्ताओं की स्वीकृति और सहमति से निम्नलिखित नियम निश्चित हुए:—

१—शास्त्रार्थ उसी कोठी में होगा जिसमें स्वामीजी उतरे हुए हैं । मौलवी साहब ने इस पर आपत्ति की तो कप्तान स्टुअार्ट ने कहा कि यदि आपत्ति है तो शास्त्रार्थ हमारे बङ्गले पर होजाय, परन्तु मनुष्यों की संख्या २४ से अधिक न हो क्योंकि वहाँ अधिक स्थान नहीं है, तब मौलवी साहब ने स्वामीजी के स्थान को ही स्वीकार कर लिया ।

२—उभय पक्ष के मनुष्य ४०० से अधिक न होंगे ।

३—शास्त्रार्थस्थल में आने के लिए चतुर और बुद्धिमान् मनुष्यों को टिकट बाँट दिये जायँगे ।

४—शास्त्रार्थ लिपि-बद्ध होगा अर्थात् जो कुछ कोई बोलेगा उसे लिखाता जायगा ताकि नकार करने का स्थान न रहे और मुद्रित होने के काम आवे ।

५—शास्त्रार्थ ६ बजे सायङ्काल से रात्रि के ९ बजे तक रहेगा ।

६—दोनों ओर से शास्त्रार्थ में बात-चीत सभ्यतापूर्वक दार्शनिक लोगों के ढंग पर होगी । कोई किसी के मान्य व्यक्तियों और नेताओं के सम्बन्ध में कठोर शब्दों का प्रयोग न करेगा ।

७—शास्त्रार्थ के समय स्वामी दयानन्द और मौलवी मुहम्मदक़ासिम के अतिरिक्त अन्य कोई शास्त्रार्थ सम्बन्धी बात-चीत न करेगा ।

८—स्वामीजी वेद का पक्ष लेंगे और केवल क़ुरान पर आक्षेप करेंगे और मौलवी साहब क़ुरान का पक्ष लेंगे और केवल वेद पर आक्षेप करेंगे।

९—१८ अगस्त सन् १८७८ से नियत समय पर उपर्युक्त नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ आरम्भ किया जायगा।

इसके पश्चात् सब लोग अपने २ स्थानों को चले गये।

जब मौलवी साहब अपने डेरे पर पहुँचे तो उनको चिन्ता हुई कि इन नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ होगा तो बड़ी आपत्ति आयेगी। शास्त्रार्थ लिखा गया तो अमिट हो जायगा, हम यह कैसे कह सकेंगे कि हमने यह नहीं कहा था। यदि हमारी ओर से केवल दो सौ ही मनुष्य हुए तो हुल्लड़बाज़ी का अवसर ही न मिल सकेगा और न शास्त्रार्थ में विघ्न डाल कर अपनी जीत का शोर मचा सकेंगे। अतः उन्होंने उचित अनुचित का विचार छोड़ कर १२ अगस्त को महाराज को एक पत्र लिखा कि मैंने जो नियम स्वीकार किये वह आप के आग्रह पर और इस कारण से कि नमाज़ को देर होती थी। शास्त्रार्थ के लिखे जाने की आवश्यकता नहीं है, न ऐसी परिपाटी है। यहाँ सब लोग नापसन्द करते हैं कि केवल २०० मनुष्य ही शास्त्रार्थ देखने का सौभाग्य क्यों प्राप्त करें और शेष उससे क्यों वञ्चित रहें। मौलवी साहब ने यह भी धमकी दी कि अँधेरी रात होगी, मुसलमान तो क्या हिन्दू भी आपसे फिरे हुए हैं, यदि आप के साथ कोई अनुचित व्यवहार हुआ तो सबसे पहले मैं पकड़ा जाऊँगा। समय के विषय में भी आपत्ति उठाई और स्पष्ट लिख दिया कि सब लोगों को खुली आज्ञा दीजिए और समय भी बदल दीजिए अन्यथा इनकार कीजिये।

इसका उत्तर महाराज ने १२ अगस्त को यह दिया कि दर्शकों की संख्या, शास्त्रार्थ का स्थान, शास्त्रार्थ का समय और उसका लिखा जाना कर्नल मानसल और कप्तान स्टुआर्ट के सामने निश्चित होगये थे, अब आप इनसे असहमति प्रकट करते हैं। किसी बात का निर्णय करके उससे फिरना बुद्धिमानों का काम नहीं है। मैं निर्णीत विषय से नहीं हट सकता।

मौलवी साहब ने दो लम्बे चौड़े पत्र एक १३ और एक १४ अगस्त को लिखे, जिसमें पहली ही बातों को दुहराया और इसी बात पर आग्रह किया कि शास्त्रार्थ खुले मैदान में हो, सबको आने की आज्ञा हो, लिखा न जाय।

फिर मौलवी साहब ने यह चाल चली कि एक प्रार्थना-पत्र कुछ मुसलमानों की ओर से साहब मजिस्ट्रेट छावनी रुड़की के यहाँ दिलवाया कि हमें छावनी में सर्वसाधारण की सभा में शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दी जावे। इस पर उन्होंने आज्ञा दी कि हम न रुड़की। न छावनी और न सिविल स्टेशन में कहीं भी ऐसे शास्त्रार्थ की आज्ञा नहीं देते। इसके अतिरिक्त १७ अगस्त को एक प्रार्थना-पत्र कर्नल मानसल को दिलवाया कि स्वामी दयानन्द ने हमसे कह-कह कर देवबन्द से मौलवी मुहम्मदक़ासिम को बुलवाया तो हम लोगों ने कैम्प मजिस्ट्रेट से शास्त्रार्थ के लिए एक विस्तृत मैदान की प्रार्थना की थी, परन्तु उन्होंने आज्ञा दी कि हम शास्त्रार्थ की रुड़की में (छावनी में अथवा सिविल स्टेशन में) अनुमति नहीं दे सकते। अब यतः पण्डित दयानन्द सरस्वती बार २ आग्रह करते हैं कि मेरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ

करो और वह स्थान आपके इलाके में है, अतः प्रार्थना है कि आप हमें पण्डित साहब के स्थान पर आम लोग में जाने की अनुमति दें ताकि मौलवी साहब भी उन्हीं के स्थान पर जाकर शास्त्रार्थ करें।

इस पर कर्नल साहब ने आज्ञा दी कि इस शास्त्रार्थ को हमारे इलाके से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यदि शास्त्रार्थ करना है तो कहीं और करो। रुड़की या छावनी में हम इसकी किसी प्रकार आज्ञा नहीं देते। मजिस्ट्रेट साहब के इलाके से कुछ दूर पर करना स्वीकार हो तो करो। हमारा और मजिस्ट्रेट का इलाका बहुत दूर तक नहीं है। हम इस शास्त्रार्थ का निषेध नहीं कर सकते।

इस पर उसी दिन मौलवी साहब ने महाराज को लिखा कि मजिस्ट्रेट ने भी और कर्नल साहब ने भी रुड़की में शास्त्रार्थ करने की आज्ञा नहीं दी, अतः शास्त्रार्थ ईदगाह के मैदान में कर लीजिये। हम सब प्रबन्ध कर देंगे। मौलवी साहब ने महाराज को उसी दिन एक और पत्र लिखा कि यदि शास्त्रार्थ लिखा गया तो मेरी वाणी का प्रवाह रुकेगा। आप से लिखा जाय तो लिख लीजिये और न होसके तो आप जानें।......सहस्रों शास्त्रार्थ हुए किसी ने यह शर्त न की, आप को यह शर्त सूझी इसका कारण इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कि आप बचना चाहते हैं।

उत्तर में महाराज ने मौलवी साहब को दो पत्र लिखे, जिनमें शास्त्रार्थ के लिखे जाने की युक्तियुक्तता पर बल दिया। यह भी लिखा कि आप यदि इस उचित नियम को नहीं-मानते तो आपका शास्त्रार्थ न करने का अभिप्राय ज्ञात होता है।

पण्डित उमरावसिंह ने कप्तान स्टुआर्ट को १७ अगस्त को ही एक पत्र लिखा जिसमें प्रार्थना की कि स्वामीजी के स्थान पर शास्त्रार्थ करने की अनुमति दी जावे। इसका उत्तर कप्तान साहब ने यह दिया कि कर्नल मानसल पहले ही कह चुके हैं कि यदि थोड़े से मनुष्य इकट्ठे होकर दार्शनिकों की भाँति शान्ति और नियमपूर्वक विचार करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

मैं समझता हूँ कि सब सम्बोधित मनुष्य मुसलमानों और आर्यों को उनकी अनुमति मान लेनी चाहिये और इस समय जैसे स्वामी के स्थान पर एकत्र होते हैं वैसे ही एकत्र हों।

मैं अपना गृह प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूँ, परन्तु उसमें २४ मनुष्यों से अधिक के उपस्थित होने का स्थान नहीं है।

उपर्युक्त आज्ञा और निवेदन-पत्र की प्रतिलिपि मौलवी साहब के पास भेज कर महाराज ने लिखा कि ईदगाह पर कोई प्रबन्ध नहीं होसकता और आप भी अपने अतिरिक्त दूसरों की अनियमता का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेसकते; अतः मेरा अथवा कप्तान साहब का मकान ही उचित प्रतीत होता है।

इसका उत्तर जो आना था वही आया कि कप्तान साहब को क्या अधिकार है? अधिकार कर्नल साहब को है और वह पहले ही निषेध कर चुके हैं। मजिस्ट्रेट और कर्नल साहब की आज्ञा के पश्चात् हमें पकड़े जाने का भय है। आपके मकान में २०, २५ से अधिक नहीं आसकते। हमारे हिस्से में तो सम्भवतः ५ ही मनुष्य आवें, शेष छावनी और

नगर के होंगे। मौखिक और लेखबद्ध शास्त्रार्थ में भेद ही क्या रहा यदि मौखिक का एक २ वाक्य लिखा गया। इस से तो लेखबद्ध शास्त्रार्थ होना ही अच्छा है।

इस प्रकार मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया।

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान्

जिन दिनों मौलवी साहब से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ हो रही थी उन्हीं दिनों एक पण्डितजी आये जिनके संस्कृत के विद्वान् होने की बड़ी ख्याति थी। वह महाराज से मिलने गये तो महाराज ने उन्हें सत्कारपूर्वक बिठाया। पण्डितजी ने एक व्याकरण का ग्रन्थ बनाया था जिसे वह अपने विचार में अपूर्व समझते थे। उन्होंने वह ग्रन्थ महाराज को दिखाया, महाराज ने ५, ७ मिनट देखकर वापस कर दिया और कहा कि आपका संस्कृत का ज्ञान अच्छा है। पण्डितजी उन दिनों बेकार थे, महाराज ने उन्हें पास रखना भी चाहा परन्तु वह राजी न हुए। महाराज ने कहा कि यदि आप अपना समय किसी आर्ष-ग्रन्थ के अनुवाद में लगाते तो अच्छा होता। पण्डितजी बोले, तो क्या मेरा ग्रन्थ किसी अर्थ का नहीं ? महाराज ने कहा, जैसा है वैसा ही है। पण्डितजी ने कहा कि मेरे व्याकरण में सब नियम आगये हैं। पण्डितजी के हठ करने पर महाराज ने कहा कि आप अपने ग्रन्थ का कोई नियम निकालिये। उन्होंने एक नियम निकाला तो महाराज ने १७,१८ वेदमन्त्र पढ़ कर कहा आप अपने नियम को इन मंत्रों पर घटाइये। परन्तु वह न घटा तो पण्डितजी ने कहा कि वेद का व्याकरण अलग हो सकता है, इस पर महाराज ने कहा कि इससे क्या लाभ कि वेद के लिए एक ग्रन्थ पढ़ा जाय और लौकिक संस्कृत के लिए दूसरा। फिर महाराज ने ३२, ३३ लौकिक संस्कृत के श्लोक पढ़े। उन पर भी पण्डितजी का नियम न घटा। इस पर पण्डितजी बहुत चकित हुए और महाराज के पग पकड़ लिये और कहा कि आप समुद्र हैं। मैंने यह ग्रन्थ काशी के पण्डितों को भी दिखाया था, सबने इसकी प्रशंसा की। फिर महाराज ने पाणिनीय का एक सूत्र पढ़ कर सब पर घटा दिया और पण्डितजी को मन्त्रणा दी कि आप आर्ष-ग्रन्थों की टीका और व्याख्या लिखने का यत्न करें जिससे संस्कृत विद्या की उन्नति हो। पण्डितजी का गर्व चूर्ण होगया और निष्प्रभ परन्तु अधिक बुद्धिमान् होकर विदा होगये।

आपका ग्रन्थ जैसा है वैसा ही है

भूलों का प्रदर्शन

गर्व चूर्ण होगया

मैं दयानन्द का मुख नहीं देख सकता

हरिद्वार के प्रसिद्ध सतुआ स्वामी से भी लोगों ने कहा था कि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिये। पहले तो उन्होंने हाँ करली, परन्तु फिर कहा कि मैं दयानन्द का मुख नहीं देख सकता। लोगों ने यह बात महाराज से कही तो उन्होंने कहा कि बीच में पर्दा डाल कर शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु सतुआ स्वामी इस पर भी उद्यत न हुए।

बङ्गाली सज्जन से प्रश्नोत्तर

एक दिन एक बङ्गाली सज्जन मेघनाथ भट्टाचार्य्य महाराज के दर्शनार्थ गये और धर्म्म विषय पर उनसे निम्नलिखित वार्त्तालाप हुआ—

मेघनाथ—जीवात्मा शारीरिक धर्म्म का एक अंश है कि नहीं ?

स्वामीजी—नहीं, जीवात्मा स्वतन्त्र है।

मेघनाथ—यदि ऐसा है तो शारीरिक व्यतिक्रम से मन का व्यतिक्रम क्यों होता है?

स्वामीजी—जैसे जल में तरङ्ग उठने पर जल पर डाले हुए तैल में भी तरङ्ग देखी जाती है, वैसे ही जीवात्मा के स्वतन्त्र वस्तु होते हुए भी शरीर के व्यति क्रम से जीवात्मा को व्यतिक्रम अनुभूत होता है।

मेघनाथ—परलोक है कि नहीं?

स्वामीजी—है, जीवात्मा इस देह को त्याग कर तत्त्वण (?) दूसरा देह धारण कर लेता है और पूर्वानुष्ठित कर्म्मों के फल को भोगता है।

मेघनाथ—यदि ऐसा है तो पुत्र-पौत्रादि द्वारा किये हुए श्राद्ध-तर्पणादि से जो परलोक-गत पूर्वपुरुषों की कल्याण-कामना की जाती है वह संगत नहीं रहती।

स्वामीजी—जीव अपने ही किये हुए कर्म्मों का फल भोग सकता है, इसलिये पुत्र-पौत्रादि का किया हुआ श्राद्ध-तर्पणादि परलोकगत जीव के लिये वृथा है। इस से यदि हो सकता है तो अनुष्ठानकर्त्ता पुत्रादि का ही कल्याण हो सकता है।

मेघनाथ—यदि ऐसा है तो पुत्र की श्रद्धाभक्ति-समर्पण द्वारा पिता के प्रति कर्तव्य-पालन करने वा पितृ-ऋण चुकाने के पहले ही पिता का परलोक होजाय तो पिता के सम्बन्ध में पुत्र का कर्तव्य असम्पूर्ण वा अपालित रहेगा और ऐसी दशा में पुत्र के पितृ-ऋण-परिशोध का क्या उपाय होगा?

स्वामीजी—पुत्र आत्मतुष्टि के लिए ही परलोकगत पिता की स्मृति रक्षा कर सकता है, परन्तु वह परलोक के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकता। पितृ-ऋण चुकाने के विषय में पुत्र अन्य जीवित गुरुजनों की सेवा द्वारा पितृभक्ति की बहुत कुछ सार्थकता कर सकता है। दूसरी बात यह है कि जब हरएक जीव अलग २ है तो एक के श्राद्ध द्वारा दूसरे व्यक्ति की तृप्ति वा मङ्गल-साधन कैसे सम्भव हो सकता है?

मेघनाथ—तो क्या हमारा श्राद्धादि-अनुष्ठान सर्वथा ही मिथ्या है?

स्वामीजी—हां ऐसा ही है। ब्राह्मणों ने अपनी जीविका-पथ की सुगमता और सुविधा करने लिए ही ऐसी व्यवस्था कर दी है।

मेघनाथ—हमारी जातिभेद की प्रथा ईश्वरसृष्ट है वा नहीं?

स्वामीजी—नहीं। श्रेष्ठ कर्मों के करने से ही ब्राह्मणों का श्रेष्ठत्व है।

मेघनाथ—तो फिर यज्ञोपवीत पहनने का क्या प्रयोजन है?

स्वामीजी—यह केवल लौकिक व्यवहार और उच्चवंश (वर्ण) का चिह्न है।

मेघनाथ—आप की केशव बाबू के मत के साथ कैसी सहानुभूति है?

स्वामीजी—मैं उन के अनेक मन्तव्यों का अनुमोदन करता हूँ। मेरा उन से यही मतभेद है कि मैं केवल वेद का ही प्राधान्य स्वीकार करता हूँ, वह नहीं करते। वह सब शास्त्रों का सार ग्रहण करना चाहते हैं। केशव बाबू के मन्तव्यों की इस देश में प्रचरित होने की संभावना नहीं है, क्योंकि वह समाज का संशोधन न करके उसे जड़ से ही बदलना चाहते हैं।

मेघनाथ—तीर्थादि की प्रयोजनीयता क्या है?

आर्यसमाज भवन रुड़की (पृष्ठ ४०१)
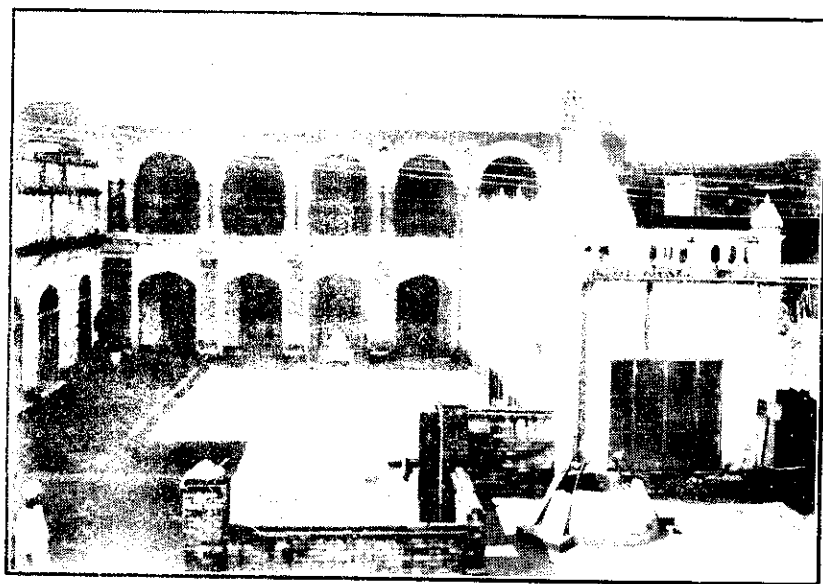
स्वामीजी—तीर्थों की जो वर्त्तमान दशा है उसकी प्रयोजनीयता मैं कुछ नहीं देखता हूं। यह तो केवल जीविकोपार्जन के निमित्त पण्डों ने एक ठाठ खड़ा कर रक्खा है।

मांस-भोजन के विषय में महाराज ने उसकी अवैधता स्वीकार की थी और कहा था कि शरीर के बल सम्पादन के लिये मांसाहार की कुछ आवश्यकता नहीं है। दाल, रोटी, शाक और दुग्ध आदि से शरीर में बल और बुद्धि दोनों का ही प्राचुर्य्य हो सकता है।

बंगाल के पंडितों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि उन्होंने न्यायशास्त्र द्वारा केवल बुद्धि की तीक्ष्णता प्राप्त करली है, परन्तु हमने प्रकृत ज्ञान-शास्त्र की चर्चा उनमें कुछ भी नहीं देखी।

महाराज ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि पहले आर्य्यगण ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन करके विद्योपार्जन करते थे इसलिये वह बलिष्ठ और दीर्घायु होते थे। अबके मनुष्य इन्द्रिय-दोष और पान-दोष में आसक्त होकर शारीरिक और मानसिक तेज से हीन होगये हैं और अल्पायु भी होगये हैं। तुम मुझे देखो मेरी आयु ५० वर्ष से अधिक है, परन्तु मैं आध सेर घृत पचा सकता हूँ और तुम लोग युवा होते हुए भी मेरे हाथ को नहीं मोड़ सकते।

तुम ब्रह्म हो तो मरी मक्खी को जिला दो

एक दिन भोटूसिंह नामक एक नवीन वेदान्ती आया और महाराज से कहने लगा कि आप परा विद्या नहीं जानते, यदि जानते होते तो द्वैत मत का प्रचार न करते। महाराज ने पूछा कि क्या आप वास्तव में ब्रह्म हैं? भोटूसिंह ने उत्तर दिया कि मैं निःसन्देह ब्रह्म हूँ। महाराज ने इधर उधर देखा तो एक मक्खी मरी हुई पड़ी थी। उसे उठा कर उन्होंने भोटूसिंह से कहा कि यदि ब्रह्म हो तो इस मक्खी में जान तो डाल दो। तब तो भोटूसिंह चकराये और बुद्धू बने हुए रह गये, मुँह से एक शब्द भी न निकला।

स्वामीजी समय का व्यतिक्रम न करते थे

स्वामीजी नियत समय पर कार्य करने के सिद्धान्त का बड़ी कड़ाई के साथ पालन करते थे। एक दिन जब आप व्याख्यान-स्थल पर पहुँचे तो वहाँ दो ही श्रोता थे। अन्य श्रोताओं की प्रतीक्षा न करते हुए आपने व्याख्यान आरम्भ कर दिया।

आर्य्यसमाज स्थापित हो गया

२० अगस्त को रुड़की में आर्य्यसमाज स्थापित होगया और उसी दिन महाराज ने रुड़की से विदा लेली।

मैं सम्मति नहीं दे सकता

दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि जिस कोठी में महाराज ठहरे हुए थे उसी के एक कमरे में आर्य्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा हो रही थी। सभासद् अभी कार्य्य-सञ्चालन में प्रवीण न थे, अतः उन्होंने महाराज से सम्मति देने की प्रार्थना की परन्तु उन्होंने कहा—मैं अन्तरङ्ग सभा का सदस्य नहीं हूँ, अतः सम्मति नहीं देसकता। तब उन्हें प्रतिष्ठित सभासद् बनाया गया। महाराज ने सदस्यों को बहुमूल्य उपदेश भी दिया कि सभा में बैठ कर हठ और दुराग्रह नहीं करना चाहिये। बहुमतानुसार जो निश्चित हो उसके अनुसार चलना चाहिये और सभा की बातों को गुप्त रखना चाहिये। *

* यदि आर्य्यसमाज के स्थापित होते ही उसकी अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन हुआ हो तो ही यह घटना सत्य हो सकती है, क्योंकि २० अगस्त को आर्य्यसमाज स्थापित हुआ था और उसी दिन महाराज ने रुड़की से प्रस्थान कर दिया था। —संग्रहकर्त्ता.

२१ अगस्त १८७८ को महाराज ने रुड़की से प्रस्थान किया और २२ अगस्त को अलीगढ़ पहुँच कर पंडित आफ़्तावराय के बाग में ठहरे। उसी बाग में ठाकुर मुकन्दसिंह आदि रईस छलेसर, पहले से ठहरे हुए थे। सज्जनों ने महाराज की खूब सेवा-शुश्रूषा की।

अलीगढ़

बम्बई से मूलसी ठाकुरसी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और श्यामजी कृष्ण वर्म्मा महाराज से मिलने के लिये आये।

२३ अगस्त १८७८ को सर सय्यद अहमदखाँ ने महाराज तथा बम्बई के सज्जनों को सन्ध्या-समय अपने गृह पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया। उन्होंने समझा था कि महाराज जाति-भेद नहीं मानते हैं और कहते हैं कि सबके ही हाथ का पकाया हुआ भोजन खाया जासकता है, अतः उन्हें हमारे घर पर भोजन करने में कोई आपत्ति न होगी, परन्तु महाराज भोजन करने न गये और कहा कि यद्यपि मुसलमानों के भोजन में सम्मिलित होने और भोजन करने में कोई दोष नहीं है, परन्तु ऐसा करने से हमारे देशवासियों में हमारे प्रति अश्रद्धा का उदय होगा और हमारे उद्देश्यों की सिद्धि में बाधा पड़ेगी, परन्तु श्यामजी कृष्णवर्म्मा आदि भोज में सम्मिलित हुए थे।

सर सय्यद के घर भोजन करने न गये

अन्य जाति व धर्म्म वालों के हाथ का पका वा छूआ हुआ खाने में वैदिकधर्मियों की कुछ हानि वा भलाई बुराई है वा नहीं ? यह प्रश्न कुँवर ज्वाला-प्रसाद ने महाराज से किया था, तो उन्होंने उत्तर में कहा था कि न कुछ बुराई है, न कुछ भलाई।

न बुराई है न भलाई

इस बार महाराज कुछ अस्वस्थ थे, अतः उनके व्याख्यान कम हुए। एक व्याख्यान हुआ, जिसमें सहस्रों की संख्या में लोग उपस्थित हुए। व्याख्यान सुनकर सब ही लोग प्रसन्न हुए, व्याख्यान के अन्त में मौ० फ़रीदुद्दीन सबजज ने खड़े होकर महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की। निज स्थान पर जो लोग आते थे उनका शङ्कासमाधान और उन्हें धर्मोपदेश तो प्रति दिन ही होता रहता था।

मुसलमान सबजज ने प्रशंसा की

२६ अगस्त १८७८ को महाराज अलीगढ़ से मेरठ चले गए।

मेरठ में महाराज बाबू दामोदरदास की कोठी में उतरे। महाराज के आगमन की चर्चा सारे शहर व छावनी में फैल गई। एक सप्ताह तक तो महाराज उसी कोठी के बरामदे में बैठ कर आगन्तुकों को उपदेश करते रहे और उनका शङ्कासमाधान करते रहे। इसके पश्चात् राय गनेशीलाल अध्यक्ष 'जलवएतूर' प्रेस की कोठी में महाराज के व्याख्यान होने आरम्भ हुए जिनका विज्ञापन पहले से दे दिया गया था।

मेरठ

पहला व्याख्यान १ सितम्बर सन् १८७८ को प्रारम्भिक विषय पर हुआ जिसमें सभा में आने जाने, प्रश्नोत्तर आदि करने के विषय में कथन किया गया और यह सूचना भी दे दी गई कि जिस किसी को कुछ प्रष्टव्य हो वह व्याख्यान समाप्त होने पर पूछे। सब के उत्तर अन्तिम दिन के

व्याख्यान-माला

व्याख्यान में दिये जायंगे। दूसरा व्याख्यान धर्माधर्म्म के लक्षणों पर और तीसरा ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति और उपासना विषय पर हुआ। चौथा दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया था, परन्तु जब किसी ने कोई प्रश्न न किया तो महाराज ने सृष्टि विषय पर कथन न किया।

एक मुसलमान का पत्र

और तो किसी ने कोई प्रश्न न किया एक मुसलमान ने एक पत्र दिया जिसमें लिखा था कि मुसलमान प्रश्नोत्तर करने पर उद्यत हैं, यदि स्वामीजी किसी हिन्दू रईस के उत्तरदायित्व पर स्टाम्प पर एक इक़रार-नामा शास्त्रार्थ करने और मेरठ में ठहरे रहने का लिखदें। यह पत्र, यह कह कर वापस कर दिया गया कि वह किसी मुसलमान रईस के हस्ताक्षरों से आना चाहिये।

प्रश्नों के उत्तर

५ सितम्बर से नौ दिन तक लाला रामसरनदास के घर पर शहर में व्याख्यान हुए, अर्थात् ६ दिन तक तो विविध विषयों पर हुए और तीन दिन तक उन सब प्रश्नों के उत्तर दिये गये जो उन दिनों में लोगों ने किये थे।

सनातन धर्मरक्षिणी सभा के प्रश्न और उनका उत्तर

उनमें से जो प्रश्न सनातन धर्म्मरक्षिणी सभा मेरठ की ओर से आये थे वह बड़े ही मनोरञ्जक हैं और उनसे प्रश्नकर्त्ता की योग्यता का पूर्णतया पता चलता है, अतः हम उन्हें नीचे लिखते हैं:—

१—जो कि चार धाम और सप्तपुरी आदि नगर और ग्रामों में उन्नत शिखर और मन्दिर और उनमें देवताओं की मूर्त्तियों का स्थापन हो रहा है और परम्परा से पूजा होती आती है। अब इसमें आप को भ्रम और सन्देह हुआ, सुना है। जो अवश्य सन्देह है तो श्रुति स्मृति के प्रमाण इसमें दीजियेगा और जो सन्देह नहीं है तो यह व्यक्त कीजियेगा।

२—गङ्गाजी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय हैं। इसमें भी प्रमाण दीजिये और जो कुछ सन्देह हो तो प्रकाशित करें।

३—जो अवतार हुए यह कौन हैं और इनका बनाने वाला कौन है और पराक्रम इनको किसने दिया अथवा यह समर्थ हैं। अवतारों के सामर्थ्य किसी राजा में अथवा और मनुष्य में नहीं सुने। प्रमाण श्रुति स्मृति से हो तो लिखियेगा।

इनके जो उत्तर महाराज ने दिये उनका सारांश हम पाठकों की भेंट करते हैं।

उत्तर प्र० १—मुझे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन के विषय में सन्देह वा भ्रम कदापि नहीं है, प्रत्युत पूर्णतया निश्चय है कि वह वेदविरुद्ध है। उसके करने का आदेश न किसी ऋषि-मुनि के वाक्य से और न किसी शास्त्र के प्रमाण से सिद्ध है। किसी पुस्तक में देव के अर्थ पाषाणादि की मूर्त्ति के नहीं हैं, प्रत्युत केवल परमेश्वर, विद्वान, वेदमन्त्र आदि के हैं, जो दिव्य गुणों से युक्त हैं।

यजुर्वेद अ० ३२ के मन्त्र ३ में स्पष्ट कहा गया है:—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः॥

अर्थ—परमेश्वर की कोई प्रतिमा प्रतिकृति, प्रतिबिम्ब, मूर्त्ति नहीं है जिसका नाम महान् यश वाला है। उसका वर्णन इन ऋचाओं में आया है जिनके आदि में हिरण्यगर्भ, मा मा हिंसीन, यस्मान्नजात इत्यादि हैं।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋ० अ० ८ । अ० ७ । व० ३ । मं० १ ॥

अर्थ—जिसके गर्भ में प्रकाशित लोक सूर्यादि हैं वही सारी सृष्टि से पूर्व वर्तमान था और वह एक ही सब उत्पन्न सृष्टि का पति है, इस पृथ्वी और द्युलोक को उसी ने धारण किया है । उसी सुखस्वरूप परमेश्वर की उपासना करनी योग्य है ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ॥

यजु० अ० ४० । मं० ९ ॥

अर्थ—जो लोग कारण रूप प्रकृति की उपासना करते हैं वह अन्धकार में गिरते हैं और उनसे भी अधिक अन्धकार में वे गिरते हैं जो कार्य्यरूप प्रकृतिजन्य पदार्थों की उपासना करते हैं ।

इन वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि पाषाणादि मूर्त्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए केवल पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिये ।

युक्ति से भी मूर्त्ति-पूजा ठीक सिद्ध नहीं होती ।

यदि कहा जाय कि मूर्त्ति में देव की भावना की जाती है । अब वह भावना या तो सच्ची होगी या झूठी । यदि सच्ची है तो सुख की भावना करने से सुख ही सुख होना चाहिये, दुःख न होना चाहिए, परन्तु हम देखते हैं कि दुःख होता है । क्या कभी जल में दुग्ध की, मिट्टी में मिश्री की भावना सच्ची हो सकती है ? यदि भावना झूठी है तो मूर्त्तिपूजा झूठी हो ही गई ।

यदि कहो कि परमेश्वर सर्वव्यापक है अतः मूर्त्ति में भी है, तो वह पुष्प, चन्दन आदि में भी व्यापक हुआ । फिर यह वस्तुएं मूर्त्ति पर क्यों चढ़ाते हो । वह तो मूर्त्ति-पूजकों के शरीर में भी व्यापक है तो अपने में ही व्यापक क्यों नहीं मानते ।

यदि कहो कि मूर्त्ति-पूजा अज्ञानियों के लिए ब्रह्म के जानने का साधन है तो गुण उपयुक्त साधन द्वारा प्राप्त होता है, निराकार और चेतन ब्रह्म का ज्ञान साकार और जड़ पदार्थ के द्वारा कैसे हो सकता है ।

यदि कहो कि प्राण-प्रतिष्ठा करने से मूर्त्ति सजीव हो जाती है सो यह बात भी मिथ्या है । किसी भी मूर्त्ति में जीव के लक्षण नहीं देखे जाते । शरीर में तो प्राण के आने जाने के लिए छिद्र भी हैं, मूर्त्ति में वह भी नहीं ।

यह कहना कि मूर्त्ति-पूजा परम्परा से चली आती है सर्वथा मिथ्या है । वेद अनादि हैं, जब उन्हीं में मूर्त्ति-पूजा नहीं तो कैसे कहा जा सकता है कि वह परम्परा से चली आती है ।

उत्तर प्र० २—इस प्रश्न से प्रकट है कि या तो आप गङ्गाजी को श्रेष्ठ और पूजनीय नहीं मानते और यदि मानते हैं तो उसका प्रमाण नहीं दे सकते अन्यथा मुझसे उसका प्रमाण मांगना सर्वथा व्यर्थ है । मुझे गङ्गाजी के जल के श्रेष्ठ होने और उसके मुक्तिदायक और पापमोचक न होने में कुछ भी सन्देह नहीं है । यदि गङ्गा-स्नान से ही मुक्ति मिल

सकती और पाप छूट सकते हैं तो फिर सत्य धर्म्म और शुभ कर्म्मों का अनुष्ठान और ईश्वराज्ञा का पालन सब व्यर्थ है। जो पाप पुण्य किया जाता है वह रत्तीभर भी घट, बढ़ नहीं सकता। किसी वेद और धर्म्म-शास्त्र में गङ्गा का मुक्तिदायक होना नहीं लिखा है। मनुस्मृति अ० ५ के श्लोक १०९ में स्पष्ट लिखा है:—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

अर्थात् जल से शरीर, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

यदि कहा जाय कि गङ्गा तीर्थ है और तीर्थ शब्द वेदों और शास्त्रों में आया है तो वहाँ तीर्थ शब्द के अर्थ वेदाध्ययन, धर्मानुष्ठान, सत्यग्रहण और असत्य-त्याग के हैं, नदी आदि के नहीं। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है:—

अहिंसन्सर्वभूतान्यत्र तीर्थेभ्यः ॥

अर्थात्—मन से वैर भाव छोड़ कर किसी प्राणी को दुःख न देना ही तीर्थ है, अन्य तीर्थ नहीं है।

उ० प्र० ३—जिन पुरुषों को अवतार माना जाता है वह महा उत्तम पुरुष थे, सत्य धर्म्म और ईश्वराज्ञा का पालन करते थे। उन्हें अवतार मानना भ्रान्ति है। परमेश्वर अजर-अमर है, वह जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आ सकता। जब परमेश्वर सब वस्तुओं में व्यापक है तो यह कैसे हो सकता है कि वह अवतार धारण करके एक ही शरीर में सीमित हो जाय? परमेश्वर को जन्म लेने की आवश्यकता ही क्या है? यदि कहो कि रावण और कंस जैसे अत्याचारियों के वध के लिये वह अवतार धारण करता है, तो यह सर्वथा अयुक्त है। जो परमेश्वर बिना शरीर धारण किये इस महान् संसार को बना, बिगाड़ और धारण कर सकता है, क्या वह ऐसे क्षुद्र जीवों को बिना शरीर धारण किये नहीं मार सकता? जिन्हें आप अवतार मानते हो उनको बनाने और पराक्रम देने वाला परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं है। जिसमें जितने गुण होते हैं उतना ही उसमें सामर्थ्य होता है। आजकल भी बहुत से ऐसे विद्वान् और ऐसे सामर्थ्य और पराक्रम वाले हैं कि सहस्रों में कोई उनके पल्ले का नहीं, परन्तु क्या उन्हें अवतार कहना उचित है? बड़े शोक का स्थान है कि एक ओर तो आप श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण को परमेश्वर का अवतार मानते हो और दूसरी ओर उनकी लीला और स्वांग बनाकर उनका अपमान करते हो। ठाकुरजी के सम्बन्ध में पुजारी लोग कहते हैं कि शीतकाल आगया उनके पास वस्त्र नहीं हैं, भोग के लिये सामग्री नहीं रही, वह भूखे हैं। श्रीकृष्ण को सहस्रों गोपियों से भोग करने वाला, सहस्रों रानियाँ रखने वाला, दूध माखन चुराने वाला बताकर उन पर मिथ्या दोषारोपण करते हो और फिर अपने आपको उनका भक्त कहते हो। देखो वेद क्या कहता है:—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
यजु० अ० ४० । मं० ८ ॥

अर्थ—वह परमेश्वर सब ओर परिपूर्ण, महा बलधारी, शरीर; फोड़े फुन्सी, स्नायु, रग, पट्ठे आदि के बंधन से रहित शुद्ध, पाप से रहित, सबका द्रष्टा, मनस्वी, सर्वव्यापक, सदा से वर्तमान है। उसने अपनी अनादि प्रजा को सत्य सत्य बातों का उपदेश किया है। और भी

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

यजु० अ० ३१। मं० १॥

अर्थ—वह सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् का रचने वाला है और इस जगत् से महान् और भिन्न है। असंख्य प्राणियों के शिर, आँखें और पैर उसी में हैं।

अतः सब प्रकार से सिद्ध है कि परमेश्वर अवतार कभी नहीं लेता।

कुछ अन्य लोगों के भी प्रश्न थे, परन्तु वह इस योग्य न थे कि उनका उल्लेख यहाँ किया जाय। कई तो उनमें असभ्यतापूर्ण और निरर्थक ही थे जिनसे प्रश्नकर्त्ताओं की मूर्खता ही प्रकट होती थी। दिग्दर्शनार्थ केवल एक प्रश्न हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

प्रश्न—ए स्वामीजी महाराज यह किस वेद में लिखा है कि स्वामीजी गुलाबजामन और बालूशाही और मिठाई खावें और टसर भी पहिनें और आप कहते हैं कि आर्य्यों का नाम चार अक्षरों तक का होना चाहिये फिर आपका नाम इतना बड़ा क्यों है और यह किस वेद में लिखा है कि स्वामीजी लोटे से पानी पीवें।

मौलवी का पत्र

७ सितम्बर सन् १८७८ को एक व्यक्ति अब्दुल्ला ने एक पत्र महाराज की सेवा में केवल इस अभिप्राय से भेजा कि हमने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया था जिसमें उन्होंने निम्नलिखित नियम लिखे थे:—

१—मध्यस्थ का होना आवश्यक है।

२—जबतक शास्त्रार्थ रहे आपको कहीं जाना न होगा।

३—बातचीत मेरी और आपकी ही होगी और कोई बोलने न पावेगा।

४—परमेश्वर को साक्षी करके और हठ और अहमहमिका को दूर करके जो परास्त हो वह सत्य को स्वीकार करे।

५—किसी रईस का प्रबन्ध होना चाहिये।

इसके पश्चात् लिखा था कि समय ४ बजे से ६ बजे तक अपराह्न में होना चाहिये और शास्त्रार्थ मौखिक हो, हम लेखबद्ध नहीं चाहते।

पत्र का उत्तर

महाराज ने इसका उत्तर उन्हें दे दिया कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा। आप शहर व छावनी के प्रतिष्ठित रईसों द्वारा लिखत पढ़त कीजिये, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

इसके पश्चात् मौलवी साहब ने उपरोक्त आशय का दूसरा पत्र भेजा। उसे महाराज ने यह समझ कर कि मौलवी साहब अपनी हठ न छोड़ेंगे सभा में पढ़कर सुना दिया और कह दिया कि मुझे अन्य सब बातें स्वीकार हैं, परन्तु शास्त्रार्थ लिखा अवश्य जायगा। सो यह मौलवी साहब काहे को मानते, उत्तर पाकर चुप हो रहे।

सनातन धर्म-रक्षिणी सभा की शास्त्रार्थ के लिये छेड़ छाड़

तत्पश्चात् सनातनधर्म्म-रक्षिणी सभा मेरठ ने शास्त्रार्थ के लिये छेड़ छाड़ आरम्भ की जिसका विवरण अत्यन्त मनोरञ्जक है।

सदर बाजार मेरठ में बिल्वेश्वर महादेव का एक पुराना मन्दिर है। ९ सितम्बर सन् १८७८ को उसमें कुछ पण्डित और हिन्दू रईस इकट्ठे हुए और शास्त्रार्थ के विषय में परामर्श हुआ। फलस्वरूप एक चिट्ठी महाराज के पास भेजी गई कि १३ सितम्बर सन् १८७८ को बिल्वेश्वर महादेव में एक सभा होगी आप भी उसमें आवें। इस चिट्ठी पर नाम तो कई पण्डितों और रईसों के थे, परन्तु हस्ताक्षर किसी के न थे। महाराज ने कह दिया कि जब तक कोई लिखित ला० किशनसहाय रईस के हस्ताक्षर युक्त न आवेगी, मैं उस पर कोई कार्य न करूँगा और इसीलिये इस चिट्ठी का कोई उत्तर न दिया।

१२ सितम्बर को ला० किशनसहाय के सुपुत्र ला० मुन्नालाल ने महाराज से आकर कहा कि पिताजी यह कहते हैं कि यदि आप शास्त्रार्थ में परास्त हो गये तो आपको मूर्त्ति-पूजा का खण्डन छोड़ना पड़ेगा। इसे महाराज ने तुरन्त स्वीकार कर लिया और सायंकाल को सभा में भी यह घोषणा करदी और कह दिया कि यदि ला० किशनसहाय शास्त्रार्थ के अभिलाषी हैं तो उन्हें चार दिन के भीतर अपने हस्ताक्षर युक्त लिखित भेजकर मुझसे शास्त्रार्थ के नियमों को स्थिर कर लें। परन्तु उन्होंने अपने हस्ताक्षरों से कोई पत्र न भेजा।

फिर एक रईस के गृह पर एक सभा हुई और फिर बिना हस्ताक्षरों के एक चिट्ठी महाराज के पास आई कि पंडित श्रीगोपाल यहाँ उपस्थित हैं, आप उनसे शास्त्रार्थ करलें। यह चिट्ठी सभा में पढ़ी गई तो महाराज ने स्पष्ट कह दिया कि श्रीगोपाल से दो तीन बार मेरी बातचीत हो चुकी है, वह अत्यन्त क्रोधी हैं। वह मुझ से कटु भाषण कर चुके हैं और गालियाँ तक दे चुके हैं। उनसे शास्त्रार्थ करने से कोई परिणाम न निकलेगा। यही दशा दूसरे पंडित भागीरथ की है। उन्होंने भी कई वर्ष हुए, जब मैं लेखराज के बाग़ में आकर ठहरा था, मुझे दुर्वचन कहे थे और तालियाँ पीटी थीं, परन्तु मैं अन्य पण्डितों से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हूँ।

महाराज की स्पष्टवादिता के यह अर्थ लगाये गये कि वह शास्त्रार्थ से पराङ्मुख हो गये, तो कुछ आर्य सज्जनों ने यह बात महाराज से कही और साथ में यह भी कहा कि आप श्रीगोपाल से ही शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लीजिये, ऐसा प्रबन्ध कर दिया जायगा जिससे वह असभ्यता का व्यवहार न कर सके तो उन्होंने अपनी स्वीकृति देदी, बल्कि यहाँ तक कह दिया कि मैं श्रीगोपाल से क्या यदि सनातनधर्म्म सभा वाले किसी तुच्छ विद्यार्थी को भी भेजेंगे तो उस तक से शास्त्रार्थ कर लूँगा। यह बात लाला किशनसहाय के कानों तक पहुँचा दी गई, परन्तु उन्होंने कोई कार्य न किया।

१३ सितम्बर को लाला रामशरणदास के भवन पर तो व्याख्यान देने बन्द कर दिये गये और १४ सितम्बर से बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट की कोठी पर व्याख्यान होने लगे और २२ सितंबर तक निरन्तर होते रहे।

१५ सितंबर को सनातनधर्म्मियों की फिर एक सभा हुई और १६ सितंबर को एक विज्ञापन दिया गया कि लाला शिब्बनलाल रईस के दीवान-खाने में सभा होगी और उसमें

स्वामी दयानन्द सरस्वती शास्त्रार्थ के लिये बुलाये गये हैं और एक चिट्ठी भी महाराज के पास आई कि आप आकर शास्त्रार्थ करें। इस पर भी किसी के हस्ताक्षर न थे। अतः महाराज को फिर कहना पड़ा कि जब तक लाला किशनसहाय के हस्ताक्षरों से पत्र न आयेगा और शास्त्रार्थ के नियम स्थिर न होंगे तब तक शास्त्रार्थ सम्भव नहीं है।

उसी दिन अर्थात् १५ सितम्बर को ही कुछ सज्जन बाबू छेदीलाल के बँगले पर आये और महाराज से लाला किशनसहाय व अन्य पुरुषों के पत्रों के उत्तर न भेजने का कारण पूछा तो महाराज ने कहा कि मैंने पहले ही कह दिया था कि जब तक मेरे पास प्रशंसित लाला साहब के हस्ताक्षरों से पत्र न आयेगा तब तक मैं उत्तर न दूँगा। इस पर आगन्तुकों में से एक ने कहा कि हमें स्वयं लाला किशनसहाय ने ही भेजा है तो महाराज ने उत्तर दिया कि आप सब भद्र पुरुष हैं और मैं आपको अविश्वसनीय नहीं समझता हूँ तो भी जब एक बार उक्त लाला साहब के लेख पर ही यह विषय अवलम्बित रक्खा गया है तब आप उनके हस्ताक्षरों से पत्र भिजवा दीजिये। इस पर वह वचन देकर, कि हम कल उनके हस्ताक्षरों से पत्र भिजवा देंगे, चले गये, परन्तु अगले दिन भी ऐसा कोई पत्र न आया।

इसके दूसरे दिन १६ सितम्बर को रजिस्ट्री डाक द्वारा लाला किशनसहाय आदि का एक पत्र महाराज के पास आया, परन्तु उस पर भी हस्ताक्षर न थे।

तदनन्तर महाराज ने एक पत्र लाला किशनसहाय के पत्रों के उत्तर में लाला शिवबन-लाल के घर पर, जहाँ सनातनधर्म्मियों की सभा हो रही थी, भेजा, परन्तु पत्र के पहुँचने से और नियत समय से पहले ही सभा विसर्जन हो गई थी।

१७ सितम्बर को सनातनधर्म्मियों की फिर एक सभा मण्डी में हुई और उसमें भी वह पत्र भेजा गया। सभा समाप्त होने को थी कि पत्र-वाहकों ने लाला किशनसहाय से कहा कि आपके पत्रों के उत्तर में हम स्वामीजी का पत्र लाये हैं, इसे सभा में सुनवा दीजिये। उस पत्र पर महाराज के हस्ताक्षर न थे, अतः उन्होंने पत्र सुनवाने से निषेध कर दिया कि कल लाला बख्तावरसिंह के गृह पर आकर सब बातों का निर्णय कर लिया जाय।

अतः १८ सितम्बर को महाराज की ओर से पाँच सज्जन उनके प्रस्तावित नियम तथा उनका हस्ताक्षरित पत्र लेकर लाला बख्तावरसिंह के गृह पर पहुँचे तो वह उन सज्जनों को साथ लेकर लाला किशनसहाय के गृह पर गये। उक्त लाला साहब ने नियमों की प्रतिलिपि कराकर पत्र-वाहकों से कह दिया कि उनका उत्तर परामर्श के पश्चात् कल प्रातःकाल तक दे दिया जावेगा।

महाराज के प्रस्तावित नियम यह थे।

१–उभय पक्ष से निम्न लिखित १२ सज्जन सभा के प्रबन्धक नियत किये जायँ, यदि वह स्वीकार करें।

यहाँ १२ सज्जनों के नाम थे।

२–इनमें से एक सज्जन और यदि सम्भव हो तो मातहत जज साहब प्रबन्धक सभा के सभापति नियत किये जावें।

३–प्रबन्धकों के अतिरिक्त उपस्थित जनकी संख्या हर एक ओर से पचास पचास से अधिक न हो तो अच्छा है।

४–उपस्थित होने वालों की जो संख्या नियत की जावे उतने ही टिकट छपवा कर आधे आधे हरएक पक्ष को दिये जावें।

५–हरएक पक्ष अपनी ओर के उपस्थित मनुष्यों को नियम में रक्खे और सब प्रकार से उनका उत्तरदाता रहे।

६–हरएक पक्ष की ओर के योग्य पण्डितों की संख्या दस दस से अधिक न हो, कम का अधिकार है।

७–उभय-पक्ष में से केवल एक ही पण्डित सभा में भाषण करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और दूसरी ओर से पण्डित श्रीगोपाल।

८–इस सभा में हर विषय का खण्डन मण्डन वेदों के प्रमाण से ही किया जावे।

९–वेदमन्त्रों के अर्थों के निश्चय के लिये ब्रह्माजी से जैमिनिजी तक के ग्रन्थों की, जिन्हें दोनों पक्ष मानते हैं, साक्षी देनी होगी जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु, छन्द, ज्योतिष, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अथर्वेद आदि।

१०–विदित रहे कि ऐतरेय से लेकर अथर्वेदादि उपर्युक्त ग्रन्थ ही साक्षी और प्रमाण होंगे, परन्तु यदि इनमें भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध होगा तो दोनों पक्ष उसे न मानेंगे।

११–उभय पक्ष को वेदों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों, सृष्टि-क्रम और सत्य धर्म्म से युक्त भाषण करना तथा मानना होगा।

१२–इस सभा में जो व्यक्ति किसी पक्ष का पक्षपात और राग प्रदर्शन करे, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा।

१३–यतः बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाणादि मूर्त्तिपूजन ही है, इसलिये इस सभा में मूर्त्तिपूजन का खण्डन और मण्डन होगा और यदि वेदों की रीति से पण्डितजी पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का मण्डन कर देवें तो पण्डितजी की सब बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और स्वामीजी मूर्त्तिपूजन का खण्डन छोड़कर मूर्त्तिपूजन स्वीकार कर लेवेंगे और जो स्वामीजी वेदों के प्रमाण से पाषाणादि मूर्त्तिपूजन खण्डन कर देवें तो स्वामीजी की और बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और पण्डितजी उसी समय से मूर्त्तिपूजन छोड़कर मूर्त्तिपूजन का खण्डन स्वीकार कर लेवें। ऐसा ही उभय पक्ष को स्वीकार करना होगा।

१४–उभय पक्ष से प्रश्नोत्तर लिखित होने चाहियें अर्थात् हरएक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्क्षण लिखा दिया जावे। बल्कि जहाँ तक सम्भव हो वक्ता का एक एक शब्द लिखा जावे।

हरएक प्रश्न के लिये पाँच मिनट और हरएक उत्तर के लिये पन्द्रह मिनट नियत हों और नियत समय की कमी का अधिकार है, परन्तु अधिक समय का नहीं।

१५–सभा में स्वामीजी पण्डितजी तथा अन्य पुरुषों की ओर से आपस में कोई कठोर भाषण न हो, प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और नम्रता से सत्यासत्य का निश्चय करें।

१६–सभा का समय ६ बजे सायङ्काल से नौ बजे रात्रि तक रहे तो उत्तम है।

१७-प्रश्नोत्तर के लिखने के लिये तीन लेखक नियत होने चाहियें और प्रत्येक लेख पर मिलाने करने के पश्चात् प्रतिदिन दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होकर एक एक प्रति हर पक्ष को दी जावे और एक प्रति बक्स में बन्द करके उस पर उभय पक्ष और सभापति का ताला लगा कर सभापति के पास रहे ताकि लेखों में कुछ न्यूनाधिक न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८-सभास्थल सब प्रबन्धकों की सम्मति के अनुसार नियत होगा।

१९-जम्मू और काशी आदि स्थानों के पण्डितों की सम्मति के ऊपर इस सभा के निर्णय का निर्भर न होना चाहिये, क्योंकि यह स्थान मूर्त्तिपूजा के घर हैं और वहाँ इस विषय में पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हो चुका है। इसलिये उपर्युक्त वेद-शास्त्रादि जिन में हर विषय की विशद व्याख्या की गई है मध्यस्थ और साक्षी के लिये पर्याप्त हैं। हाँ यह अधिकार है कि यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह व संशय हो तो आज १७ तारीख सितम्बर सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों वा अन्य जगह से उस पण्डित से जो उसकी सम्मति में उत्तम और श्रेष्ठ हो आने जाने के विषय में तार द्वारा बात चीत करके स्थिर करले वा प्रबन्ध करले और आज से छः दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर रविवार के दिन तक उसे यहाँ बुला लेवे। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अन्तर में उचित प्रबन्ध न हो वा विरुद्ध कार्यवाही हो तो उस पक्ष की सब बातें कच्ची और आधार-शून्य समझी जावेंगी और यदि स्वामीजी इस अन्तर में कहीं चले जावें वा इस लेख से बद्ध न रहें तो उनकी बात भी कच्ची और आधार-शून्य समझी जावेगी।

२०-दोनों पक्ष को सभा में वह सब पुस्तकें, जिनका वह प्रमाण दें, सभा के समय अपने साथ लानी चाहियें। उभय पक्ष को बिना असली पुस्तकों के मौखिक साक्षी स्वीकार न होगी।

अन्तिम नियम लाला किशनसहाय को नहीं लिखाया गया था, परन्तु आगे को कोई कठिनता न हो, इस बात को दृष्टि में रखकर यह नियम भी सम्मिलित किया गया। लिखा हुआ १७ सितम्बर सन् १८७८ का।

१८ सितम्बर को भी लाला किशनसहाय ने कोई उत्तर न भेजा, परन्तु पंडित श्रीगोपाल की ओर से कुछ नियम इन नियमों के परिवर्तन में महाराज के पास आये।

पंडित श्रीगोपाल ने स्वामीजी के प्रस्तावित नियमों में निम्नलिखित परिवर्तन करके भेजे थे:—

(१) प्रबन्धकों में ८ नाम और बढ़ाए जावें और उन्हें प्रबन्धक सभा और निश्चय-कर्त्ता सनातनधर्म्म लिखना चाहिये।

(२) मध्यस्थ अवश्य होना चाहिये और साहब कलक्टर जिला बुलन्दशहर जो, संस्कृतज्ञ हैं, मध्यस्थ हों।

(३) उपस्थित होने वाले मनुष्यों की संख्या सीमित करने और टिकट देने की कोई आवश्यकता नहीं।

(४) झूठ सच को बिना पक्षपात प्रकट करने के लिये मध्यस्थ होना आवश्यक है जब कि आप कहते हैं कि यदि ग्रन्थों में वेदविरुद्ध वाक्य होगा तो उसका प्रमाण न माना जावेगा।

(५) समय चार बजे से सात बजे तक रहेगा। ५ मिनट प्रश्न और १५ मिनट उत्तर लिखने के लिये अपर्याप्त हैं समय की कोई सीमा न होनी चाहिये।

(६) दो दिन में बाहर के पण्डितों का आना असम्भव है, अतः उन्हें लाने के लिये मनुष्य भेजना पड़ेगा और जबतक वह न आवें आपको यहाँ ही ठहरना होगा। यदि इसे स्वीकार न करें तो किसी वेद और उभय पक्षस्वीकृत ग्रन्थों के जानने वाले विद्वान् को मध्यस्थ बनावें। विना मध्यस्थ के सभा का पूरा पूरा प्रबन्ध नहीं हो सकता।

१८ सितम्बर को महाराज ने अपने हस्ताक्षरों से एक पत्र लाला किशनसहाय के पास भेजा कि यदि आप हृदय से कुछ निर्णय कराना चाहते हैं तो आप नियमों के अनुसार कार्य कीजिये, हम उनसे बद्ध हैं। इसके उत्तर में एक पत्र विना हस्ताक्षरों के लाला किशनसहाय के नाम से आया जिसमें लिखा था कि पण्डितों की बातों से ज्ञात हुआ कि आप वेदविरुद्ध उपदेश करते हैं और कुछ अनुचित शब्द महाराज के विषय में लिखे थे।

इसके उत्तर में महाराज ने लिखा कि आपको वेदों से अनभिज्ञ पण्डितों के कहने से ऐसा लिखना उचित न था। उत्तम हो यदि आप उचित समझें तो मैं अपने दो विद्यार्थियों को आपके यहाँ सभा में भेज दूँ और वह यदि आप अनुमति दें तो आपके पण्डितों से वेद विषय में कुछ प्रश्न करें, तब आपको पण्डितों की व्यवस्था ज्ञात होजायगी। यदि आपको यह स्वीकार न हो तो आप कृपापूर्वक मेरे निवास-स्थान पर अर्थात् बाबू छेदीलाल के गृह पर पधारें और सब शङ्काओं को निवृत कर लेवें। इसका उत्तर तो आया, परन्तु उस पर प्रेषकों के हस्ताक्षर न थे। उसका सार यह था कि आप वेद बिल्कुल नहीं जानते और आप मार्ग भूले हुए हैं और हमारे पण्डित विद्वान् हैं। हमें हमारे पण्डित यथा-पंडित श्रीधर, यह कहते और लिखते हैं कि जबतक आप अपना वर्ण और आश्रम सिद्ध न कर देवेंगे तबतक हमें आपके पास नहीं आना चाहिये और न पण्डितों को आपसे संभाषण करना चाहिये।

अब तो शास्त्रार्थ स्पष्ट रूप से नकार हो गया और सारा भाँडा फूट गया। सनातनधर्म-रक्षिणी सभा ने जो शास्त्रार्थ के लिये इतना आडम्बर रचा वह दिखाने मात्र को था। भला इसके भी कोई अर्थ थे कि महाराज तो बार २ कहें कि लाला किशनसहाय के हस्ताक्षरों का पत्र लाओ, परन्तु लाला साहब हैं कि अपने नाम से पत्र तो भिजवाते हैं परन्तु उनपर हस्ताक्षर नहीं करते और अन्त तक किसी पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर किये ही नहीं।

आर्यसमाज स्थापित हो गया

महाराज के उपदेशों का यह फल हुआ कि २९ सितम्बर सन् १८७८ को मेरठ में आर्यसमाज स्थापित होगया, जिसके ८१ सभासद् हुए। सभासदों में नगर के लाला रामशरणदास–जैसे प्रतिष्ठित रईस, उच्च शिक्षा प्राप्त सज्जन, सेठ साहूकार, व्यापारी, राजकर्म्मचारी थे। सबसे हर्ष और आश्चर्य इस बात का है कि स्वयं लाला किशनसहाय के, जो पौराणिक धर्म्म के स्तम्भ और पण्डितों के पृष्ठ-पोषक थे और जो नगर के प्रसिद्ध प्रतिष्ठित पत्थर वालों के रईस घराने के प्रधान पुरुष थे, पुत्र श्री लाला मुन्नालाल साहू आर्यसमाज के सभासद् बने और पीछे आकर उसके कोषाध्यक्ष हुए और फिर आजन्म उस पद पर सुशोभित रहे।

दयानन्द-प्रकाश से संगृहीत:—

शारीरिक बल की परीक्षा

एक दिन रात्रि के नौ बजे बेनीप्रसाद और उनके कुछ मित्रों ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि हम आपके पैर दबाना चाहते हैं। महाराज जान गये कि इस मिस से वह लोग उनके बल की परीक्षा करना चाहते हैं। अतः उन्होंने कहा कि पैर तो पीछे दबाना पहले हमारे पैर को उठाओ। यह कह कर उन्होंने अपने पैर फैला दिये। युवकों ने बहुतेरा बल लगाया परन्तु पैर को न उठा सके।

आक्रमण का आयोजन

मेरठ छावनी का एक सेठ महाराज का इतना विरोधी हो गया था कि उसने उन्हें पीटने के लिये कुछ गूजरों को तैयार कर लिया था। महाराज के भक्तों को भी इसका पता चल गया। उन्होंने महाराज से निवेदन किया कि आपको सावधान रहना चाहिये। महाराज ने उत्तर दिया कि आप मेरी चिन्ता न करें, हमारा रक्षक परमेश्वर है।

गुण्डे कुछ न कर सके

महाराज के श्राद्धखण्डन के व्याख्यान से ब्राह्मण और महाब्राह्मण बहुत चिड़ गये थे। उन दिनों महाराज के व्याख्यान शहर में लाला रामशरणदास के मकान पर हुआ करते थे। उक्त मकान से आने जाने में एक गली पड़ती थी। व्याख्यान समाप्त होते होते रात्रि हो जाती थी। एक दिन कुछ गुण्डे उस गली में लट्ठ लेकर बैठ गये कि जब महाराज व्याख्यान देकर डेरे पर जावें तो उन पर आक्रमण करें। आर्यजन को यह बात ज्ञात होगई। उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि महाराज को बन्द गाड़ी में बिठाकर डेरे में पहुँचाया जाय। महाराज के सामने जब यह प्रस्ताव रक्खा गया तो उन्होंने उसे तत्काल तिरस्कार पूर्वक अस्वीकार कर दिया और कहा कि आप लोग क्यों डरते हैं, मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता और अकुतोभयता के साथ उसी गली में हो कर चले गये। दुष्ट लोग लाठियाँ लिये हुए बैठे के बैठे रह गये और किसी का भी उन पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। *

आपने अच्छा न किया

मेरठ में उन दिनों जो सब-जज थे उनका नाम बख्तावरसिंह था। एक दिन वह अपने एक षोडशवर्षीय बन्धु को साथ लेकर महाराज के दर्शनार्थ गये। महाराज ने उनसे कहा कि आपने अच्छा नहीं किया जो ऐसी छोटी अवस्था में इसका विवाह कर दिया। अब जो हुआ सो हुआ, परन्तु पच्चीस वर्ष की आयु से पहले द्विरागमन न करना।

परोक्ष का ज्ञान

मुन्शी सेवाराम उन दिनों मेरठ में नहर के जिलेदार थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि यदि मैं नहर का डिप्टी मजिस्ट्रेट हो गया तो पहले मास का वेतन वेदभाष्य की सहायता में दूँगा। इसके कुछ काल पश्चात् उन्हें वह पद प्राप्त हो गया। अभी उन्होंने यह शुभ समाचार किसी

* दयानन्द-प्रकाश में इस घटना का जो उल्लेख है उसमें यह नहीं लिखा है कि उस दिन व्याख्यान लाला रामशरणदास के गृह पर हुआ था। न यह लिखा है कि महाराज को बन्दगाड़ी में ले जाने का प्रस्ताव किया गया था।
—संग्रहकर्त्ता.

से न कहा था कि महाराज का एक पत्र उनके पास आया जिसमें उन्हें बधाई दी गई थी और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई गई थी।

ज्योतिषीजी को कुछ न मिला

पण्डित गौरीशङ्कर ज्योतिषी एक दिन स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए और कुछ वार्त्तालाप करना चाहा। उन्होंने कहा कि अभी तो मैं २५ मिनट के लिए निद्रा लूँगा तत्पश्चात् आपसे बातें करूँगा। यह कह कर स्वामीजी तुरन्त सो गए। थोड़ी देर पीछे एक तहसीलदार मिलने आये। उनसे पण्डित गौरीशङ्कर ने कहा कि स्वामीजी सो रहे हैं, दस मिनट पश्चात् जगेंगे। इतनी देर आप प्रतीक्षा करें। ठीक दस मिनट में उनकी निद्रा भङ्ग हुई।

पण्डित गौरीशङ्कर से महाराज ने आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं ज्योतिषी हूँ, कुछ प्राप्ति की लालसा से आया हूँ। महाराज ने उनसे कहा कि यदि आप के ज्योतिष ने आपको यह बतलाया है कि आप को प्राप्ति होगी तो वह मिथ्या है, क्योंकि मैं आपको कुछ न दूँगा और यदि यह बतलाया है कि प्राप्ति न होगी तो आपने व्यर्थ परिश्रम किया।*

मानस खेद

एक दिन कुछ तिलकधारी ब्राह्मण महाराज के पास बैठे थे। तभी एक सज्जन आए और नमस्ते कह कर कुशल पूछा। महाराज ने कहा कि हमें कुशल कहाँ। उक्त सज्जन ने पूछा कि क्या कोई मानस खेद है। महाराज ने उत्तर दिया कि इससे अधिक खेद क्या होगा कि यह ब्राह्मण अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते। आडम्बर से अधिक प्यार करते हैं, धर्म के प्रचार का इन्हें ध्यान तक नहीं।

मेरठ में वैदिक धर्म्म की विजय-दुन्दुभि बजाकर और गर्वीले हठीले पौराणिक पण्डितम्मन्यों का मान भङ्ग करके महाराज ९ अक्टूबर को दिल्ली चले गए।

दिल्ली

महाराज दिल्ली आकर सब्जीमण्डी में लाला बालमुकन्द व केसरीचन्द के बाग़ में विराजमान हुए।

पाँच दिन तो वहाँ ही आगन्तुकों को उपदेशामृत पान कराते रहे। तदनन्तर विज्ञापन देकर १३ अक्टूबर सन् १८७८ से मोहल्ला शाहजी के छत्ते में व्याख्यान देने आरम्भ किये।

जयपुर से निमन्त्रण

ठाकुर रणजीतसिंह जागीरदार अचरौल राज्य जयपुर की महाराज के चरणों में अटल श्रद्धा थी जिसका वर्णन पहले आचुका है। पूर्वावसर पर जब महाराज जयपुर पधारे थे तो ठाकुर साहब ने महाराज की अध्यक्षता में एक बृहद्यज्ञ करने का सङ्कल्प किया था तो महाराज ने कहा था कि आप गायत्री का पुरश्चरण हमारे सामने करावें, हम ब्राह्मणों की परीक्षा करके यज्ञ में बिठावेंगे। उस समय वह यज्ञ किसी कारणवश न हो सका था, परन्तु जब श्रावण

---

* पण्डित गौरीशङ्कर फलित ज्योतिष का व्यवसाय करते थे, परन्तु अपने मित्रों से स्पष्ट कह दिया करते थे कि वह मिथ्या है। संग्रहकर्त्ता से भी उन्होंने कई बार ऐसा कहा था। वह आर्य्यसमाजी थे, परन्तु उनका यह कार्य्य आर्योचित न था। उन्होंने इस व्यवसाय से पुष्कल धन इकट्ठा कर लिया था। —संग्रहकर्त्ता.

सं० १९३५ में मेरठ से महाराज का पत्र उन्हें प्राप्त हुआ तो उस यज्ञ का उन्हें स्मरण हुआ और उन्होंने अपने कर्मचारी जोशी रूपराम को महाराज को जयपुर लिवा लाने के लिए भेजा। वह घटनावश दिल्ली उतरा तो उसे ज्ञात हुआ की महाराज वहाँ ही विराजमान हैं, तब वह उनकी सेवा में उपस्थित हुआ और ठाकुर साहब की प्रार्थना उनके सामने रक्खी। वह दिल्ली दो दिन ठहरा और महाराज के दो व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त करके उनसे ठाकुर साहब के पत्र का उत्तर लेकर जयपुर को लौट गया। स्वामीजी ने पुरश्चरण की सब विधि जोशीजी को लिखा दी और पत्र में लिख दिया कि हम कार्तिक में जयपुर आवेंगे।

दानापुर प्रान्त विहार के धर्म्मप्रेमी सज्जन महाराज के दर्शन और उपदेश के लिये अत्यन्त लालायित हो रहे थे। जब उन्होंने सुना कि महाराज दिल्ली हैं, दानापुर से निमन्त्रण तो उन्होंने दो व्यक्तियों को वहाँ भेजा कि महाराज से दानापुर पधारने का अनुरोध करें। उन्होंने महाराज को दानापुर आर्य्यसमाज की स्थिति से अभिज्ञ किया जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और धर्म्म-सभा का भी वर्णन किया तो महाराज ने कहा कि वह बहुत दिन तक नहीं रहेगी। इन लोगों ने जब दानापुर पधारने की प्रार्थना की और कहा कि कार्त्तिक में हरिहर क्षेत्र का बहुत बड़ा मेला होता है, तो महाराज ने कहा कि हम जयपुर तथा अजमेर जाने का वचन देचुके हैं, फिर हम कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार जायंगे और पुष्कर के मेले पर भी, जहाँ प्रति वर्ष लाखों मनुष्य एकत्र होते हैं. जायंगे अतः इस समय हमारा दानापुर जाना सम्भव नहीं है। महाराज ने उन्हें विदा करते समय कुछ प्रतियाँ पञ्चमहायज्ञविधि, आर्य्योद्देश्यरत्नमाला की दीं कि इन्हें आर्य्यसमाज द्वारा बेच देना और एक प्रति सत्यार्थप्रकाश की भी दी।

आर्यसमाज स्थापित हो गया

महाराज के निरन्तर उपदेशों से कितने ही लोगों के हृदय में वैदिकधर्म्म का बीज अङ्कुरित हुआ और नवम्बर सन् १८७८ के प्रथम सप्ताह में दिल्ली में आर्य्यसमाज स्थापित होगया।

जयपुर

जोशी रूपराम के लौटने से पहले ही ठाकुर साहब रुग्ण होगए थे। जब जोशीजी वापस आये तो ठाकुर साहब ने रुग्ण होते हुए भी यज्ञ की सामग्री एकत्रित करने की आज्ञा दी। जोशीजी ने कहा कि कार्त्तिक शुक्ला ८ का मुहूर्त्त ठीक नहीं है। वह अन्य शुभ मुहूर्त्त की टटोल में रहे, इतने में ही ठाकुर साहब का रोग बढ़ने लगा और कार्त्तिक शुक्ला दशमी संवत् १९३५ अर्थात् ३ दिसम्बर को ठाकुर साहब का देहपात होगया।

जब ७ नवम्बर १८७८ को महाराज जयपुर रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि जोशी रूपराम तथा अन्य सेवकों के शिर मुण्डित हैं। कारण पूछने पर उन लोगों ने ठाकुर साहब के देहपात का वृत्त सुनाया जिसे सुनकर उन्होंने शोक प्रकट किया और उनसे कह दिया की इस समय तो हम नहीं ठहरेंगे, हाँ अजमेर से लौटती बार आवेंगे और उसी समय टिकट मँगा कर अजमेर चले गये।

द्वाविंशति अध्याय

कार्तिक संवत् १९३५--माघ संवत् १९३५

अजमेर

अजमेर में महाराज के स्वागत के लिये स्टेशन पर कई भद्र-पुरुष उपस्थित थे। मुन्शी समर्थदान चारण और एक अन्य सज्जन तो एक स्टेशन आगे उनके स्वागत के लिये पहुँच गये थे।

महाराज के अजमेर पधारने के सम्बन्ध में एक विचित्र लीला हुई थी।

एक विद्वेषी की लीला

कुछ धर्म्म-जिज्ञासुओं की यह उत्कट अभिलाषा थी कि महाराज अजमेर पधारें। इसलिये मुन्शी समर्थदान ने उन्हें अजमेर पधारने के लिये दिल्ली पत्र लिखा था। उसके उत्तर में महाराज ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उन्हें लिख दिया था कि आप निवासस्थान आदि का प्रबन्ध कर लेवें हम दिल्ली के कार्य्य से निवृत्त होकर अजमेर आवेंगे और आने से पूर्व पत्र द्वारा सूचना देंगे और रेल पर सवार होते समय तार देंगे। महाराज का पत्र आते ही भक्तजन के मुख कमलहर्ष से विकसित हो गये और उन्होंने सोत्साह चन्दा एकत्र किया और निवास-स्थानादि का प्रबन्ध करके महाराज की सेवा में पत्र द्वारा निवेदन किया कि यहां सब तैयारी होगई है, आप पधारें। महाराज के आगमन का समाचार विदित होते ही पौराणिक वृन्द में ऐसी खलबली मची जैसी सिंह के आगमन से मृगों के झुण्ड में। अतः उनमें से एक ने महाराज को अजमेर आने से रोकने और इस आने वाली आपत्ति को टालने के लिये एक लीला रची। उसने जुगलबिहारी शर्म्मा के कल्पित नाम से महाराज को एक पत्र भेजा जो १७-१०-१८७८ का लिखा हुआ था। उसमें लिखा था कि समर्थदानजी ने प्रयत्न किया और चन्दा लिखा भी गया, परन्तु उसके प्राप्त होने की आशा नहीं है सो फाल्गुन तक आवश्यक प्रबन्ध हो जावेगा। समर्थदान आपको यह सूचना देनी नहीं चाहते, परन्तु वह यत्न कर रहे हैं। सब लोग समर्थदान से अप्रसन्न होगये हैं और बुरा भला कहते हैं। अब समर्थदान पछताते हैं कि आपको पहले लिख दिया सो अब आप प्रतीक्षा न करें, फाल्गुन में सब काम पक्का रक्खेंगे तब आप अनुग्रह करके हमारी अभिलाषा को तृप्त करना। यहाँ आर्य्यसमाज जारी करने का विचार है।

पत्र बड़ी चालाकी से लिखा गया था जिससे महाराज को विश्वास होजाय कि वह वास्तव में किसी वैदिक-धर्म्म के प्रेमी ने लिखा है और वास्तविक स्थिति को प्रकट करता है। हुआ भी ऐसा ही। महाराज ने सरलचित्तता से उसका विश्वास कर लिया, अजमेर जाने का संकल्प स्थगित करदिया और २१ अक्टूबर को मुन्शी समर्थदान को पत्र लिख दिया कि आज जुगलविहारी शर्म्मा की चिट्ठी आई है, जिससे जाना गया कि वहाँ चन्दे का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ है सो तुम कुछ चिन्ता मत करो अब मिलना न हो तो फिर कभी मिलेंगे।

स्वामीजी का पत्र पाते ही लोगों ने जान लिया कि यह सब किसी द्वेषाग्नि से दग्ध-हृदय की लीला है और तुरन्त ही उन्होंने महाराज को लिख दिया कि यहाँ सब तैयारी होगई है, यह पत्र किसी ने जुगलविहारी के नाम से झूँठा भेज दिया है, आप अवश्य पधारें। इसके उत्तर में २८ अक्टूबर को महाराज ने लिख दिया कि हम अवश्य आवेंगे और हमने समझ लिया कि जुगलबिहारी शर्म्मा के नाम से किसी ब्राह्मण ने लीला की है, परन्तु क्या होता है, ऐसे धूर्त्त बहुत होते हैं। दिल्ली से रेल में सवार होते समय तार दिया कि हम आते हैं।

जब महाराज अजमेर पहुँचे तो मुन्शी समर्थदान ने वह पत्र देखा और उसके अक्षरों और लेखन-शैली को देख कर पहचान लिया कि वह नगर के एक प्रतिष्ठित पुरुष का लिखा हुआ है, परन्तु उन्हें अपकीर्त्ति से बचाने के लिये उनका नाम प्रकट नहीं किया।

महाराज को अजमेर बुलाने में परिडत शालिग्राम शास्त्री हेडपरिडत गवर्नमेन्ट कॉलेज ने भी विशेष उद्योग किया था। परिडत शालिग्राम काशी के प्रधान विद्वान् परिडत राजाराम शास्त्री के शिष्य और परिडत बाल शास्त्री के सहाध्यायी थे।

अजमेर में थोड़ा सा विश्राम करके पुष्कर के कार्त्तिकी के मेले में धर्म्म-प्रचारार्थ चले गये।

पुष्कर विज्ञापन

पुष्कर में महाराज ने महाराजा जोधपुर के घाट पर नवनाथजी के दरीचे में निवास किया और दूसरे दिन मेले में एक विज्ञापन वितरण कराया कि जिस किसी को सनातन वेदोक्त धर्म्म के विषय में कुछ कहना सुनना हो वह आकर सभ्यता और प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप करें।

दर्शकों की भीड़

इस शुभ-समाचार के प्रचरित होते ही महाराज के स्थान पर दर्शकों और जिज्ञासुओं का ताँता लग गया और लोग अपने प्रश्नों के पूर्ण उत्तर पाकर और श्रीमहाराज के मुखारविन्द से वैदिक धर्म्म के अश्रुत-पूर्व रहस्य जान कर शान्ति लाभ करने लगे। श्री रावबहादुरसिंहजी मसूदाधिपति को, जो पीछे आकर महाराज के अनन्य भक्त बने, महाराज के प्रथम बार यहाँ ही दर्शन हुए थे।

वाममार्गी साधु

पुष्कर में कुछ वाममार्गी साधु रहते थे जिनके विषय में प्रसिद्ध था कि उन्हें मन्त्र सिद्ध हैं और मन्त्र-शक्ति द्वारा वह अलौकिक कार्य कर सकते हैं, यहाँ तक कि मनुष्य का प्राण-हरण भी कर सकते हैं। अजमेर के पास के एक ग्राम के कुछ नवयुवक अजमेर के गवर्नमेंट कालेज में

तुम्हारे गुरु को ही मन्त्रसिद्धि दिखावेंगे

पढ़ते थे। एक बार उन्होंने इन साधुओं के पास जाकर कहा कि तुम्हारी मन्त्रसिद्धि सब मिथ्या है। साधुओं ने कहा कि हम मन्त्र-शक्ति दिखा सकते हैं। छात्रगण ने कहा कि दिखलाओ तो साधुओं ने पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है। उन्होंने कहा स्वामी दयानन्द सरस्वती। इस पर साधु बोले कि हम उसी को दिखायंगे। जब वह आवे उसे हमसे मिलाना।

साधुओं को हमारे पास ले आओ

उनमें से कुछ छात्र, एक ठाकुर, एक साधु और मुन्शी समर्थदान ने एक दिन महाराज से निवेदन किया कि यहाँ कुछ साधु रहते हैं, जो कहते हैं कि हम मन्त्रशक्ति से मनुष्य को मार सकते हैं, यदि आज्ञा हो तो उन्हें परीक्षार्थ आप के पास लावें। महाराज ने कहा कि लेआओ हम तो आप लोगों को निश्चय कराने के लिये ऐसी बातों में उत्साह-पूर्वक तत्पर रहा करते हैं। फिर लोगों ने पूछा कि आप उन साधुओं की किस प्रकार परीक्षा लेंगे तो महाराज ने कहा कि हम एक मक्खी को एक शीशे में, जिसमें वायु के आने जाने का मार्ग हो, बन्द करके उनसे कहेंगे कि मक्खो को मारो और जो वह मन्त्र को मनुष्य पर ही चलाना चाहेंगे तो हम कहेंगे कि मुझ पर मन्त्र चलाओ। इसके पश्चात् वह लोग साधुओं के पास गये और कहा कि तुम कहा करते थे कि हम अपनी मन्त्रशक्ति स्वामी दया-नन्द सरस्वती को दिखायेंगे, सो अब स्वामीजी यहाँ आए हुए हैं उन्हें अपनी मन्त्रशक्ति दिखलाओ। साधु लोग यह सुन कर आग बगूला होगये और कहा कि जाओ, जाओ यहाँ मन्त्र कहाँ रक्खे हैं, मन्त्र क्या ऐसे दिखाये जाते हैं? उन लोगों ने महाराज से सब वृत्तान्त कहा तो उन्होंने कहा कि साधुओं ने आप लोगों को बहकाने के लिए यह प्रपञ्च रच रक्खा है, परन्तु हमारा आना होगया और उनकी क़लई खुल गई अन्यथा आप लोग धोखा खा जाते। हम तो ऐसे बहुत लोगों से मिल चुके हैं, जहाँ जाते हैं ऐसे ही जाल बिछे हुए देखते हैं।

जाओ, जाओ यहाँ मन्त्र कहाँ रक्खे हैं

दिनचर्या

पुष्कर में महाराज बहुत सवेरे भ्रमण करने चले जाते थे। वापस आकर दुग्ध और ब्राह्मी का स्वरस पान करते थे और वेदभाष्य लिखाने बैठ जाते थे। ग्यारह बजे तक वेदभाष्य लिखाते थे और फिर स्नान और दण्ड मुगदर का व्यायाम करके भोजन पाते थे। रात्रि में चित्रक की छाल के साथ दुग्ध-पान करते थे।

बूँदी का राज-पंडित

एक दिन बूँदी के राज-पण्डित शास्त्र-चर्चा के लिये महाराज के पास आये और पद्मपुराण का एक श्लोक पढ़ कर मूर्त्ति-पूजा सिद्ध करने का यत्न किया। महाराज ने तत्क्षण एक श्लोक रच कर मूर्त्ति-पूजा का खंडन किया। बूँदी के पण्डित ने पूछा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है, तो कहा कि पहले आप बताइए कि तुम्हारा श्लोक किस ग्रन्थ का है। पण्डित ने कहा कि पद्मपुराण का। महाराज ने कहा कि हमारा श्लोक दयानन्द-पुराण का है। पण्डित ने पूछा वह पुराण कैसा है। महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पुराण का

पुराण

कर्त्ता तो अब जीवित नहीं है और दयानन्द पुराण का कर्त्ता तुम्हारे सम्मुख ही विद्यमान हैं। और हमारे श्लोक के अनुकूल वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण हैं, तुम्हारे श्लोक के अनुकूल वेदादि का कोई प्रमाण नहीं है। अतः पद्म-पुराण की अपेक्षा दयानन्द-पुराण ही अधिक प्रामाणिक है। यह सुन कर पण्डितजी अप्रतिभ होकर चुप होगये।

एक दिन एक और पण्डित ने पूछा कि गायत्री किसे कहते हैं।

एक और पण्डित

महाराज ने उत्तर दिया कि गायत्री वेद के एक छन्द का नाम है, जैसे अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् आदि छन्द हैं, वैसे ही गायत्री भी एक छन्द है और उसमें वेद के अनेक मन्त्र हैं। परन्तु जिस गायत्री का ब्राह्मण जप करते हैं वह एक ही है। पण्डित ने कहा कि गायत्री २४ प्रकार की है। जैसे राम-गायत्री, कृष्ण-गायत्री इत्यादि। राम-गायत्री इस प्रकार है—दशरथाय विद्महि सीतापतये धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्। महाराज ने हास्य भाव धारण करके कहा कि गायत्री २४००० प्रकार की है जैसे:—

शीतला वाहनाय विद्महि लम्बकर्णाय धीमहि तन्नो गर्दभः प्रचोदयात्।

इसी प्रकार जूता, छत्री आदि की गायत्री पढ़ कर सुनाई। पण्डित ने पूछा आपकी गायत्रियाँ कहाँ हैं। महाराज ने पण्डित से कहा तुम्हारी गायत्रियाँ कहाँ हैं। पण्डित ने कहा कि शास्त्रों में। महाराज ने कहा कि हमारी गायत्रियाँ भी शास्त्रों में हैं। पण्डितजी फिर कुछ न बोले।

ज्ञात होता है कि महाराज ने पण्डितजी को अल्पविद्य देख कर ही इस प्रकार की रङ्गभङ्गी की अवतारणा करके उन्हें परास्त करने की चेष्टा की थी।

फिर एक और पंडित

एक और पण्डित एक दिन महाराज के पास आये। महाराज ने उनसे पूछा कि आपने क्या २ ग्रन्थ पढ़े हैं? पण्डित ने कहा कि भागवत। फिर निम्न लिखित प्रश्नोत्तर हुये:—

स्वामीजी—पृथ्वी का आधार क्या है?

पण्डित—वासुकि।

स्वामीजी—वासुकि के पिता कौन थे?

पण्डित—कश्यप।

स्वामीजी—कश्यप के पिता कौन थे?

पण्डित—मरीचि।

स्वामीजी—मरीचि के पिता कौन थे?

पण्डित—ब्रह्मा।

स्वामीजी—इन तीनों के समय में पृथ्वी का आधार क्या था?

पण्डितजी इस प्रश्न का कोई उत्तर न देसके। तब महाराज ने कहा कि शेषा धारा भूः। प्रलय के पश्चात् परमेश्वर ही शेष रहता है अतः उसका नाम शेष है और परमेश्वर ही पृथ्वी का आधार है।

पुष्कर से महाराज अजमेर लौट आये और रामप्रसाद के बाग में ठहरे।

द्वाविंशति अध्याय

पुष्कर से लौट कर, महाराज १४ नवम्बर सन् १८७८ को अजमेर पहुँच गये। और उसी दिन से व्याख्यान देने आरम्भ कर दिये। पहला व्याख्यान ईश्वर के एकत्व पर, दूसरा उसी विषय पर तथा वेदों के ईश्वरोक्त होने पर, तीसरा वेदों में भिन्न २ विद्याओं के होने पर, चौथा इञ्जील और क़ुरान की समालोचना पर हुआ। इञ्जील पर जो आक्षेप हुए उन्हें सुन कर पादरी ग्रे ने कहा कि यदि यह प्रश्न हमारे पास लिख कर भेज दिये जावें तो हम उनका उत्तर देवें। इस पर महाराज ने कहा कि मैं इञ्जील के वाक्य २ भेज दूंगा और उन पर आप से प्रश्न करूँगा। पाँचवां व्याख्यान सती आदि की कुप्रथाओं और आर्य्यों के देशान्तर में जाने के विषय पर, छठा जन्ममरण पर, सातवाँ आर्य्यों की उन्नति और अवनति पर हुआ। अवनति के कारण यह बतलाये कि आर्य्यों के पास असंख्य धन हो गया था जिससे वह भोग-विलास में पड़ कर अन्याय करने लगे, अन्याय से ही राज्य में अवनति हुई और महाभारत का युद्ध हुआ जिससे सब कुछ नष्ट होगया।

२८ नवम्बर को पादरी ग्रे से शास्त्रार्थ हुआ उनके साथ पादरी डाक्टर हज्बैण्ड भी थे। पादरी साहब के पास महाराज ने इञ्जील के ६४ वाक्य लिख कर भेजे थे, जिन पर महाराज को प्रश्न करने थे।

शास्त्रार्थ की सूचना सर्वसाधारण को विज्ञापन द्वारा दी गई थी और नियत दिवस पर शास्त्रार्थ देखने के लिये लोग बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए थे। दर्शकों में हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, प्रतिष्ठित पुरुष, उच्च राजकर्म्मचारी सब ही धर्म्मावलम्बी और सब श्रेणियों के लोग थे।

नियत समय पर महाराज, पादरी ग्रे और डाक्टर हज्बैंड शास्त्रार्थ-स्थल में पहुँच गये। शास्त्रार्थ को लिखने के लिए दो हिन्दू और एक मुसलमान नियत हुए। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। महाराज ने प्रश्न किया कि इञ्जील उत्पत्ति की पुस्तक पर्व १ आयत २ में लिखा है कि पृथ्वी बेडौल थी। परमेश्वर सर्वज्ञ और सब विद्याओं में पूर्ण है, उसके रचे पदार्थ में बेडौलपन नहीं हो सकता। पादरी साहब ने उत्तर दिया कि बेडौल का यहाँ आशय उजाड़ से है। महाराज ने फिर कहा कि यह अर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि बेडौल से अगला शब्द सूनी है जिस के अर्थ उजाड़ के हैं। दो समानार्थक शब्दों का एक साथ प्रयोग नहीं हो सकता। पादरी साहब ने कहा कि ऐसा होता है, इबरानी भाषा का एक उदाहरण दिया और एक फ़ारसी के बूदोंबाश शब्द का। उक्त शब्दों के स्थान में वीरान और सुनसान शब्द रख कर पादरी साहब ने कहा कि देखिए उर्दू में अर्थ ठीक हो जाता है। महाराज ने फिर प्रश्न करना चाहा तो पादरी साहब ने रोक दिया कि वाक्य बहुतसे हैं एक वाक्य पर दो प्रश्न और दो ही उत्तर होने चाहिएँ। महाराज ने कहा कि कम से कम दस प्रश्न तो हों, परन्तु यह भी स्वीकार न हुआ। महाराज ने कहा कि अच्छा तीन प्रश्न तो कर लेने दीजिए, परन्तु पादरी साहब ने मान कर न दिया तो महाराज को उनकी हठ माननी पड़ी। दूसरा प्रश्न उत्पत्ति की पुस्तक पर्व आयत २ के ही ऊपर था कि पहली आयत में कहा गया है कि परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी को रचा और इस आयत में कहा है कि परमेश्वर का आत्मा जल पर डोलता था, जब जल उत्पन्न ही नहीं हुआ था तो उस पर परमेश्वर का आत्मा कैसे डोलने लगा और पूछा कि परमेश्वर आत्म-रूप है वा

शरीरधारी। यदि शरीरधारी है तो वह आकाश और पृथ्वी को बना नहीं सकता और न वह व्यापक रह सकता है और जब उसका आत्मा जल पर डोलता था तो उसका शरीर कहाँ था। पादरी साहब ने उत्तर दिया—पृथ्वी की सृष्टि के अन्तर्गत जल की सृष्टि भी आगई और परमेश्वर आत्मरूप है। महाराज ने कहा कि इञ्जील में लिखा है कि परमेश्वर ने आदम की बाड़ी को बनाया, वहाँ आया, फिर ऊपर चढ़ गया, वह सनाई पर्वत पर गया, उसने मूसा और इबराहीम की स्त्री सारह से बातें कीं, वह डे के भीतर गया, उसने याकूब से मल्ल-युद्ध किया इससे तो परमेश्वर शरीर-धारी प्रतीत होता है। पादरी साहब ने उत्तर दिया कि उपरोक्त आयत से इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है और यहूदी, ईसाई, मुसलमान सब परमेश्वर को आत्मरूप ही मानते हैं। फिर महाराज ने प्रश्न किया कि उसी पर्व की २६ वीं आयत में परमेश्वर का आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनाना लिखा है इससे स्पष्ट है कि परमेश्वर का स्वरूप भी आदम के स्वरूप जैसा ही होगा। पादरी साहब ने कहा यहाँ शरीर का कुछ कथन नहीं है। परमेश्वर ने आदम को पवित्र, ज्ञानवान, और आनन्दित रचा, जब आदम ने पाप किया वह पतित होगया और विश्वासी लोग बदल कर फिर ईश्वर के स्वरूप में अर्थात् पवित्रता, ज्ञान और आनन्द में बन जाते हैं। महाराज ने फिर प्रश्न किया कि परमेश्वर के सदृश आदम के बनने से परमेश्वर का देहधारी होना सिद्ध होता है। यदि आदम पवित्र था तो उसने परमेश्वर की आज्ञा क्यों भङ्ग की। वह ज्ञान-वान् भी नहीं था क्योंकि उसे ज्ञान तब हुआ जब उसने ज्ञान के पेड़ का फल खाया। यदि आदम आनन्दित होता तो उसे दुःख क्यों होता, विश्वासी भी वैसे ही पतित हो सकते हैं जैसे आदम हुआ। पादरी साहब ने कहा कि आदम पहले पवित्र था, आज्ञा भङ्ग करने से पापी हुआ। यह बात नहीं है कि उसे ज्ञान पीछे से हुआ बल्कि यह है कि फल खाने के पश्चात् पाप करने के कारण उसे लज्जा आने लगी। आदम परमेश्वर के समान बनाया गया था न कि तुल्य, परमेश्वर का रूप शरीर जैसा नहीं है। फिर महाराज ने उत्पत्ति पर्व २ आयत ३ को प्रस्तुत करके कहा कि इसमें लिखा है कि परमेश्वर ने ६ दिन में जगत् को रच कर सातवें दिन विश्राम किया। परमेश्वर जब सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सच्चिदानन्द स्वरूप है तो उसे जगत् के रचने में परिश्रम ही क्या हो सकता है और उसे विश्राम करने की क्या आवश्यकता है।

पादरी साहब ने इसका कोई उत्तर न दिया और कहा कि समय होगया है, हम अधिक नहीं ठहर सकते। बोलते समय लिखा जाता है इसमें बहुत देर लगती है, यदि ऐसा न किया जाय तो आगे हम शास्त्रार्थ कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। यदि स्वामीजी को प्रश्नोत्तर लिखित ही अभिलषित हैं तो वह हमारे पास प्रश्न लिख कर भेज दें हम उत्तर लिख कर भेज देंगे। यह बात महाराज के मनोनीत न हुई क्योंकि उसमें समय बहुत लगता और बहुत से लोग उन्हें सुन भी नहीं सकते, लिखे जाने में यह लाभ है कि कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने अमुक बात नहीं कही और न कोई यथार्थ बात को छिपा सकता है।

पादरी साहब ने कहा कि प्रस्तुत रीति में लोगों के सुनने का लाभ दिखाया है सो उपस्थित मनुष्यों में से थोड़े ही हमारी बात समझे होंगे। इस पर मुसलमान लेखक तथा अन्य मुसलमान कह उठे कि हम कुछ नहीं समझे। पादरी साहब झट बोल उठे कि जब

लिखने वाला ही नहीं समझा तो और कौन समझ सकता है। इस पर महाराज ने दूसरे दोनों लेखकों से पूछा तो उन्होंने कहा कि हम सब कुछ समझ गये। महाराज ने कहा कि दो तो समझ गये, एक ने नहीं समझा तो क्या!

फिर महाराज ने कहा कि शास्त्रार्थ के तीन परत लिखे गये हैं, आप इन पर हस्ताक्षर कर दीजिये, परन्तु उन्होंने न किये और एक परत अपने साथ लेकर चले गये, शेष दो परतों पर महाराज ने अपने और सरदार बहादुर अमीचन्द जज और पण्डित भागराम इञ्जीनियर के हस्ताक्षर कराकर उन्हें अपने पास रख लिया।

२९ नवम्बर को पादरी साहब ने महाराज को लिखा कि यदि प्रश्नोत्तर न लिखे जायं तो हम आज शास्त्रार्थ के लिये प्रस्तुत हैं, परन्तु महाराज ने इसे स्वीकार न किया और शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

यह शास्त्रार्थ 'थियासोफ़िस्ट' के जनवरी सन् १८८० के अङ्क (भाग १ अङ्क २) के पृष्ठ ९८-१०० पर छपा था।

इस शास्त्रार्थ के विषय में कर्नल आल्काट सम्पादक 'थियासोफ़िस्ट' ने अपनी सम्मति देते हुए लिखा था, जिसका भाव यह था कि पादरी लोग भारतवर्ष में सर्वसाधारण की सभाओं में भारतीय विद्वानों से शास्त्रार्थ करने से बचा करते हैं और अपना प्रचार नीच और अशिक्षित लोगों में ही करते हैं। स्कूलों और कालेजों में यदि कोई बुद्धिमान् विद्यार्थी कोई प्रश्न करता है तो कह दिया करते हैं कि हमारे घर पर आना हम निज में समझा देंगे। योरुप और अमेरिका के धनी लोग इन्हें धन देकर वृथा नष्ट करते हैं।

पादरी ग्रे ने भी उक्त मासिक पत्र में लिखा था कि यदि स्वामीजी अपने आक्षेपों के उत्तर उक्त मासिक द्वारा सुनना चाहें तो मैं उत्तर देने को प्रस्तुत हूँ। इसका उत्तर महाराज ने दे दिया कि जब पादरी साहब ने अजमेर में दूसरे दिन शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया तो अब मैं उनसे शास्त्रार्थ करना नहीं चाहता, हाँ यदि कोई विशप साहब 'थियासोफ़िस्ट' के द्वारा शास्त्रार्थ करना चाहें तो हम उद्यत हैं।

रा० ब० श्यामसुन्दरलाल ने, जो राज्य किशनगढ़ के दीवान पद पर प्रतिष्ठित हुए, देवेन्द्र बाबू से कहा था कि उस शास्त्रार्थ में ग्रे साहब सुनिश्चित रूप से परास्त हुए थे।

डा० पादरी हज़बैंगड ने, जो इस शास्त्रार्थ में पादरी ग्रे के साथ थे, इंडियन मिरर कलकत्ता के 'सण्डे एडीशन' ३१ अगस्त सन् १८७९ के अङ्क में लिखा था:—

"प्रत्येक सायङ्काल को लोगों के बृहत्समूह पण्डितजी की वेद-व्याख्या सुनने के लिये एकत्रित होते थे। और यद्यपि हिन्दू स्तंभित हुए और मुसलमान शीघ्र ही क्रूर भाव सम्पन्न हो गये तथापि सबने यह अनुभव किया कि वह एक ऐसे मनुष्य के सम्मुख हैं, जिसकी मानसिक शक्तियाँ दुर्लभ हैं, जिसकी बुद्धि परिष्कृत, तर्क-शक्ति सूक्ष्म और प्रभावोत्पादक शक्ति प्रबल है। उनके व्याख्यानों ने बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया और देशी लोग धार्मिक विषयों में ऐसे उत्तेजित हुए जैसा मैंने अपने अजमेर से सम्बन्ध रखने के समय पहले कभी नहीं देखा था।......................

मुहम्मद मुरादअली सम्पादक 'राजपूताना गज़ट' पाँच वार महाराज से मिले थे। उन्होंने निम्नलिखित प्रश्न उनसे किये थे:—

प्रश्न नं० १—आत्मा क्या वस्तु है ?

प्रश्न नं० २—बहुत से धर्म्म यह मानते हैं कि शुभ कर्म्म करने से शरीर के नष्ट होने के पश्चात् मनुष्य की मोक्ष हो जाती है, मोक्ष किस वस्तु का नाम है ?

प्रश्न नं० ३—बार २ जन्म लेने का क्या कारण है ? यदि यह बात मानी जावे कि मनुष्य को पाप करने के कारण बार २ जन्म लेना पड़ता है तो मेरे विचार में मनुष्य का स्वाभाविक गुण ही यही है कि जब तक ज्ञान प्राप्त न हो अवश्य पाप करता रहे। ऐसी दशा में पाया जाता है कि स्वयं परमेश्वर ही की इच्छा से मनुष्य बार २ जन्म लेने के लिये बाध्य ठहरता है। यदि परमेश्वर की इच्छा न हो तो मनुष्य माँ के पेट ही से ऐसा उत्पन्न हो और पवित्रता प्राप्त करके आये ताकि पाप का कर्त्ता भी न हो।

प्रश्न नं० ४—बुराई चाहे शैतान से चाहे स्वयं परमेश्वर से उत्पन्न हुई है तो ज्ञात हुआ कि परमेश्वर के अतिरिक्त भी कोई वस्तु बुराई वा भलाई की ऐसी ही है जो स्वयं ही उत्पन्न होने की शक्ति रखती है और परमेश्वर के बस की नहीं है और जो परमेश्वर ही ने इस बुराई को उत्पन्न किया है तो बुराई का आरम्भ करने वाला भी परमेश्वर है और यतः उसकी बनाई हुई कोई वस्तु उत्तमता से शून्य नहीं है और न निरर्थक तो इसका अवश्य भावी परिणाम यह होगा कि स्वयं परमेश्वर ने मनुष्य के लिये बुराई उत्पन्न की तो फिर बुराई का दण्ड क्यों है ?

मौलवी साहब कहते हैं कि स्वामीजी ने मेरे प्रश्नों का कई प्रकार से उत्तर दिया। प्रश्न नं० १ व ४ के उत्तर इतने युक्ति-संगत थे कि मेरा सन्तोष हो गया और प्रश्न नं० २ व ३ के उत्तर देने का फिर वचन दिया।

उसी दिन सायङ्काल को महाराज का व्याख्यान था। व्याख्यान में वह दो २ चार वाक्यों के पश्चात् गिलास में से पानी के घूँट लेते थे। पीछे प्रशंसित मौलवी साहब ने इसका कारण पूछा तो महाराज ने कहा—इसमें एक रहस्य है। कहते २ मन में आवेश आ जाता है, वह पानी के घूँट लेने से दब जाता है।

मौलवी साहब गो-रक्षा के समर्थक थे। इसे ज्ञात करके महाराज उनसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपना एक फ़ोटो दिया।

रा० ब० श्यामसुन्दरलाल आदि ने उन्हीं दिनों अजमेर में एक सभा प्रार्थना-समाज के नाम से स्थापित की थी जिसके अधिवेशन रविवार को हुआ करते थे। महाराज ने कहा कि प्रार्थना-समाज नाम ही अशुद्ध है, क्योंकि समाज के अर्थ सभा के हैं फिर प्रार्थना की सभा के क्या अर्थ हो सकते हैं। रा० ब० ने इसका यह उत्तर दिया कि प्रार्थना-समाज को षष्ठीतत्पुरुष समास न लेकर चतुर्थीतत्पुरुष समास लेने से अर्थ ठीक हो सकते हैं। महाराज ने यह भी कहा था कि गीत वाद्य करके ईश्वर की ध्यान-धारणा वा स्तुति-प्रार्थना करना आर्य्य भाव नहीं है, योरुपीय भाव का अनुकरण मात्र है। आर्य्य लोग ईश्वर की ध्यान-धारणा एकान्त में करते थे।

वेद में विज्ञान के सारे तत्व निहित हैं, इस विषय पर बातचीत होने पर रा० ब० ने यह आक्षेप किया था कि योरुपीय विज्ञान के सिद्धान्त स्थिर नहीं हैं। जो सिद्धान्त आज स्थिर किया जाता है वह दश वर्ष पीछे असत्य कहकर त्याग दिया जाता है। तब ऐसे

सिद्धान्तों को वेद में बतलाना उन्हें अभ्रान्त कहना है जिन्हें योरुप के वैज्ञानिक स्वयं अभ्रान्त नहीं मानते। यदि आज एक सिद्धान्त को आप वेद में बतलाते हैं तो उसे अभ्रान्त मानना पड़ेगा। फिर यदि कल को वह त्याज्य सिद्ध हो तो उसकी अभ्रान्तता और साथ में वेदों की अभ्रान्तता भी जाती रहेगी। इसके उत्तर में महाराज ने कहा कि जो वैज्ञानिक तत्व हमें मन्त्रों में दृष्टि पड़ते हैं, उन्हें हम अपने भाष्य में क्यों न लिखें।

इस पर हमें यह कहना है कि वैज्ञानिकों की सम्मति अन्तिम नहीं कही जा सकती, क्योंकि हम देखते हैं कि जहाँ ऐसे भी सिद्धान्त हैं जो पहले सत्य समझे जाते थे और फिर असत्य समझे जाने लगे, वहाँ हम यह भी पाते हैं कि असत्य कह कर त्यागे हुए सिद्धान्त पुनः सत्य माने जाने लगे।

रा० ब० और अन्य भी कई लोगों का विश्वास है कि स्वामीजी ने अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त मनुष्यों से विज्ञान की दो चार बातें सुन सुना कर उन्हें वेदों में से निकालने का यत्न किया है। परन्तु उनका यह विश्वास सर्वथा निराधार है। वेद में सब विद्याओं का बीज है, यह मन्तव्य केवल स्वामी दयानन्द का ही नहीं है। यह विश्वास सारे ही ऋषि-मुनियों का रहा है। स्वामीजी के परलोक-वास को आज इतने वर्ष हो गये, परन्तु वैज्ञानिक संसार ने किसी सिद्धान्त को भी जो स्वामीजी लिख गये हैं विज्ञान-विरुद्ध या त्याज्य सिद्ध नहीं किया है। स्वामीजी जो कुछ करते थे अपने आत्मा के अनुकूल करते थे। यदि उन्हें यही करना होता कि विज्ञान के तत्वों को बलात् वेद के मन्त्रों में से निकालें तो वह किसी वैज्ञानिक से पूछताछ करके ऐसे अनेक सूक्ष्म तत्वों का अपने वेदभाष्य में समावेश कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। केवल दो चार बातें ही दिग्दर्शन के लिये लिखी हैं और कहीं २ ऐसी बातों का भी उल्लेख किया है जिनका उस समय तक वैज्ञानिकों को भी पता न था। ऐसी बातों के विषय में आक्षेप्ता लोग क्या कहेंगे। वह स्वामीजी के मस्तिष्क में कहाँ से आईं जब कि वह वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में भी नहीं आई थीं। ऐसी बातें वैज्ञानिकों को स्वामीजी के वेदभाष्य रचने से वर्षों पीछे ज्ञात हुईं।

इससे स्पष्ट है कि महाराज पर यह दोष लगाना कि उन्होंने अपने वेदभाष्य में विज्ञान की बातें इधर उधर से सुन सुना कर लिख दी हैं कितना निर्मूल है। यह बात कि वेद में वैज्ञानिक तत्व निहित हैं, वेद के कई स्थलों से ऐसी स्पष्ट हो जाती है कि उसके विषय में कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। डाक्टर लोगों का यह सिद्धान्त है कि यक्ष्मा के कीटाणु गौ के दूध से मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं और इस कारण योरुप में अत्यन्त सावधानी की जाती है कि किसी ऐसी गौ का दूध मनुष्यों के पीने के काम में न लाया जावे जिसके शरीर में यक्ष्मा के कीटाणु हों। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही ऐसी गौओं के लिये प्रार्थना की गई है जो अयक्ष्मा हों, जिन्हें यक्ष्मा का रोग न हो। अब क्या यह कहा जायगा कि यह सिद्धान्त भी योरुप के वैज्ञानिकों से ही उधार लिया गया है? योरुपीय विज्ञान का एक सिद्धान्त यह है कि वनस्पति सूर्य्य-शक्ति को सुरक्षित रखती है (Plants conserve solar energy) हमारे समालोचक क्या कहेंगे जब हम उन्हें यह बतावेंगे कि शतपथ ब्राह्मण में ओषधि शब्द की निरुक्ति यह की गई है कि ओषधि को ओषधि इसलिये कहते हैं कि वह ओष (गर्मी वा सूर्यशक्ति) को धारण करती है। क्या ऐसे २ स्पष्ट उदाहरणों के होते हुए

भी यह कहा जायगा कि वेदों में वैज्ञानिकतत्त्वों को दयानन्द ने बलात् ठूंसने का यत्न किया है?

एक बार रा० बहादुर श्यामसुन्दरलाल ने महाराज से कहा कि आप मूर्तिपूजा पर इतना तीव्र आक्रमण क्यों करते हैं, उसे थोड़ासा नम्र कर देने से भी तो कार्य्य चल सकता है? महाराज ने उत्तर दिया कि यह हम भी जानते हैं कि मूर्तिपूजा पर आक्रमण का वेग कुछ कम करने से अनेक लोग हमारे पक्ष में आ सकते हैं और हमारे प्रति निन्दा और अत्याचार भी कुछ कम हो जावेगा, किन्तु इससे हमारे व्रत का उद्देश्य शीघ्र ही शिथिल हो जावेगा और हमारे कार्य्य की स्वतन्त्रता शीघ्र ही विलुप्त हो जावेगी। मूर्त्तिपूजा पर मृदु आक्रमण करने वा उससे किसी प्रकार की सन्धि करने से हमारे सिद्धान्तों की भी वही दशा होगी जो अन्य सिद्धान्तों की हुई है और समयान्तर में आर्य्यसमाज पौराणिक होकर हिन्दुओं में मिल जायगा।

महाराज ने अपने एक व्याख्यान में विभिन्न धर्म्म-ग्रन्थों की भ्रान्ति दिखाई थी। प्रकरण पर कथन करते हुए उन्होंने कहा था कि बाइबिल के अनुसार सूर्य्य की सृष्टि चौथे दिन हुई फिर तीन दिन किस प्रकार हुए, क्योंकि सूर्य्य के बिना दिन का ज्ञान वा नाम कुछ भी नहीं हो सकता। इसे सुनकर एक मुसलमान मिर्ज़ा साहब बोले कि हमारा कुरान तो स्वर्ग से उतरा है, देखिए वह कैसा शुद्ध है। क्या आप क़ुरान में भी कोई भ्रान्ति दिखा सकते हैं? महाराज ने कहा कि आपके क़ुरान में लिखा है कि जो पुरुष पाँच बार नमाज़ पढ़ता है वह स्वर्ग में जायगा और उसे ७० हूरें भोग के लिये मिलेंगी। जो स्त्री ५ बार नमाज़ पढ़ती हो वह भी स्वर्ग में जायगी, तो क्या उसे भी ७० पुरुष मिलेंगे? जिस पुस्तक में ऐसी ऐसी बातें हों वह ईश्वरकृत नहीं हो सकती। यह सुनकर मिर्ज़ा साहब चुप हो गये। इसी समय महाराज का नौगज़े वाले पीरजी से भी शास्त्रालाप हुआ था।

महाराज के आगमन से अजमेर में घोर आन्दोलन उपस्थित हो गया था। व्याख्यानों में सहस्रों मनुष्य आते थे। अजमेर के कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, योरोपियन पादरी, प्रतिष्ठित मुसलमान प्रभृति भी आते थे। गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल ने छात्रों को व्याख्यान सुनने जाने के लिये अनुमति दे दी थी। कुएं की पनिहारियों तक में यही चर्चा रहती थी कि एक ऐसा पण्डित आया है जो सब मतों का खण्डन करता है। मुसलमान स्त्रियाँ कहती थीं कि ऐ ख़ुदा मुसलमानों को बचा।

मसूदाधिपति राव बहादुरसिंह महाराज के बड़े अनुरक्त भक्त थे। उनके अनुरोध पर महाज मसूदा को चले गये।

मसूदा

माघ शु० ८ सं० १९३५ अर्थात् २ दिसम्बर सन् १८७८ को अपने भक्त राव बहादुरसिंह से निमंत्रित होकर महाराज मसूदा पधारे और रामबाग़ में उतरे।

डेरे पर तो नित्यप्रति महाराज आगन्तुकों को उपदेश देते ही थे, व्याख्यान द्वारा भी सर्व साधारण की धर्म्म पिपासा मिटाने की उन्होंने कृपा की। एक दिन महाराज दुर्ग के भीतर भी गये थे। रावबहादुरसिंह के प्रेम की यह दशा थी कि वह लगभग सारे दिन ही महाराज की सेवा में उपस्थित रहते थे और धर्मालाप करते रहते थे।

एक दिन रामबाग़ के हनुमान के मन्दिर में रियासत की अश्वशाला का अध्यक्ष

शिवराम आया। उसने हनुमान की मूर्त्ति के आगे दण्डवत् की और हनुमान की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़े। उसने महाराज को प्रणाम न किया। महाराज ने उससे कहा कि तूने हनुमान के आगे हाथ जोड़े, दण्डवत की और श्लोक भी पढ़े, परन्तु वह तुझ से बोला तक नहीं। देख हम तुझे ब्राह्मण समझ कर विना बुलाये ही तुझ से बोलते हैं और हनुमान तेरे बुलाने पर भी नहीं बोलता। वह बोला कि हनुमानजी का बोलना हम समझते हैं और लोग नहीं समझते। महाराज ने कहा कि तेरे हनुमान हमसे डरते हैं जो तुझसे गुप्त बोलते हैं। इसके पश्चात् उसने कुछ न कहा।

१० दिसम्बर सन् १८७८ को महाराज बग्घी पर सवार होकर नसीराबाद छावनी चले गये। विदा करते समय रावसाहब ने २००) महाराज की भेंट किये।

नसीराबाद छावनी

नार्मल स्कूल छावनी नसीराबाद के अध्यापक पं० सुखदेवप्रसाद ने जब सुना कि श्री महाराज मसूदा में विराजमान हैं, तो उन्होंने महाराज की सेवा में पत्रद्वारा नसीराबाद पधारने की प्रार्थना की। महाराज ने उसे स्वीकार किया। १० दिसम्बर सन् १८७८ को महाराज राव सा० मसूदा की बग्घी में नसीराबाद पधारे। दो सवार उनकी अरदली में थे। पंडित सुखदेवप्रसाद ने उन्हें बस्ती से एक मील दूर पर भूताखेड़ी के बाग़ीचे में ठहरा दिया और उनके विश्रामादि का प्रबन्ध करके स्वयं उनके व्याख्यान के प्रबन्ध में लग गये।

प्रबन्ध में विघ्न

दूसरे दिन उन्होंने व्याख्यान के स्थानादि का निश्चय करके एक विज्ञापन लिखा और उसकी कई प्रतिलिपि तैयार कराकर नगर में चिपका दीं और विशेष विशेष व्यक्तियों को भी देदीं। व्याख्यान के लिये शोभाराम का मन्दिर निश्चित किया था। पंडित सुखदेवप्रसाद ने अपने स्कूल के दो अध्यापकों से व्याख्यान के प्रबन्ध में सहायक होने की अभ्यर्थना की तो उन्होंने सहायता करनी स्वीकार करली। व्याख्यान का समय ७ बजे सायङ्काल घोषित किया गया था। पंडित सुखदेवप्रसाद ५ बजे के पश्चात् महाराज को लिवालाने को बग्घी लेकर उनके डेरे पर गये। उन पंडितजी के दोनों सहायकों ने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि आपके लौटने तक हम प्रकाश और फ़र्श का सब प्रबन्ध कर रक्खेंगे। परन्तु जब वह महाराज को यथा समय लिवाकर लाये तो देखा कि न वह दोनों अध्यापक ही व्याख्यान स्थल में हैं, न प्रकाशादि का ही कुछ प्रबन्ध है। मन्दिर के एक पुजारी के कहने से उन्हें पता लगा कि उनके सहायकों ने धूर्त्तता की और कुछ भी प्रबन्ध न किया। महाराज ने कुछ विरक्त होकर उनसे कहा कि तुमने कैसा कच्चा प्रबन्ध किया है, तब उन्होंने सारा वृत्तान्त महाराज को सुनाया और महाराज को बाज़ार में लिवा ले गये और कुछ मित्रों की सहायता से दस मिनट की दौड़ धूप के पश्चात् वह व्याख्यान के लिये एक स्थान प्राप्त करने में सफल हो गये।

जैनियों से प्रश्नोत्तर और तीन व्याख्यान

व्याख्यान होने ही वाला था कि दो जैनियों ने महाराज से कुछ प्रश्न करने आरम्भ कर दिये, परन्तु १५-२० मिनट में ही अपने प्रश्नों के उत्तर पाकर शान्त होगये। उसके पश्चात् व्याख्यान हुआ। उस दिन श्रोताओं की संख्या ६०, ७० ही थी। व्याख्यान का विषय कर्त्ताकर्त्तव्य था। दूसरे और तीसरे दिन भी व्याख्यान उसी विषय पर हुआ। दूसरे

व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या १५० और तीसरे में २०० होगई। व्याख्यानों की सबने प्रशंसा की। यद्यपि व्याख्यान तीन ही हुए परन्तु उनसे ही नगर में जागृति होगई।

पण्डित सुखदेवप्रसाद पहले मिशन स्कूल में नौकर थे। ईसाइयों के संसर्ग से उनके विचार ईसाई धर्म की ओर झुक गये थे और वे ईसाई होने को उद्यत होगये थे कि सौभाग्य से उन्हें अजमेर में महाराज के व्याख्यानों के सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। तब उनके विचारों में एकदम परिवर्त्तन होगया और वह ईसाई न हुए। पादरियों ने चिढ़ कर उन्हें स्कूल से अलग करदिया। उसके पश्चात् वह कम वेतन पर नार्मल स्कूल में अध्यापक होगए, वह आर्य्यसमाजी होगये और वैदिक धर्म का उपदेश और ईसाई और मुसलमान मतों का खण्डन करने लगे।

नसीराबाद से महाराज जयपुर को सवार होगये।

जयपुर

जयपुर में महाराज १४ दिसम्बर सन् १८७८ को पहुँचे और सदासुख ढढ्ढे के बाग़ में साँगानेर दरवाज़े के बाहर उतरे। ठाकुर रघुनाथसिंह, कनिष्ठ पुत्र ठाकुर रणजीतसिंह ने उनसे अपने बाग़ में चलने के लिये प्रार्थना की परन्तु उन्हों ने कहा कि यही स्थान अच्छा है।

प्रश्नोत्तर और व्याख्यान

कुछ दिन तक तो पण्डित लोग तथा अन्य जिज्ञासु महाराज के डेरे पर आकर प्रश्नोत्तर करते रहे, फिर ठाकुर लछमणसिंहजी की प्रार्थना पर उन्हों ने तीन व्याख्यान उनकी हवेली पर दिये। महाराज के पास राज्य के दीवान और अन्य उच्च कर्मचारी तथा सरदार जागीरदार आकर धर्मोपदेश सुनते रहे।

विद्वेषियों की धूर्त्तता

एक दिन ब्राह्मणों ने कुछ लड़कों को बहका कर और उन्हें कुछ प्रश्न लिखा कर महाराज के पास भेजा। महाराज उनकी इस धूर्त्तता को जान गये और उन लड़कों से कह दिया कि यदि यह प्रश्न तुम्हारे बनाये हुए हैं तो हमारे शिष्यों से करो और यदि तुम्हें उन से उत्तर न मिले तो हमारे पास आना और यदि यह प्रश्न तुम्हारे गुरुओं के हैं तो उन्हें हमारे पास लेआओ हम उत्तर देंगे।

उपदेश पहले से भिन्न क्यों है

कुछ लोगों ने महाराज से प्रश्न किया कि इस समय आपका उपदेश पहले से भिन्न क्यों है, तो महाराज ने अति सरलचित्तता से कहा कि उस समय हम अज्ञ थे।

बन्दी होने की किंवदन्ती

मेरठ के एक गुजराती ब्राह्मण ने रुड़की जाकर यह किंवदन्ती फैलादी कि महाराजा जयपुर ने स्वामीजी को बन्दीगृह में डाल दिया है। उसने कहा कि मेरठ में दो चार दिन हुए एक ब्राह्मण जयपुर से आया था, वह कहता था कि यह दुर्घटना मेरी आँखों देखी है और कारण वह बतलाता था कि महाराजा के भाई का अभी थोड़े दिन हुए देहान्त होगया था और स्वामीजी श्राद्धादि का खण्डन करते थे, इस से महाराजा बहुत दुःखित हुए।

भक्तों की चिन्ता

यह सुनकर महाराज के भक्तों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने तुरन्त एक तार अजमेर को दिया। ५, ६ घन्टे तक कोई उत्तर न आया इससे चिन्ता और बढ़ी, फिर दूसरा जवाबी तार दिया, उसका उत्तर आया कि

महाराज जयपुर गए हैं। चिन्ता द्विगुणित होगई। १९ दिसम्बर को स्वयं महाराज को तार दिया। उसका उत्तर आया कि हम सकुशल हैं, तब कहीं जाकर भक्तजन के जी में जी आया।

श्रीप्रसाद जयपुर में एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे; श्रीप्रसाद ने स्वामीजी की बहुत सेवा शुश्रूषा की। वह महाराज के मन्त्री ठाकुर फ़तहसिंहजी के मित्र थे। उन्होंने मन्त्री महोदय से कहा कि स्वामीजी से महाराजा का वार्त्तालाप कराओ। उन्होंने महाराजा से निवेदन किया कि एक बड़े विद्वान् संन्यासी जयपुर आये हुए हैं यदि इच्छा हो तो उनसे साक्षात् कीजिये।

इससे पूर्व ही श्राद्ध, मूर्त्ति-पूजा-खण्डन और ब्राह्मण के बहकाने के कारण स्वामीजी रुष्ट होगये थे। महाराजा ने कहा कि क्या तुम्हारा आशय दयानन्द से है ? यदि मुझ में शक्ति है तो मैं उसे कुत्तों से फड़वा दूंगा। मन्त्री महोदय ने यह बातें श्रीप्रसाद से कहीं और उन्होंने स्वामीजी की सेवा में आकर प्रार्थना की कि महाराज ! ऐसी अवस्था में आप का जयपुर रहना उचित नहीं है, परन्तु महाराज ने निर्भीक भाव से कहा कि तुम राजा के नौकर हो तुम उसकी आज्ञा मानो हम उसके नौकर नहीं हैं। इसके पश्चात् वह ९ दिन जयपुर और ठहरे और यथापूर्व निर्भय होकर सत्सङ्गियों को सत्य धर्म्म का उपदेश करते रहे।

श्रीप्रसाद के शत्रुओं ने महाराजा से जाकर कहना आरम्भ किया कि श्रीप्रसाद दयानन्द के पास रात्रि को जाता है और उसी ने आपकी इच्छा के विरुद्ध दयानन्द को जयपुर से नहीं जाने दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि महाराजा ने किसी मिष से श्रीप्रसाद को कारागार में डलवा दिया।

२४ दिसम्बर को महाराज ने प्रस्थान किया और २५ दिसम्बर को रिवाड़ी जा विराजे।

रिवाड़ी

जब महाराज दिल्ली के दरबार में पधारे थे तो वहाँ रिवाड़ी के प्रमुख ज़मीदार राव युधिष्ठिरसिंहजी भी गये थे। राव महोदय बहुधा महाराज की सेवा में जाया करते थे और उनके उपदेशों को सुनकर आह्लादित होते थे। वह महाराज के प्रति इतने अनुरक्त होगये थे कि उन्होंने महाराज से रिवाड़ी पधार कर उन्हें सदुपदेश देने की विनयपुरस्सर प्रार्थना की। महाराज ने भी परम दयालुता से यह वचन दिया कि यदि हम वैदिक धर्म्म में आपकी निष्ठा देखेंगे तो रिवाड़ी आवेंगे। इसके पश्चात् रावसाहब महाराज से पत्र द्वारा रिवाड़ी पधारने के लिये अनुरोध करते रहे। महाराज ने वैदिकधर्म में उनकी श्रद्धा देख कर जयपुर से लौटते हुए रिवाड़ी पधारने की कृपा की।

रावसाहब का आतिथ्य

११ व्याख्यान

रावसाहब ने महाराज का अत्यन्त सम्मान, प्रेम और श्रद्धा से स्वागत किया और नगर से बाहर लाला की बारहदरी नामक अपने उद्यानगृह में ठहराया। महाराज ने रिवाड़ी में ११ व्याख्यान मूर्त्ति-पूजा व मृतक पितृश्राद्ध खण्डन, वैदिक मुक्ति, वेदों का और गायत्री का सब को अधिकार है, नियोग, पुनर्विवाह आदि विषयों पर दिये, जिनमें सैकड़ों मनुष्य उपस्थित होते थे। रावसाहब ने अपने बन्धुवर्गों और जाति के लोगों को दूर दूर से महाराज के उपदेशश्रवणार्थ बुलाया था। रावसाहब ने एक दिन महाराज को अपने गृह पर भी निमन्त्रित किया था और वह और उनके भ्राता सच्चे हृदय

रावसाहब की वैदिक-धर्म में निष्ठा

से वैदिक धर्म्म के अनुयायी बन गये थे यहाँ तक कि जब उनकी माता का देहान्त हुआ तो उन्हों ने उसका अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीत्यनुसार कराया और अपने अन्त्येष्टि संस्कार के विषय में भी मरते समय यह वसीयत की कि वैदिक-रीत्यनुसार किया जाय। उनका देहान्त सन् १८८९ में हुआ, परन्तु उनके उत्तराधिकारियों ने उनकी वसीयत के अनुकूल कार्य्य नहीं किया।

गायत्री के जाप से पाप होता है

एक व्यक्ति ने महाराज से गायत्री मन्त्र सीखा था और महाराज ने स्वयं उसका उच्चारण शुद्ध कराया था। ब्राह्मणों ने कहा कि यह ब्रह्मगायत्री नहीं है और ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरे को गायत्री मन्त्र के जाप से पाप होता है। उसने यह बात महाराज से कही तो आपने कहा कि जो हमारी दी हुई गायत्री को ब्रह्मगायत्री नहीं बताते उन्हें हमारे सामने लाओ और गायत्री जाप से यदि तुम्हें पाप होगा वह हमारा और जो पुण्य होगा वह तुम्हारा।

पाप हमारा और पुण्य तुम्हारा

वेदान्ती साधु निरुत्तर

एक दिन एक नवीन वेदान्ती साधु महाराज के पास आया और कहने लगा कि मैं ब्रह्म हूँ। महाराज पहले तो चुप रहे फिर उससे कहा कि परमेश्वर ने सूर्य्य, चन्द्र, पृथिव्यादि को बनाया है, यदि तू ब्रह्म है तो एक हाथ भर भूमि आकाश में अधर रच कर दिखादे तो हम तुझे ब्रह्म मान लेंगे। इसे सुनकर जो लोग महाराज के पास बैठे थे, हँस पड़े और साधु निरुत्तर होकर चला गया।

चार प्रकार के मनुष्य

महाराज ने एक व्याख्यान में कहा था कि जगत् में चार प्रकार के मनुष्य हैं। श्रोताओं में से एक मनुष्य पण्डित लेखराम से मिला था तो उसे चार में से दो प्रकार का ही स्मरण था। एक प्रकार के मनुष्य बकरी के समान हैं जो जल पीती है, परन्तु उसे गन्दा नहीं करती, दूसरे भैंस के समान हैं, जो उसी जल में मूतती है, जिसे पीती है और उसे गन्दा और गदला करती है।

अभी जाकर पढ़ो

एक पण्डित को जो मेरठ में महाराज से वार्त्तालाप कर चुका था, देखकर महाराज ने कहा कि तुम भी पण्डितों में पैर अड़ाने के लिये आये हो ताकि लोगों को यह ज्ञात होजाय कि तुम हमसे संस्कृत बोल आए हो, तुम अभी जाकर पढ़ो।

शास्त्रार्थ करने कोई न आया

रिवाड़ी के पण्डितों ने महाराज को पत्र लिखा कि आप हनुमान के मन्दिर में आकर शास्त्रार्थ करलें, महाराज ने उत्तर दिया कि हमारे निवास-स्थान पर ही आकर बातचीत करलो, परन्तु कोई न आया। किसी पौराणिक पण्डित को उनके सामने आकर शास्त्रार्थ करने का साहस न हुआ।

महाराज ने ९-१-१८७९ को रिवाड़ी से प्रस्थान किया और उसी दिन दिल्ली पहुँच गए।

दिल्ली

दिल्ली में महाराज काबुली दर्वाज़े सब्ज़ीमण्डी के पास बालमुकन्द किशोरचन्द के बाग़ में ठहरे। इस बार आपके दो या तीन ही व्याख्यान हुए और आप केवल ६ दिन ही दिल्ली ठहरे। दिल्ली से १५ जनवरी को मेरठ चले गए। मेरठ से महाराज संवत् १९३६ के कुम्भ पर प्रचार करने के उद्देश्य से हरिद्वार चले गए।

त्रयोविंशति अध्याय

माघ सं० १९३५, वैशाख सं० १९३६

हरिद्वार

सं० १९३६ वि० के कुम्भ पर प्रचार करने का महाराज ने पहले से ही प्रबन्ध कर लिया था। माघ बदी १५ संवत् १९३५ अर्थात् २२ जनवरी सन् १८७९ को ही उन्होंने कई सहस्र प्रति एक विज्ञापन की मेरठ में छपवा ली थीं और हरिद्वार में अपने ठहरने का स्थान पहले से ही निश्चित कर दिया था। सब प्रकार का प्रबन्ध करके महाराज ने हरिद्वार के लिये प्रयाण किया। पहले सहारनपुर पहुँचे और कन्हैयालाल के शिवालय में उतरे। वह सहारनपुर केवल दो ही दिन ठहरे और दो व्याख्यान देकर और जो लोग आये उनसे धर्मालाप करके रुड़की गये। वहां एक ही दिन रह कर फाल्गुन शुक्ला ६ अर्थात् २० फ़रवरी सन् १८७९ को ज्वालापुर पहुँचे और मूला मिस्तरी के उद्यान-गृह में आसन लगाया। महाराज का वहां पहुँचना था कि लोग दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिये आने लगे।

गोभक्षक से गोरक्षक

एक मुसलमान रईस राव एवज़ख़ाँ उनसे कई बार मिले और जो प्रश्न उनसे किये उनका युक्तिसङ्गत उत्तर पाकर बहुत संतुष्ट हुए। एक दिन राव एवज़ख़ाँ से महाराज की गोरक्षा पर बात-चीत हुई और उसकी उपयोगिता ऐसी अच्छी युक्तियों से प्रतिपादित की कि राव महोदय ने उसे निःसंकोच भाव से स्वीकार कर लिया और मांसाहार का परित्याग करके मुसलमानों में गोरक्षा के प्रचार की प्रतिज्ञा की। एवज़ख़ाँ ने एक दिन यह आपत्ति उठाई कि हिन्दुओं ने नित्यप्रति स्नान का नियम क्यों कर रक्खा है? इसका महाराज ने उत्तर दिया कि ऐसा करना स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकर है। एवज़ख़ाँ हकीम भी थे, वह महाराज की बात को मान गये। ज्वालापुर में महाराज की २७ फ़रवरी अर्थात् फाल्गुन शुक्ला ६ तक स्थिति रही। उसी दिन वह मूला मिस्तरी के खेत में जो हरिद्वार में श्रवणनाथ के बाग़ के और निर्मलों की छावनी के सामने बुचानाले के पार है, डेरे लगाकर और आगन्तुकों के

नित्य स्नान करना स्वास्थ्यप्रद है

विश्राम के लिये छप्परों का कैम्प डाल कर रहने लगे। वहीं पास ही साहब कलक्टर सहारनपुर का भी डेरा था। हरिद्वार में पहुँचते ही उन्होंने अपने आगमन की सूचना देने के लिये जो विज्ञापन वह मेरठ से छपा कर लाये थे मार्गों, मन्दिरों, घाटों और पुलों पर लगवा दिये। विज्ञापन में लिखा था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उपर्य्युक्त स्थान पर ठहरे हैं, जो महाशय उनके सम्भाषण से लाभ उठाना चाहें वह उक्त स्थान पर उपस्थित होकर सभ्यता से और प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप करें। इसके आगे विज्ञापन में निम्न लिखित उपदेश था।

विज्ञापन

सब मनुष्यों के लिये वेदोक्त उपदेश

ऐसा कौन मनुष्य होगा जो अपना, अपने बन्धुवर्गों का हित और परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना न चाहे। क्या कोई ऐसा भी मनुष्य है, जो परस्पर मित्रता, सदुपदेश, प्रीति, धर्मानुष्ठान, विद्या की वृद्धि, दुष्टकर्म्म और आलस्य के त्याग, श्रेष्ठ कामों के सेवन, परोपकार और पुरुषार्थ के बिना सबहित करसके और ईश्वर प्रतिपादित वेदों के अनुसार आचरण किये बिना सुख को प्राप्त हो सके। इसलिये आर्य्यों के इस महा समुदाय में वेदमन्त्रों के द्वारा सब सज्जन मनुष्यों के हित के लिये ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश संक्षेप से किया जाता है जिसको सब मनुष्य देख, सुन और विचार कर ग्रहण करें और इस मेले में तन, मन और धन से आने के सत्य सुखरूप फलों को प्राप्त हों और अपने मनुष्यदेहरूप वृक्ष के धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चार फलों को पाकर जन्म सफल करें और अपने सहचारी लोगों को भी उक्त फलों की प्राप्ति करावें। इस विषय में नीचे लिखे वेदमन्त्रों का प्रमाण देख लीजिए।

ओ३म्. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥
ऋ० मं० ५। अ० ६। सू० ८२। मं० ५॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥ ५॥
यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ ६॥
सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय॥ १०॥
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ २॥
ऋ० मं० १०। अ० ६। सू० ७१। मं० ५।६।१०।२॥

सहनाववतुसहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
तैत्तिरीयारण्यक प्र० ९। अनु० १॥

इसके पश्चात् उक्त मन्त्रों के अर्थ हैं, जिन्हें हम संक्षिप्त रूप में यहाँ देते हैं।

हे सर्वसुखदाता, जगत् के स्रष्टा और धारण करनेवाले परमेश्वर हमारे सब दुष्ट कर्मों और दुःखों को दूर कीजिये और शुभ कर्म्म और नित्य सुख को हमें प्राप्त कराइये।-१

जिस मनुष्य को विद्वान् लोग अज्ञानी कहते हैं वह साधन-रूप पुष्पों और अर्थ, काम, मोक्ष रूप फलों से रहित तथा सुशिक्षा, शब्द अर्थ और सम्बन्ध के बोध से रहित वाणी को सुन कर और छल कपट आदि दुष्कर्मों से युक्त होकर चलता है। उसे विद्वान् लोग दृढ़ विद्यायुक्त करके और श्रेष्ठ कर्म्मयुक्त करके बढ़ाते और मित्रता के लिये प्राप्त करते हैं।२

जो मनुष्य सब से प्रेम करके सुख देनेवाले मित्रों को छोड़ देता है उसका सुशिक्षित विद्या की वाणी में कोई भाग नहीं होता, जो कुछ वह सुनता है वह अर्थ प्रयोजन रहित सुनता है, वह धर्म के मार्ग को नहीं जानता।—३

जो मनुष्य विद्यादि की प्राप्ति करने-कराने के लिये पाप वा स्वार्थ करता है वह सुख नहीं पाता और जो अत्यन्त हितकारी, कीर्त्तिमान्, सभा का भार उठाने वाले और उसकी उन्नति करने वाले, सब से प्राप्त होने योग्य मित्रों से मित्रता करते हैं, वह सब सुखी होते हैं।-४

जैसे सत्तू को चलनी से छान कर साफ करते हैं, ऐसे ही धार्मिक विद्वान् विज्ञान से वाणी को सुशिक्षित और विद्या-युक्त करने वाले, सुहृद्भाव से युक्त होकर, मित्रों के कर्मों और भावों को जानने वाले जिस देश, समुदाय वा सभा में होते हैं, उनकी ही वाणी में कल्याण और सुख करने वाली विद्या, शोभा, चक्रवर्त्ती राज्य की श्री सदा स्थित रहती है।-५

इसलिये हमें चाहिए कि हम एक दूसरे की रक्षा करते, एक दूसरे के साथ आनन्द भोगते, एक दूसरे बल पराक्रम को बढ़ाते रहें, हम में विद्या का पठन-पाठन अत्यन्त प्रकाशयुक्त हो और हम लोग आपस में वैर-विरोध कभी न करें।—६

इसके आगे यह बतलाया था कि प्राचीन काल में आर्य्यावर्त्त की उन्नति का कारण वेदोक्त धर्म पर चलना था और इस समय की अवनति का कारण वेदोक्त धर्म का त्याग है। जिसका फल दुःख हो वह कभी धर्म और जिसका फल सुख हो वह कभी अधर्म नहीं हो सकता। अब भी यदि उन्नति हो सकती है तो उन्हीं कामों से हो सकती है जिन्हें आर्य्य-समाज के सभासद् करना कराना चाहते हैं, अर्थात् संस्कृत विद्या के जानने वाले, स्वदेशियों की बढ़ती के अभिलाषी, परोपकारक, निष्कपट होके सत्य विद्या देने की इच्छा युक्त, धार्मिक, विद्वानों की उपदेशक मण्डली बना और वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ाने के लिये पाठशाला स्थापित करना। आशा है कि इस बात को सुन कर सब भद्र लोग स्वीकार करके आर्य्योन्नति करने में तन, मन, धन से प्रवृत्त होंगे।

मेले में महाराज के आगमन की धूम मच गई

इस विज्ञापन के प्रचारित होते ही सारे मेले में महाराज के आगमन की धूम मच गई और शतशः सहस्रशः लोग महाराज के स्थान पर धर्मोपदेश सुनने, शङ्का-समाधान करने आने लगे। कोई प्रेम भाव से आते तो कोई द्वेष भाव से, कोई केवल दर्शन करने के लिये ही आते कि देखें दयानन्द जो मूर्त्ति-पूजादि परम्परागत बातों का खण्डन करता है, रङ्ग ढङ्ग में, डील डौल में, बोल चाल में कैसा है। कोई २ ऐसे भी

महानुभाव थे जो दयानन्द को नास्तिक कह कर उसका मुख देखना भी पाप समझते थे या कम से कम अपने को परम धार्मिक प्रसिद्ध करने के अभिप्राय से ऐसा प्रसिद्ध करते थे। पौराणिक पण्डितों को तो शास्त्रार्थ से बचने का यह सुलभ उपाय हाथ आगया था। ऐसे लोग न स्वयं आते और न दूसरों को आने का परामर्श देते। इसमें यह रहस्य भी था कि कहीं ऐसा न हो कि उनका कोई शिष्य दयानन्द का उपदेश सुनकर उनके जाल से निकल जावे।

व्याख्यानों में भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था

महाराज प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर प्रातःकाल के सात बजे सभामञ्च पर विराजमान हो जाते थे और साधु संन्यासी और गृहस्थ सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होकर विविध विषयों पर प्रश्न करके और उत्तर पाकर सन्तुष्ट होकर चले जाते थे। यह प्रश्नोत्तर ११ और कभी कभी १२ बजे तक होते रहते थे। उसके पश्चात् महाराज स्नान करते और भोजन पाते थे और थोड़ी देर विश्राम करके १ बजे फिर मञ्च पर आ विराजते और व्याख्यान देना आरम्भ करदेते थे। इस समय भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था, सभास्थल में तिल धरने की जगह न रहती थी। व्याख्यान इतने मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होते थे कि लोग अन्त तक डटे रहते और दत्तचित्त होकर सुनते रहते थे। व्याख्यान की समाप्ति पर यदि कोई कुछ शङ्का करता तो महाराज उसका समाधान करते थे। ५ बजे सभा विसर्जन होजाती थी। केवल दो घन्टे का अवकाश लेकर ७ बजे महाराज फिर उपदेश कार्य में लगजाते। इस समय बहुधा आर्य्यसामाजिक पुरुष ही एकत्र होते थे। कभी २ आपस में ही किसी विषय पर शास्त्रार्थ छिड़ जाता था। लोग पक्ष विपक्ष में बँट जाते थे और महाराज मध्यस्थ का आसन ग्रहण करलेते थे। ९ बजे तक शास्त्रार्थ और धर्मालाप होता रहता था, फिर सब लोग विश्राम के लिये अपने २ डेरों को चले जाते थे। रात्रि में महाराज बहुत थोड़ी देर के लिए सोया करते थे। शेष समय योगाभ्यास और भगवद्भजन में ही व्यय करते थे। मेले के अन्त तक उपदेश का यही क्रम रहा।

निरन्तर परिश्रम का फल

इस निरन्तर परिश्रम का यह परिणाम हुआ कि मेले की समाप्ति से पहले ही महाराज को दस्तों के रोगने आ दबाया, परन्तु उन्होंने उपदेश-कार्य्य में कोई विघ्न न पड़ने दिया। इस रोग ने महाराज को मार्च के तीसरे सप्ताह से ही कष्ट देना आरम्भ कर दिया था और प्रतिदिन १०-१२ दस्त आते थे जिससे महाराज का शरीर बहुत निर्बल होगया था।

कर्नल और मैडम का भारत में आगमन

अमेरिका से कर्नल आलकाट और मैडम ब्लैवस्की १५ फरवरी को ही बम्बई पहुँच गये थे और महाराज के दर्शनों के लिये उत्सुक थे। महाराज भी उनसे शीघ्र मिलना चाहते थे, परन्तु मेले की समाप्ति से पूर्व उपदेश-कार्य को न छोड़ सकते थे और रुग्ण होजाने के कारण बम्बई जाकर उनसे मिल भी न सकते थे। अतः वह स्वयं कर्नल और मैडम को भी हरिद्वार से लिखते रहते थे और सान्त्वना देते रहते थे और अन्य पुरुषों को भी लिखते रहते थे कि उन्हें विश्वास दिलादें कि शरीर की दशा अच्छी होने पर हम बम्बई जाकर उनसे अवश्य मिलेंगे।

इस बार कुम्भ पर पूर्व कुम्भों की अपेक्षा जन-संघट कम था। २७ मार्च के एक पत्र में महाराज ने दो लाख का अनुमान किया था, उसमें भी साधु, संन्यासी, वैरागी आदि अधिक थे गृहस्थ कम थे। महाराज ने हरिद्वार से ही देहरादून जाने का सङ्कल्प कर लिया था। उन्हें आशा थी कि वहाँ के जलवायु से उनके स्वास्थ्य को लाभ होगा। इसके अतिरिक्त वह पण्डित कृपाराम से देहरादून पधारने का वचन भी देचुके थे।

मेले में जन-संख्या कम थी

देहरादून जाने का संकल्प

अब हम कुछ विशेष घटनाओं का उल्लेख करते हैं जो हरिद्वार में हुईं। इन घटनाओं में पाठक पूर्वापर सम्बन्ध की आशा रक्खें क्योंकि उस समय उनका कोई लिखित विवरण नहीं रक्खा गया था। जो कुछ घटनाएं लोगों से सुनकर ज्ञात हुईं वही यहाँ अङ्कित की जाती हैं।

विशेष घटनाएं

एक दिन एक जन मुसलमान उमैदखाँ नामी ने मूला मिस्त्री के पुत्र दुर्गादत्त से कहा कि तुम बड़े बुतपरस्त हो। महाराज ने इस पर उस से कहा कि यह छोटा बुतपरस्त है, परन्तु तुम बड़े बुतपरस्त हो जो तूर के पहाड़, आदम के चरणवाले पहाड़ को पूजते, संगे अस्वद को चूमते, ताज़िये को मानते और क़ब्रों से मुरादें (मनोरथ) माँगते हो।

यह छोटा परन्तु तुम बड़े बुतपरस्त हो

एक दिन इसी उमैदखाँ और एक अन्य मुसलमान ने महाराज से प्रश्न किया कि हमने सुना है कि आप मुसलमानों को भी आर्य्य बना लेते हैं। उन्हों ने उत्तर दिया कि हम वास्तव में आर्य्य बना लेते हैं। आर्य्य के अर्थ श्रेष्ठ और सत्य मार्ग पर चलने वाले के हैं, अतः जब आप सत्य धर्म को ग्रहण करेंगे तो आर्य्य हो जायंगे। उमैदखाँ बोले कि फिर आप हमारे साथ मिलकर खायंगे वा नहीं तो महाराज ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ झूठा खाने का निषेध है, हम एक दूसरे के साथ एक जगह नहीं खा सकते। यवन प्रश्न कर्त्ताओं ने कहा कि साथ खाने से प्रेम बढ़ता है, महाराज ने कहा कि कुत्ते भी तो एक जगह मिलकर खाते हैं, परन्तु खाते २ ही आपस में लड़ने लगते हैं। इस पर वह चुप होगये।

आप मुसलमानों को भी आर्य बना लेते हैं

झूठा खाना निषिद्ध है

महाराज ने एक दिन यह कहानी सुनाई थी। एक जाट ने एक गुरु कर लिया। उसकी स्त्री ने कहा कि तुने बहुत बुरा किया, दो घड़ी अन्न का व्यर्थ व्यय बढ़ा लिया। जाट ने उत्तर दिया कि मुझे तू भी प्यारी है और लड़के भी प्यारे हैं और परिवार के लोग भी प्यारे हैं, इसलिये मैं उन में से तो किसी की सौगन्ध खा नहीं सकता। मैंने तो सौगन्ध खाने के लिये गुरु किया है, तू दो चार घड़ी अन्न की चिन्ता मत कर।

एक जाट की कहानी

सतुवा स्वामी की विद्वत्ता की बड़ी प्रसिद्धि थी। वह केवल सत्तू खाया करते थे इसी से उन्हें लोग सतुआ स्वामी कहा करते थे। महाराज ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए

सतुवा स्वामी शास्त्रार्थ से पराङ्मुख

आहूत किया तो उन्होंने कहा कि दयानन्द नास्तिक है मैं उसके दर्शन करना नहीं चाहता। महाराज ने इसके उत्तर में कहला भेजा कि यदि वह मेरे दर्शन नहीं करना चाहते तो बीच में पर्दा डाल कर शास्त्रार्थ करलें, परन्तु वह राज़ी न हुए। एक बार पहले भी जब महाराज सन् १८७८ में रुड़की में थे लोगों ने इन्हीं सतुवा स्वामी को महाराज से शास्त्रार्थ करने को कहा था तब भी उन्होंने ऐसा ही कहा था और महाराज ने यही प्रस्ताव किया था तब भी वह शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए थे।

तुम लक्कड़-पन्थी हो

एक दिन कुछ निर्मले साधु झंडा लिये हुए और उसको चँवर करते हुए आये। महाराज ने उन से कहा कि तुम लोग लकड़-पन्थी हो। यदि तुम में कोई वृद्ध पुरुष हो तो उसकी सेवा करो, इस प्रकार अविद्या के जाल में मत फँसो।

अंग्रेज़ भारत में पहले आते तो क्या देखते?

एक दिन कुछ अंग्रेज़ भी महाराज के पास आये। महाराज ने उनसे कहा कि आप लोग भारत की अवनति और फूट के समय में यहाँ आये हैं, यदि उसकी उन्नति के समय में यहाँ आते तो देखते कि यहाँ कैसे २ शूरवीर और योद्धा विद्यमान थे और आप उनकी विद्या और बल की प्रशंसा करते।

शरीर पर मिट्टी क्यों लगाते हो

किसी ने महाराज से प्रश्न किया कि आप शरीर पर मुलतानी मिट्टी क्यों लगाते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि जो मक्खी हमें काटे उस के मुँह में मिट्टी जाय।

बूढ़े ब्राह्मण का क्रोध

एक दिन महाराज का व्याख्यान सुनते २ ज्वालापुर निवासी एक बूढ़े ब्राह्मण को इतना क्रोध आया कि वह खड़ा होगया और कहने लगा, स्वामी! जीमें आता है कि तेरा गला काट डालूँ और फिर अपना भी काट लूँ, तूने हमें बहुत हानि पहुँचाई है, हमारी जीविका मारदी है। महाराज ने कहा कि कोई है जो इसे हटादे। इस पर पहरेदार ने उसे हटा दिया और लोग भी उसकी ओर दौड़े परन्तु महाराज ने कहा कि इतने प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं है, वह मुझ से बलवान् नहीं है, जो मुझे उस से कुछ भय हो। केवल इतनी बात है कि वह व्याख्यान में विघ्न न डाले।

दो दण्डधारी साधु

एक दिन दो साधु दण्डधारी आये। उन में से एक से महाराज परिचित थे। उससे महाराज ने कहा कि अरे आत्मानन्द तूने यह दण्ड पाखण्ड अभी तक नहीं छोड़ा। मैं तो इसे बहुत दिन तक लिये फिरा किया, परन्तु कुछ लाभ न हुआ।

निर्मले साधु की बकवाद

एक दिन कुछ निर्मले साधु एक प्रसिद्ध उदासी साधु को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिये लाये। वह बहुत देर तक बकता झकता रहा। अन्त में उसने कहा मेरा तो परमेश्वर में अनुभव ही फट गया है, मुझे तो कोई बात माननी ही नहीं। इस प्रकार बकवाद करके वह चला गया।

विधवाओं और गौओं की हाय से देश नष्ट होगया

एक दिन महाराज बैठे हुए थे कि सहसा लेट गये। लोगों को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर पश्चात् महाराज उठे और दीर्घ श्वास खींच कर कहा कि विधवाओं और गौओं की हाय से यह देश नष्ट होगया।

जटाधारी नागा

एक दिन एक जटाधारी नागा साधु आया और महाराज से बोला कि मैं आप से पढ़ूंगा। महाराज ने कहा कि हमें तुम्हारे पढ़ाने का अवकाश नहीं है, परन्तु वह वहीं बैठ गया और वहीं रहा।

बहिष्कृत आर्य-समाजी

एक दिन एक २० वर्ष का नवयुवक महाराज के पास आया और श्रीचरणों की वन्दना कर कहने लगा कि मुझे आर्यसमाज अमृतसर ने निकाल दिया है। कारण पूछने पर उसने कहा कि मुझ पर पुस्तकें चुराने का दोष आरोपित किया गया था। महाराज ने पूछा वह सत्य था वा मिथ्या। उसने स्पष्ट कह दिया कि दोष तो सत्य था, परन्तु मुझे हार्दिक पश्चात्ताप है और मैं चाहता हूँ कि मुझे फिर आर्य्यसमाज में लेलिया जाय। महाराज ने यह देखकर कि वह हृदय से अपने किये पर लज्जित है उसका अपराध क्षमा कर दिया और लाला रामशरणदास रईस मेरठ से कह दिया कि आर्य्यसमाज अमृतसर को लिखदो कि इसका अपराध हमने क्षमा कर दिया है, इसे पुनः आर्य्यसमाज में प्रविष्ट करलें।

प्रारब्ध कैसे पूरा होगा

कहते हैं कि इस प्रश्न के उत्तर में कि यदि कोई मनुष्य किसी को उस आयु के पूरा होने से ही पहले जो प्रारब्ध से नियत है मार डाले तो वह प्रारब्ध कहाँ रहा, महाराज ने कहा था कि वह फिर देह धारण करके शेष आयु भोगेगा।

उपर्युक्त की आलोचना

हमें सन्देह है कि महाराज ने ऐसा कहा हो। महाराज के ग्रन्थों से यह पता नहीं चलता कि वह यह मानते थे कि प्रत्येक मनुष्य की आयु नियत होती है जो घट बढ़ नहीं सकती। वह यह मानते थे कि ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के नियमों के पालन और योगाभ्यास से आयु बढ़ सकती है और तद्विपरीत कार्यों से घट सकती है। मनुष्य की आयु साधारणतः १०० वर्ष की वेद में कही गई है, परन्तु उक्त नियमों के पालन से १०० से भी अधिक हो सकती है जैसे कि सन्ध्या के 'तच्चक्षुर्देव हितम्' आदि मन्त्र से स्पष्ट है। हमें इस घटना के वर्णन करने वाले का स्मृति-विभ्रम प्रतीत होता है।

अचारज के पुत्र के प्रश्न

एक दिन कुछ ब्राह्मणों ने एक अचारज के पुत्र को जो अभी लड़का ही था धर्म्म-चर्चा करने के लिये महाराज के पास भेजा, उसने जाकर धर्म विषय में कुछ पूछा। महाराज ने कहा अरे लड़के तू क्यों पूछता है! जो वृद्ध हैं वह आकर पूछें। उसने कहा कि सब पण्डितों की मेरे लिये ही आज्ञा है। तब महाराज ने कहा कि अच्छा भाई पूछ क्या पूछता है? उसने कहा धर्म किसे कहते हैं? महाराज ने कहा कि वेदविहित पदार्थ को धर्म्म कहते हैं। इस पर उसने "सौत्रामण्यां सुरां पिबेत" तथा दो और वाक्य बोले। उन्हें सुनकर महा-

राज हँस पड़े और पूछा कि यह किस वेद के वाक्य हैं तो उस युवक ने कहा कि अथर्व वेद के। महाराज ने अथर्व वेद मँगा कर उसे देना चाहा कि इसमें से वह वाक्य निकाले, परन्तु उसने कहा कि मैं आपके पुस्तक को स्पर्श नहीं कर सकता। इस पर महाराज ने समय नष्ट करना उचित न समझ कर उसे फटकार दिया और वह और उसके साथी वहाँ से चले आये। वास्तव में उसने अथर्व वेद के दर्शन तक नहीं किये थे। वह बात उसने पं० लेखराम से स्वीकार की थी कि मैंने अथर्व वेद देखा तक नहीं है।

दो नागे

एक दिन निरञ्जनी अखाड़े के दो नागे महाराज के पास आकर कहने लगे कि हम आपके पास रह कर पढ़ना चाहते हैं। महाराज ने कहा कि हमारे साथ रह कर तुम्हारा पढ़ना नहीं हो सकता है। स्वामी शङ्कराचार्य के साथ दो जैनी उनका शिष्य बन कर रहते थे। उन्होंने स्वामी शङ्कराचार्य को भोजन में विष देकर मार डाला था। इन्हीं नागों से महाराज ने कढ़ी बनाने की विधि भी पूछी थी। महाराज पाक क्रिया में स्वयं भी सिद्ध हस्त थे। उन्हें विचित्र जड़ी बूटी और मसाले ज्ञात थे, जो दाल शाकादि को अत्यन्त स्वादिष्ट बनादेते थे। महाराज ने वह विधि उनसे लिख भी ली थी। नागों की कढ़ी प्रसिद्ध है, कहते हैं कि वह कई २ मास रक्खी रहने पर भी नहीं बिगड़ती।

दो और नागे

एक दिन उसी अखाड़े के और दो नागे आये और बड़ी असभ्यता के साथ बातें करने लगे, परन्तु महाराज की त्यौरी पर बल तक न आया। वह हँस २ कर उनकी बेतुकी बातों का सभ्यता पूर्वक उत्तर देते रहे। नागों ने देखा कि किसी प्रकार भी महाराज की शान्ति भङ्ग नहीं होती। इसका उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि कुछ देर के पश्चात् उनकी आत्मा ने उन्हें धिक्कारा और वह लज्जित होकर श्री चरणों में नत मस्तक होकर अपने अपराध की क्षमा चाहने लगे। वहाँ क्या था दया का स्रोत हर समय प्रवाहित रहता था, महाराज ने उन्हें क्षमा दान देने में पल भर भी देर नहीं की। नागे साधुओं ने तत्काल ही अपना नागा बाना—पीतल के कड़े, माला, कफनी और जटा गङ्गा में फेंक दिया और अपने सन्देह निवृत्त करके और महाराज की शिक्षा ग्रहण करके, नमस्ते कह कर विदा होगये।

तत्काल नागा बाना छोड़ दिया

निर्मले साधु को वेदों के दर्शन

एक दिन ईश्वरसिंह निर्मला साधु महाराज के पास आया और प्रार्थना की कि मैंने आज तक वेदों के दर्शन नहीं किये हैं। आप उन्हें दिखा कर मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। उन्होंने तुरन्त चारों वेदों की पुस्तकें मँगा कर उसे दिखादिये। फिर उससे महाराज ने कहा कि महीधर और सायण आदि ने वेदों के अर्थों का महान अनर्थ किया है और उनके भाष्यों की भूलों का दिग्दर्शन कराया। तत्पश्चात् ईश्वरसिंह और महाराज में इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए—

निर्मले साधु से प्रश्नोत्तर—

ईश्वरसिंह—पहले तो आप जीव ब्रह्म की एकता मानते थे।

स्वामी—उस समय हमने सारे वेद नहीं देखे थे। जब सब वेदों को पढ़ा और उन पर मनन किया तो हमें पूर्ण विश्वास होगया कि जीव ब्रह्म की एकता मानना वेद-विरुद्ध है।

ईश्वरसिंह—जीव ब्रह्म की एकता पर तो स्वामी शङ्कराचार्य की साक्षी है, आप के मत पर किस की साक्षी है।

स्वामी—वेदपुरुष अर्थात् परमात्मा की।

ईश्वरसिंह—कोई २ श्रुति भेद को भी कहती है, इसका क्या उत्तर है।

स्वामी—भेद की प्रतिपादक श्रुतियां भी ठीक हैं और अभेद की प्रतिपादक भी। जैसे आकाश से हमारी पर्णकुटी पृथक् नहीं है, इस प्रकार अभेद ठीक है। परन्तु हमारी पर्णकुटी आकाश नहीं इस प्रकार भेद ठीक है।

देश की धार्मिक दशा पर खेद

एक दिन ईश्वरसिंह और एक अन्य साधु महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने देखा कि बहुत से साधु एक ओर को जारहे हैं। महाराज ने उस साधु से पूछा कि साधु लोग कहाँ जारहे हैं? उसने कहा कि एक प्रसिद्ध उदासी साधु आये हैं, उन्हीं से मिलने जारहे हैं। महाराज ने इस पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि देखो भारतवर्ष में सनातन वेद-विरुद्ध कितने मत-मतान्तर चल गये हैं, कोई उदासी है तो कोई निर्मला, कोई वैरागी है तो कोई अन्य सम्प्रदाय का, मूल धर्म सबने छोड़ दिया। ईश्वरसिंह ने कहा कि महाराज एक धर्म होना तो कठिन है। महाराज ने कहा कि पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिये, इससे बहुत कुछ मेल और एकता हो सकती है।

तीर्थ-यात्रा की व्यर्थता

एक दिन मूला मिस्त्री ने महाराज से बद्रीनाथ, केदारनाथ के तीर्थों के विषय में पूछा। महाराज ने कहा कि यह तीर्थ मैंने भी देखे हैं और तुम भी देख आये हो, जो कुछ वास्तविकता तुमने देखी हो उसे बिना लोकापवाद के भय के कहदो। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैंने व्यर्थ यात्रा की और मुझे खेद है कि मैंने इतना परिश्रम किया।

आपका पक्ष सत्य है

एक दिन एक मारवाड़ी पण्डित ने आकर अपनी योग्यता दर्शाने के लिये संस्कृत में बोलना आरम्भ किया। वह दो घण्टे तक बोलता रहा। महाराज उस की बातों का उत्तर देते रहे। अन्त में उसे ज्ञात होगया कि महाराज का पक्ष सत्य और उसका मिथ्या है। पण्डित था सत्य-ग्राही। इस निश्चय के होते ही वह महाराज से क्षमा माँगने लगा कि यह मेरा बड़ा अपराध था कि वाद में आपका विरोध किया।

आश्रम में स्त्रियां नहीं ठहर सकतीं

एक दिन दो काठियावाड़ गुजरात की स्त्रियाँ अपने पुरुषों के साथ महाराज के लिये मिष्ठान्न लाईं और एक ओर को बैठ गईं। ४ बजे महाराज ने कहला दिया कि हमारे यहाँ स्त्रियों के ठहरने के लिये स्थान नहीं है। तब वह चली गईं और फिर कई दिन तक वह स्त्री पुरुष आते रहे, परन्तु ४ बजे के पश्चात् चले जाते थे।

नजफअली तहसीलदार रुड़की भी कभी २ महाराज की सेवा में आया करते थे।

सत्यग्राही मुसलमान तहसीलदार

उनके मन में हठ न थी और युक्तियुक्त बात को स्वीकार करलिया करते थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि हमारे पैग़म्बर साहब ने मनुष्य को चार स्त्रियों तक से विवाह करने की आज्ञा दी है। जैसे एक राजा को कई मन्त्रियों की आवश्यकता होती है ऐसे ही एक मनुष्य को एक से अधिक स्त्रियों की आवश्यकता है। महाराज ने कहा कि एक पुरुष के लिये एक ही स्त्री होनी चाहिये। अनुभव और युक्ति से भी यही बात ठीक सिद्ध होती है। देखिये एक वेश्या सैकड़ों पुरुषों को बिगाड़ती है। जब एक घर में कई स्त्रियाँ हों तो उन के लिए एक पुरुष कभी पर्याप्त नहीं हो सकता। इसीलिए वेदों के अनुसार एक पुरुष का एक ही स्त्री से विवाह होना चाहिये। तहसीलदार साहब की समझ में यह बात आगई और उन्होंने उसकी युक्तियुक्तता स्वीकार करली।

स्वामीजी वली हैं

एक दिन तहसीलदार साहब विकारअलीबेग डिपुटी कलक्टर को साथ लेकर आये और व्याख्यान सुनने लगे। व्याख्यान सुन कर कहा कि अब तक तो कुछ सन्देह भी था, परन्तु आज पूरा निश्चय होगया कि ब्रह्मविद्या जितनी संस्कृत भाषा में है इतनी किसी भाषा में नहीं है और डिपुटी साहब से कहा कि स्वामीजी वली लोग (ऋषि) हैं मैं भी इनका सेवक हूँ। डिपुटी साहब ने पूछा कि यह हरिद्वार और हरकी पैड़ी क्या है? महाराज ने कहा कि हर की नहीं हाड़ की पैड़ी हैं, क्योंकि सहस्रों मन हड्डियाँ यहाँ पड़ती हैं। फिर उन्होंने पूछा कि यदि गङ्गास्नान का ही माहात्म्य है तो यह क्यों आवश्यक है कि हर की पैड़ी पर ही नहाया जाय। महाराज ने कहा कि यह तो पण्डों की लीला है, यदि लोग हर जगह गङ्गा में स्नान करने लगें तो पण्डाजी दक्षिणा कहां से लें। आपके यहाँ अजमेर में भी यही बात है। मुजावर कहते हैं कि न इधर चढ़ाओ और न उधर बल्कि इन ईंटों पर चढ़ाओ, मानो ख्वाजा साहब उन्हीं ईंटों में घुसे हैं। फिर उन्होंने कोई प्रश्न न किया।

हर की नहीं, हाड़ की पैड़ी है

तीन जिज्ञासु विद्वान्

एक दिन नदिया (बंगाल) की ओर के तीन पण्डित आये जो विद्वान थे। उन्होंने वेदार्थ विषय पर महाराज से विचार-विनिमय किया। उनका व्यवहार सर्वथा सभ्य और शिष्टोचित था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह वास्तव में जिज्ञासु थे, कोरे वितण्डावादी न थे। महाराज भी बड़ी प्रसन्नता से उनसे विचार करने लगे। यह विचार चार दिन तक ६ बजे प्रातःकाल से ११ बजे तक होता रहा अन्त में तीनों पण्डितों की ज्ञान पिपासा शान्त होगई, उनके संशयों का उच्छेद हो गया। उन्होंने महाराज के अगाध वैदिक पाण्डित्य और असाधारण तर्क शक्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और कहा हम बहुत से मन्त्रों के अर्थ नहीं समझे थे, अब उन्हें स्वामीजी की कृपा से समझे हैं, निःस्सन्देह उनके अर्थ ठीक हैं। फिर भी वह आठ दस दिन तक आते रहे, परन्तु फिर उन्होंने महाराज के साथ शास्त्रार्थ नहीं किया, हां जब कभी उन्हें कोई शङ्का होती थी उसे निवृत्त कर लिया करते थे।

महाराजा काश्मीर से किसी ने जा कहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहान्त

हो गया। उन्होंने इस पर विश्वास तो न किया परन्तु संशय में अवश्य पड़ गये। उन्होंने अपने किसी कर्मचारी को पत्र लेकर भेजा और उस से कह दिया कि यदि स्वामीजी जीवित होंगे तो कुम्भ पर अवश्य आवेंगे। यदि वह मिल जायें तो उन्हें यह पत्र दे देना और उत्तर ले आना। उस पत्र में महाराजा ने स्वामीजी से यह प्रार्थना की थी कि आप एक ऐसा ग्रन्थ बनादें जिस से बिना पक्षपात और खींचातानी के यह सिद्ध हो जाय कि जो लोग वैदिक-धर्म्म त्याग कर अन्य धर्मावलम्बी हो गये हैं वह यदि वैदिक-धर्म्म में वापस आना चाहें तो आ सकते हैं और उसमें यह भी सिद्ध किया जावे कि अन्य धर्मी ईसाई मुसलमान भी वैदिक-धर्म्मी हो सकते हैं और उनके साथ खान पानादि का व्यवहार वैदिक धर्म्मियों के समान किया जा सकता है। महाराज ने उस समय तो उस पुरुष से केवल इतना ही कह दिया कि ऐसा ग्रन्थ शास्त्रप्रमाण-पुष्ट सहज में ही बन सकता है और यह कहा कि जब आप जावें तब मुझसे मिलके जावें, मैं महाराजा के लिये पत्र दूंगा। फिर ज्ञात न हुआ कि वह मनुष्य जाते समय महाराज से मिला वा नहीं और यदि मिला तो महाराज ने उसे पत्र दिया वा नहीं।

अलीक किंवदन्ती

महाराजा काश्मीर का पत्र

एक दिन एक बजे तक निर्मला साधु, जिसका नाम जोतसिंह था, आया और महाराज से बातें करने लगा। उसके शब्द व्यङ्ग्य और कटाक्ष से पूर्ण थे। हकीम थानसिंह रुड़की निवासी भी बैठे हुए थे। साधु के शब्द उन्हें बुरे लगे। उन्होंने साधु से कहा कि चुप रह अन्यथा मुँह ठीक कर दिया जायगा। महाराज ने उन्हें रोक दिया और कहा कि यह बातें मुझ से कर रहे हैं, तुम बीच में हस्तक्षेप मत करो। अन्त को साधु रुष्ट होकर चला गया परन्तु अगले दिन फिर आया और बातें करके चला गया। तीसरे दिन फिर आया। उस समय महाराज व्याख्यान दे रहे थे। जब व्याख्यान से उठे तो साधु की आँखों से अश्रुधारा बह निकली और उसने महाराज के चरण पकड़ लिये और कहने लगा कि जो कुछ मैंने कटूक्ति की है उसे क्षमा कीजिये और अपनी शरण में लेकर कृतार्थ कीजिये। महाराज ने अपने पैरों पर से उसे उठाया और उसे सान्त्वना देकर अपने पास बिठाया और उसके अनुतप्त हृदय को उपदेशामृत से सींच कर शान्त किया। रात्रि को भी वह महाराज के डेरे पर ही रहा और पूर्णरूप से उनका अनुगामी बन गया।

कटुभाषी साधु अनुगत

एक रात्रि को हकीम थानसिंह अपने दो साथियों के साथ एक बजे से पाँच बजे तक बातें करते रहे। प्रातःकाल जब महाराज डेरे के बाहर आये तो हकीमजी ने उन्हें पानी का लोटा दिया। जब महाराज शौच से निवृत्त होकर वापस आये तो उन्होंने हकीमजी से कहा कि हम रात्रि को अपने डेरे के समीप किसी को बातें नहीं करने देते हैं, परन्तु आज तुमने रात्रि भर बातें कीं जिससे मेरे कार्य्य में बहुत विघ्न हुआ। महाराज रात्रि में योगाभ्यास किया करते थे।

तुम्हारी बातों से अभ्यास में विघ्न पड़ता है

वृद्ध सन्यासी का आदर

एक दिन प्रातःकाल ही एक वृद्ध संन्यासी आनन्दवन नामी अपने दस बारह शिष्यों के सहित आये। महाराज ने उन्हें दूर से ही देख लिया और डेरे के द्वार पर जाकर मुस्कराते हुए उनका स्वागत किया और सम्मान पूर्वक उन्हें आसन दिया। संन्यासी महाशय की आयु ८० वर्ष के लगभग थी, परन्तु शरीर से स्वस्थ और फुर्तीले थे। जब वह और महाराज आसन ग्रहण कर चुके तो आपस में संस्कृत में वार्त्तालाप आरम्भ हुआ। वार्त्तालाप का विषय था नवीन वेदान्त। ११ बजे तक विचार होता रहा।

नवीन वेदान्त पर वार्त्तालाप

११ बजे महाराज को सूचना दी गई कि भोजन तैयार है। महाराज ने आगन्तुक और उनके शिष्यों को विनय भाव से भोजन के लिए कहा, परन्तु उसने कहा कि जब तक मीमांस्य विषय का निर्णय न हो जायगा हम भोजन नहीं करेंगे। उसके पश्चात् महाराज ने चारों वेद और ६०-६५ अन्य ग्रन्थों में से स्वामी आनन्दवन को अपने कथन की पुष्टि में प्रमाण दिखाने आरम्भ किये। विचार-धारा दो बजे तक प्रवाहित होती रही। अन्त में स्वामी आनन्दवन को सन्तोष होगया कि दयानन्द जो कहते हैं वह ठीक है। तब उन्होंने खड़े होकर अपने शिष्यों को सम्बोधन करके कहा कि मैंने दयानन्द के मत को स्वीकार किया। तुम भी

मैंने दयानन्द का मत स्वीकार कर लिया

ऐसा ही मानो। इसके पश्चात् स्वामी आनन्दवन बिना भोजन किये ही चले गये। उसके पीछे भी वह कभी कभी सभा-मंडप में आते रहे परन्तु कभी बैठे नहीं, मुस्कराकर थोड़ी देर खड़े होकर चले जाया करते थे। पहले दिन लोगों के पूछने पर महाराज ने कहा था कि यह बड़े विद्वान् संन्यासी हैं। अब तक वह जीव ब्रह्म को एक मानते थे परन्तु अब हमारे समान पृथक् मानने लगे हैं।

कुरूप और कर्कश पण्डित

एक दिन एक पण्डित आया, वह रावलपिण्डी का रहने वाला और महाराज का पूर्व परिचित था। उसकी आकृति विचित्र थी। जिसे देख कर न हँसता हो तो हँसने लगे। वह एक आँख का स्वामी था, हाथों से लुंजा था, उसके मुख पर शीतला ने अपने आगमन के चिन्ह अङ्कित कर दिये थे, वर्ण कृष्ण था। मूँछें कटी हुई और दाढ़ी मुंडी हुई थी। खोपड़ी ने बालों से पूर्ण विरोध कर रक्खा था। उस पर एक बड़ा साफा शोभा दे रहा था। साथ में दो विद्यार्थी भी थे। हकीम थानसिंह द्वार पर नियत थे। उसने आते ही हकीमजी से कर्कश स्वर में पूछा कि दयानन्द कहाँ है। हकीमजी ने पूछा कौन दयानन्द। उसने कहा वही साधु जो दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध है। हकीमजी ने कहा कि सभ्यता से बोलो, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती मुख से कहो तब मैं तुम्हें बता सकता हूँ। यह बातें कहीं महाराज ने भी सुनलीं और उसकी बोली पहचान ली। तब उन्होंने हकीमजी को आज्ञा दी कि आने दो। डेरे के भीतर जाते ही उसने कहा कि तुमने जो अशुद्धियाँ मेरी चिट्ठी में बतलाई हैं उन्हें दिखाओ। यही कहता रहा और क्रोध में भर गया और चिल्लाने लगा। उसका कण्ठ शुष्क होगया और कहने लगा पानी लाओ। हकीमजी उसके लिये जल लेगये, परन्तु उसने कहा कि मैं यह पानी नहीं पीऊँगा, गङ्गाजी से लाओ। हकीमजी ने कहा कि मैं तो प्रातःकाल गङ्गा के ठण्डे

थ्वाडे घर दा पानी कौन पिये

पानी में हाथ नहीं डालता तुम्हें पीना है पियो नहीं तो तुम्हारी इच्छा। महाराज ने हकीमजी से कहा कि गङ्गाजी से ही लादो। परन्तु जब वह ले आये तो वह यह बकता हुआ चला गया, थ्वाडे घर दा पानी कौन पिए! थ्वाडे घर दा पानी कौन पिए!!

मुर्दे को आश्रम के पास मत गाड़ो

एक रात्रि को कुछ कांस्टेबिल मशाल लिये हुए एक मुर्दे को लाये और उसे महाराज के डेरे के सामने सड़क पर गाड़ने लगे। कुछ शोर सुनकर महाराज ने हकीम थानसिंह को भेजा कि देखो शोर क्यों हो रहा है। उन्होंने जाकर देखा और लौट कर महाराज से सारा वृत्तान्त कहा। महाराज ने आज्ञा दी कि मुर्दे को हमारे बाड़े में मत गाड़ने दो। हकीम जी ने कांस्टेबिलों से जाकर कहा कि इसे यहाँ मत गाड़ो, परन्तु वह न माने। इतने में एक गोरा सारजेंट चक्कर लगाता हुआ वहाँ आ निकला। उसने हकीमजी से कहा कि तुम मुर्दे को क्यों नहीं गाड़ने देते? हकीमजी ने कहा कि यह स्वामी दयानन्द सरस्वती का बाड़ा है और उनकी आज्ञा है कि हमारे बाड़े में मत गाड़ने दो। उसने कहा कि क्या वह दयानन्द है जो सब को खुदा की तरफ बुलाता है। हकीमजी ने कहा कि हाँ। इस पर उसने कांस्टेबिलों को आज्ञा दी कि यहाँ मत गाड़ो। तब वह लोग उस मुर्दे को दूसरी जगह ले गये।

कमिश्नर साहब आदि सन्तुष्ट होकर गये

एक दिन प्रातःकाल के समय जंगलात के कंजरवेटर, मेरठ के कमिश्नर, सहारनपुर के कलक्टर और डिपुटी विक्कारअलीबेग कई अन्य लोगों के साथ आये और व्याख्यान के डेरे के नीचे खड़े हो गये और पूछा कि स्वामी कहाँ हैं। हकीम थानसिंह ने कहा कि ईश्वरोपासना कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि क्या तुम उनके पास जाकर कह सकते हो कि मेरठ के कमिश्नर साहब आये हैं। हकीमजी ने कहा कि मैं जा तो सकता हूँ पर कुछ कह नहीं सकता। इतने में बा॰ श्यामलाल ने कहा कि यदि आप थोड़ी देर ठहरें तो आप स्वामीजी से मिल सकते हैं। वह ठहरने पर सम्मत हो गये। उनके लिये कुर्सियाँ डलवादी गईं और वह बैठ गये। थोड़ी देर में महाराज भी वहाँ आ गये। उपर्युक्त चारों महोदय खड़े हो गये और फिर प्रसन्नवदन होकर ईश्वर विषय पर बात चीत करने लगे। वह महाराज के विचारों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और यह कह कर चले गये कि यदि आप किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो सूचना देने पर वह भेज दी जायगी। उसी दिन महाराज की रक्षा के लिये उन्होंने उनके डेरे पर पुलिस का पहरा लगवा दिया।

तीन पौराणिक विद्वानों को पत्र

जितने भी पौराणिक साधु कुम्भ पर आये थे उनमें से स्वामी विशुद्धानन्द, स्वामी जीवनगिरि और स्वामी सुखदेवगिरि को महाराज विद्यावैभव सम्पन्न समझते थे। उनके विषय में वह कहा करते थे कि इन तीनों शरीरों को मैं विद्वान् जानता हूँ और इन्होंने ग्रन्थ भी गूढ़ विचार से पढ़े हैं, शेष तो सब लड्डू पूरी उड़ाने वाले हैं। एक दिन महाराज ने इन तीनों विद्वानों के लिये इस आशय का पत्र लिखा कि मैं जो बात कर रहा हूँ उस को आप सब लोग जानते हैं कि वह सर्वथा ठीक है, परन्तु विद्वान् होते हुए भी आप उसे प्रसिद्ध क्यों

नहीं करते। महाराज ने वह पत्र स्वामी रत्नगिरि को दिया कि उसे प्रशंसित महानुभावों के पास लेजाओ। वह प्रथम ही स्वामी सुखदेवगिरि के पास ले गये। पत्र को देखते ही त्यौरी चढ़ गई और रत्नगिरिजी से कहने लगे कि सारी दुनिया दयानन्द के विरुद्ध है, तुम दोनों जगह जाते हो, तुम्हें यह उचित नहीं है कि यहाँ की बात वहाँ कहो और वहाँ की यहाँ, अब आगे को दयानन्द का पत्र हमारे पास न लाना।

यह पता न चल सका कि रत्नगिरिजी अन्य दो विद्वानों के पास भी उक्त पत्र ले गये वा नहीं और यदि ले गये तो उन्होंने क्या उत्तर दिया?

यूरोपियन डाक्टर से वार्तालाप

एक दिन नैनीताल के एक यूरोपियन डाक्टर महाराज के पास आये। उनसे हवन पर बात चीत हुई। महाराज ने उनसे से पूछा कि विपूचिका के रोकने का तुमने क्या प्रबन्ध किया है। उन्होंने उत्तर दिया कि हम विष्ठा को कुछ तो गङ्गा में बहा देते हैं, कुछ को भूमि में दबा देते हैं और शेष को जलवा देते हैं। स्वामीजी ने कहा कि विष्ठा के भूमि में दबाने से विपूचिका अवश्य फैलेगी। डाक्टर ने कहा कि कदापि नहीं फैल सकती, सरकार ने बहुत प्रबन्ध कर दिया है। महाराज ने पूछा कि विष्ठा कितने दिनों से दबाया जाता है। डाक्टर ने उत्तर दिया कि १२ दिन से। महाराज यह सुनकर थोड़ी देर तो चुप रहे, फिर बोले कि आज से तीसरे वा चौथे दिन विषूचिका फैलेगी। उनके साथ रुड़की की सेना के डाक्टर थे। महाराज की बात सुनकर वह मुस्करा दिये और चले गये। तीसरे दिन उक्त रोग से कई मनुष्य मर गये।*

डाक्टरों को परामर्श

कहते हैं कि दोनों डाक्टर सायङ्काल के ७ बजे घबराये हुए महाराज के पास आये और कहा कि विपूचिका के बन्द होने का उपाय बतलाइये। उन्होंने कहा कि घी और कपूर जलवाइये, विष्ठा को दूर लेजाकर ऐसे स्थान पर जलवाइये जिधर से हरिद्वार की ओर वायु न आती हो और मैल को कम करने का ही उपाय कीजिये। कहते हैं कि उसके पश्चात् विष्ठा दूर ले जाकर जलाया जाने जगा।

मैं तो ईश्वरोक्त वेद को ही मानता हूँ

एक दिन दो प्रतिष्ठित पंजाबी सज्जनों ने अञ्जलिबद्ध होकर महाराज से पूछा कि आप ग्रन्थ साहब को मानते हैं वा नहीं; तो महाराज ने उत्तर दिया कि ग्रन्थ साहब मनुष्यकृत है, मैं तो ईश्वरोक्त वेदों को ही मानता हूँ।

आत्मा की न्यूनताएँ ईश्वराराधना से पूरी होती हैं

एक दिन एक वेदान्ती साधु रामसिंह ने महाराज से कहा कि आप ज्ञानी होकर भी भिक्षुओं के समान ईश्वर से भिक्षा माँगते हैं। ऐसे कर्म तो अज्ञानियों के लिये हैं, आपके लिये नहीं। महाराज ने उत्तर दिया कि यह सत्य नहीं कि ज्ञानीजन प्रार्थना नहीं करते, आप तो अपने को पूर्ण वेदा-

* पं० लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि इस वार्तालाप के तीसरे दिन स्वामी आनन्दगिरि के गृह में ९ मनुष्य विपूचिका से मर गये और सायङ्काल तक ३० मनुष्य मर गये। परन्तु महाराज के २७ मार्च के एक पत्र में लिखा है जो उक्त पुस्तक में ही उद्धृत किया गया है कि तीन दिन में ५ मनुष्य विपूचिका से मरे हैं। अतः हमें यह घटना सन्दिग्ध सी प्रतीत होती है। —संग्रहकर्त्ता।

न्ती मानते हैं, फिर भी महावाक्य रटते रहते हैं। भूख, प्यास आदि शारीरिक न्यूनताएं— जैसे अन्न जल से पूरी होती हैं वैसे ही आत्मा की न्यूनताएं बिना ईश्वराराधना के पूरी नहीं हो सकतीं।

स्वामीजी अपने ग्रन्थों का अनुवाद कराना नहीं चाहते थे

एक दिन एक पुरुष ने महाराज से कहा कि यदि आप अपने ग्रन्थों का भिन्न २ भाषाओं में अनुवाद करादें तो जो लोग आर्य भाषा नहीं जानते उन्हें वैदिक धर्म के जानने में बहुत सुविधा हो। महाराज ने उत्तर दिया कि भारत वासियों को आर्य भाषा का सीख लेना कुछ कठिन नहीं है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा के सीखने का परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है। महाराज का विचार था कि सारे भारत की एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिये और वह आर्य भाषा को ही राष्ट्रयभाषा बनने के योग्य समझते थे और इसी कारण वह उसके प्रचार और प्रसार में इतने उद्योगी थे।

तर्कशस्त्र छोड़ने पड़े

पंडित हरिसिंह एक निर्मला साधू था जिसकी विद्वत्ता की पंजाब में बड़ी धाक् थी। उसने भी वेदान्त विषय पर महाराज से शास्त्रार्थ किया था, परन्तु अन्त को उसे भी महाराज के सामने तर्कशस्त्र छोड़ देने पड़े थे।

विचित्र वार्तालाप

५ अप्रेल को महाराज की जंघा में एक छाला पड़ गया था जिस से उन्हें बहुत पीड़ा थी और दस्तों के कारण वह निर्बल भी बहुत थे। उस दिन महाराज ने अपना व्याख्यान भी स्थगित कर दिया था। यह एक ऐसी बात थी जो अब तक न हुई थी महाराज के रुग्ण होने की मेले भर में खबर फैल गई। कुछ साधुओं ने इस से अनुचित लाभ उठाना चाहा। उन्हों ने समझा कि आज बहुत अच्छा अवसर है। दयानन्द आज रोगी होने के कारण शास्त्रार्थ नहीं कर सकेगा। आज चल कर उससे शास्त्रार्थ करने के लिये कहना चाहिये। वह शास्त्रार्थ से नकार करेगा, तब हम प्रसिद्ध कर देंगे कि दयानन्द शास्त्रार्थ से हट गया। परन्तु इन बुद्धिमानों ने यह न समझा कि सिंह कैसी ही दीन दशा को प्राप्त हो, शृगालों को परास्त करना उसके लिये तनिक भी कठिन नहीं। साधुओं का एक झुण्ड महाराज के पास पहुँचा। महाराज उस समय शय्या पर लेटे हुए थे। जब महाराज ने उसे आते देखा तो उठ कर बैठ गये और साधुओं को आदर से बिठा कर आने का कारण पूछा तो एक साधु ने आगे बढ़ कर कहा कि आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं। महाराज ने कहा बहुत अच्छा। इस शब्द के सुनते ही साधुओं का मुँह तनिक सा रह गया। जिस आशा को लेकर वह आये थे उस पर तुषार पड़ गया। महाराज ने फिर पूछा कि किस विषय पर। साधु ने कहा कि हम वेदान्त विषय पर चर्चा करेंगे। महाराज को विद्वान् अविद्वान् की अद्भुत पहचान थी। वह मनुष्य की भावभङ्गी, आकार, चेष्टा आदि को देख कर तुरन्त जान जाते थे कि वह कितने पानी में है और फिर उसी ढंग से उस से बातें करते थे। महाराज ने समझ लिया कि प्रतिवादी कोई उच्च कोटि का विद्वान् नहीं है अतः महाराज ने ऐसे ढंग से प्रश्न किये जिस से ५। ७ मिनिट में ही वह निरुत्तर हो गया।

स्वामीजी—पहले आप मुझे समझादें कि वेदान्त से आप का क्या अभिप्राय है।

साधु—यही कि जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य है।

स्वामीजी—जगत् से क्या अभिप्राय है, उसके भीतर क्या २ पदार्थ हैं और मिथ्या से क्या अभिप्राय है?

साधु—परमाणु से लेकर सूर्य पर्यन्त जो कुछ है उसे जगत् कहते हैं और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठ है।

स्वामीजी—आपका शरीर, बोलना, चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी उसके भीतर हैं वा नहीं।

साधु—हाँ यह सब उसी के भीतर हैं।

स्वामीजी—और आपका मत भी उसी के भीतर है वा बाहर?

साधु—हाँ वह भी जगत् के भीतर है।

स्वामीजी—जब आप स्वयं ही कहते हैं कि हम, हमारा गुरु, हमारा मत, हमारी पुस्तक, हमारा बोलना और उपदेश यह सब मिथ्या ही मिथ्या है तो हम आप से क्या कहें। जब स्वयं वादी के कथन से ही उसका दावा खारिज होता हो तो साक्षी आदि की आवश्यकता ही क्या है।

साधु हक्का बक्का सा रह गया और किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर अपनी मंडली के साथ वहाँ से चला गया।

गुरुजी के आदेश से ही मैंने प्रचार-कार्य आरम्भ किया है

मुंशी मूलचन्द मुदर्रिस कनखल निवासी ने महाराज का मूर्त्ति-खण्डनविषयक व्याख्यान सुन कर मूर्त्तिपूजा त्याग दी थी। एक दिन मूला मिस्त्री के प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा था कि प्रथम तो मुझे ही विचार हुआ था कि मूर्त्ति-पूजन केवल अविद्या अंधकार है, परन्तु गुरुवर्य्य स्वामी विरजानन्दजी भी उसका खण्डन किया करते थे और कहा करते थे कि कोई हमारा शिष्य ऐसा हो जो इस अन्धकार को देश से दूर करे, उनके आदेश से मैंने वैदिक धर्म प्रचार का कार्य अपने ऊपर लिया है।

दयानन्द हमारे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करे नहीं तो पराजित समझा जावे

लाला भोलानाथ वैश्य सहारनपुर निवासी पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के बड़े भक्त थे। उन्होंने ही पण्डितजी को पंजाब से कुम्भ पर महाराज से शास्त्रार्थ करने को बुलाया था। एक विज्ञापन पण्डिजी की ओर से छपवाकर मेले में बाँटा था कि हम स्वामी दयानन्द के विरुद्ध सनातन धर्म्म सभा का उपदेश करते हैं जिसे सुनना हो वह जूना अखाड़े में आ-जावे। पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज भी कुम्भ पर पहुँच गये थे और अन्य बहुसंख्यक पौराणिक भी वहाँ उपस्थित थे। एक दिन सनातनियों में आपस में यह गोष्ठी हुई कि चलो दयानन्द से शास्त्रार्थ करें, परन्तु पण्डित श्रीधर डासना जिला मेरठ निवासी ने कहा कि दयानन्द परदेसी है और वेदज्ञ, चतुर और वाग्मी है और उसने वेद का भाष्य भी किया है। आप लोग केवल वैयाकरण हैं, आप यदि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने जाओगे तो नीचा देखोगे। इस पर कोई न गया। परन्तु एक दिन सनातन धर्मसभा में पण्डित चतुर्भुज ने एक उर्दू लेख सभा में पढ़ा जिसका सारांश यह

था कि भाइयो इस समय यहाँ पर चारों वेद और वेदांग तथा पण्डित भी उपस्थित हैं दयानन्द को जो सबसे विरुद्ध उपदेश करता है, चाहिये कि वह हम से यहाँ आकर शास्त्रार्थ करे ताकि सत्यासत्य का निर्णय हो जावे, यदि दयानन्द यहाँ न आवे तो सब को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि वह हम से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता है। तदनुसार तीस पण्डितों के हस्ताक्षरों से निम्नलिखित पत्र वैसाख बदी १ को महाराज के पास भेजने के लिए लिखा गया।

सनातनियों का पत्र

श्री गणेशायनमः। श्री दयानन्द सरस्वती जीव प्रति निवेदन। निम्न लिखित साधु वर्ग और पण्डित जन तथा सभासद लोगों की इच्छा यह है कि तीन चार दिन से नित्य ४ बजे से ६ बजे पर्य्यन्त धर्म्मविषयक सत्यासत्य विचार होता है और यह भी ज्ञात भया कि जब से जूना अखाड़ा मायादेवी के पास अलीगढ़ सत्य धर्मावलम्बी सभा का प्रारम्भ भया तब से इस सभा से आपके पास पत्र भेजे गये। अब यह पत्र भेजते हैं यदि इस सभा में आकर आप भी कुछ वक्तृता करें तो इसमें दो फल हमको दीखते हैं, एक यह कि एकान्त बैठ कर जो वेद शास्त्र द्वारा व्याख्यान देते रहते हो विद्वानों के सम्मुख वक्तृता करने में सब को यह ठीक निश्चित हो जायगा कि आपका कथन वेद व शास्त्र के अनुसार है वा नहीं, दूसरा यह कि यदि आप का कहना वेद व शास्त्र के अनुसार निकला तो हम सब आपके मत प्रतिपादन में उद्यत हो जायंगे और इस ऐक्यभाव से आर्यावर्त्त को बड़ा भारी लाभ होगा। आप कृपा करके सभा में अवश्य पधारें यदि किसी हेतु से आना न हो तो हेतु लिखियेगा।

दयानन्द यहाँ आवे तो सिर फोड़ दो

हस्ताक्षर करने वाले पण्डितों में से ही एक पण्डित इस पत्र को लेकर स्वामीजी के पास को चले। उनके चलते समय कुछ साधुओं ने कहा कि यदि वह यहाँ आवे तो ······को एक पत्थर मारो सिर फूट जावे कुछ परवाह नहीं एक को फाँसी हो जावेगी। महाराज ने यह पत्र पाकर इसका उत्तर भेज दिया जिसका भावार्थ यह था कि शास्त्रार्थ के लिये मैं हर समय उद्यत हूँ, परन्तु उसका प्रबन्धकर्त्ता कोई राजपुरुष हो, शास्त्रार्थ में पण्डितों के अतिरिक्त कोई अपठित मनुष्य न आने पावे। शास्त्रार्थ की जगह न मेरी हो न आपकी। जूना अखाड़े में आने में मुझे शारीरिक हानि पहुँचने का भय है। शरीर-पात की तो मुझे चिन्ता नहीं, परन्तु जो उपकार कार्य मैं कर रहा हूँ वह अधूरा रह जावेगा।

महाराज जानते थे कि पत्र लेखकों का अभिप्राय उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और इसीलिये वह चाहते थे कि सरकारी प्रबन्ध हो। इसके पश्चात् कई पत्र आये गये, परन्तु महाराज पूर्वोल्लिखित बातों पर ही जमे रहे। सनातनियों के अन्तिम पत्र के उत्तर में महाराज ने उन्हें लिखा था कि यदि स्वामी विशुद्धानन्दजी कहदें कि आप लोग मेरी अपेक्षा वेदों को अधिक समझते हैं, तो मैं शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ और मैं उन्हींको मध्यस्थ नियत करता हूँ। जब स्वामीजी की इस चिट्ठी को लेकर सनातनियों के कुछ मनुष्य

तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते

स्वामी विशुद्धानन्दजी के पास गये तो उन्होंने पण्डित चतुर्भुज और श्रद्धाराम को इतनी और ऐसी अश्लील गालियाँ दीं जिनका क वर्णन नहीं हो सकता और कहा कि तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते हो, मैं तुम्हारे शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नहीं हो सकता

स्वामी विशुद्धानन्द का पत्र

और स्वामीजी को एक चिट्ठी लिख दी कि बहुत से मूर्ख और अविद्वान् उपद्रव करने के अभिप्राय से इकट्ठे हुए हैं, आप कदापि ऐसे लोगों की बात पर ध्यान न दें और मैं ऐसे लोगों के कहने से उस सभा का मध्यस्थ नहीं हो सकता जिसमें आप जैसे विद्वान् शास्त्रार्थ करें। यह चिट्ठी ३ बजे महाराज के पास आई। उस समय सहस्रों मनुष्य सभा में उपस्थित थे। यह चिट्ठी महाराज की आज्ञा से पण्डित भीमसेन ने उच्च स्वर से सभा में पढ़कर सुना दी जिससे सनातनियों के षड्यन्त्र का भाँडा फूट गया। इसके पश्चात् पक्षाघात के रोगी के समान सनातनी दल निष्क्रिय और निस्तब्ध हो गया और फिर उसकी ओर से कोई चिट्ठी न आई।

हमारा प्रायश्चित्त कराया जावे

पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने कुछ साधुओं को बहकाया कि तुम लोग सभा में आकर यह कहो कि हम दयानन्द के उपदेश सुनकर अपने धर्म से पतित हो गये थे, अब हमारा प्रायश्चित्त कराकर हमारी पाप-निवृत्ति की जावे। इस पर यह लीला रची गई कि उनको गङ्गाजी पर ले जाकर स्नानादि कराया गया और सारे मेले में उन्हें बाजे गाजे के साथ घुमाया गया और यह कि उन लोगों ने दयानन्द के कथन को मिथ्या जानकर पुनः सनातन धर्म की शरण ली है, अच्छे प्रकार मेले में प्रचरित किया गया।

यह पं० श्रद्धाराम की बनावट थी

यह साधु कभी महाराज के व्याख्यानों में जाकर फटके भी न थे। पण्डित श्रद्धाराम ने इस बनावटी घटना को खूब रंग देकर और उस पर झूठ की वार्निश करके १९ अप्रैल सन् १८७९ के 'कोहेनूर लाहौर' नामक समाचारपत्र के अङ्क में छपवाया और अपने लेख में यहाँ तक लिख दिया कि हमारी सभा के होते ही दयानन्द सरस्वती मेले को छोड़गये।

पं० श्रद्धाराम से घृणा

पण्डित श्रद्धाराम के इस अलीक व्यवहार और घृणित कार्य को देख कर उनके साथी तक उनसे अलग हो गये। जो पत्र ३० पण्डितों के हस्ताक्षर से शास्त्रार्थ के लिये महाराज के पास भेजा गया था उस पर

मुझे बड़ी लज्जा आई और भय लगा

हस्ताक्षर करने वालों में एक पण्डित गोपाल शास्त्री जम्मू निवासी भी थे। उन्होंने पण्डित लेखरामजी से शपथ खाकर कहा था कि मुझे हरिद्वार में बड़ी लज्जा और परमेश्वर का भय लगा जब मैं पण्डित श्रद्धाराम के साथ मिलकर अनुचित कार्य करता था। उनमें से एक बड़ाभारी जालसाजी का कार्य पण्डित श्रद्धाराम ने यह किया कि कुछ साधुओं को सिखलाया कि तुम सभा में आकर कहो कि हम स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनकर बिगड़ गये थे, आप कृपा करके हमारा प्रायश्चित्त कराइये। तदनुसार साधुओं ने सभा में आकर यह बात सब लोगों के सामने प्रकट की और फिर सारे मेले में इस बात को प्रसिद्ध कर दिया। जब यह सब कार्य हो चुका तो मैं अपने मन में बहुत पछताया और कहने लगा कि तू बड़ा अयोग्य है जो ऐसे पाखण्डियों के साथ मिल रहा है, फिर मैंने प्रायश्चित किया और उनसे अलग हो गया।

इसी प्रकार लाला भोलानाथ जो पण्डित श्रद्धाराम के मुख्य शिष्य थे और जिनका

श्रद्धाराम का शिष्य अनुगत

नामोल्लेख पहले हो चुका है पर्व के दिन महाराज के व्याख्यान में गये और उसकी शोभा को देख और महाराज के पुनीत दर्शनों से आनन्द में प्रफुल्लित हो गये। उस समय व्याख्यान समाप्ति पर था। महाराज लोगों को यह चेतावनी दे रहे थे कि मेले में विषूचिका फैलने वाली है सब लोगों को शीघ्र ही अपने २ घरों को चला जाना चाहिये। जब भोलानाथ व्याख्यान सुन कर लौट रहे थे तो इन्होंने देखा कि एक मनुष्य को मार्ग में चलते २ हैज़ा हो गया। उन्हें महाराज के कथन पर पूरा विश्वास हो गया और वह तुरन्त ही सहारनपुर अपने निवास-स्थान को चले गये।

पं० श्रद्धाराम का वास्तविक स्वरूप

पण्डित श्रद्धाराम पंजाब में सनातन धर्म के बड़े भारी समर्थक और स्तम्भ समझे जाते थे। उनकी विद्या की बड़ी धाक थी, सुवक्ता और सभाचतुर थे। कई ग्रन्थ भी उन्होंने लिखे थे। सब लोगों पर उन का आतङ्क छाया हुआ था, सैकड़ों नर-नारियों के वह गुरू थे। परन्तु जैसा उन्होंने अपने आप को प्रकट कर रक्खा था वास्तव में वैसे न थे।

ईसाइयोंसे दक्षिणा लेकर ईसा का गुण गान

सब कुछ उन का ढोंग और पाखण्ड था। उनका कोई धर्म्म न था। एक बार ईसाइयों से दक्षिणा लेकर उन्होंने ईसाई मत के समर्थन में पंजाबी भाषा में एक पुस्तक भी लिखी थी। वह कोरे

पं० श्रद्धाराम नास्तिक थे

नास्तिक थे, वेदादि शास्त्र और ईश्वर में उन्हें विश्वास न था। सारे जीवन भर वह लोगों को धोखा देते रहे। अन्त में स्वयं उन्होंने ही अपने पाखण्ड का भाँडा फोड़ा और अपने प्रकृत स्वरूप को प्रगट किया। मरने से पहले उन्होंने सत्यामृत-प्रवाह नाम की एक पुस्तक लिखी जिस में नास्तिकता का बड़े बल के साथ समर्थन किया और यह भी लिखा कि अब मेरी मृत्यु का समय निकट है सो उचित है कि उस सत्य (नास्तिक विचार) को न छिपाऊं जो चिर काल से मेरे मन में भरा हुआ है।

लोगों को चेतावनी

पर्व-दिवस से कई दिन पहले से महाराज ने लोगों से कहना आरम्भ कर दिया था कि मेले में विषूचिका के फैलने का भय है, उन्हें शीघ्र अपने अपने घरों को चले जाना चाहिये। पर्व-दिवस से चार दिन पहले जो व्याख्यान उन्होंने दिया उसमें भी यही बात उन्होंने कही थी। उस व्याख्यान में दो पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट भी थे जो कई दिन से व्याख्यान सुनने आया करते थे। महाराज ने उन्हें सम्बोधन करके कि आपके डाक्टरों ने जो धारा ३४ (पुलिस एक्ट की) बनवादी है इस से प्रजा की बहुत हानि है। आपने जो मल त्याग के लिये टट्टियाँ बनवाई हैं वह बहुत दूर हैं। अब यदि किसी को मल त्याग की आवश्यकता हो और उसके लिये उसे डेढ़ मील उसके वेग को रोक कर जाना पड़ा तो उसके मस्तिष्क को उसकी गर्मी चढ़ जायगी और उसके शरीर के भीतर की दशा बिगड़ जायगी और उस पर बाहर की दूषित वायु का बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ेगा और इस प्रकार सैकड़ों जानें आप के क़ानून की भेट हो जाती हैं। महाराज ने उनसे कहा कि अपने डाक्टरों से कहिये कि वह सड़क से कुछ अन्तर पर झंडियाँ लगवा दें। इन झंडियों के पास ही सब लोग मल त्याग करें और गंगा के मैदान में भट्टे बनाकर उनमें विष्ठा जलाकर वायु को अशुद्ध न करें इससे मरी फैल जायगी।

पर्व के दिन भी महाराज ने लोकहित-चिन्ता से प्रेरित हो कर अपने व्याख्यान में लोगों को फिर आदेश किया कि वह शीघ्र ही अपने घरों को चले जायं। वह स्वयं भी दूसरे दिन हरिद्वार से देहरादून चले गये।

देहरादून

हरिद्वार में कुम्भ-प्रचार का कार्य समाप्त करके पंडित कृपाराम के आग्रह पर महाराज देहरादून पधारे। कुम्भ में रात दिन परिश्रम करने के कारण महाराज को दस्त आने लगे थे। अतः वह कुछ विश्राम करना भी चाहते थे। पर्व के दूसरे दिन ही महाराज ने हरिद्वार से प्रस्थान कर दिया। देहरादून पहुँचने की सूचना पंडित कृपाराम को पूर्व से ही देदी गई थी, अतः उन्होंने एक बंगला किराये पर उनके निवास के लिये ले लिया था।

१४ अप्रेल सन् १८७९ को १० बजे दिन के महाराज देहरादून पहुँचे। पंडित कृपाराम तो छुट्टी न मिलने के कारण स्वागत के लिये न जा सके, परन्तु उन्होंने अपने दो भतीजों को भेज दिया। महाराज बंगले में उतर गये। फिर पंडित कृपाराम भी आगये तो देखा कि वहाँ कतिपय ब्राह्म-समाजी बंगाली उपस्थित हैं। महाराज के आने का समाचार बात की बात में सारे नगर में फैल गया और लोग महाराज के दर्शन और उपदेश के सुनने के लिये उनके पास आने लगे। महाराज रोग से इतने आक्रान्त थे कि वार्तालाप करते हुए उन्हें कई २ बार मलोत्सर्ग के लिये जाना पड़ता था। उनसे बहुतेरा कहा गया कि डाक्टर को बुला लिया जाय, परन्तु वह डाक्टर की औषधि खाने पर सहमत न हुए। दो तीन दिन के पश्चात् रोग कुछ शान्त हुआ।

महाराज की शारीरिक दशा

ब्रह्म-समाजियों पर भरोसा न करना चाहिये

जब प्रथम ही बार पंडित कृपाराम उनसे मिले और लोग चले गये तो उन्होंने पंडित कृपाराम से पूछा कि आपने हमारे व्ययार्थ चन्दा किन २ लोगों से एकत्र किया है। पण्डितजी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्रह्म-समाजी बंगाली थे। महाराज यह ज्ञान करके कुछ क्षुब्ध हुए और कहा कि आप लोगों को इन पर भरोसा नहीं करना चाहिये। यह लोग आज आप के मित्र हैं और कल शत्रु हो जायेंगे। आपने भूल की जो ब्राह्म-समाजियों का विश्वास किया पंडितजी ने कहा कि आप कुछ चिन्ता न करें यदि यह लोग सहायता न करेंगे तो मैं अकेला ही आप की सेवा के लिये उपस्थित हूँ। महाराज ने कहा कि मैं किसी अकेले व्यक्ति को कष्ट देना नहीं चाहता।

व्याख्यानों का आरम्भ

पादरी साहब का कोप-ज्वालामुखी फट गया

जब रोग का वेग कुछ कम हुआ तो डेरे पर ही व्याख्यानों की व्यवस्था की गई। पहला व्याख्यान ईश्वर विषय पर हुआ, दूसरा, वेद के ईश्वरकृत होने पर। व्याख्यान में अंग्रेज़ उपस्थित थे जिनमें से एक पादरी मारिसन थे। महाराज ने बड़ी प्रबल युक्तियों से बाइबिल और कुरान का खण्डन किया जिसे सुनकर पादरी साहब को बहुत आवेश आया, परन्तु व्याख्यान के अन्त तक वह चुप रहे। उसके समाप्त होते ही एक दम उबल पड़े कि पण्डित साहब ने केवल धूल उड़ाई और अपने वेद मत को उस धूल में छिपा लिया। यह भी कहा कि हमने आज तक किसी पण्डित

को वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते नहीं सुना, क्या यही जानकार हैं और सब हिन्दू अजान हैं? फिर बाइबिल के जिन मन्तव्यों का महाराज ने खण्डन किया था उनका मण्डन करने लगे। महाराज ने उनके क्रोध में कहे हुए अनुचित शब्दों की सर्वथा उपेक्षा करते हुए शान्ति से उनको उत्तर दिया। परन्तु पादरी साहब के क्रोध का पारा इतना बढ़ा हुआ था कि महाराज के कथन को सुनते भी नहीं थे और क्रोधवश बीच बीच में चिल्ला उठते थे। उनके साथी एक अंग्रेज़ सज्जन ने अंग्रेजी में उनसे कहा भी कि जिस सुन्दरता और विनय के साथ व्याख्यानदाता अपने पक्ष को सिद्ध करता है उसे आप अयुक्त और रोष भरे शब्दों से रोकना चाहते हैं। मेरी सम्मति में यह अच्छा नहीं। आपको चाहिये कि जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ वह अपने पक्ष के प्रमाणित होने में और आपके पक्ष के खण्डन में युक्ति देता है वैसे ही आप भी दें। पादरी साहब इस सत्य परामर्श को कैसे सुन सकते थे, चटककर बोले कि मैं बहुत उचित उत्तर दे रहा हूँ, यदि आप को उचित प्रतीत नहीं होते तो आप भी इनसे मिल जायँ और यह कह कर सभा से उठकर चले गये, शेष अंग्रेज़ बैठे रहे। चलते २ भी महाराज ने पादरीसाहब से पूछा कि कल भी पधारियेगा, परन्तु वह कुछ बड़बड़ाते हुए चले गये जिसे कोई न समझ सका।

पादरी अपने साथी से भी नाराज़

इसके पश्चात् एक और विचित्र घटना हुई। दो अंग्रेज सज्जनों ने, जिनमें से एक का नाम पारमर था जिन्होंने सत्परामर्श दिया था और दूसरे का नाम गार्टलेन, महाराज से बात चीत करनी चाही। महाराज ने स्वीकार की, परन्तु बीच में मिशन स्कूल के हेड मास्टर विपिन मोहन बोस ने टाँग अड़ा दी और महाराज के सामने बाइबिल का मण्डन करने लगे। इधर तो महाराज उनका उत्तर दे ही रहे थे उधर मि० गार्टलेन ने भी उनका खण्डन करना आरम्भ कर दिया। लोगों को इस अद्भुत दृश्य को देखकर मनोरञ्जन भी हुआ और उन्हें आश्चर्य भी हुआ। ८ बजे से रात्रि के १० बजे तक यही दृश्य रहा।

आपस में ही एक दूसरे का खण्डन करने लगे

इस व्याख्यान में बाइबिल और क़ुरान का खण्डन तो था ही, ब्राह्म-समाज भी लपेट में आगया था। इधर ईसाई रुष्ट, उधर मुसलमान रुष्ट और तीसरी ओर ब्राह्म-समाजी रुष्ट। ब्राह्म-समाजियों ने तो आगे को सहायता देने से ही इनकार कर दिया और सर्वथा विरुद्ध हो गये और महाराज का वचन पूरा हुआ। उस दिन १२ बजे रात्रि तक बात चीत होती रही।

ब्राह्म-समाजी विरुद्ध हो गये

अगले दिन लगभग १५० मुसलमानों की भीड़ महाराज के बँगले पर पहुँची और कहा कि कल जो आपने हमारे धर्म पर दोषारोपण किये हैं आप शास्त्रार्थ कीजिये। महाराज ने कहा कि मैं आप में से हरएक के साथ तो शास्त्रार्थ कर नहीं सकता; प्रथम शास्त्रार्थ के नियम बना लीजिये फिर जो आप लोगों में सब से अधिक विद्वान् हो वह मुझ से शास्त्रार्थ कर सकता है। यह सुनकर उन्होंने कहा कि हम नियम बनाकर लावेंगे और चले गये।

मुसलमानों की भीड़ को जो महाराज के बँगले पर देखा तो पण्डित कृपाराम का भतीजा दौड़ा २ उनके पास दफ़्तर पहुँचा। वह उसकी बातें सुन कर एक दम घबरा उठे और तत्क्षण अपने अफ़सर से छुट्टी लेकर महाराज के बंगले पर पहुँचे, परन्तु उस समय वहाँ कोई नहीं था। महाराज ने उन्हें सब घटना सुनाई और वह शान्त होकर अपने कार्य पर चले गये।

भक्त की चिन्ता

दूसरे दिन व्याख्यान धर्म्म विषय पर था। मुसलमान अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कुछ नियम बना कर लाये और अपनी ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता का नाम मौलाना अहमदहसन बतलाया। महाराज ने मौलाना की योग्यता के विषय में पूछा और जब उन्हें बतलाया गया कि वह एक विद्वान व्यक्ति हैं तो वह उनसे शास्त्रार्थ करने पर सहमत हो गये। मुसलमानों के बनाये हुए नियम सभा में पढ़ कर सुनाये गये और महाराज ने उनमें परिवर्त्तन करके मुसलमानों को वापस दे दिये।

मुसलमान नियम बनाकर लाये

चौथा व्याख्यान पुराणों पर हुआ। पाँचवें से नवें तक आर्य्यावर्त्त के प्राचीन इतिहास पर हुए।

जिस बँगले में महाराज उतरे थे वह एक मेम का था जिसका नाम मिस डिक था। न जाने उसे किसी ने बहकाया वा स्वयं ही उसकी ऐसी इच्छा हुई, उसने कहा कि मेरा बँगला शीघ्र खाली कर दो। तब दूसरे बँगले का प्रबन्ध किया गया, परन्तु इतने ही में सहारनपुर से कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवैट्स्की का महाराज को बुलाने के लिये तार आगया और वह वहां जाने के लिये तैयार हो गये।

बंगला खाली कर दो

देहरादून में एक उल्लेखनीय घटना और भी हुई। बाबू कालीमोहन घोष ब्राह्मसमाजी थे। उनके यहाँ भोजन बनाने पर एक भंगन नियत थी, एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि आप कल भोजन मेरे यहाँ कीजिये। महाराज ने कहा कि मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु मैंने सुना है कि आप लोग अन्त्यजों के हाथ का पका हुआ भोजन खालेते हैं। उन्होंने इसे स्वीकार किया, परन्तु कहा कि मैं यहाँ ऐसा नहीं करता हूँ। महाराज ने उन का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। जब यह बात पण्डित कृपाराम को ज्ञात हुई तो उन्होंने भोजन का एक थाल महाराज के बँगले पर पहुँचा दिया और स्वयं भी वहाँ पहुँच गये। बाबू कालीमोहन के गृह से भी भोजन बन कर महाराज के पास आगया था, परन्तु उन्होंने खाया न था। पण्डित कृपाराम ने सब बातें महाराज को बतला कर बाबू कालीमोहन का भोजन वापस कर दिया इस पर उन्होंने आकर महाराज से कहा कि यह क्या बात है कि कल तो आपने हमारे यहाँ का भोजन करना स्वीकार कर लिया और आज उसे वापस कर दिया। महाराज ने कहा कि आपने यह कहा था कि यद्यपि हम अन्त्यज के हाथ का पकाया हुआ भोजन कर लेते हैं, परन्तु हम यहाँ ऐसा नहीं करते। अब हमें ज्ञात हुआ है कि आपके यहां भंगन भोजन बनाती है।

भंगन का पकाया हुआ भोजन न खायेंगे

एक और उल्लेखनीय घटना इस प्रकार है:—

देहरादून के एक रईस के दो पुत्र थे जो अंग्रेज़ी पढ़े हुए थे। उन पर ईसाइयों ने अपना रंग जमा रक्खा था और वह ईसाई होने को तैयार थे। हिन्दुओं को तो वह तर्क में चुटकियों में परास्त कर देते थे। विवश होकर उनके पिता ने उनसे कहा कि तुम छः मास तक का विज्ञापन दो कि यदि कोई इस अन्तर में ईसाई धर्म्म को असत्य सिद्ध न कर सकेगा तो वह ईसाई हो जावेंगे। किसी हिन्दू धर्म्माभिमानी का यह साहस न हुआ कि ईसाई धर्म्म का निकृष्टत्व और हिन्दू धर्म्म का श्रेष्ठत्व सिद्ध करके हिन्दू धर्म्म की इन लतिकाओं की रक्षा करता। जब महाराज देहरादून पधारे तो छः मास की अवधि में केवल दो चार दिन ही शेष रह गये थे। महाराज को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने उन दोनों भाइयों को अपने पास बुलाया। ईसाई धर्म्म पर बातचीत होने लगी। उन दोनों ने देखा कि जो तर्क शिला के समान दीख पड़ते थे और विपक्षियों के उठाये न उठते थे, वह महाराज के तर्क वज्र से छिन्न भिन्न हुए जाते हैं। अन्त को उन्हें ईसाई धर्म्म का असारत्व स्वीकार करना पड़ा और उन्होंने ईसाई होने का विचार छोड़ दिया। महाराज ने उनसे बहुतेरा कहा कि पादरियों को हमारे पास लाओ, परन्तु पादरी किसी प्रकार भी महाराज के सामने आने पर सम्मत न हुए। पादरियों ने फिर उन लड़कों को कई प्रकार की धमकियाँ भी दीं कि यदि तुम ईसाई न होगे तो साहब कलक्टर तुम से रुष्ट हो जायंगे, परन्तु वह इन धमकियों में न आये। उनके पिता ने महाराज के इस उपकार के बदले में कुछ धन महाराज की भेंट करना चाहा, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया और कह दिया कि इस धन से संस्कृत की पाठशाला बनादो।

रईस के पुत्र ईसाई होने से बच गये

देहरादून से चलते समय पण्डित कृपाराम ने महाराज को ४०) रु० भेंट किये, परन्तु बहुत कुछ आग्रह करने पर ३०) रु० ही लिये।

३० अप्रेल सन् १८७९ को महाराज सहारनपुर के लिये सवार हो गये। सहारनपुर में महाराज केवल दो दिन ठहरे और फिर कर्नेल आल्काट और मैडम ब्लैवैट्सकी के साथ मेरठ चले गये।

आर्यसमाज स्थापित होगया

२९ एप्रिल सन् १८७९ को देहरादून में आर्य्यसमाज स्थापित हो गया।

जन्म के मुसलमान की शुद्धि

महाराज ने यहाँ एक जन्म के मुसलमान मुहम्मद उमर को शुद्ध करके उसका नाम अलखधारी रक्खा था।

चतुर्विंश अध्याय

ज्येष्ठ संवत् १९३६,–माघ संवत् १९३६

कर्नल और मैडम

कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्सकी स्वामीजी के मिलने के अत्यन्त उत्सुक थे। वह इसी अभिप्राय से सहारनपुर आगये थे। बम्बई से ही उन्होंने स्वामीजी को लिखा था कि हम हरद्वार आप से मिलने आवें, परन्तु स्वामीजी ने यह समझकर कि उन्हें मेले में बहुत कष्ट होगा और उपदेश कार्य के कारण उन्हें पूरा समय भी न दे सकेंगे हरद्वार आने से निषेध कर दिया था। जब कर्नल और मैडम सहारनपुर पहुँचे तो स्वामीजी देहरादून में थे। उक्त महानुभावों ने स्वामीजी को सूचना दी कि हम देहरादून आते हैं, परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप न आयें हम स्वयम् ही सहारनपुर आते हैं। अतः १ मई सन् १८७९ को महाराज सहारनपुर आगये। सहारनपुर के आर्य्य बन्धुओं ने कर्नल और मैडम का हृदय से स्वागत किया और उनकी सेवा सत्कार में कोई बात उठा न रक्खी। स्वामीजी दो दिन सहारनपुर रहे और कर्नल और मैडम से मिले। दो दिन के पश्चात् स्वामीजी दोनों व्यक्तियों को साथ लेकर मेरठ पहुँचे। रेलवे स्टेशन पर मेरठ के आर्य्य पुरुषों ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया और कर्नल और मैडम को एक कोठी में और स्वामीजी को दूसरी कोठी में ठहराया।

कर्नल और मैडम का बाह्य व्यवहार

६ मई तक कर्नल और मैडम स्वामीजी से मिलते और अधिकतर योग विषय पर बात-चीत करते रहे। इस सम्मिलन में उन्होंने अपने किसी आचार विचार से यह प्रकट नहीं किया कि वह ईश्वर और वेद में श्रद्धा और विश्वास नहीं रखते बल्कि क्या वचन से और क्या कर्म से उन्होंने अपने आप को वैदिक धर्म्मी और आर्य्य ही प्रकट किया। वह आर्यों के समान खान पान और व्यवहार करते रहे और क्या निज में और क्या पब्लिक में अपने को आर्य्य कहते रहे। कर्नल और मैडम के व्याख्यान भी हुए, उनमें भी उन्होंने वैदिक धर्म्म का महत्व वर्णन किया और ईसाई धर्म का खण्डन किया। महाराज ने इन लोगों के आचार-व्यवहार देख कर विश्वास कर लिया। इन के अमेरिका से भेजे हुए पत्रों से

जो विश्वास उत्पन्न हुआ था वह दृढ़तर होगया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने पत्र ता० ९-५-७८ को बाबू माधोलालजी को उनके विषय में यह शब्द लिखे—अमरीकन साहबों ने सब लोगों के चित्त पर यह निश्चय करादिया कि जितनी भलाई और विद्या हैं वे सब वेद से निकलीं हैं और जितने वेदविरुद्ध मत हैं वे सब पाखण्ड रूप हैं।

७ मई को कर्नल और मैडम बम्बई चले गये।

मुहम्मदक़ासिम से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़

देवबन्द के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मदक़ासिम मेरठ आये और उन्होंने स्वामीजी से शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया, परन्तु जो लोग मौलवी साहब का शास्त्रार्थ करने का सन्देश लेकर आये थे उनसे स्पष्ट कह दिया कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और दर्शकों की संख्या नियत होगी। उस समय किसी ने इस पर आक्षेप नहीं किया। १० मई को शास्त्रार्थ के नियम निर्धारणार्थ सभा हुई, परन्तु उसमें बहुत भीड़ होगई थी अतः यह निश्चय हुआ कि उभय पक्ष की ओर से दस-दस सज्जन एक कमरे में बैठ कर नियम बनालें। ऐसा ही हुआ भी। मिस्टर कैस्पियन, हेड मास्टर गवर्नमेण्ट हाई स्कूल को भी इस उपसभा में सम्मिलित किया गया। मुसलमान पहले से ही निम्न लिखित नियम बना कर अपने साथ लाये थे, वह सभा में पढ़े गये।

मुसलमानों के प्रस्तावित नियमः—

१—शास्त्रार्थ की तिथि में कम से कम आठ दिन का अन्तर होना चाहिए ताकि शास्त्रार्थ देखने के इच्छुक दूरदेशस्थ लोग भी उससे लाभ उठासकें और यदि पण्डितजी को जाने की शीघ्रता हो तो इससे कम अन्तर सही।

२—जैसे पण्डितजी ने व्याख्यान देते समय जो धर्म्मों पर आक्षेप करने का समय होता है उपस्थित होने वालों की कोई संख्या नियत नहीं की, ऐसे ही शास्त्रार्थ के समय जो औरों की ओर से उत्तर देने का समय होता है, उपस्थित होने वालों की संख्या नियत न होनी चाहिये।

३—वक्तृता के समय कोई ऐसी बात न रक्खी जावे जो वक्ता की वक्तृता में बाधक हो। जैसे यह न हो कि वक्ता एक वाक्य कह कर चुपका हो रहे, जब लिखने वाला लिख चुके तो फिर उसे कहने की आज्ञा हो, अन्यथा फिर लेख-बद्ध और मौखिक शास्त्रार्थ में क्या भेद होगा।

४—शास्त्रार्थ का समय प्रातःकाल के ७ बजे से ११ बजे तक होना चाहिए ताकि मुसलमानों को नमाज़ आदि धार्म्मिक आवश्यकताओं के लिये बेचैन होने की आवश्यकता न हो।

५—वक्तृता के लिए कोई समय नियत न किया जाय, क्योंकि कौन अपनी वक्तृता को समय पर नाप तौल कर लाता है और यदि बिना कारण असम्बद्ध कथन के भय के कारण लिखना ही अभीष्ट हो और हम वक्तृता के अपूर्ण रह जाने से असफल मनोरथ रह जाने की आशङ्का पर दृष्टि न भी डालें तो भी अपने धर्म के महत्व को वर्णन करने वाले के लिये एक घण्टा और उत्तरदाता के आक्षेप के लिये आधे घण्टे से कम न होना चाहिये।

६—मुसलमानों को तो अपने धर्म्म के सत्य समझाने के लिये अन्य धर्म्मों के नेताओं को बुरा कहने की आवश्यकता नहीं, परन्तु अन्य धर्म्म वालों से यह आशङ्का है। इसलिये यह निवेदन करना आवश्यक है कि श्रीमान् इसलाम के पैग़म्बर, जिन पर हो दरूद और सलाम और उनके महान् अनुयायियों का अपमान न होने पावे।

७—उभय पक्ष उर्दू भाषा में बात-चीत करें और यथाशक्ति ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचें जो औरों की समझ में न आवें।

८—शास्त्रार्थ का स्थान न वह स्थान हो जहाँ पण्डितजी उतरे हैं, न वह जगह हो जहाँ मौलवी मुहम्मदक़ासिम साहब ठहरे हैं। यदि हो तो वह जगह हो जो शहर, लाल कुर्ती, रजबन व सदर के बीच के लगभग हो ताकि किसी को अन्तर के न्यूनाधिक होने का आक्षेप न हो।

९—शास्त्रार्थ-गृह विस्तृत हो ताकि उपस्थित होने वालों को कष्ट न हो।

१०—यदि एक प्रश्न वा आक्षेप पण्डितजी की ओर से हो तो एक प्रश्न वा आक्षेप हमारी ओर से होना चाहिये।

उक्त नियमों पर स्वामीजी की समालोचनाः—

इन नियमों के सम्बन्ध में स्वामीजी ने अपना वक्तव्य इस प्रकार प्रकट किया।

१—मैं शास्त्रार्थ की प्रतीक्षा में नहीं रह सकता। आज से तीसरे दिन बुधवार को शास्त्रार्थ आरम्भ हो जाना चाहिये। (इसे मौलवीसाहब ने स्वीकार कर लिया)

२ व ३—मौखिक शास्त्रार्थ कदापि मेरे मनोनीत नहीं हो सकता। मैंने शास्त्रार्थ के सन्देशहरों से पहले ही यह बात स्वीकार कराली थी कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और दर्शक चुने हुए होंगे और तभी मैंने आप लोगों को कष्ट दिया था। मौखिक शास्त्रार्थ में उभय पक्ष वालों को यह कहने का अवसर मिल जाता है कि हमने अमुक बात नहीं कही थी वा अमुक बात कही थी और हरएक अपनी जीत और दूसरे की हार बतलाने लगता है। लिखी बात को कोई बदल नहीं सकता। लिखी बात के आगे किसी को यह कहने का साहस नहीं हो सकता कि मैं जीता और विपक्षी हारा। लेखबद्ध शास्त्रार्थ को पढ़कर सहस्रों मनुष्य जो शास्त्रार्थ में उपस्थित न हों उससे उतना ही लाभ उठा सकते हैं जितना उपस्थित लोग। शास्त्रार्थ शिक्षित और बुद्धिमान् मनुष्यों के लिये होता है न कि मूर्ख, अशिक्षित और उजड्ड लोगों के लिये। दर्शकों की संख्या नियत न होने से ऐसे ही लोगों का बाहुल्य होगा और उपद्रव का भय रहेगा। इसके अतिरिक्त आप जो कहते हैं कि सब लोगों को शास्त्रार्थ के देखने का अवसर मिलना चाहिये सो न जाने सब से आपका क्या अभिप्राय है। सारे भारतवर्ष के लोग तो क्या मेरठ के भी सब लोग एकत्र नहीं हो सकते, क्योंकि कोई स्थान इतना बड़ा नहीं हो सकता जिस में सब नगर निवासी समा सकें और यदि दस बीस सहस्र आभी गये तो सब लोग वक्तृताओं को सुन नहीं सकते। मौलवी साहब ने कहा कि लिपिबद्ध होने की दशा में वक्तृता का प्रवाह रुक जाता है और बुद्धि कुण्ठित हो जाती है (इस पर केस्पियन साहब ने कहा कि जिस वक्ता की यह दशा हो उसका परमेश्वर ही रक्षक है)। घर बैठे लिख कर शास्त्रार्थ करने से वर्षों में भी कोई परिणाम नहीं निकलता। आमने-सामने

बैठ कर शास्त्रार्थ करने में परिणाम शीघ्र निकल आता है क्योंकि एक पक्ष को दूसरे पक्ष के आक्षेपों का उत्तर तुरन्त देना पड़ता है और जो उत्तर नहीं दे सकता उसका पक्ष गिरा हुआ समझा जाता है। व्याख्यान और शास्त्रार्थ में भेद है। व्याख्यान से व्याख्याता अपनी सम्मति प्रकट करता है और किसी को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। शास्त्रार्थ में एक आक्षेप करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है।

४—प्रातःकाल राजकर्मचारी और न्यायालय से सम्बन्ध रखने वाले उपस्थित नहीं हो सकते। रात्रि का समय ही ठीक है। मुसलमान नमाज़ पढ़ने जा सकते हैं, उसमें बाधा नहीं पड़ेगी।

५—यदि समय नियत न किया जायगा तो एक ही मनुष्य सारा समय लेलेगा। शास्त्रार्थ में अपने धर्म्म के गुण गान का कोई अवसर ही नहीं है, वहाँ तो प्रश्न करना और उत्तर लेना है। प्रश्नकर्त्ता के लिये अधिक समय की आवश्यकता नहीं है। प्रश्न तो थोड़ी ही देर में किया जा सकता है, हाँ उत्तर देने में अधिक समय लगता है, अतः प्रश्नकर्त्ता के लिये ५ और उत्तरदाता के लिये १५ मिनट होने चाहियें।

६—किसी धर्म के नेता के लिये कोई असभ्य वाक्य न कहा जाना चाहिये, परन्तु उसके बचन और कर्म पर अवश्य आक्षेप किया जायगा क्योंकि बिना ऐसा किये शास्त्रार्थ असम्भव है। यदि मौलवीसाहब का यहां भी वही अभिप्राय है जो चाँदापुर में था अर्थात् यह कि यदि कोई मुहम्मदसाहब को बुरा कहेगा तो वह बध्य होगा तो शास्त्रार्थ हो लिया, क्योंकि जब विपक्षी का बध ही कर दिया गया तो शास्त्रार्थ कौन करेगा।

७—मैं जितनी भाषा जानता हूं स्पष्ट २ कहूँगा यदि किसी पक्ष का कोई शब्द दूसरे पक्ष की समझ में न आवे तो उपस्थित जन में से कोई जो दोनों भाषा जानते हों समझा दिया करें।

८ व ९—(इस उप-सभा में) उपस्थित सज्जनों को अधिकार है कि चाहे जौनसा स्थान नियत करें।

१०—मैं अनुमति देता हूं कि पहले आप ही वेद पर आक्षेप करें और मैं उत्तर दूँ और फिर मैं कुरान पर आक्षेप करूँ और आप उत्तर दें।

जब कोई बात निश्चित न होसकी तो यह ठहरा कि पाँच पञ्च नियत किये जावें और वह निर्णय करदें। परन्तु यह पाँचों इकट्ठे न होसकें और मौलवीसाहब ने स्वामीजी की बात न मानी जो सर्वथा न्याय और युक्ति के अनुकूल थी, वह अपनी ही अड़ पर जमे रहे और यहीं शास्त्रार्थ की बात चीत समाप्त होगई। वास्तव में मौलवी साहब को शास्त्रार्थ करना अभीष्ट ही न था। वह तो उपद्रव का अवसर ढूँढना चाहते थे। उन्होंने यहाँ भी वही किया जो रुड़की में किया था।

ज्येष्ठ शुक्ला २ संवत १९३६ अर्थात् २२ मई सन् १८७९ को महाराज मेरठ से अलीगढ़ चले गये और वहाँ जाते ही रुग्ण होगये। वहाँ से २८ मई को छलेसर गये जहाँ उनकी सम्यक् रूप से चिकित्सा की गई। जब कुछ रोगमुक्त होगये तो ३ जुलाई को मुरादाबाद चले गये।

३ जुलाई सन् १८७९ को स्वामीजी मुरादाबाद पधारे और राजा जयकिशनदाश की उसी कोठी में ठहरे जिसमें पहले ठहरे थे। महाराज का शरीर रुग्ण था अतः इस वार उनके केवल ३ ही व्याख्यान हुए। उनमें से एक व्याख्यान मुरादाबाद छावनी की पीली कोठी में हुआ था। यह व्याख्यान मुरादाबाद के तत्कालीन जोइन्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर स्पीडिंग की इच्छा और अनुरोध से हुआ था और इसका प्रबन्ध भी उन्होंने ही किया था। श्रोताओं के लिये टिकिट रक्खे गये थे जो स्वामीजी के अनुयायियों, और राजकर्म्मचारियों, वकीलों तथा प्रतिष्ठित और सुशिक्षित लोगों को ही दिये गये थे, अतः श्रोताओं की संख्या केवल ३ सौ के लगभग थी। व्याख्यान का विषय राजनीति था। प्रथम महाराज ने "शंन्नो मित्रः शंवरुणः" इत्यादि मन्त्र का ऐसे मधुर और गम्भीर स्वर में उच्चारण किया कि लोग सुनकर मुग्ध होगये और सभा-स्थल में अपूर्व शान्ति छागई।

मुरादाबाद

राजनीति पर व्याख्यान

मन्त्रोच्चारण से ही लोग मुग्ध होगए

स्वामीजी ने राजा और प्रजा के धर्म्म और दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को ऐसी विशद युक्ति-संगत रीति में वर्णन किया कि लोग सुन कर चकित रह गये। एक संन्यासी से जो केवल संस्कृत जानता था राजनीति के गूढ़ तत्त्वों का ऐसा उत्तम विवेचन सुनना उनके लिये सर्वथा नूतन और अप्रत्याशित अनुभव था। ऐसा विवेचन तो उन्होंने किसी अंग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति से भी न सुना था और कालेज के ग्रेजुएटों ने अंग्रेजी की पुस्तकों में भी न पढ़ा था। व्याख्यान कई घण्टे तक होता रहा और लोग उन्हें एकमन होकर सुनते रहे। व्याख्यान के अन्त में स्पीडिंग साहब ने उठ कर महाराज की भूरि भूरि प्रशंसा की और कहा कि यदि राजा और प्रजा का एक दूसरे के प्रति ऐसा ही व्यवहार हुआ होता जैसा कि विद्वान व्याख्याता ने वर्णन किया है तो सिपाही-विद्रोह का हत्या-काण्ड ही न होता और राजा और प्रजा को वह विपत्तियां न सहनी पड़तीं जो उन्हें सहनी पड़ीं। तत्पश्चात् उन्होंने स्वामीजी को धन्यवाद देकर सभा विसर्जन की।

ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के द्वारा प्रशंसा

अभी कुछ लोग सभा में बैठे हुए थे कि बाबू कालीप्रसन्न वकील किसी से अंग्रेजी में बातचीत करने लगे। इस पर स्वामीजी ने उन्हें उपदेश दिया कि सभा में बैठ कर ऐसी भाषा में बातचीत करना जिसे अन्य सभासद न समझ सकें अनुचित और चोरी की बात है। उनसे स्वामीजी ने यह भी कहा कि आप क्या कह रहे हैं, यह मुझे तो दूसरे अंग्रेजी जानने वाले बतला देंगे, परन्तु यदि मैं संस्कृत में बोलने लगूँ तो आपको कौन बताएगा।

सभा में बैठकर कैसी भाषा बोलनी चाहिये

एक दिन एक पण्डित जिसका नाम नारायणदास और उपनाम पीपल पत्ता था, महाराज से संस्कृत में बातचीत कर रहा था। कहीं महाराज के मुख से कोई शब्द अशुद्ध निकल गया। उसने महाराज को टोका, उन्होंने सरलता पूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। परन्तु नारायणदास को तो मानो बन्दर को सोंठ की गांठ हाथ आगई, उसने समझा

पीपल पत्ते का संस्कृत-भाषण

कि मेरी बराबर पंसारी ही नहीं है। वह बात २ में स्वामीजी से कहने लगा कि आपकी भूल मैंने पकड़ ली और अपने पाण्डित्य पर घमण्ड करने लगा, तब तो स्वामीजी ने उसे फटकारा कि अरे छोकरे मुझ से यदि भूल होगई थी तो मैंने स्वीकार करली, परन्तु तू उसी पर आग्रह किये जाता है, यदि मैं भी हठ और दुराग्रह करने लगूँ, तो उस शब्द को ठीक सिद्ध कर सकता हूँ; परन्तु मैं तो ऐसा करना अधर्म्म समझता हूँ। यदि तुझ में कुछ विद्या है तो विद्या की बात कर। साहू श्यामसुन्दर के लघु भ्राता साहू ब्रजरत्न भी बैठे हुए थे। तब तक वे स्वामीजी के अनुगत नहीं हुए थे। उन्होंने भी नारायणदास से कहा कि यदि आप वेद से मूर्त्तिपूजा सिद्ध कर सकें तो कोई मन्त्र प्रस्तुत कीजिए, परन्तु वह कोई मन्त्र न बता सका और उठ कर चला गया।

भूल स्वीकार करली

स्वामीजी को उन दिनों संग्रहणी रोग ने कष्ट दे रक्खा था। पहले एक वैद्य से चिकित्सा कराई गई, जब उस से कुछ लाभ न हुआ तो मुरादाबाद के सिविल सर्जन डाक्टर डीन से चिकित्सा कराई। स्वामीजी के भक्तों ने उन्हें २००) फीस के देने चाहे, परन्तु इन्होंने यह कह कर फीस लेने से इन्कार कर दिया कि स्वामी जगदुपकारी पुरुष हैं, मैं इनकी चिकित्सा की फीस लेनी नहीं चाहता। तब मुरादाबाद की बनी हुई कुछ वस्तुएं उन्हें भेंट में दी गई जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार करलीं और कहा कि इन्हें हम विलायत के म्यूज़ियम में रक्खेंगे।

डाक्टर ने फीस नहीं ली

मुन्शी इन्द्रमणि से स्वामीजी की इस बात पर कि आर्य्यों में अभिवादन का क्या शब्द होना चाहिये कुछ विवाद हुआ। स्वामीजी उससे पहले से ही 'नमस्ते' शब्द निर्धारित कर चुके थे और उसी का प्रचार करते आते थे। मुंशी इन्द्रमणि चाहते थे कि जब दो आर्य्य परस्पर मिलें तो एक कहे 'परमात्मा जयते' और दूसरा उत्तर दे 'जयते परमात्मा'। बात यह थी कि मुंशीजी ने यह अभिवादन-विधि मुसलमानों के अनुकरण में निर्धारित की थी। एक मुसलमान जब दूसरे से मिलता है तो कहता है 'अस्सलामो अलैकुम' (शान्ति हो तुम पर) दूसरा उत्तर में कहता है 'व अलैकुमस्सलाम' (और तुम पर हो शान्ति)। इस पर स्वामीजी और मुंशीजी में निम्न प्रकार वाद-प्रतिवाद हुआ:—

अभिवादन पर शब्द-विचार

मुंशीजी—हमने पहले 'जय गोपाल' शब्द प्रचलित करना चाहा था, फिर 'परमात्मा जयते' प्रचलित किया। उस पर लोगों ने बहुत द्वन्द मचाया और उपहास किया, परन्तु अब विवाद ठण्डा पड़ गया है, यदि अब 'नमस्ते' शब्द प्रचलित किया जावेगा तो फिर द्वन्द मचेगा। इसके अतिरिक्त अभिवादन में परमेश्वर का नाम आना चाहिये। नमस्ते कहने में यह बुराई भी है कि जो राजा से 'नमस्ते' कहा जावे तो राजा भी उसके उत्तर में 'नमस्ते' कहे, चाहे वह मनुष्य बहुत क्षुद्र कोली वा चमार ही हो।

स्वामीजी—मुंशीजी बड़ा किसे कहते हैं ? जिस मनुष्य ने यह अभिमान किया कि मैं बड़ा हूँ, अर्थात राजा वा विद्वान् वा शूरवीर हूँ, तो उसकी बड़ाई में दोष आगया। देखिये जितने महाराजाधिराज, शूरवीर और विद्वान् हुए हैं उन्होंने अपने मुख से अपने आप को

बड़ा कभी नहीं कहा। नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है। इससे राजा और प्रजा दोनों को आपस में नमस्ते कहना ठीक है। अब हम आप से यह पूछते हैं कि आप अपने अन्तःकरण से सत्य-सत्य कह दीजिये कि जब कोई मनुष्य आप के गृह पर आता है वा आप से मिलता है तो आपके मन में क्या विचार आता है ? मुन्शीजी चुप रहे।

तब स्वामीजी ने कहा कि कौन नहीं जानता कि प्रतिष्ठित को देख कर उसका सम्मान और छोटे को देख कर उसके साथ सद्व्यवहार का विचार उस समय उत्पन्न होता है, फिर बतलाइये ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है। मनुष्यों को चाहिए कि जो उसके मन में हो वही मुख से कहे और यह आप का दोष है कि आपने पहले 'जयगोपाल' और फिर 'परमात्मा जयते' प्रचलित किया। विचार करके ऐसा शब्द क्यों न प्रचलित किया जावे जो पहले एतद्देशवासियों में प्रचलित था। अतः सर्व आर्य्यसमाजिकों को 'नमस्ते' कहना ही ठीक है जैसा कि सदा से महर्षि लोगों में प्रचार था और 'नमस्ते' शब्द वेदों में भी आया है। हम यजुर्वेद से प्रमाण दे सकते हैं, आप 'परमात्मा जयते' का किसी ग्रन्थ से प्रमाण नहीं दे सकते।

इसके पश्चात् उसी दिन मध्यान्होत्तर में बहुत से प्रमाण वेदों और आर्ष ग्रन्थों से निकाल कर दिखलाये, मुन्शीजी उत्तर तो कुछ न दे सके, परन्तु हठ से स्वामीजी की बात-को स्वीकार भी न कर सके।

इस विषय पर भी लाला जगन्नाथदास ने जो कुछ देवेन्द्र बाबू से कहा वह भी इसी उद्देश्य से कहा जिससे स्वामीजी का लघुत्व और मुन्शी इन्द्रमणि का महत्व प्रकट हो। उनका कथन है कि मुन्शीजी ने कहा कि नमस्ते शब्द अशुद्ध है इस पर स्वामीजी ने कहा कि अब तो यह प्रचलित होगया, अब तो इसे ही चलने दो। इसके यह अर्थ हैं कि मानो स्वामीजी ने नमस्ते शब्द का अशुद्ध होना स्वीकार कर लिया। नमस्ते शब्द अशुद्ध है ही नहीं तो स्वामीजी उसकी अशुद्धता स्वीकार कैसे कर लेते, जब कि हम देखते हैं कि स्वामीजी की युक्ति-युक्त और प्रमाणपुष्ट बातों का मुन्शीजी कुछ भी उत्तर नहीं दे सके थे।

लाला जगन्नाथदास ने जो कुछ भी उपर्य्युक्त विषय वा जीव के अनादित्व के विषय में कहा वह द्वेष से परिचालित होकर स्वामीजी के ऊपर दोषारोपण करने के अभिप्राय से कहा और अयथार्थ कहा, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है।

नमः के अर्थ

स्वामीजी की मुरादाबाद के पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र से जिन्हों ने यजुर्वेद का भाषार्थ छपवाया था यजुर्वेद के 'नमो नमः' वाले अध्याय के सम्बन्ध में बातें हुई थीं। उस अध्याय में कुक्कुरादि के प्रति भी नमो नमः का प्रयोग किया गया है। इस पर स्वामीजी ने कहा था कि नमः के अर्थ अन्न और वज्र के हैं।

शास्त्रार्थी पण्डित काँपने लगे

एक दिन तीन पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के विचार से उनके पास आये। परन्तु शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा स्वामीजी को देख कर काँपने लगे और उनके मुँह से बात तक निकलना कठिन होगया। स्वामीजी ने उनकी यह दशा देख कर दयापूर्ण भाव से कहा कि आप लोग घबराएँ नहीं, सावधान होकर मुझ से कहो कि क्या पूछते हो। इस पर पण्डितों में कुछ

साहस आया और उन्होंने कहा कि महाराज! आप के सम्मुख बातचीत करने का हमारा क्या सामर्थ्य है और इसके अतिरिक्त हम अकेले हैं, आप के सब शिष्य यहाँ बैठे हैं, हमारी कौन मानेगा। स्वामीजी ने कहा कि आपको अधर्म्म की बात कहते हुए लज्जा नहीं आती। देखो आपके सामने हमारा शिष्य जगन्नाथदास (उपर्युक्त जगन्नाथ दास) हमारे कहने मात्र से किसी बात को नहीं मानता और हम से कह रहा है कि महाराज! जब तक आप प्रमाण सहित मुझे न बतलावेंगे मैं कभी न मानूँगा, यह लोग हमारी हाँ में हाँ मिलाने वाले नहीं हैं। पण्डितों ने कोई बात ढंग की न कही और व्यर्थ समय खोकर चले गये।

आर्यसमाज स्थापित होगया

उन्हीं दिनों मुरादाबाद में आर्य्यसमाज स्थापित करने का आयोजन हुआ। २० जुलाई १८७९ को राजा जयकिशनदास की कोठी पर बाग की एक रविश में हवन कुण्ड खोदा गया और पुष्कल सामग्री और घृत प्रस्तुत किया गया और मोहनभोग बनाया गया। परन्तु वर्षा के कारण उस जगह हवन न हो सका। बहुत देर तक वर्षा के बन्द होने की प्रतीक्षा की गई, परन्तु वह बन्द न हुई। तब स्वामीजी ने आज्ञा दी कि बहुत देर होगई है और वर्षा बंद नहीं होती, उपस्थित लोगों में कई धनाढ्य पुरुष भी हैं जो इस समय तक अपने अपने घरों पर भोजन कर चुके होते, अतः कमरे के भीतर ही थोड़ासा हवन कर लिया जाय और उपस्थित लोगों को मोहन-भोग बाँट दिया जाय। स्वामीजी की आज्ञानुसार ही कार्य्य किया गया और आर्य्यसमाज स्थापित होगया जिसके प्रधान मुन्शी इन्द्रमणि निर्वाचित हुए।

अब मैं तुम्हारे घर भोजन करूंगा

स्वामीजी को यह ज्ञात होगया था कि साहू श्यामसुन्दर ने सब दुराचार छोड़ दिये हैं अतः उन्होंने साहू साहब से कहा कि अब हम तुम्हारे यहाँ भोजन करेंगे। तुम अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव किया करो। उस दिन वह साहू साहब के घर पर भोजन करने पधारे और उनकी माता से कहा कि जिस दिन तुम्हारा पुत्र बलिवैश्वदेव न करे उसे कदापि भोजन न देना।

स्वामीजी ने मोहन-भोग में थूक दिया है

जब मोहनभोग बाँटा गया तो धूर्त्त-मण्डली ने नगर में यह प्रसिद्ध कर दिया कि जो मोहनभोग लोगों ने खाया है उसमें पहले दयानन्द ने थूक दिया था। किसी ने उसी समय नगर से आकर यह बात स्वामीजी से कह दी, तो वह बहुत हँसे और कहने लगे मूर्खों में ऐसी ही बातें हुआ करती हैं। परन्तु यह कोरी बातें ही होकर न रहीं, बिरादरियों में पञ्चायतें होने लगीं और आर्य्यसमाज के सभासदों को जिन लोगों ने मोहनभोग खाया था जाति-च्युत करने की धमकी दी जाने लगी। इस पर जो भीरु थे वह तो आर्य्यसमाज से अलग हो बैठे, परन्तु जो दृढ़ विचार के थे वह इन गीदड़ भबकियों में न आये और आर्य्यसमाज के सदस्य बने रहे।

स्वामीजी ३० जुलाई को मुरादाबाद से बदायूँ के लिये प्रस्थित हुए।

मुरादाबाद से प्रस्थान करके स्वामीजी ३१ जुलाई सन् १८७९ की रात्रि के तीन बजे

बदायूँ

बदायूँ पहुँचे। मुरादाबाद से ही बदायूँ आर्यसमाज के सभासद उन के साथ आये थे। समाज के अन्य सभासद भी रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये पहुँच गये थे। उनके निवास के लिये साहू गङ्गाराम के बाग़ में प्रबन्ध किया गया था।

बदायूँ में आर्यसमाज स्वामीजी के आगमन से पूर्व मई सन् १८७९ में स्थापित हो गया था।

श्रावणी का त्योहार

स्वामीजी के आते ही धर्म्मजिज्ञासु सज्जन उनके पास आकर प्रश्नोत्तर करने लगे और उस धर्म्मरत्नाकर में से बहुमूल्य धर्म्म-रत्न हृदय की जेबों में भर २ लेजाने लगे। २ अगस्त १८७९ को श्रावणी का त्योहार था। उस दिन प्रचलित रीति के अनुसार हिन्दू हाथों में एक डोरी जो अनेक प्रकार की होती है बांधते हैं जिसका नाम रक्षा है। रक्षा बांधने की रीति को रक्षा-बन्धन कहते हैं और इसी कारण से इस त्योहार का नाम रक्षा-बन्धन पड़ गया है। प्राचीन काल में इस दिन उपाकर्म्म होता था अर्थात् गुरुकुल विश्वविद्यालयों के अधिवेशन हुआ करते थे, जैसे अब यूनिवर्सिटियों के हुआ करते हैं, जिनमें वर्षा के आरम्भ में स्थगित किया हुआ वेदाध्ययन फिर से आरम्भ किया जाता था, इसका नाम श्रावणी वा ऋषितर्पणी था।

रक्षाबन्धन का अर्थ

उस दिन युवा-वृद्ध जो भी स्वामीजी के पास आये अपने हाथों में 'रक्षा' बाँधे हुए थे। स्वामीजी उन्हें देखकर हँसे और कहा कि आप लोगों ने 'रक्षा' क्यों बाँधी है, आप अपने देश की रीति भूल गये। आज के दिन राजा की ओर से बृहद्यज्ञ होता था और जितने विद्यार्थी शालाओं में पढ़ते थे उनके हाथ में राजा की ओर से 'रक्षा' बाँधी जाती थी, जिससे प्रजा और राज-पुरुष उनकी रक्षा करें और कोई उन्हें कष्ट न दे।

शास्त्रार्थ

४ अगस्त को कुछ पण्डितों की ओर से एक पत्र स्वामीजी के पास आया जिस में शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की गई थी, स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करना सहर्ष स्वीकार किया। यह शास्त्रार्थ दो दिन तक होता रहा। इसका संक्षिप्त विवरण पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में इस प्रकार दिया हुआ है:—

पं० रामप्रसाद—ईश्वर साकार है और इस में यजुर्वेद अध्याय ३१ का पहला मंत्र 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि प्रमाण है, यदि ईश्वर साकार नहीं तो उसे 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि क्यों लिखा है।

स्वामीजी—सहस्र कहते हैं सम्पूर्ण जगत् और असंख्य को जिसमें असंख्य शिर, आंख और पैर ठहरे हुए हैं, उसे सहस्रशीर्षा आदि कहते हैं, यह नहीं कि उसके सहस्र शिर आदि हैं।

पण्डित रामप्रसाद ने अमरकोष का प्रमाण दिया।

स्वामीजी—वेदों (वेदार्थ) में प्रमाण अमरकोष नहीं बल्कि निरुक्त और निघण्टु आदि हैं।

रामप्रसाद—हमने तो वह पढ़े ही नहीं। विष्णु की स्त्री लक्ष्मी है और वह साकार है, लक्ष्मी-सूक्त इसमें प्रमाण है।

अश्वपूर्णां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिताम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मादेवी जुषताम् ॥

इसमें जो विशेषण दिये गये हैं उनसे उसका साकार होना प्रमाणित होता है।

स्वामीजी—यह संहिता का वाक्य नहीं है और जो तुम उसे विष्णु की स्त्री समझ कर बुलाते हो तो विष्णु तुम्हें अपनी स्त्री नहीं देगा और उसके मांगने से तुम पाप के भागी होगे और वह भी व्यभिचारिणी ठहरेगी। लक्ष्मी के अर्थ राजलक्ष्मी और लक्ष्मी, राज्य की सामग्री और शोभा के हैं और इसी कारण इस श्लोक में हाथी, रथ और घोड़ों का उल्लेख है।

रामप्रसाद—आप कहते हैं वेदों के पढ़ने का सबको अधिकार है, यह अनुचित है; वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को है और उनमें भी मुख्यतः ब्राह्मणों को।

स्वामीजी—यथेमां वाचं कल्याणीम् इत्यादि इस मन्त्र से स्पष्ट रूप से सिद्ध है कि वेद पढ़ने का सबको अधिकार है।

रामप्रसाद—जो रामचन्द्र और कृष्णादि हुए हैं वह साक्षात् परमेश्वर के अवतार हैं।

स्वामीजी—ऐसा समझना वेदविरुद्ध है, परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता।

रामप्रसाद—'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।' यजुर्वेद के इस मन्त्र से विष्णु का वामनावतार सिद्ध होता है।

स्वामीजी—इससे वामनावतार सिद्ध नहीं होता। इसके अर्थ यह हैं कि परमेश्वर सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापित करके धारण कर रहा है, यह नहीं कि परमेश्वर ने तीन प्रकार से पैर रक्खा जैसा कि तुम कहते हो।

यहाँ पण्डित रामप्रसाद तो चुप होगये, परन्तु पण्डित वृन्दावन बोले—

वृन्दावन—इससे कैसे ज्ञात हुआ कि विष्णु साकार नहीं है।

स्वामीजी—विष्णु (शब्द) के अर्थ तो करो कि किस धातु से बना है।

वृन्दावन—'विष्लृ व्याप्तौ' से विष्णु बनता है, अर्थात् जो सर्वव्यापक हो वह विष्णु है।

स्वामीजी—फिर जो व्यापक है वह साकार कैसे हो सकता है?

रामप्रसाद—मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः—यजुर्वेद के इस मन्त्र में जो कुचर शब्द आया है इससे मत्स्य आदि अवतार सिद्ध होते हैं, क्योंकि कुचर का अर्थ है, पृथ्वी पर चलने वाला।

स्वामीजी—कुचर (शब्द) से मत्स्य आदि अवतार सिद्ध नहीं होते। 'कु' के अर्थ वेद में कभी पृथ्वी के नहीं लिये जाते।

रामप्रसाद—महीधर की टीका में तो ऐसा ही लिखा है।

स्वामीजी—महीधर की टीका बहुधा अशुद्ध है, निरुक्त और निघण्टु आदि के बिना वेद का शुद्ध अर्थ नहीं हो सकता।

रामप्रसाद—फिर आपने महीधर की टीका क्यों रक्खी हुई है।

स्वामीजी—खण्डन के वास्ते। और देखो 'गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे' इत्यादि आठ दश मन्त्रों पर इसका कैसा अशुद्ध अर्थ है कि यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे आदि आदि, क्या ऐसे अर्थ प्रमाण के योग्य हैं? वेदों पर जो ऋषियों की टीका हैं वही प्रमाण के

योग्य हैं, और अवतार का न होना यजुर्वेद के 'स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' इत्यादि मन्त्र से सिद्ध है कि सर्वव्यापक परमेश्वर कल्याणस्वरूप है, काया (शरीर), नस नाड़ी के बन्धन से रहित है, वह शुद्धस्वरूप और पापों से न्यारा है, उसने आदि जगत् में अपनी अनादि प्रजा जीवों के लिये वेदविद्या का प्रकाश किया है।

ज्ञात होता है कि इन पण्डितों में कोई दुराग्रही नहीं था, क्योंकि जिस बातका वह उत्तर नहीं दे सकते उसपर उन्हों ने व्यर्थ वितण्डा नहीं किया।

इसमें भूत का आवेश है

श्रावणी के दिन जो लोग स्वामीजी से मिलने आये थे। उनमें एक वैद्य भी थे, वह अपने साथ एक नवयुवक को लाये थे। उसके विषय में वैद्यजी ने कहा कि इसमें भूत का आवेश है, बहुत चिकित्सा की परन्तु आराम नहीं होता। स्वामीजी ने कहा कि आप वैद्य होकर ऐसे अज्ञानी हो रहे हैं और ऐसी असत्य बातको मानते हैं। भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन काल हैं, भूत योनि कोई नहीं है। वैद्यक ग्रन्थों में ऐसे कई रोगों का वर्णन है जिसके होने से मनुष्य उलटी चेष्टा करने लगते और अण्डबण्ड बकने लगते हैं, इसने कोई मादक वस्तु खाली है। अन्तको यह बात सत्य निकली, उसने भाँग बहुत पीली थी और उसीका सब विकार था। स्वामीजी ने उसके लिये एक ओषधि भी बताई थी।

केवल दो ही व्याख्यान हुए

स्वामीजी के बदायूँ में दो व्याख्यान हुए, पहला २री अगस्त को सन्ध्या समय लाला गङ्गाप्रसाद के दीवान खाने में ईश्वर विषय पर और दूसरा कोठी चुङ्गी पर तीसरी अगस्त को धर्म्म विषय पर हुआ। श्रोता सहस्रों की संख्या में उपस्थित हुए। शेष व्याख्यान स्वामीजी के स्थल पर ही होते रहे।

शास्त्रार्थी मुसलमान

एक दिन बदायूँ के एक मुसलमान रईस कई लोगों के साथ स्वामीजी के पास आये और शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की तो स्वामीजी ने कहा कि शास्त्रार्थ करने के लिये आप एक व्यक्ति को नियत करलें और नियम स्थिर करलें। इस पर उक्त रईस ने कहा कि हमने मौलवी मुहम्मद-क़ासिम को तार दिया है, वह चार पाँच दिन में आजावेंगे। स्वामीजी ने कहा कि मुझे स्वीकार है, मेरा उनसे चाँदापुर में साक्षात् हो चुका है।

इसके पश्चात् स्वामीजी कई दिन ठहरे रहे, परन्तु न मौलवी मुहम्मदक़ासिम आये और न फिर मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थ का कोई ज़िक्र हुआ।

एक दिन शाहजहाँपुर के एक अंग्रेज़ पादरी भी आये थे। वह अत्यन्त विनीत भाव से प्रश्नोत्तर करके चले गये थे।

श्रद्धालु भक्त

दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि एक जन रामलाल कायमगंज से मुरादाबाद स्वामीजी से यज्ञोपवीत लेने आये। स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उन्हें यज्ञोपवीत दिया और गायत्री का उपदेश दिया। वह १० दिन मुरादाबाद ठहरे और महाराज के सत्सङ्ग से लाभ उठाते रहे। एक दिन उन्होंने महाराज से प्रश्न किया कि क्या आपके स्वास्थ्य पर कोई आघात पहुँचा है ? उत्तर में महाराज ने कहा कि मुझे कई बार विष दिया गया है। यद्यपि

मैंने उसे वमन और वस्ति-कर्म्म आदि से निकाल दिया फिर भी उसका कुछ न कुछ अंश रक्त में रह ही गया। इसी से मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया, अन्यथा मेरी आयु १०० वर्ष से अधिक होती, परन्तु अब इस शरीर के अधिक रहने की आशा नहीं है। इस पर रामलाल ने कहा कि फिर आप योग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते। महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने पहले वैदिक पाठशालाएं स्थापित कीं ताकि जो लोग उनमें से विद्वान् होकर निकलें वह वैदिक धर्म का प्रचार करें, परन्तु वह लोग पाठशाला में पढ़कर भी पौराणिक ही बने रहे। योग्य शिष्य न मिलने का यह भी कारण है कि मैंने माता-पिता की सेवा नहीं की फिर मुझे योग्य शिष्य कैसे मिलें। परन्तु आर्यसमाज के ऐसे लोग अवश्य उत्पन्न होंगे जो मेरे उद्देश्य का पालन करेंगे।

स्वामीजी १४ अगस्त को बदायूँ से बरेली चले गये।

बरेली

बरेली में स्वामीजी लाला लक्ष्मीनारायण खज़ानची की बेगमबाग़ नामक कोठी में ठहरे।

कई दिन तक महाराज अपने मनोहर उपदेशों से श्रोताओं को कृतार्थ करते रहे जिनमें कलक्टर साहब तथा अन्य अंग्रेज व पादरी लोग व नगर के धनी-मानी पुरुष उपस्थित होकर लाभ उठाते रहे। एक दिन किसी ने यह प्रस्ताव किया कि श्री महाराज का पादरी टी जी. स्काट से शास्त्रार्थ हो जाय तो अच्छा है। इस प्रस्ताव को दोनों महानुभावों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ का स्थान 'पुस्तकालय'* और तिथियाँ २५, २६ और २७ अगस्त नियत हो गईं। शास्त्रार्थ-सभा के सभापति लाला लक्ष्मीनारायण खजानची नियत हुए। एक २ दिन एक २ विषय पर शास्त्रार्थ हो, दोनों पक्षों के प्रश्नोत्तर लिख लिये जावें जिन्हें तीन लेखक एक स्वामीजी के, दूसरा पादरी साहब के और तीसरा सभापति के पास बैठ कर लिखें और जब एक पक्ष अपना वक्तव्य समाप्त कर चुके तो वह सभा में सुना दिया जावे और तीनों पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जावें।

पादरी स्काट से ३ दिन तक शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ के विषय निम्न लिखित निश्चय हुए:—

पहले दिन—आवागमन—स्वामीजी समर्थक, पादरी साहब समीक्षक।

दूसरे दिन—ईश्वर देह धारण करता है—पादरी साहब समर्थक, स्वामीजी समीक्षक।

तीसरे दिन—ईश्वर पापों को क्षमा करता है—पादरी साहब समर्थक, स्वामीजी समीक्षक।

तीनों दिन शास्त्रार्थ अत्यन्त शान्तिपूर्वक और नियमानुकूल हुआ। पीछे वह छप गया। यह शास्त्रार्थ पण्डित लेखराम कृत जीवन-चरित में ज्यों का त्यों दिया है। हम उसका सार नीचे देते हैं:—

शास्त्रार्थ का पहला दिन—विषय आवागमन—तारीख़ २५-८-१८७९।

प्रथम स्वामीजी ने अपने पक्ष के समर्थन में कहा कि जीव और जीव के गुण, कर्म्म, स्वभाव अनादि हैं और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जीव

* पुस्तकालय वह स्थान है जहाँ आजकल म्यूनीसिपल बोर्ड बरेली का दफ़्तर है। —संग्रहकर्त्ता.

के कर्मों का जो प्रवाह रूप से अनादि चले आते हैं ठीक २ फल देना ईश्वर का काम है और कर्मफल जीव विना शरीर धारण किये पा नहीं सकता, अतः आवागमन सिद्ध है। जीव के हर जन्म में सञ्चित और क्रियमाण कर्म होते हैं एक जन्म का क्रियमाण कर्म ही दूसरे जन्म का सञ्चित कर्म्म बनता है। जो जीव की उत्पत्ति मानी जावे तो उसका नाश भी मानना पड़ेगा क्योंकि उत्पत्ति और विनाश दोनों का ही कुछ कारण अवश्य होना चाहिये। विना कारण के कार्य्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

पादरी साहब के मुख्य आक्षेप यह थे कि यद्यपि पुनर्जन्म का सिद्धान्त पुराना है, परन्तु सभ्य और शिक्षित जातियाँ उसे छोड़ती चली जाती हैं, हिन्दू भी ज्यों २ शिक्षित होते जाते हैं इसे छोड़ते जाते हैं। यदि कर्म के अनादि होने से पुनर्जन्म होता है तो परमेश्वर का भी पुनर्जन्म होना चाहिये। जब जीव और परमेश्वर दोनों अनादि हैं तो एक प्रकार से दो परमेश्वर हुए। यदि पुनर्जन्म केवल पापों का फल भोगने के लिये है तो हमें याद क्यों नहीं रहता कि अमुक पाप का हमें अमुक दण्ड मिला। परमेश्वर सदैव सगुण रहता है वा कभी निर्गुण भी होता है। जन्म लेना परमेश्वर के किसी विशेष सामर्थ्य से हरदम होता रहता है या किसी सृष्टि नियम से होता है। मनुष्य को शान्ति एकजन्म-वाद में ही मिलती है न कि पुनर्जन्म-वाद में, क्योंकि एकजन्म-वाद में मनुष्य अच्छे बनने का यत्न करते हैं ताकि एक बार कष्टों से छूट कर सदा सुख में रहें, पुनर्जन्म-वाद में तो कभी दुःखों से छुटकारा ही नहीं हो सकता और सदा कर्म के चक्कर में रहना पड़ता है। पुनर्जन्म-वाद से पाप भी बढ़ता है, क्योंकि मनुष्य यह समझ लेता है कि कभी न कभी तो अच्छा जन्म मिलेगा ही। यह विश्वास इञ्जील के विरुद्ध है, जो वेद से पुरानी पुस्तक है।

स्वामीजी ने पादरी साहब के आक्षेपों और प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया—'यह कोई युक्ति नहीं है कि सभ्य जातियाँ पुनर्जन्म के विश्वास को छोड़ती जाती हैं। न पुरानी सब बातें सच्ची हैं और न नई सब झूठी। यदि पुरानी सब झूठी हैं तो बाइबिल भी पुरानी है, अतः वह भी झूठी है। रही शिक्षित हिन्दुओं के इस सिद्धान्त को छोड़ने की बात सो बहुत से ईसाई भी बाइबिल को तिलाञ्जलि देते जाते हैं। परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता, वह सर्वव्यापक और निराकार और नित्य मुक्त है। केवल अनादि होने से जीव ईश्वर नहीं हो सकता जब तक उसमें सब गुण एकसे न हों। पुनर्जन्म पूर्वकृत पापों और पुण्यों का बुरा और अच्छा फल भोगने के लिये होता है। हमें इसी जन्म की बचपन की बातें याद नहीं रहतीं और सुषुप्ति अवस्था में कोई बात याद नहीं रहती। इससे बचपन की घटनाएं असत्य सिद्ध नहीं हो सकतीं। जैसे रोगी और चिकित्सक दोनों ही जानते हैं कि रोग किस कुपथ्य आदि का फल है चाहे उस कुपथ्य का रोगी को स्मरण भी न हो, ऐसे ही संसार में दुःख सुख देख कर पूर्व जन्म के कर्मों का अनुमान होता है। एक जन्म में विश्वास रखने से कभी शान्ति नहीं मिल सकती क्योंकि दुःखी मनुष्य सदैव बेचैन रहता है कि उसे दुःख क्यों दिया गया जब कि उसका कोई अपराध नहीं था। पुनर्जन्म का विश्वासी जानता है कि सुख दुःख उसके पूर्व कर्म्मों के फल हैं। आगे के लिये उसका दुःखी सुखी होना उसके अपने कर्म्मों पर निर्भर है। पाप तो इस विश्वास से बढ़ता है कि हम किसी की

सिफारिश से पापों के दण्ड से मुक्त हो जायंगे। संसार में दुःख सुख, ऊँच-नीच की अवस्था यदि परमेश्वर ने बिना किसी कारण के करदी तो वह न्यायकारी नहीं ठहरता। पुनर्जन्म-वाद यदि इञ्जील के विरुद्ध है तो उससे वह असत्य सिद्ध नहीं होता। इञ्जील में बहुत सी भ्रममूलक बातें हैं। वेद में कोई भी ऐसी बात नहीं है, वही ईश्वरोक्त है। जीव कर्म के बन्धन से कभी सर्वथा मुक्त नहीं होता। कर्म करना जीव और उसे कर्म्मों का फल देना ईश्वर का स्वाभाविक गुण है। स्वाभाविक गुण सदा एकसे रहते हैं, न्यूनता अधिकता केवल नैमित्तिक गुणों में हुआ करती है। संसार में वेद ही सब से पुरानी पुस्तक है। इसे यूरुप के भी सब विद्वान् मानते हैं। पादरी साहब इसका कोई उत्तर नहीं दे सकते कि जीव कहाँ से आये और कहाँ रहेंगे। वह कहते हैं कि हम सर्वज्ञ नहीं हैं, तो फिर वह कैसे कहते हैं कि पुनर्जन्म नहीं है।

दूसरे दिन का शास्त्रार्थ विषय 'ईश्वर देह धारण करता है वा नहीं' तारीख २६-८-१८७९।

पादरी साहब ने कहा कि परमेश्वर के विषय में हमें अत्यन्त नम्रतापूर्वक विचार करना चाहिये। यह कहना कि हम परमेश्वर का सब हाल जानते हैं, मूर्खता है। हम उसके विषय में बहुत कम जानते हैं। आज दो प्रश्न हैं, एक तो यह कि परमेश्वर का देह धारण करना सम्भव है या नहीं, दूसरा यह कि ऐसा कभी हुआ या नहीं। ईश्वर की पुस्तक (बाइबिल) में लिखा है कि परमेश्वर ने मनुष्य को अपनी (शारीरिक नहीं आत्मिक) आकृति पर बनाया। जीवात्मा और परमात्मा के बहुत से गुण आपस में मिलते हैं, दोनों में मेल हो सकता है, इस लिये यदि परमेश्वर की इच्छा हो कि देह में प्रकट हो तो क्या यह असम्भव है ?

स्वामीजी ने कहा कि प्रश्न यह नहीं है कि परमेश्वर का देह धारण करना सम्भव है या नहीं, बल्कि यह है कि वह देह धारण करता है वा नहीं। मेरे इस पर यह प्रश्न हैं कि परमेश्वर को देह धारण करने की क्या आवश्यकता है ? उसकी इच्छा में कोई प्रतिबन्ध है ही नहीं। देह धारण करने से वह साकार और एकदेशी हो जायगा और उसका सृष्टि-कर्त्ता होना असम्भव हो जायगा, उसे सारी सृष्टि का ज्ञान भी न रहेगा। परमेश्वर देह में सर्वथा आ जाता है वा टुकड़े २ हो जाता है। जीव और ईश्वर के गुण ठीक २ मिलते हैं वा नहीं, यदि मिलते हैं तो दो ईश्वर हुए।

इसके उत्तर में पादरी साहब ने केवल इतना ही कहा कि ईश्वर सर्वव्यापक तो है, परन्तु हमें इसके अर्थ पूर्णतया ज्ञात नहीं। परमेश्वर सारे शरीर में आ जाता है और बाहर भी रहता है, देह धारण करने के अर्थ देह में प्रकट होने के हैं। वह अपनी इच्छा से मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाने के लिये होता है क्योंकि मनुष्य, जब तक उसके सामने कोई आदर्श पुरुष न हो, पाप से नहीं बच सकता। परमेश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति पर बनाया, बन्दर आदि को नहीं। उन्हें परमेश्वर ने जैसा चाहा वैसा बनाया। परमेश्वर के देह धारण करने से उसकी महत्ता कम नहीं होती। जीव सान्त, ईश्वर अनन्त है, अतः दो परमेश्वर नहीं हो सकते।

स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर पहले से ही सर्वव्यापक होने से देह में था। वह सर्व-शक्तिमान् है, मनुष्य को पथप्रदर्शन बिना देह धारण किये भी कर सकता है, यदि नहीं कर

सकता तो वह अशक्त और असमर्थ हुआ ईश्वर का देह धारण करना सर्वथा असम्भव है। मेरे कई प्रश्नों के पादरी साहब ने उत्तर नहीं दिये।

तीसरे दिन का शास्त्रार्थ विषय 'ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है' ता० २७-८-१८७९।

पादरी साहब ने कहा कि ईश्वर का और हमारा, राजा-प्रजा पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। वह पापों के लिये दण्ड अवश्य देता है, परन्तु क्षमा भी करता है। लोक में भी पिता पुत्र को दण्ड देता है और क्षमा भी करता है। दण्ड अपराधी के सुधार और अन्यों की शिक्षा के लिये होता है, परन्तु हम यह भी कहते हैं कि दण्ड शीघ्र छूट जाना चाहिये।

स्वामीजी ने कहा कि दण्ड देना और क्षमा करना दो परस्पर विरुद्ध बातें हैं। इस से परमेश्वर न्यायकारी नहीं रहता क्योंकि न्याय के अर्थ हैं कि जो जितना और जैसा कर्म्म करे उसे उतना और वैसा ही फल देना। पापी को क्षमा करने से पाप बढ़ता है। पापी को पाप करने का साहस होता है। परमेश्वर का न्याय करना स्वाभाविक गुण है, वह उससे उलटा काम नहीं कर सकता, यदि क्षमा करेगा तो न्याय के विरुद्ध होगा। फिर परमेश्वर कौन २ से पाप क्षमा करता है और कौन २ से नहीं ?

पादरी साहब ने कहा कि यह तो हम नहीं कह सकते कि परमेश्वर कहाँ तक दण्ड देता है और कहाँ तक क्षमा करता है, यह उसी का काम है। वेद में भी लिखा है कि अदिति पापों को क्षमा करती है जिसका उल्लेख म्योर साहब ने किया है यदि केवल क्षमा, क्षमा हो और दण्ड बिलकुल न हो तो अवश्य पाप बढ़ेगा, परन्तु कई दशा में क्षमा नहीं करनी चाहिये। न्याय और दया एक ही हैं। क्षमा के विषय में इञ्जील का प्रमाण है, युक्ति भी है। क्षमा से कभी २ बड़े अच्छे परिणाम निकलते हैं, योहन्ना रसूल ने एक डाकू को क्षमा कर दिया था और फिर वह सुधर गया। इसके पक्ष में अनुभव भी है, बहुत से लोग हैं जिन का 'तौबह' करने से पाप छूट गया और उन को शान्ति हो गई। यदि क्षमा न होनी चाहिए तो यह शब्द ही भाषा में न रहना चाहिये। परमेश्वर ने ईसा मसीह द्वारा संसार में क्षमा का प्रबन्ध कर दिया है।

स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर जो जानता हो सो जानता हो, परन्तु जिस अंश में आप पापों का क्षमा होना मानते हैं उस अंश तक भी जानते हैं वा नहीं। यदि किसी की सिफारिश से परमेश्वर पाप क्षमा करता है तो वह खुशामदी हुआ, न्यायकारी न हुआ। अदिति के अर्थ पृथ्वी, अन्तरिक्ष, माता, पिता ईश्वरादि हैं। वेदों में पापों का क्षमा होना कहीं भी नहीं लिखा। आश्चर्य है कि अंग्रेज़ी जानने वाले वेदार्थ का निर्णय करें। सांसारिक माता पिता का दृष्टान्त भी ठीक नहीं। पिता पुत्र के पाप करने से अप्रसन्न ही होता है। कोई पिता क्षमा करता है कोई नहीं। यदि सब पिता क्षमा करते तो दृष्टान्त ठीक होता। यदि क्षमा पापी के पवित्र होने के लिये है तो ठीक नहीं, क्योंकि क्षमा से पाप की निवृत्ति संसार में देखने में नहीं आती। यदि क्षमा अपवित्र होने के लिये है तो क्षमा व्यर्थ हुई।

इन दिनों बरेली में स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द (पूर्व महात्मा मुन्शीराम) के पिता शहर कोतवाल थे। मुन्शीराम काशी में कालेज में पढ़ते थे। विषूचिका के फैल जाने के कारण कालेज में छुट्टी होगई थी, अतः वह अपने पिता के पास चले आये थे। इन दिनों

वह घोर नास्तिक थे और उन्हें संस्कृत भाषा में अत्यन्त अश्रद्धा थी, वह समझते थे कि उसमें कोई बुद्धिमत्ता की बात हो ही नहीं सकती। वेद का तो उन्होंने नाम भी न सुना था। उनके पिता कट्टर मूर्त्तिपूजक थे जो प्रति दिन घण्टे तक पूजा किया करते थे। महाराज के व्याख्यानों में वह प्रबन्ध-रक्षार्थ जाया करते थे। उन्हें अपने पुत्र के नास्तिक होने का पता था। पहला व्याख्यान सुन कर जब वह आये तो उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि मुन्शीराम! एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बड़े विद्वान् और योगी हैं। तुम्हारे संशय उनकी वक्तृता सुन कर दूर हो जायेंगे।

अगले दिन महाराज का व्याख्यान ईश्वर के निज नाम 'ओम्' पर था। पिता पुत्र दोनों व्याख्यान में गये। पुत्र के मन में अश्रद्धा थी, अविश्वास था। वह समझता था कि एक कोरा संस्कृतज्ञ साधु कोई बुद्धि-संगत बात क्या कहेगा? व्याख्यान-स्थल में जाकर महाराज की भव्य और विशाल मूर्त्ति को देखनेमात्र से ही मुन्शीराम की अश्रद्धा घटने और श्रद्धा बढ़ने लगी और जब उन्होंने देखा कि पादरी स्काट और अन्य दो तीन अंग्रेज़ व्याख्यान सुनने के लिये बड़े उत्सुक हैं तो श्रद्धा और भी वृद्धिङ्गत हुई। अभी व्याख्यान आरम्भ हुए १० मिनट हुए होंगे कि मुन्शीराम महाराज के कथन को सुन कर चकित हो गये और मन ही मन कहने लगे कि यह विचित्र पुरुष है जो केवल संस्कृतज्ञ होकर ऐसी युक्तियुक्त बातें कहता है जिन्हें सुनकर विद्वान् लोग भी दङ्ग रह जायं। इसके पश्चात् मुन्शीराम किसी व्याख्यान से अनुपस्थित नहीं रहे, यहां तक कि पादरी स्काट से जो महाराज का तीन दिन तक शास्त्रार्थ हुआ उसमें दो दिन तक उन्होंने महाराज के पक्ष में कार्य्य किया। तीसरे दिन तीव्र ज्वर आजाने के कारण वह न जा सके।

तीन दिन तक मुन्शीराम ने सेवा में उपस्थित होकर ईश्वर विषय में प्रश्नोत्तर किये, परन्तु ५ मिनट में ही महाराज ने उन्हें निरुत्तर कर दिया, अन्त में प्रति दिन वह यही कह कर चले आते रहे कि महाराज! आप की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, आपने मुझे निरुत्तर तो कर दिया, परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर है। अन्तिम दिन जब मुंशीराम ने यही वाक्य फिर कहा तो महाराज हँस पड़े और बोले कि देखो तुमने प्रश्न किये मैंने उत्तर दिये। यह युक्ति की बात थी। मैंने तुमसे कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास करा दूँगा। तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर उस समय होगा जब कि ईश्वर तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास करायेगा। उस समय तो मुन्शीराम नास्तिक ही रहे, परन्तु पीछे एक समय आया जब उन्हें स्वयमेव ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो गया और तब उन्हें महाराज का कथन याद आया और उन्होंने कहा कि दयानन्द सच्चा ऋषि था।

एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर कुछ लोगों ने महाराज से प्रार्थना की कि कल आदित्यवार है, यदि व्याख्यान एक घन्टा पूर्व आरम्भ करदिया जाय दोष बच्चों के बच्चों तो उत्तम है। महाराज ने यह बात स्वीकार करली परन्तु कहा कि का है मैं तो एक घण्टा पूर्व आजाऊँगा, परन्तु गाड़ी भी एक घण्टा पूर्व पहुँच जानी चाहिए क्योंकि मैं व्याख्यान स्थल में आने के लिये ठीक उस समय तैयार होता हूँ जब व्याख्यान के आरम्भ होने में १५ मिनट रह जाते हैं। लाला

लक्ष्मीनारायण ने कहा कि गाड़ी नियत समय से एक घण्टा पहले पहुँच जायगी। अगले दिन अन्य दिनों की अपेक्षा एक घण्टा पहले से ही श्रोता इकट्ठे होगये। नियत समय बीत गया परन्तु स्वामीजी न आये। पूरा पौन घन्टा पीछे स्वामीजी पधारे और आते ही कहा कि मैं तो नियत समय पर आने को तैयार था, परन्तु गाड़ी न पहुँची। तब मैं प्रतीक्षा करके पैदल ही चल पड़ा। मार्ग में गाड़ी मिली। यही देर का कारण है। सभ्य जनों इसमें मेरा दोष नहीं है, दोष बच्चों के बच्चों का है, जो प्रतिज्ञा-पालन नहीं जानते। लाला लक्ष्मीनारायण बहुत लज्जित हुए और गर्दन झुकाए सुनते रहे।

इन की लीला देखो अब उनकी देखो

एक दिन व्याख्यान में बरेली के कलक्टर, कमिश्नर, पादरी स्काट और कतिपय अन्य अंग्रेज़ उपस्थित थे। महाराज पुराणों के दोषों का वर्णन कर रहे थे। वर्णन ऐसा विनोदमय था कि उसे सुन कर क्या अंग्रेज़ और क्या भारतीय पुरुष सभी हँस रहे थे। पौराणिकों के इस विश्वास का कि द्रौपदी, तारा, मन्दोदरी आदि कुमारी हैं, महाराज ने खण्डन करते हुए पौराणिकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया कि यह लोग द्रौपदी के पाँच पति बतलाते हैं और फिर भी उसे कुमारी कहते हैं। महाराज ने जब देखा कि अंग्रेज़ लोगों को हँसी बड़ी अवज्ञा और ग्लानि सूचक है, इस विषय को समाप्त कर दिया और बोले की यह तो हुई पुराणियों की लीला अब किरानियों की सुनो यह कुमारी के पेट से पुत्र उत्पन्न होना बतलाते हैं और दोष सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं और ऐसा घोर पाप कहते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते। फिर क्या था अंग्रेज़ों की हँसी क्रोध में परिवर्त्तित हो गई। कलक्टर और कमिश्नर के चेहरे क्रोध से तमतमा उठे। महाराज ने इसकी तनिक भी परवाह न की और ईसाई धर्म्म की तीव्र आलोचना में कुछ भी कमी न की।

कमिश्नर की अप्रसन्नता

कमिश्नर ने अगले दिन प्रातःकाल ही लक्ष्मीनारायण को अपने बंगले पर बुला कर उनसे कहा कि अपने पण्डित से कहदो कि बहुत सख़्ती से काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं, हम वाद-विवाद में सख़्ती से नहीं घबराते, परन्तु यदि अशिक्षित हिन्दू और मुसलमान उत्तेजित हो गये तो तुम्हारे पण्डित के व्याख्यान बन्द हो जायंगे।

कमिश्नर का संदेश कौन दे

लाला लक्ष्मीनारायण साहब कमिश्नर को यह वचन देकर कि मैं आपकी आज्ञा स्वामीजी तक पहुँचा दूंगा। वापस आगये। अब वह बड़े असमञ्जस में पड़े। वचन देने को तो दे आये, परन्तु स्वामीजी से कहें कैसे। उनमें इतना साहस कहां से आता। उन्होंने अपने अन्य मित्रों से भी स्वामीजी तक कमिश्नर का सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना की, परन्तु सब कानों पर हाथ रख गये, अन्त को ज्यों त्यों करके एक नास्तिक को पक्का किया। वह और लाला लक्ष्मीनारायण स्वामीजी के पास गये। नास्तिक महोदय भी लड़खड़ा गये और उन्होंने महाराज से केवल इतना ही कहा कि ख़जानची साहब आप से कुछ निवेदन करना चाहते हैं, इन्हें कमिश्नर साहब ने बुलाया था, अब तो सारी विपत्ति ख़जानची साहब के सिर ही आ पड़ी। ख़जानची साहब की दशा देखते ही न बनती थी, कभी सिर खुजलाते थे, कभी खखा-

सन्देशहर की दुर्दशा

रते थे, परन्तु मुँह से एक शब्द भी न निकलता था। जब इस प्रकार कई मिनट हो गये तो महाराज ने कहा कि तुम्हारा तो कोई काम करने का समय नहीं है, इसलिए तुम समय का कुछ मूल्य ही नहीं समझते, मेरा समय अमूल्य है, जो कुछ कहना है कह दो। तब खजानची साहब ने अटक २ कर बड़ी कठिनता से कहा कि महाराज यदि सख्ती न की जाय तो क्या हानि है, इस से प्रभाव भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेजों को अप्रसन्न करना भी अच्छा नहीं है इत्यादि। यह सुन कर महाराज हँस पड़े और बोले की अरे बात क्या थी, जिसके लिये इतना गिड़गिड़ाया और हमारा इतना समय नष्ट किया। साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित सख्त बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जायंगे, यह होगा, वह होगा। अरे भाई मैं कोई हव्वा तो नहीं कि तुझे खा लूंगा। उसने तुझ से कहा तू मुझ से सीधा कहदेता, व्यर्थ इतना समय क्यों गँवाया।

यह अवतार है

एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू भी वहाँ बैठा था। यह सब सुन कर वह बोला कि देखा, यह तो कोई अवतार हैं, मन की बात जान लेते हैं।

कोई अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे

उस दिन व्याख्यान आत्मा के स्वरूप पर था। प्रसङ्गवश महाराज ने सत्य के बल पर कथन करना आरम्भ कर दिया। पादरी स्काट को छोड़ कर पिछले दिन वाले सब अंग्रेज उपस्थित थे। सब लोग चुपचाप और तन्मय होकर व्याख्यान को सुनते रहते थे। महाराज ने कुछ देर सत्य का महत्व वर्णन करके कहा कि लोग कहते हैं सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न हो हम तो सत्य ही कहेंगे। इतना कह कर महाराज ने एक उपनिषद्वाक्य पढ़ा, जिसमें कहा गया था कि आत्मा को कोई हथियार छेदन नहीं कर सकता, न उसे आग ही जला सकती है, इत्यादि और फिर गरज कर बोले की यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है, इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट करदे और चारों ओर अपने नेत्रों की ज्योति डाल कर, सिंहनाद करते हुए कहा, परन्तु मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, तब तक मैं यह सोचने के लिये भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँगा या नहीं।

महाराज के यह शब्द सुनकर सारे हाल में सन्नाटा छा गया।

भक्त स्काट नहीं आये

पादरी स्काट स्वामीजी के भक्त बन गये थे। सिवाय उपर्युक्त व्याख्यान के वह अन्य किसी व्याख्यान में अनुपस्थित न हुए थे। महाराज इसी कारण से उन्हें भक्त स्काट के नाम से अभिहित किया करते थे। व्याख्यान की समाप्ति पर महाराज ने कहा कि आज भक्त स्काट नहीं आये। इस पर किसी ने बतलाया कि आज आदित्यवार है, वह पास के गिरजे में उपदेश किया करते हैं। तब महाराज ने कहा चलो आज भक्त स्काट का गिरजा देख आवें। उस समय अनेक श्रोता चले गये थे फिर भी ३००, ४००

उपस्थित थे। सब के सब महाराज के साथ हो लिये। जब स्वामीजी गिरजे में पहुँचे तो पादरी साहब का उपदेश समाप्त ही हुआ था। १०० के लगभग श्रोता थे। पादरी साहब स्वामीजी को आता देख कर वेदी से नीचे उतर आये और महाराज से कुछ उपदेश करने की प्रार्थना की। महाराज ने खड़े २ ही २० मिनट तक मनुष्य पूजा का खण्डन किया जिसे सब लोग चुप चाप सुनते रहे।

खत्री के वीर्य से वेश्या-पुत्र को क्या कहेंगे

लाला लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या रक्खी हुई थी। महाराज ने एक दिन उन से पूछा कि आपका क्या वर्ण है। उन्होंने कहा कि आप तो वर्ण व्यवस्था गुण कर्म्मानुसार मानते हैं, मैं क्या उत्तर दूँ। महाराज बोले कि योंतो सभी वर्णशङ्कर हैं किन्तु लोक के अनुसार तुम अपने को को क्या कहते हो। उत्तर में उन्होंने कहा कि मैं खत्री हूं। महाराज बोले कि यदि खत्री के वीर्य से वेश्या के पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे। खज़ानची ने यह सुन कर लज्जा से सिर नीचा करलिया, तब महाराज ने कहा कि सुनो भाई हम किसी का पक्षपात नहीं करते, हम तो सत्य ही कहेंगे। खज़ानची साहब ने उसी रात को उस वेश्या को निकाल दिया।

तार्किक का तर्क कुण्ठित

बाबू विष्णुलाल एम. ए. वकील बरेली को अपने दार्शनिक ज्ञान पर बड़ा घमण्ड था। वह पूर्वीय दर्शन को तुच्छ दृष्टि से देखते थे। एक दिन वह कुछ मित्रों के साथ स्वामीजी के पास गये और पूर्वीय पश्चिमीय दर्शन पर वार्त्तालाप करने लगे। उन्होंने अपने विचार में पूर्वीय दर्शन का ऐसा खण्डन किया कि वह समझने लगे कि स्वामीजी उनके आक्षेपों का निराकरण न कर सकेंगे, परन्तु जब स्वामीजी ने उनके तर्कजाल को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया तो वह देखते के देखते रह गये और उन्हें स्वयं अपनी सम्मति भ्रमयुक्त प्रतीत होने लगी और उन्होंने अपने मित्रों से कहा कि स्वामी पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों दर्शनों को जानते हैं। इनका तात्विक ज्ञान हम लोगों से बहुत बढ़ा चढ़ा है। *

---

* बरेली में एक पण्डित विष्णुलाल एम० ए० वकील और भी थे जो सब-जज होगये थे। उन्हें पक्षाघात रोग के कारण बहुत थोड़े काल सेवा करने के पश्चात् पेंशन लेनी पड़ी। वह दृढ़ आर्य-समाजी और स्वामीजी के अनन्य भक्त रहे। उपर्युक्त बाबू विष्णुलाल अग्रवाल थे और थियोसोफ़िस्ट हो गये थे। वह कुछ सनकी से थे। एक बार यह लाहौर में गये और एक व्याख्यान दिया जिसमें कहा, मुझे सिद्धियां प्राप्त हैं। कोई व्यक्ति मेरी उँगली नहीं काट सकता, यदि काट भी देवे तो वह शीघ्र ही ठीक हो जावेगी और अपना हाथ आगे बढ़ा कर उपस्थित लोगों से कहा कि कोई आकर मेरी उँगली काट डाले। उस समय तो किसी ने यह क्रूर कार्य करने की निर्दयता न की, परन्तु रात्रि में कुछ लोग उनके पास गये और कहा कि हम उँगली काटने को तैयार हैं, परन्तु लिख दीजिये कि आप हम पर दावा नहीं करेंगे। वकील साहब ने ऐसा ही लिख दिया और यह भी लिख दिया कि यदि उँगली कट गई तो मैं कहता हूँ कि थियोसोफ़िकल सोसाइटी का कोई महात्मा नहीं। इसके पश्चात् ठाकुरसिंह नामक गवर्नमेंट कालेज के एक विद्यार्थी ने वास्तव में उनकी उँगली काट डाली और उनकी तथा सोसाइटी की सब क़लई खुल गई। यह घटना लेखरामकृत दयानन्द-चरित के पृष्ठ ८४६ पर अंकित है। —संग्रहकर्त्ता.

दयानन्द प्रकाश में महात्मा मुंशीराम के सम्बन्ध में इतना और लिखा है :—

"अब महात्मा मुंशीराम को यह धुन समाई की महाराज की जीवनचर्या देखनी चाहिये। इस लग्न में मग्न वह पहली बार तो रात के ढाई बजे ही गाड़ी में बैठ कर उस उद्यान के निकट जा पहुँचे जहाँ महाराज का निवास था। कौपीनमात्र धारण किये महामुनि उद्यान से बाहर भ्रमणार्थ जाने लगे तो वे भी पीछे २ हो लिये। महाराज की गति का वेग इतना तीव्र था कि महात्माजी थोड़ी देर ही पीछे चल कर हाँपने लगे और गाड़ी में बैठ कर घर चले आये। परन्तु अगले दिन उनकी लग्न की मात्रा इतनी बढ़ गई कि वह रात के बारह बजे उठ बैठे और उद्यान के समीप जा खड़े हुए। इस बार वे बहुत दूर तक उनके पीछे गये। वह महाराज को कुछ काल तक ध्यानावस्थित भी अवलोकन कर सके।" *

ध्यानावस्थित देखने की धुन

बरेली से ही महाराज ने स्वलिखित जीवन-चरित का कुछ भाग थियोसफिस्ट पत्र में छपने के लिये भिजवाया, शेष पीछे किसी अन्य स्थान से भिजवाया होगा। उसका अंग्रेज़ी अनुवाद थियासोफिस्ट में क्रमागत रूप से प्रकाशित हुआ। जो स्वलिखित जीवन-चरित आज कल आर्य्य भाषा और उर्दू में मिलता है वह उसी अंग्रेज़ी अनुवाद का अनुवाद है। देवेन्द्र बाबू ने भी उसका बङ्गला अनुवाद प्रकाशित किया था। मूल लेख का कुछ पता नहीं लगा। ज्ञात नहीं वह थियोसोफिस्ट के कार्यालय में रहा वा अनुवादक के पास। दुःख है कि उसकी प्रति-लिपी रखने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

स्व-लिखित जीवन-चरित

४ सितम्बर सन् १८७९ को स्वामीजी शाहजहाँपुर पहुँचे। वहाँ आर्य्यसमाज स्थापित हो चुका था, अतः सभासदों ने उनके निवास आदि का प्रबन्ध कर रक्खा था। जब स्वामीजी शाहजहाँपुर पहुँचे तो आर्य्य पुरुषों ने अत्यन्त प्रेम और श्रद्धापूर्वक उनका स्वागत किया और खज़ानची साहब के बँङ्गले में उन्हें ठहराया।

शाहजहाँपुर

आगमन की विज्ञप्ति

स्वामीजी के पधारते ही मन्त्री आर्य्यसमाज की ओर से एक विज्ञापन छपवाकर सर्वसाधारण में बाँटा गया और नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों और पण्डितों के पास भेजा गया।

विज्ञापन में जनसाधारण को स्वामीजी के पधारने और खज़ानची साहब के बँगले में ठहरने की सूचना देने के पश्चात् लिखा गया था कि जिन पुरुषों को स्वामीजी के दर्शन और उनसे वार्त्तालाप करने की इच्छा हो वह उक्त स्थान पर जाकर कर सकते हैं। स्वामीजी का व्याख्यान गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में ६, ७, ९, ११, १३, और १४ तारीख को सायङ्काल के ५ बजे से ७

जिज्ञासुओं को निमन्त्रण

* महात्मा मुंशीराम ने बरेली की स्वामीजी सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख पण्डित लेखराम कृत दयानन्द चरित की भूमिका में किया है, परन्तु उसमें उपर्युक्त घटना का वर्णन नहीं है। सम्भव है उन्होंने इसका वर्णन कहीं अन्यत्र किया हो वा मौखिक रूप से दयानन्द-प्रकाश के रचयिता से किया हो। —संग्रहकर्त्ता.

तक होगा। व्याख्यान के बीच में किसी को बोलने की आज्ञा न होगी, परन्तु व्याख्यान की समाप्ति पर जिसे जो कुछ पूछना हो पूछ सकेगा। यदि किसी को उनसे शास्त्रार्थ करना हो तो आर्य्यसमाज को सूचित करे, परन्तु शास्त्रार्थ लिखित होगा। मौखिक कदापि न होगा। शास्त्रार्थ के अन्य नियम शास्त्रार्थ करने की इच्छा की सूचना आने पर दोनों पक्षों की सम्मति से निर्धारित हो जावेंगे। चौदहवीं तारीख़ तक यदि कोई सूचना भेजेगा तो शास्त्रार्थ होगा, उसके पीछे किसी को यह कहने का अधिकार न होगा कि स्वामीजी चले गये, अन्यथा हम उनसे शास्त्रार्थ करते।

वेद शंखासुर लेगया

पण्डित लक्ष्मण शास्त्री नामक एक पण्डित विज्ञापन को देख कर महाराज से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आये। महाराज ने उनसे कहा कि मूर्त्तिपूजा के समर्थन में वेद का कोई प्रमाण दीजिये। शास्त्री महोदय बोले कि वेद का प्रमाण कहाँ से दूँ, वेद तो शंखासुर लेगया। महाराज ने उनके आगे वेद के पुस्तक रख कर कहा कि हमने आपके आलस्य और प्रमाद के शंखासुर का वध करके वेद जर्मनी से मँगाये हैं, इनमें से खोजकर कोई प्रमाण दीजिये।

पण्डितजी को मौन रहने के अतिरिक्त कोई उपाय न सूझा और सारी सभा हँस पड़ी।

पौराणिक दल विकल और विह्वल

शास्त्रार्थ के लिये पं० अंगदराम बुलाये गये

पौराणिक दल लक्ष्मणशास्त्री की यह दशा देख कर विकल और विह्वल होगया और स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का आयोजन करने लगा। शाहजहाँपुर में तो कोई ऐसा पण्डित था नहीं जो स्वामीजी से मोरचा लेता, अतः उन्होंने पीलीभीत से पण्डित अङ्गदराम शास्त्री को बुलाया जो संसार भर में अपने समान किसी को विद्वान् न समझते थे। बरेली में भी वह स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये थे और कोलाहल मचा कर चले गये थे। एक बार जब स्वामीजी कर्णवास में विराजमान थे तो इन्हीं शास्त्रीजी ने स्वामीजी के पास एक पत्र संस्कृत में भेजा था, जिसका उत्तर उन्होंने विस्तार पूर्वक दे दिया था और उत्तर में इनके पाण्डित्य की भी ख़ूब क़लई खोली थी। आज यही पण्डित अङ्गदरामशास्त्री फिर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का दम भरते हैं। परिणाम जो होना है उसका पाठक पहले से ही अनुमान कर सकते हैं।

पण्डित अंगदराम का पत्र

पण्डित अङ्गदराम शास्त्री आये और १० सितम्बर सन् १८७९ को उन्होंने स्वामीजी को एक पत्र लिखा जिसका सारांश नीचे दिया जाता है।

मैं शास्त्रार्थ चिकिर्षु बहुत दिनों से जहाँ तहाँ प्रथम स्थान कर्णवास श्री गङ्गाजी के तट पर, फिर अलीगढ़ गया, परन्तु आप किनारा करके चल दिये। संवत् १९३३ में बरेली में गया, आपने मुझसे शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया, परन्तु नियत समय पर जब ५००० के लगभग मनुष्य एकत्र हुए तो आपने शास्त्रार्थ करने से इनकार कर दिया। फिर आप बरेली आये, परन्तु इतने मैंने वहाँ जाने का अवकाश किया तो आप शाहजहाँपुर चले आये। मैं भी स्वामी प्रज्ञाचक्षुजी का ज्येष्ठ शिष्य विद्या रूपी वंश में आप के समय से पहले का हूँ, कृपया निम्न लिखित नियमों को स्वीकार करके अपनी चिट्ठी भेज दीजिये यदि आप की सम्मति अन्य नियमों की हो तो उचित समझ कर स्वीकार करूँगा।

शास्त्रार्थ के नियमः—

१—प्रथम तो यहाँ कोई मध्यस्थ ज्ञात नहीं होता इस लिये फ़ारसी, अरबी, अंग्रेज़ी पढ़े हुए दस तथा बीस बुद्धिमान् बिठा लिये जायँ। प्रथम शास्त्रार्थ के विषय को मैं संस्कृत में कहूँ, फिर आप उसका भाषा में अनुवाद करके जब मैं उसे ठीक होना प्रमाणित करदूँ, आप सुनादें। इसी प्रकार मैं आप के संस्कृत-कथन का भाषानुवाद करके सुनादूँ। जिस विषय को उक्त पुरुष समझने में असमर्थ हों वह विषय लिख कर दोनों उस पर हस्ताक्षर करदें। वह जिस पण्डित को श्रेष्ठ समझें उसे दिखा कर जय पराजय का निश्चय करालें।

(२) शास्त्रार्थ में किसी पक्ष को क्रोध करने, अश्लील वा कटु वाक्य कहने का अधिकार न होगा, यदि कोई ऐसा करेगा उसका पराजय समझा जावे।

(३) दस मिनट मैं विषय का उपपादन करूँ तो दस ही मिनट आप करें।

(४) मेरा यहाँ कोई मकान नहीं है अतः खजानची ब्रजकिशोर का मकान तजवीज़ किया है, आप कृपया एक दिन निश्चित कर दीजिये।

(५) इसके उत्तर से सूचित कीजिये।

यह पत्र स्वामीजी को १२ सितम्बर को बाबू हरगोविन्द बनरजी द्वारा दिन के ११॥ बजे मिला। बाबू हरगोविन्द पहले आर्यसमाज के प्रधान थे, परन्तु धर्मविरुद्ध आचरण करने के कारण अपदस्थ कर दिये गये थे। स्वामीजी के उत्तर का साराँश निम्न प्रकार है:—

स्वामीजी का उत्तर

यदि आप को शास्त्रार्थ करने की इच्छा होती तो सभ्यता और विनयपूर्वक शास्त्रार्थ करते, मैंने कभी ऐसे शास्त्रार्थ करने का निषेध नहीं किया और न अब करता हूँ। हाँ! जहाँ मूर्ख और असभ्य पुरुषों का हल्ला गुल्ला होता है वहाँ मैं खड़ा भी नहीं होता। यह बात आप की अत्यन्त झूठ है कि जहाँ जहाँ आप जाते हैं मैं वहाँ वहाँ से आप से किनारा करके चला जाता हूँ। आप से मुझे किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है क्योंकि आप में ऐसे गुण ही नहीं हैं जो भयप्रद हों। बरेली में भी आप के दंगा बखेड़ा करने वाले मनुष्यों को साथ लाने के कारण खजानची लक्ष्मीनारायण ने आप को अपने बँगले में आने से रोक दिया था। बरेली और शाहजहाँपुर के अतिरिक्त मैंने कभी आप का आना सुना भी नहीं। आप को जितना शास्त्रार्थ करने का बल हो सो कर लीजिये। आप मथुरा में श्री दण्डीजी की पाठशाला में पढ़े होंगे, परन्तु आप यदि उनके शिष्य होते तो उनके उपदेश के विरुद्ध आचरण न करते और ज्येष्ठ कनिष्ठ, उत्तम व नीच गुण कर्म से होते हैं।

इस शास्त्रार्थ में निम्नलिखित नियम उभय पक्ष को मानने होंगे:—

शास्त्रार्थ के नियम

(१) इस शास्त्रार्थ में चारों वेद मध्यस्थ होंगे अर्थात् वेद-विरुद्ध झूठा और वेदानुकूल सच्चा माना जावेगा।

(२) यदि किसी वेद मन्त्र के पद के अर्थ में विप्रतिपत्ति होगी तो उसका वही अर्थ सत्य समझा जावेगा जिसकी साक्षी में ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यंत के सनातन माननीय ग्रन्थों का प्रमाण मिलेगा अन्य का प्रमाण न माना जावेगा। जो वेदानुकूल, सृष्टिक्रमानुसार, प्रत्यक्षादि प्रमाण-लक्षणलक्षित, आप्तानुचरण के अविरुद्ध और अपने आत्मा

की विद्या और पवित्रता के अनुकूल, इन पाँच कसौटियों से परीक्षित होगा वही सच्चा माना जावेगा अन्यथा नहीं।

(३) एक एक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थ में पचास पचास चतुर विद्वान् पुरुष सभासद् होने चाहियें।

(४) उक्त १०० पुरुषों को सभा में प्रवेश करने के लिये टिकट मिल जायंगे, इनके अतिरिक्त अन्य कोई सभा में न आ सकेगा।

(५) हरएक अपने पक्ष को सप्रमाण लिखा कर सुना तथा समझा दिया करेगा अथवा दूसरे के द्वारा सुनवा तथा समझवा दिया करेगा।

(६) उभय पक्ष वालों को अपने अपने समय में प्रश्नोत्तर का एक २ अक्षर लिखवाकर आगे चलना होगा।

(७) जो जो उभय पक्ष वाले कहेंगे उसे तीन लेखक लिखते जावेंगे, हरएक प्रति पर दोनों के हस्ताक्षर होंगे, एक प्रति मेरे पास, एक आप के पास रहेगी और एक सरकार में रहेगी जिससे कभी कोई घटा बढ़ा न सके।

(८) आपने जो दस दस मिनट हरएक पक्ष के लिखे हैं उसमें प्रश्न के लिये दो मिनिट और उत्तर के लिये दस मिनट होने चाहियें।

(९) शास्त्रार्थ में बोलने का अधिकार केवल मुझे और आप को होगा, अन्य को नहीं।

(१०) खज़ानचीजी का बँगला ही जहाँ मैं ठहरा हूँ शास्त्रार्थ के लिये निश्चित रहना चाहिये, क्योंकि यह न मेरा स्थान है न आप का।

(११) मेरा विषय वेदादि सनातन शास्त्रों की रीति से पाषाण आदि मूर्त्तिपूजा और पुराण आदि के पक्षों का खण्डन होगा और आप का विषय उनका मण्डन होगा।

(१२) उभय पक्ष वालों को कुवचन, हठ, दुराग्रह, पक्षपात, भय, शङ्का, लज्जा आदि को छोड़ कर सत्य का ग्रहण करना और झूठ को छोड़ना आवश्यक है, क्योंकि आप्तों का यही सिद्धान्त है।

(१३) जब तक किसी विषय का खण्डन वा मण्डन पूरा न होगा तब तक शास्त्रार्थ बन्द न होगा, किन्तु प्रतिदिन होता ही रहेगा, क्योंकि आरब्ध कर्म्मों को बीच में निष्फल न छोड़कर सिद्धान्त पर्य्यन्त पहुँचा देना विद्वानों का मुख्य सिद्धान्त है। इसी रीति से बहुत दिनों वा महीनों तक शास्त्रार्थ होने से आप की शास्त्रार्थ करने की उत्सुकता भी परिपूर्ण हो जायगी।

(१४) उभय पक्ष वालों को सरकार से पुलिस आदि का अवश्य प्रबन्ध करना होगा जिससे कोई असभ्य मनुष्य शास्त्रार्थ में विघ्न न डाल सके।

(१५) शास्त्रार्थ प्रतिदिन सन्ध्या समय ५ बजे से ८ बजे तक होगा।

(१६) एक दिन पहले मैं बोलूँगा तो दूसरे दिन आप बोलेंगे और जिस दिन जो पहले बोलेगा उस दिन वही अन्त में बोलेगा।

पं० अङ्गदराम का प्रत्युत्तर

इस पत्र का जो उत्तर शास्त्रीजी ने दिया उसका साराँश निम्न प्रकार है:—

"मैंने १० सितम्बर को आपकी सभा के मन्त्री द्वारा पत्र भेजा था उसका उत्तर आज

१२ तारीख को पाँच बजे मिला। यह आपके अन्तःकरण को ही विदित होगा कि आपने शास्त्रार्थ करने से निषेध किया, मेरी इच्छा शास्त्रार्थ करने की न होती तो मैं तन, मन, धन लगा कर और विदेश-यात्रा का श्रम सहन कर अन्यत्र क्यों जाता। यहाँ मेरा आपके पास बँगले में न ठहरना शास्त्रार्थ करने की इच्छा का प्रतिबन्धक नहीं हो सकता। मैंने जो लिखा था कि आप जहाँ तहाँ से शास्त्रार्थ से बच कर चले आये, उसे आप झूठ कहते हैं आपका यह कहना झूठ है। मुझ में ऐसे भयङ्कर गुण नहीं हैं जो आपको भयप्रद हों। बरेली में जो बात शास्त्रार्थ की निश्चित हुई थी वह किस की ओर से टूटी वह अन्य सज्जनों के अतिरिक्त बरेली के पुलिस इन्स्पेक्टर मौलवी अब्दुलहई तथा शाहजहाँपुर के ज़िला स्कूल के थर्ड मास्टर को भी विदित है। लाला लक्ष्मीनारायण के बागीचे में शास्त्रार्थ को रुकवादेना आपका ही कर्म था। मेरे प्रज्ञाचक्षुजी के शिष्य होने का वृत्त मथुरावासी सब श्रेष्ठ पुरुषों को विदित है, इस विषय में आपका सन्देह करना मिथ्या है। मैंने जो अपने को दण्डीजी का ज्येष्ठ शिष्य लिखा था सो वंश विषयक था। दण्डीजी नियमपूर्वक प्रतिदिन (दुर्गा) सप्तशती स्तोत्र का पाठ किया करते थे और कभी कभी नीलकण्ठ महादेव, तथा रंगनाथ महादेव के श्रद्धापूर्वक दर्शन तथा तीर्थ परिक्रमा और दान आदिक सब कर्म करते थे। कृष्ण शास्त्री से कौमुदी के अजा में षष्ठी वा सप्तमी समास है इस विषय पर शास्त्रार्थ होने के पीछे वह भट्टोजी दीक्षित व कैय्यट, कौमुदी प्रभृति ग्रन्थों का खण्डन करने लगे थे और एतदर्थ उन्होंने वाक्यमीमांसा व धूर्त्तनिराकृत व्याकरण ग्रन्थ बनाये थे। यदि यह बातें मिथ्या हों तो मैं भी उसी मत को ग्रहण करलूँ, प्रज्ञाचक्षुजी का जो आचरण हो उसे ही सत्य मान कर ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रार्थ का स्थान यदि खजानची (व्रजकिशोर) का गृह अग्राह्य हो तो विश्रान्त वा अमुक २ बाग स्वीकार कीजिए। रविवार को २ बजे से ६ बजे तक शास्त्रार्थ होना चाहिए, रात्रि में शास्त्रार्थ का कौन अवसर है। वेदार्थ के विषय में जैमनिपर्य्यन्त कोई ग्रन्थ वेदार्थ प्रतिपादक है ही नहीं, सूत्रादि पद क्रम के ग्रंथ हैं सो उन में कोई अर्थ प्रतिपादक सायण, महीधर प्रभृति के सदृश नहीं हैं। यदि कोई ग्रंथ आपके पास हो तो दिखलाइये। प्रश्न के लिए दो और उत्तर के लिए १० मिनट रखना कैसे हो सकता है क्योंकि कभी १५ और २० मिनट भी अपेक्षित होंगे, हम अपने नियम को कि दस मिनट एक पक्ष और दस मिनिट ही दूसरा पक्ष अपने विषय का प्रतिपादन करे कभी न त्यागेंगे। शास्त्रार्थ में उभय पक्ष के पचास पचास मनुष्य ही हों यह नियम विलक्षण है, किसी को आने जाने का प्रतिबन्ध न होना चाहिए। शास्त्रार्थ दिन प्रति दिन महीनों तक हो, इस नियम से आपका आशय मेरी छुट्टी के दिनों को व्यर्थ खोना है, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो पीलीभीत चलिए, वहाँ शास्त्रार्थ करूँगा।"

दण्डीजी पर मिथ्या दोषारोपण

शास्त्रीजी ने दण्डी विरजानन्दजी के विषय में जो यह लिखा है कि वह शिवालयों में जाकर मूर्ति दर्शन और परिक्रमा आदि करते थे यह सर्वथा मिथ्या है, उनके विषय में केवल शास्त्रीजी ही हैं जो ऐसा अपवाद करते हैं, अन्य कोई मनुष्य भी ऐसा कहता हुआ नहीं सुना गया, दुर्गा सप्तशती का वह अवश्य पाठ किया करते थे, परन्तु कहा जाता है कि वह सप्तशती दूसरे ही प्रकार की थी। शास्त्रीजी का स्वामीजी के निवास-स्थान पर शास्त्रार्थ

पण्डित अङ्गदराम का दुराग्रह

करने पर सहमत न होना और अन्य स्थानों पर ही जो स्वयं उन्होंने निश्चित किये थे शास्त्रार्थ करने पर आग्रह करना, केवल एक ही दिन शास्त्रार्थ करने पर अड़ना, रात्रि के समय जब कि सब गण्य-मान्य, राजकर्मचारी, शिक्षित वर्ग, आदि सभ्यजन उपस्थित हो सकते थे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न होना, शास्त्रार्थ-स्थल में हर किसी को बे रोक टोक आने देने पर हठ करना, केवल शास्त्रार्थ से बचने के उपाय थे। यदि दूसरे स्थानों पर शास्त्रार्थ होना निश्चित होता और श्रोताओं की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाता तो शास्त्रीजी और उनके साथी उद्दण्ड, अशिक्षित लोगों को हुल्लड़ करने का बड़ा उत्तम अवसर मिलता और फिर सहज में ही उनका शास्त्रार्थ से छुटकारा हो जाता और अपनी विजय-दुन्दुभि बजाने का अवसर हाथ लग जाता। एक बार बरेली में शास्त्रीजी ऐसा कर चुके थे। इस बार स्वामीजी उन्हें यह अवसर देना नहीं चाहते थे। शास्त्रीजी का यह लिखना भी मृषा था कि उन्होंने आर्यसमाज के मन्त्री के द्वारा स्वामीजी के पास १० सितम्बर को पत्र भेजा था। हम कह चुके हैं यह पत्र उन्होंने बाबू हरगोविन्द बनरजी के द्वारा भेजा था।

पण्डित अंगदराम का साक्षी उनके विरुद्ध

बरेली की घटना के विषय में शास्त्रीजी ने साक्षी के तौर पर जिला स्कूल शाहजहाँपुर के थर्ड मास्टर का नाम लिया था। उनका नाम मौलवी नियाज़अहमद था। आर्यसमाज के मन्त्री ने उन्हें निम्न लिखित पत्र लिखा, हम मन्त्री के पत्र और मौलवी नियाज़अहमद के उत्तर की जो उर्दू में थे ज्यों की त्यों प्रतिलिपि नीचे देते हैं:—

जनाबे मन बाद तसलीम आँ कि बाज़ शख्स इस बात की ख्वाहिश करते हैं कि आपसे हाल शास्त्रार्थ यानी मुबाहिसे बरेली का जो दरमियान स्वामी दयानन्द सरस्वती व पण्डित अङ्गदशास्त्री होने वाला था दरियाफ्त करें। लिहाज़ा बराहे मेहरबानी यह लिख दीजिये कि वह मुबाहिसा किस वजह से न हो सका, किसकी तरफ़ से ढील हुई और वजह ढील क्या थी। जवाब इसकी पुश्त पर लिख दीजिये ताकि उनको दिखला दिया जावे। आप यक़ीन है कि अच्छी तरह से कैफ़ियत जानते होंगे। जियादा वस्सलाम।

आपका नियाजमन्द बख्तावरसिंह।

मौलवी नियाज़अहमद का उत्तर

मुन्शी साहब! मुद्दआ परदाज़ हूँ, मुबाहिसा इस वजह से न हुआ कि अङ्गद शास्त्री के रुक़्क़ा दरपै तौहीन पण्डित दयानन्द सुरसुती के थे। अलल अमूम सुकान (?) बरेली हैं, जब उनसे कह दिया गया कि यह साहब धर्म्म में नई नई बातें निकालते हैं और बुत-परस्ती को मना करते हैं, वे लोग मुश्तइल (उत्तेजित) हो गये और चाहते थे कि एक जम्मे ग़फ़ीर (बहुत भीड़ भाड़) के साथ शहर से बाहर हो। इस अमर को पण्डित दयानन्द सुरसुती ने पसन्द न किया और उनका मनशा (अभिप्राय) था कि खास लोगों के रूबरू किसी रईस के यहाँ जहाँ अहले इल्म (विद्वान्) हों अमूर मुतनाज़आ फ़ीह (विवादास्पद विषयों) का तसफ़िया (निर्णय) हो जाय।

अराक़िम नियाज़अहमद फ़ारूक़ी।

मौलवी नियाज़अहमद के उत्तर के पश्चात् तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं रहता कि

बरेली में शास्त्रार्थ केवल इस कारण न हुआ कि शास्त्रीजी का अभिप्राय स्वामीजी को अपमानित करना और दंगा बखेड़ा करना था अन्यथा कुछ चुने हुए सभ्य पुरुषों के सामने शास्त्रार्थ करने में कौन सी रुकावट थी। शाहजहाँपुर में भी वह इसी कारण से १०० शिक्षित और सभ्य पुरुषों की उपस्थिति में शास्त्रार्थ करने से कतराते और जी चुराते थे। यदि दर्शकों की संख्या नियत हो जाती और कोई असभ्य और उजड्ड मनुष्य शास्त्रार्थ में न आने पाता तो शास्त्री महोदय को ताली पीटने, ढेले फेंकने और शोर मचाने के लिये कौन मिलता। स्वामीजी का यह प्रतिबन्ध लगाना भी युक्तियुक्त ही था कि जबतक विषय का पूरी तरह निर्णय न होजाय शास्त्रार्थ प्रतिदिन होता रहे चाहे इसमें कितने ही दिन वा मास ही क्यों न लग जायं। शास्त्रीजी पीलीभीत में गवर्नमेंट स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे और छुट्टी लेकर शाहजहाँपुर आये थे। यह उनका काम था कि यदि शास्त्रार्थ उनकी छुट्टी की अवधि के भीतर समाप्त न होता तो और छुट्टी ले लेते। अतः स्वामीजी पर उनका यह दोषारोपण करना कि स्वामीजी व्यर्थ बहाना करके उनकी छुट्टी के दिन बिताना चाहते हैं अयुक्ति-युक्त और मिथ्या था। वास्तव में वह स्वयं किसी न किसी मिष से शास्त्रार्थ से बचना चाहते थे। स्वामीजी ने उनके प्रत्युत्तर के उत्तर में उन्हें निम्न लिखित पत्र भेजा।

स्वामीजी का पत्र

"श्रीयुत अङ्गदशास्त्र्यादि पण्डितान् प्रतीदं प्रख्यापनम्। संवत् १९३६ आश्विन कृष्णा १२ शनिवार का लिखा तुम्हारा पत्र आश्विन कृष्णा १३ रविवार को दिन के ११॥ बजे मेरे पास पहुँचा। पत्रस्थ लिखा अभि-प्राय सब पर प्रकट हुआ। मुझको अति निश्चय है कि तुम लोग शास्त्रों का विचार करना कराना तो तब जानोगे जबकि तुम्हारे अनेक जन्मों के पुण्य उदित होंगे, परन्तु जो मैं तुम्हारे निश्चय किये हुए स्थानों में बातचीत करने को आऊँ तो तुमको हल्ला गुल्ला करने को अच्छा अवसर मिल जावे। अब जो तुमको पूर्वोक्त ५० धार्मिक बुद्धिमान् रईसों के साथ यहाँ आकर कुछ कहना सुनना हो तो मैं आने से नहीं रोकता आगे तुम्हारी प्रसन्नता। संवत् १९३६ आश्विन कृष्णा १३ रविवार।

शास्त्रीजी की यह चाल भी देखने योग्य है कि वह रविवार को शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और शनैश्चर को पत्र लिखते हैं, परन्तु प्रबन्ध ऐसा करते हैं कि उनका पत्र रविवार को ११॥ बजे दिन के स्वामीजी को मिलता है।

स्वामीजी के पत्र का उत्तर शास्त्रीजी ने निम्न लिखित दिया:—

पं० अङ्गदराम का पत्र

"श्रीयुत दयानन्द सरस्वती समीपेषु मत्कुशलपूर्वकमिदं विज्ञापनम्। आप का पत्र ३॥ बजे मेरे पास पहुँचा। पत्रस्थ लेखाशय प्रकट हुआ। आपको ऐसा नहीं चाहिये। कभी कुछ लिखना और कभी कुछ। या तो स्वामीजी प्रज्ञाचक्षु के मत पर होना चाहिये जिसका आप अपने पूर्व पत्र में स्वीकार कर चुके हैं, जिस परम्परा से शास्त्रार्थ होते हैं उस विधि से कीजिये, हम तैयार हैं, तीन स्थान जो निर्णीत हैं उनमें से किसी पर आजाओ।

शास्त्रीजी ने यह न बताया कि स्वामीजी के पत्रों में कौनसी परस्पर विरुद्ध बात थी।

समालोचना

शास्त्रार्थ का विषय यह तो न था कि प्रज्ञाचक्षुजी का किस समय क्या मत था। स्वामीजी तो उनका वह मत समझते थे जो स्वामीजी

के अध्ययनकाल में था और जिसके प्रचार के लिये उन्हें दण्डीजी ने आदेश दिया था। उससे पहले दण्डीजी के क्या विचार थे इस प्रश्न की मीमांसा की कोई आवश्यकता न थी। शास्त्रार्थ का विषय तो यह था कि मूर्त्तिपूजा आदि वेदानुमोदित है कि नहीं। शास्त्रीजी अपने ही निश्चित स्थानों पर शास्त्रार्थ करने के जिस अभिप्राय से इच्छुक थे वह स्वामीजी ने अपने पत्र में स्पष्ट कर दिया था। शास्त्रीजी ने अन्त तक यह न कह कर दिया कि स्वामीजी के निर्दिष्ट स्थान में शास्त्रार्थ करने में कौनसा कारण बाधक था और उनके स्थानों में कौनसा हेतु शास्त्रार्थ का साधक था। न ही शास्त्रीजी ने यह बताया कि शास्त्रार्थ की परम्परागत कौन सी विधि थी। हम समझते हैं वही थी जिसका अवलंबन काशी के पण्डितों ने काशी शास्त्रार्थ के समय और अन्य स्थानों में अन्य पौराणिकों ने किया था और जिसका अवलंबन वह स्वयं बरेली में कर चुके थे और शाहजहाँपुर में भी करना चाहते थे।

इस प्रकार शास्त्रार्थ का यह आयोजन समाप्त हुआ।

सत्यधर्म की कसौटी

एक व्याख्यान में महाराज ने सत्यधर्म्म की कसौटी यह बतलाई थी कि जिस २ बात पर सब मत मतान्तर वाले सहमत हों जैसे सत्य बोलना आदि वही सत्यधर्म है और जिन २ बातों में उनमें मतभेद है वही असत्य हैं।

किराये की गाड़ी क्यों लाये

एक दिन वह सज्जन जो महाराज के लिये अपनी गाड़ी लाया करते थे, किराये की गाड़ी लेकर आये। महाराज ने कहा कि आप किराये की गाड़ी क्यों लाये। मैं गाड़ी में बैठने का व्यसनी नहीं हूँ। मुझे तो पैदल चलने में ही आनन्द आता है। गाड़ी में इसलिये बैठता हूँ कि समय की बचत हो।

मितव्ययिता

एक दिन पं० भीमसेन कुछ खाद्य पदार्थ बाज़ार से मोल लाये। स्वामीजी ने उनसे कहा कि ज्ञात होता है आपने भाव की पूछ ताछ नहीं की और पदार्थ भी अच्छे नहीं हैं। रुपया बड़ी सावधानी से खर्च करना चाहिये। कभी २ एक कौड़ी की कमी से करोड़ों की हानि हो जाती है।

समय का मूल्य

एक दिन कर्मचारी नियत समय से आध घण्टा पीछे काम पर आये, महाराज ने उन्हें उपदेश दिया कि हमारे देश के निवासी समय का मूल्य नहीं जानते। उसे व्यर्थ खोते हैं यही उनकी दुरवस्था का कारण है। समय का मूल्य उस समय ज्ञात होता है जब एक मरणासन्न रोगी को देख कर वैद्य कहता है कि यदि मुझे पाँच मिनट पहले बुलाते तो यह न मरता। अब सहस्र रुपये भी व्यय करके नहीं बच सकता।

लखनऊ

शाहजहाँपुर से स्वामीजी १७ सितम्बर सन् १८७९ को लखनऊ के लिये रवाना होगये। १८ सितम्बर को स्वामीजी लखनऊ उपस्थित हुए। इस बार महाराज लखनऊ केवल छः दिन टिके। लखनऊ से २४ सितम्बर को वह कानपुर गये और वहाँ केवल एक दिन ठहर कर फर्रुखाबाद चले गये।

श्री महाराज का २५ सितम्बर सन् १८७९ को फर्रुखाबाद में पुनः आगमन हुआ।

फ़र्रुख़ाबाद

उस दिन आश्विन का दशहरा था। आप के आगमन से पूर्व ही फ़र्रुख़ाबाद में आर्यसमाज लाला मदनमोहनलाल के मकान पर श्रावण कृष्णा ९ सन् १९३६ को स्थापित हो चुका था। इस बार आप को ला० मिट्ठनलाल प्रभृति ने व्याख्यान देने के लिये बुलाया था। आप इस बार फ़र्रुख़ाबाद ८ अक्टूबर सन १८७९ तक रहे और प्रतिदिन व्याख्यान देते रहे।* व्याख्यान सन्ध्या समय ५ बजे से ७ बजे तक होते थे। डेनियल साहब ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट और पादरी टी० जे० स्काट साहब व्याख्यान श्रवण करने के लिये बहुधा आया करते थे। अन्य अफ़सर और नगर के प्रतिष्ठित पुरुष भी आते थे। पहले आपके व्याख्यान लाला गौरीलाल के बँगले पर और फिर लाला मिठालाल की कोठी पर हुए। एक दिन व्याख्यान के समय तक पादरी स्काट साहब न आये। आपने व्याख्यान आरम्भ कर दिया। कुछ लोगों ने कहा कि पादरी साहब की प्रतीक्षा कर लीजिये, परन्तु आपने स्वीकार न किया।

रोग की चिकित्सा

इन दिनों महाराज संग्रहणी रोग से आक्रान्त थे। उनकी चिकित्सा बाबू दुर्गाप्रसादजी ने अपने एक विश्वस्त मुसलमान हकीम से कराई थी। पहले तो महाराज उससे चिकित्सा कराने पर सहमत न हुए, परन्तु बाबू दुर्गाप्रसाद के विश्वास दिलाने पर सहमत हो गये।

पूजकों ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी

इस बार महाराज का निवास ला० कालीचरण के बाग़ में हुआ था। उस बाग़ में दो देवमूर्त्तियाँ थीं। महाराज के व्याख्यानों का ऐसा प्रभाव हुआ कि लोगों ने देव मूर्तियों की पूजा करनी छोड़ दी।

गो रक्षा पर व्याख्यान

महाराज का एक व्याख्यान गोरक्षा विषय पर हुआ था जिसमें आप ने कहा था कि यदि एक मोटी ताज़ी गौ को मारा जाय तो उसको खाने से केवल २० मनुष्यों का पेट भर सकता है वह भी तब जब कि उसके माँस में १० सेर अन्न भी मिलाया जाय। यदि उस की रक्षा की जाय तो वह दस बार जनेगी और यदि वह ५ सेर दूध प्रतिदिन एक वर्ष तक दे तो १८००० सेर दूध देगी जिसमें यदि ५ सेर प्रति मन चावल डाल कर खीर बनाई जावे और एक मनुष्य एक सेर खावे तो एक समय में २०२५० मनुष्यों का पेट भर सकता है। इसके अतिरिक्त उसकी जो बछियाएँ होंगी वह गाय बनेंगी और उन से उत्तरोत्तर अधिक लाभ पहुँचेगा, उसके बछड़े बैल बन कर भूमि जोत कर सहस्रों मनुष्यों का अन्न से पेट भरेंगे।

गो वध से हानि

देश में सहस्रों गौएँ प्रतिदिन मारी जाती हैं जिससे देश की अत्यन्त हानि हो रही है, इसी कारण यह देश दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है। कितने शोक की बात है कि इतनी भारी क्षति को देखते हुए भी हमारे देश के शासक इस ओर ध्यान नहीं देते, परन्तु इसमें केवल शासकों का ही अपराध नहीं है, हमारा भी अपराध है। हम में एकता नहीं है और इसी कारण यह क्षति होती

* आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद की ओर से जो फ़र्रुख़ाबाद का इतिहास प्रकाशित हुआ है उसमें इस बार फ़र्रुख़ाबाद में केवल तीन व्याख्यान होने का उल्लेख है। पहला गोरक्षा, दूसरा दान का महत्त्व और तीसरा धर्म्म पर हुआ।

चली जा रही है। यदि सब मिल कर सरकार से निवेदन करें तो क्या गोवध बन्द नहीं हो सकता।

विद्वेषियों का अपवाद

इस व्याख्यान के सम्बन्ध में नगर के पौराणिक पण्डितों ने श्री महाराज की बहुत निन्दा की कि स्वामीजी गौ को पशु बताते हैं और उसके वध करने में भी कुछ दोष नहीं मानते। परन्तु ऐसी ऊट पटाँग बातों पर किसी ने कुछ ध्यान न दिया बल्कि उलटा उन्हीं लोगों को लज्जित होना पड़ा। गौ को स्वामीजी यदि पशु न कहते तो क्या उन्हें मनुष्यों की कोटि में रखते?

२ अक्टूबर सन् १८७९ को महाराज का व्याख्यान लाला जगन्नाथ के गृह पर और ५ अक्टूबर को आर्य्यसमाज में ला० मदनमोहनलाल के गृह पर और ८ अक्टूबर को फ़तहगढ़ में मुं० गौरीलाल के बँगले पर हुआ।

कुत्ते की दौड़ की उपमा

५ अक्टूबर को महाराज घोड़ागाड़ी पर सवार होकर आर्यसमाज मन्दिर में व्याख्यान देने जा रहे थे। एक कुत्ता भौंकता हुआ बड़े वेग से गाड़ी के पीछे दौड़ा, परन्तु थोड़ी दूर दौड़कर रह गया। एक सज्जन गाड़ी में उनके साथ बैठे थे। उनसे महाराज ने कहा कि कुत्ते में इतनी ही सामर्थ्य थी, घोड़े के बराबर कैसे दौड़ सकता था। यही दशा कपोलकल्पित ग्रन्थों के मानने वालों की है, वह भी प्राचीन वेदोक्त धर्म के मानने वालों के सम्मुख शास्त्रार्थ करने में असमर्थ रहते हैं।

न्यायकर्त्ता का कर्त्तव्य

जब महाराज आर्यसमाज मन्दिर में पहुँचे तो वहाँ बाबू दुर्गाप्रसाद बैठे हुए थे। वह आनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। महाराज ने उनसे कहा कि न्यायकर्त्ता को लेश मात्रभी पक्षपात न करना चाहिये और अन्याय कभी न करना चाहिये। बाबू साहब ने निवेदन किया कि जहाँ तक हो सकता है मैं ख़ूब अनुसंधान कर लेता हूँ, परन्तु किसी के अन्तःकरण की बात कैसे जान सकता हूँ, महाराज ने कहा कि जब तक पूर्ण विद्या और विज्ञान न हो न्याय करना उचित नहीं है, तो फिर तुम न्याय क्यों करते हो। इस पर बाबू साहब चुप होगये। तदनन्तर महाराज ने व्याख्यान भी न्यायाधीश और साक्षियों के कर्तव्य पर ही दिया। महाराज ने यह भी कहा कि म्यूनीसिपेलिटियाँ कूड़े का ढेर लगवा देती हैं, यह बहुत हानिकारक है, इससे बहुत रोग उत्पन्न होते हैं।

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या

फ़तहगढ़ में जो व्याख्यान हुआ था उसमें आपने आर्यसमाज के दस नियमों की अति सुन्दर और मनोहर व्याख्या करने के पश्चात् कहा था कि इन में एक नियम भी व्यर्थ नहीं है और न कोई उनका व्यर्थ होना सिद्ध कर सकता है; फिर ब्राह्म-समाज के सिद्धान्तों का बड़ी प्रबल युक्तियों से खण्डन किया।

आर्यसमाज का फ़ण्ड

३ व ४ अक्टूबर को कतिपय प्रतिष्ठित और धनाढ्य आर्यसामाजिक पुरुष महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि आर्यसमाज को फ़र्रुख़ाबाद में दृढ़ भित्ति पर स्थापित करने के लिये एक धन-राशि का होना आवश्यक है। महाराज के अनुमति प्रकट करने पर उन

सज्जनों ने २००) से लेकर १०००) रु० तक चन्दा लिखाया और १०००) रु० वेदभाष्य की सहायतार्थ दिया कि इस रुपये से मुद्रणालय स्थापित किया जाय।

पौराणिकों की ईर्ष्या और कूट नीति

जब इस प्रकार से आर्यसमाज और वेदभाष्य की आर्य रईसों ने पुष्कल धन से सहायता की तो पौराणिकों को बड़ी ईर्ष्या हुई और उन्होंने आर्यसमाज और उस के प्रवर्तक को पराभूत और अप्रतिष्ठित करने की यह चाल सोची कि स्वामीजी फर्रुखाबाद से शीघ्र ही चले जाने वाले हैं, अतः कुछ प्रश्न उनके पास भेज दिये जावें ताकि वह जाने से पहले उनका उत्तर न दे सकें और फिर प्रसिद्ध कर दिया जाय कि स्वामीजी से उनके उत्तर न बन पड़े। अतः उन्होंने ६ अक्टूबर को सन्ध्या समय २५ प्रश्न लिख कर बाबू बलदेवप्रसाद बी० ए०, हैडमास्टर गवर्नमेंन्ट स्कूल के नाम से स्वामीजी की सेवा में भेजे और साथ ही एक विज्ञापन भी छपा कर वितरण किया जिस पर १४ मनुष्यों के हस्ताक्षर थे। विज्ञापन में लिखा था कि यदि इन प्रश्नों का उत्तर प्रमाण सहित पत्रद्वारा न दिया जायगा तो यह समझ लिया जायगा कि आपने अपना मत आधुनिक मान लिया और इन प्रश्नों को आप के मतानुयायियों और अमरीका के सज्जनों के पास भेजा जायगा और भाषा और अंग्रेजी के पत्रों में मुद्रित कराया जायगा। उन्हें उत्तर देने में क्या देर थी। उन्होंने उसी समय कहा कि उत्तर लिख लो, परन्तु लोग लिख न सके। ७ अक्टूबर को वह उत्तर लिखे गये और यह विचार हुआ कि उन्हें जब तक सब आर्य सज्जन सुनलें बाबू बलदेवप्रसाद के पास न भेजा जाय। अतः वह पहले आर्यसमाज के अधिवेशन में पढ़कर सुनाये गये और तत्पश्चात १२ अक्टूबर को बाबू बलदेवप्रसाद के पास भेजे गये।

प्रश्नोत्तर निम्न प्रकार थे:—

प्रश्न १—आप्तग्रन्थानुसार परिव्राजकों के धर्म क्या हैं? उनको यानादि पर चढ़ना अथवा धूम्रपानादि अन्य व्यसन करना योग्य हैं वा अयोग्य?

उत्तर १—वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेद और वेदानुकूल आप्तशास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, लोकेषणा, पुत्रेषणा, अविद्या, हठ, दुराग्रह, स्वार्थ-साधनतत्परता, निन्दा, स्तुति, मानापमान, परद्रोहादि दोषों से रहित हो, सुपरीक्षापूर्वक सत्यासत्य निश्चय करके सर्वत्र भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्य-ग्रहण, असत्य-परित्याग से सब मनुष्यों को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के साधन, सत्य विद्या, सनातन धर्म सुपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से सहवर्तमान करके दुष्टाचारों से पृथक् करदेना परिव्राजकों का धर्म है। लाभ में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित होके यानों पर बैठना तथा रोगादि निवारणार्थ ओषधिवत् धूम्रपान करके परोपकार करने में यतियों को कुछ भी दोष नहीं, यह सब शास्त्रों में विधान है, परन्तु तुमको वर्त्तमान वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण भ्रम है, सो ऐसी आप्तग्रन्थों से विमुखता न चाहिये।

प्रश्न २—यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्तग्रन्थों में प्रायश्चित्तों का क्या फल है? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है, उससे क्या प्रयोजन है? यदि उससे आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो

क्षमा नहीं कहते और जब मनुष्य स्वतन्त्र है, आगन्तुक पापों से बचा रहे तो उसमें परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आसकती है ?

उ० २—हमारा वेदप्रतिपादित मत के सिवाय कोई कपोलकल्पित मत नहीं है और वेदों में कहीं कृत पापों को क्षमा नहीं लिखी और न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने (किये पापों की क्षमा) सिद्ध कर सकता है। क्या प्रायश्चित्त तुमने सुखभोग का नाम समझा है ? जिस प्रकार जेलखानादि में चोरी आदि के पापों के फल का भोग होता है वैसे ही प्रायश्चित्त भी समझो। यहाँ क्षमा की कुछ भी कथा नहीं, क्या प्रायश्चित्त वहाँ पापों के दुःख रूप फल का भोग है ? कदापि नहीं. परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत से मूढ़ मनुष्य वास्तविकता से परमात्मा का अपमान और खण्डन करते और पुत्रादि के न होने या अकाल में मरने, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, पीड़ा और दरिद्र के होने पर ईश्वर को गाली प्रदान भी करते हैं, तथापि परब्रह्म सहन कर कृपालुता से रहित नहीं होता; यही उसके दयालु स्वभाव का प्रयोजन है। क्या कोई न्यायाधीश कृत पापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ाने वाला नहीं होता ? क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है ? हां ! जैसे न्यायाध्यक्ष राजदण्ड और अप्रतिष्ठादि करके तथा विद्या और सुशिक्षा देकर पापियों को पाप से पृथक् कर शुद्ध और सुखी कर देता है उसी भाँति परमेश्वर को भी जानो।

प्र० ३—यदि आपके मत से तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं उनसे सांसारिक स्थूल और अनित्य कैसे उत्पन्न हुए ?

उ० ३—जो परम अवधि सूक्ष्मता की है अर्थात् जिसके आगे स्थूल से सूक्ष्मता कभी नहीं हो सकती उसको परमाणु कहते हैं, जिसके प्रकृति, अव्याकृति अव्यक्त, कारण आदि नाम भी हैं और वह अनादि होने से नित्य हैं। हाय ! लोगों की उलटी समझ पर। जो कारण के गुण समवाय सम्बन्ध से कारण में हैं वे नित्य हैं। क्या जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं वे कार्यावस्था में भी नित्य हैं। क्या जो गुण कारणावस्था में हैं वे कार्य्यावस्था में वर्त्तमान होकर फिर जब कारणावस्था होती है तब भी (कारण के गुण) नित्य नहीं होते ? और जब परमाणु मिल कर स्थूल होते हैं वा पृथक् २ होकर कारण रूप होते हैं तब भी उनके विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य नित्य होने से अनित्य नहीं होते। वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उनमें नित्य है क्योंकि यह बात गुणगुणी-समवाय सम्बन्ध से है।

प्र० ४—मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है ? विद्या, ज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है वा नहीं ? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है ? और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के अधीन है वा नहीं ? यदि है तो क्यों ?

उ० ४—मनुष्य और ईश्वर का राजा प्रजा, स्वामी सेवक आदि का सम्बन्ध है। अल्प ज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता। जीव व परमात्मा में व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी है। जीवात्मा परमात्मा के अधीन सदा रहता है, परन्तु कभी कर्म करने में नहीं, किन्तु

पाप कर्मों के फल भोग में वह ईश्वर की व्यवस्था के अनन्त सामर्थ्य युक्त होने से परतन्त्र है और जीव अल्प सामर्थ्य वाला है, इसलिये उसका परमेश्वर के अधीन होना अवश्य है।

प्र० ५—आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं? जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में मनुष्य एक अथवा बहुत मनुष्य उत्पन्न हुए। जबकि उनमें कर्म आदि की कोई विभिन्नता न थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों ही को वेदोपदेश क्यों किया? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है?

उ० ५—संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं। सृष्टिप्रवाह से अनादि है, सादि नहीं, क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म्म, स्वभाव अनादि और अव्याहत (बे रोक टोक) हैं। जो ऐसा नहीं मानते उनसे पूछना चाहिये कि प्रथम ईश्वर निकम्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी निकम्मे थे। जैसे परमेश्वर अनादि वैसे जगत् का कारण अनादि और जीव भी अनादि हैं। क्योंकि विना किसी वस्तु के उससे किसी कार्य का होना सम्भव नहीं; जैसे इस कल्प की सृष्टि की आदि में बहुत स्त्री पुरुष उत्पन्न हुए थे, वैसे ही पूर्व-कल्पान्त सृष्टि में उत्पन्न हुए और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे, कर्मादिक भी जीवों के अनादि हैं। चार मनुष्यों के आत्मा में वेदोपदेश करने में यह हेतु है कि उनके सदृश वा अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं थे। इसलिये परमेश्वर में पक्षपात कुछ भी नहीं आ सकता।

प्र० ६—आपके मत में न्यूनाधिक कर्मानुसार फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे है? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उसको भूत, भविष्यत, वर्त्तमान का ज्ञान है, अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि अमुक पुरुष अमुक समय में अमुक काम करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता क्योंकि वह सत्य ज्ञान है, अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर को ज्ञान है, तो कर्म उसके लिये नियत हो चुका तो जीव स्वतन्त्र कैसे है?

उ० ६—कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते क्योंकि जिसने जैसा और जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है। अधिक न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है। ईश्वर के ज्ञान में भूत, भविष्यत् काल का सम्बन्ध नहीं होता। क्या ईश्वर को ज्ञान होकर न हो और न होके होने वाला है? जैसे ईश्वर को हमारे आगामी कर्मों के होने का ज्ञान है वैसे ही मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण कर्म साधनों के नित्य होने से सदा स्वतन्त्र है, परन्तु अनिच्छित दुःखरूप पापों का फल भोगने के लिये ईश्वर की व्यवस्था में (जीव) परतन्त्र होते हैं। जैसे कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं वैसे ही उन पाप पुण्यात्मक के दुःख सुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं है। क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्मों से उलटा है? जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने २ कर्मों के करने में स्वतन्त्र हैं?

प्र० ७ मोक्ष क्या पदार्थ है?

उ० ७—सब दुष्ट कर्मों से छूट कर सब शुभ कर्म करना जीवन्मुक्ति और सब दुःखों से छूट के आनन्द से परमेश्वर में रहना विदेह-मुक्ति कहाती है।

प्र० ८—धन बढ़ाना अथवा शिल्प विद्या, वैदिक विद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला

तथा ओषधि निकालना जिससे मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोग ग्रस्त हो उसको ओषधि आदि से नीरोग करना धर्म है वा अधर्म ?

उ० ८—न्याय से धन बढ़ाने, शिल्प विद्या प्राप्त करने और परोपकारणी बुद्धि से यन्त्र वा ओषधि सिद्ध करने से धर्म और अन्याय द्वारा करने से अधर्म होता है। धर्म में प्रवृत्ति करने के लिये यत्न करना तथा ओषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म है, इससे विपरीत करने से अधर्म होता है।

प्र० ९—आमिष भोजन से पाप है या नहीं। यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में पशुहिंसा करना यज्ञादिकों में विहित है और भक्षणार्थ हिंसा करना क्यों लिखा है ?

उ० ९—सिवाय ओषधि या आपत्तिकाल के मांसभक्षण में दोष है। जैसे डाकू आदि दुष्ट मनुष्यों को राजा लोग मारते हैं, बन्धन वा छेदन करते हैं, क्या वैसे हानिकारक पशुओं को न मारेंगे और औषधादिकों के लिये शुद्ध, वनस्थ, जलस्थ पशुओं के मांस खाने में कोई दोष हो सकता है ? वेद और आप्तों ने यज्ञ के लिये पशुहनन कहीं नहीं लिखा। रोगनिवारणादि के बिना इन्द्रियारामता के लिये भक्षणार्थ हिंसा करना वेद व आप्तों ने कहीं नहीं लिखा। हां वाममार्गादि पंथियों ने आप्तों के लेख में भी अपना झूठा लेख कर दिया है। जैसे 'संवत्सरंतु गव्येन' गाय के मांस के पिण्ड प्रदान करने से पितरों की तृप्ति वर्ष दिन तक होती है। इसी प्रकार भैंसा आदि के पिण्ड भी लिखे हैं। क्या कोई भद्र पुरुष ऐसे दुष्ट वचनों को अंगीकार करेगा ?

प्र० १०—जीव का क्या लक्षण है ?

उ० १०—"इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्"। यह जीव का लक्षण न्यायशास्त्रोक्त है॥

प्र० ११—सूक्ष्म यंत्रों से ज्ञात होता है कि जल में अनन्त जीव हैं तो जल का पीना उचित है वा नहीं ?

उ० ११—क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता को अपने वचनों से प्रसिद्ध नहीं करा देते ? न जाने यह भूल दुनिया में कब तक रहेगी। जल पात्र और पात्रस्थ जल अन्त वाले हों तो उसमें अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे। छान कर वा आँख से देख कर जल का पीना सब को उचित है। जिसको शङ्का हो जल पीना छोड़ दे।

प्र० १२—मनुष्य के लिये बहुत स्त्री करने का कहाँ निषेध है ? यदि निषेध है तो धर्म्मशास्त्र में जो यह लिखा है कि यदि एक पुरुष के स्त्री बहुत हों उनमें एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं, यह क्यों लिखा ?

उ० १२—मनुष्य को अनेक स्त्रियों के करने का निषेध वेद में लिखा है। संसार में हर कोई अच्छा नहीं होता। जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होके अपने विषय सुख के लिये बहुत सी स्त्रियाँ करलें तो उनमें सपत्नीभाव होने से अवश्य विरोध हो जाता है। जब एक के पुत्र होता है दूसरी विरोध के कारण विष प्रयोग आदि से उस को न मार डाले, इस लिये सब का पुत्र होना लिखा है।

प्र० १३—आप ज्योतिष-शास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं ? और भृगु

संहिता आप्त ग्रन्थ है वा नहीं, और उक्त शास्त्र द्वारा मनुष्यों के दुःख और सुख का ज्ञान होता है या नहीं ?

उ० १३—हम ज्योतिष-शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं, फलित भाग को नहीं क्योंकि जितने ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थ हैं, उनमें फलित का लेश भी नहीं है। जो भृगु सिद्धान्त कि जिस में केवल गणित विद्या है उसको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं, इतर को नहीं। ज्योतिष-शास्त्र में भूत, भविष्यत् कालस्थ सुख वा दुःख विदित होना कहीं नहीं लिखा। सिवाय अनाप्तोक्त ग्रन्थों के।

प्र० १४—और ज्योतिष शास्त्र में आप किस सिद्धान्त ग्रंथ को आप्तग्रन्थ समझते हैं।

उ० १४—ज्योतिष शास्त्र में जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उन सब को हम आप्तग्रन्थ मानते हैं अन्य (को) नहीं।

प्र० १५ आप पृथ्वी पर सुख, दुःख, विद्या, धर्म्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता और अधिकता मानते हैं या नहीं, यदि मानते हैं तो पहले इनकी वृद्धि थी अब है या होगी ?

उ० १५—हम पृथ्वी में सुख आदिकों की वृद्धि क्षय की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं। मध्यावस्था में बराबर जानो।

प्र० १६—धर्म के क्या लक्षण हैं और धर्म सनातन है, परमेश्वरकृत वा मनुष्यकृत है?

उ० १६—जो पक्षपातरहित न्याय कि जिसमें सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो वह धर्म्म का लक्षण कहाता है। तथा जो सनातन और ईश्वरोक्त वेदप्रतिपादित है। मनुष्यकल्पित कोई धर्म्म नहीं।

प्र० १७—यदि मुहम्मदी अथवा खृष्टी मतानुयायी कोई आप के धर्मानुसार चले और आप के मत में दृढ़ विश्वासी हो तो आप और आप के मतानुयायी उसको ग्रहण कर सकते हैं या नहीं और उसका पाक किया हुआ भोजन आप और आप के मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं ?

उ० १७—विना वेदों के हमारा कपोलकल्पित कोई भी मत नहीं है, क्या तुमने अँधेरे में गिर कर खाना, पीना, मल मूत्र करना, जूती, धोती, अंगरखा धारण करना, सोना, उठना, चलना धर्म्म मान रक्खा होगा। हाय ! उन कुमति पुरुषों पर कि जिनकी बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हो जो कि जूता पहनना या न पहनना धर्म्म मानते हैं। सुनो भाइयो और आँख खोलकर देखो ! ये सब अपने २ देश के रीति-व्यवहार हैं।

प्र० १८—आपके मत से विना ज्ञान मुक्ति होती है या नहीं ? यदि कोई मनुष्य आपके मतानुसार धर्म्म पर आरूढ़ हो और ज्ञानहीन हो तो उसकी मुक्ति हो सकती है या नहीं ?

उ० १८—विना परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के मुक्ति किसी की नहीं होती, सुनो भाइयो! जो धर्म्म पर आरूढ़ होगा क्या उसको ज्ञान का अभाव हो सकता है वा ज्ञान के विना धर्म पर पूरी स्थिति कोई मनुष्य कर सकता है ?

प्र० १९—श्राद्धादिक अर्थात् पिण्डदानादिक जिसमें पितृतृप्ति के अर्थ ब्राह्मण भोजनादि कराते हैं, शास्त्रीय हैं या अशास्त्रीय। यदि अशास्त्रीय हैं तो पितृकर्म्म का क्या अर्थ है और मन्वादिक ग्रन्थों में इनका लेख है या नहीं ?

उ० १९—जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा करना पुरुषार्थ है, उत्तम पदार्थों से उनकी तृप्ति करना श्राद्ध और तर्पण कहाता है। वह (वेदादि) शास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट स्वार्थियों को लड्डू आदि से पेट भराना श्राद्ध वा तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं, किन्तु पोपों का अनर्थ-कारक आडम्बर है। जो मनु आदि ग्रन्थों का लेख है सो वेदानुकूल मान्य है, अन्य कोई नहीं?

प्र० २०—कोई मनुष्य यह समझ कर कि मैं पापों से विमुक्त नहीं हो सकता, आत्म-घात करे तो उसका कोई पाप है वा नहीं ?

उ० २०—आत्मघात करने से पाप ही होता है। पापाचरण का फल भोगे विना कोई बचता नहीं। पापों से मुक्ति नहीं हो सकती।

प्र० २१—जीवात्मा संख्यात हैं या असंख्यात। कर्म्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्षादि योनि में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उ० २१—ईश्वर के ज्ञान में जीव संख्यात और जीव के अल्पज्ञान में असंख्यात हैं। पापादिक करने से जीव पशु वृक्षादिक योनियों में उत्पन्न होता है।

प्र० २२—विवाह करना अनुचित है वा नहीं और सन्तानोत्पत्ति करने से किसी पुरुष को पाप होता है या नहीं; यदि है तो क्यों ?

उ० २२—जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सब को उचित है। वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतु गामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में कुछ दोष नहीं। व्यभिचारादि से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है क्योंकि अन्यायाचरणों में दोष हुए विना कभी नहीं रह सकता।

प्र० २३—अपने सगोत्र में सम्बन्ध करना दूषित है या नहीं ? यदि है तो क्यों है। सृष्टि के आदि में ऐसा हुआ था वा नहीं ?

उ० २३—अपने सगोत्र में विवाह करने में दोष यों है कि इससे शरीर और आत्मा में प्रेम व बलादि की उन्नति यथावत् नहीं होती। इसलिये भिन्न गोत्रों में ही विवाह सम्बन्ध करना उचित है। सृष्टि के आदि में गोत्र नहीं थे फिर वृथा क्यों परिश्रम किया। हाँ पोप-लीला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप एक ही व्यक्ति से सब सन्तान मानने से पशु व्यवहार सिद्ध होता है। इस को जो माने सो मानता रहे।

प्र० २४—गायत्री जाप से कोई फल है या नहीं और है तो क्यों है ?

उ० २४—गायत्री का जप जो वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है, क्योंकि गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है। पोपलीला के जप के अनर्थ रूप फल होने की क्या ही कथा कहना है। कोई अच्छा वा बुरा किया हुआ कर्म्म निष्फल नहीं होता।

प्र० २५—धर्माधर्म्म मनुष्य के अन्तरीय भाव से होता है या कर्म के परिणाम से ? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाय तो उसे आत्मघात का पाप होगा या पुण्य ?

उ० २५—मनुष्यों के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं, जिनका नाम कर्म और कुकर्म भी है। जो किसी को बचाने के लिये परिश्रम करेगा और परोपकार

के लिये जिसका शरीर विमुक्त हो जायगा उसको बिना पाप पुण्य ही होगा। ❀

सत्य का चमत्कार

सत्य का चमत्कार देखिए कि यही बाबू बलदेवप्रसाद जिन्होंने सनातन धर्म्म सभा की ओर से उपर्युक्त प्रश्न भेजे थे अन्त को वैदिक धर्म्म की सत्यता स्वीकार करने पर बाधित हुए और आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद के सभासद बन गये।

भीमा नहीं भूराज

एक दिन महाराज लाला कालीचरण के बाग में छत पर बैठे हुए थे कि कुछ स्त्रियों के आने की आहट मालूम हुई तो आपने तुरन्त ही अपने शरीर को बगल से पैरों तक वस्त्र से ढक लिया। स्त्रियाँ आकर प्रणाम करके बैठ गईं। उनमें से एक के साथ एक लड़का और दो लड़कियाँ थीं। आपने उससे लड़के का नाम पूछा, उसने भीमा बताया। आपने कहा कि इसका नाम भूराज अर्थात् पृथ्वी में प्रकाशवान् रक्खो और कहा कि लड़कियों को विद्या पढ़ाना, जब पढ़ जायँ तब विवाह करना, अभी यह छोटी हैं, विवाह की जल्दी नहीं है।

वैदिक रीत्यनुसार अन्त्येष्टि संस्कार

महाराज के फर्रुखाबाद रहते हुए बाबू मदनमोहनलाल के परिवार में एक मृत्यु हो हो गई थी। उन्होंने शव का अन्त्येष्टि संस्कार महाराज के प्रदर्शित रीति के अनुसार किया था। प्रचलित प्रथा के अनुसार क्रिया कर्म्म नहीं किया था। इस पर उनकी बिरादरी के लोगों ने बहुत विरोध किया, परन्तु वह विचलित न हुए।

अपने नहीं सब के मोक्ष की इच्छा है

एक दिन प्रातःकाल श्री महाराज लेटे हुए थे और लाला मोहनलाल, सभापति गोरक्षिणी सभा, पैर दबा रहे थे। लाला मोहनलाल ने अत्यन्त नम्र भाव से महाराज से कहा कि महाराज! जो कुछ मैंने शास्त्रों में देखा और सुना है उससे मुझे ज्ञात होता है कि आप मोक्ष के पूर्ण अधिकारी हैं। क्या आपको इस शरीर से मोक्ष पाने की इच्छा नहीं है? महाराज ने इस के उत्तर में कहा कि मैं अकेला मोक्ष पाकर क्या करूँगा मेरी तो यह इच्छा है कि बहुतसे मनुष्यों को मोक्ष मिले।

देशप्रेम

इस से स्पष्ट झलकता है कि महाराज के हृदय में आर्य्यावर्त्त के लिये असीम दया भरी हुई थी। उन्होंने ब्रह्मानन्द जैसे अलभ्य आनन्द को आर्य्यावर्त्त के उपकारार्थ छोड़ कर सांसारिक कष्ट-क्लेश में पड़ना स्वीकार किया। आर्य्यावर्त्त के प्रति उनका हृदय करुणा से इतना कोमल होगया था

❀ यह प्रश्नोत्तर 'फर्रुखाबाद का इतिहास' नामक पुस्तक से ज्यों के त्यों उद्धृत किये गये हैं। यह इतिहास आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद की ओर से हाल में ही प्रकाशित हुआ है। पण्डित लेखराम कृत उर्दू जीवन-चरित में यही प्रश्नोत्तर दिये हुए हैं, परन्तु उनकी भाषा में अनेक जगह भेद है और उत्तर संख्या ९ के भाव में भी। दयानन्द-प्रकाश में भी यह प्रश्नोत्तर पण्डित लेखराम की पुस्तक से ही लिये गये हैं। यह प्रश्नोत्तर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' पत्र में भी छपे थे जो आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद की ओर से प्रकाशित होता था। फर्रुखाबाद के इतिहास में भी उक्त पत्र से ही लिये गये हैं। अतः उनका उपर्युक्त रूप ही ग्राह्य है। —संग्रहकर्त्ता.

कि वह उसके सम्पूर्ण दुःखों को दूर करना चाहते थे। जब कभी देश की दुर्दशासूचक कोई घटना उनके सम्मुख आजाती थी तो उन्हें मर्मान्त दुःख होता था।

शवदाह के लिये ईंधन न मिला

एक दिन ऐसा हुआ कि एक ग्रामवासिनी बुढ़िया अपने युवा पुत्र के शव को गङ्गा तट पर लाई। वह इतनी दरिद्र थी कि मृतक के दाह के लिये ईंधन तक भी उपस्थित न कर सकी और उसने शव को दाह किये बिना ही गङ्गा में बहा दिया।

महाराज को जब यह वृत्त ज्ञात हुआ तो वह गद्गद्कण्ठ होकर करुणस्वर में बोले "हाय हमारा देश इतना निर्धन होगया है कि मृतक शरीरों को काष्ठ तक भी नहीं मिल सकता।"

लाला मोहनलाल कहते थे कि मैंने महाराज को किसी विषय पर शोक प्रकट करते नहीं देखा था, परन्तु इस घटना से उन पर इतना प्रभाव पड़ा था कि उनके नेत्रों में अश्रु भर आये थे।

स्वराज्य

एक दिन महाराज ने कहा कि कुछ काल से परदेशी राजाओं ने हमारे देश से इतना धन हरण कर लिया है कि अब वह सर्वथा धनहीन होगया है, परन्तु इस देश की वसुन्धरा इतनी उपजाऊ है कि अधिकार (स्वराज्य) पाने से थोड़े ही काल में इस देश को पुनः धनधान्य से पूरित कर देगी।

सच्चा आनन्द

एक दिन सेठ निर्भयराम श्रीसेवा में उपस्थित हुए। महाराज ने उनसे पूछा कि सेठजी आनन्दित हो ? सेठजी ने उत्तर दिया कि हाँ महाराज आपकी दया से पुत्र, पौत्र, धन, धान्य सब कुछ हैं। महाराज ने कहा कि धर्म्म कर्म्म और आत्मा-परमात्मा से भिन्न अन्य वस्तुओं में आनन्द समझना अविद्या का लक्षण है।

मायिक दयानन्द

एक दिन महाराज ने प्रसङ्गवश कहा कि इस देश में अनेक दयानन्द उत्पन्न होंगे। ऐसे मायिक पुरुषों से वैदिक धर्म्म की रक्षा करना बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ता का काम होगा।

कर्म-फल

इन दिनों मिस्टर स्काट फर्रुखाबाद के मैजिस्ट्रेट थे। वह स्वामीजी के व्याख्यान सुनने आया करते थे और उन्हें बहुत पसन्द करते थे। वह एक पैर से कुछ लँगड़े थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि कर्म्मफल का पता नहीं लगता। स्वामीजी ने उनसे प्रश्न किया कि आप के पैर में लँगड़ापन क्यों है ? स्काट साहब ने कहा कि ईश्वर की इच्छा। स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर की इच्छा नहीं, यह कर्म्मफल है। सुख दुःख भोग का नाम ही कर्म्मफल है। जिस भोग का कोई कारण दिखाई न दे वह पूर्व जन्म के कर्मों का फल है।

मेरा काम मन्दिर को तोड़ना नहीं है

उन दिनों बाजार की नाप हो रही थी। बीच में एक मढ़िया थी जहाँ लोग धूप दीप दिया करते थे। बाबू मदनमोहनलाल ने स्वामीजी से कहा कि स्काट साहब आप को बहुत मानते हैं उनसे कह कर मढ़िया को हटवा दीजिये। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरा काम लोगों के मनोमन्दिरों से मूर्त्तियें निकलवाना है, ईंट पत्थर के मंदिरों को तोड़ना फोड़ना नहीं है।

८ अक्टूबर सन् १८७९ को महाराज कानपुर चले गये। १२ अक्टूबर को प्रश्नों के उत्तर आर्य्यसमाज में सुनाये गये और प्रश्नकर्त्ता के पास भेज दिये गये और विज्ञापन का उत्तर भी यथोचित दे दिया गया।

कानपुर

कानपुर में महाराज १६-१०-१८७९ तक रहे। इन दिनों में आपने वेदभाष्य-रचना के अतिरिक्त अन्य कार्य्य नहीं किया। कानपुर में ठाकुर मुकन्दसिंह व मुन्नासिंह छलेसर वालों को मुक़दमों की पैरवी के लिये मुख़्तार-आम और मुंशी समर्थदान आदि कतिपय व्यक्तियों को पुस्तक बेचने और मूल्य उगाहने के लिये एजेन्ट नियत किया।

'इण्डियन मिरर' कलकत्ता २८-१२-१८७९ के अंक में महाराज के इस बार कानपुर पधारने के विषय में इस प्रकार लिखा था:—

"'इंडियन चर्च गजट' का संवाददाता कहता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द सरस्वती के अनुयायी शीघ्रता से बढ़ रहे हैं। उनके बाणों का लक्ष्य मूर्तिपूजा, मिथ्या-विश्वास और जातिभेद की सारी व्यवस्था हैं। उनके पिछली बार के आगमन ने जिसे लगभग एक मास हुआ बहुत हलचल और सनसनी उत्पन्न करदी है और उनके आगमन का परिणाम कानपुर में वैदिक (आर्य) समाज की स्थापना हुई है।"

प्रयाग

१७ अक्टूबर सन १८७९ को कानपुर से महाराज प्रयाग आये और ला० दुर्गाप्रसाद के बाग़ में उतरे। इस बार प्रयाग में महाराज की केवल ६ दिन स्थिति रही। महाराज के तीन व्याख्यान हुए-एक सृष्ट्युत्पत्ति और दूसरा पुनर्जन्म, मृतकश्राद्ध और तीसरा नवीन वेदान्त पर। कालेज के कुछ छात्रों ने कुछ प्रश्न किये थे जिनका महाराज ने सन्तोषप्रद उत्तर दिया था। उन दिनों महाराज को ज्वर था और संग्रहणी रोग से भी पूर्णतया मुक्त नहीं हुए थे। तो भी वे उषाकाल में उठकर स्नान करते थे और शरीर पर मृत्तिकालेपन करते थे। एक जन भगवानदास को महाराज की योगक्रिया देखने की बड़ी इच्छा थी। एक दिन उसने छिप कर देखा जब वह उषाकाल में ध्यानावस्थित थे। उसने देखा कि महाराज भूमि से छः इञ्च ऊपर शून्य में स्थित थे।* स्वामीजी का अधिक समय वेदभाष्य की रचना में व्यय होता था।

मिर्ज़ापुर

२३ अक्टूबर सन् १८७९ को महाराज प्रयाग से मिर्ज़ापुर पधारे और सेठ रामरतन के बाग़ में ठहरे। आप यद्यपि रुग्ण थे परन्तु परोपकार के कार्यों से आपको उपरति न थी। मिर्ज़ापुर में इस अवस्था में भी आपने तीन व्याख्यान दिये जिनमें श्रोताओं की संख्या सहस्रों की होती थी।

गोसाईं टोले में एक व्याख्यान सेठ रामरतन की कोठी में हुआ था। सेठजी ने

---

* दयानन्दप्रकाश में इस घटना का संवत् १९३१ और स्वामीजी की योगक्रिया देखनेवाले का नाम ठाकुरप्रसाद दिया है। देखो पृष्ठ २३३। —संग्रहकर्त्ता.

गाड़ी नहीं आई तो पैदल ही सही

व्याख्यान-स्थल में आपको पहुँचाने के लिये गाड़ी भेजने का वचन दिया था, परन्तु किसी कारणवश वह गाड़ी न भेज सके। महाराज कभी नियत समय का अतिक्रमण न करते थे। जब गाड़ी न आई तो आप पैदल ही चल खड़े हुए और इस रुग्ण अवस्था में जो शारीरिक कष्ट आपको हुआ उसकी लेशमात्र भी चिंता न की। नियत समय पर सभास्थल में पहुँच कर विद्या विषय पर एक अत्यन्त ओजःपूर्ण वक्तृता दी जिसे सुनकर श्रोतावर्ग चकित और मुग्ध होगये। व्याख्यान में आपने कहा कि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके विद्या का व्यवहार नहीं करता उसके आचार्य-ऋण का परिशोध नहीं होता। आपने हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज़ प्रभृति सब जातियों के पण्डितों के पाण्डित्य को धिक्कारा था कि यह लोग विद्या का अगौरव करते हैं। महाराज की वक्तृता-शक्ति ऐसी अद्भुत थी कि आपकी वक्तृता को सुनकर श्रोता उसे सत्य मानने पर बाधित होजाते थे। श्रोताओं में एक मारवाड़ी और उसके पुरोहित भी थे। वक्तृता समाप्त होने पर मारवाड़ी ने पुरोहितजी से पूछा कि महाराज! वक्तृता कैसी हुई? पुरोहितजी ने कहा कि अच्छी हुई। उस पर मारवाड़ी ने कहा 'तो फिर आपने हमें भ्रान्ति के कुँए में क्यों डाल रक्खा है?'

विद्या विषय पर व्याख्यान

हमें भ्रान्ति के कूप में क्यों डाल रक्खा है

वक्तृता सुनकर कोई यह नहीं कह सकता था कि महाराज रुग्ण हैं। आपका स्वर सदा की भाँति उच्च और स्पष्ट था। आपका गर्जन सदा की भाँति सिंह के समान था।

गद्दी पर बैठने में क्या दोष है?

मिर्ज़ापुर के एक ब्राह्मण ने महाराज पर आक्षेप किया था कि पहले आप पत्थर का तकिया लगाया करते थे और अब आप गद्दी पर बैठते और पलंग पर सोते हैं। आपने इसके उत्तर में कहा था कि इसमें क्या दोष है, ब्राह्मण आगे कुछ न कह सका।

काशी नहीं दानापुर जायंगे

बाबू जनकधारीलाल आदि दानापुर निवासी प्रतिष्ठित सज्जनों ने मक्खनलाल आदि कतिपय सज्जनों को अक्टूबर सन् १८७८ में महाराज को दानापुर लिवा लाने के लिये दिल्ली भेजा था तो महाराज ने उनसे कह दिया था कि जब हम काशी की ओर जावें तब हमें संवाद देना। कानपुर पहुँच कर महाराज का काशी जाने का विचार बदल गया और १२ अक्टूबर सन् १८७९ को आपने दानापुर आर्यसमाज के मन्त्री बाबू माधवलाल को पत्र लिखा कि अब हम काशी न जायंगे। पहले प्रयाग जायंगे फिर मिर्ज़ापुर और मिर्ज़ापुर से सीधे दानापुर जायंगे। इस पत्र में दानापुर के सज्जनों को वेदभाष्य की सहायतार्थ चन्दा एकत्र करने का भी आदेश था और निवास-स्थान के सम्बन्ध में लिखा था कि वह बस्ती से एक मील के अन्तर से हो जहाँ का जलवायु अच्छा हो और व्यख्यानस्थल नगर में हो। इस पत्र में हरिहर क्षेत्र के मेले पर भी जो कार्तिक पूर्णिमा को होता है जाने का विचार प्रकट किया गया था और वहाँ के लिये डेरे तम्बू आदि का प्रबन्ध करने को भी लिखा था। इसके

पश्चात् मिर्ज़ापुर से महाराज ने दूसरा पत्र २३-१०-७९ को दानापुर भेजा कि यदि हमें दानापुर बुलाना अभीष्ट हो तो ६ दिन के भीतर किसी को हमारे लिवाने के लिये भेज देना। तदनुसार दानापुर से पूर्वोक्त बाबू मक्खनलाल व एक जन शामलाल महाराज को लिवाने के लिये मिर्ज़ापुर पहुँच गये। मिर्ज़ापुर पहुँच कर इन लोगों ने महाराज के आदेशानुसार दानापुर को पत्र भेज दिया कि महाराज ३० अक्टूबर को दानापुर मध्यान्होत्तर में पहुँचेंगे; उनके साथ तीन पण्डित (पं० भीमसेन, पं० देवदत्त तथा एक अन्य पण्डित) एक साधु और एक भृत्य है। उनके भोजन, निवास-स्थान आदि का सुप्रबन्ध कर दिया जाय और व्याख्यान-स्थल का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया जाय और कैम्प-मजिस्ट्रेट से व्याख्यान के लिये आज्ञा लेली जाय।

जब महाराज मिर्ज़ापुर से दानापुर गये तो किनारीदार धोती, किनारीदार दुपट्टा धारण करके और रेशमी कोट पहन कर घड़ी और चेन लगाकर गये थे।

पञ्चविंश अध्याय

कार्तिक संवत् १९३६,–ज्येष्ठ संवत् १९३७.

दानापुर

'हिन्दू सत्य सभा'

सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव

सत्य सभा की जगह आर्यसमाज

स्वागत का समारोह

बाबू जनकधारीलाल, माधवलाल आदि कतिपय दानापुर निवासी सज्जनों की सन् १८६४ से ही मूर्त्तिपूजा में अरुचि होगई थी और वह आपस में धर्म-विषयों पर वार्त्तालाप किया करते थे। उन्होंने एक सभा भी स्थापित करली थी और अपने को वह 'विचारपन्थी' कहा करते थे। इसके वर्ष दो वर्ष के पश्चात् मुं० कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकें पढ़कर उन्होंने अपनी सभा का नाम 'हिन्दू सत्य सभा' रक्खा। इसके पश्चात् बाबू जनकधारीलाल काशी में प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के कुछ रद्दी प्रूफ़ों को पढ़कर स्वामीजी के उपदेशों की ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने उन प्रूफ़ों को दानापुर में अपने मित्रों को सुनाया जिन्होंने स्वामीजी की शिक्षाओं को बहुत पसन्द किया। इसके पश्चात् उक्त सभा के एक सभासद सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति मोल ले आये, जिसे पढ़कर सभासद-गण स्वामीजी के अनुयायी हो गये और जनवरी सन् १८७८ में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़कर वह पूर्णतया वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर आरूढ़ होगये और श्रीमहाराज से पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया। आपके आदेशानुसार एप्रिल सन् १८७८ में हिन्दू सत्य सभा का नाम भी 'आर्यसमाज' रख दिया गया।

महाराज ३० अक्टूबर सन् १८७९ को सयङ्काल के ६ बजे दानापुर पहुँचे। आर्य-समाज के सभासदों के अतिरिक्त सैकड़ों मनुष्य रेलवे स्टेशन पर आपके स्वागत को पहुँच गये थे। एक प्रकार का मेला सा लग गया था। बाज़ार में जब महाराज की सवारी पहुँची तो सहस्रों मनुष्य आपके पुनीत दर्शनों से अपने नेत्रों को पवित्र और तृप्त करने के लिए उपस्थित थे। आपने बाबू माधवलाल के गृह पर विश्राम किया। वहां चाय पी और कुछ देर आगन्तुकों से बातचीत की।

आगन्तुकों में बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी हेडक्लर्क दफ्तर कैम्प-मैजिस्ट्रेट भी थे। उन्होंने आप से प्रश्न किया कि यद्यपि आपका कहना ठीक है, परन्तु यदि लोग हठ से न मानेंगे तो आप क्या करेंगे। इसके उत्तर में आपने कहा कि हमारा काम इतना ही है कि हमारे कथन को लोग कानों में जगह दें और जब वह पूरे तौर पर सुनलेंगे तो वह सूई की तरह अन्दर चुभ जायगा और निकालने से न निकलेगा। यदि उनका मित्र या प्यारा एकान्त में पूछेगा तो स्पष्ट कहदेंगे कि ठीक है, हठ या लोभ लालच से न कहें तो न कहें।

हमारे वचन सुई के समान अन्दर चुभ जायेंगे

श्री महाराज ने तत्पश्चात् भोजन किया और फिर जोन्स साहब सौदागर के बँगले पर जो दीवालाज कहलाता है चले गये, क्योंकि उक्त स्थान ही आपके निवास के लिये नियत किया गया था।

कैम्प मैजिस्ट्रेट की आज्ञा

दानापुर कैन्टूनमेंट (छावनी) था, अतः महाराज के व्याख्यानों के लिये कैम्प-मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लेनी आवश्यक थी। ३१ अक्टूबर को उक्त अफ़सर ने निम्न शब्दों में आज्ञा दी।

"इन व्याख्यानों के होने में हमको कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु लेक्चरार और उनके मतावलम्बी दूसरों के चित्त न दुखावें जो उनसे भिन्न मति रखते हैं और मिस्टर गिलबर्ट इंस्पेक्टर पुलिस को सूचना दी जावे कि वह हल्ला गुल्ला रोकने के लिये आवश्यक प्रबन्ध करें।"

आगमन की सूचना

२ नवम्बर सन् १८७९ को एक विज्ञापन भी नगर में वितरित किया गया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती दानापुर में मिस्टर जोन्स के दीवालॉज में ठहरे हैं, जिस किसी को उनसे मिलने की इच्छा हो वह प्रातःकाल आठ बजे से साढ़े नौ बजे तक और जिस दिन व्याख्यान न हो उस दिन सन्ध्या समय पाँच बजे से दस बजे तक भी उपस्थित होकर सत्य-असत्य का निश्चय करके सत्य को ग्रहण और असत्य का त्याग करें। विज्ञापन में यह भी सूचना दी गई थी कि स्वामीजी के व्याख्यान प्रति दिन नये कटरे में बाबू महावीरप्रसाद की दूकान के सामने हुआ करेंगे।

व्याख्यानमाला

तदनुसार महाराज के व्याख्यान २ नवम्बर सन् १८७९ से १६ नवम्बर तक केवल १३ नवम्बर को छोड़ कर हुए, जिनके विषय सृष्ट्युत्पत्ति, देशोन्नति, वैदिक धर्म, पौराणिक, ईसाई, मुसलमानी मत खण्डन, धर्म्म में एकता की आवश्यकता, ईश्वर की वाणी, शिक्षा का प्रकार, मूर्त्ति-पूजन-निषेध आदि पर हुए। प्रसङ्ग आने पर नवीन वेदान्त और ब्राह्म-समाज के मन्तव्यों की समीक्षा भी हुई।

पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज

पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज भी उन्हीं दिनों दानापुर पहुँच गये थे और पौराणिकों में बैठ कर बहुत ही डींग मारा करते थे कि मैं स्वामीजी को कई बार शास्त्रार्थ में परास्त कर चुका हूँ। उसकी इस प्रकार की बातें महाराज के कानों तक भी पहुँचीं तो आपने सूबेदारसिंह, सौदागर-सिंह व जयरामसिंह को पण्डित चतुर्भुज के पास भेजा कि वह बताएँ

कि किस विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु पण्डितजी यही कहते रहे कि मैंने दयानन्द को अमुक २ स्थान पर हराया है और कोई ३२ स्थानों के नाम गिना दिये। तब नन्दलाल व रामलाल ने जो भाई भाई थे और जिनके गृह पर पण्डित ठहरे हुए थे उन से कहा कि ऐसी व्यर्थ बातों से क्या लाभ, यदि आपने स्वामीजी को इतनी बार हराया है तो एक बार और हरादो, परन्तु यही रट लगाते रहे कि मैंने दयानन्द को अमुक २ स्थान पर हराया है और शास्त्रार्थ के विषय में कोई उत्तर नहीं दिया।

पौराणिकराज को निकाल दिया

नन्दलाल रामलाल, पण्डित के व्यर्थ आलाप से इतने विरक्त हुए की उन्हें अपने गृह से निकाल दिया और तब वह थाने के पास ठाकुरबाड़े में ठहरे।

महाराज ने चतुर्भुज के उक्त व्यवहार को सुनकर कहा कि वह कभी हमारे सामने नहीं आयेगा, दूर से ही शोर मचाता रहता है।

पौराणिकराज की नीचता

स्वामीजी को पीटने का षड्यन्त्र

चतुर्भुज ने महाराज को क्षति पहुँचाने के लिए मुसलमानों से मेल कर लिया था और उन्हें महाराज का विरोध करने के लिए उकसाया था। चतुर्भुज के पक्ष के हिन्दू और मुसलमानों ने वह षड्यन्त्र रचा कि महाराज को शास्त्रार्थ के नियम निर्धारित करने के मिष से किसी स्थान पर बुलाकर पीटा जाय। तदनुसार एक दिन जब व्याख्यान समाप्त होगया तो कुछ लोगों ने महाराज से कहा कि आप झारीसाह के गृह पर चलें जहाँ पण्डित चतुर्भुज भी आवेंगे और वहाँ शास्त्रार्थ के नियम निश्चित करलें। महाराज उनका विश्वास करके उस स्थान पर चले गये। आपके साथ कई पुरुष और भी गये जिनमें पूर्वोक्त तीनों व्यक्ति सूबेदारसिंह आदि भी थे। इनमें से कुछ लोग तो बाहर रह गये और कुछ महाराज के साथ उस गृह के अन्दर चले गये। महाराज ने वहाँ पहुँच कर कहा कि पण्डित चतुर्भुजजी कहाँ हैं सामने आवें और बातें करें। वहाँ बहुत से मनुष्य हिन्दू और मुसलमान उपद्रव करने के उद्देश्य से बैठे हुए थे। महाराज की बात को सुन कर गोविन्दशरण मन्त्री धर्म्मसभा ने उठ कर कहा कि पण्डित तो यहाँ नहीं हैं उन्हें इस समय आँखों से कम सूझता है, आप मुझसे बातें कीजिये। महाराज ने उत्तर दिया कि यदि उन्हें आँखों से नहीं सूझता है तो मौखिक प्रश्नोत्तर करलें। गोविन्दशरण ने कहा कि वह आपके सामने नहीं आवेंगे क्योंकि वह कहते हैं कि हमें स्वामीजी के दर्शनों से प्रायश्चित्त लगता है। महाराज बोले कि वह कपड़े की आड़ से बात-चीत करलें। गोविन्दशरण ने फिर यही कहा कि वह नहीं आवेंगे आप मुझसे बात-चीत करलें। महाराज ने उत्तर दिया कि आप कौन हैं जो हम आप से बात-चीत करें। इतना सुन कर गोविन्दशरण ने दीपक बुझा दिया और सब लोग ताली बजाने लगे। यह दृश्य देख कर सूबेदारसिंह आदि ने ललकार कर कहा कि दुष्टो, हम तुम सब को मार डालेंगे। महाराज के साथियों में से एक के पास लालटैन थी वह लालटेन लेकर आगे हुआ और महाराज उसके पीछे और गृह से बाहर निकल आये। बाहर आकर महाराज को गाड़ी में बिठा कर दीघालॉज पहुँचा दिया। सूबेदारसिंह आदि पर पौराणिकों के दुर्व्यवहार

का इतना प्रभाव पड़ा कि वह पौराणिक मत को छोड़ कर वैदिक धर्म्म के अनुयायी बन गये और आर्य्यसमाज के सदस्य होगये। फिर इन लोगों ने महाराज की रक्षार्थ यह नियम कर लिया कि व्याख्यान के आदि से अन्त तक आठ दस जन पहरा देते रहें, जिससे किसी दुष्ट को कोई कुचेष्टा करने का साहस न हो।

इस घटना के पश्चात् कैम्प मैजिस्ट्रेट से सब-इंस्पैक्टर पुलिस ने रिपोर्ट कर दी कि शास्त्रार्थ से उपद्रव का भय है, तो उन्होंने बाबू दुर्गाप्रसाद, माधवलाल, महावीरप्रसाद और जनकधारीलाल के नाम १० नवम्ब. १८७९ को एक आज्ञापत्र भेजा कि इस समय नगर में दो पण्डित आये हुए हैं जिनके धर्म्म भिन्न २ हैं और बहुत से लोग दोनों के सहायक हैं। दोनों के बीच में शास्त्रार्थ की बात-चीत हो रही है। शास्त्रार्थ में उपद्रव का भय है, यदि किसी प्रकार का झगड़ा बखेड़ा हुआ तो उसका उत्तरदायित्व आप लोगों पर होगा।

कैम्प-मैजिस्ट्रेट की आज्ञा

आर्यसमाज की ओर से किसी प्रकार भी शान्तिभङ्ग की आशङ्का न हो सकती थी। आशङ्का हो सकती थी तो पौराणिकों की ओर से हो सकती थी और वह उपद्रव करने का यत्न भी कर रहे थे। परन्तु सब-इंस्पेक्टर ने रिपोर्ट की आर्य्यसमाज के विरुद्ध, इस से प्रतीत होता है कि सब-इन्सपैक्टर ने विपक्षियों के सिखाने पढ़ाने से ही ऐसा किया होगा।

सबइंस्पैक्टर का पक्षपात

एक दिन पौराणिकदल के सहयोग से मुसलमानों ने व्याख्यान-स्थल के बहुत ही निकट एक मौलवी को व्याख्यान देने खड़ा कर दिया। उसने इस जोर से बेहूदा बकना आरम्भ किया कि महाराज के व्याख्यान में विघ्न होने लगा। तब बाबू जनकधारीलाल ने इंस्पेक्टर गिलबर्ट से शिकायत की। उसने आकर मौलवी का व्याख्यान बन्द करा दिया और स्वयम् कुर्सी डाल कर बैठ गया। वह व्याख्यान सुन कर इतना प्रसन्न हुआ कि इसके पश्चात् वह रोज़ व्याख्यान सुनने आता रहा और एक दिन एक पादरी और अपने कई अंग्रेज़ मित्रों को भी लाया।

मौलवी का व्याख्यान

एक दिन एक सज्जन ने महाराज से कहा कि आप इसलाम के विरुद्ध न कहा करें। उस समय महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु सायङ्काल को जो व्याख्यान दिया वह आदि से अन्त तक इसलाम के सिद्धान्तों के विषय में ही दिया जिसमें उनकी तीव्र समालोचना की। व्याख्यान का आरम्भ ही इन शब्दों से किया कि कुछ छोकरों के छोकरे मुझ से कहते हैं कि मुसलमानी मत का खण्डन मत करो, परन्तु मैं सत्य को नहीं छिपा सकता। जब मुसलमानों की चलती थी तब वह हम लोगों का तलवार से खण्डन करते थे। अब यह अन्धेर देखो कि मुझे उनका जिह्वा मात्र से भी खण्डन करने से निषेध करते हैं। मैं ऐसा अच्छा राज पाकर भला किसी की पोल खोलने से कभी रुक सकता हूँ। डेरे पर आकर कहा कि यह समय ऐसा है कि कोई किसी को दूसरे मतों की पोल खोलने और अपने मत की श्रेष्ठता दिखाने से नहीं रोक सकता, अंग्रेजों के राज्य में यही बात बड़ाई की है। देखिये एक बार पञ्जाब के एक नगर में मैंने एक दिन ईसाई मत के खण्डन पर

इसलाम के विरुद्ध न कहो

अंग्रेज़ी राज्य की बड़ाई

जंगी लाट के सामने महर्षि दयानन्द का ईसाई मत खण्डन (पृष्ठ ५८७)

व्याख्यान दिया और इसका विज्ञापन पहले दे दिया था कि आज अमुक विषय पर व्याख्यान होगा। इस बात को जान कर कई देशी और विलायती पादरी व्याख्यान सुनने आये और मैंने अपनी शक्ति के अनुसार प्रबल युक्तियों से ईसाई मत का खण्डन किया और बाइबल के परस्पर विरोध दिखाये। घटना-चक्र से जनरल राबर्ट्स भी व्याख्यानस्थल में पहुँच गये थे। व्याख्यान की समाप्ति पर उन्होंने मुझ से हाथ मिलाया और कहा कि आप निःसन्देह बहुत निर्भीक हैं। जब आपने हमारे सामने हमारे मत का खण्डन निःसंकोच भाव से किया तो अन्य किसी का आप क्यों भय करते होंगे।

जंगी लाट के सामने ईसाई मत का खंडन

एक दिन ठाकुरप्रसाद सुनार ने महाराज से पूछा कि महाराज मेरी सन्तानें जीवित नहीं रहतीं और मेरा विश्वास है कि उनकी मृत्यु भूतों के कारण होती है, आप कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे कि मैं भूतों के भय से रक्षित रहूँ। महाराज ने उससे कहा कि तू नित्यप्रति दोनों समय सन्ध्या हवन किया कर और हवन करते समय अपनी स्त्री को भी पास बिठा लिया कर। फिर जो सन्तान होगी वह जीवित रहेगी। कहते हैं कि उसने ऐसा ही किया। ईश्वर की ऐसी कृपा हुई कि उसके पश्चात् उसके सन्तान भी हुई और जीवित भी रही।

भूतों का भय कैसे जावे

इसी ठाकुरदास ने कुछ दिन पहले ही पहली स्त्री के जीते जी दूसरा विवाह किया था। महाराज को यह ज्ञात न था। एक दिन उसने महाराज से निवेदन किया कि मुझे योगाभ्यास की विधि बताइये। महाराज ने उत्तर दिया कि एक विवाह और कर लो, तुम्हारा योग पूरा हो जायगा। यह सुन कर वह अवाक् रह गया।

एक विवाह और करलो

यही ठाकुरदास कुछ दिन के लिये आर्य्यसमाज दानापुर का सदस्य भी होगया था, परन्तु एक सभासद को दुर्वचन कहने पर सदस्यता से अलग कर दिया था। महाराज के आगमन पर उसने महाराज से पुनः सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की और जब महाराज ने आर्य्यसमाज के अधिकारी वर्ग से उसके विषय में कहा तो उन लोगों ने कहा कि यदि आप उसे नियमों के विरुद्ध सभासद बनाने की आज्ञा दें तो हम उसे पालन करने पर उद्यत हैं, नहीं तो उसे अपने पूर्व अपराध की क्षमा माँगनी चाहिये और पुनः प्रविष्ट होने के लिये आवेदन पत्र देना चाहिये। महाराज ने उत्तर दिया कि आप लोग ठीक कहते हैं, नियमविरुद्ध कार्य करने के हम पक्षपाती नहीं हैं।

नियमविरुद्ध कार्य के हम पक्षपाती नहीं

सोमलता

महाराज ने ठाकुरप्रसाद से प्रसङ्ग उठने पर कहा था कि अलखनन्दा के उस पार सोमलता मिलती है और वह ११ प्रकार की है।

एक दिन एक व्यक्ति जो भाँग बहुत पिया करता था महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रश्न किया कि चित्त किस प्रकार एकाग्र हो सकता है। महाराज ने ईषत्-स्मित भङ्गी धारण करके उत्तर दिया कि भाँग पीने से। वह इसे सुन कर विस्मित भी हुआ और लज्जित भी। महाराज को उसके दुर्व्यसन का ज्ञान न था।

चित्त भाँग पीने से एकाग्र होगा

एक दिन एक व्यक्ति ने बाग़ में से एक गुलाब का फूल तोड़ लिया। महाराज ने उसे देख कर कहा कि तुम ने अच्छा नहीं किया। यदि यह वृक्ष पर लगा रहता तो कितनी वायु को सुगन्धित करता। जब महाराज अन्दर जाकर बैठे तो वह चँवरी से मक्खी उड़ाने लगे। इस पर उस व्यक्ति ने आक्षेप किया कि फूल तोड़ने से तो आप निषेध करते हैं क्या आप की चँवरी से मक्खियों को कष्ट नहीं होता? महाराज ने उत्तर दिया कि दुःख-दायक प्राणियों के रोकने में तुमजैसे मनुष्यों ने विघ्न डाला है जिससे भारत गारत होगया। तुम जैसे निर्बल और कायर मनुष्यों से रण-भूमि में क्या हो सकता है?

फूल तोड़ा अच्छा न किया

दानापुर में एक जन ठाकुरदास घड़ीसाज़ था, वह निवाजदास के पन्थ का था। निवाजदास एक साधु हुआ है जिसकी समाधि लखनऊ के ज़िले में बथरियागूलर नामक एक ग्राम में है। यह लोग उसके बनाये हुए ग्रन्थों को मानते हैं और प्रणव का जाप और प्राणायाम करते हैं। ठाकुरदास को प्राणायाम करते हुए एक रोग होगया था, उसके नाभिकमल की वायु बिगड़ गई थी जिससे उसके नाभिस्थान में दर्द रहा करता था और भूख कम होगई थी और वह निर्बल होगया था। उसे तीन वर्ष से यह कष्ट था। उसने महाराज से अपनी दशा कही तो महाराज ने उसे चित लिटाया और उसके घुटने खड़े करा कर और पैर जुड़वा कर अपने पैर उसके पैरों पर रक्खे और उसके सिर को दूसरे मनुष्य के हाथ का सहारा दिला कर इस प्रकार उठाया कि उसके पैर धरती से न उठने पाये। ऐसा करने से उसका दर्द जाता रहा और फिर कभी न हुआ। महाराज ने उससे घड़ी का खोलना और उसके पुर्ज़ों का यथास्थान लगाना सीखा था और उसने आप को एक चिमटी और पेचकश दिया था। महाराज ने उसे उनका मूल्य देना चाहा परन्तु उसने न लिया।

तीन वर्ष का दर्द एक क्षण में दूर

उसने महाराज से यह प्रश्न भी किया था कि जब ईश्वर का नाम है तो उसका कुछ रूप भी होगा। उसके रूप को किस प्रकार देखा जा सकता है। महाराज ने उत्तर दिया कि ईश्वर सर्वव्यापक है और अरूप है, उसका साक्षात् ध्यान से होता है, जिस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म कण आकाश में उड़ते फिरते हैं और दिखाई नहीं देते। परन्तु जब किसी कमरे में सूर्य्य की किरणें किसी झरोखे में होकर आती हैं तो वह कण दिखाई देने लगते हैं इसी प्रकार ईश्वर भी हर जगह है, परन्तु वह ध्यान द्वारा ही प्रत्यक्ष होता है।

ईश्वर ध्यानद्वारा प्रत्यक्ष होता है

इसी ठाकुरदास को महाराज ने एक दिन पण्डित चतुर्भुजजी के पास यह कहला कर भेजा कि यदि पण्डितजी हमारे सामने आकर मूर्त्ति-पूजा को सिद्ध करदें तो हम उन्हें ५००) रुपये भेंट करें, परन्तु पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया कि हम उनके सामने नहीं जायंगे।

हम पण्डित चतुर्भुज को ५००) देंगे

एक हलवाई पण्डित चतुर्भुज के बहकाने सिखाने से महाराज से आकर मूर्त्तिपूजा पर व्यर्थ वितण्डा वाद किया करता था और अण्ड-बण्ड बका करता था। एक दिन महाराज ने उससे कहा तू रोज़ आकर हमें दिक़ करता है और हमारा समय नष्ट करता है, ऐसा न किया कर,

हमें दिक़ न कर, अन्यथा अंग भंग होजायगा

अन्यथा तेरा अङ्ग-भङ्ग हो जावेगा, क्योंकि वेद में मूर्त्ति-पूजा कदापि नहीं है, ऐसा करना महापाप है। इस पर उसने क्रोध में आकर महाराज के लिये कुछ अनुचित शब्द कहे। कहते हैं कि इस घटना के दस बारह दिन पीछे ही उसे गलित कुष्ठ होगया और वह मर गया।

स्वामीजी का शिष्टाचार

एक दिन जोन्स साहब सौदागर जिनके बँगले दीघालॉज में महाराज ठहरे हुए थे मिस्टर शरबियर ओवरसियर और कई पादरी और मेमों को साथ लेकर महाराज से मिलने को आये, महाराज ने उठ कर उनसे हाथ मिलाया और उन्हें कुर्सियों पर बिठाया। इससे अंग्रेज लोग कुछ आश्चर्यान्वित हुए।

योरोपियन लोगों से वार्त्तालाप

जोन्स साहब ने महाराज से कहा कि आप कुछ कहें। महाराज ने उत्तर दिया कि हम तो प्रतिदिन ही व्याख्यान देते हैं आज हम आप लोगों से ही कुछ सुनना चाहते हैं, परन्तु उन्होंने यही आग्रह किया कि महाराज ही कुछ कथन करें। इस पर महाराज ने निम्न प्रकार कथन किया:—

स्वामीजी—देखिये ईश्वर की बनाई हुई जितनी वस्तुएँ, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, मेघ, वायु आदि हैं वह सब मनुष्यों के लिये समान हैं ऐसे ही ईश्वरीयधर्म्म भी सब के लिये समान होना चाहिये वा नहीं।

आगन्तुक सज्जन—अवश्य, सब के लिये समान होना चाहिये।

स्वामीजी—कल्पना कीजिए कि सब धर्मों का जो संख्या में एक सहस्र हैं, एक मेला लगा हुआ है जिसमें हरएक धर्म्म के उपदेष्टा अपने २ धर्म्म को सच्चा और मुक्ति दिलाने वाला बताते हैं और दूसरे नौ सौ निन्यानवे धर्मों को झूठा कहते हैं। अब आप बतावें कि कौनसा धर्म्म सच्चा है?

आगन्तुक सज्जन—न्याय के अनुसार तो सब ही झूठे हैं।

स्वामीजी—परन्तु सब सर्वथा झूठे नहीं हो सकते हरएक में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य है। अब कल्पना कीजिये कि एक जिज्ञासु उस मेले में आता है और वह हरएक सम्प्रदाय के उपदेशक के पास जाकर प्रश्न करता है कि सत्य बोलना, चोरी न करना, दया करना अच्छा है वा झूठ बोलना, चोरी करना, अत्याचार करना, तो सब एकमत होकर कहते हैं कि सत्य बोलना आदि अच्छे हैं और झूठ बोलना आदि बुरे हैं। अतः वह जिज्ञासु इसी प्रकार उन सब बातों को जिन में सब का एकमत है एकत्र कर लेता है और उन्हीं बातों को वह सत्यधर्म्म मानता है। वही धर्म्म ईश्वरीय धर्म्म है। इस धर्म्म में कहीं ऐसा नहीं है कि मुहम्मद का आश्रय लिये विना वा ईसा पर विश्वास किये विना मोक्ष नहीं मिल सकता। अब आप को यदि इस में कुछ कहना हो तो कहिये।

जोन्स साहब—आप इस प्रकार से कथन करते हैं कि उस के विरुद्ध कुछ कहना अखरता है। परन्तु जब आप के ऐसे विचार हैं तो आप छूतछात क्यों मानते हैं? हमारे साथ खाने में आप को क्या आपत्ति है?

स्वामीजी—किसी के साथ खाने न खाने में हम धर्म्म अधर्म नहीं मानते। इन बातों का सम्बन्ध देश और जाति की रीति से है न कि धर्म्म से। मैं आप से पूछता हूँ कि क्या आप अपनी पुत्री का विवाह किसी देशी ईसाई से करना चाहेंगे?

जोन्स साहब—नहीं।

स्वामीजी—धर्माधर्म के विचार से वा अपनी जाति की रीति और आचार के विचार से?

जोन्स साहब—जाति की रीति और आचार के विचार से।

स्वामीजी—इसी प्रकार हम भी देशाचार के विचार से आप लोगों के साथ खान-पान नहीं करते, अन्यथा हम इसे धर्म के विरुद्ध नहीं मानते।

जोन्स साहब ने महाराज से पूछा कि आप रामचन्द्रजी को परमेश्वर मानते हैं कि नहीं तो आपने उत्तर दिया कि नहीं। तब जोन्स ने कहा कि हिन्दू मूर्त्ति क्यों पूजते हैं? महाराज ने उत्तर दिया कि अविद्या के कारण, जैसे ईसाइयों में भी बहुतसे लोग ईसा, मरियम की मूर्त्ति पूजते हैं। मूर्त्ति-पूजा हिन्दुओं का धर्म्म नहीं है क्योंकि वेदादि सच्छास्त्रों में मूर्त्तिपूजा की कहीं आज्ञा नहीं है। बात यह कि महापुरुषों की स्मृति में श्रद्धालु लोगों ने उन की मूर्त्तियाँ बनाईं, पीछे लोग उन की पूजा करने लगे। यह बात हिन्दुओं और ईसाइयों में एक-जैसी है।

इस पर आगन्तुक निरुत्तर होगये और महाराज के वार्त्तालाप से प्रसन्न होकर चले गये।

एक पादरी से बात-चीत

एक दिन जोन्स साहब फिर एक पादरी को साथ लेकर महाराज से मिलने आये। उस दिन महाराज ने उनसे पूछा कि आप पुण्य किसे समझते हैं। जोन्स साहब ने कहा कि आप ही बताइये। तब महाराज ने कहा कि जिस कार्य से बहुत से लोगों का उपकार हो वही पुण्य है। इसे जोन्स साहब ने स्वीकार किया। फिर महाराज ने उन्हें समझाया कि एक गौ की रक्षा करने से सहस्रों मनुष्यों का उपकार होता है अतः उसका बध करना पाप है वा नहीं। इस पर साहब ने कहा कि हाँ सिद्ध तो ऐसा ही होता है।

गोरक्षा

फिर महाराज बोले कि जो सिद्ध होजाय उसके अनुसार चलना भी चाहिये, अतः आप गोमांस खाना छोड़दें। साहब ने प्रतिज्ञा की कि आगे को हम गोमांस नहीं खायेंगे, परन्तु बकरे आदि का खायेंगे।

साहब की प्रतिज्ञा

महाराज ने कहा कि हम आप को बकरे आदि का मांस खाने की आज्ञा नहीं देते, परन्तु गोमांस खाने का अवश्य निषेध करते हैं।

दानापुर में बाबू माधवलाल आदि कई सज्जनों ने महाराज से यज्ञोपवीत लिये थे।

दिनचर्या

दानापुर में महाराज की दिनचर्या इस प्रकार थी कि प्रातःकाल वह बहुत सवेरे उठते थे, परन्तु किस समय उठते थे यह कोई नहीं जानता। उठकर और शौचादि से निवृत्त होकर भ्रमण करने जाते थे। कभी २ तो बांकेपुर के पास तक भ्रमण करते चले जाते थे। भ्रमण के पश्चात चाय पीते थे और फिर ११ बजे तक वेदभाष्य और वेदाङ्गप्रकाश लिखाते थे। तदनन्तर स्नान करके भोजन करते थे। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् दर्शकों से बात-चीत करते रहते थे और फिर व्याख्यान देने चले जाते थे। रात्रि के दस बजे के पश्चात् किसी को अपने पास न रहने देते थे। महाराज बहुत दिनों से संग्रहणी रोग से आक्रान्त थे, उसके उपशमनार्थ वह सरस्वती चूर्ण बनाकर खाया करते थे। दानापुर में उनके मसूड़ों और गले में सूजन होगया था।

महाराज व्याख्यान नियत समय पर आरम्भ करदेते थे, श्रोताओं के आने की प्रतीक्षा न करते थे।

दानापुर से हरिहर क्षेत्र के मेले पर भी जाने का महाराज का विचार था, परन्तु वहाँ आपके ठहरने आदि का समुचित प्रबन्ध न हो सका अतः आप वहाँ नहीं गये।

श्रीमुख से उपदेश सुनने की इच्छा

दुर्गा अवस्थी नामक एक जन कान्यकुब्ज ब्राह्मण की इच्छा थी कि वह महाराज के व्याख्यान सुने, परन्तु अपने जाति के मनुष्यों के भय से वह व्याख्यान में प्रकट रूप से नहीं जा सकता था, यदि जाता भी तो चोर के समान बाहर ही खड़ा रहता। महाराज के मुखारविन्द से कुछ श्रवण करने की इच्छा इतनी बलवती हो उठी कि यह ज्ञात करके कि महाराज रात्रि में ही तीन चार बजे भ्रमणार्थ निकल जाते हैं वह पहले से ही उनके मार्ग में जा बैठा और जब महाराज वहाँ पहुँचे तो वह उनके पीछे २ होलिया। महाराज ने उससे पूछा कि तू कौन है तो उसने अपना नाम धाम बताकर कहा कि मेरी आपके मुख से कुछ उपदेश सुनने की उत्कण्ठा है, परन्तु मैं अपनी बिरादरी के भय से आपके व्याख्यानों में नहीं आ सकता। बातें करता २ वह महाराज के बँगले तक पहुँच गया तो महाराज ने उससे कहा कि निजस्थान पर आकर जो पूछना चाहो पूछ लेना। उसने

अपने चरण मेरे मस्तक पर लगादो

हाथ जोड़कर निवेदन किया कि मैं अवश्य सेवा में उपस्थित होऊँगा, परन्तु इस समय मेरी यही श्रद्धा है कि आप अपने चरण मेरे मस्तक पर लगादें। महाराज ने कहा कि इसका क्या फल होगा। यदि और कोई बात पूछनी हो तो कहो अन्यथा हम जाते हैं। उसने फिर अपनी प्रार्थना को दुहराया तब महाराज ने यह कहकर कि इसका फल तो कुछ होगा नहीं, परन्तु यदि तेरी यही इच्छा है तो ले, अपने पैर का अँगूठा उसके मस्तक से लगादिया और वह अपने को धन्य समझता हुआ अपने घरको चला गया।

देव-मूर्त्ति पर पदाघात

'इण्डियन मिरर' कलकत्ते के अंग्रेजी दैनिक के सम्पादक को दानापुर से किसी विद्वेषी ने लिख भेजा कि स्वामी दयानन्द ने एक दिन एक देव-मूर्त्ति पर पदाघात किया और इस कारण बहुतसे लोग उनसे विरक्त हो गये और उनके व्याख्यानों में जाना बन्द कर दिया। सम्पादक ने भी विना अनुसन्धान किये ही इस समाचार को सम्पादकीय-नोट के रूप में अपने पत्र में स्थान दे दिया। यह समाचार सर्वथा मिथ्या था। किसी व्यक्ति ने भी महाराज के व्याख्यानों से असन्तुष्ट होकर जाना नहीं छोड़ा, प्रत्युत अनेक मनुष्यों ने मूर्त्तिपूजा छोड़ कर वैदिक धर्म्म स्वीकार किया और कई तो आर्यसमाज के सदस्य भी बन गये।

दलितों की चिन्ता ने विकल कर दिया

एक रात्रि को महाराज सहसा उठ कर इधर उधर टहलने लगे। उनके पांव की आहट सुनकर एक कर्मचारी की भी आँख खुल गई। उसने पूछा कि महाराज कोई कष्ट है। उन्होंने एक लम्बी साँस खींची और बोले कि ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दुओं के धर्म्म-नेता हैं जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं। यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है।

एक दिन एक सज्जन ने महाराज से कहा कि आप तो ऋषि हैं। महाराज ने कहा कि ऋषियों के अभाव में आप मुझे चाहे जो कहलें। परन्तु यदि मैं कणादादि के समय में हुआ होता तो मेरी गणना साधारण विद्वानों में भी कठिनता से होती।

मैं साधारण विद्वान् भी न गिना जाता

दानापुर से महाराज ने १९ नवम्बर सन् १८७९ को काशी के लिये प्रस्थान किया। काशी पहुँच कर महाराज विजयनगर महाराजा के आनन्द बाग़ में ठहरे।

इन दिनों महाराज का शरीर संग्रहणी रोग के कारण दुर्बल हो रहा था। महाराज ने मार्गशीर्ष कृष्णा ३ अर्थात् १ दिसम्बर को एक विज्ञापन छपवा कर नगर के हाट, बाज़ार, घाट, राजपथ पर लगवा दिया। वह विज्ञापन संस्कृत और आर्यभाषा दोनों में था। हम उसके आर्य-भाषा के भाग को नीचे उद्धृत करते हैं:—

काशी

विज्ञापन पत्र

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराजे विजयनगर के अधिपति के आनन्दबाग़ में जो महमूदरङ्ग के समीप है, निवास करते हैं। वह वेद मत का ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किन्तु जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोक्त १–सृष्टिक्रम, २–प्रत्यक्षादि प्रमाण, ३–आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा ४–आत्मा की पवित्रता और विज्ञान से विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्त्तिपूजा, जल और स्थल विशेष पापनिवारण करने की शक्ति, व्यास मुनि आदि के नाम से छल से प्रसिद्ध किये नवीन, व्यर्थ पुराण नामक आदि, ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थ, परमेश्वर के अवतार व ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा कर मुक्ति देनेहारे का मानना, उपदेश के लिये अपने मित्र पैगम्बर को पृथ्वी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्ड करना, कारण के बिना कार्य्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयम् ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना, जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी, तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सब का खण्डन करते हैं। इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े, अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में सामर्थ्य हो वह स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यव-हारों का स्थापन करें। इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सकता। इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे। वेदार्थ निश्चय के लिए जो ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनि पर्य्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वह वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होने के कारण माने जावेंगे और जो इस सभा में सभासद् हों वह भी पक्षपात रहित, धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक २ जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखने वाले हों, इनके विपरीत नहीं। दोनों पक्ष वाले जो कुछ कहें उसका शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें। वादी

महर्षि दयानन्द का हस्तलिखित पत्र बनारस के राजा शिवप्रसादजी के प्रति

(पृष्ठ ५५३)

और प्रतिवादी अपने २ लेख के अन्त में अपने २ लेख पर हस्ताक्षर से अपना २ नाम लिखें। तब जो मुख्य सभासद् हों वह भी दोनों के लेख पर हस्ताक्षर करें। उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दिया जाय और तीसरा सब सभा की सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जा की बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है जो सत्य और असत्य को ठीक २ जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना औरों को आनन्द में रखना।

पण्डित भीमसेन शर्म्मा.

इसी विज्ञापन में यह भी सूचना थी कि ६ कर्मचारियों की आवश्यकता है और यह भी कि सन्ध्या के चार बजे से लेके रात्रि के दस बजे पर्य्यन्त स्वामीजी को सबसे मिलने और बात-चीत करने का अवकाश प्रतिदिन रहता है।

काशी की दशा

इस विज्ञापन के वितरण होने के पश्चात् नगर की दशा का वर्णन काशी के समाचार पत्र 'आर्यमित्र' ने इन शब्दों में किया था "जब से स्वामीजी ने आकर विज्ञापन दिया है तब से सारे नगर में भूकम्प सा हो रहा है। कोई स्थान उनकी चर्चा से खाली नहीं दीख पड़ता। क्षुद्रलोगों ने भी स्वामीजी के ऊपर निरे असत्य विज्ञापन बना कर जहाँ तहाँ लगा दिये हैं। कोई लिखता है मैंने उसे अमुक नगर में हरा दिया था, परन्तु उसका निर्दोष पत्र नहीं छापा कि जिससे उसका लेख विश्वासयोग्य होवे। कोई कहता है कि मैं अब उन को हरा कर पार्थिवपूजा कराऊँगा।" एक पण्डित ने लिखा है कि पुरानी व कुरानी व किरानी आदि के विरुद्धवादी स्वामी को हम हरावेंगे।" ···· कुछ समाचार पत्रों ने भी पक्षपात पकड़ा है और जो जी में आया विना विचारे लिख मारा है। 'कवि वचन-सुधा' ने तो स्वामीजी को नास्तिकाचार्य, धूर्त्तशिरोमणि तक कह डाला। ८ दिसम्बर सन् १८७९ के 'कवि वचन-सुधा' ने लिखा कि बाबू प्रमदादास के सम्मुख स्वामीजी हिचक २ कर बातें करते थे। इस पर 'आर्य्य-मित्र' ने लिखा कि यह सर्वथा निर्मूल है बल्कि उक्त बाबूजी स्वयम् अपने अभिप्राय का प्रतिपादन यथावत् नहीं कर सके। हाय न जाने ऐसी असत्य बातों को बेधड़क प्रचार करने से लोगों को क्या लाभ होता है?

कर्नल और मैडम

१५ दिसम्बर अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ल २ को कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवैटस्की बम्बई से महाराज से मिलने आये मिस्टर सिनेट 'पायोनियर' के सम्पादक भी उनके साथ थे और आनन्द बाग़ में ही दूसरे मकान में ठहरे। कर्नल और मैडम से महाराज की बात-चीत दामोदर नामक दुभाषिये के द्वारा होती थी।

राजा शिवप्रसाद

१६ दिसम्बर को राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० कर्नल और मैडम से मिलने आये और महाराज से कहा कि मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। महाराज ने एक मनुष्य को भेज कर राजा साहब के आने की सूचना उनके पास भेज दी। जब तक वह कर्नल और मैडम के पास न गये

तब तक वह महाराज से बातें करते रहे। यही राजा साहब का महाराज से अन्तिम मिलन था।

किसी को शास्त्रार्थ का साहस न हुआ

स्वामीजी ने सब पण्डितों को शास्त्रार्थ का खुला चैलेंज दे रक्खा था, परन्तु काशी के किसी पण्डित ने भी उसे स्वीकार करके महाराज के सामने आने का साहस नहीं किया। तब महाराज ने व्याख्यान देने का सङ्कल्प किया। और विज्ञापन द्वारा जनसाधारण को सूचना दे दी गई कि महाराज २० दिसम्बर को बङ्गाली टोला के स्कूल में वक्तृता देंगे। इसी विज्ञापन में यह सूचना भी थी कि कर्नल आलकाट का भी उसी दिन और उसी समय व्याख्यान होगा।

मैजिस्ट्रेट के कान भरे गये

उस सूचना को पाकर पौराणिक दल में खलबली मचगई। वह यह कब सह सकते थे कि स्वामीजी मूर्त्ति-पूजा के गढ़ में ही खुले बन्दों उसका खण्डन करें। अतः कुछ संभ्रान्त और प्रभावान्वित हिन्दुओं ने काशी के मैजिस्ट्रेट मिस्टर बाल से जाकर कहा कि यदि स्वामी दयानन्द का व्याख्यान होगा तो उपद्रव हो जायगा। उन्हीं दिनों मुसलमानों का मुहर्रम का त्यौहार भी था। मैजिस्ट्रेट ने बिना कोई अनुसन्धान किये यह आज्ञा निकाल दी कि स्वामी दयानन्द काशी में किसी धार्मिक विषय पर व्याख्यान न दें। इस आज्ञा की भी सूचना पहले से स्वामीजी को नहीं दी गई। जब स्वामीजी व्याख्यान-स्थल

व्याख्यान बन्द

में पहुँचे और व्याख्यान देने खड़े हुए तो पुलिस के एक कर्मचारी ने मैजिस्ट्रेट का आज्ञापत्र उन्हें दिया। महाराज व्याख्यान देने से रुक गये, परन्तु कर्नल का व्याख्यान हुआ।

मैजिस्ट्रेट को पत्र

२१ दिसम्बर को स्वामीजी ने निम्नलिखित पत्र मैजिस्ट्रेट को लिखा :—

श्रीमन् !

क्या आप मुझे बताने की कृपा करेंगे कि आपकी कल की आज्ञा कि मैं सम्प्रति व्याख्यान न दूँ, किन आधारों पर निहित थी। आपकी सूचनार्थ उस आज्ञा की प्रतिलिपि इस पत्र के साथ भेजी जाती है। मैं आपका उपकृत हूँगा यदि आप मुझे यह भी बतायेंगे कि यह प्रतिबन्ध कितने समय तक रहेगा। आपकी सुविधानुसार आपके उत्तर का प्रतीक्षक।

आपका प्रतिष्ठाभाव-सम्पन्न,

दयानन्द सरस्वती स्वामी।

लाट साहब को पत्र

इस पत्र का कोई उत्तर प्राप्त न होने पर महाराज ने एक निवेदन पत्र लेफ्टिनेण्ट गवर्नर व चीफ़ कमिश्नर को भेजा जिसके उत्तर में सर्कार के जूनियर सेक्रेटरी पी० स्मीटन साहब की सं० ४६१ तारीख २४ फ़रवरी सन् १८८० की स्वामीजी के पास आई। वह इस प्रकार थी:—

लाट साहब का निर्णय

दयानन्द सरस्वती स्वामी का निवेदन पत्र पढ़ा गया जिसमें उन्होंने बनारस के मैजिस्ट्रेट की आज्ञा की कि वह बनारस में धार्मिक विषयों पर व्याख्यान न दें शिकायत की है। आज्ञा हुई कि निवेदक को सूचना दी जावे कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर व चीफ़ कमिश्नर की सम्मति में उक्त अवसर पर मैजिस्ट्रेट ने ठीक कार्य किया था और निवेदन अस्वीकार किया जाता है।

समाचार पत्रों में आन्दोलन

मैजिस्ट्रेट की आज्ञा के विरुद्ध 'स्टार' समाचार पत्र काशी 'पायोनियर' 'थियोसोफ़िस्ट' आदि में कुछ आन्दोलन भी हुआ था। 'पायोनियर' के सम्पादक मिस्टर सिनेट ने १ जनवरी सन् १८८० के अङ्क में लिखा थाः—

पायोनियर का लेख

यह आशा की जाती है कि स्थानिक सर्कार बनारस के कलक्टर मिस्टर बाल से पूछेगी कि जो वक्तृता पिछले दिनों दयानन्द सरस्वती वेदान्त धर्म के विषय पर देना चाहते थे उसे बन्द करने का बुद्धि के प्रतिकूल असाधारण कार्य्य क्यों किया ? इस घटना का उल्लेख एक पत्र में मङ्गल के 'पायोनियर' में हो चुका है। शुद्ध धार्मिक चिन्तन के प्रश्न पर वक्तृता की स्वतन्त्रता को दबाना बृटिश राज्य की सहिष्णुता के प्राथमिक नियमों पर निस्सन्देह उद्दण्डतापूर्ण आक्रमण है। मिस्टर बाल यह कठिनता के साथ कह सकेंगे कि उनका प्रान्त उनके हाथ से इतना निकल गया है कि किसी उपद्रव के कारण, जिसे वह ज़िला मैजिस्ट्रेट होकर दबाने में अशक्त थे, एक हिन्दू दार्शनिक को आर्यों के प्राचीन दर्शनशास्त्र की अपनी सम्मति के अनुकूल आलोचना करने की आज्ञा नहीं देसकते थे। ऐसा विचार तक करना लड़कपन है और भारतवासियों में भ्रमयुक्त विचारों की उत्पत्ति को, जो बहुत ही शोकजनक होगी, रोकने के निमित्त स्थानिक सर्कार को तुरन्त देखना चाहिये कि बनारस पर ऐसे प्रतिबन्धों के स्थिर रखने का लांछन न रहे जो ब्रिटिश राज्य की विस्तृत उदारता के अनुपयुक्त है।"

थियोसोफ़िस्ट का लेख

फ़र्वरी सन् १८८० के थियोसोफ़िस्ट में लिखा गया था, "स्वामी ने अपने सब से पिछले पत्र में हमें यह लिखा है कि मैजिस्ट्रेट मिस्टर बाल ने मेरे उस पत्र का जो मैंने उनकी आज्ञा के प्रतिवाद के रूप में भेजा था और जिस में कुछ बातें भी पूछीं थी, नोटिस तक नहीं लिया। यदि उत्तर-पश्चिमी सर्कार की यह इच्छा न हो कि यह समझ लिया जाय कि सिवाय उन लोगों के जो वेदों के एक विशेष प्रकार के अर्थ करते हैं अन्य सब लोगों को वक्तृता की स्वतन्त्रता नहीं है, तो युक्तियुक्तता के साथ हम यह आशा करते हैं कि इस विषय का अति अधिकारारूढ़ता के ढंग में बहुत शीघ्र निबटारा कर दिया जायगा। यह हम इसलिए कहते हैं कि इसमें राजनीतिका कोई प्रश्न नहीं है, प्रत्युत केवलवाणी की स्वतन्त्रता का है।"

एप्रिल सन् १८८० के थियोसोफ़िस्ट में फिर लिखा हैः—

प्रतिबन्ध हटा लिया गया

"बनारस के मैजिस्ट्रेट मिस्टर बाल ने जो मूर्खतामय प्रतिबन्ध स्वामी दयानन्द सरस्वती पर लगाया था वह अन्त को हटा लिया गया है और प्रशंसित विद्वान् और वाग्मी परिडत २१ मार्च के सायङ्काल से अपनी व्याख्यानमाला फिर से आरम्भ करनेवाले थे। इस (प्रतिबन्ध हटाने की) आज्ञा देने से पहले, जिसकी प्राप्ति के लिये स्वामी को कभी बाध्य नहीं करना चाहिये था, मिस्टर बाल ने स्वामी से लगभग एक घंटे तक बातें कीं। लेफ़्टिनेंट गवर्नर ने इस प्रतिबन्ध का यह कारण बताया है कि मुहर्रम की छुट्टियों में व्याख्यान देना

स्वामी के लिए निरापद न होता। व्याख्यानमाला के आरम्भिक व्याख्यान का विषय 'सृष्टि' था।"

आत्म-चरित

जो पत्र महाराज ने थियोसोफिस्ट को प्रतिबन्ध हटाने की सूचना देने के लिये भेजा था उसमें ही यह भी लिखा था कि 'यद्यपि मैं उत्सुक हूं कि मेरा स्व-लिखित आत्म-चरित जिसे आप प्रकाशित कर रहे हैं पूरा होजाय, परन्तु मैं उसे अपेक्षित समय अब तक नहीं दे सका हूँ। मैं यथा-सम्भव उसका विवरण शीघ्र ही आप को भेजूँगा।

प्रमदादास की अशिष्टता

कर्नल आलकाट की एक वक्तृता टाउन-हाल में हुई थी उसके सभापति बाबू प्रमदादास मित्र थे। प्रमदादास ने वक्तृता के आरम्भ होने से पहले संस्कृत में कुछ कहा। उस में यह भी कहा कि कर्नल और मैडम अन्य देश के रहने वाले हैं। वह इस देश के समाचार भली भांति नहीं जानते हैं। उन्होंने स्वामी दयानन्द को अपना गुरु बनाया है और वह इस देश में धर्म्म, शिक्षार्थ आये हैं। दयानन्द ने शास्त्रार्थ के गौरव का नाश किया है। दयानन्द की अपेक्षा अनेक सुविज्ञ पण्डित इस देश में विद्यमान हैं। इसके पश्चात् कर्नल ने काशी की

कर्नल से स्वामीजी की प्रशंसा

बनी हुई पित्तलादि की अनेक वस्तुएं अपने सामने मेज़ पर रखकर अपनी वक्तृता दी। उन्होंने वक्तृता में स्वामीजी की विशेष प्रशंसा की। इसे सुन कर अनेक लोग स्वामीजी के विरुद्ध उत्तेजित हो उठे और स्वामीजी को कष्ट पहुँचाने की चेष्टा करने लगे। इसे कर्नल समझ गये और स्वामीजी का हाथ में हाथ लेकर गाड़ी में बैठ गये। स्वामीजी ने बाबू प्रमदा-दास के कथन का प्रतिवाद करना चाहा था परन्तु लोगों ने यह कह कर कि आज केवल कर्नल के व्याख्यान की ही व्यवस्था थी स्वामीजी को बोलने नहीं दिया।

वैदिक-यन्त्रालय की स्थापना

माघ शुक्ला २ संवत् १९३६ अर्थात् १२ फरवरी सन १८८० को लक्ष्मी कुण्ड पर वैदिक यन्त्रालय की स्थापना हुई। इसकी स्थापना का प्रस्ताव सब से प्रथम आर्यसमाज मुरादाबाद ने किया था। फिर आर्यसमाज मेरठ ने अपने 'आर्य समाचार' मासिक पत्र द्वारा उसका समर्थन किया और ४२८) उसकी सहायतार्थ दिये। राजा जयकिशनदास ने भी उसकी धन से सहायता की थी। आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद ने १८००) रु० एक बार और १२५०) रु० दूसरी बार दिये थे।

व्याख्यान-माला

महाराज के व्याख्यान वैदिक यन्त्रालय के मकान की छत पर ६ बजे सायङ्काल से ८ बजे तक हुआ करते थे। फाल्गुन शुक्ला १० अर्थात् २१ मार्च से चैत्र कृ० ११ अर्थात ५ एप्रिल तक महाराज के १४ व्याख्यान हुए। ५ व्याख्यान होली से पहले और ९ पीछे हुए। अन्तिम दिवस लोगों ने महाराज को उनकी कृपा के लिए अनेक धन्यवाद दिये और प्रार्थना की कि कुछ व्याख्यान देने का और अनुग्रह करें। इस पर महाराज ने ६ व्याख्यान और दिये। अन्तिम

आर्यसमाज की स्थापना

व्याख्यान चैत्र शुक्ला ६ संवत् १९३७ अर्थात् १५ एप्रिल सन १८८० को हुआ। उसी दिन काशी में आर्य्यसमाज स्थापित हुआ। एक व्याख्यान में महाराज ने यह सिद्ध किया था कि प्राचीन काल में

रेल और स्टीमर भारत में प्रचलित थे। रेल का नाम श्यामकर्ण अश्व था।

कहते हैं कि तीसरे व्याख्यान के अन्त में एक पुरुष ने जिसका वयः क्रम ४०।४५ वर्ष होगा खड़े होकर व्याख्यान में कही हुई बातों की आद्योपान्त-पुष्टि की थी और कहा था कि स्वामीजी मेरे चचेरे भाई हैं। स्वामीजी जैसे महापुरुष के आविर्भाव से मेरा वंश पवित्र हो गया है। यह बात नहीं है कि विवाह करके सन्तान उत्पन्न करने से ही माता-पिता का उद्धार होता है। स्वामीजी-जैसी सन्तान जिन माता-पिता की हो उस से न केवल उनका ही प्रत्युत सारे कुल का ही उद्धार हो जाता है। स्वामीजी उसकी सब बातें सुनते रहे, परन्तु उन्होंने उसका प्रतिवाद नहीं किया।*

ब्रह्म-भोज में सम्मिलित

इन्हीं दिनों बङ्गाल के एक रईस विजयनगर के आनन्द बाग में ठहरे हुए थे। उन्होंने डेरे लगा रक्खे थे। एक दिन उन्होंने एक ब्रह्मभोज दिया था। उस में अनेक पण्डित निमन्त्रित होकर आये थे जिनमें पण्डित ताराचरण भी थे। स्वामीजी भी उसमें निमन्त्रित होकर गये थे और पण्डित ताराचरण के साथ उनका वार्त्तालाप हुआ था।

मिस्टर सिनेट का पत्र

प्रयाग से मिस्टर सिनेट सम्पादक 'पायोनियर' का पत्र महाराज के पास आया था जिसमें उन्होंने महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। पत्र में साक्षात् करने का उद्देश्य यह लिखा था कि यदि आप मुझे योग की वह आश्चर्यजनक शक्तियां दिखा सकें जो हिन्दू शास्त्रों में वर्णित हैं तो मैं उनके विषय में सभ्यजगत् में तुमुल आन्दोलन उत्थापित करूँगा। सिनेट साहब ने संभवतः महाराज के योगाचार्य होने की बात कर्नल और मैडम से सुनी थी। पत्र आने पर महाराज ने एक मिनट सोचा और फिर यह उत्तर लिखाया कि आप काशी आने का कष्ट न उठावें। मैं स्वयं ही प्रयाग आकर आप से मिलूँगा। महाराज ने कहा था कि सिनेट साहब हमारे पास केवल योग की अद्भुत शक्ति देखने के लिए ही आना चाहते हैं अतः जब वह आकर उन्हें न देखेंगे तो हताश होकर लौट जायंगे और मेरे प्रति भी क्षुब्ध होंगे।

प्रयाग में सिनेट साहब से साक्षात्कार

इस उत्तर के देने के कुछ दिन पश्चात् एक दिन स्वामीजी प्रयाग जाकर सिनेट साहब से मिल कर काशी लौट आये, वापस आकर सिनेट साहब से वार्त्तालाप करने का जो वृत्तान्त उन्होंने वर्णन किया उससे प्रकट होता था कि सिनेट साहब उनसे मिल कर सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि जिन शक्तियों को वह देखना चाहते थे उन्हें स्वामीजी नहीं दिखा सके। स्वामीजी और सिनेट साहब की बात-चीत में राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल ने दुभाषिये का काम किया था।

एक दिन बाबू सीताराम डिपुटीकलक्टर और प्रसिद्ध साहित्यसेवी महाराज से

* हमारी सम्मति में यह घटना अत्यन्त सन्दिग्ध है। यदि ठीक होती तो उक्त पुरुष स्वामीजी से विशेष रूप से मिलता वल्कि उनके ही पास ठहरता। लोग उससे स्वामीजी के पिता तथा जन्मस्थान आदि के विषय में बहुत सी बातें पूछते। आर्य्यसमाजी लोग ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देते। —संग्रहकर्त्ता.

बाबू सीताराम की सम्मति

मिलने आये थे। उन्होंने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि भारत में स्वामी दयानन्द के समान कोई संस्कारक उत्पन्न नहीं हुआ। वेदप्रतिष्ठा और गोरक्षा दो ही ऐसे विषय हैं जिन पर सारे हिंदू एक मत हो सकते हैं और स्वामीजी ने विशेषतः इन्हीं दो विषयों का अवलम्बन किया था।

यह जल स्वामीजी के पीने योग्य नहीं है

आनन्द बाग के कमरे में महाराज कुर्सी पर और आगन्तुक लोग फ़र्श पर बैठा करते थे। एक दिन आगन्तुकों में एक मुसलमान भी था। महाराज ने कहार से पीने को जल माँगा, वह एक पात्र में जल ले आया। तब एक मनुष्य ने कहार को डांट कर कहा कि यह जल महाराज के पीने योग्य नहीं है। कहार दुबारा पात्र को माँज धोकर जल ले आया। महाराज उक्त मनुष्य का अभिप्राय समझ गये थे। संयुक्त प्रान्त के पूर्वी ज़िलों में उस कमरे में जिसमें कोई मुसलमान बैठा हो खाने पीने की वस्तु नहीं खाते पीते। अतः कहार के कमरे में आने से पहले ही महाराज कमरे से बाहर चले गये, और वहाँ ही जल पिया। कमरे में आकर महाराज ने कहा कि आप ने जल को इसी कारण अपेय बताया था कि कमरे में एक मुसलमान बैठा हुआ है। यह ठीक नहीं था, इस से जल में कोई दोष नहीं आया था।

वह स्त्री दुष्टा थी

एक दिन एक स्त्री आकर महाराज से बातें करने लगी महाराज नीची गर्दन किये हुए बातें करते रहे। थोड़ी देर के पश्चात् उसकी ओर से मुख फेर कर बैठ गये। कुछ क्षण पीछे वह चली गई तब महाराज ने कहा कि वह स्त्री दुष्टा थी, काशी में अनेक स्त्रियाँ हैं जो साधु संन्यासियों के दर्शन की अभिलाषिणी होकर धर्मनिष्ठ होने की ख्याति लाभ करना चाहती हैं। महाराज इस लोकोक्ति को बहुधा दोहराया करते थे 'राँड साँड सीढ़ी संन्यासी, इनसे बचे सो सेवे काशी'। महाराज कभी स्त्रियों के मुख की ओर देख कर बातें नहीं करते थे।

तिरस्कार के पश्चात् प्रीति

एक दिन शिवराम वैद्य को जो कभी २ महाराज की रसोई बनाया करता था उन्होंने एक वस्त्राभूषणालंकृत स्त्री से बातें करते देख लिया। इस पर महाराज ने शिवराम का तिरस्कार किया, उसने कहा कि वह एक ६० वर्ष की वृद्धा थी। परन्तु महाराज को विश्वास न आया। थोड़ी देर पीछे वही स्त्री महाराज के सामने से होकर गई तब उन्होंने उसे देखा और तब उन्हें शिवराम की बात का विश्वास आया और तब शिवराम के प्रति विशेष प्रीति प्रकट की।

हमें बाबाजी न कहो

महाराज की प्रकृति में विनोदप्रियता भी बहुत थी। वह बाबाजी शब्द के अर्थ किया करते थे 'बा (विकल्पे) बाजी–अश्व वा अश्वतर'। एक बुढ़िया स्त्री उनके बर्तन माँजने आया करती थी। वह जब अपने कार्य से निवट कर जाया करती थी तो यह कह कर जाया करती थी कि बाबाजी मैं जाती हूँ। एक दिन महाराज ने उससे कहा कि तू मुझे बाबाजी मत कहा कर। उसने कहा कि और क्या कहूँ। महाराज ने कहा कि स्वामीजी कहा कर। बुढ़िया बोली

यह बात मुझे याद कैसे रहेगी, बाबाजी कहने में क्या बुराई है तो महाराज ने कहा कि इस शब्द के अर्थ हैं घोड़ा नहीं तो खच्चर।

आप भी तो बच्चे के बच्चे हैं

इस देश के निवासियों को बाल-विवाह की प्रथा के प्रचलित होने के कारण बल-वीर्य-हीन देख कर महाराज बच्चों के बच्चे कहा करते थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने उनसे कहा कि यदि सब ही ऐसे हैं तो आप भी तो बच्चों के बच्चे हुए। महाराज ने कहा नहीं जिस कन्या से हमारे पिता के विवाह की बात-चीत हुई थी वह मर गई थी तब दूसरी कन्या से उनका विवाह हुआ था। जिस समय हमारा जन्म हुआ तो हमारे पिता की आयु ३०-३५ वर्ष की थी और हमारी माता भी बालिका न थी। ब्राह्मण ने व्यंग्य से कहा कि महाराज इस बात के तो आप ही साक्षी हैं। उस समय पण्डित भीमसेन भी उपस्थित थे।

स्वयं आटा मांडा

महाराज का रसोइया चला गया था तो शिवराम ही उनका भोजन बनाया करता था। परन्तु उसका बनाया हुआ भोजन अच्छा न बनता था क्योंकि वह आटा अच्छी तरह नहीं मांडता था। एक दिन महाराज ने स्वयम् आटा माँडा और दो चार रोटियाँ बनाईं। शिवराम ने महाराज के कहार को लक्ष्य करके कहा कि यह अच्छी रसोई बनाता है, आप इसी से बनवाया कीजिये। इस के हाथ का बना हुआ भोजन खाने में क्या आपत्ति है? महाराज ने कहा कि हमें तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु तुम हमारे पास से चले जाओगे और सब कहीं हमारी निन्दा करते फिरोगे कि स्वामीजी कृष्टान हैं। एक दिन महाराज ने दाल की बटलोई में जंगल से एक घास लाकार भरदी। शिवराम को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ, परन्तु जब दाल तैयार होने पर उसे निकाल कर फेंक दिया तो दाल बहुत स्वादिष्ट सिद्ध हुई।

आप का छुआ भोजन न खायंगे

एक दिन महाराज कलेऊ कर रहे थे कि कई अंग्रेज़ उनसे मिलने आये। उनमें से एक ने कहा कि यदि हम आप के भोजन को छूदें तो आप खालेंगे वा नहीं। महाराज ने कहा कि नहीं खायंगे। यद्यपि उसके खाने में कोई दोष वा पाप नहीं है, परन्तु हमारे नौकर और विद्यार्थी भाग जायंगे और लोक में अपवाद होगा कि स्वामीजी कृष्टान हो गये।

पण्डितों का गुप्त रूप से व्याख्यान श्रवण

महाराज के व्याख्यानों में काशी के अनेक पण्डित गुप्त रूप से व्याख्यान सुनने आया करते थे। स्वामी विशुद्धानन्द, पण्डित बाल शास्त्री, पण्डित बापूदेव शास्त्री प्रमुख पण्डित नहीं आते थे। महाराज को पण्डितों के इस प्रकार आने की बात ज्ञात थी। महाराज पण्डितों को लक्ष्य करके कहा करते थे कि जो पहलवान् युद्ध के लिए आहूत होने पर भी युद्ध करने के लिये सम्मुखीन नहीं होता वह कैसा पहलवान् है।

कथकड़ व्यासों की आलोचना

एक दिन महाराज ने कथा कहने वाले व्यासों पर तीव्र आक्रमण किया और कहा कि कथक लोग माला पहन कर और चन्दनादि लेपन करके युवतियों पर कटाक्ष पात करते हैं, रसात्मक वाक्यों का प्रयोग करते हैं और काम से उत्तेजित होते हैं यहां तक कि यदि उनका वस्त्र उठाकर

देखा जाय तो वह रेतःपात से चिन्हित पाया जायगा। पीछे ऐसा अश्लील बोलने पर महाराज ने बहुत पश्चात्ताप किया।

प्रेस मैनेजर की चिन्ता

महाराज के ग्रन्थ लाजरस कम्पनी के छापेखाने में छपा करते थे, परन्तु इसमें असुविधा होती थी, अतः महाराज अपना छापाखाना स्थापित करना चाहते थे। यह बात जब उक्त कम्पनी के मैनेजर को ज्ञात हुई तो वह महाराज के पास आया और उनसे प्रेस न खोलने का अनुरोध किया। उसे महाराज के प्रेस का खुलना अभिप्रेत न था क्योंकि वह इसमें कम्पनी की हानि समझता था।

आज हम गृहस्थ होगये

जब वैदिक यन्त्रालय खुला तो महाराज ने मुन्शी बख्तावरसिंह को शाहजहाँपुर से बुला कर ३०)रु० मासिक पर उसका प्रबन्धकर्त्ता नियत किया। उस समय महाराज ने खेद प्रकाशित करते हुए कहा कि आज हम पतित होगये, आज हम गृहस्थ हो गये।

कार्य-व्यस्तता

मिर्ज़ापुर की पाठशाला में महाराज उस विद्यार्थी को न पढ़ने देते थे जो सन्ध्या न करता था। परन्तु पीछे आकर वह पुस्तक-निर्माण, पत्र-व्यवहार और खण्डन-मण्डन में इतने व्यग्र हो गये थे कि उन्हें इस बात का ध्यान भी न आता था कि उनका कोई साथी वा कर्मचारी सन्ध्या करता है वा नहीं।

कहते हैं कि एक बार महाराज कौपीन मात्र लगाये हुए रेल में आ रहे थे। उसी डब्बे में एक योरोपियन दम्पति भी थे। महाराज को नग्न देख कर साहब को बहुत रोष आया, उसने रोष और व्यंग्यपूर्ण स्वर में महाराज से कहा कि क्या नंगा रहने से परमेश्वर प्रसन्न होता है? महाराज ने उत्तर दिया कि बाइबल के अमुक स्थल में लिखा है कि परमेश्वर नग्न मनुष्यों से प्रसन्न होता है। साहब बहादुर नग्न संन्यासी के इस उत्तर से बहुत विस्मित हुए और आगे कुछ न बोले।

स्वास्थ्य-चिन्ता

महाराज की स्वास्थ्य पर विशेष दृष्टि रहती थी। वह जल, भोजन, मिष्टान्न विचार-पूर्वक ग्रहण करते थे। वह अपने खाने का घृत ताले में बन्द करके रक्खा करते थे। महाराज शरीर पर मुलतानी मिट्टी को चन्दन में मिला कर लगाया करते थे और शिवराम से आग्रह के साथ कहा करते थे कि बाज़ार से मुलतानी मिट्टी बहुत सावधानी के साथ क्रय करके लाया करो क्योंकि बाज़ार के लोग उसमें चूना आदि मिला देते हैं। महाराज जब बाहर जाते थे तो दर्पण में मुख देख कर जाया करते थे। वह पलङ्ग पर सोते थे और शाल तथा रेशमी परिच्छद धारण करते थे।

यज्ञोपवीत-प्रदान

महाराज ने मुन्शी बख्तावरसिंह, मुन्शी समर्थदान तथा लाला शादीराम मेरठ निवासी को, जो पीछे आकर वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता भी होगये थे, अनुष्ठानपूर्वक यज्ञोपवीत कराया था। उसमें ब्रह्मभोज भी हुआ था। बख्तावरसिंह पहले यज्ञोपवीत लेने पर सम्मत नहीं थे, परन्तु एक व्याख्यान में महाराज ने यज्ञोपवीत की आवश्यकता ऐसे अच्छे प्रकार से

सिद्ध की कि उसे सुन कर यज्ञोपवीत के विषय में उनके सब संशय निवृत्त होगये और उन्होंने महाराज से यज्ञोपवीत लेने की प्रार्थना की।

स्वामीजी महापुरुष थे

योगाभ्यास

महाराज में सब लक्षण महा-पुरुषों के थे। उनकी वाणी में वह मनो-मोहिनी शक्ति थी कि उसे सुन कर हरएक मनुष्य उनका वशवर्त्ती हो जाता था। रात्रि में महाराज योगाभ्यास किया करते थे और इसी कारण वह अपने सोने के कमरे के पास रात्रि को किसी को नहीं सोने देते थे जिससे उनके कृत्य में विघ्न न पड़े। परन्तु एक भृत्य महाराज के शयनागार के पास सो जाता था। एक दिन महाराज ने उसे पुकारा तो उसने उत्तर में कहा कि आते हैं। इस पर महाराज ने पास बैठे हुए लोगों से कहा कि देखिए अपने लिए बहु वचन के सिवाय कभी एक वचन का प्रयोग नहीं करता। जब वह आया तो महाराज ने उससे कहा कि तू हमारे कमरे के पास न सोया कर, रात्रि में तेरी खाँसी से हमारी उपासना में व्याघात होता है।

हम ऐसे गन्दे अर्थों को नहीं मानते

एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में महीधर के वेददूषक अत्यन्त अश्लील अर्थों का खण्डन किया। उसे सुन कर व्याख्यान में आये हुए कई एक काशी के रईसों ने कहा कि हम महीधर अथवा दयानन्द को तो समझते नहीं, परन्तु हम ऐसे गन्दे अर्थों को नहीं मानते, उनका करने वाला चाहे महीधर हो वा दयानन्द वा अन्य कोई।

गीता के श्लोक के अर्थ

एक दिन एक नवीन वेदान्ती पण्डित का महाराज से वार्त्तालाप हो रहा था। उसने गीता का श्लोक 'भ्रामयन् सर्वभूतानि आदि' पढ़ कर कहा कि देखो जो कुछ करता है ईश्वर ही करता है, जीव कुछ नहीं करता। महाराज ने कहा कि इसका यह अर्थ है कि ईश्वर पृथ्वी आदि सब भूतों को घुमा रहा है। तुम व्यर्थ ही सब दोष ईश्वर के मत्थे मढ़ना चाहते हो। यह सुन कर वह पण्डित तथा अन्य पण्डित जो उस समय वहाँ उपस्थित थे चकित हो गये और सब ने महाराज के अर्थों की सत्यता स्वीकार की।

मूर्त्तिपूजा का खण्डन मैं नहीं, तुम करते हो

महाराज मूर्त्तिपूजकों से कहा करते थे कि मूर्त्तिपूजा का खण्डन मैं नहीं करता, वरन् तुम करते हो। तुम देवता को घण्टा आदि दिखा कर नैवेद्य आदि स्वयं चट कर जाते हो इस कारण तुम वास्तव में पूजारि (पूजा के अरि अर्थात् शत्रु) हो। तुम देवता से कहते हो 'इमां घण्टां त्वं गृहाण भोजनमहं गृह्णामि' अर्थात् तू तो यह घण्टा ले, भोजन मैं लेता हूँ।

हम दयानन्द का सिर काट लेंगे

शिवराम के श्वशुर और चचा प्रभृति को यह भय था कि कहीं शिवराम स्वामीजी की संगत में रह कर संन्यासी न हो जाय। अतः उन्होंने एक बार शिवराम को पत्र लिखा कि तुम घर लौट आओ और यदि दयानन्द तुम्हें छुट्टी न देगा तो हम उसका सिर काट डालेंगे। शिवराम ने वह पत्र महाराज को दिखाया। महाराज ने उसे देख कर कहा कि सिर कटने का तो मुझे भय नहीं है. तुम्हारी इच्छा हो तो चले जाओ। उस समय महाराज के पास और कोई पण्डित नहीं था।

जन्मगत वर्णव्यवस्था का खण्डन

एक दिन एक मनुष्य ने वर्ण व्यवस्था को जन्मगत सिद्ध करने के उद्देश्य से महाभाष्य का यह श्लोक प्रस्तुत किया—

विद्या तपश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मण्यकारकम्।
विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥

महाराज ने इसके खण्डन में मनु का यह श्लोक प्रस्तुत किया—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥

(मनु० अ० २ श्लो० १५७)

क्या आप को गद्दी पर बैठ कर अभिमान नहीं होता

एक दिन एक मनुष्य ने महाराज से पूछा कि आप को गद्दी पर बैठ कर अभिमान नहीं होता? महाराज ने कहा कि फिर तो छपकली को हम से भी अधिक अभिमान होना चाहिये।

मैडम की ऐन्द्र-जालिक क्रियाएं

जिन दिनों कर्नल और मैडम महाराज के पास ठहरे हुए थे उनमें से एक साधु जवाहरदास महाराज से मिलने गये। उस समय कर्नल और मैडम और महाराज एक बन्द कमरे में बैठे हुए थे। साधु जवाहरदास से किसी ने कहा कि कर्नल और मैडम स्वामीजी को कोई अलौकिक चमत्कार दिखा रहे हैं। साधुजी ने उस कमरे के भीतर जाना चाहा परन्तु किसी ने उन्हें जाने न दिया। जब महाराज थोड़ी देर के पीछे कमरे से बाहर आये और साधुजी से मिले तो उन्होंने कहा कि कुछ ऐन्द्रजालिक क्रियाएं दिखाई थीं, वह योग की विभूतियाँ न थीं। महाराज ने साधुजी से कहा कि किसी बाजीगर को ले आओ तो कुछ खेल साहब और मेम को दिखाये जावें, परन्तु वह बाजीगर को बुला कर नहीं लाये।

महाराज कहा करते थे कि देहान्त से पूर्व हम अपने माता पितादि का नाम और पूर्व-वृत्त प्रकट करदेंगे, यदि इस समय ऐसा करेंगे तो गोलमाल होगा। खेद है कि ऐसा न करपाये।

भूल स्वीकार

कहते हैं कि इन्हीं दिनों डाक्टर थीबो भी काशी गये थे। एक दिन कुंवर ज्वाला-प्रसाद महाराज को साथ लेकर थीबो साहब से मिलने गये थे। थीबो साहब उस समय वेद की एक शाखा का प्रूफ पढ़ रहे थे जो संभवतः एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित हो रही थी और थीबो साहब उसका सम्पादन कर रहे थे। उसके विषय में महाराज की थीबो साहब से बात-चीत हुई थी। थीबो साहब ने महाराज से पूछा कि यह किस वेद की शाखा है तो उन्होंने कहा कि अथर्ववेद की। इस पर थीबो साहब ने कहा कि अथर्ववेद की नहीं बल्कि ऋग्वेद की। अपने स्थल पर आकर महाराज ने अपनी भूल स्वीकार की और कहा कि वह वास्तव में ऋग्वेद की ही शाखा है।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

पण्डित कृष्णराम इच्छाराम भी महाराज के आनन्द बाग़ के निवास-समय काशी पहुँच गये थे। वह कहते हैं कि जब वह स्वामीजी से पहली बार बम्बई में मिले थे तो स्वामीजी मुक्ति को अनन्त मानते थे, परन्तु काशी में मिलने पर ज्ञात हुआ कि सान्त मानते हैं। कारण पूछने

पर महाराज ने कहा कि इस विषय पर हमने बहुत विचार किया है और सांख्यशास्त्र के प्रमाणानुसार हमें मुक्ति सान्त ही माननी पड़ी। जब जीव का ज्ञान परिमित है तो मुक्ति, जो उस ज्ञान का फल है, अपरिमित वा अनन्त कैसे हो सकती है।

पण्डित कृष्णराम इच्छाराम पण्डित बालशास्त्री, पण्डित बापूदेव शास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द के दर्शनों को भी गये थे और जाकर इस प्रकार बात-चीत की कि मानो वह कुछ जानते ही नहीं हैं। उन्होंने जब पण्डित बालशास्त्री से स्वामीजी की चर्चा की तो उन्होंने कहा कि दयानन्द विद्वान् है इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु मूर्त्ति-पूजा का खण्डन उसके लिए सम्भव है, हमारे लिये नहीं है। इसी प्रकार स्वामीजी का प्रसङ्ग उठाने पर पण्डित बापूदेव शास्त्री ने भी उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा की। परन्तु स्वामी विशुद्धानन्द उनके बड़े द्रोही निकले। जब पण्डितजी ने स्वामी विशुद्धानन्द के आगे स्वामी दयानन्द का प्रसङ्ग उठाया तो वह थोड़ी देर में ही जान गये कि पण्डितजी आर्य-समाजी हैं। पण्डितजी ने उनसे कहा कि यदि दयानन्द का पक्ष मिथ्या है तो कई वर्ष पहले जब उन्होंने अपने वेदभाष्य का नमूना आप के पास भेजा था तो आपने उसका प्रतिवाद क्यों नहीं किया?* और अब उन्होंने काशी में मार्ग के दोनों ओर विज्ञापन लगाये हैं और आप को शास्त्रार्थ के लिए बुलाते हैं और कहते हैं कि अब दस वर्ष के पश्चात् तो काशी के पण्डितों में कोई न कोई तैयार हो गया होगा, परन्तु आप में से फिर भी कोई शास्त्रार्थ के लिए उनके सम्मुखीन नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि आप दयानन्द के समान विद्वान् नहीं हैं। इस पर स्वामी विशुद्धानन्द ने पण्डितजी से पूछा, क्या तुम आर्यसमाजी हो? पण्डितजी ने कहा कि आर्यसमाजी न होता हुआ भी मैं स्वामी दयानन्द का मान करता हूँ। स्वामी विशुद्धानन्द ने फिर पूछा कि तुम कुछ पढ़े हो। पण्डितजी ने उत्तर दिया कि कुछ विशेष पढ़ा हुआ न होता हुआ भी मैं पढ़े हुओं की परीक्षा ले सकता हूँ। यह कह कर पण्डितजी ने 'अग्निमीडे पुरोहितम्' इत्यादि मन्त्र पढ़ा और कहा कि जिस प्रकार स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र का पदच्छेद करके प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण से अर्थ किया है आप भी वैसे ही पदच्छेद करके और उन्हीं ग्रन्थों के प्रमाण से दिखावें कि स्वामी दयानन्द का किया हुआ अर्थ भ्रमयुक्त है। इस पर स्वामी विशुद्धानन्द 'अग्नि' शब्द पर न्याय की रीति से बहुत कुछ उलट फेर करने लगे। तब पण्डितजी ने कहा कि जिन प्रमाणों से

पण्डित बाल शास्त्री और पं० बापूदेव शास्त्री की सत्य-प्रियता

स्वामी विशुद्धानन्द का द्रोह

* पण्डित लेखराम कृत उर्दू दयानन्द चरित में लिखा है कि स्वामी विशुद्धानन्द ने बाबू पृथ्वी-सिंह कम्प्यूटर से कहा था कि स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य विद्वत्तापूर्ण और सत्य है और विश्वसनीय है, परन्तु यदि मैं सब के सामने यह बात प्रकट करूँ तो सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाय और नशे पानी मैं जो अन्तराय पड़े वह इस से अलग रहा।

बाबू पृथ्वीसिंह पेंशन लेकर मेरठ ही रहते हैं। उन्होंने स्वयं हम से कई वार कहा है कि यह बात उन से स्वामी विशुद्धानन्द ने नहीं कही थी बल्कि एक अन्य संन्यासी ने कही थी जिसका नाम परमानन्द गिरि था। —संग्रहकर्त्ता.

स्वामी दयानन्द ने अर्थ किया है उन्हीं के अनुसार स्वामी दयानन्द के अर्थों का खण्डन कीजिये। इस पर स्वामी विशुद्धानन्द ने और भी क्रुद्ध होकर कहा कि राम! राम!! भाई हम मूर्ख हैं, हम मूर्ख हैं, तुम्हारा दयानन्द विद्वान है, तुम हमारे पास से चले जाओ और सिपाहियों को कहा कि पंडितजी को नीचे ले जाओ।

वेद ही ईश्वर की वाणी हैं

एक दिन वेंकटगिरि के महाराजा दो तैलिंगी ब्राह्मणों के साथ महाराज से मिलने आये। उन्होंने महाराज से कहा कि क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वर की वाणी हैं और बाइबल और कुरान नहीं हैं। महाराज ने कहा कि कुरानादि में अनेक कथाएं सृष्टिक्रम और ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध हैं। कुरान में काफिरों के विनाश, स्वर्ग में सुरा, हूर आदि के रहने की बातें हैं, इस लिये वह ईश्वर की वाणी नहीं हो सकते। इसके पश्चात् मूर्त्तिपूजा के ऊपर बात चली। स्वामीजी ने कहा कि आप महाराजा होकर किस प्रकार मूर्त्ति-पूजा का पोषण करते हैं? यदि आप उसका पोषण न करें तो आप के लिये तो ऐसा नहीं है कि दरिद्र ब्राह्मण के समान आपका उदर-पोषण न हो सके। महाराजा ने कहा

मैं दूकानदार नहीं हूँ

कि आप की बात कई अंश में ठीक है, परन्तु यदि आप अन्य बातों का प्रचार करें और मूर्त्ति-पूजा की बात सब से पीछे के लिये रक्खें तो आपके वेदभाष्य के लिए जितने धन की सहायता आवश्यक होगी हम देंगे। महाराज ने यह सुनकर कुछ आवेश के साथ कहा कि आप इन बातों को नहीं समझते। मैं क्या कोई दूकानदार हूँ जो रुपये के कारण अपने कर्त्तव्य को आगे पीछे करूँ।

विभु के अर्थ पत्थर के महादेव के नहीं हैं

एक दिन एक ब्राह्मण के साथ महाराज का रामायण के इस श्लोक पर—'तत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः' इत्यादि पर शास्त्रार्थ हुआ था। महाराज ने कहा कि 'विभुः' के अर्थ व्यापक महादेव के हैं, पत्थर के महादेव के नहीं हैं। ब्राह्मण ने बहुतेरा यत्न किया, परन्तु महाराज ने उसे किसी प्रकार भी प्रस्तरनिर्मित महादेव सिद्ध नहीं करने दिया।

अद्भुत स्मृति

एक दिन पण्डित भगवानवल्लभ वैद्य अनूपशहर जिला बुलन्दशहर वाले जो महाराज से कई वर्ष पूर्व मिले थे महाराज से मिलने आये। उस समय महाराज के पास कई मनुष्य बैठे थे। वैद्यजी मन ही मन कहते जाते थे कि स्वामीजी हमें न पहचानेंगे, परन्तु जब वह महाराज के सामने पहुँचे तो महाराज ने उन्हें तुरन्त पहचान लिया और सहास्यमुख उनसे बातें करने लगे। फिर दूसरे लोगों को बिदा कर महाराज ने प्रेम से उन्हें अपने पास आसन पर बिठा लिया। महाराज की धारणा शक्ति विलक्षण थी। वह यदि एक बार किसी मनुष्य को देख लेते थे तो बरसों पीछे मिलने पर भी उसे तुरन्त पहचान लेते थे। अनेक कथनोपकथन के पश्चात् महाराज ने वैद्यजी से पूछा कि काशी के पण्डित मेरे विषय में क्या कहते हैं?

वैद्यजी को नाड़ी दिखाई

विश्वनाथ के दर्शनों को जाने वाले यात्री दिन प्रतिदिन कम हो रहे हैं वा बढ़ रहे हैं? परन्तु वैद्यजी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके। महाराज ने अपनी नाड़ी भी वैद्यजी को दिखाई थी। उन्होंने ग्रहणी

सञ्चार बतलाया था। उस समय भी महाराज रोग से कष्ट पा रहे थे। महाराज ने कहा था कि मुझे कई बार विष दिया गया है और यह रोग उसी का परिणाम है। वैद्यजी ने कहा कि सुश्रुत में ऐसा ही निर्देश भी किया गया है।

वर्ण जन्मगत नहीं हैं

एक दिन एक मनुष्य ने महाराज से जातिभेद का प्रसङ्ग उठाया। महाराज ने कहा कि ब्राह्मणादि वर्ण जन्मगत नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो तो एक ब्राह्मण के दो पुत्रों में से एक ईसाई और एक मुसलमान हो जाय तो क्या फिर भी वह ब्राह्मण ही माने जायंगे? यदि नहीं माने जायंगे तो फिर जन्म से ब्राह्मणत्व कहाँ रहा?

विषकुम्भं पयोमुखम्

स्वामीजी की सरलता से अनेक दुष्टों ने अनुचित लाभ उठाया। ऐसे लोगों ने भी जिन्हें उन्होंने पढ़ा लिखा कर पशु से मनुष्य बनाया, उन्हें ठगने में इतस्ततः नहीं किया। ऐसे ही लोगों में एक पण्डित दिनेशराम था। इसका नाम दुलाराम था। स्वामीजी ने उसका दिनेशराम नाम रक्खा था। यह फर्रुखाबाद की पाठशाला में सुबोध हो गया था और उन्होंने उसे कासगंज की पाठशाला में अध्यापक नियत कर दिया था, पीछे वह लेखक के कार्य्य पर नियत कर दिया गया था। यह था बड़ा कपटी, 'विषकुम्भं पयोमुखम्'। स्वामीजी के सामने उन की भलाई और पीछे बुराई करता। वह कहा करता था कि मैं स्वामीजी के ग्रन्थों में इस प्रकार से वाक्य मिलादूँगा कि उन्हें प्रलय तक भी उन का पता न लगेगा। यह नहीं कह सकते कि उसे इस पापकर्म में कोई सफलता हुई या नहीं। स्वामीजी ने उस की दुष्टता ताड़ली और उसे अलग कर दिया।

कर्मचारियों को भर्त्सना

कर्मचारी कभी भी उनके मन्तव्यों के विरुद्ध कर देतेथे और विद्यार्थी बार २ समझाने पर कभी उनकी बात न मानते थे। एक दिन उन्होंने सब को इकट्ठा करके भर्त्सना की और कहा कि तुम मेरे कहने पर विश्वास नहीं करते इसका कारण है कि तुम में सचाई के लिये आदर नहीं, तुम मिथ्या कथाओं से प्राप्त हुए अन्न से पले हो, मृतकों का आदर और जीवितों का निरादर करते हो।

बेर क्यों तोड़ा

एक दिन एक कर्मचारी ने बाग़ में से एक बेर तोड़ लिया तो स्वामीजी ने उसे डाटा और कहा कि बाग़ के स्वामी की आज्ञा के विना कोई फल नहीं तोड़ना चाहिये।

कोतवाल की भक्ति

काशी के कोतवाल महाराज के भक्त बन गये थे। उन्होंने महाराज के पाचक से कह दिया था कि जिस वस्तु की आवश्यकता हो दूकान से ले आया करो और हमारे नाम लिखा दिया करो। उन्होंने महाराज के बैठने के लिये एक गद्दी भी बनवा कर उनकी भेंट की थी। एक दिन उन्होंने महाराज से बुढ़वा-मङ्गल का मेला देखने की प्रार्थना की तो महाराज ने कहा कि जिस मेले में वेश्याओं का नृत्य हो वह बुढ़वा-मङ्गल नहीं भड़वा-मङ्गल है।

एक दिन पण्डित हरिश्चन्द्र ने श्रीसेवा में निवेदन किया कि आपके खण्डन से

मैं हित के लिये खण्डन करता हूँ

वैर विरोध बढ़ता है तो महाराज ने उन्हें समझाया कि मेरा उद्देश्य सबको ऐसे आपस में मिलाना है जैसे जुड़े हुए हाथ। मैं कोल से ब्राह्मण तक में जातीयता की ज्योति जगाना चाहता हूँ। मेरा खण्डन हित और सुधार के लिये है।

उपदेश

एक सज्जन ने प्रश्न किया कि जहाँ आर्य्यसमाज नहीं वहाँ अपने धार्मिक जीवन को परिपुष्ट बनाये रखने के लिये आर्य्यजन क्या उपाय करें तो महाराज ने उत्तर दिया कि यदि कोई आर्य्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, दो हों तो आपस में प्रश्नोत्तर और संवाद करें और तीन वा अधिक हों तो परस्पर सत्सङ्ग और किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें।

काशीत्याग से पूर्व ही महाराज ने एक विज्ञापन द्वारा जनता को सूचित कर दिया था कि हम वैशाख कृष्णा ११ सं० १९३७ को काशी से चले जायंगे यदि किसी को अपना कोई संशय मिटाना हो तो हमारे स्थान पर आकर मिटा सकता है। इतने मास तक स्वामीजी काशी रहे, चलने से पूर्व भी अपने प्रस्थान की तिथि घोषित करदी, इतने व्याख्यान दिये, विज्ञापन द्वारा पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया, परन्तु किसी ने कोई प्रश्न न पूछा, कोई शङ्का प्रस्तुत न की, परन्तु जब प्रस्थान की तिथि और रेल पर जाने का समय आगया तो राजा शिवप्रसाद सी० एस० आइ० इन्स्पेक्टर शिक्षा विभाग ने एक छपी हुई प्रश्नावली श्रीसेवा में भेजी और उनके उत्तर माँगे। न जाने अब तक राजा साहब किस नींद में सो रहे थे। महाराज रेल पर जाने को तैयार थे परन्तु फिर भी रेल के समय में जितना शेष था वह रुके रहे और राजा साहब से कहला भेजा कि मैं रेल पर जाने को तैयार बैठा हूँ, समय अत्यल्प है कृपा कर शीघ्र पधारिये और अपनी शङ्काओं का समाधान सुन जाइये। परन्तु राजा साहब ने सूरत न दिखाई। समय हो जाने पर विवश होकर महाराज रेलवे स्टेशन पर चले गये। इस प्रश्नावली पर स्वामी विशुद्धानन्द की सही थी। वास्तव में वह प्रश्नावली उक्त स्वामीजी की रची हुई थी। राजा साहब का तो केवल नाम ही नाम था। उन में ऐसे प्रश्न करने की योग्यता ही न थी। पीछे महाराज ने उस प्रश्नावली के उत्तर में 'भ्रमोच्छेदन' नामक पुस्तक लिख कर प्रकाशित की।

लखनऊ

काशी से विदा होकर महाराज ५ मई सन् १८८० को लखनऊ में आ विराजमान हुए और मोतीमहल में ठहरे।

'अतप्ततनू' का अर्थ

एक दिन पण्डित यज्ञदत्त शास्त्री से जो उन दिनों लखनऊ में पाठकों के पूर्वपरिचित पण्डित गङ्गाधर शास्त्री के पास विद्याध्ययन करते थे, एक रामानुज मतानुयायी का 'अतप्ततनू' वाक्य के अर्थों पर विवाद हो गया। यह वाक्य ऋग्वेद के मण्डल ९। सूक्त ८३। मन्त्र १। में आया है। पण्डित यज्ञदत्त उस वैष्णव को स्वामीजी के पास ले गये। उस समय वह भोजन पा रहे थे। भोजन के पश्चात् महाराज थोड़ी देर तक टहले और कहा कि 'भोजनं कृत्वा शतपदं गच्छेत्' अर्थात् भोजन करके सौ कदम चले। थोड़ी देर पलंग पर लेटे और फिर नौकर से वेद का पुस्तक मँगवा कर उक्त मन्त्रों के अर्थ करके बतलाया

कि 'तप्ततनू' से अभिप्राय जप, तप, यम, नियम आदि से इन्द्रियों को वश में करना है, शरीर का जलाना नहीं है, सायणाचार्य भी यही अर्थ करते हैं। फिर स्वामीजी ने तरबूज काट कर सब को बाँटा। उस रामानुजो ने कहा कि तुलसी दल हो तो हम खावें। स्वामीजी ने कहा कि तुम से बकरी की टेव नहीं जाती। उसने कहा कि यह तो अच्छा है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि रोग के लिये हितकर है न कि हर समय के लिये। ऐसा करना तो स्पष्ट पशुपन है, इसके खाने में कुछ माहात्म्य नहीं है।

तुम से बकरी की टेव नहीं जाती

स्वामीजी ने एक बार सत्यप्रकाश पाठशाला भी स्थापित की थी, परन्तु वह १८७९ से पहले ही बन्द होगई थी।

९ मई को आर्यसमाज लखनऊ स्थापित किया जिस में उस समय ९ सभासद हुए, उन में एक मुसलमान था। [यह एक हिन्दू रईस के वीर्य से एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था —संग्रह०]

आर्यसमाज की स्थापना

स्वामीजी का एक व्याख्यान अमीनुद्दौला की कोठी में (पुराने नार्मल स्कूल) में गोरक्षा पर और दूसरा सद्धर्म्म-समर्थन पर हुआ था। दूसरे व्याख्यान में उन्होंने पण्डित गङ्गाधर शास्त्री के किये हुए वेदमन्त्रों के अर्थ की समालोचना भी की थी। एक व्याख्यान सआदतगंज में ला० कन्हईलाल के ठाकुरद्वारे में हुआ था और एक व्याख्यान यहयागंज में लाला रुग्घनलाल जैन की कोठी में। उसमें स्वामीजी ने जैन मत का भी खण्डन किया था।

एक दिन पण्डित रामाधार ने स्वामीजी से कहा कि क्या अच्छा होता यदि आर्यसमाज का मन्दिर भी मोती-महल के समान विशाल होता। महाराज ने कहा कि यदि आप इस के स्वामी को आर्य बनालें तो सम्भव हो यही भवन आर्य्यसमाज को मिल जावे पंडित रामाधारजी ने निराशा-भरे शब्दों में स्वामीजी से कहा कि आप इतना पुरुषार्थ करते हैं परन्तु लोग पौराणिक लीलायें नहीं छोड़ते। स्वामीजी ने कहा कि मैं ब्राह्मसमाजियों की भाँति समाज के जातीय जीवन से अलग होना नहीं चाहता, समाज में रह कर ही उसका संशोधन करना श्रेयस्कर है।

भक्त को ढाढ़स

एक दिन व्याख्यान देकर स्वामीजी अपने आसन को जारहे थे। कई आर्य्यसज्जन उनके साथ थे। मार्ग में एक अत्यन्त जराजर्जरित बुढ़िया उन्हें मिली। उसने कातर स्वर में महाराज से कहा कि बाबाजी मैं भूखी हूँ, आज का अन्न दिलादें। महाराज ने उसे कुछ पैसे दिला दिये। उसे देख महाराज की आँखों में आंसू डब डबा आये और अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में उन्होंने कहा कि इस स्वर्णमय भूमि की कितनी हीन दशा होगई है कि आज इस क्षुधार्त्त बुढ़िया को यह भी विवेक नहीं रहा कि वह जिस से अन्न माँगती है वह स्वयं मांगकर खाता है।

देश-दशा पर खेद

महाराज इस समय भी रुग्ण थे। पण्डित गंगाधर उन्हें मठा पिलाया करते थे।

काशी से चल कर महाराज २० मई सन् १८८० को फर्रुखाबाद पधारे और लाला कालीचरण रामचरण रईस के बाग में ठहरे। २३ मई को स्वामीजी के व्याख्यानों का विज्ञापन नगर में प्रसिद्ध किया और २४ मई से २८ मई तक स्वामीजी के पाँच व्याख्यान सेठ माधोलालजी के बाड़े

फ़र्रुखाबाद

में हुए। व्याख्यानों में श्रोताओं की इतनी भीड़ होती थी कि कुछ लोगों को स्थानाभाव के कारण वापिस जाना पड़ता था।

मैं किसी मत को नहीं मानता

मुन्शी गौरीलाल वकील फ़तहगढ़ यह कहा करते थे कि मैं किसी मत को नहीं मानता। इस पर स्वामीजी और उन में निम्न लिखित प्रश्नोत्तर हुए:—

स्वामीजी—आपका यह कहना ही कि मैं किसी मत को नहीं मानता यह अर्थ रखता है कि यही आपका मत है। आप किसी भी मतको क्यों नहीं मानते ?

मुन्शीजी—सारे मत अक़सर नामाक़ूल बातों से भरे हैं।

स्वामीजी—यदि कोई मत आपको माक़ूल जान पड़े तो उसके मानने में आपको द्विधा न होनी चाहिये।

मुन्शीजी—माक़ूल होने पर मैं उसे मानने को तैयार हूँ।

इसके पश्चात् कुछ देर तक स्वामीजी ने वैदिक धर्म का महत्व ऐसे ढङ्ग से समझाया कि उन्हें स्वीकार करते ही बना।

यह घटना उस समय की है जब स्वामीजी संवत् १९३६ में फ़र्रुखाबाद पधारे थे।

२९ मई सन् १८८० को महाराज ने एक व्याख्यान उपर्युक्त मुन्शीजी के स्थान पर दिया। इसका प्रभाव इतना हुआ कि उसी दिन और उसी स्थान पर आर्यसमाज स्थापित होगया। आश्चर्य की बात यह कि वही मुन्शी गौरीलाल जो कभी सारे धर्मों को नामाक़ूल बातों से भरा हुआ कहा करते थे आर्य्यसमाज के मन्त्री निर्वाचित हुए।

आर्यसमाज की स्थापना

पाँच जून को महाराज का व्याख्यान योगशास्त्र पर बड़ा प्रभावशाली हुआ जिसे सुनकर क्या हिन्दू क्या मुसलमान चकित हो गये उस व्याख्यान में महाराज ने योग की सिद्धियों का भी सविस्तार वर्णन किया था। मिस्टर स्काट साहब, मैजिस्ट्रेट जिला और मिस्टर डानिसटन जॉइन्ट मैजिस्ट्रेट भी व्याख्यान में उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर मिस्टर डानिसटन ने स्वामीजी से पूछा कि यदि हम लोग योगसाधन करें तो हम उसके लाभ प्राप्त कर सकते हैं वा नहीं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप मद्य मांस का सेवन करते हुए योगाभ्यास का सेवन नहीं कर सकते। यदि आप इन वस्तुओं का त्याग करदें और नियम पालन करते हुए योगाभ्यास करें तो सफल हो सकते हैं।

योग पर व्याख्यान

स्काट साहब की तो संवत् १९३६ से ही महाराज में श्रद्धा थी और उनके व्याख्यानों में उपस्थित हुआ करते थे, इस बार भी वह स्वामीजी के व्याख्यानों में आते रहे। स्काट साहब के पैर में कुछ लंग था। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि हमें कैसे ज्ञात हो कि कर्म का फल होता है ? स्वामीजी ने अन्य उत्तर न देते हुए उन से पूछा कि आप के पैर में लङ्गड़ापन क्यों है ? स्काट साहब ने उत्तर दिया कि ईश्वर की इच्छा से। स्वामीजी ने कहा कि यही कर्मफल है जो ईश्वरीय न्याय से प्राप्त हुआ है, इच्छा से नहीं। परमात्मा को सभी धर्म्म वाले न्यायकारी मानते हैं। यदि ईश्वर की केवल इच्छा ही मानी जाय तो वह इच्छा

मैजिस्ट्रेट से वार्तालाप

कैसी कि एक को सुडौल और दूसरे को बेडौल, अन्धा, बहरा आदि बनावे। ऐसा मानने से उसके न्याय में बट्टा लगता है और कर्मफल मानने से इच्छा नहीं अपितु न्याय प्रदर्शित होता है। स्काट साहब ने फिर पूछा कि कर्मफल क्या चीज है? स्वामीजी ने कहा कि सुख दु:ख के भोग का नाम कर्म्मफल है। जिस भोग का हेतु इस जन्म में ज्ञात न हो उसे पूर्व-जन्मकृत कर्म का फल जानना चाहिये। आर्यों का धर्म्मशास्त्र यही बताता है और यही युक्ति से भी सिद्ध है।

जून मास में स्वामीजी के कितने ही व्याख्यान हुए। १३ जून को इस विषय पर व्याख्यान हुआ कि 'सृष्टिक्रम ग्राह्य और तद्-विरुद्ध अग्राह्य है'। उसमें स्वामीजीने पार्वती के हिमालय पर्वत की कन्या होने, गणेशजी की पार्वतीजी के मैल से उत्पत्ति होने और शिवजी के उनके मारने और फिर हाथी का सिर रख कर उन्हें जिलाने के पौराणिक गपोड़ों की बड़ी मनोरञ्जक आलोचना की। श्रोताओं में पण्डित गणेशप्रसाद शर्म्मा, सम्पादक 'भारत सुदशा-प्रवर्तक' भी थे। स्वामीजी ने उन्हें खड़ा होने के लिये कहा और जब वह खड़े हो गये तो उनकी ओर संकेत करके महाराज बोले कि देखो यह पुरुष जो आप के सामने खड़ा है इसका नाम गणेश है, परन्तु इसके सूंड नहीं है और न यह ईश्वर है और न अजन्मा। इसे सुन कर सब लोग हँस पड़े। इसी प्रकार लोक में मनुष्यों के नाम होते हैं, हिमाचल, पार्वती गणेश आदि मनुष्यों के नाम होंगे।

विना सूँड का गणेश

२७ जून सन् १८८० को स्वामीजी का अन्तिम व्याख्यान वेद-विद्या विषय पर हुआ; उसमें महाराज ने स्वयम् वेद के प्रमाणों से तथा शतपथ ब्राह्मण, षड्दर्शन को साक्षी से वेदों का ईश्वरोक्त होना और उनका सम्पूर्ण विद्याओं के भाण्डार होना सिद्ध किया था और यह भी कहा था कि वेदों का शुद्ध भाष्य शीघ्र होना चाहिये, क्योंकि महीधरादि ने अशुद्ध अर्थ करके देश में भ्रान्ति फैला रक्खी है। इसके पश्चात् मुन्शी हरनारायण मिश्र बाबू दुर्गाप्रसाद रईस ने प्रस्ताव किया कि स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य कोई विद्वान् वेदों का शुद्ध भाष्य करने की योग्यता नहीं रखता है। स्वामीजी की अवस्था अब ५६ वर्ष की है और शरीर अनित्य है, अत: स्वामीजी को वेदभाष्य के कार्य्य में पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये। इस प्रस्ताव को सब ने स्वीकार किया और उसी समय २७०) रुपये वार्षिक के हिसाब से पाँच वर्ष के लिये १३५०) रु० का चन्दा हो गया और ११ वेदभाष्य के ग्राहक बने। इसके पश्चात् बाबू दुर्गाप्रसादजी के प्रस्ताव पर एक धर्म्मार्थ कोष स्थापित हुआ जिसमें ५००) रु० बाबू दुर्गाप्रसादजी ने दिये और अन्य लोगों ने भी सहायता दी।

वेद का अपौरुषेयत्व

वेदभाष्य की सहायता

धर्मार्थ कोष

फर्रुखाबाद में पुत्तूलाल शुक्ल पहलवान और नारायण दुबे आर्य्यसमाजियों से बहुत चिढ़ते थे। जब स्वामीजी संवत् १९३६ में आये थे तो उनके चले जाने के पश्चात् कुछ दिन तक पौराणिक उत्तेजित रहे। एक दिन उपर्युक्त शुक्ल और दुबे को चौबे तोताराम जो आर्य्यसामाजिक थे मार्ग में मिल गये। दोनों व्यक्तियों ने उन्हें चिढ़ाना आरम्भ किया।

एक आर्यसमाजी के पीटने वालों को दंड

उन्होंने ईंट का उत्तर पत्थर दिया तो दोनों ने मिल कर उन्हें पीटा। उन्होंने दोनों पर स्काट साहब के इजलास में अभियोग चलाया, जिसका यह परिणाम हुआ कि शुक्लजी पर २०) रु० अर्थ दण्ड और दुबेजी को तीन मास का कारावास हुआ और दोनों को दो-दो सौ रुपयों के मुचलके और जमानत दो साल तक नेक चलन रहने की देनी पड़ी।

स्वामीजी की अप्रसन्नता

जब स्वामीजी इसबार आये तो स्काट साहब ने उनसे कहा कि आप के एक सेवक को पीटने पर दो लोगों को पर्याप्त दण्ड मिल गया है। महाराज ने स्काट साहब की बात पर प्रसन्नता प्रकट न की जिसकी उन्हें आशा थी और उनसे यह कहा कि संन्यासी तो अपने घातक को पीड़ा पहुँचती देख कर प्रसन्न नहीं होते। और आर्य-समाजियों से असन्तोष प्रकट करते हुए कहा कि यदि तुम लोग इस प्रकार मुक़द्दमेबाज़ी करोगे तो धर्म्म और देश का क्या सुधार कर सकोगे। जिन्हें सन्मार्ग पर लाना है उन्हें कैद में पहुँचाना सुधार की शैली से बाहर है। घूँसे का बदला घूँसा नहीं है। यदि पौराणिक भाई तुम पर कोई अत्याचार करें तो उचित सीमा तक उसे सहना चाहिये, जब उन्हें ज्ञान होगा वह स्वयम् पश्चात्ताप करेंगे और तुम से प्रेम प्रकट करेंगे।

धर्म-विषय पर प्रश्नोत्तर

२५ मई सन् १८८० को मुन्शी नारायणदास मुख़्तार ने स्वामीजी से धर्म्म-विषयक कुछ प्रश्न किये थे जो उत्तर सहित नीचे दिये जाते हैं।

प्रश्न—मनुष्य पाप क्यों करता है ?

उत्तर स्वामीजी का—लोभादि के वशवर्त्ती होकर, बुद्धि के चैचाल्य से मादक द्रव्य के सेवन से, दुष्ट पुरुषों के संग से, और मिथ्या ज्ञान से पाप में प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न – सत्पुरुषों की कसौटी क्या है ? और उनसे मिलना कैसे हो सकता है ?

उत्तर स्वामीजी का—न्यायप्रियता, स्वार्थत्याग, पराये हित में योग देना आदि उत्तम गुण सत्पुरुषों की कसौटी है। ऐसे पुरुष अपने उत्तम गुण और स्वभाव से पहिचाने जाते हैं। वे सत्यभाषण, परोपकार, उदारता, न्यायकर्तृत्व, ईश्वर-भक्ति और दयालुता आदि गुणों से युक्त होते हैं। तलाश करने वाले को सब कुछ मिल जाता है। जो ढूंढता है सो पाता है। विद्या व सत्संग से प्रत्येक मनुष्य सत्पुरुष बन सकता है।

प्रश्न—स्वार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर स्वामीजी का—धर्मपूर्वक उपायों से अपनी उन्नति अर्थात् सुख की वृद्धि करना स्वार्थ कहलाता है। परन्तु इस समय के लोग येन केन प्रकारेण धर्माधर्म व विवेक-रहित उपायों से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और परहानि व परदुख का कुछ भी विचार नहीं करते, इस प्रकार स्वार्थान्ध हैं। परार्थ वा परोपकार वह है जिसके आचारण से मनुष्यों के दुःख की निवृत्ति हो।

महाराज का आतिथ्य

श्री महाराज आतिथ्य-धर्म का बड़ी दृढ़ता से पालन करते थे। एक दिन पण्डित गणेशप्रसाद, सम्पादक 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' को श्री महाराज के पास सामाजिक कार्य्य करते हुए रात्रि के ९ बज गये। श्री महाराज ने यह जान कर कुछ फल और मिष्टान्न खाने को प्रस्तुत किये।

पण्डितजी ने आपत्ति की कि हम गृहस्थों को आप जैसे महात्माओं की सेवा करनी चाहिये। न कि आप की खाद्य सामग्री को ग्रहण करना। इस पर श्री महाराज ने कहा कि यह सामग्री गृहस्थ लोगों के घर से आई है और मेरी आवश्यकता से अधिक है। श्री रामचन्द्र तक ने वनस्थ मुनियों के कन्द मूल फलादि ग्रहण किये थे, अतः आप को संकोच न होना चाहिए और आग्रहपूर्वक पण्डितजी को फल और मिष्टान्न खिलाये।

एक दिन मेरठ से एक सज्जन ठीक उस समय स्वामीजी के पास उपस्थित हुए जब कि वह भोजन करने जा रहे थे। महाराज ने उन्हें देख कर पहले उन्हें भोजन कराया और फिर आप ने भोजन किया। स्वामीजी अतिथियों को भोजन कराये विना स्वयं भोजन न करते थे।

स्वामीजी सोंठ का एक अत्यन्त स्वादिष्ट जल बनाया करते थे

एक सदाशय विद्वान् से धर्मालाप

गोस्वामी नारायण एक सरलचेता, सदाशय विद्वान् थे, वह पौराणिकों के अपवाद के कारण श्री महाराज के पास जाते हुए घबराते थे। एक दिन लाला जगन्नाथप्रसाद के आग्रह से उन्हें रात्रि के समय महाराज के पास ले गये। उन्होंने यज्ञ में मांस-विधान का पक्ष लेकर महाराज से वार्त्तालाप किया। महाराज ने उनका प्रबल युक्ति और प्रमाणों से खण्डन करके उन्हें सन्तुष्ट कर दिया कि यज्ञ में मांस-विधान वेदविरुद्ध है, यज्ञ का नाम ही अध्वर, हिंसारहित कर्म है। अन्त में गो स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया कि मांस-विधान मेरा पक्ष नहीं मैं तो शास्त्र के वचनों को देख कर उनका समर्थन करता था।

फिर इस विषय पर बात चली कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं या नहीं, परन्तु समाप्त न हो सकी। अतः अगले दिन इस विषय पर पुनः विचार हुआ। पण्डितजी अपने पक्ष की पुष्टि में कात्यायन के सिवाय और कोई प्रमाण प्रस्तुत न कर सके। स्वामीजी ने कहा कि

वार्त्तालाप का प्रभाव

अन्य कोई ऋषि मुनि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानता। अतः कात्यायन का वचन अग्राह्य है। और अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि वेद संहिता मात्र ही का नाम है। गोस्वामीजी सन्तुष्ट होकर घर चले आये और उसकेप श्चात् आर्य्यसमाज का उन्होंने कभी विरोध नहीं किया, प्रत्युत वह सदा समाज के कार्य्यों में सहायता करते रहे।

षड्-विंश अध्याय

आषाढ़ संवत् १९३७–मार्गशीर्ष संवत् १९३८.

स्वामीजी ३० जून सन् १८८० को फर्रुखाबाद से चले और १ जुलाई सन् १८८० को प्रातःकाल मैनपुरी पहुँचे और करमल दरवाज़े के बाहर थानसिंह सोहिया के बाग में ठहरे।

मैनपुरी

महाराज के शुभागमन का समाचार नगर में फैलते ही शतशः लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे और यह दशा हुई कि कोई समय ऐसा न होता था जब कि सौ, सवा सौ मनुष्य उन्हें घेरे न बैठे रहते हों। प्रातःकाल से रात्रि के १०-११ बजे तक लोकप्रवाह अनवरत रूप से प्रवाहित रहता था। जो जिस के मन में आता अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार प्रश्न करता और स्वामीजी उसका प्रेमपूर्वक उत्तर देकर उसे सन्तुष्ट कर देते। उनके दर्शन करके जो आता वह यही कहता आता कि जैसा आनन्द हम पहले से ऋषि मुनियों के समागम का सुनते आते थे वह आज हमने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया, इस अपूर्व मूर्त्ति को धन्य है। दो दिन तक महाराज इसी प्रकार लोगों को उपदेशामृत चखाते रहे। ३ जुलाई को आकटगंज की विस्तृत भूमि में कनात और शामियाने लगा कर उनके व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया। उस दिन आकाश मेघाच्छादित था तो भी एक सहस्र मनुष्य व्याख्यान श्रवणार्थ उपस्थित हुए। नगर के सभी प्रतिष्ठित और शिक्षित लोग व्याख्यान में आये उस व्याख्यान में महाराज ने धर्म्म के स्वरूप और उसके गूढ़ तत्वों को ऐसी सुन्दरता से वर्णन किया कि लोग सुन कर दंग रह गये। ४ जुलाई को फिर एक व्याख्यान उसी स्थान पर ईश्वर विषय पर हुआ, ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन, उसके गुणों का कीर्त्तन कुछ ऐसे ढङ्ग से किया गया था कि बड़े २ नास्तिकों के मस्तक झुक गये। तीसरे दिन ५ जुलाई को महाराज ने लोगों को सन्देह-निवृत्ति का अवसर दिया। एक अंग्रेज डाक्टर ने घोर नास्तिकों का पक्ष लेकर जो आत्मा अनात्मा किसी वस्तु को नहीं मानते कुछ प्रश्न किये जिनके उत्तर पाकर वह निरुत्तर होगया। साहब कलक्टर और साहब जज तीनों दिन व्याख्यानों में आरम्भ से समाप्ति तक उपस्थित रहे और ध्यानपूर्वक सुनते रहे। व्याख्यानों की समाप्ति पर

ऋषि मुनियों के समागम का आनन्द आगया

अपूर्व व्याख्यान

घोर नास्तिकों से प्रश्नोत्तर

मिर्जा अहमदअली बेग ने अनेकशः धन्यवाद दिये और कहा कि जब इस देश में महाराज जैसे विद्वान हुए होंगे तब अवश्य ही दूर देशों से लोग यहाँ विद्योपार्जन के लिये आया करते होंगे जैसा कि महाराज ने कहा है। "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" इत्यादि मन्त्र में तीन प्रकार के पद रखने का अभिप्राय स्वामीजी ने यह बतलाया था कि पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में परमेश्वर परिपूर्ण है। इस प्रश्न के उत्तर में कि कोई पवित्र भूमि है वा नहीं स्वामीजी ने कहा था कि यदि कोई हिमालय पर भी पाप करेगा तो उसका फल भोगेगा।

निष्पक्ष मुसलमान

लोगों ने बहुत कुछ आग्रह किया कि महाराज कुछ दिन मैनपुरी और विराजमान रह कर उन की धर्म्मपिपासा को शान्त करें, परन्तु वह अवकाशाभाव के कारण अधिक न ठहरसके और ६ जुलाई को घोड़ागाड़ी में सवार होकर एक दिन भारौल ठहरते हुए ८ जुलाई को मेरठ पहुँच गये।

आर्यसमाज स्थापित होगया

उनके चले जाने के पश्चात् ११ जुलाई सन् १८८० को मैनपुरी में आर्य्यसमाज स्थापित होगया।

श्री महाराज ८ जुलाई सन् १८८० को आर्य्यसमाज मेरठ के निमन्त्रण पर मैनपुरी से मेरठ पधारे और लाला रामशरणदास की कोठी मेरठ छावनी में ठहरे। निज स्थान पर जिज्ञासुओं के सन्देह निवारण करते रहे और सप्ताह में दो व्याख्यान विविध विषयों पर देकर भ्रमजाल को छिन्नभिन्न करते और वैदिक धर्म्म के सत्य सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे।

मेरठ

आर्य्यसमाज मेरठ की कन्या-पाठशाला के लिये एक सुयोग्य अध्यापिका की आवश्यकता थी। रमाबाई एक सुशिक्षित संस्कृतज्ञ महाराष्ट्र महिला का उन्हें पता लगा। वह उस समय कलकत्ते में थी। महाराज ने उसे पत्र लिखा और कई पत्र उभय पक्ष के आगये और रमाबाई मेरठ आने पर सम्मत हो गई। वह पत्रव्यवहार संस्कृत में था।

अध्यापिका की आवश्यकता

महाराज ने पण्डित देवदत्त शास्त्री को रमाबाई के मेरठ लिवालाने के लिये कलकत्ता भेजा, परन्तु वह शास्त्रीजी को वहां नहीं मिलीं। वह मेरठ लौट आये। रमाबाई उनके आने से पहले ही दो भृत्यों के साथ जिन में एक स्त्री और एक पुरुष था मेरठ पहुँच गई थी। उन्हें बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट के बँगले पर ठहराया जहां कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवैट्सकी पहले से ठहरे हुए थे। रमाबाई के आने के पश्चात् उनका एक बंगाली मित्र भी मेरठ आगया और उन्हीं के साथ ठहर गया। उनका नाम बाबू विपिनविहारी एम० ए०बी०एल० था। रमाबाई के चार या पाँच व्याख्यान स्त्रीशिक्षा आदि विषयों पर हुए। पहला व्याख्यान बाबू छेदीलाल की कोठी पर और शेष आर्य्यसमाज में हुए। महाराज रमाबाई के व्याख्यानों में नहीं जाते थे। पण्डित ज्वालादत्त को भेज दिया करते थे कि उनका सार लिख लावें और उन्हें सुना दिया करें। रमाबाई सायङ्काल को महाराज से वैशेषिक दर्शन पढ़ा करती थी। उस समय महाराज की विशेष आज्ञा से पण्डित भीमसेन, पण्डित ज्वाला-

पण्डिता रमाबाई का आगमन

दत्त तथा आर्य्यसमाज मेरठ के सभासद पण्डित पालीराम और बाबू ज्योतिस्वरूप उपस्थित रहते थे। महाराज यह चाहते थे कि रमाबाई ब्रह्मचारिणी रहकर स्त्री जाति में शिक्षा और वैदिक धर्म्म का प्रचार करे, परन्तु उसने ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उसका महाराज के पास आने का मुख्य प्रयोजन यह था कि महाराज उसके उस बँगाली युवक के साथ विवाह को शास्त्रसम्मत स्वीकार करलें। रमाबाई महाराष्ट्र ब्राह्मण-ललना और विपिन-बिहारी बँगाली कायस्थ थे। रमाबाई जानती थी कि ऐसे विवाह को केवल स्वामीजी ही शास्त्रसम्मत बता सकते हैं, क्योंकि वह यह मानते थे कि प्राचीन भारत में वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर थी। महाराज ने उसके विवाह की अनुमति नहीं दी और रमाबाई से कहा कि तुम अपना जीवन स्त्रियों की शिक्षा और उद्धार में लगाओ। रमाबाई ने यह बात स्वीकार नहीं की। इस पर महाराज बहुत हताश हुए और उन्होंने कहा कि यदि हम जानते कि रमाबाई स्वदेश के पुनरुद्धार के लिये कार्य्य करना स्वीकार नहीं करेगी तो हम कदापि अपने नियम के विरुद्ध उसे अपने सामने बिठाने और उसे शास्त्र पढ़ाने पर उद्यत न होते। रमाबाई ने महाराज से प्रार्थना की कि मुझे साथ रहने की आज्ञा दी जाय और मुझे अन्य शास्त्र भी पढ़ाइये, परन्तु महाराज ने उससे कह दिया कि आज से मेरा तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका उद्देश्य केवल इतना ही था कि रमाबाई प्राचीन ऋषिकाओं की भाँति भारतवर्ष में अपनी बहिनों की भलाई के लिये कार्य्य करे और जब उन्होंने वह उद्देश्य पूरा होता न देखा तो उन्हें रमाबाई से उपरति होगई। महाराज को उसके चरित्र के सम्बन्ध में भी सन्देह होगया था और इस कारण उन्होंने आर्य्यसमाज मेरठ के कार्य-कर्त्ताओं से कह दिया था कि उसके चरित्र पर दृष्टि रक्खें। उन लोगों ने भी उसके विषय में अच्छी सम्मति प्रकट नहीं की थी। रमाबाई ने यह भी कहा था कि वह अध्यापन और उपदेश कार्य तब कर सकती है जब उसके पिता का ऋण चुका दिया जाय जिसकी मात्रा उसने साठ सत्तर हजार रुपये बताई थी।

रमाबाई का प्रचार कार्य करने से नकार

इसके पश्चात् रमाबाई का मेरठ ठहरना व्यर्थ था, अतः उसे बिदा करने का निश्चय किया गया। महाराज ने आर्य्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं से कह दिया कि जिस सम्मान के साथ रमाबाई को लाया गया है उसी सम्मान के साथ उसे बिदा किया जाय। अतः रमाबाई को बिदा करने के उप-लक्ष में एक सभा की गई। उस में पण्डित पालीराम ने कहा कि पण्डिता रमाबाई को अपनी दृष्टि और उद्देश्य उच्च रखने चाहियें और स्वामी दयानन्द की भाँति स्त्री जाति का उपदेशद्वारा उपकार करना चाहिये। विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना उनके लिए उचित नहीं है। रमाबाई ने इसके उत्तर में स्वामीजी की बहुत प्रशंसा की उन्हें बृहस्पति से उपमा दी और कहा कि वह प्रस्तावित कार्य करने में अक्षम है, ऐसे कार्य तो स्वामीजी सरीखे उत्तम कोटि के मनुष्य ही कर सकते हैं। स्त्री होने के कारण उसके लिए सर्वत्र घूमना असम्भव है। बिदा करते समय आर्य्यसमाज मेरठ की ओर से १२५) रुपये

रमाबाई को बिदा कर दिया गया

सम्मान-प्रदर्शन

और एक थान १०) रुपये का रमाबाई को दिया गया और महाराज ने उसे संस्कारविधि, सत्यार्थप्रकाश, पञ्चमहायज्ञविधि, आर्य्याभिविनय आदि ग्रन्थ दिये।

रमाबाई ईसाई

रमाबाई पीछे आकर ईसाई होगई और उसने पूना में शारदा-सदन के नाम से एक विधवा-आश्रम स्थापित किया और सैकड़ों हिन्दू विधवाओं को विधर्मी बनाया।

रमाबाई की स्वामीजी पर सम्मति

देवेन्द्र बाबू ने रमाबाई को एक पत्र लिखा था जिस में रमाबाई से स्वामीजी के के विषय में उसकी सम्मति और भाव पूछे थे। उस पत्र का उत्तर रमाबाई ने १३ नवम्बर सन् १९०३ को दिया था। उस में रमाबाई ने लिखा था कि मैं मेरठ में आर्य्यसमाज के एक सभासद के गृह पर ठहरी थी। मैं उस समय स्वामीजी की विशेष शिक्षाओं से सर्वथा अनभिज्ञ थी। मैं मेरठ में तीन सप्ताह से अधिक रही और इस कारण मुझे आर्य्यसमाज के मुख्य मन्तव्यों को स्वयम् उसके प्रवर्त्तक से सीखने का अवसर मिला। स्वामीजी के सम्बन्ध में जो भाव मेरे मन पर अङ्कित हैं वह वास्तव में बहुत उत्तम हैं। वह सर्व-भावेन दयास्वरूप थे। वह प्रांशु-विशाल-दर्शन, भद्र पुरुष थे। वह सच्चे और शुद्ध भाव-युक्त पितृप्रकृति के पुरुष थे। उनका मेरे साथ वर्त्ताव कृपापूर्ण और पितृतुल्य था। वह शुद्ध भाषा प्रभावोत्पादक स्वर में बोलते थे। वह कभी हिन्दी और कभी संस्कृत में बातें किया करते थे, परन्तु संस्कृत उनकी प्यारी भाषा थी। हिन्दुओं के छहों दर्शनों में से वह वैशेषिक दर्शन को सब से अधिक पसन्द करते थे। उनकी शिक्षा अद्वैत वेदान्त से भिन्न थी और उस समय मैं केवल एक इसी बात में उनसे सहमत थी। ...... उन्होंने मुझ से यह कहा था कि मैं चाहता हूँ कि तुम आर्य्यसमाज में सम्मिलित हो जाओ, मैं तुम्हें शिक्षा दूँगा और तुम्हें आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार के लिये तैयार करूँगा। मैं धार्म्मिक विषयों में अव्यवस्थित थी, अतः मैंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

स्त्रियों को वेदाधिकार

उसी पत्र में एक जगह रमाबाई लिखती है कि स्वामी दयानन्द स्त्रियों के लिये धर्म्म की आवश्यकता स्वीकार करते थे। वह कहते थे कि स्त्रियाँ वेद पढ़ सकती हैं जिसकी कि हिन्दू धर्म्म आज्ञा नहीं देता था। इस कारण से कि हिन्दू धर्म्म स्त्रियों और शूद्रों से द्वेष करता था, मेरी आत्मा उसकी विद्रोही बन गई थी। जहाँ तक उनकी शिक्षा का स्त्रियों को वेद, दर्शन और धर्म्म शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार देने से सम्बन्ध था, वहाँ तक मैं उससे प्रसन्न थी।

कर्नल और मैडम का रंग बदल गया

कर्नल और मैडम शिमला जाते हुए मेरठ में महाराज से मिलने के लिए ठहर गये थे। उनके विषय में उस समय तक महाराज का यही विश्वास था कि वह आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों को मानते हैं और इसी कारण से वह थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्य्यसमाज की शाखा बनाने पर सम्मत हो गये थे। इस बार जो कर्नल और मैडम मेरठ आये तो उन्होंने और ही रंग दिखाया अर्थात् उनकी बात-चीत से यह पता लगा कि उनका न वेदों में विश्वास है और न ईश्वर में। इस विषय में रमाबाई ने अपने उसी पत्र में इस प्रकार लिखा है:—"मैडम ब्लैवैट्सकी और कर्नल आल्काट वाइसराय

लार्ड रिपन से मिलने शिमला जा रहे थे। मैंने लोगों को यह कहते सुना था कि वह गवर्नर जनरल के निमन्त्रण पर उन्हें अपनी गुप्त विद्या-शक्ति दिखाने और उनके सामने यह सिद्ध करने को जा रहे हैं कि अदृष्ट आत्माएं उनसे बात-चीत करती हैं और मैडम ब्लैवैट्सकी परलोकगत आत्माओं के लोक से वाइसराय के लिये कुछ वस्तुएं मँगा कर अलौकिक घटना (miracle) का प्रदर्शन करेंगी।

"मैं बाबू छेदीलाल के गृह पर ठहरी हुई थी, जहाँ कर्नल और मैडम अतिथि थे। मैडम मुझ से दुभाषिये के द्वारा बातें किया करती थी क्योंकि मैं उस समय अंग्रेज़ी नहीं जानती थी। उन्होंने मुझ से कहा कि मैं किसी वैयक्तिक (personal) ईश्वर में विश्वास नहीं करती, किन्तु सत्व, रजस्, तमस् की सम्मिलित एक महान् शक्ति में विश्वास करती हूँ। वह अपनी उंगली में एक अंगूठी पहनती थीं जिस में तीन रत्न जड़े हुए थे। उन्होंने वह मुझे दिखाई और कहा कि यह तीनों रत्न उन तीनों शक्तियों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, जो इस महान् विश्व में कार्य्य और उसका शासन कर रही हैं। एक दिन सायङ्काल को स्वामी दयानन्द थियोसोफ़ी के इन नेताओं से मिलने आये। उन्होंने स्वामीजी को थियोसोफ़िकल सोसाइटी का मुख्य सभासद् बनाना चाहा, परन्तु स्वामी दयानन्द सोसाइटी का सभासद् बनने की स्वीकारी देने से पहले थियोसोफ़ी के सिद्धान्तों को समझना चाहते थे। इस पर उन्होंने एक दुभा-षिये के द्वारा स्वामीजी के साथ अपने विशेष सिद्धान्तों पर विचार किया। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो मैडम ब्लैवैट्सकी और कर्नल आल्काट दोनों को यह कहते सुना था कि उन का विश्वास उपर्य्युक्त तीनों शक्तियों में है और वह वैयक्तिक ईश्वर और वेदों के अपौरुषेयत्व में विश्वास नहीं रखते हैं। यह आर्य्य-समाज के जीवनमूल सिद्धान्तों के विरुद्ध था और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रकट कर दिया था कि वह उन लोगों से जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे, वह थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सभासद् नहीं बनेंगे और न थियोसोफ़िस्टों को अपने समाज का सभासद् बनाएंगे और इस पर बात समाप्त हो गई। मैं नहीं जानती कि पीछे क्या हुआ, परन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है स्वामी दयानन्द उस समय थियोसोफ़िस्ट नहीं हुए।"

मैडम के विश्वास

वेद, ईश्वर में अविश्वास

अविश्वासियों से संबंध नहीं रक्खेंगे

कर्नल और मैडम सायङ्काल को महाराज से बाबू छेदीलाल के बँगले पर मिला करते और उनसे वार्त्तालाप किया करते थे। इस वार्त्तालाप का अंश 'थियोसोफ़िस्ट' समाचार पत्र में छप चुका है, परन्तु नीचे लिखी बात उसमें नहीं छपी। एक दिन कर्नल ने स्वामीजी से कहा कि उन्हें और मैडम को इस बात में शङ्का है कि स्वामी शङ्कराचार्य ने अपने आत्मा को एक राजा के शरीर में जो उसी दिन मरा था प्रविष्ट कर दिया था। स्वामीजी ने कहा कि यह विचित्र बात है कि मैडम के समान योगप्रवीण व्यक्ति को इस विषय में सन्देह हो। उन्होंने फिर कहा कि मैं प्रथम कोटी का योगी नहीं हूँ, केवल मध्यम कोटि का हूँ, परन्तु मैं

योग की शक्ति

अपनी चेतन शक्ति को शरीर के किसी भाग में केन्द्रित कर सकता हूँ, अर्थात् उस भाग को छोड़ कर मेरे शरीर के अन्य सब भाग मृतवत् हो जायंगे। यदि आप यह दृश्य देखना चाहें तो मैं आप को दिखा सकता हूँ। जब कि मैं एक मध्यम कोटि का योगी इतना कर सकता हूँ तो यह सम्भव है कि एक उच्च कोटि का योगी इस से एक पद आगे बढ़ कर अपने आत्मा को दूसरे शरीर में प्रविष्ट कर सके।

एक दिन बाबू ज्योतिस्वरूप और कुछ अन्य सज्जन कर्नल और मैडम से मिलने गये थे। समय सायङ्काल का था। जब सन्ध्या का अन्धकार छाने लगा तो पण्डित पालीराम ने उनसे विदा माँगी कि सन्ध्या करने का समय निकट है। इस पर मैडम ने मुस्करा कर कहा कि क्या आप सचमुच उपासना करते हैं और करते हैं तो किस की? पण्डित पालीराम ने कहा कि आप भी तो सन्ध्या और परमेश्वर की उपासना करती हैं। तो मैडम ने कहा कि सन्ध्या के केवल उस भाग में विश्वास करती हूँ जहाँ तक वह योगाभ्यास का अङ्ग है, परन्तु जहाँ तक ईश्वरोपासना का सम्बन्ध है मेरा उसमें विश्वास नहीं है। मैं किसी ईश्वर में विश्वास नहीं रखती क्योंकि ईश्वर है ही नहीं और अधिक प्रश्न करने पर मैडम ने कहा हम लोग बौद्ध हैं।

सन्ध्या कैसी ? उपासना किस की ?

मैं ईश्वर को नहीं मानती

पण्डित पालीराम आदि ने यह बात महाराज से कही और जब उन्होंने कर्नल और मैडम से पूछा कि क्या यह सत्य है कि आप के विश्वास में ईश्वर का अस्तित्व नहीं है? तो उन्होंने कहा कि यह सत्य है। इस पर महाराज ने कहा कि इस विषय पर विचार हो जाना चाहिये। कर्नल ने कहा कि गुरु-शिष्य में कोई विवाद नहीं हो सकता। महाराज ने कहा कि आस्तिक और नास्तिक में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध नहीं हो सकता। कर्नल विचार करने से नकारे और महाराज उस पर आग्रह करते रहे। महाराज ने कहा कि दो विद्वान् पुरुष जिन्हें सत्य की खोज हो, विचार करके अवश्य ही किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच सकते हैं। यदि आप का पक्ष प्रबल रहे तो मैं ईश्वर में विश्वास रखना छोड़ दूँगा नहीं तो आप को ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करना होगा। अन्यथा मैं आप से सब सम्बन्ध तोड़ दूंगा।

ईश्वर विषय पर विचार कर लीजिये

इस पर कर्नल ज्यों त्यों करके राजी हुए। यह विचार तीन दिन तक सन्ध्या समय से रात्रि के १०-११ बजे तक होता रहा। पहले दो दिन पण्डित बलदेवप्रसाद हेडमास्टर नार्मल स्कूल मेरठ ने दुभाषिये का काम किया, तीसरे दिन बाबू ज्वालाप्रसाद अनुवादक अदालत जजी मेरठ ने। चौथे दिन कर्नल ने महाराज से कहला कर भेजा कि विचार समाप्त हो जाना चाहिये नहीं तो वह अमृतसर चले जायंगे। महाराज ने उत्तर में कहला भेजा कि अन्तिम निर्णय कुछ दूर नहीं है। हम में से एक को पराजय स्वीकार करना होगा, यदि आप विचार समाप्त किये बिना चले जायंगे तो मेरा और आपका सम्बन्ध समाप्त हो जायगा। कर्नल और मैडम उसी दिन मेरठ से चले गये और महाराज ने उसी दिन एक साधारण सभा में जो लाला रामशरणदास के गृह पर हुई थी, यह घोषणा करदी कि मेरा और थियोसोफिकल सोसाइटी का कोई सम्बन्ध नहीं रहा है।

विचार का आरम्भ

सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा

षड्-विंश अध्याय

महाराज धर्मप्रचार के विषय में पालिसी से काम लेने के अत्यन्त विरुद्ध थे। एक दिन उन्होंने अत्यन्त शोक प्रकट करते हुए कहा था कि सत्यार्थप्रकाश में मृत पितरों का श्राद्ध और यज्ञ में मांस-विधान राजा जयकिशनदास ने लिखवा दिया क्योंकि उन्होंने ही उसे अपने व्यय से छपवाया था। हम समझते हैं कि यह बात स्वामीजी ने कभी न कही होगी। यदि उनका ऐसा विश्वास होता तो जिस विज्ञापन में उन्होंने यह घोषित किया कि यह बातें सत्यार्थप्रकाश में लेखकों के दोष से सन्निविष्ट हुई उसमें वह स्पष्ट लिख देते कि वह राजा जयकिशनदास की अनुमति से सन्निविष्ट हुई। स्वयम् राजा जयकिशनदास की यह सम्मति थी कि उन बातों को लेखकों ने लिख दिया। ठाकुर महावीरसिंह की भी यह निश्चित सम्मति थी कि उक्त बातों के लिये लेखक ही दोषी हैं। 'जहाँ जहाँ श्राद्ध नहीं करना चाहिए' ऐसा होना चाहिए था वहाँ २ लेखकों ने ऐसा लिख दिया कि 'होना चाहिये'। ज्यों ही स्वामीजी को यह ज्ञात हुआ कि सत्यार्थप्रकाश में ऐसा छप गया है त्यों ही उन्होंने निम्न लिखित विज्ञापन निकाल दिया और सत्यार्थप्रकाश का प्रामाण्य अस्वीकार कर दिया। यह विज्ञापन ऋग्वेद भाष्य के प्रकट अङ्क के टाइटिल पेज पर संवत् १९३५ में छपा था। —संग्रहकर्त्ता.

पालिसी से घृणा

पहले सत्यार्थप्रकाश का प्रामाण्य अस्वीकार

विज्ञापनम्

सब को विदित हो कि जो २ बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उन को मैं मानता हूँ, विरुद्ध बातों को नहीं। इस से जो जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र व मनुस्मृति पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं वह उन उन ग्रन्थों के मतों के जनाने के लिए लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो जो बात वेदार्थ से निकलती हैं, उन सब का प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझ को मान्य हैं और जो जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थ-अनुकूल ग्रन्थ हैं उन को मैं भी साक्षी के समान मानता हूँ और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और ५५ पंक्ति में 'पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे' और 'जितने मर गये हों उनका तो अवश्य करे' तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में 'मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है' इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि 'जीवतों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म्म है' और 'जो जो मर गये हों उनका नहीं करना', क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये हुए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य का नहीं। इस विषय में वेदमन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २२१ से लेलें १२ अङ्क के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।

धर्म्मसम्बन्धी विषयों में पालिसी से काम लेने की हानि का एक दृष्टान्त महाराज

पालिसी का दृष्टान्त

ने यह दिया था कि हमने जयपुर में वैष्णव-मत के विरुद्ध शैव-मत के पक्ष का अवलम्बन करके पण्डित हरिश्चन्द्र की सहायता की थी जिससे हमारा अभिप्राय यह था कि महाराजा वैष्णव धर्म्म को त्याग कर शैव-मत को स्वीकार कर लेंगे। पश्चात् उन्हें वैदिक सिद्धान्तों की ओर झुकाना सहज होगा। महाराजा ने शैव मत तो स्वीकार कर लिया, परन्तु हमारा उद्देश्य पूरा न हुआ। हम जब कभी जयपुर गये लोगों ने हमारे उपदेश को न सुना और कहा कि क्या यह वही रुद्राक्ष नहीं है जिन के पहनने से आप ने हमें मोक्ष के मिलने का विश्वास दिलाया था? अब हम कैसे मानें कि पहला उपदेश असत्य था और आप का अब का उपदेश सत्य है। महाराज इस पर कहते थे कि लोगों के इस कहने में कुछ युक्तियुक्तता अवश्य थी।

पहला स्वीकार-पत्र

महाराज ने अपना पहला स्वीकार-पत्र १६ अगस्त सन १८८० को मेरठ में लिखा था और १८ अगस्त सन् १८८० को उसकी रजिस्ट्री हुई थी। उस के द्वारा जो परोपकारिणी सभा स्थापित की गई थी। उसका प्रधान राय मूलराज एम० ए० को बनाया था और राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल, कर्नल आल्काट व्लेवैट्सकी आदि १४ सभासद नियत किये गये थे।

मुज़फ्फरनगर

हमारा स्वामीजी से शास्त्रार्थ करादो

१५ सितम्बर सन् १८८० अर्थात भाद्रपद शुक्ला १२ संवत् १९३७ को महाराज मुजफ्फरनगर पधारे और वहाँ के प्रसिद्ध रईस राय बहादुर लाला निहालचन्द के बँगले में ठहरे। उन दिनों पितृपक्ष का आरम्भ होने वाला था। नगर के कुछ पण्डित लाला निहालचन्द के पास गये और उनसे कहा कि स्वामीजी से हमारा शास्त्रार्थ करा दीजिए, परन्तु पण्डितगण लाला निहालचन्द के ही प्रश्नों का उत्तर न देसके, अतः वह पण्डितों के प्रस्ताव से सहमत न हुए।

मृतक श्राद्ध पर बात-चीत

लाला निहालचन्द ने महाराज से मृतक-श्राद्ध के विषय में स्वयं ही जिज्ञासा की तो उन्होंने कहा कि मृतक-श्राद्ध निष्फल है, क्योंकि मृतक को अपने ही कर्म्मों का फल मिलता है, दूसरे के कर्म्मों का नहीं और श्राद्ध उसका कर्म नहीं है और यदि श्राद्ध का पुण्य उसे मिलता है तो पुत्र के पाप कर्म्म का, जो वह उसके नाम से करे वा जो अपव्यय उसके उपार्जित धन से करे उसका फल भी उसे मिलना चाहिये। इस पर लाला साहब ने कहा कि मृतक के पापों की दण्डव्यवस्था तो एकबार ही होजाती है, उस में घटत बढ़त नहीं हो सकती, जैसा हम लोक में भी देखते हैं कि अपराधी को उसके अपराध का दण्ड एक ही बार मिलता है फिर वह न्यूनाधिक नहीं हो सकता; परन्तु श्राद्ध एक पुण्य कर्म्म है, उसका फल उसे अवश्य मिलना चाहिये। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह ठीक है कि दण्ड न्यूनाधिक नहीं हो हो सकता, तब पुत्र के किये हुए श्राद्ध से उसका दण्ड तो कम होगा नहीं तो मृतक को उस से क्या लाभ होगा? बात यह कि यदि यह माना जावे कि मृतक को दूसरे के पुण्य कर्म का फल मिलता है तो यह भी मानना पड़ेगा कि दूसरे के पाप कर्म का फल भी उसे मिलता है। फिर यह भी है कि जो लोग धन एकत्रित करके मरजाते हैं
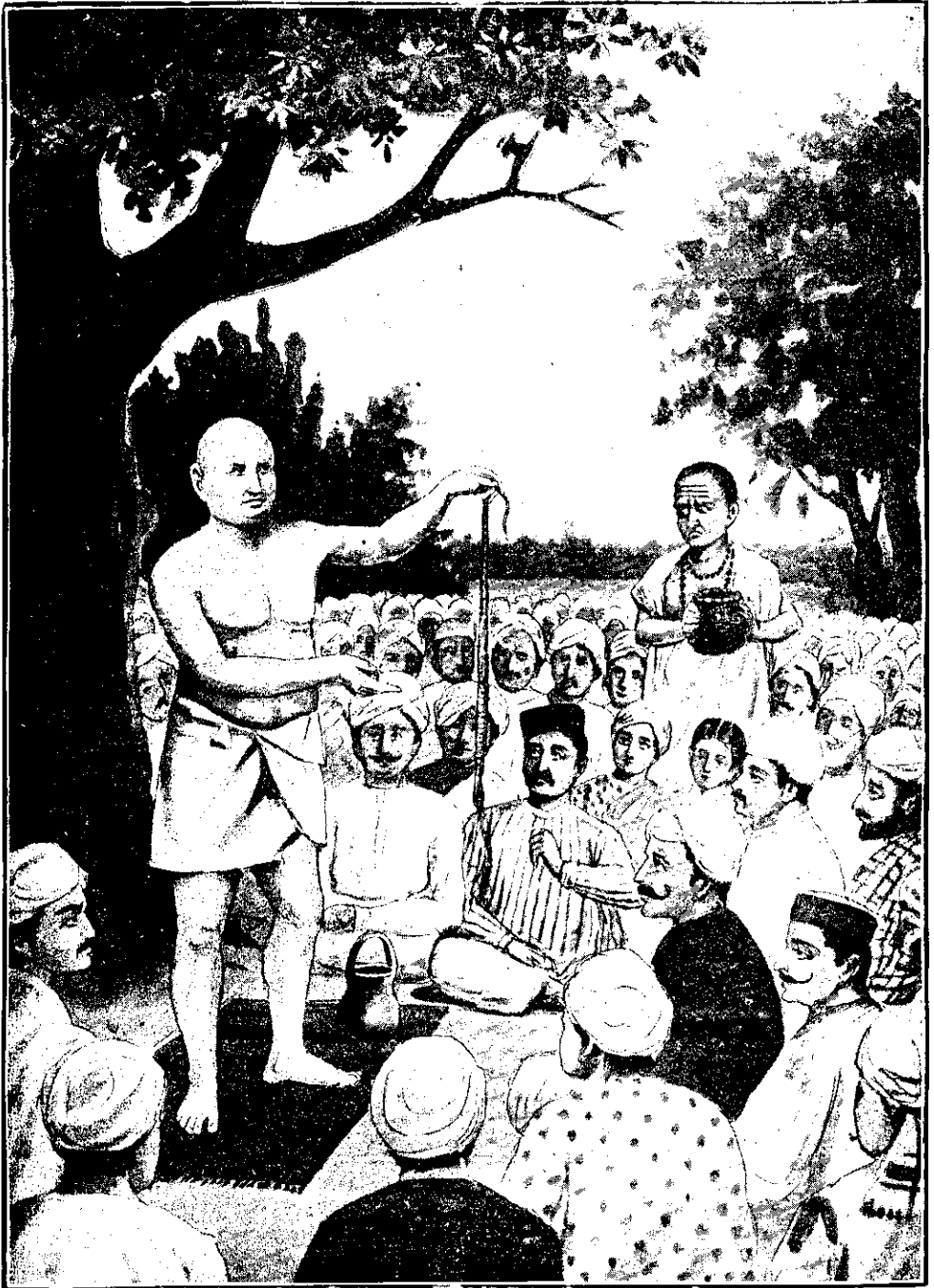
स्वामीजी पर कृष्ण सर्प फेंका गया। एड़ी से उसके सिर को कुचल डाला और कहा–
'सब से कहदो कि कैसी आसानी से झूठे देवता नष्ट होजाते हैं।' (पृष्ठ ६२१)

उनकी सन्तान बहुधा दुश्चरित्र होजाती है, इसका फल भी उन्हें मिलना चाहिये। अतः यह सिद्धान्त बहुत बुरा प्रभाव उत्पन्न करने वाला है।

लाला निहालचन्द को कार्य्यवश जाना था, अतः आगे बातचीत न हो सकी। महाराज न्याय की मूर्ति थे। उन्होंने लाला साहब से स्वयं कह दिया कि अभी इस बात का पूरा निर्णय नहीं हुआ है। इस से उनके चित्त में महाराज के लिये प्रेम द्विगुणित होगया।

स्त्री-शिक्षा पर आक्षेप

एक और सज्जन के आक्षेप पर महाराज ने कहा कि स्त्रियां लिखने पढ़ने के कारण से कुटिला नहीं होंगी। यह तो प्रकृति और संगति पर निर्भर है। कितने लिखे पढ़े मनुष्य भी चरित्रहीन होते हैं।

सुख-दुःख की मीमांसा

ज्ञान और अज्ञान

एक और जिज्ञासु के प्रश्नों का उत्तर देते हुए महाराज ने कहा कि सुख दो प्रकार का होता है एक अविद्याजन्य, दूसरा विद्याजन्य। ऐसे ही सुख को सुख कहते हैं; अविद्याजन्य सुख ऐसा होता है जैसा पशु आदि को। अज्ञान की निवृत्ति विना ज्ञान के नहीं होती। जीव अल्पज्ञ है, अतः किन्हीं विषयों में उसे ज्ञान होता है और किन्हीं में अज्ञान। व्यापक वस्तु व्याप्य से भिन्न होता है, जैसे आकाश सब मूर्तिमान् द्रव्यों में व्यापक है, परन्तु न वह द्रव्य आकाश हैं और न आकाश मूर्त्तिमान् द्रव्य हैं। जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक और जो स्थूल होता है वह व्याप्य होता है। परमात्मा सब से सूक्ष्म है अतः सब में व्यापक है। त्रसरेणु का साठवां भाग परमाणु है, परमात्मा उससे भी सूक्ष्म है, इसीलिए वह परमाणुओं का संयोग-वियोग कर सकता है।

ढेले आये

एक दिन महाराज श्राद्ध-खण्डन पर व्याख्यान दे रहे थे कि कुछ दुष्टों ने उन पर ढेले फेंके, परन्तु महाराज तनिक भी विचलित न हुए और व्याख्यान देते रहे।

मुसलमान नवयुवक की अशिष्टता

एक दिन एक मुसलमान नवयुवक ने आकर एक प्रश्न किया और साथ ही वह अण्ड बण्ड बकने लगा। महाराज ने उसके प्रश्न का शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, परन्तु वह बकता ही रहा। महाराज को तनिक भी क्रोध न आया।

सांप मरवा दिया

जिस गृह में महाराज ठहरे हुए थे, उस में एक दिन एक सर्प निकल आया उन्होंने उसे विद्यार्थियों से मरवा डाला।

स्वामीजी पर कृष्ण सर्प फेंका गया

मैडम ब्लैवेट्सकी ने अपनी पुस्तक '.फ्राम दि केव्ज़ एण्ड जंगल्स आफ़ हिन्दुस्तान' में लिखा है कि एक समय महाराज बँगाल के एक छोटे से ग्राम में बलपूर्वक खण्डन कर रहे थे कि एक मतान्ध शैव ने एक कृष्ण सर्प उनकी विवस्त्र टांगों पर फेंक कर कहा कि अब वासुकी देवता स्वयं ही प्रकट कर देगा कि हम में से कौन सच्चाई पर है। सर्प उन की टाँग से लिपट गया था। उन्होंने एक झटके से ही उसे अलग फेंक कर अपनी एड़ी से उसके सिर को कुचल डाला और बड़ी शान्ति से उस शैव को उत्तर दिया कि अच्छा इसे ही निर्णय करने दो। तुम्हारा देवता तो बहुत शिथिल रहा, मैंने ही इस विवाद का निर्णय

कर दिया और श्रोताओं को सम्बोधन करके कहा कि अब जाओ और सबसे कहदो कि कैसी आसानी से झूठे देवता नष्ट होजाते हैं।

इस घटना में कितना तथ्य है, हम नहीं कह सकते। इस में असम्भव बात तो कोई प्रतीत नहीं होती। यदि यह सत्य हो तो यह उस समय की हो सकती है जब महाराज ने गङ्गोत्री से गङ्गासङ्गम तक विचरण किया था, परन्तु उन दिनों तो वह खण्डन मण्डन करते सुने नहीं गये।

मेरठ

मुजफ्फरनगर में महाराज के लगभग दस व्याख्यान हुए। वहां से उन्होंने मेरठ आकर आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव को सुशोभित किया और उत्सव के दोनों दिन अपने मनोहर व्याख्यानों से श्रोतृवर्ग को अलभ्य लाभ पहुँचाया।

सम्बन्ध-विच्छेद का सूत्रपात

स्वामीजी ने अपने एक व्याख्यान में आर्य्यसमाज और थियासोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध में भी कथन किया और कर्नल और मैडम के असद् व्यवहार की निन्दा की। उन्होंने आर्य्यपुरुषों को सावधान किया कि उक्त सोसाइटी के सभासद न बनें। चलते समय कर्नल और मैडम ने यह वचन दिया था कि वह आगे को किसी आर्य्यसमाज के सभासद को सोसाइटी का सदस्य बनने के लिये नहीं कहेंगे। परन्तु इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। स्वामीजी ने जो कुछ सोसाइटी के विषय में कहा उस से कर्नल और मैडम स्वामीजी से अप्रसन्न होगये। इधर स्वामीजी भी उन से असन्तुष्ट होगये और इस प्रकार आर्य्यसमाज और थियासोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध-विच्छेद का सूत्रपात होगया।

जीवन की कुछ घटनाएं

मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की कुछ घटनाएं भी सुनाई थीं। उन्होंने कहा कि एक स्थान पर मेरा व्याख्यान सुनकर कलक्टर ने कहा था कि यदि सब लोग आप के कथन के अनुसार चलने लगें तो हमें भारत छोड़ना पड़ेगा। इसका उत्तर मैंने यह दिया कि आप मेरा अभिप्राय नहीं समझे। मेरा तात्पर्य्य यह है कि मूर्ख और विद्वान् का मेल नहीं हो सकता। जब तक भारत के मनुष्य आपके समान सुशिक्षादि गुणों से अलंकृत न हो जायं तबतक परस्पर के मेल में सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता। आप इस समय आश्चर्य्य करते हैं कि मैं इतनी दूर तक वायु सेवन के लिए जाता हूं, परन्तु अवधूत दशा में चालीस २ मील चलना मेरे लिए कोई बात न थी। मैं एक बार गङ्गोत्री से चल कर गङ्गा सागर तक और एक बार गङ्गोत्री से रामेश्वर तक गया था। बद्रीनाथ में रहकर मैंने गायत्री का जपानुष्ठान किया था। रात्रि में जब तेल न रहता था तो मैं बाजार के दीपकों के प्रकाश में पढ़ा करता था। मैं लगातार कई दिन तक मध्याह्न में तप्त-रेणु में पड़ा रहा हूं और हिमाच्छादित पर्वतों में और गङ्गा तट पर नग्न और निराहार सोया किया हूं।

शिवलाल रस्तोगी स्वामीजी के बड़े भक्त थे। एक दिन वह उनके पास जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक सर्प मिला। जब वह श्रीसेवा में पहुँचे तो पहला प्रश्न स्वामीजी ने उनसे यह

क्या तुमने सर्प देखा

किया कि क्या मार्ग में सर्प देखा था? जब वह चलने लगे तो महाराज ने कहा छाता ले लिया होता वर्षा होने पर भीगने से तो बच जाते।

छाता ले लिया होता

उस समय शिवलाल को वर्षा के कोई चिन्ह दिखाई न देते थे, परन्तु मार्ग में इतनी वर्षा हुई कि घर पहुँचते पहुँचते वह खूब भीग गये। *

सहारनपुर रेलवे स्टेशन

मेरठ से देहरादून जाते हुए महाराज कुछ काल के लिये सहारनपुर के स्टेशन पर पहुँचे। जब उनके आगमन का समाचार भक्त जन को ज्ञात हुआ तो वह स्टेशन पर ही श्रीसेवा में उपस्थित हुए। उन में ही एक ज्योतिषी भी थे। वह महाराज से बोले कि मैं फलित ज्योतिष के अनुसार प्रश्नों के उत्तर देता हूँ और वह ठीक होते हैं। महाराज ने कहा कि आपके कुछ उत्तर दैवयोग से ठीक होजाते होंगे, यदि गणना से सच्चे होते तो उनमें कभी भूल नहीं होती क्योंकि गणित के नियम सब सत्य हैं।

फलित ज्योतिष ढकोसला है

एक सज्जन ने प्रश्न किया कि जन्म के समय दस दिन का जो सूतक माना जाता है वह शास्त्रानुकूल है वा नहीं, तो महाराज ने उत्तर दिया कि केवल बालक की माता को एक रात का सूतक होता है। सूतक का बखेड़ा वैसे ही खड़ा कर लिया है। लोग उस में सन्ध्या हवन आदि तक छोड़ देते हैं, परन्तु असत्य-भाषण आदि अशुभ कर्म कोई नहीं छोड़ता।

बालक-जन्म पर सूतक

स्वामीजी ७ अक्टूबर सन् १८८० को देहरादून पहुँचे। पण्डित कृपाराम ने उनकी सेवा-शुश्रूषा में कोई बात न उठा रक्खी। स्वामीजी के आते ही एक विज्ञापन द्वारा जन साधारण को सूचना देदी गई कि स्वामीजी केवल वैदिक धर्म्म को मानते हैं और अन्य धर्म्मों में जो त्रुटियां हैं, उन्हें युक्तिपूर्वक सब को दर्शाते हैं। यदि किसी अन्य धर्मावलम्बी को उन से शास्त्रार्थ करना अभीष्ट हो तो वह लिपिबद्ध शास्त्रार्थ करलें, साथ ही शास्त्रार्थ के नियम भी विज्ञापन में लिख दिये गये।

देहरादून

शास्त्रार्थ के लिये प्रथम पौराणिकों ने छेड़-छाड़ की और यह प्रसिद्ध कर दिया कि आज दो बजे पण्डित लोग मिशन स्कूल में स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत हैं। इसका उत्तर स्वामीजी ने उन के पास भेज दिया कि मैं अभ्यागत हूँ, आप को मेरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। मैं इस बात का उत्तरदायित्व लेता हूँ कि कोई उपद्रव आदि न होगा और आप मुझे ही अपने स्थान पर बुलाना चाहते हैं तो साहब मैजिस्ट्रेट की ओर से प्रबन्ध होना चाहिये, क्योंकि जहाँ कहीं भी मैं पौराणिकों के स्थान पर गया हूँ, वहाँ उपद्रव हुए विना नहीं रहा। पौराणिकों की ओर से इसका उत्तर नहीं आया।

पौराणिकों की छेड़-छाड़

* यह घटना दयानन्द-प्रकाश में लिखी है। लाला शिवलाल हमारे महल्ले के रहने वाले थे और हम उन से खूब परिचित थे, परन्तु उन्होंने इस घटना का हम से कभी उल्लेख नहीं किया। सम्भव है, स्वामी सत्यानन्दजी ने उन से ही वा अन्य किसी से सुनकर यह बात लिखी हो। —संग्रहकर्त्ता.

मुसलमान भी आये

इसके पश्चात् मुसलमानों की ओर से एक पत्र आया जिस में लिखा था कि हम वेद पर आक्षेप करेंगे और जबतक आप के उत्तरों से हमारा सन्तोष न हो जायगा तब तक हम किसी की न सुनेंगे। महाराज ने इसके उत्तर में कहा कि आप वेद पर अवश्य आक्षेप करें. मैं उत्तर दूंगा; फिर मैं कुरान पर अक्षेप करूँगा आप उत्तर दें। इस पर मुसलमान भी चुप हो गये।

पादरी भी राजी नहीं हुए

एक दिन एक पादरी जिनका नाम गिलबर्ट और उपनाम मेकमासर था कई ईसाइयों के साथ आये और बोले कि आप के पास वेद के ईश्वरोक्त होने में क्या युक्ति है ? स्वामीजी उनके ढंग से जान गये कि वास्तव में वह शास्त्रार्थी नहीं हैं केवल दिखावे के लिये प्रश्न करते हैं, अतः उन्होंने पादरी साहब से यह प्रश्न कर दिया कि आपके पास बाइबल के ईश्वरोक्त होने में क्या युक्ति है ? इस पर पादरी साहब बोले कि प्रथम प्रश्न तो मेरा है। स्वामीजी ने कहा कि मुझे भी तो प्रथम उत्तर लेने का अधिकार है। पादरी साहब उठ कर चलने लगे तो स्वामीजी ने कहा आप भागते क्यों हैं, पहले आप ही वेद पर एक, दो, तीन आक्षेप कर लीजिए मैं उत्तर दूंगा, फिर मैं बाइबल पर आक्षेप करूँगा जिनके उत्तर आपको देने होंगे, परन्तु पादरी साहब फिर चलने को हुए तो स्वामीजी ने कहा कि आप वेद पर दस तक आक्षेप कर लीजिये, परन्तु मुझे भी तो बाइबल पर आक्षेप करने की आज्ञा दीजिये, परन्तु पादरी साहब बोले कि जब तक आप हमारे प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न देंगे और हम से अपने उत्तरों की सत्यता स्वीकार न करालेंगे हम आप को बाइबल पर आक्षेप न करने देंगे और इतना कहकर वह सभास्थल से चले गये।

महात्मा अलखधारी पूर्व मुहम्मद उमर

मुन्शी मुहम्मदउमर को महाराज ने पहले आगमन के अवसर पर शुद्ध करके उनका नाम अलखधारी रक्खा था। एक दिन मुसलमान दलबद्ध होकर उनके पास पहुँचे और उनसे कहा कि तेरी मुक्ति असम्भव है और तू कठोर यातना के योग्य है। महात्मा अलखधारी ने कहा कि आप का खुदा मुसलमानों का पालन करता है वा मनुष्य मात्र का। यदि पहली बात ठीक है तो आपको मेरे उद्धार की विशेष चिन्ता करनी व्यर्थ है और यदि दूसरी ठीक है तो फिर मुझ में और आप में कोई भेद नहीं। उत्तम तो यही है कि आप भी पवित्र वेदों के विश्वासी बनें और सत्य धर्म्म को ही सत्य जानें अन्यथा छुटकारा कठिन है। ऐसा युक्तियुक्त उत्तर पाकर इसलामी दल वापस चला गया।

देहरादून में महाराज २० नवम्बर सन् १८८० तक रहे और धर्म्मपिपासुओं की पिपासा शान्त करते रहे। देहरादून से वह मेरठ चले गये। देहरादून में महाराज का फोटू भी लिया गया था।

मेरट

मेरठ में उन की स्थिति केवल पाँच दिन रही। कोई व्याख्यान नहीं हुआ।

आगरा

स्वामीजी को आगरे के पण्डित लक्ष्मणप्रसाद महोपाध्याय और अन्य कतिपय सज्जनों ने निमन्त्रित किया था और उन्होंने महाराज के निवास के लिये नगर से बाहर एक स्थान भी निश्चित कर दिया था, परन्तु यह लोग

किसी कारण से रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये न पहुँचसके। मुंशी गिरधरलाल भार्गव आगरे के सुप्रसिद्ध वकील को भी महाराज के आगमन की किसी प्रकार सूचना मिल गई थी और वह स्टेशन पर चले गये अतः वह महाराज को अपने गृह पर लिवा लाये। प्रातःकाल पण्डित लक्ष्मणप्रसाद आदि श्रीसेवा में उपस्थित हुए और स्वागतार्थ रेल पर न पहुँचने के लिये क्षमा प्रार्थना की और उन से पूर्व निश्चित स्थान पर पधारने के लिये निवेदन किया, परन्तु उन्होंने मुंशी गिरधरलाल से कहा कि आपका मकान हमें रुचिकर है, यदि आप को कुछ कष्ट न हो तो हम यहां रहना अधिक पसन्द करते हैं। मुन्शी गिरधरलाल ने अपना सौभाग्य समझा जो महाराज ने उनके गृह को अपने चरण कमलों से सुशोभित करने की इच्छा प्रकट की और महाराज से आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना की, ऐसी ही प्रार्थना सेठ सूनीलालजी ने भी की, परन्तु महाराज ने कहा कि पाचक और कहार हमारे साथ हैं, भोजन सामग्री का भी प्रबन्ध है और हमें अधिक दिन ठहरना है, अतः हम किसी एक व्यक्ति पर भार डालना नहीं चाहते, यदि किसी वस्तु की आवश्यकता होगी तो कह दिया जायगा। स्वामीजी के व्याख्यानों का मुफ़ीद-ए-आम-स्कूल पीपल मण्डी में प्रबन्ध किया गया।

एक व्यक्ति पर आतिथ्य-भार डालना नहीं चाहते

व्याख्यानमाला

२८ नवम्बर से व्याख्यान होने आरम्भ हुए और लगातार २५ व्याख्यान हुए।

हम नहीं कह सकते इन व्याख्यानों में किन २ अपूर्व रहस्यों का उद्घाटन किया गया होगा और क्या २ अमूल्य उपदेश दिये गये होंगे। यदि इनका विवरण उसी समय कोई लिख लेता जैसा कि पूना के व्याख्यानों का लिख लिया गया था तो उससे कितना लाभ होता।

व्याख्यानों की समाप्ति पर महाराज ने घोषित कर दिया कि जिस किसी को मुझ से शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो, वा मेरे कथन में कोई शङ्का हो, वा किसी को मुझ से कुछ प्रष्टव्य हो वह दस दिन के भीतर पूछ सकता है। शास्त्रार्थ करने की डींग तो कई पण्डित मारते रहे, परन्तु शास्त्रार्थ करने कोई न आया, घर बैठे ही दून की लेते रहे। हाँ, शङ्का-समाधान करने बहुतसे लोग आये, कुछ तो सच्चे जिज्ञासु भाव से और कुछ यों ही अपना और महाराज का समय नष्ट करने के लिये, परन्तु स्वामीजी ने उत्तर सब के प्रश्नों के दिये और अनेक लोगों का संशयोच्छेदन किया।

दस दिन में शङ्का मिटालो

आर्य्यसमाज की स्थापना

इन सारगर्भित उपदेशों का फल यह हुआ कि पौष कृष्णा ९ संवत् १९३७ अर्थात् २६ दिसम्बर सन् १८८० रविवार को आगरा नगर में आर्य्यसमाज स्थापित होगया।

तीन बालकों का यज्ञोपवीत

९ दिसम्बर को महाराज ने बजीरपुरे के ठाकुर श्यामलालसिंह के गृह पर पधार कर उनके तीन पुत्रों का विधिवत् उपनयन संस्कार कराया। इस संस्कार को देखने एक योरोपियन महिला भी आई थीं जो संभवतः रोमन-कैथोलिक मिशनरी थीं।

आगरे में रोमनकैथोलिक ईसाइयों का बड़ा भारी गिरजा है जिसका नाम सेंटपीटर्स

गिरजा दर्शन और बिशप से वार्तालाप

चर्च है। वह भारतवर्ष के गिरजाँओं में दर्शनीय समझा जाता है, और वहाँ बिशप (लाट पादरी) भी रहता है। बिशप साहब ने स्वामीजी के पास एक मनुष्य भेज कर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो महाराज १२ दिसम्बर को कतिपय सुप्रतिष्ठित सज्जनों के साथ उनसे मिलने गये। बिशप साहब महाराज से प्रेम और सम्मान-प्रदर्शनपूर्वक मिले और बहुत देर तक धर्म्मविषय पर बात-चीत करते रहे। बिशप महोदय से महाराज ने कहा कि यदि हम और आप तथा अन्य धर्मों के बुद्धिमान् नेता केवल उन बातों का प्रचार करें जिन्हें सब मानते हैं तो एकता स्थापित हो सकती है और फिर मुक़ाबिले पर नास्तिक ही रह जायेंगे। बिशप साहब ने कहा कि यह दुष्कर है, मुसलमान और ईसाई मांस खाना कभी न छोड़ेंगे, फिर कहा कि जिस प्रकार राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया बिना अपने प्रतिनिधि वायसराय के भारतवर्ष का शासन नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार परमेश्वर भी बिना प्रभु ईसा-मसीह के मनुष्यों के धार्मिक शासन और मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि जो उदाहरण आपने दिया है वह ठीक नहीं है, महारानी विक्टोरिया एकदेशी और अल्पज्ञ है, उनकी ईश्वर से क्या तुलना हो सकती है, परमेश्वर सर्वज्ञ सर्व-व्यापक और सर्व-शक्तिमान सत्ता है वह किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रखता। यदि यह भी माना जावे कि ईसा एक महात्मा पुरुष थे तो भी यह नहीं हो सकता कि परमेश्वर उनकी सिफ़ारिश से अन्याय करे और पापी को पाप का फल न दें, वह न्यायकारी है जो जैसा कर्म्म करेगा उसे वैसा फल अवश्य देगा।

बिशप साहब के प्रश्न करने पर महाराज ने कहा कि परमेश्वर ने अपने अनन्त ज्ञान से सृष्टि के आदि में ज्ञान वेदों के रूप में चार ऋषियों द्वारा दिया। बिशप साहब ने पूछा उनके प्रतिनिधि अब कौन हैं? महाराज ने कहा कि ब्राह्मण, उपनिषद्, षड्दर्शन के कर्त्ता तथा लाखों ऋषि मुनि उनके प्रतिनिधि हैं, परन्तु आप तो बतलाइये कि ईसा मसीह का प्रतिनिधि कौन है, तब बिशप साहब ने कहा कि पोप पृथ्वी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि है, जो भूल वा अपराध हम लोगों से होते हैं वह उनका संशोधन कर देते हैं। इस पर स्वामीजी ने कहा कि जो भूल वा अपराध पोप से होता है उसका संशोधन कौन करता है। इसका कोई सन्तोषप्रद उत्तर बिशप महोदय न दे सके। बिशप साहब ने वेदों के विषय में भी कुछ पूछा था जिसका युक्तियुक्त उत्तर महाराज ने देदिया था।

गिरजा बिना देखे वापस

बिशप महोदय से अनुमति लेकर स्वामीजी गिरजा देखने गये। वहाँ जो मनुष्य नियत था उसने कहा कि गिरजा के भीतर आप पगड़ी उतार कर जा सकते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हमारी रीति के अनुसार पगड़ी पहनना प्रतिष्ठा सूचक है, तुम कहो तो हम जूता उतार सकते हैं। उस मनुष्य ने कहा कि आप को पगड़ी और जूता दोनों उतारने चाहियें। इसे स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया और वह बरामदे में से ही गिरजा के भीतर रक्खी हुई मूर्त्तियों को देख कर चले आये।

एक दिन मौलवी तुफ़ैलअहमद ने जो नगर के कोतवाल थे, पुनर्जन्म पर यह आक्षेप किया कि इस सिद्धान्त से ईश्वर पर कई दोष आते हैं। परमेश्वर अन्यायकारी नहीं है कि

मुसलमान कोतवाल से धर्मालाप

जो जीवों को वार-वार जन्म धारण करा कर उनसे ऐसे पाप करावे कि एक जन्म में जो एक मनुष्य की पुत्री है वही दूसरे जन्म में उसकी स्त्री बने। इसका उत्तर महाराज ने यह दिया कि पिता और पुत्री का सम्बन्ध देह का है, जीव का नहीं, जीवों का आपस में कोई सम्बन्ध (नातेदारी) नहीं है। इस पर मौलवी साहब कुछ न बोल सके।

अग्नि शब्द के अर्थ परमेश्वर

एक दिन एक पादरी स्वामीजी के पास आये और बातों में यह भी कहा कि आप ने अपने वेद-भाष्य में अग्नि का अर्थ परमेश्वर किया है, वह नहीं बन सकता। स्वामीजी ने अग्नि शब्द का व्याकरण से अर्थ कर के उसे समझा दिया कि अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति से जिन २ गुणों का वह वाचक है वह गुण परमेश्वर में हैं, अतः अग्नि परमेश्वर का वाचक है। इस पर पादरी ने कोई आपत्ति न की। उन्होंने स्वामीजी से विदा होते समय कहा कि यदि आप कभी पहाड़ पर आवें तो मैं आप से बहुत सी बातें पूछना चाहता हूँ। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं पहाड़ पर विश्राम के लिए तो नहीं, प्रत्युत धार्म्मिक कार्य्य के लिए ही जा सकता हूँ। पादरी सम्भवतः मंसूरी वा नैनीताल का रहने वाला था।

दूसरी व्याख्यानमाला

२३ जनवरी सन १८८१ से स्वामीजी के व्याख्यानों का दूसरा प्रवाह चला और २९ जनवरी तक चलता रहा। इसमें उनके सात व्याख्यान हुए। इसके पश्चात् उनके प्रति रविवार को आर्य्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में व्याख्यान होते रहे। एक व्याख्यान २७ फरवरी को और एक ६ मार्च को हुआ था।

होली के दिनों में होली के हुल्लड़ के कारण एक वा दो व्याख्यान मुन्शी गिरधरलाल के गृह पर भी हुए थे।

मुन्शी इन्द्रमणि से बात-चीत

इन्हीं दिनों पाठकों के पूर्वपरिचित मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबादी आगरा आकर स्वामीजी से मिले और जीव के मुक्ति से वापस आने पर आपत्ति की। स्वामीजी ने उसके समाधान में कहा कि मुक्ति का नित्य होना असम्भव है और जीव का परमेश्वर में मिल जाना भी असम्भव है; जीव अल्पज्ञ है और परमेश्वर सर्वज्ञ। दोनों के गुण पृथक् हैं, अतः दोनों एक दूसरे में मिल कर एक नहीं हो सकते।

पूर्व परिचित पंडित से वार्त्तालाप

सेंट जॉन्स कालेज के पण्डित कालीदासजी और उनके मित्र पण्डित छेतूजी भी स्वामीजी से मिलने आया करते थे। यह महाराज के पूर्वपरिचित थे। जब स्वामीजी शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् आगरे में सेठ गुल्लामल के बाग़ में ठहरे थे तो यह उनसे मिलने जाया करते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि सन्ध्या तो तीन काल की है, आप दो काल की कैसे बताते हैं? महाराज ने उत्तर दिया कि प्रथम तो किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में त्रिकाल सन्ध्या का विधान नहीं पाया जाता; दूसरे, सन्ध्या के अर्थों से भी सिद्ध होता है कि दो ही काल करनी चाहिये। यदि मध्यान्ह की सन्ध्या मानी जावे तो फिर अर्द्ध रात्रि की चौथी भी माननी चाहिये और फिर प्रहर प्रहर, घड़ी-घड़ी की भी माननी उचित हैं; इस प्रकार तो कोई समय रहता ही नहीं, हर समय सन्ध्या ही करते रहना चाहिये।

सन्ध्या दो ही समय की है और यही ऋषि-मुनियों का सिद्धान्त है। एक दिन पंडित कालीदास ने स्वामीजी से वेदान्त विषय में भी बात-चीत की थी। स्वामीजी ने उन्हें एक प्रति संस्कारविधि की उपहार दी थी।

राधास्वामी साधु

एक दिन राधा-स्वामी मत के कुछ अनपढ़ साधु (स्त्री और पुरुष) जो पञ्जाब के रहने वाले थे स्वामीजी के पास आये और कहा कि गुरु की सहायता और उपदेश के बिना कोई मनुष्य संसार-सागर से पार नहीं हो सकता। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है, परन्तु जब तक शिष्य अपना आचरण ठीक न करे तब तक कुछ नहीं हो सकता। साधुओं ने प्रश्न किया कि ईश्वर के दर्शन किस प्रकार हो सकते हैं ? महाराज ने उत्तर दिया कि इस प्रकार नहीं हो सकते जिस प्रकार तुम लोग मूर्खता से करना चाहते हो। साधु फिर बोले कि ईश्वर तो भक्त के अधीन है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ईश्वर अधीन किसी के नहीं। उसकी भक्ति तो अवश्य करनी चाहिये, परन्तु यह तो पहले समझ लो कि भक्ति है क्या वस्तु ? जिस प्रकार से तुम लोग भक्ति करना चाहते हो, वह तो साम्प्रदायिक है, ऐसे २ तो बहुत से साम्प्रदाय लोगों को बिगाड़ने वाले हुए हैं, इनसे इस लोक वा परलोक का कोई लाभ नहीं है। बिना पुरुषार्थ किये कोई वस्तु अपने आप प्राप्त नहीं हो सकती। मूर्त्ति-पूजा का उल्लेख कर के साधुओं ने कहा हम और हिन्दुओं से अच्छे हैं। महाराज ने कहा कि नहीं, हिन्दू तो राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार ही मानते हैं, तुम तो गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हो।* साधुओं ने कहा कि वेद के पढ़ने में बहुत समय नष्ट होता है, परन्तु उससे भक्ति की उपलब्धि नहीं होती। महाराज ने कहा कि जो कुछ भी पुरुषार्थ नहीं करता और भिक्षा माँग कर पेट पालना चाहता है, उसके लिए वेद का पढ़ना कठिन है, फिर उसे भक्ति प्राप्त ही कैसे हो सकती है ?

मकान से निकाल देने का जनरव

एक दिन स्वामीजी से किसी ने आकर कह दिया कि नगर में ऐसी चर्चा है कि यतः आप सब मतों का खण्डन करते हैं, अतः मैजिस्ट्रेट ज़िला ने आप को मुन्शी गिरधरलाल के मकान से निकल जाने की आज्ञा दे दी है। स्वामीजी ने यह बात सुन कर मुन्शी गिरधरलाल से कहा कि यदि आप को कुछ भय हो तो हम अन्यत्र रहने का प्रबन्ध करलें। मुन्शीजी ने कहा कि प्रथम तो मैं किसी का नौकर नहीं, दूसरे आप कोई बात क़ानून वा सरकार के विरुद्ध नहीं कहते, अतः मुझे कोई भय नहीं है। यह जनरव सर्वथा निराधार था और ऐसा अनुमान है कि सेठ लोगों वा पादरियों ने फैलाया होगा, क्योंकि इस के थोड़े ही दिन पश्चात् सेठ लछमनदास मथुरा वाले के गुमाश्ते नारायणदास ने आकर मुन्शी गिरधरलाल से कहा कि आप ने दयानन्द को अपने मकान पर ठहरा रक्खा है और यह हमारे मत की निन्दा करते हैं आप इन्हें अपने मकान से निकाल दीजिये। नारायणदास को इस बात के कहने का साहस इस लिए हुआ कि सेठ लछमनदास मुंशीजी के

स्वामीजी को गृह से निकाल दो

* यह वास्तव में ठीक है, जो लोग गुरुडम के गर्त में पतित हो जाते हैं, उनकी विवेक-

मुवक्किल थे। नारायणदास ने समझा था कि मुन्शीजी इस भय से कि कहीं सेठजी रुष्ट होकर अपने मुक़द्दमों में उन्हें अपना वकील करना छोड़ दें और उन्हें आर्थिक क्षति पहुँचे स्वामीजी को अपने मकान में न रहने देंगे। परन्तु नारायणदास की यह दुराशा पूरी न हुई। उन्होंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि यदि किसी भले मानस के यहाँ कोई निम्न कोटि का मनुष्य भी ठहरा हुआ हो तो वह उससे ऐसा अशिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता और स्वामीजी तो एक महात्मा हैं, मैं ऐसा नीच कर्म्म कभी नहीं कर सकता।

स्वामीजी मथुरा चल कर शास्त्रार्थ करें

नारायणदास ने इस घटना के पश्चात् मुन्शी गिरधरलाल से यह भी कहा था कि स्वामीजी को मथुरा चल कर शास्त्रार्थ करना चाहिये। इस पर मुन्शीजी ने उत्तर दे दिया था कि वहाँ मध्यस्थ कौन होगा और प्रबन्ध कौन करेगा? अच्छा तो यह है कि जो कोई शास्त्रार्थ करना चाहे वह अपना वक्तव्य लिख कर स्वामीजी के पास भेज दे और स्वामीजी अपना लिखित उत्तर उसके पास भेज दें और इसी प्रकार लिखित उत्तर-प्रत्युत्तर होते रहें। अन्त में सब शास्त्रार्थ मुद्रित करा दिया जाय ताकि पण्डित लोग स्वयम् निर्णय करलें कि किसका कथन सत्य और किस का असत्य है।

कलकत्ते की सभा

इस के पश्चात् नारायणदास ने कलकत्ते जाकर एक सभा एकत्रित की जिस में बहुत से पौराणिक पण्डित इकट्ठे हुए और उन्होंने एकतरफ़ा व्यवस्था दे दी कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं वह वेदानुमोदित नहीं है। इस सभा का वृत्त निम्न प्रकार है:—

कलकत्ते की सभा।

मथुरा के सेठ नारायणदास ने विशेष उद्योग करके कलकत्ते के सेनेट हाल में २२-१-१८८१ को 'आर्य्य-सन्मार्ग-दर्शिनी' सभा के नाम से एक सभा बुलाई थी जिसमें भाटपाड़ा, नवद्वीप, काशी प्रभृति के पण्डितों को निमन्त्रित किया था। कहते हैं कि उसमें उन्होंने १००००) रुपया व्यय किया था और समागत पण्डितों को विदायगी भी दी थी। सेठ लछमनदास इस पर उनसे कुछ अप्रसन्न भी हुए थे कि इतना रुपया व्यर्थ में व्यय किया। इससे दोनों के मनों में कुछ अन्तर पड़ गया था और नारायणदास ने रङ्गजी के मन्दिर से अपना सम्बन्ध त्याग दिया था।

इस सभा के बुलाने का कारण सम्भवतः यह था कि जब स्वामीजी आगरे थे तो कुम्भकोणम् निवासी पण्डित रामसूबा शास्त्री उन्हीं दिनों वृन्दावन ठहरे हुए थे और स्वामीजी के विरुद्ध व्याख्यान दे रहे थे। नारायणदास ने आगरे जाकर स्वामीजी से कहा था कि वृन्दावन चल कर रामसूबा शास्त्री से शास्त्रार्थ कीजिये। स्वामीजी ने वृन्दावन जाकर शास्त्रार्थ करने में असम्मति प्रकट की। नारायणदास ने इसी बात से असन्तुष्ट होकर उक्त सभा द्वारा स्वामीजी के पक्ष को असिद्ध करना चाहा था।

शक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है। राधास्वामी मत के अनुयायी एक एम० ए०, एल-एल० बी० उपाधिधारी को हमने अपने कानों से यह कहते सुना है कि हमारा गुरु हमारा परमेश्वर है। (Our guru is our god.)

—संग्रहकर्त्ता.

पण्डित रामसूबा ने एक पुस्तक दयानन्द कण्टकोद्धारक नाम की स्वामीजी के विरुद्ध लिखी थी। उस समय वह पाण्डुलिपि के रूप में थी, मुद्रित नहीं हुई थी। उक्त सभा में वही पुस्तक सब को पढ़ कर सुनाई गई थी और सब पण्डितों ने, जिनकी संख्या ३०० बताई जाती है, एक मुख होकर उसे स्वीकार किया था।

इस सभा का वृत्तान्त २७-१-१८८१ के 'इंडियन मिरर' कलकत्ते में प्रकाशित हुआ था।

इस सभा के नेता पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न थे, जो कलकत्ता संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल और बङ्गाल के प्रमुख पण्डितों में थे। सभा में जिन प्रश्नों का उत्तर माँगा गया था और उनके जो उत्तर दिये गये थे वह निम्न प्रकार थेः—

प्रश्न १—ब्राह्मण भाग और संहिता भाग एक जैसे प्रामाणिक हैं वा नहीं ?

उत्तर—एक जैसे प्रामाणिक हैं।

प्रश्न २—विष्णु, शिव, दुर्गा आदि की मूर्त्ति की पूजा, श्राद्ध, तीर्थयात्रा और जात-कर्म्म आदि संस्कार शास्त्रोक्त हैं वा नहीं ?

उत्तर—हैं।

प्रश्न ३—'अग्निमीडे पुरोहितम्' आदि वेद मन्त्रों में 'अग्नि' शब्द ईश्वर के लिये है अथवा आग के लिये ?

उत्तर—आग के लिये।

प्रश्न ४—यज्ञ जल-वायु की शुद्धि के लिए किये जाते हैं अथवा स्वर्ग-प्राप्ति के लिये।

उत्तर—स्वर्ग-प्राप्ति के लिये।

आर्य्यसमाज की ओर से इन सब प्रश्नों का उत्तर युक्ति और प्रमाण द्वारा दिया गया था जो पण्डित लेखराम कृत जीवन-चरित में सविस्तर छपा है।

गोकरुणानिधि की रचना

स्वामीजी ने आगरे में 'गोकरुणानिधि' नामक पुस्तक रची थी और वह छप कर आगरे में ही स्वामीजी के पास आ गई थी, रामरतन नामक एक पुजारी ने उद्योग करके उसकी ६७) रुपये की प्रतियाँ बेची थीं।

स्त्रियों में व्याख्यान नहीं देंगे

एक बार स्वामीजी से प्रार्थना की गई कि एक व्याख्यान स्त्रियों में देने की कृपा कीजिये। पहले तो उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, परन्तु पीछे से कुछ सोच कर उन्होंने कहा कि हम स्त्रियों में व्याख्यान देना पसन्द नहीं करते। उनके पति आदि हमारा व्याख्यान सुन जावें और उन्हें जाकर बतला देवें।

मन्दिर के ट्रस्टी क्यों नहीं बन जाते

एक मन्दिर के स्वामी ने मुन्शी गिरधरलाल को उसकी सम्पत्ति का जो उसने मन्दिर को पुण्य करके दी थी, ट्रस्टी बनाना चाहा, परन्तु उन्होंने अस्वीकार किया। जब स्वामीजी से इसका जिक्र हुआ तो उन्होंने मुन्शीजी से कहा कि आप ने बुरा किया, यदि आप ट्रस्टी बन जाते तो उस सम्पत्ति से बहुत कुछ धर्म्मकार्य्य हो सकता था। मन्दिराध्यक्ष ने मुन्शीजी की अस्वीकृति होते हुए भी उन्हें ट्रस्टी बना ही दिया। जब पण्डित लेखरामजी

भविष्य-वाणी पूरी हुई

स्वामीजी की जीवनी सम्बन्धी घटनाओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते हुए मुंशी गिरधरलाल के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा था कि

स्वामीजी का यह कथन सत्य ही सिद्ध हुआ क्योंकि ट्रस्टियों ने मन्दिर की सम्पत्ति की आय से एक स्कूल स्थापित कर दिया, यदि वह ट्रस्टी न होते तो सब आय पण्डे पुजारियों के ही उदर में जाती।

एक दिन महाराज का व्याख्यान मुंशी गिरधरलाल के गृह पर गोरक्षा पर हुआ था। व्याख्यान के अन्त में गो-कृष्यादि-रक्षिणी सभा भी स्थापित हुई थी

गो-रक्षिणी सभा

जिसके मन्त्री मुन्शी गिरधरलाल वकील निर्वाचित हुए थे। उसी समय (११००) रु० उक्त सभा के लिए चन्दा एकत्रित हो गया था। चन्दा देने वालों में कई मुसलमान भी थे। इस व्याख्यान में महाराज ने गो-वध की हानियाँ दर्शाई थीं। गो-वध शब्द स्वामीजी के मुख से सुन कर एक ब्राह्मण बहुत बिगड़ा और कुवचन कहने लगा। जब उससे पूछा गया कि इतना क्यों बिगड़ते हो तो उसने कहा कि आपने गो-वध शब्द क्यों बोला। महाराज ने कहा ताकि लोग गोहत्या की हानियाँ जान कर गो-रक्षा करने लगें और गोहत्या छोड़ दें। वह फिर भी बकता ही रहा और सभा से चला गया।

एक दिन महाराज तकिये के सहारे बैठे हुए दर्शकों से सम्भाषण कर रहे थे कि इतने में अछनेरा निवासी पण्डित रघुनाथ आये और स्वामीजी से

द० शास्त्रार्थ में हार गया

अड़ कर बैठ गये। महाराज के दोनों ओर सामने दर्शक बैठे हुए थे। लोगों को पण्डित रघुनाथ का यह अशिष्ट व्यवहार बुरा लगा और उन्होंने उसका प्रतिवाद किया तो श्रीमान् महोदय ने मुखारविन्द से यों पुष्पवृष्टि की कि क्या हम स्वामीजी की अपेक्षा कम विद्वान् हैं? लोगों ने इन के इस प्रकार के वचन सुन कर समझ लिया कि उन्मत्तप्राय और उद्धत व्यक्ति हैं, उनके मुँह न लगना चाहिये। अतः वह चुप हो रहे। थोड़ी देर के पश्चात् पण्डितजी ने श्रीमहाराज से कहा कि मैं आप से शास्त्रार्थ करने आया हूँ। महाराज विनोदप्रिय तो थे ही, उन्होंने हँसते २ उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ करके क्या कीजियेगा, अपनी स्त्री

अपनी स्त्री से कह दो दयानन्द हार गया

से जाकर कह दीजिये कि मैं दयानन्द को परास्त करके आया हूँ। इतनी बात सुन कर रघुनाथप्रसाद वहाँ से उठ कर चले गये और एक वैश्य से उनकी घोड़ा गाड़ी माँगी और गले में फूलों की माला डाली और गाड़ी पर सवार होकर नगरभर के बाज़ारों में यह कहते फिरे कि मैं दयानन्द को परास्त करके आया हूँ।

एक दिन चन्द्रग्रहण पड़ रहा था, स्वामीजी चन्द्र-ग्रहण क्या है, और कैसे पड़ता है, इस विषय पर पीपल मण्डी में व्याख्यान दे रहे थे कि यही पण्डित

तुम नास्तिक से बात-चीत कर रहे हो

रघुनाथजी व्याख्यान में पधारे और गुल मचा कर श्रोताओं से कहने लगे कि देखो ग्रहण पड़ रहा है और तुम लोग इस नास्तिक की बातें सुन रहे हो, यह महापाप है। परन्तु श्रोताओं ने कुछ परवाह न की और दत्तचित्त होकर व्याख्यान सुनते रहे। थोड़ी देर बक-झक कर पण्डित रघुनाथप्रसाद महोदय अपना सा मुँह लेकर चले गये।

स्वामीजी आगरे में ही थे कि काशी-निवासी पण्डित चतुर्भुज जी अपने को पण्डितराज पौराणिक लिखा करते थे, आगरे आये। इन्होंने स्वामीजी के विरुद्ध बोलना एक प्रकार से अपना व्यवसाय बना रक्खा था। आर्य्यसमाज और दयानन्द को गाली देने से मूर्ख-मण्डली बहुत प्रसन्न होती थी और पण्डितजी की खूब भेट-पूजा करती थी।

चतुर्भुज पौराणिकराज

पण्डित चतुर्भुज ने पहला व्याख्यान ३० दिसम्बर सन् १८८० को बेलनगञ्ज में और दूसरा १ जनवरी सन् १८८१ को विक्टोरिया स्कूल में दिया, उनका अन्तिम व्याख्यान १५ जनवरी को हुआ। व्याख्यान की शैली वही हाथ नचा २ कर कथा बाँचने की थी। व्याख्यान क्या होते थे दुर्गन्ध की नाली होते थे, जिसमें स्वामीजी और आर्य्यसमाजियों के प्रति गालियों और अश्लील वाक्यों का प्रवाह बहता था जिससे सज्जन तो नाक पर रूमाल रखने पर विवश होते थे और दुर्जन मोरी के कीड़ों के समान प्रसन्न होते थे। पण्डितजी व्याख्यान के आरम्भ में ही उच्च स्वर से कह दिया करते थे कि यदि कोई आर्य्यसमाज का सभासद् उपस्थित हो तो वह चला जाय क्योंकि न हम उसे अपना व्याख्यान सुनाना चाहते हैं और न अपनी सूरत उसे दिखानी और न उसकी सूरत देखना चाहते हैं। इसमें भी एक रहस्य था क्योंकि यदि कोई आर्य्यसमाजी वहाँ हुआ तो वह पण्डितजी की अण्ड-बण्ड बातों पर टोके बिना न रहेगा और उनका अभिप्राय जो अज्ञ लोगों को झूठी सच्ची बातें बना कर अपने जाल में फँसाने का था सिद्ध न हो सकेगा। अतः वह कब चाह सकते थे कि कोई आर्य्यसमाजी उनके व्याख्यान में उपस्थित रहे। उनके व्याख्यानों का सारांश यही होता था कि दयानन्द ने अवतारों, देवताओं और पुराणों की निन्दा और मूर्त्तिपूजा का खण्डन करके ब्राह्मणों को बहुत हानि पहुँचाई है, जो इस प्रकार पुराणादि की निन्दा करता है वह साधु नहीं हो सकता और जो बस्ती में ठहरता है वह संन्यासी नहीं हो सकता, गोकुलिये गोसाइयों को सम्बोधित करके वह कहते थे कि यदि तुम लोग अपने को दयानन्द के आक्रमणों से बचाने का कुछ उपाय न करोगे तो तुम्हारी जीविका ही जाती रहेगी, अतः आप लोगों को दयानन्द पर न्यायालय में अभियोग चलाना चाहिये और अन्त में पण्डितजी के व्याख्यानों की तान इस पर टूटती थी कि हम सनातन धर्म्म की रक्षा के निमित्त घर छोड़ कर आये हैं और इतना व्यय और कष्ट सहन कर रहे हैं, अतः आप लोगों को हमारी धन से सहायता करनी चाहिये।

आगरे में पण्डितजी ने दो लीलाएँ रचीं। पहिली तो यह कि एक कायस्थ था जिसने स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर अपनी कण्ठी तोड़ डाली थी। उसे कोई पट्टन दे दिलाकर इस बात पर उद्यत किया कि वह यह घोषणा करदे कि मैं दयानन्द की बातों में आकर धर्म्म से पतित होगया था, अब मैंने पंडितराज के उपदेश से प्रायश्चित्त कर लिया है। एक दिन उस कायस्थ को बाजे-गाजे के साथ नगर में घुमवाया और उससे घोषणा कराई कि मैंने प्रायश्चित्त करलिया है। दूसरी लीला यह थी कि एक ब्राह्मण था जो एक आर्य्यसमाजी के यहाँ बच्चों को देवनागरी पढ़ाने पर ६। ७ रुपये पर नौकर था। उससे एक विज्ञापन दिल-

चतुर्भुज की दो लीलाएँ

वाया कि मैं आर्य्यसमाज आगरे का पण्डित हूँ और आर्य्यसमाज आगरे के अमुक २ सभासदों को पढ़ाता हूँ। अब तक मैं आर्य्यसमाज और दयानन्द के उपदेशों को बहुत अच्छा समझता था, परन्तु अब मुझे पण्डितराजजी के सदुपदेशों से ज्ञात हुआ है कि मैं धोखे में था और अधर्म करता था, अब मैं आर्य्यसमाज से अलग होता हूँ और आर्य्य-समाजियों से प्रार्थना करता हूँ कि वह होश में आयें और आर्य्यसमाज के जाल से अपने को बचायें, इत्यादि।

बहुत से लोग इस ब्राह्मण को जानते थे क्योंकि वह जीविकार्थ बाजारों में फटे हालों फिरा करता था। वह न आर्य्यसमाज का सभासद था और न उपदेशक। उपदेशक बनने की तो उसमें योग्यता ही न थी। लोगों पर पण्डितराज की इस लीला का उलटा ही प्रभाव पड़ा और अनेक लोग उनकी चाल को जान कर उनसे ग्लानि करने लगे। वह ब्राह्मण भी अपनी करतूत पर बहुत लज्जित हुआ और अन्त को आगरा छोड़ कर चला गया।

पण्डित युगलकिशोर आगरे के एक सुबोध पण्डित थे। वह स्वामीजी के व्याख्यानों से इतने आकृष्ट हुए थे कि उनके पास बहुधा आया करते थे और सत्सङ्ग में उपस्थित रहते थे। एक दिन वह भी पण्डितराज का व्याख्यान सुनने चले गये। जिस समय वह व्याख्यान-स्थल में पहुँचे पण्डितराज ने गृह्यसूत्र का यह वाक्य कि 'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेत' (ब्राह्मण के बालक का आठ वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार करो) पढ़ा, परन्तु इसके आगे का वाक्य 'अथ सर्वेषां गायत्री' उन्होंने न पढ़ा। इस पर पण्डित युगलकिशोर ने आक्षेप किया तो एक ब्राह्मण ने पण्डितराज से कहा कि महाराज यह बेलनगंज में सब को गायत्री मन्त्र देते हैं। पण्डित युगलकिशोर ने कहा कि हम शास्त्रानुकूल देते हैं, यदि शास्त्र-विरुद्ध देते हों तो बतलाओ। इस पर कई लोग उनसे कहने लगे कि तुम चतुर्भुजजी से बोलते हो! उन्होंने कहा तुम्हें चतुर्भुज दिखाई देते होंगे, हमें तो द्विभुज दीखते हैं और दो भुजाओं में से अब तो एक ही भुजा दीख रही है जिसे वह उछाल रहे हैं। इस पर पण्डितराज बोले कि मैं दयानन्दी से बात नहीं करता। पण्डित युगलकिशोर ने कहा कि मैं दयानन्दी नहीं, सत्या-वलम्बी हूँ। पण्डितराज बोले यदि शास्त्रार्थ करना हो तो घर पर आओ। पण्डित युगल-किशोर एक मित्र को साथ लेकर उनके घर पर पहुँचे तो पण्डितराज ने उन्हें और उनके मित्र को आध आध सेर पेड़े और एक एक रुपया देकर कहा कि कृपा करके आप अपने घर जायँ, मेरा माथा धमकता है। इस प्रकार पण्डितराज ने शास्त्रार्थ से जान बचाई।

जनसंख्यासम्बन्धी आदेश

महाराज को आर्यों की उन्नति और हित का सर्वदा ध्यान रहता था। स्वामीजी यह चाहते थे कि लोग अपने को हिन्दू न कह कर आर्य्य और वैदिक धर्मी कहें। क्योंकि उनकी दृष्टि में हिन्दू नाम विदेशियों का दिया हुआ और कलंकसूचक था। फ़ारसी में हिन्दू शब्द के अर्थ चोर, डाकू काला आदि हैं। अतः जब सन् १८८१ की जनसंख्या होने का उपक्रम हुआ तो उन्होंने ३१ दिसम्बर सन् १८८० को मास्टर दयाराम वर्मा, मन्त्री अर्य्यसमाज मुल्तान को नीचे लिखा पत्र भेजा था।

मास्टर दयारामजी! आनन्दित रहो,

विदित हो कि आपका पत्र आया, हाल मालूम हुआ, आपने जो नक़शा मर्दुम

शुमारी का लिखा सो उसकी खानापुरी इस प्रकार करो—

मजहब --फिरक़ेमजहबी	वैदिक
असल क़ौम	आर्य्य
जात या फिरका	ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य
गोत्र या शाख	जो अपना गोत्र हो

और जिसको अपना गोत्र याद न हो वह अपना काश्यप या पाराशर गोत्र लिखादे और यह सब समाजों को तथा पञ्जाब भर में इसी प्रकार से लिख भेजें और यहाँ सब प्रकार से आनन्द है।

स्वामीजी व्याख्यान तख्त पर बैठ कर दिया करते थे। व्याख्यान-समाप्ति पर तख्त से उतर कर नीचे बैठ जाते थे कि यदि किसी अन्य व्यक्ति को कुछ कहना हो तो वह तख्त पर बैठ कर कह सके।

दिनचर्या

स्वामीजी प्रातःकाल ३। ४ बजे के बीच में नगर से बाहर घूमने चले जाते थे और प्रातःकृत्य से निवृत्त होकर जब वापस आते थे तो दुग्ध पान करके वेद-भाष्य लिखाने बैठ जाते थे। फिर ११। १२ के बीच भोजन करते थे और तत्पश्चात् सायङ्काल दर्शकों से बात-चीत करते रहते थे।

मुन्शी बख्तावरसिंह की वैदिक-यन्त्रालय के हिसाब में गड़बड़

मुंशी बख्तावरसिंह वैदिक-यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता थे। उन्होंने यन्त्रालय के हिसाब में बहुत गड़बड़ की थी। उन्हें वैदिक-यन्त्रालय से सन् १८८० में अलग कर दिया था, यन्त्रालय के हिसाब के कागज देखने से स्वामीजी को इसका पता लगा तो उन्होंने लाला कालीचरण रईस फर्रुखाबाद को १० जनवरी सन् १८८१ के पत्र में आगरे से लिखा कि हमने अब वहां सब असल कागज और रजिस्टर बख्तावरसिंह के दस्तखती काशी से मंगा कर देखे, उनमें बहुत कुछ फर्क है। यही भली प्रकार से साबित होता है, इस लिए तुम को लिखते हैं कि यहां आकर आप भी देखें और बख्तावरसिंह को भी बुलालें और एक रजिस्ट्री चिट्ठी बख्तावरसिंह के पास भेज दो कि इस चिट्ठी के देखते ही आगरे में स्वामीजी के पास आकर हिसाब समझा दो और हम भी वहीं होंगे। स्वामीजी

स्वामीजी न्यायालय में जाना न चाहते थे

की हार्दिक इच्छा थी कि मामला आपस में निमट जावे इस लिए उन्होंने २२ फरवरी सन् १८८१ के पत्र में सेठ निर्भयराम रईस फर्रुखाबाद को लिखा कि प्रथम तो पञ्चायत में निमट जावे तो बहुत ही अच्छा है, दूसरे नहीं तो उस पर हिसाब-फहमी की नालिश और जो तब भी न माने तो फौजदारी वा दीवानी में दावा किया जावे और जो तुम इसका प्रबन्ध कुछ न करोगे तो ऐसी लूट मार से हमारे पास के पुस्तकादि भी कोई लूट लेगा फिर तो हम अपने समीप कुछ न रख सकेंगे और वेद-भाष्य आदि सब काम छोड़ देंगे केवल एक लंगोटी लगा आनन्द में विचरेंगे।

मैं चुप नहीं रह सकता

२५ फरवरी सन् १८८१ को मुंशी बख्तावरसिंह स्वामीजी के पास आगरा गये। स्वामीजी ने उनसे कहा कि मेरा निजी सम्बन्ध होता तो मैं चुप हो जाता, परन्तु यह दूसरों की परोपकारार्थ दी हुई सम्पत्ति का मामला है, मैं चुप नहीं रह सकता। मुन्शीजी आपस में निबटारा करने का

पंचायत में टालमटोल और फिर जाना

वचन देकर शाहजहांपुर लौट गये। शाहजहांपुर जाकर वह इक़रार-नामा पञ्चायत में लिखने से टालमटोल करते रहे। अन्त को बहुत कहने सुनने से वह मामला पञ्चायत के सुपुर्द करने पर राजी हुए, परन्तु इक़रारनामा पञ्चायत में लिख कर उससे भी फिर गया। तब सब जज शाहजहांपुर की अदालत में दावा दायर किया गया कि मुन्शी बख़्तावरसिंह को

दावा दायर किया गया परन्तु ख़ारिज होगया

हुक्म दिया जावे कि वह पञ्चों से फ़ैसला करावें। मुंशी बख़्तावर-सिंह ने जबावदही की। ९ फ़र्वरी सन् १८८२ को सब जज ने स्वामीजी का दावा ख़ारिज कर दिया। उसके पश्चात् हाईकोर्ट में निगरानी दायर करने की सम्मति हुई, परन्तु किन्हीं कारणों से निगरानी दायर की नहीं गई और न नम्बरी नालिश ही दायर की गई और इस प्रकार मुन्शी बख़्तावरसिंह वैदिक-यंत्रालय का बहुत सा रुपया हज़म करके बैठे गये।

स्वामीजी न्यायालय क्यों गये ?

समय की विचित्र गति है कि स्वामीजी न्यायालय में जाने के अत्यन्त विरुद्ध थे, परन्तु अनन्योपाय होकर उन्हें अदालत में जाना ही पड़ा। इस का एक मात्र कारण यह था कि वह यंत्रालय के धन को अपना नहीं, बल्कि पब्लिक का समझते थे और उन्हें यह सह्य न हुआ कि कोई पब्लिक का रुपया इस प्रकार खाकर बैठ जाय।

स्वामीजी की द्रुतगति

स्वामीजी बहुत जल्दी चलते थे। वह आगरे में जब प्रथम बार आकर सेठ गुल्ला-मल के बाग़ में ठहरे थे तो एक से अधिक बार आगरे से मथुरा १८ कोस तीन घण्टे में पहुँच गये थे।

बंगाली नास्तिक

एक दिन एक बङ्गाली जो नास्तिक था बड़े गर्व के साथ महाराज से ईश्वर-वाद पर प्रश्नोत्तर करने आया। उसे अपनी तर्कना-शक्ति पर बड़ा घमण्ड था, वह उन्हें अकाट्य समझता था। लोग भी उसे बड़ा तार्किक मानते थे। जब वह महाराज से वाग्-युद्ध में प्रवृत्त हुआ तो लोगों ने मन में कहा कि स्वामीजी के लिए उसे परास्त करना टेढ़ी खीर है। परन्तु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब तर्काभिमानी बङ्गाली दो चार उत्तरों के पश्चात् ही सब सिट्टी-पट्टी भूल गये, मुख में झाग आगये और मुंह से शब्दों का निकलना कठिन हो गया।

मैं शास्त्रार्थ नहीं करूंगा

पण्डित कालिदास को पण्डितों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए बहुतेरा उकसाया, परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मुझ में स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि मैं भी दण्डी विरजानन्द से कुछ दिन पढ़ा हूँ। उन्हीं दिनों दयानन्द भी दण्डीजी से पढ़ा करते थे। वह कभी कभी ऐसे तर्क उपस्थित करते थे कि, दंडीजी भी तत्क्षण उनका उत्तर न दे सकते थे और कह दिया करते थे कि उनका उत्तर कल देंगे। ऐसे तार्किक के साथ मैं शास्त्रार्थ कैसे कर सकता हूँ।

१० मार्च सन् १८८१ को आगरा से भरतपुर जाने के लिए स्वामीजी रेल पर सवार हो गये। विदा के समय आर्य्यसमाज आगरा ने उनकी सेवा में अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया जो उन्होंने हर्षपूर्वक ग्रहण किया।

आगरे से प्रस्थान करके महाराज फाल्गुन शुक्ला १० संवत् १९३७ अर्थात् १० मार्च सन् १८८१ को भरतपुर पधारे और रेलवे स्टेशन के समीप एक रईस के बाग़ में ठहरे। यहां कोई व्याख्यान नहीं हुआ।* जो लोग महाराज के दर्शनों को आते रहे उन्हें सदुपदेश करते रहे। भरतपुर में महाराज १० दिन टिके रहे। चैत्र कृष्णा ५ संवत् १९३० अर्थात् २० मार्च १८८१ को जयपुर चले गये।

भरतपुर

चैत्र कृष्णा ५ संवत् १९३७ अर्थात् २० मार्च सन् १८८१ को महाराज ने भरतपुर से आकर जयपुर में गङ्गापोल के बाहर मदनपुरे में अचरोल के ठाकुर के उद्यान में डेरा किया।

जयपुर

इस बार महाराज का केवल एक ही व्याख्यान अचरोल के ठाकुर की हवेली में हुआ। उसके अन्त में ठाकुर रघुनाथसिंह ने अद्वैत विषय पर एक प्रश्न किया जिसके उत्तर में महाराज ने दो घड़ी रात गये तक नवीन वेदान्त की विशद समालोचना करके प्रश्नकर्त्ता की सन्तुष्टि की। जिज्ञासु जन डेरे पर आते और अपनी जिज्ञासाओं का पूर्ण उत्तर पाकर लाभ उठाते रहे। इसी समय जयपुर में आर्य्यसमाज का बीज आरोपित हुआ। अङ्कुरित होने पर उसका नामकरण 'वैदिक धर्म्म-सभा' किया गया जो पीछे आकर आर्य्यसमाज नाम से विभूषित किया गया।

केवल एक व्याख्यान

आर्यसमाज का अंकुर

अजमेर में महाराज के आगमन से पहले ही १३ फ़रवरी सन् १८८१ को आर्य्य-समाज स्थापित हो गया था। ५ मई सन् १८८१ को महाराज जयपुर से अजमेर पधारे। उन्हें सेठ फ़तहमल के उद्यान-गृह में ठहराया गया। महाराज के आगमन से आर्य्यों के हृदय कमल विकसित हो गये। वैसे तो उनके आते ही नगर में उनके आने की धूम मच गई थी परन्तु लोगों ने यह उचित समझा कि महाराज के व्याख्यान-स्थल और समय की सूचना विज्ञापन द्वारा नगर-वासियों को दी जाय, अतः ७ मई को ही विज्ञापन वितरित कर दिया कि महाराज के व्याख्यान ८ मई सन्ध्या के सात बजे से ९ बजे तक सेठ गजमल की हवेली में हुआ करेंगे। यह ज्ञात होते ही सैकड़ों मनुष्य बड़े चाव से जैसे प्यासा कुएं की ओर दौड़ता है व्याख्यान सुनने जाने लगे। महाराज के व्याख्यान इतने सरस होते थे कि श्रोता उनमें तन्मय हो जाते थे। उन को समय की गति का भी ज्ञान नहीं रहता था। ९ बजते ही महाराज व्याख्यान समाप्त कर देते थे परन्तु लोगों की यही इच्छा बनी रहती थी कि व्याख्यान अभी कुछ देर और होता तो अच्छा था। उक्त स्थान पर ३० मई तक महाराज के २२ व्याख्यान हुए और चार रविवारों को चार व्याख्यान आर्य्यसमाज में हुए।

अजमेर

आगमन की सूचना

२६ व्याख्यान

---

* दयानन्द प्रकाश में लिखा है कि भरतपुर में स्वामीजी के दस व्याख्यान हुए। यह घटना के विरुद्ध है। —संग्रहकर्त्ता.

स्वामीजी और पण्डित लेखराम

वैदिक धर्म्म पर बलिदान होने वाले, अनेक ग्रन्थों के रचयिता और महाराज के जीवन-चरित-लेखक पण्डित लेखराम आर्य्य मुसाफिर उन दिनों पेशावर में थे। उन को महाराज के दर्शनों की बड़ी लालसा थी जो अब तक पूरी न हो सकी थी। दूरस्थ पेशावर से वह ११ मई को केवल महाराज के दर्शनों के लिए चले और पाँच दिन के पश्चात् १६ मई को रात्रि में अजमेर पहुँचे। रात तो उन्होंने ज्यों त्यों करके एक सराय में काटी। प्रातः होते ही वह महाराज की सेवा में पहुँचे और उनके मुखचन्द्र के दर्शन से अपने चक्षुचकोरों को तृप्त किया। जयपुर में एक बङ्गाली ने उनसे प्रश्न किया था कि जब आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है तो दो व्यापक इकट्ठे कैसे रह सकते हैं। इसका पण्डितजी से उत्तर न बन आया था। अतः महाराज के सम्मुख पहला प्रश्न उन्होंने यही रक्खा। महाराज ने अनायास ही सूक्ष्म और स्थूल वस्तुओं के उदाहरण देकर समझा दिया कि जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो सकती है। परमेश्वर आकाश से सूक्ष्म है अतः उसमें व्यापक है। फिर महाराज ने उनसे कहा कि जो शङ्काएं तुम्हारे मन में हों उन्हें निवृत्त कर लो। पण्डितजी ने बहुत सोच कर दस प्रश्न किये। और तो जीवन-चरित लिखते समय उन्हें भूल गये थे, निम्न लिखित प्रश्नोत्तर स्मरण रह गये थे।

शंकासमाधान

पण्डित—जीव ब्रह्म के पृथकत्व में वेद का कोई प्रमाण दीजिये।

स्वामीजी—यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय ~~का अध्याय~~ पृथकत्व का प्रतिपादक है।

पण्डित—अन्य धर्म्मावलम्बियों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं।

स्वामीजी—अवश्य शुद्ध करना चाहिये।

पण्डित—विद्युत् क्या पदार्थ है और कैसे उत्पन्न होती है?

स्वामीजी—विद्युत् हर जगह है, और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है। फिर महाराज ने पण्डितजी को आदेश किया कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना।

अपना कोई चिन्ह दीजिये

२४ मई को पंडितजी ने वापस जाने का विचार किया। वह महाराज की सेवा में गये और प्रार्थना की कि मुझे अपना कोई चिन्ह प्रदान करने की कृपा कीजिए तो महाराज ने अष्टाध्यायी की एक प्रति प्रदान की और वह महाराज के चरण स्पर्श करके पेशावर के लिए प्रस्थित हुए।

हिन्दू युवक ईसाई न हुआ

एक हिन्दू नवयुवक ईसाई मत की ओर झुका हुआ था, परन्तु उसके सौभाग्य से महाराज अजमेर पहुँच गये। उसे भी धर्म की जिज्ञासा थी। जो २ सन्देह हिन्दू धर्म्म के विषय में ईसाइयों ने उसके मन में उत्पन्न कर दिये थे उनकी निवृत्ति के लिए वह महाराज के पास आने लगा। कई दिन के निरन्तर शङ्का-समाधान के पश्चात् उसकी शान्ति हो गई और वह वैदिक धर्म्म का अनुयायी बन गया।

अजमेर का तो कोई व्यक्ति किसी मत वा सम्प्रदाय का, धर्म्मचर्चा करने के लिए

चतुर्भुज पौराणिकराज

महाराज के सम्मुखीन हुआ नहीं, हाँ पण्डित चतुर्भुज पौराणिक ने जिन से पाठक आगरे में परिचय प्राप्त कर चुके हैं किसी सेठ के गुमाश्ते को काशी से लिखा कि मुझे अजमेर बुलाओ, मैं स्वामीजी से शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त करूँगा। पण्डित भागमल जज महाराज के बड़े भक्त थे, वही उनके व्याख्यानों में प्रबन्ध स्थिर रखते थे और आदि से अन्त तक व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे। अतः पौराणिक पण्डित चतुर्भुज का पत्र लेकर पण्डित भागमल के पास गये और उनसे जाकर साभिमान कहा कि हम स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को पण्डित चतुर्भुज को बुलाते हैं आप स्वामीजी को सूचित कर दीजिये। पण्डित भागमल ने वह पत्र मन्त्री आर्यसमाज को दे दिया कि इसे महाराज को दिखा दीजिये। महाराज ने उसे देख कर कहा कि मैं तो सत्यासत्य का निर्णय करने को फिरता ही हूँ। पण्डित चतुर्भुज यदि यहाँ आवे तो उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ, परन्तु शास्त्रार्थ प्रबन्ध और नियमों के साथ होना चाहिये। इस पर पण्डित भागमल ने पौराणिक पण्डितों को बुला कर कह दिया कि तुम पण्डित चतुर्भुज को अवश्य बुला लो परन्तु शास्त्रार्थ के निम्न लिखित नियम रहेंगे।

शास्त्रार्थ के नियमः—

१—सभा का स्थान मेरी सम्मति के अनुसार होगा।

२—इस सभा में मैं प्रधान की रीति से सम्पूर्ण अधिकार रक्खूंगा जिस से दोनों पक्ष वालों के न्याय अन्याय पर ध्यान रहे।

३—शास्त्रार्थ लेख-बद्ध होगा।

४—शास्त्रीजी को प्रश्नोत्तर स्वामीजी के सम्मुख बैठ कर करने होंगे।

५—यदि कोई पुरुष मूर्खता वा किसी प्रकार से असभ्य भाषण करेगा तो वह तुरन्त सभा से निकाल दिया जायगा।

नियम सुन कर सब गर्व जाता रहा

जब पण्डित भागमल ने यह निमय पौराणिक पण्डितों को सुनाये तो उनका सारा अभिमान उड़ गया और वह विना किसी शब्द के कहे वापस चले गये। वास्तव में उनका अभिप्राय तो यह था कि सभा में धींगा-धांगी करके और हल्ला-गुल्ला मचा कर प्रसिद्ध कर देंगे कि स्वामीजी हार गये। परन्तु जब उन्होंने देखा कि शास्त्रार्थ का सब प्रबन्ध जज साहब के हाथ में रहेगा तो उनके असत्प्रयोजन के फलीभूत होने की कोई आशा न रही और उन्हें चुप होकर ही बैठना पड़ा।

स्वामीजी की मितव्ययता

महाराज मितव्ययता की ओर भी बहुत ध्यान रखते थे। अजमेर में मच्छर बहुत थे। उनके कष्ट से बचने के लिए एक दर्जी से महाराज ने मच्छरदानी सिलवाई थी। जब दर्जी उसे सीकर लाया तो महाराज ने उस की सिलाई पूछी। दर्जी ने छः आना मांगे। महाराज ने कहा, यह नहीं हो सकता कि तुम्हारी मजदूरी तो हो छः आना रोज़ और हमारे पण्डितों की हो आठ आना रोज। तुम्हारी मजदूरी अधिक से अधिक दो आना वा

तीन आना हो सकती है। परन्तु दर्ज़ी तीन आना लेने पर और स्वामीजी छः आना देने पर राज़ी न हुए। अन्त में दर्ज़ी की मज़दूरी के निर्णय करने का भार पण्डित भागमल जज पर रक्खा गया। परन्तु यह ज्ञात न हो सका कि जज ने क्या निर्णय किया।

पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता निरुत्तर

एक दिन पश्चिमी विज्ञान के एक पण्डित ने योग की सिद्धियों की सत्यता में शङ्का की। महाराज ने पहले तो युक्ति-प्रमाण द्वारा उनकी सत्यता निरूपित की और अन्त में यह कहा कि क्या आप समझते हैं कि हम इतना बड़ा कार्य्य योगसिद्धि के विना ही कर रहे हैं। इस पर वह शान्त हो गया।

सिर कटाने के लिये गर्दन झुका दी

एक बार महाराज ने मौलवी इमदादहुसैन से कहा था कि एक दिन मैं शौच करने बैठा हुआ था कि एक मनुष्य नङ्गी तलवार लिए मेरे पीछे आ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूं तब मेरा सिर काट डालना। इस पर वह राज़ी हो गया। जब मैं निवृत्त हो चुका तब मैंने अपनी गर्दन उसके आगे झुका दी। इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे ही मुझे छोड़ कर चला गया।

मसूदा

मसूदा के रईस ठाकुर बहादुरसिंह महाराज के अनन्य भक्त थे। उन्होंने जब सुना कि महाराज अजमेर में विराजमान हैं तो उसके दर्शनों की अभिलाषा उनके हृदय में जागृत हो गई और उन्होंने अपने एक कर्म्मचारी को निमन्त्रण पत्र देकर महाराज की सेवा में भेजा। महाराज ने अपने भक्त के अनुरोध की रक्षा की और अजमेर के कार्य्य से निवृत्त होने के पश्चात् मसूदा आने का वचन दिया।

आषाढ़ कृष्णा १२ संवत् १९३८ को महाराज ने अजमेर से पयान किया। नसीराबाद तक रेल में गये। वहाँ से ठाकुर साहब के रथ पर सवार होकर रात्रि के नौ बजे मसूदा जा पहुँचे। राव साहब ने उनके निवास के लिए रामबाग़ की बारहदरी को पहले से ही सुसज्जित कर रक्खा था और छोलदारी लगा कर चौकी-पहरे का प्रबन्ध कर दिया था। अतः महाराज ने वहीं निवास किया।

अगले ही दिन से महलों में व्याख्यान होने आरम्भ हो गये। और नगर के गण्यमान्य पुरुष महाराज की सेवा में प्रतिदिन उपस्थित होकर धर्म्मोपदेश सुनते रहे।

पादरी शूलब्रेड ने शास्त्रार्थ न किया

राव साहब ने ब्यावर उपनाम नयानगर से पादरी शूलब्रेड को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलाया। वह २८ जून सन् १८८१ को आये और एक देशी ईसाई बिहारीलाल को अपने साथ लाये।* महाराज ने उनसे ईसाई मत पर प्रश्न करने चाहे परन्तु पादरी साहब ने कहा कि मैं आप से शास्त्रार्थ करने नहीं आया प्रत्युत आप के व्याख्यान सुनने की अभिलाषा से आया हूँ। इस पर महाराज ने थोड़ी देर राजनीति विषय पर कुछ

* दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि जब पादरी साहब आये तो उनके बैठने को कुर्सी लाई गई और उसे फ़र्श पर रखा जाने लगा। इस पर स्वामीजी ने कहा कि फ़र्श उलट कर कुर्सी रक्खो। यह असभ्यता की बात है कि जिस फ़र्श पर अन्य लोग बैठे हैं उसी पर कोई जूता पहने कुर्सी पर बैठे। तब ऐसा ही किया गया। —संग्रहकर्त्ता.

कथन किया। व्याख्यान को संक्षिप्त इस लिए किया कि पादरी साहब ने कहा था कि मैं २० मिनट से अधिक नहीं ठहर सकता। तत्पश्चात् पादरी साहब ने स्वामीजी से पूछा कि पाप क्यों अधिक होता है। महाराज ने उत्तर दिया कि काम क्रोधादि के प्राबल्य से। पादरी साहब ने कहा कि मैं यह नहीं पूछता, मैं तो यह पूछता हूँ कि पाप कौन लोग अधिक करते हैं। महाराज ने कहा कि किरानी, कुरानी, पुराणी और जैनी, क्योंकि किरानियों के अनुसार रात्रि के पाप प्रातःकाल की प्रार्थना से और दिन के पाप सायङ्काल की प्रार्थना से दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार कुरानियों के अनुसार छोटे-छोटे पाप 'तौबह २' कहने से और बड़े पाप 'बिस्मिल्ला उर्रहमानुर्रहीम' कहने से नष्ट हो जाते हैं। पुराणियों के अनुसार।

पाप क्यों होता है

"अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति।
काश्यामेव कृतं पापं पञ्चक्रोश्यां विनश्यति" ॥

अर्थात्—अन्य स्थानों में किया हुआ पाप काशी में और काशी में किया हुआ पाप पञ्चक्रोशी में नष्ट हो जाता है और जैनियों के अनुसार तो 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' आदि मन्त्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। यह सुन कर पादरी साहब थोड़ी देर चुप रहे। फिर उन्होंने पूछा कि आप इन चारों में से कौन हैं तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैं इन में से कोई भी नहीं, मैं तो वैदिक धर्म्मानुयायी हूँ और वेदानुकूल ग्रन्थों को मानता हूँ। फिर पादरी साहब के पूछने पर कि वेदों में गोमेध और अश्वमेध (गौ वा अश्व को मार कर यज्ञ करना) है वा नहीं, तो महाराज ने उत्तर दिया कि नहीं है और चारों वेद उनके सम्मुख रख कर कहा कि यदि है तो इन में दिखा दीजिये। परन्तु पादरी साहब बोले कि मेरी पुस्तकें नयानगर में हैं। महाराज ने कहा कि किसी मनुष्य को भेज कर मँगवा लीजिये। परन्तु पादरी साहब ने कहा कि हमें अवकाश नहीं है।

बिहारीलाल देसी ईसाई ने महाराज से कहा कि आप राजाओं को ही उपदेश करते हैं, साधारण मनुष्यों को नहीं करते, यह कहाँ लिखा है? महाराज ने उत्तर दिया कि प्रथम तो मेरे व्याख्यानों में किसी को आने का निषेध नहीं है, फिर मैं तो हर जगह घूमता हूँ, सब आकर सुन सकते हैं। मैं यथाशक्ति राजा, प्रजा सब ही को उपदेश करता हूँ।

बिहारीलाल ईसाई

इसके पश्चात् दोनों पादरी चले गये।

५ जुलाई सन १८८१ को रावसाहब ने नगर के प्रतिष्ठित जैनियों को बुला कर कहा कि आप अपने किसी विद्वान् पण्डित को बुलाइये ताकि उनका स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराया जावे। इस पर जैनियों ने उत्तर दिया कि साधु सिद्धकरणजी अच्छे विद्वान् हैं और व्याकरण पठित हैं वह स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेंगे। वह आजकल सरवाड़ राज्य कृष्णगढ़ में हैं। राव साहब ने कहा कि सवारी ले जाओ और उन्हें लिवा लाओ। जैनियों ने उत्तर दिया कि वह सवारी पर नहीं चढ़ते। उनका चातुर्मास्य यहां ही होगा और आशा है वह कल यहां आजावेंगे। अगले दिन साधु सिद्धकरणजी आगये तो राव साहब ने महाराज

जैनियों से शास्त्रार्थ का प्रस्ताव

से कहा कि साधु सिद्धकरणजी से धर्म्म-चर्चा करनी चाहिये। महाराज ने इसे स्वीकार करते हुए कहा कि साधुजी से स्थान और समय नियत करा दीजिये। राव साहब ने कहा कि हम अपने कर्म्मचारियों को उनके पास भेज कर स्थान और समय का निर्णय करादेंगे परन्तु उस दिन वर्षा होने लगी और महाराज का स्थान जिस वाटिका में था उसके पास का सरोवर जल से भर गया और लोगों को महाराज के दर्शनों को आने जाने में कष्ट होने लगा अतः यह स्थिर हुआ कि वाटिका के दक्षिण में सोहन नगरी पहाड़ी पर जहाँ राव साहब ने एक बंगला बनवाया था महाराज निवास करें। तदनुसार महाराज वहाँ चले गये।

धर्म-चर्चा के लिये उद्यत हूँ

९ जुलाई को महाराज तो प्रातःकाल भ्रमण को जा रहे थे और साधु सिद्धकरणजी शौच से निवृत्त होकर नगर को आ रहे थे मार्ग में महाराज से उन की भेंट होगई और आपस में इस प्रकार बात-चीत होने लगी।

स्वामीजी और जैन साधु की भेंट

साधु—आपका क्या नाम है और कहां से पधारना हुआ?

स्वामीजी—मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है और अजमेर से आया हूँ। आपका क्या नाम है और कहां से आना हुआ?

साधु—मेरा नाम सिद्धकरण है और मरवाड़ राज्य किशनगढ़ से आया हूँ और चार मास यहीं रहूँगा।

स्वामीजी—आप यहां कहां पर ठहरे हैं?

साधु—एक उपासरे में।

स्वामीजी—क्या आप ही को जैनियों ने बुलाया है?

साधु—हां! मुझ ही को बुलाया है। आपका पेट तो बहुत मोटा है। क्या इस में ज्ञान भरा है? आप लोग तवा बांध लीजिए, नहीं तो फट जायगा। आपको ज्ञान-अजीर्ण होरहा है।

महाराज ने इन असभ्य शब्दों का कोई उत्तर न देकर साधुजी से पूछा कि क्या आप धर्म्म-चर्चा करने पर सन्नद्ध हैं, तो साधुजी ने उत्तर दिया कि हां उद्यत हूँ यदि आप मेरे स्थान पर आवें। स्वामीजी ने कहा कि क्या साधुओं का भी स्थान होता है तो साधुजी ने कहा कि मेरा स्थान तो नहीं है, परन्तु नगर के जैनियों ने साधुओं के लिये बना रक्खा है।

मैं भी धर्म-चर्चा पर उद्यत हूँ

राव साहब अपने महल की छत पर दूरवीक्षण यंत्र (Opera glasses) से देखा करते थे कि महाराज भ्रमणार्थ कहां जाया करते हैं। उन्होंने देखा कि कोई मनुष्य महाराज से बातें कर रहा है। वह चट घोड़े पर सवार होकर साधुजी और महाराज के निकट जा पहुँचे।

राव साहब भी आ पहुँचे

स्वामीजी ने साधुजी से यह प्रश्न किया था कि आप मुख पर पट्टी क्यों बांधते हो और गर्म जल क्यों पीते हो? साधुजी ने उत्तर में कहा था कि यदि आप भी मुख पर पट्टी बांध लें तो मैं इसका उत्तर दूं। इस पर वाद-प्रतिवाद हो रहा था कि राव साहब आ पहुँचे। राव साहब को देख

मुख पर पट्टी क्यों बांधते हो?

कर साधुजी चलने लगे। राव साहब ने साधुजी से कहा कि प्रश्नोत्तर कीजिए, क्यों जाते हैं? परन्तु साधुजी नहीं रुके और चले ही गये।

जैन साधु को शास्त्रार्थ का आह्वान

तत्पश्चात् रावसाहब ने नगर के पाँच प्रतिष्ठित जैनियों, राजमन्त्री, ज्योतिषी, कोठारी को साधुजी के पास भेजा और पूछा कि यदि आप की इच्छा धर्म्म-चर्चा की हो तो स्थान और समय नियत कर दीजिए। साधुजी ने उत्तर दिया कि यदि स्वामीजी अपने मुख पर पट्टी बांध कर प्रश्नोत्तर करेंगे तो मैं धर्म-चर्चा के लिए उद्यत हूँ। जब यह वृतान्त स्वामीजी से कहा गया तो उन्होंने कोठारी चान्दमल को पुनः साधुजी के पास भेज कर कहलाया कि शास्त्रार्थ में जो पराजित होगा उसे विजेता का धर्म्म स्वीकार करना होगा अर्थात् यदि स्वामीजी पराजित हो जायंगे तो वह अवश्य मुख पर पट्टी बांध लेंगे और यदि साधुजी परास्त होंगे तो उन्हें अपने मुख की पट्टी तोड़नी पड़ेगी। साधुजी को धर्म्म-चर्चा अवश्य करनी चाहिये ताकि सत्यासत्य का निर्णय हो जावे। उन्हें ऐसी हठ न करनी चाहिये। परन्तु साधुजी ने अपनी हठ न छोड़ी और यही उत्तर दिया कि मुख पर पट्टी बांधे बिना हमारे सूत्रों में प्रश्नोत्तर करना नहीं लिखा है।

पट्टी

जब यह बात कोठारी चांदमल ने महाराज से आकर कही तो उन्होंने कोठारीजी को फिर साधुजी के पास भेजा कि उन से पूछ कर आओ कि मुख पर पट्टी बांधे बिना प्रश्नोत्तर न करना उनके किस सूत्र में लिखा है। परन्तु साधुजी ने इसका कोई उत्तर न दिया।

तीन प्रश्न

२३ जुलाई सन् १८८१ अर्थात् श्रावण कृष्णा २ सं० १९४० को महाराज ने निम्न लिखित तीन प्रश्न साधुजी के पास भेजे कि उनका उत्तर दें क्योंकि जब वह मौखिक शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते तो लिखित ही करलें। स्वामीजी के लेख का सारांश नीचे दिया जाता है।

प्रश्न नं० १—मुख पर पट्टी क्यों बांधते हो?

प्रश्न नं० २—उष्ण जल क्यों पीते हो।

प्रश्न नं० ३—जल की एक बूँद में, जिसका अन्त है अनन्त जीव कैसे बतलाते हो?

प्रश्नों के साथ ही उनके क्या उत्तर साधुजी देंगे उन्हें उठा कर उनका भी निराकरण किया गया था।

अपनी ही ओर से उत्तर प्रत्युत्तर

प्रश्न १ के उत्तर में यदि यह कहा जाय कि पट्टी बांधने से जीव कम मरेंगे तो यह ठीक नहीं क्योंकि जीव अमर है। (२) यदि कहो कि ऐसा करने से जीवों को कष्ट कम होगा सो यह भी नहीं बनता क्योंकि मुख पर पट्टी बाँधने से मुख के भीतर का वायु अधिक उष्ण होकर उन्हें अधिक कष्ट पहुँचावेगा। जैसे गृहद्वार बन्द करने से अन्दर का वायु अधिक गर्म हो जाता है। (३) मुख का उष्ण वायु रुक कर नासिका द्वारा अधिक वेग से बाहर निकलेगा और इससे जीवों को अधिक पीड़ा होगी। नलकी द्वारा फूंक लगाने से वायु अधिक वेग से बाहर निकलता है। (४) उच्चारण में भी दोष आता है, निरनुनासिक अक्षर सानुनासिक होजाते हैं। (५) अन्दर का वायु अधिक दुर्गन्धयुक्त हो जाता

है। मुख पर पट्टी बाँधने और मुख-प्रक्षालन न करने, दन्तधावन और स्नान कम करने से दुर्गन्ध अधिक बढ़ती है और उससे रोग की उत्पत्ति होती है जिस से बुद्धि और पुरुषार्थ नष्ट होते हैं। अतः दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक पापी होता है।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में—ठंडे जलको गर्म करने में जीव रँध कर जल में घुल जाते हैं, अतः गर्म जल से जीव अधिक कष्ट पाते हैं। यदि तुम कहो कि हम जल स्वयं गर्म नहीं करते, दूसरे गर्म करते हैं, अतः हम पापी नहीं। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यदि आप गर्म जल न पीवें तो वह जल क्यों गर्म करते? फिर जल गर्म करने के लिए अग्नि जलाने और उस से भाप उड़ने में जीव मरते हैं।

तीसरे प्रश्न के सम्बन्ध में। कुण्ड चाहे पैसा बराबर बड़ा हो वा अधिक, उसका अन्त होता है, फिर उस में अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं। यह सर्वथा बुद्धि के विरुद्ध है।

जब यह प्रश्न लेकर महाराज की ओर के पुरुष साधुजी की सेवा में पहुँचे तो वह स्त्री पुरुषों को उपदेश कर रहे थे। उपदेश की समाप्ति पर प्रश्न पढ़कर सब को सुना दिये गये, साधुजी से उनका उत्तर माँगा। साधुजी ने फिर वही बात कही कि यदि आप लोग मुख पर पट्टी बाँधें तो मैं उत्तर दूं। उन पुरुषों ने कहा हम ऐसा करने को पाप समझते हैं, यदि आप पट्टी बाँधना सिद्ध कर देंगे तो हम मुख पर पट्टी बाँध लेंगें। साधुजी ने कहा कि मैं उत्तर नहीं दे सकता और उठकर अन्दर चले गये।

साधु प्रश्न-पत्र पाकर अन्दर चले गये

साधु के उत्तर

१६ जुलाई को साधुजी ने महाराज के प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार दिया :—

प्रश्न—मुँह बाँधने में क्या धर्म्म है, हमें तो पाप जान पड़ता है इत्यादि।

उत्तर—(सारांश) यदि किसी घर में अग्नि जलाई जावे तो जो शीतल वायु बाहर से भीतर जायगी उसके जीव अन्दर की उष्ण वायु के संयोग से मर जायंगे, परन्तु यदि द्वार बंद कर दिया जावे वा हाथ वा कपड़े की ओट करदी जावे तो अग्नि का तेज मन्द हो जावेगा और उष्णता के कारण जीव न मरेंगे। जीव अजर, अमर है, परन्तु वायु जीव का शरीर है, बिना शरीर के जीव नहीं रह सकता। खुले मुख रहने में बोलते समय थूक उड़ता है और मुँह की दुर्गन्ध भी दूसरे तक पहुँचती है, अतः बड़े मनुष्यों से बातें करते समय लोग मुँह के पल्ला लगा लेते हैं। आप भी जब खुले मुँह वेद को बाँचते होंगे तो क्या आप का थूक उसपर न गिरता होगा और आप के श्वास की दुर्गन्ध उस तक न पहुँचती होगी।

प्रत्युत्तर

महाराज ने इसका तुरन्त ही प्रत्युत्तर भेज दिया जिसका सारांश यह है:—

बाहर का वायु ही सब प्राणियों का जीवन हेतु है और विना उसके अग्नि भी नहीं जल सकती। ओट करने से यह दूसरे मार्ग से अति वेग से निकल कर प्राणियों से संयुक्त होगा और प्राणी कष्ट पाएंगे और ओट करने से तो उष्णता बढ़ेगी, घटेगी नहीं। यदि चारों ओर से खुला होगा तो शीघ्र ठण्डी हो जायगी। यदि किसी बरतन में जल गर्म किया जाय और उसे बिल्कुल बन्द कर दिया जाय तो भाप बड़े जोर से निकल कर बरतन को तोड़ डालेगी। ऐसे ही उसे आधा वा चौथाई बन्द करने से गर्मी अधिक बढ़ती है।

यदि अग्नि से ही जीव मरते हैं तो विद्युत् रूप अग्नि से जो सर्वत्र फैली हुई है जीव क्यों नहीं मरजाते ? आप जीवों को अजर अमर भी मानते हैं और फिर उनका मरना भी मानते हैं। बड़े मनुष्यों से बातें करते समय मुँह पर पल्ला लगाने का वह प्रयोजन नहीं जो आप लिखते हैं। उसका प्रयोजन यह है कि बहुधा उनसे ऐसी बातें करनी होती हैं जिन्हें गुप्त रखना अभीष्ट होता है अतः मुख पर पल्ला इसलिए लगाते हैं कि शब्द फैले नहीं और उसे दूसरे न सुन सकें तथा यह भी कि खुले मुख बातें करने से शब्द फैलकर ठीक ठीक सुनाई भी न देगा। यदि आप का हेतु ठीक है तो फिर केवल बड़े मनुष्यों से बातें करते समय ही आप को मुख पर पल्ला लगाना चाहिए, छोटे मनुष्यों के सन्मुख मुँह पर पट्टी क्यों बाँधे रहते हो तथा अपने शिष्यों के सन्मुख भी ऐसा क्यों करते हो ? फिर बड़े मनुष्य भी क्यों पल्ला लगाकर बातें नहीं करते ? क्या उनका थूक छोटे मनुष्यों पर पड़ता वा उनतक श्वास की दुर्गन्धि पहुँचना अच्छा समझते हो ? क्या बड़े मनुष्यों के मुँह में कस्तूरी घुली होती है ? हम काग़ज़ स्याही को वेद नहीं समझते। वह तो जड़ वस्तु है जिन्हें सुगन्ध-दुर्गन्ध, आर्द्र-शुष्क का कुछ ज्ञान नहीं। हम तो शब्दार्थ-सम्बन्ध को वेद समझते हैं। क्या जैनियों के धर्म्म पुस्तक बनाने वालों ने उन्हें मुख पर पट्टी बांधकर लिखा था ? हम तो वेदों का खुले मुख से उच्चारण करना उत्तम समझते हैं क्योंकि इससे उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध होता है और मुख पर पट्टी बाँधने से अस्पष्ट और अशुद्ध, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं। जब आप से नगर के बाहर भेंट हुई थी तब तो आपने हम से निःसंकोच बातें कीं थीं, यद्यपि हम मुँह पर पट्टी वा पल्ला नहीं लगाये हुए थे। फिर शास्त्रार्थ करने में आपने यह अड़चन क्यों लगाई कि जब तक हम मुख पर पट्टी न बाँधेंगे तब तक आप हम से शास्त्र-विचार न करेंगे।

पाठकों ने यह देख लिया होगा कि साधुजी ने महाराज के केवल पहले प्रश्न का कि मुख पर पट्टी क्यों बाँधी जाती है उत्तर देने का यत्न किया था, शेष दो प्रश्नों के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा था अतः महाराज ने अपने प्रत्युत्तर में उन प्रश्नों का उल्लेख नहीं किया।

हम से उत्तर नहीं बन आता

जब महाराज के प्रत्युत्तर को लेकर कुछ सज्जन साधुजी के पास गये तो उसे सुनकर वह बहुत घबराये और जब लोगों ने साधुजी से उत्तर देने पर आग्रह किया तो पहले तो वह चुप रहे, परन्तु अन्त में उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हमारे से तो उत्तर कोई नहीं बन आता, आप तो साधु हैं।

यह बात सुनकर लोगों ने कहा कि जब साधुजी ने अपने मुख से हार मानली तो अब विशेष कहना उचित नहीं है और सब लोग लौट आये। इस प्रकार धर्म्म-चर्चा की यह चर्चा समाप्त हुई।

किले में व्याख्यान

आषाढ़ शुक्ला १५ से महाराज के व्याख्यानों का किले में प्रबन्ध किया गया। जिस दिन व्याख्यान होने को होता था उस से पहले दिन डौंडी द्वारा उस की सूचना नगर के निवासियों को देदी जाती थी। प्रतिदिन ४००, ५०० मनुष्य महाराज के अपूर्व व्याख्यान को श्रद्धा और प्रेम पूर्वक

सुन कर ज्ञान और धर्म्म उपार्जन करते थे। राव साहब भी व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे। आषाढ़ शुक्ला १५ से श्रावण शु० १५ तक २२ व्याख्यान हुए जिन्हें सुन कर लोग परम सन्तुष्ट हुए और महाराज को शतशः धन्यवाद दिये। अस्सी २ नव्वे २ वर्ष के वृद्ध कहते थे कि ऐसा ज्ञानी पण्डित और महात्मा कभी नहीं देखा था। महाराज के व्याख्यानों में एक अद्भुत बात यह थी कि श्रोताओं के मन में जो शङ्काएं उठती थीं महाराज उन्हें स्वयं ही उठा कर उन का निराकरण कर देते थे।

जैनियों का वैदिक धर्म में प्रवेश

साधु सिद्धकरणजी के शास्त्रार्थ और महाराज के व्याख्यानों का यह प्रभाव हुआ कि अनेक हिन्दू और जैनी वैदिक धर्म्म की ओर आकृष्ट हो गये और उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि हमें यज्ञोपवीत धारण कराइये। तदनुसार महाराज ने राव साहब से एक बृहद्-यज्ञ का आयोजन करने के लिये कहा जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। मसूदा और अजमेर से हवन-सामग्री एकत्रित की गई, चाँदी के चमसे बनवाये, घृत और समिधा मँगाई गई, मोहन नगरी पर ही सुन्दर यज्ञशाला बनवाई गई, उसे पुष्प-पत्र से सजाया गया। एक ओर तख्त पर महाराज का आसन लगा, उनके सामने राव साहब बैठे। पहली आहुति राव साहब ने दी, तत्पश्चात् चार अन्य होताओं ने आहुती देनी आरम्भ की। दो घण्टे तक हवन हुआ फिर महाराज ने ३२ मनुष्यों को स्वयं अपने कर कमलों से यज्ञोपवीत धारण कराया उनमें आधे से अधिक जैनी थे। राव साहब के कोठारी चाँदमलजी जो जैनी थे स्वयं यज्ञोपवीत लेने वालों में थे। यज्ञ-भूमि में ५०० के लगभग दर्शक थे। सब के सब यज्ञ को देख कर कह रहे थे कि ऐसा यज्ञ हमने कभी नहीं देखा था और न वेद मन्त्रों का ऐसा सुन्दर, मधुर उच्चारण सुना था।

उस दिन कुछ मनुष्य यज्ञोपवीत लेने से रह गये थे, अतः भाद्र कृष्णा ५ को दूसरा यज्ञ हुआ और महाराज ने १६ मनुष्यों को यज्ञोपवीत दिये। उन में भी जैनियों की संख्या अधिक थी।

एक लज्जास्पद प्रथा

मसूदा में मुसलमान बादशाहों के राज्य में कुछ हिन्दू मुसलमान होगये थे, परन्तु उनकी जाति के हिन्दू उन से अपनी पुत्रियों का विवाह करते आते थे। महाराज को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने हिन्दुओं को बुला कर समझाया कि ऐसा अनर्थ क्यों करते हो और विधर्मियों से सम्बन्ध क्यों करते हो। महाराज के सदुपदेश से उन्होंने आगे को ऐसा न करने का प्रण किया और यह अनिष्टकर प्रथा बन्द होगई, महाराज ने असंख्य हिन्दू स्त्रियों को विधर्मी होने से बचा लिया। संसार भर में यदि कोई जाति अपना अनिष्ट आप करने वाली है तो वह हिन्दू जाति है। जिन हिन्दुओं में उपर्युक्त घातक व्यवहार था उनमें लज्जा और स्वसम्मान का भाव सर्वथा नष्ट हो गया था, धर्म्माधर्म्म के विचार नाम तक को न रहे थे। हिन्दु धर्म्माध्यक्षों ने कोई चेष्टा न की कि इस कुप्रथा को रोकें। इस से अधिक सर्वनाश के लक्षण और क्या हो सकते हैं ?

श्रावण शुक्ला ४ सं० १९४० अर्थात् ३० जुलाई सन् १८८१ को पूर्वोक्त बाबू बिहारीलाल ईसाई पुनः महाराज से मिलने आये। थोड़ी देर बातचीत होने के पश्चात् धर्म्म-विषय

बिहारीलाल ईसाई फिर आये

में वार्त्तालाप होने लगा। इस पर राव साहब ने उनसे कहा कि आप पादरी शूलब्रेड के शिष्य हैं और मैं स्वामीजी महाराज का, आज मेरा और आपका संवाद होगा। इसे बिहारीलाल ने स्वीकार किया। राव साहब ने उनसे प्रश्न किया कि बाइबल में लिखा है कि ईसा मसीह ने एकबार उपदेश में कहा कि यदि आप लोगों में राई बराबर विश्वास होवे तो इस पहाड़ को चलायमान कर सकते हो अतः यदि आप का विश्वास पूरा है तो इस (सोहन नगरी) पहाड़ को अपनी जगह से हटादो। पादरी साहब कुछ उत्तर न देसके और अन्त में उन्होंने यह कह कर पीछा छुड़ाया कि इसका उत्तर मैं अब नहीं दे सकता, पादरी शूलब्रेड से पूछ कर उत्तर दूँगा।

वैदिक धर्मी शिष्य का ईसाई शिष्य से शास्त्रार्थ

रियासत रायपुर से महाराज के बुलाने को दो पत्र आचुके थे, परन्तु राव साहब का प्रेम उन्हें मसूदा से जाने नहीं देता था। जब वहाँ से तीसरा पत्र आया तो महाराज ने राव साहब से कहा कि मुझे रायपुर जाना आवश्यक है आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक विदा कीजिये। रावसाहब ने कहा कि मेरी तो प्रार्थना यह थी कि आप यहीं विराजते और यहीं से वेदभाष्य की सहायता का प्रबन्ध कर दिया जाता। महाराज ने इसका उत्तर दिया कि आप क्षत्रिय हैं, आपका धर्म्म और नीति ऐसी ही होनी चाहिये, परन्तु मैं साधु,हूँ मेरा एक स्थान पर रहना उचित नहीं है, मेरा काम सब स्थानों में घूम कर उपदेश करना है। भाद्र कृष्णा ९ का दिन महाराज के प्रस्थान के लिये स्थिर किया गया। उस दिन महाराज का अन्तिम व्याख्यान राजा-प्रजा धर्म पर क़िले के भीतर हुआ। अन्त में राव साहब ने धन्यवाद पत्र महाराज के अर्पण किया और दोनों ने एक दूसर के गले में पुष्पमाला पहनाई। राव साहब ने ४००) वेदभाष्य की सहायता में दिये। १०) रामानन्द ब्रह्मचारी को ५) महाराज के कहार को दिये। इसके पश्चात् महाराज बग्घी पर सवार हुए। राजमन्त्री, राज्य के सर्दार, कर्म्मचारी और नगर के लगभग ४०० मनुष्य आध कोस तक उनके साथ गये, परन्तु महाराज ने उन्हें उपदेश कर लौटा दिया। राव साहब महाराज के साथ ५ मील गये।

सम्मान-प्रदर्शन

रामपुर

भाद्रपद कृष्णा ९ संवत् १९३८ अर्थात् १८-८-१८८१ को दोपहर के पश्चात् ३ बजे महाराज ने मसूदा से प्रस्थान किया और ७ बजे ब्यावर पहुँच कर रेलवे स्टेशन के पास की सराय में डेरा किया, जहाँ ब्यावर के प्रतिष्ठित पुरुषों ने जिन में बाबू बिहारीलाल ईसाई भी थे उनके विश्राम का सब प्रबन्ध कर दिया। ब्यावर वालों ने महाराज से प्रार्थना की कि कुछ दिन ब्यावर रह कर उपदेश देने की कृपा करें, परन्तु महाराज ने कहा कि इस समय मैं रायपुर जा रहा हूँ वहाँ से लौटते समय ब्यावर ठहरूँगा। रात्रि के १० बजे रेल में सवार होकर ३ बजे हरीपुर स्टेशन पर जो रायपुर से दो मील के अन्तर पर है उतरे। रात्रि अँधेरी थी, कुछ २ बूंदें पड़ रही थीं। और गाड़ी प्लेटफ़ार्म से कुछ दूर खड़ी हुई थी। गाड़ी से उतरते समय महाराज का पाँव एक पत्थर पर पड़ा जो पाँव के रखने से लुढ़क गया और महाराज गिर

स्वामीजी के चोट आ गई

पड़े। हाथ की हथेली में कंकड़ घुस गये, परन्तु परमात्मा की कृपा से अधिक चोट न आई। महाराज तुरन्त उठ खड़े हुए और जिस डब्बे में उनके साथी बैठे हुए थे और असबाब रक्खा हुआ था उस पर पहुँच कर साथियों को उतारा और असबाब उठा कर सड़क पर रखवा दिया। राव हरिसिंह रायपुराधीश ने महाराज के लिये एक रथ और दो गाड़ियाँ स्टेशन पर भेज दी थीं परन्तु उनके हाँकने वाले ऐसे बेसुध होकर सोये कि बहुत पुकारने पर भी उनका पता न लगा। रेल के कर्म्मचारियों ने महाराज को कष्ट में देख कर उनके लिए एक कमरा खोल दिया और बड़ा आदर-सत्कार किया। उसमें महाराज और उनके साथी सुखपूर्वक सोये। प्रातःकाल रथ और गाड़ी वालों का पता लगा और महाराज रथ पर सवार होकर और गाड़ियों में असबाब लदवा कर ८ बजे रायपुर पहुँचे और माधोदास की वाटिका के पास के महल में ठहरे।

रायपुराधीश के आदर्श नौकर

जब ठाकुर हरिसिंह को महाराज के आने का समाचार विदित हुआ तो वह बन्धु-वर्ग और राजकर्म्मचारियों सहित महाराज से मिलने आये और एक स्वर्णमुद्रा और पाँच रुपये भेंट किये। कुशल-प्रश्न के पश्चात् सब लोग यथास्थान बैठ गये। तब महाराज ने ठाकुर साहब से प्रश्न किया कि आप के यहाँ राज-मन्त्री कौन हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि शेख़ इलाही बख़्श हैं, परन्तु वह जोधपुर गये हैं उनके पीछे उनके भतीजे करीम बख़्श (जो वहाँ उपस्थित थे) सब काम देखते हैं। यह सुन कर महाराज ने कहा कि आर्य्य पुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राजमन्त्री न बनावें यह तो दासी पुत्र हैं इसे सुन कर करीमबख़्श और अन्य ५-७ मुसलमान जो वहाँ बैठे थे क्रोध में भर गये।

स्वामीजी और राव की भेंट

थोड़ी देर पीछे सब चले गये। उस समय तो मुसलमानों ने कुछ न कहा परन्तु घर पहुँच कर महाराज को पीटने का षड्यन्त्र रचने लगे। उनमें एक मुसलमान समझदार भी था उसने कहा अभी कुछ मत करो, ५-७ दिन में क़ाज़ीजी आवेंगे तब उनके स्वामीजी से प्रश्नोत्तर कराना। यदि वह झूठे सिद्ध होंगे तो जैसा विचार कर रहे हो वैसा ही करना यह सम्मति सब ने स्वीकार की।

स्वामीजी के पीटने का षड्यन्त्र

रायपुर आये हुए महाराज को ५-७ दिन होगये, परन्तु न तो क़िलों में उनके व्याख्यान हुए और न यज्ञ ही हुआ जिसके करने के लिए चारण हरिदानजी ने ठाकुर साहब से कह कर महाराज को रायपुर बुलाया था। ठाकुर साहब नित्यप्रति महाराज के व्याख्यान सुनने आते थे, परन्तु यज्ञ की चर्चा न करते थे। एक दिन महाराज ने ठाकुर साहब को इस बात का उपालम्भ दिया तो उन्होंने कहा मुझे भी इसका ध्यान है, परन्तु हरिदानजी अपने ग्राम को चले गये हैं, उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

रायपुराधीश की उदासीनता

२७ अगस्त सन् १८८१ अर्थात् भाद्रपद शुक्ला ३ को मुसलमानों की इदुलफ़ितर (रोज़ों की ईद) थी। क़ाज़ीजी भी आ गये थे। २८ अगस्त को महाराज

क़ाज़ीजी से वार्त्तालाप प्रातःकाल ८ बजे भ्रमण करके लौटे ही थे कि उन्हों ने यवनों का एक झुन्ड अपने निवास स्थान की ओर आते देखा। उन्हों ने चाँदमल कोठारी राज्य मसूदा को जो उन के साथ मसूदा से आये थे बुलाया और कहा कि देखो क्या बात है, यह लोग क्यों आरहे हैं, वह नीचे गए और यवन समुदाय के नेता से वृत्त ज्ञात करके स्वामीजी से कहा। उन्हों ने कहा कि ऊपर बुलालो। महाराज कुर्सी पर बैठ गये और वह लोग फ़र्श पर बैठ गये। आते ही क़ाजीजी से निम्न प्रश्नोत्तर हुए:—

क़ाज़ी—आप हमें दासी पुत्र कैसे बतलाते हैं?

स्वामीजी—अपने कुरानशरीफ़ को देखो। इब्राहीम की दो स्त्रियाँ थीं एक विवाहिता सारा; दूसरी दासी हाजिरा जिसे उन्हों ने घर में डाल लिया था ...... अतः आप के दासी-पुत्र होने में क्या सन्देह है।

क़ाज़ी—कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामीजी—(रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान की पुस्तक मँगा कर) देखिए सूरा अनकबूत में लिखा है कि उसी साल (खुदा ने) उसे (इब्राहीम को) हाजिरा (के गर्भ) से जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया।

क़ाज़ी—वह दासी तो थी, परन्तु निकाह कर लिया था।

स्वामीजी—फिर भी वह वास्तव में दासी ही तो थी फिर आप के दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है?

इस पर क़ाज़ीजी निरुत्तर हो गये और मुसलमान देखते के देखते रह गये।

कुरान का अपमान क्यों किया

महाराज ने क़ाजीजी को दिखा कर कुरान को फ़र्श पर रख दिया। क़ाजीजी ने कहा कि यह आप ने क्या किया कुरान को पैरों में रख दिया? स्वामीजी ने कहा आप विचारिये तो सही काग़ज़ और स्याही किस प्रकार बनती है और छापेखाने में किस प्रकार छपता है और कलम क्या वस्तु है और कहाँ उत्पन्न होता है। इस पर क़ाजीजी और उन के साथी निरुत्तर होकर उठकर चले गये।

राव साहब की रानी का देहान्त

४ सितम्बर अर्थात् भाद्रपद शुक्ला ११ तक न चारण हरिदान आये और न यज्ञ ही हुआ। ५ सितम्बर को तार आया कि ठाकुर साहब की ठकुरानी शेखावट वाली का, जो जयपुर में थी देहान्त हो गया और ठाकुर साहब शोकातुर हो कर गरुड़ पुराण सुनने लगे। तब महाराज ने ७ सितम्बर को ठाकुर साहब से कह लाया कि मुझे विदाकर दीजिये तो उन्हों ने कहा कि कल विदा कर देंगे। कोठारी चाँदमल और बाबू रूपसिंह ने कहा कि आप ठाकुर साहब से शोक-सहानुभूति प्रकट करने क़िले में पधारें तो महाराज ने उत्तर दिया कि भाई मैं ने तो सब संसार से संबन्ध त्याग दिया है

मैं किसी का हर्ष शोक नहीं करता

किसी का मरना और जीना मेरे लिए एकसा है, मैं किसी से शोक वा हर्ष नहीं करता, न मेरा कुछ सम्बन्ध है। मेरा सबन्ध तो केवल उपदेश और धर्म्म से, है शेष किसी वस्तु से नहीं। अगले दिन

महाराज के लिए सवारी का प्रबन्ध हो गया। चलते समय ठाकुर साहब ने अपने पिता और मन्त्री आदि को महाराज की सेवा में भेजा। उन्होंने ४०) ठाकुर साहब की ओर से वेदभाष्य की सहायता में भेट किये और विनयपूर्वक कहा कि ठाकुर साहब ने क्षमायाचना की है कि शोकातुर होने के कारण वह सेवा में उपस्थित न होसके, उन्हें आप अपना शिष्य जानें और वह शीघ्र ही आप को पुनः बुलावेंगे। मध्यान्होत्तर में ५ बजे महाराज रेलवे स्टेशन पर पहुंच गये और रेल-कर्म्मचारियों को उपदेश देकर रात्रि के दस बजे ब्यावर के लिये रेल पर सवार हो गये। १२ बजे ब्यावर पहुंच कर रात्रि को सराय में ठहरे और प्रातः काल डाक बंगले में चले गये।

बाबू रूपसिंह जी जिन का नाम ऊपर आया है कोहाट में ट्रेज़री-क्लर्क थे। वह देशाटन करते हुए महाराज के दर्शनों के लिये रायपुर पहुँचे थे। उन्होंने १०) वेदभाष्य की सहायतार्थ महाराज को भेट किये थे। उन्होंने महाराज से निवेदन किया कि पंजाब पर तो आप कृपा कर चुके हैं, सीमा प्रान्त में भी पधारिये तो महाराज ने कहा, इस समय राजस्थान में उपदेश की अधिक आवश्यकता है।

ब्यावर

९ सितम्बर सन् १८८१ के प्रातःकाल से ही लोग महाराज के दर्शनों को आने लगे। बाबू बिहारीलाल ईसाई ने भी महाराज की बड़ी शुश्रूषा की।

महाराज के यहाँ कई व्याख्यान हुए जिन्हें सुन कर श्रोता परम सन्तुष्ट हुए। पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल से भी कई दिन तक धर्म्मविषय पर प्रेमालाप हुआ। एक श्रीमाली ब्राह्मण जोशी सूरजमल किशनगढ़ निवासी ने अपने पुत्र को महाराज से ब्रह्मचर्य्याश्रम में प्रवेश कराया। महाराज ने उसका नाम गुरूनन्द रक्खा।

आश्विन कृष्णा १३ अर्थात् २१ सितम्बर सन् १८८१ को महाराज मसूदा चले गये।

महाराज के उपदेशों से उसी समय आर्य्यसमाज का बीज बोया गया जो पीछे आकर अंकुरित हुआ और ब्यावर में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

मसूदा

ब्यावर से महाराज मसूदा लौट आये और राम बाग में उतरे और १५ दिन ठहरे।

कबीरपन्थी साधू से बात-चीत

एक दिन एक कबीर पन्थी साधु जो पढ़ा लिखा प्रतीत न होता था महाराज से धर्म्मचर्चा करने आया और अन्य प्रश्नोत्तरों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।

स्वामीजी—तुम्हारे मत के कितने ग्रन्थ हैं ?

साधू—हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं।

स्वामीजी—यह बात मिथ्या है। इतनी संख्या के ग्रन्थों को रखने के लिये ही कितना स्थान चाहिये।

स्वामीजी—तुम्हारे कबीर कौन थे ? तुम गुरु की प्रसादी अर्थात् उसका उच्छिष्ट खाते हो वा नहीं।

साधु—खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं था, वह अजन्मा थे।

स्वामीजी—नवजात कबीर को उनकी माता ने मार्ग में फेंक दिया था। उन्हें एक मुसलमान जुलाहे ने उठा लिया और पुत्र के समान पाला था फिर कैसे कहते हो वह अजन्मा थे? साधु फिर कुछ न बोला।

बनेड़ा

आश्विन शुक्ला १४ संवत् १९३८ अर्थात् ६-१०-१८८१ को महाराज ने मसूदा से प्रस्थान किया और रात्रि में वहाँ से ९ कोस पर हुरड़े में पहुँच कर ६-७ घण्टे विश्राम करने के पश्चात् रूपाहेली पहुँचे और नगर के बाहर एक वाटिका में ठहरे। रूपाहेली के रईस ठाकुर लालसिंहजी महाराज के पास आये और नवीन वेदान्त पर बात-चीत करके चले गये। वहाँ से चल कर एक दिन राटेरा रहे और १० अक्टूबर सन् १८८१ को प्रातःकाल बनेड़ा पहुँच गये।

सुपठित राजा

बनेड़ा के राजा गोविन्दसिंह मसूदाधीश के मातुल थे। वह सुपठित थे, इसी से मसूदाधीश की यह इच्छा थी कि महाराज का और उनके मातुल का समागम हो। अतः उन्होंने राजा गोविन्दसिंह को लिखा था कि स्वामी दयानन्द वेदों के अद्वितीय पण्डित हैं आप उनसे अवश्य मिलिये। राजा गोविन्दसिंह पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुए और पत्र के उत्तर में लिख दिया कि स्वामीजी अवश्यमेव बनेड़ा पधारने की कृपा करें। जब महाराज बनेड़ा पहुँचे तो राजा गोविन्दसिंह ने उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और झामरा मन्दिर के कुएं पर दो डेरे लगवा दिये, एक स्वयम् महाराज के लिए और एक उनके साथियों और असबाब के लिए और उनके खान-पानादि का सुप्रबन्ध कर दिया। राजा गोविन्दसिंह ने अपने पण्डित राजगुरु बहादुरजी से मन्त्रणा की कि तीन चार दिन तक तो स्वामीजी से कोई प्रश्नोत्तर न किया जाय, पीछे यदि अपने में शक्ति देखी जाय तो किया जाय।

शक्ति हो तो स्वामीजी से प्रश्न किया जाय

उसी दिन अपरान्ह में राजा साहब महाराज के दर्शनों को गये। उस समय स्वामीजी कौपीन लगाये कृष्ण वर्ण के आसन पर बैठे थे। राजा उनकी भव्य और विशाल मूर्त्ति को देखकर चकित और आल्हादित हो गये। उस समय महाराज के पास ३०० के लगभग मनुष्य बैठे थे। राजा साहब ने महाराज का अभिवादन किया और महाराज के पास एक आसन पर बैठ गये। कुशल प्रश्नानन्तर महाराज ने उनसे कहा कि कोई प्रश्न कीजिए। प्रथम तो राजा साहब इस पर सम्मत न हुए परन्तु महाराज के आग्रह पर निम्न प्रश्न किया।

राजा से प्रश्नोत्तर

जीव, आत्मा और परमात्मा क्या हैं और इनमें क्या भेद है?

उत्तर—जीव और आत्मा को तो हम एक ही मानते हैं और परमात्मा जीवात्मा से पृथक् है।

प्रश्न—द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

भगवद्गीता अ० १६ श्लो० १६-१७ ॥

अर्थ—लोक में यह दो पुरुष हैं एक नाशवान् दूसरा अविनाशी। सारे भूत (प्राणी) नाशवान् हैं, जो कूटस्थ है वह अविनाशी है। जो उत्तम पुरुष है उसे परमात्मा कहते हैं जो अविकारी ईश्वर है और जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उन का भरण कररहा है।

उत्तर—हम गीता का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते। आप वेद का पाठ करते हैं और आप के यहाँ वेद की खूब चर्चा, है आप वेद का प्रमाण दीजिए।

राजा साहब ने कोई प्रमाण न दिया

चारों वेदों के दर्शन

अगले दिन राजा साहब ने महाराज से कहा कि हमें चारों वेदों के दर्शन कराइये क्योंकि हमारे यहाँ केवल यजुर्वेद की चर्चा है। महाराज ने ऋग्वेद का पहला मन्त्र सस्वर सुनाया और सुनाते समय उंगली खड़ी करली जो उदात्त का चिन्ह है। राजा साहब ने महाराज से कहा कि यह तो अनुदात्त है आप को उंगली खड़ी न करनी चाहिए थी। परन्तु महाराज ने उत्तर दिया कि हम उंगली खड़ी करने वा हिलाने का प्रमाण नहीं करते हमने तो केवल संकेत मात्र किया था।

राजगुरु से बातचीत

चार पाँच दिन तक आने के पश्चात् एक दिन राजा साहब और राजगुरू पंडित बहादुर जी आये। और महाराजरचित संस्कारविधि आदि ग्रन्थों के ऊपर कई प्रश्न लिखकर लाये और साथ में महीधर का यजुर्वेद भाष्य भी लाए। महीधर का महाराज ने प्रबल खण्डन किया। राजगुरु महाराज की तीव्र आलोचना का कुछ उत्तर न देसके, उन्होंने केवल यही कहा कि महीधर अब उपस्थित नहीं है, आप उसकी अनुपस्थिति में उसका खण्डन करते हैं ऐसे ही कोई आप की अनुपस्थिति में आप का भी खण्डन करेगा।

पुस्तकालय का उपयोग

उस समय महाराज के पास ऋक्, यजुः, साम के पुस्तक तो स्वर सहित थे परन्तु अथर्ववेद के पुस्तक पर स्वर नहीं लगे हुए थे। बनेड़े में महाराज ने सरस्वती-भाण्डार नामक राजपुस्तकालय के निघण्टु से अपने निघण्टु का मिलान करके उसे ठीक किया था और यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा की प्रतिलिपि कराई थी।

सस्वर-वेदपाठी राजकुमार

राजा गोविन्दसिंह के दो राजकुमार थे जिन्हें उन्होंने सस्वर वेदपाठ करना सिखाया था। उनकी महाराज ने वेद के जटा, पद, क्रम पाठ में परीक्षा ली थी और उनका सामगान सुना था और प्रसन्न होकर राजकुमारों को वर्णोच्चारण शिक्षा की पुस्तक दी थी।

क़िले में उपदेश

एक दिन महाराज को राजा गोविन्दसिंह हाथी पर सवार कराकर क़िले में भी ले गये थे और वहां महाराज का धर्म्मोपदेश कराया था।

पहले प्रश्न का उत्तर

पहले दिन जो प्रश्न राजा गोविन्दसिंह ने जीवात्मा व परमात्मा के एकत्व के विषय में किया था उसका उत्तर राजा साहब के दुबारा पूछने पर महाराज ने इस प्रकार दिया था कि जैसे मन्दिर और आकाश न एक हैं न पृथक् और पृथक् भी हैं, ऐसे ही जीव ब्रह्म व्याप्य-व्यापक

होने से एक नहीं हैं, पृथक् ही हैं और ब्रह्म के सर्वव्यापक होने से वह पृथक् भी नहीं है अतः दोनों पृथक् २ हैं। एक दिन चक्राङ्कितों के विषय में महाराज ने कहा था कि यदि शरीर दग्ध करने से मुक्ति होती है तो इन लोगों को भड़भूजे के भाड़ में गिर जाना चाहिए ताकि सब की एक दम मुक्ति हो जाय। महाराज कहते थे कि चाण्डाल तक को वेद पढ़ने का अधिकार है।

चक्राङ्कितों की मुक्ति का उपाय

२६ अकटूबर को महाराज ने चित्तौड़गढ़ के लिए प्रस्थान किया।

महाराणा सज्जनसिंह मेवाड़ाधिपति का चित्त नास्तिकता की ओर झुकने लगा था और उनके चरित्र में वेश्या रखने का दोष भी आगया था। एक दो मुसलमानों से महाराणा बहुत प्रसन्न थे और वह उन्हें अपने वशवर्त्ती करने का उद्योग करते रहते थे। उदयपुर का राजधर्म्म शैव था। महाराणा भी ऊपर से शैव मत के प्रति अनुराग प्रकाशित करते थे। परन्तु उन के भीतर नास्तिकता और धर्म्मोपहीनता का अंकुर प्ररोहित होगया था। ऐसी अवस्था देख कर पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या और कविराज श्यामलदास मन में बहुत दुःखित रहते थे और उन्हें यह चिन्ता रहती थी कि किस प्रकार महाराणा का मन धर्म्म की ओर आकृष्ट करें और इसके लिए वह सदा यत्नपर रहते थे। अतः वह जब महाराणा की सेवा में जाते तो रामायणादि धर्म्मग्रन्थ अपने साथ ले जाते और वहां जाकर उन ग्रन्थों को इस प्रकार रखते जिस से महाराणा की उन पर दृष्टि पड़े। महाराणा उन पुस्तकों को देख कर कभी कभी पूछते कि वह क्या ग्रन्थ हैं और इस मिष से इन लोगों को धर्म्म की बातें महाराणा के कानों में डाल देने का अवसर प्राप्त हो जाता था।

महाराणा सज्जनसिंह का चरित्र

उन दिनों समाचार पत्रों में स्वामीजी की बहुत चर्चा रहती थी और उनके व्याख्यानों और शास्त्रार्थों के वृत्तान्त भी प्रकाशित हुआ करते थे। पण्ड्याजी और कविराजजी समाचार पत्रों में से अन्य समाचारों के साथ २ महाराज के समाचार भी महाराणा को सुना दिया करते थे जिन्हें वह रुचिपूर्वक सुना करते थे। राजदर्बार में सभी लोग राजा को प्रसन्न करने का यत्न किया करते हैं और जिस विषय की ओर उस की रुचि देखते हैं उस के अनुकूल ही कार्य्य करने का उद्योग करते हैं। महाराणा के चित्त में महाराज के प्रति प्रीति का सञ्चार देख कर महाराणा के कृपापात्र मुसलमान कर्म्मचारी भी उर्दू समाचार पत्रों में से महाराज सम्बन्धी समाचार उन्हें सुनाया करते थे।

स्वामीजी के समाचार सुनने में महाराणा की रुचि

इस प्रकार महाराणा के हृदय में महाराज के प्रति श्रद्धा और जिज्ञासा का उदय हुआ और वह महाराज के दर्शनों की इच्छा करने लगे। अतः पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने महाराज को पत्र लिखा कि यदि कभी आप का सङ्कल्प राजस्थान की ओर से आने का हो तो मुझे सूचना देवें। कविराज श्यामलदासजी से भी महाराज का पत्र व्यवहार था।

दर्शनों की इच्छा

पण्ड्याजी सत्यार्थप्रकाश महाराणा के पास ले गये। महाराणा ने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा और पढ़कर उनका अनुराग महाराज में और भी बढ़ गया और महाराज के दर्शनों

महाराणा ने सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ा

की इच्छा बलवती हो गई । परन्तु दोनों के मिलने में एक अड़चन थी। महाराणा को यह स्वीकार न था कि अपने राज्य से बाहर जाकर महाराज से भेंट करें और महाराज बिना निमन्त्रित हुए किसी राजा के पास जाने को उद्यत न थे। इतने में ही एक घटना उपस्थित हो गई जिससे दोनों के सम्मिलन का अवसर प्राप्त हो गया। चित्तौड़ से खंडवे तक रेलवे लाइन बन कर तैयार हुई। रेलवे वालों ने उसे खोलने के लिये भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड रिपन से प्रार्थना की। लार्ड रिपन भी चित्तौड़ देखने के लिए उत्सुक थे। महाराणा को जी० सी० एस० आई० की उपधि भी दी जाने वाली थी और महाराणा उदयपुर राज्य से बाहर जाकर उसे ग्रहण करने पर सहमत न थे। अतः यह निश्चित हुआ कि लार्ड रिपन स्वयं चित्तौड़ आकर महाराणा को उस उपाधि से अलंकृत करें। अतः इसके लिए चित्तौड़ में लार्ड रिपन के दर्बार का आयोजन होने लगा। महाराणा भी चित्तौड़ पहुंच गये। इधर महाराज के जी में भी चित्तौड़ जाने की इच्छा हुई क्योंकि उन्होंने समझा कि इस अवसर पर राज्य के सभी गरय-मान्य सर्दार तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आवेंगे और उनमें धर्म्मप्रचार का सुअवसर प्राप्त होगा। अतः उन्होंने चित्तौड़ जाने का सङ्कल्प कर लिया। बनेड़े से ही उन्होंने कविराज श्यामलदास को पत्र लिखा कि हम २७ अक्तूबर को चित्तौड़ पहुंच जायंगे, आप स्थान आदि का प्रबन्ध करदें। कविराजजी उन दिनों रुग्ण थे, अतः वह पहले से कोई प्रबन्ध न कर सके। महाराज बनेड़े से भीलवाड़ा और सोनियारा होते हुए चित्तौड़ पहुंचे और गम्भीरी नदी के पश्चिमी तट पर रुण्डेश्वर महादेव के मंदिर में ठहरे। कविराजजी को जब महाराज के आगमन का समाचार मिला तो उन्होंने महाराणा से आज्ञा लेकर महाराज के लिए नदी तट पर एक डेरा लगवा दिया और भील कंपनी के एक गार्ड का पहरा लगवा दिया और अन्य सब प्रबन्ध करा दिया।

महाराणा और स्वामी जी के मिलने का सुयोग

स्वामीजी का चित्तौड़ जाने का संकल्प

महाराज के पधारने का समाचार बात की बात में सर्वत्र फैल गया और अनेक लोग उनके दर्शन और उनसे धर्म्मा-लाप करने के लिए उनके पास आने लगे।

कविराजजी का रोग जब शान्त हुआ तो वह भी महाराज की सेवा में रहने लगे उनके साथ एक तैलिङ्गी शास्त्री भी आया करते थे और दार्शनिक विषयों पर बात चीत किया करते थे, परन्तु महाराज की युक्तियों का उत्तर न दे सकते थे। शास्त्रार्थ इसी बात पर था कि पदार्थ छः हैं वा सात। महाराज अभाव की गणना पदार्थों में नहीं करते थे।

तैलिंगी शास्त्री

कविराजजी की प्रेरणा से राज्य के सभी बड़े २ जागीरदार, सर्दार महाराज के दर्शनों को आये। उन्हीं में राजाधिराज सर नाहरसिंहजी शाहपुराधीश भी थे जो महाराज के अनन्य भक्त बन गये और आजन्म उनकी शिक्षाओं को मानते रहे।

शाहपुराधीश

दर्बार की समाप्ति के पश्चात् एक दिन महाराणा ने महाराज को अपने पास

निर्भय-वाणी

बुलाया महाराज गये और महाराणा को राजनीति का कुछ उपदेश करके और राजाओं के चरित्र में वेश्यागमन के दोष दिखा कर लौट आये। महाराज की निर्भय-वाणी का महाराणा के चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने अमात्यवर्ग और सर्दारों से महाराज की भूरि २ प्रशंसा की और कहा कि केवल एक यही मनुष्य है जो बिना लाग लपेट के सदुपदेश करता है।

महाराणा स्वामीजी के आसन पर पधारे

४ दिसंबर सन् १८८१ को स्वयं महाराणा महाराज के डेरे पर पधारे। महाराज से वार्त्तालाप करके वह परम सन्तुष्ट हुए और उनके हृदय में महाराज के प्रति श्रद्धा भक्ति का जो अंकुर पहले से उगा हुआ था वह पल्लवित और प्रवर्द्धित हो गया। महाराज ने महाराणा से कहा कि हमारी धारणा थी कि भारत के इस समय के राजगण प्रायः अकर्मण्य होते हैं परन्तु आप से मिलकर विश्वास हो गया कि आप बहुत योग्य हैं। हमें पण्डित मोहनलाल ने लिखा था कि आप कर्म्मवीर और "यथा नाम तथा गुणः हैं।" हमने आप को वैसा ही पाया।

महाराज के अनुरोध पर महाराणा ने पंडित मोहनलाल को उदयपुर से बुलवाया वह आकर महाराज से मिले। महाराज ने महाराणा से पंडित जी की प्रशंसा की और इस से वह महाराणा के और भी विश्वास पात्र बन गये।

चित्तौड़ की सैर

एक दिन महाराणा साहब महाराज के डेरे पर पधारे और महाराज को अपने साथ सवार कराकर दर्बार के स्थान पर ले गये और चित्तौड़ के अनेक स्थान उन्हें दिखाये और उनसे प्रार्थना की कि जब हम उदयपुर जाएं आप भी हमारे साथ वहाँ चलने की कृपा करें। महाराज ने कहा कि इसका उत्तर पीछे से देंगे। इसके पश्चात् महाराज ने कहला दिया कि इस समय तो हम बम्बई जा रहे हैं वहां से लौटते समय यदि महाराणा की ऐसी इच्छा होगी तो उदयपुर आजायेंगे। हम खँडवा पहुँचकर सूचना देंगे। यदि निर्दिष्ट दिनों के भीतर हमारे पास महाराणा का उत्तर पहुँच जायगा तो हम उदयपुर आजायेंगे, नहीं तो अन्यत्र चले जायंगे।

जीवनगिरि का द्वेष

उन दिनों चित्तौड़ में स्वामी कैलाश पर्वत के शिष्य जीवन गिरि और आत्मानन्दगिरि भी ठहरे हुए थे। महाराणा स्वामी कैलाश पर्वत और जीवनगिरि का मान करते थे। महाराज के चित्तौड़ पधारने पर जीवनगिरि ने उनके विरुद्ध बहुत कुछ कहा सुना और एक दिन स्वयं महाराणा से प्रस्ताव किया कि हमारा स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ होना चाहिये, परन्तु महाराणा ने कहा कि आप दोनों ही हमारी श्रद्धा के पात्र हैं, हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं। जीवनगिरि को यह देख कर कि महाराणा स्वामीजी का इतना मान करते हैं, महाराज से ईर्ष्या हो गई थी और इस से वह बहुत दुःखित थे।

सम्मान-प्रदर्शन

जब महाराणा चित्तौड़ से उदयपुर जाने लगे तो उन्होंने सम्मान-प्रदर्शनार्थ ५००) महाराज को भेंट किये और २००) अन्य दर्बारियों ने दिये। जब यह बात जीवनगिरि को ज्ञात हुई तो उनके रोष का ठिकाना न रहा
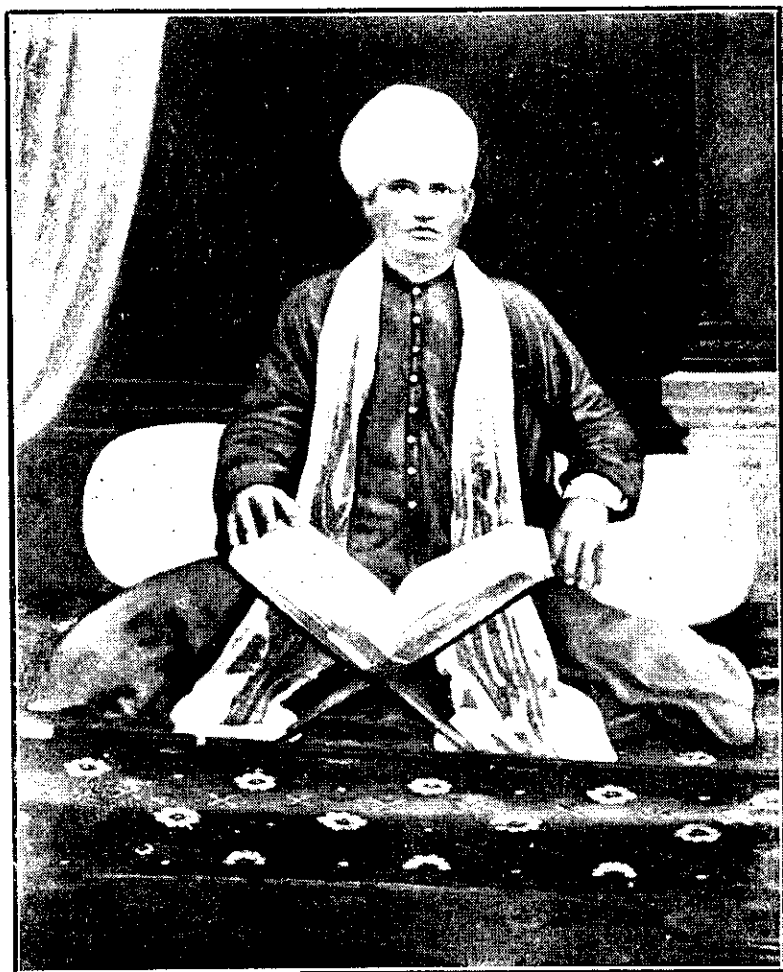
महर्षि दयानन्द सरस्वती

(शाहपुरा से प्राप्त)

(पृष्ठ ६२४)

और ऊल-जलूल बकने लगे। महाराणा ने उन्हें शान्त करने के लिये ५००) रुपये उनके पास भिजवाये, परन्तु वह इतने जले भुने बैठे थे कि रुपये न लिये और चित्तौड़ से चले गये ※।

मातृशक्ति को प्रणाम

कहते हैं कि एक दिन स्वामीजी कई राजाओं और राजकर्मचारियों के साथ भ्रमण को जारहे थे। मार्ग में एक देवालय आगया। वहां छोटे २ बालक खेल रहे थे। उन्हीं में एक चार वर्ष की कन्या भी थी जो वस्त्र पहिने हुए न थी। महाराज ने उसे देख सिर झुका दिया। साथ के लोगों ने कहा कि आप मूर्तिपूजा का कितना ही खण्डन करें परन्तु देव-बल का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देवालय के सामने आपका मस्तक अपने आप झुक गया। महाराज तत्काल खड़े हो गये और कहा 'देखते नहीं हो, यह मातृशक्ति है जिसने हम सब को जन्म दिया है'।

महाराज २७ अक्तूबर से २० दिसम्बर सन् १८८१ तक चित्तौड़ रहे, फिर वहां से बंबई की ओर चले गये।

इन्दौर

२१ दिसम्बर सन् १८८१ को महाराज इन्दौर पहुँचे। वहां जाकर ज्ञात हुआ कि महाराजा इन्दौर से बाहर हैं। पण्डित श्रीनिवास जज ने महाराज को बड़ी श्रद्धा और सम्मान से ठहराया। महाराज इन्दौर ७ दिन रहे और लोगों को अपने उपदेश से कृतार्थ करते रहे। २७ दिसम्बर को महाराज बंबई चले गये।

※ दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि पहले महाराणा ने कतिपय विश्वस्त जन को महाराज के रहन-सहन आदि देखने के लिए भेजा। जब उन लोगों ने लौट कर स्वामीजी की प्रशंसा की तब एक दिन महाराणा स्वामीजी के डेरे पर प्रच्छन्न रूप से आये और एक पटड़े पर बैठ गये। महाराज ने उन की ओर संकेत करके कहा कि आपका साक्षात्कार तो पहले कभी हुआ नहीं दीखता। इस पर शाहपुराधीश ने कहा आप ही श्री महाराणा हैं। इस पर स्वामीजी ने कहा कि श्रीमानों को इस प्रकार साधारण आसन पर बैठना शोभा नहीं देता। महाराणा ने उत्तर दिया कि सन्तों के पास साधारण आसन पर बैठने में ही गृहस्थों की शोभा है। अन्यत्र सर्वत्र तो हमें राजसी ठाठबाठ के साथ जाना ही पड़ता है, यदि संन्यासियों के सत्संग में उसी ठाठबाठ से आये तो उस में विशेषता ही क्या हुई। यह घटना संभव होसकती है। उपरिलिखित घटना से इस में कुछ विशेष है। विरोध इतना ही है कि उपर्युक्त घटना में पहिले स्वामीजी का महाराणा के पास जाना लिखा है और इस में महाराणा का उनके पास आना। परन्तु यदि दयानन्दप्रकाश की घटना सत्य हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि पहले महाराणा ही स्वामीजी के पास आये थे। —संग्रहकर्त्ता.

सप्तविंश अध्याय

पौष सं० १९३८—फाल्गुन सं० १९३९

बम्बई

३० दिसम्बर सन् १८८१ को महाराज बम्बई पहुँचे। उनके स्वागत के लिये रेलवे स्टेशन पर कर्नल आल्काट और आर्य्यसमाज बम्बई के सभासद् उपस्थित थे। जब महाराज गाड़ी से उतरे तो सब ने बड़े प्रेम से उन्हें 'नमस्ते' कहा। महाराज ने भी वैसे ही प्रेम से सब का प्रत्यभिवादन किया। कर्नल आल्काट आग्रह करके उन्हें बालकेश्वर के गोशाला स्थान पर ले गये जहाँ वह स्वयं ठहरे हुए थे।

इस वार महाराज ने बम्बई में निम्नलिखित व्याख्यान दिये।

ठाकुर साहब मोर्वी व्याख्यान में पधारे

वक्ता आप के राज्य का ही निवासी है

फ़रवरी को एक वक्तृता महाजन बाड़ी में हुई थी उसमें सेठ लछमनदास खेमजी के साथ ठाकुर साहब मोर्वी भी पधारे थे। वक्तृता की समाप्ति पर जब ठाकुर साहब सभा-स्थल से जाने लगे तो महाराज ने उनके पास जा कर कहा कि ठाकुर साहब आप जाने में इतनी शीघ्रता क्यों करते हैं। जो कुछ व्याख्यान में आपने सुना वह सब आप का ही है। ठाकुर साहब इस बात को न समझ सके तब महाराज ने उनसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि वक्तृता देने वाला आप के ही राज्य का रहने वाला है।

बम्बई समाचार नामक पत्र में महाराज की वक्तृताओं की रिपोर्ट प्रकाशित हुआ करती थी।

प्राचीन काल में दूध दही की बहुतायत

३ जून की वक्तृता के सम्बन्ध में उसमें छपा था कि आज वृष्टि के कारण अधिक लोग एकत्र नहीं हुए थे फिर भी प्रायः २५० मनुष्य उपस्थित थे। स्वामीजी ने उसमें कहा था कि आजकल दूध घी बहुत मँहगा हो गया है, बहुत से लोग इस समय इन वस्तुओं को नहीं खा सकते। गुजरात के ग्रामों में अनेक लोग दूध दही को मुँह में नहीं दे सकते। यदि किसी के घर में पुराने बही-खाते हों तो उनके देखने से ज्ञात हो सकता है कि पुराने समय की अपेक्षा इस समय यह वस्तुएं कितनी महार्घ हो गई हैं।

देशोन्नति के विषय में कहा था कि इस समय हमारे देशवासियों को वाणिज्य-व्यापार में प्रवृत्त होना चाहिये और इतर देशों में जाकर वाणिज्य करना चाहिये। कनौजिये ब्राह्मण पलटनों में भरती होकर काबुल आदि देशों में जाते हैं परन्तु वाणिज्य के उद्देश्य से देशान्तर में नहीं जाते। इस देश वालों को उचित है कि अपनी कन्याओं के विवाह अपेक्षाकृत दूरतर देशों में करें। इससे धीरे २ उन देशों के साथ हमारा सम्बन्ध निबद्ध हो जायेगा।

हमें व्यापार में प्रवृत्त होना चाहिये

११ जून की वक्तृता के सम्बन्ध में लिखा था कि स्वामीजी ने कहा था कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है। उत्तर काल में ब्राह्मणों ने इसे प्रचलित कर दिया। वेद में जीवित पिता, माता, आचार्य और अतिथि रूपी मूर्त्तियों की पूजा का विधान है।

वेद में मूर्तिपूजा नहीं है

मन्त्र शब्द आजकल अयथा-अर्थों में प्रचलित हो गया है। दुष्ट लोग हनूमान, काली आदि के मन्त्र द्वारा कुसंस्कारापन्न लोगों का धन हरण करते हैं। मन्त्र शब्द का प्रकृत अर्थ विचार है, इसी कारण विचारशील वा विचारपटु मनुष्य ही मन्त्री पद पर आरूढ़ होते हैं। यन्त्र शब्द से कला प्रभृति का ग्रहण होना चाहिये परन्तु मन्त्र शब्द के समान यन्त्र शब्द भी विकृत अर्थों में व्यवहृत होने लगा है। लोक में मारण, उच्चाटन आदि अर्थों में ही मन्त्र, यन्त्र शब्दों का प्रयोग होता है।

मन्त्र शब्द का अर्थ

'पितृ' शब्द के ऊपर कहा था कि पूर्वज, पूर्व पुरुष ही पितृ लोग हैं। कोई नहीं जानता कि मृत पितर मरने के पीछे किस स्थान में रहते हैं। इसका किसी प्राचीन ग्रन्थ में प्रमाण नहीं है कि मृत पितर श्राद्ध से सन्तुष्ट और तृप्त होते हैं।

श्राद्ध की अप्रामाणिकता

१२ जून को एक पण्डित व्यंकटेश्वराचार्य ने बम्बई समाचार में लिखा था कि स्वामी दयानन्द कहते हैं कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है, मैं सिद्ध करूंगा कि है। इसके लिये विद्वानों की एक कमेटी होनी चाहिये। व्यंकटाचार्य को मिस्टर रामदास छवीलदास बैरिस्टर के चचा देवीभक्त ने ही स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत किया था और उन्हें कुछ रुपया भी दिया था। व्यँकटाचार्य ने यह भी लिखा था कि स्वामी दयानन्द भीरुता के कारण मेरे सम्मुख आने से डरते हैं। व्यँकटाचार्य के लेख का उत्तर मिस्टर रामदास छवीलदास ने सँस्कृत में श्लोकबद्ध दिया था। उस पर स्वामीजी ने हस्ताक्षर किये और वह व्यँकटाचार्य्य के पास भेजा गया था। उन श्लोकों में से केवल आधा श्लोक मिस्टर रामदास छवीलदास को जब देवेन्द्र बाबू उनसे मिले थे याद था। वह इस प्रकार था—

मैं वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध करूँगा

स्वामीजी मेरे सामने आने से डरते हैं

'भीतः कदा नाम मृगेन्द्रशावो दीनं मुखं वीक्ष्य मृगाङ्गनायाः।' अर्थात् सिंह का बच्चा हरिणी के दीन मुख को देख कर कब डर सकता है।

व्यँकटाचार्य दूर ही से शास्त्रार्थ का चैलेंज देते रहे, परन्तु महाराज के सम्मुख आकर

शास्त्रार्थ करने का उन्हें कभी साहस न हुआ। आर्यसमाज बम्बई के एक प्रतिष्ठित और धनाढ्य सभासद सेठ मथुरादास लौजी ने एक विज्ञापन दिया था कि जो कोई मनुष्य मूर्त्तिपूजन के वेद विहित होने का निश्चय करा देगा उसे मैं ५०००) रुपये पारितोषिक दूँगा। यह विज्ञापन उन्होंने मई सन् १८८२ को किसी तारीख को दिया था। परन्तु न तो व्यङ्कटाचार्य्य ही और न कोई अन्य पण्डित ही मूर्त्तिपूजा को वेदविहित सिद्ध करने में प्रयत्नशील हुआ।

दूर से ढोल पीटते रहे

वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध करने वाले को ५,०००) का पुरस्कार

११ जून को अहिंसा पर बोलते हुए महाराज ने गोरक्षा का बड़ा प्रबल समर्थन किया था। उसके पश्चात् मूलजी जेठा मार्केट में भी उन्होंने इसी विषय पर एक प्रबल भाषण दिया। भाटिया लोग प्रायः स्वामीजी के विरुद्ध थे परन्तु इन भाषणों को सुनकर उन्होंने विरोध का परित्याग कर दिया था और महाराज के गोरक्षा मेमोरियल पर लोगों के हस्ताक्षर कराने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया। और अपनी कोठियों पर गोरक्षा विषय पर महाराज के व्याख्यान भी कराये।

गोरक्षा का समर्थन

ठाकुरदास जैन ने १३ जून को बम्बई के सालिसिटर स्मिथ और फ़ायर के द्वारा महाराज को नोटिस दिया था कि आपने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४०२ और ४०३ पर जैन धर्म्म के सम्बन्ध में जो श्लोक उद्धृत किये हैं वह झूठे हैं, आप अपना अपराध स्वीकार कीजिये और उन श्लोकों को सत्यार्थप्रकाश से निकाल दीजिये अन्यथा आप पर अभियोग चलाया जायगा। स्वामीजी ने इस नोटिस का उत्तर १९ जून को पेन गिल्बर्ट अटारनी के द्वारा दिया था कि मैंने जो कुछ लिखा है देख भाल कर और विचार करके लिखा है, यदि मुझे मेरी भूल दिखा दी जायगी तो दूसरे संस्करण में उसे दूर कर दूँगा।

ठाकुरदास जैन का नोटिस

जैनियों को सत्यार्थप्रकाश पर आक्षेप करने की उसके छपने के कई वर्ष बाद सूझी। उन्होंने किसी विद्वान् से तो आक्षेप कराये नहीं जो स्वामीजी उनका यथोचित उत्तर देते। एक अर्द्धशिक्षित जैनी ठाकुरदास गुजराँवाले को आगे कर दिया जो भाषा के चार अक्षर भी शुद्ध नहीं लिख सकता था। वह आरम्भ से यही कहता रहा कि या तो बताओ कि जो प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में दिये हैं वह जैनियों के किस ग्रन्थ के हैं, नहीं तो क्षमा माँगो, अन्यथा हम नालिश करेंगे। उसके पत्रों का उत्तर आर्यसमाज मेरठ और गुजराँवाले के मन्त्रियों की ओर से दिये गये। अन्त में जैनियों के गुरु श्री पूज्य आत्मानन्द को लिखा गया कि यदि आप सत्यासत्य का निर्णय चाहते हैं तो स्वयं सामने आकर शास्त्रार्थ कीजिये अथवा किसी अन्य विद्वान् को शास्त्रार्थ के लिये सन्नद्ध कीजिये। इस पर उन्होंने कुछ आक्षेप स्वामीजी के पास लिखकर भेजे जिनका प्रमाणों के पते सहित उत्तर भेज दिया गया। जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कुछ न लिखा। परन्तु ठाकुरदास बराबर आन्दोलन करता रहा और जैनियों को स्वामीजी के ऊपर अभियोग चलाने के लिये उकसाता रहा। उसी का फल ऊपर का नोटिस था। स्वामीजी का नोटिस पाकर ठाकुरदास और जैन समुदाय शान्त हो गया।

यहाँ एक बात हमें अवश्य कह देनी चाहिये कि जिन ग्रन्थों के प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में दिये गये थे वह चार्वाक आदि सम्प्रदायों के थे, जो बौद्ध सम्प्रदाय समझे जाते हैं। परन्तु उन दिनों जैन और बौद्ध का एक ही उद्गम माना जाता था। उन दिनों के जैन विद्वान् राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० ने अपने ग्रन्थ इतिहास-तिमिर-नाशक में इस बात को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया था। इन्हीं आधारों पर स्वामीजी ने उक्त आक्षेप किये थे। अब अनेक विद्वानों की सम्मति है कि जैन और बौद्ध एक दूसरे से स्वतन्त्र मत हैं यद्यपि दोनों की बहुत सी बातें आपस में मिलती हैं। यह विषय अब भी विवादास्पद ही है।

—संग्रहकर्त्ता

प्रचार में परिवर्तन

इस समय महाराज पूर्व की भाँति मूर्त्तिपूजा के खण्डन पर विशेष बल नहीं देते थे। इस समय वह गोरक्षा के आन्दोलन में लगे हुए थे। उसी पर उन्होंने कई वक्तृताएँ दी थीं। इस बार प्रायः सभी लोग श्रद्धान्वित चित्त होकर उनके पास आते जाते थे। जिन्होंने पहली बार उनसे शत्रुता की थी इस बार वह लोग भी प्रीति के साथ उनके दर्शन को आते थे। खोजा सम्प्रदाय के एक मुसलमान वेदान्ती ने पहली बार उनका विरोध किया था, इस बार उसका विरोध भी शान्त हो गया था। एक दिन वह महाराज के पास आया और उसने कहा कि मैंने पहली बार आपका विरोध किया था। उसका कारण यह था कि आपके शत्रुओं ने मुझे आपके विरुद्ध उकसाया था। मैं अपने अपराध के लिये क्षमा प्रार्थना करता हूँ, आप यथार्थ में महापुरुष हैं।

मुसलमान वेदान्ती का वैर-त्याग

रानडे महोदय से भी न मिले

इस बार महाराज वेदभाष्य के कार्य में बहुत व्याप्त थे। उन्होंने विज्ञापन दे दिया था कि वह प्रातःकाल के ८ बजे से सायङ्काल के ५ बजे तक किसी से न मिलेंगे। ५ बजे से रात्रिपर्य्यन्त मिल सकेंगे। एक दिन श्रीमान् गोविन्द महादेव रानडे महाराज से मिलने आये और एक घण्टे तक प्रतीक्षा करते रहे। महाराज ने उनसे कहला दिया कि आप क्षमा करें इस समय मैं आप से अधिक देर तक बातें नहीं कर सकूँगा। यह सुनकर वह चले गये और फिर ५ बजे सायङ्काल आकर मिले। महामना रानडे स्वामीजी को गुरु-भाव से मानते थे और एक बार उन्होंने प्रयाग की सोशल कानफ्रेंस में वक्तृता देते हुए स्वामीजी को अपना गुरु बतलाया था।

विलक्षण धारणाशक्ति

महाराज की धारणा-शक्ति विलक्षण थी। वह एक बार जिस मनुष्य को देख लेते थे उसे बहुत कम भूलते थे। दानापुर से बा० जनकधारीलाल, रामनारायणलाल और पं० आदित्यनारायण आर्यसमाज बम्बई के दर्शनार्थ और विशेषतः महाराज से मिलने के लिये बम्बई गये थे। दूर से देखकर ही महाराज ने उन्हें पहचान लिया और कहा कि दानापुर वाले आते हैं। परन्तु आगन्तुकों ने महाराज को न पहचाना। कारण यह था कि जब महाराज दानापुर गये थे तब बहुत दिनों तक रोगी रहने के कारण उनका शरीर कृश हो रहा था और इस समय वह हृष्ट-पुष्ट थे। जब महाराज ने उनको नमस्ते कह कर स्वागत किया तब बोली से उन्होंने पहचाना। उस समय महाराज आर्यसमाज के उत्सव में जाने को तैयार थे। उन्होंने

आगन्तुकों से कहा कि आर्यसमाज में इस समय हवन होने वाला है आप शीघ्र स्नान करके चलने के लिये तैयार हो जाइये। इस पर वह शीघ्र ही निवृत्त होकर महाराज के साथ उत्सव में गये।

चतुर्मुख ब्रह्मा

वहाँ एक ब्राह्मण ऐसा था जिसे चारों वेद सस्वर कण्ठ थे। महाराज ने दानापुरवालों से कहा कि तुम लोग सुनते रहे हो कि ब्रह्मा के चार मुख हैं सो यही चतुर्मुखी ब्रह्मा है। उसीको यज्ञ में ब्रह्मा का आसन दिया गया था।

मनोहर सामगान

सायङ्काल को महाराज ने वेद विषय पर व्याख्यान दिया। उससे पहले एक दक्षिणी ब्राह्मण ने तारपूरे पर सामवेद का गान किया जिसे सुनकर लोग मुग्ध हो गये। उसने एक समाँ बाँध दिया। डाकखाने का एक बड़ा अफ़सर भी अपने परिवारसहित उपस्थित था। वह भी सुन कर चकित रह गया। उत्सव में महाराज का एक व्याख्यान संस्कृत में भी हुआ था। उसमें उन्होंने कहा था कि मनु का दण्ड-विधान आजकल के दण्ड-विधान से अच्छा था। उस से चोर आगे को चोरी करने से डरता था अब तो वह उससे प्रेम करता है, उसे जेल में घर से भी अच्छा भोजन मिलता है।

स्वयमेव शंका-समाधान हो गये

बाबू जनकधारीलाल वास्तव में महाराज से अपनी शङ्काओं के निवारण करने के लिये ही बम्बई गये थे जो उनके मन में समय २ पर उठती रही थीं। उन्होंने अपने बम्बई जाने का उद्देश्य महाराज से प्रकट न किया था परन्तु महाराज ने उनसे स्वयं ही कहा कि आप कुछ प्रश्न पूछने के लिये आये हैं। उन प्रश्नों को आप एक काग़ज़ पर लिखलें ऐसा न हो कि फिर उन्हें भूल जायं। वह प्रश्न लिखने बैठे परन्तु जो प्रश्न लिखते थे उसका उत्तर तत्काल ही उन्हें भासित हो जाता था अन्त को एक प्रश्न भी ऐसा न रहा जिसका उत्तर उन्हें भासित न हो गया हो। जब महाराज ने पूछा कि कहिये क्या पूछना है तो उन्होंने

उपासना की रीति

केवल यही कहा कि परमेश्वर की उपासना किस रीति से करनी चाहिये। महाराज ने उत्तर दिया कि हमने वह रीति आप को और आप के साथियों को दानापुर में जोन्स साहब के बंगले पर बताई थी। उन्होंने कहा जैसी रीति आप ने बताई थी मैं उसी के अनुसार करता हूँ। महाराज ने कहा तुम नहीं करते, हमारे सामने करके दिखलाओ। उन्होंने प्राणायाम किया तो महाराज ने कहा कि जब तुम भीतर की वायु को बाहर फेंकते हो तो तुम्हारा मूलाधार ऊपर को उठ जाना चाहिये सो तुम से नहीं बनता। अच्छा तुम जैसे करते हो वैसे ही करते

मन की एकाग्रता का उपाय

रहो। फिर उन्होंने पूछा कि मन स्थिर नहीं होता। महाराज ने कहा कि उसे एक जगह ठहरालो। बाबू जनकधारीलाल ने कहा कि नहीं ठहरता, क्या इसके लिये किसी वस्तु का ध्यान करने की आवश्यकता है। महाराज ने कहा कि नहीं, और यदि यह तुम से नहीं हो सकता तो अपने भीतर किसी तिल वा सुई की नोक के बराबर किसी वस्तु की कल्पना कर लो और उस पर ध्यान जमाओ, फिर उसके टुकड़े करके एक टुकड़े पर ध्यान जमाओ।

ऐसे ही टुकड़े करते चले जाओ यहां तक कि अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा रह जाय फिर उसे भी उड़ादो। तब तुम्हारी धारणा हो जायगी। महाराज समाधि के विषय पर भी कहना चाहते थे परन्तु बा० जनकधारीलाल ने कहा कि अब इतना ही पर्याप्त है, जब इतना अभ्यास हो आवेगा तब आगे को पत्र द्वारा पूछ लूँगा। महाराज ने कहा कि मैं पत्र का उत्तर न दे सकूँगा, तो बा० जनकधारीलाल ने कहा कि जब आप दानापुर के निकट आयेंगे तब मिलकर पूछ लूँगा।

यम-नियम का सेवन करो

पं० आदित्यनारायण ने भी महाराज से उपासना में मन लगाने की विधि पूछी। महाराज ने उनसे कहा कि यम नियम का सेवन करो। उन्होंने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रश्न को किया और महाराज ने हर बार यही उत्तर दिया। पंडितजी इस पर कुछ चिढ़े कि हमारा आना व्यर्थ हुआ, कुछ भी पल्ले न पड़ा। फिर उन्होंने सोचा कि महाराज के इस उत्तर का क्या कारण है तो उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो गया। वह एक मुकदमे में झूठी साक्षी देकर आये थे और फिर भी देने वाले थे। बस यही कारण महाराज के यम-नियम पर इतना बल देने का था। महाराज यह वृत्त अपनी योग विभूति से जान गये थे।

एक मुकदमे में झूठी साक्षी देकर आये थे

सेठ के लज्जालु पुत्र को उपदेश

एक दिन एक सेठजी आये। उनका दशवर्षीय पुत्र भी उन के साथ था। वह अत्यन्त लज्जालु था। किसी प्रकार महाराज ने उसे अपने पास बुलाया और उसे कहा कि तुम नित्य सवेरे उठकर और मुँह हाथ धोकर अपने माता पिता को नमस्ते किया करो और पाठशाला जाते हुए अपनी पुस्तकें स्वयं ले जाया करो, नौकर से मत लिवा जाया करो। यदि मार्ग में कोई स्त्री तुम्हें मिल जाय तो उसकी ओर दृष्टि जमा कर मत देखो, अपनी दृष्टि नीची कर लो, नहीं तो उस स्त्री की आकृति तुम्हारे मन में घुस कर एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न करेगी और तुम्हें धातु क्षीणता का रोग हो जायगा जिससे तुम्हारा बहुत अनिष्ट होगा।

पेंशनर ब्राह्मण को उपदेश

एक दिन एक ब्राह्मण आया। उससे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह सरकारी सेवा में था और उस समय पेंशन पाता था। वह कुछ संस्कृत भी जानता था। महाराज ने उससे कहा कि देखो तुमने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है तुम्हें इस अवस्था में जगत् का उपकार करना चाहिये। आज कल ईसाई पादरी कोल-भीलादि को ईसाई बना रहे हैं, तुम्हें उन्हें ईसाई होने से बचाना चाहिये। परन्तु वह उद्यत न हुआ और यही कहता रहा कि पुत्र कलत्र की चिन्ता के कारण वह उपदेश-कार्य नहीं कर सकता। महाराज ने यह भी कहा कि तुम्हारी पेंशन तुम्हारे पुत्र कलत्र के भरण पोषण के लिये पर्याप्त है, परन्तु महाराज के उपदेश का बीज उसकी ऊसर-हृदय भूमि में अंकुरित न हुआ।

ऐसी २ घटनाओं से विदित होता है कि महाराज को देशहित की कितनी चिन्ता थी। वह जब कोई अवसर लोगों को देशहित साधन के लिये प्रेरित करने का देखते थे तो उसे हाथ से न जाने देते थे।

आर्यसमाज के सभासदों को कुछ काल से आर्यमन्दिर बनाने की चिन्ता थी। इसके लिये उन्होंने १००० गज़ भूमि भी क्रय कर ली थी। महाराज यदि चाहते तो मन्दिर के लिये बहुत कुछ धन एकत्र हो सकता था, परन्तु महाराज समझते थे कि एक धर्मोपदेशक की स्थिति से उनका यह काम नहीं है।

१०००) में से ९००) वापस कर दिये

एक दिन एक मारवाड़ी जो उनसे बहुत अनुरक्त था उनके पास आया। वह दलाली का व्यवसाय करता था। उसने कहा कि मैं इस सत्कार्य के लिये कुछ रुपया देना चाहता हूँ। महाराज ने पूछा कि कितना, तो उसने १०००) का एक नोट निकाल कर महाराज के सामने रख दिया। महाराज ने उसके मुख की ओर देखकर और उसके वेशादि से उसकी अवस्था का अनुमान करके उससे कहा कि तुम्हारे पुत्र कलत्र भी होंगे और अन्य व्यय भी होंगे अतः तुम ९००) लेजाओ और १००) ही दो। उसने १०००) देने पर आग्रह भी किया परन्तु महाराज ने १००) ही रक्खे और ९००) वापस कर दिये। वह महाराज की सहृदयता और न्यायपरायणता के कारण महाराज के प्रति और भी अनुरक्त हो गया और महाराज की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ चला गया *।

आर्यसमाज के नियमों में परिवर्तन

इसी बार आर्यसमाज बम्बई के पुराने नियमों में परिवर्तन किया गया। पहली बार जो नियम बनाये गये थे वह बहुत विस्तृत थे। जब आर्यसमाज लाहौर स्थापित हुआ तो उन नियमों की जगह आर्यसमाज के प्रचलित नियमोपनियम बनाये गये। वह समस्त आर्यसमाजों के लिये थे। इस वार जब महाराज बंबई पधारे तो उन्होंने पुराने नियमों के स्थान में आर्यसमाज बंबई में भी उन्हीं नियमोपनियमों को प्रचरित करने का प्रस्ताव किया। आर्यसमाज बंबई की अन्तरङ्ग सभा ने तो उक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिये, परन्तु साधारण सभा से भी उसकी स्वीकारी उचित समझी गई। उक्त सभा ने भी उसे स्वीकार कर लिया, परन्तु यह निश्चय किया कि यदि आर्यसमाज बंबई की विशेष अवस्था को दृष्टि में रखते हुए उक्त उपनियमों में किसी परिवर्त्तन की आवश्यकता हो तो वह कर लिया जावे और इसके लिये ५ सज्जनों की एक कमेटी नियत कर दी गई जिसने देशकाल की अवस्था के अनुसार उपनियमों में कुछ परिवर्त्तन कर दिये। नियम वही रहे जो सब समाजों के लिये बनाये गये थे।

पादरी जोजेफ़कुक को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान

जोज़ेफ़ कुक नामक एक पादरी ने थियोसोफ़ी और वैदिक धर्म पर अपने एक व्याख्यान में कुछ आक्षेप किये थे। इस पर १८ जनवरी सन् १८८२ को महाराज ने पादरी साहब को एक पत्र अंग्रेज़ी में लिखाया था। जोज़ेफ़ कुक ने अपने व्याख्यान में कहा था कि क्रिश्चैनिटी ईश्वरमूलक धर्म है, क्रिश्चैनिटी की नियति यह है कि वह सारे संसार में फैले और अन्य कोई धर्म भी ईश्वरमूलक नहीं है। इस पर उक्त पत्र

* स्वामी सत्यानन्द कृत दयानन्दप्रकाश में भी इस घटना का उल्लेख है, परन्तु उसमें १०००) की जगह १००००) और १००) की जगह १०००) हैं।

द्वारा महाराज ने पादरीसाहब को लिखा था कि मैं आगामी रविवार (२२ जनवरी) को फ्रामजी काउसजी हाल में व्याख्यान दूंगा आप उसमें आकर मुझसे शास्त्रार्थ कर लीजिये। अन्त में लिखा था कि सब (शास्त्रार्थ) पुस्तकाकार हो जायगा ताकि सर्व साधारण यह निर्णय कर सकें कि कौन सा धर्म ईश्वरमूलक है ॐ।

इस पत्र का कोई उत्तर न देकर पादरी साहब २० जनवरी को ही पूना चले गये।

पादरी साहब ने कोई उत्तर न दिया

महाराज ने अपने व्याख्यान में क्रिश्चैनिटी का खण्डन करके वैदिक धर्म का ईश्वरोक्त होना सिद्ध किया था। २० जनवरी को कर्नल आल्काट ने अपने व्याख्यान में जोज़ेफ कुक के उन आक्षेपों का उत्तर दिया था जो उन्होंने थियोसोफी पर किये थे। महाराज भी उस व्याख्यान में गये थे।

विचित्र किंवदन्ती

एक बार एक संन्यासी मङ्गलगिरि ने बम्बई में कहा था कि जब स्वामी दयानन्दजी मथुरा में अध्ययन कर रहे थे तो एक दिन वह गोकुल गये थे और वहां वल्लभ-संप्रदाय के एक मन्दिर में उन्होंने प्रवेश करना चाहा था परन्तु मन्दिर के अधिकारियों ने उन्हें मन्दिर में घुसने नहीं दिया था और यह कहा था कि इस मन्दिर में केवल गृहस्थ लोग ही प्रवेश कर सकते हैं, संन्यासी नहीं जा सकते। इस पर दयानन्द सरस्वती अत्यन्त रुष्ट होकर चले आये थे और इसी बात से खिजकर उन्होंने मूर्त्तिपूजा और विशेषतः वल्लभ संप्रदाय के मत का खण्डन करना आरम्भ किया था।

समालोचना

यह घटना सत्य हो सकती है परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि इसी घटना के कारण उन्होंने मूर्त्तिपूजा और वल्लभ मत के विरुद्ध शस्त्र धारण किये किसी अंश में भी ठीक नहीं हो सकता। मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध तो अंकुर उनके हृदय में उसी स्मरणीय शिवरात्रि को उत्पन्न हो गया था, जब उन्होंने शिवमूर्त्ति पर मूषक को नैवेद्य खाते देखा था और पीछे आकर शास्त्रालोचन से यह अंकुर पल्लवित और वृद्धिगत होता गया। किसी मन्दिर के अधिकारियों का दुर्व्यवहार मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध युद्ध का कारण नहीं हो सकता। यदि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा को सत्य समझते तो वह उसके प्रचार में कभी भी कुण्ठित न होते चाहे किसी मन्दिराध्यक्ष ने इनके साथ कितना ही दुर्व्यवहार और अत्याचार किया होता।

स्वामीजी का जीवन बड़ा पुरुषार्थमय था वह आलस्य और अकर्मण्यता के परम शत्रु थे। दूसरों को भी वे यही उपदेश देते रहते थे कि निकम्मे और ठाली न पड़ो

ॐ उक्त पत्र के अन्तिम वाक्य में महाराज यह लिखाना चाहते थे कि "ताकि सर्व साधारण यह निर्णय कर सकें कि कौन सा धर्म ईश्वरमूलक (Which religion is of divine origin) है। परन्तु कर्नल आल्काट ने इन शब्दों के स्थान में यह लिख दिया कि कौन सा धर्म सब से अधिक ईश्वरीय भावसम्पन्न है (Which religion is most divine) जब महाराज को दूसरे सज्जन से पत्र का आशय ज्ञात हुआ तो उन्होंने कर्नल के प्रति विरक्ति प्रकट की और फिर पत्र के उस अंश को ठीक कराया।

उपकार के बदले प्रत्युपकार करो

रहना चाहिये। दूसरे के उपकार के बदले प्रत्युपकार करना चाहिये, दानभोजी व्यक्तियों को वे सदैव कहते रहते थे कि जिन लोगों के दान से तुम पुष्ट होते हो उनके हित के लिये तुम्हें सदा यत्नशील रहना चाहिये।

ठाली रहकर मत खाओ

एक पंजाबी स्वामीजी के दर्शनार्थ बम्बई पहुँचा, स्वामीजी ने सत्कारपूर्वक उसे अपने पास ठहराया। वह कई दिन ठहरा रहा, उसका काम यह था कि दिनभर नगर में घूम आना और रात्रि में आनन्द से सो जाना। स्वामीजी ने जब उसकी यह दशा देखी तो एक दिन उससे कहा कि आलसी होकर दूसरे का अन्न खाते रहना और व्यर्थ समय खोना मेरे सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है आप जब तक यहाँ रहें कम से कम इतना तो किया कीजिये कि मुझे अंग्रेजी समाचार पत्र सुना दिया कीजिये।

शिष्टाचार की शिक्षा

एक दिन एक बंगाली सज्जन महाराज के दर्शनों को आया, उसके दाढ़ी थी। गुजरात में हिन्दू दाढ़ी नहीं रखते, वह सज्जन स्वामीजी से बात-चीत करता रहा। थोड़ी देर के पश्चात् उसने जल पीने की इच्छा प्रकट की तो महाराज ने अपने गुजराती शिष्य को जल लाने के लिये कहा। शिष्य ने समझा कि आगन्तुक मुसलमान है और इसलिये उसने आगन्तुक को दौने में पानी पिलाया। जब वह चला गया तो महाराज ने शिष्य को बहुत झिड़का कि तुम्हें अभी तक सभ्यता के साधारण नियम भी ज्ञात नहीं, तुमने उस अतिथि को ग्लास में जल क्यों नहीं पिलया ? शिष्य ने कहा कि महाराज मैं एक मुसलमान को बर्तन में पानी कैसे पिलाता। महाराज बोले कि वैसे तो वह मुसलमान नहीं था, प्रत्युत एक बड़ा भारी जमींदार था। मेरे पास मुसलमान और ईसाई सभी आते हैं तुम्हें सबका ही आदर करना चाहिये, भविष्य में जब कोई अतिथि जल मांगे तो उसे ग्लास में पानी दिया करो चाहे वह किसी मत का हो।

श्यामजीकृष्ण वर्मा

श्यामजीकृष्ण वर्मा एक अत्यन्त होनहार और कुशाग्र-बुद्धि नवयुवक था और संस्कृत में उसकी बड़ी अच्छी प्रगति थी। वह अपने कालिज में सब से अच्छा समझा जाता था। जब कभी कोई संभ्रान्त व्यक्ति कालिज का निरीक्षण करने आता था तो प्रिन्सिपल श्यामजीकृष्ण वर्मा को उसके सामने अवश्य पेश करते थे और वह अपने उत्तरों से सब को चकित कर देता था। वह किसी समृद्ध व्यक्ति का पुत्र न था। स्वामीजी उसके चातुर्य को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वह स्वामीजी के पास आने जाने लगा और उन्हें अपना गुरु मानने लगा। स्वामीजी को उससे यह आशा हुई कि यदि उसे शिक्षणार्थ विलायत भेजा जाय तो उससे वैदिक धर्म के प्रचार-कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी। इसी विचार से प्रयत्न करके उसे विलायत भिजवाया। वहाँ जाकर उसने बहुत दिनों तक स्वामीजी को कोई पत्र नहीं लिखा, तब स्वामीजी ने उसे

स्वामीजी का संस्कृत-पत्र

मेरठ से संस्कृत में एक पत्र लिखा जिसमें अन्य प्रश्नों के अतिरिक्त ये प्रश्न भी उससे पूछे कि इसका क्या कारण है कि धर्म्मोपदेश करने में अभी तक इङ्गलिस्तान में तुम्हारी प्रसिद्धि नहीं फैली। इस का या तो यह कारण हो कि मैं दूर हूँ और तुम्हारी ख्याति मुझे ज्ञात न हुई हो या यह कि

तुम्हें इस काम के लिये अवकाश न मिलता हो। हमारे मित्र प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स की और मैक्समूलर साहब की सम्प्रति वेद-शास्त्र के सम्बन्ध में क्या सम्मति है? और इनकी और औरों की वेदभाष्य के सम्बन्ध में जो मैं इन दिनों कर रहा हूँ क्या सम्मति है?

पत्र पर मोनियर विलियमस मुग्ध

श्यामजीकृष्ण वर्मा ने वह चिट्ठी प्रोफ़ेसर मोनियर विलियमस को दिखाई जिसकी सरल, सुबोध और ललित संस्कृत को देखकर वह इतने मोहित हुए कि उन्होंने उसका अंग्रेजी अनुवाद एथिनियम नाम के पत्र के २३ अक्तूबर सन् १८८० के अंक में प्रकाशित कराया और इस चिट्ठी को आदर्श मानते हुए लिखा कि संस्कृत भाषा अभी तक आर्यावर्त

संस्कृत मृत भाषा नहीं है

के पत्र-व्यवहार और दैनिक बोलचाल की भाषा है। आर्यावर्त भर में शिक्षित मनुष्यों के बीच में यही भाषा विचार-विनिमय का माध्यम है। आर्य्यावर्त में लगभग २०० भाषायें बोली जाती हैं। यदि यह माध्यम न होता तो एक प्रान्त के मनुष्य को दूसरे प्रान्त के मनुष्य से बातचीत करने में अत्यन्त कठिनता होती। ऐसी दशा में जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत भाषा अप्रयुक्त और अवनत दशा में है वह भूल करते हैं।

मोनियर विलियम्स द्वारा स्वामीजी की प्रशंसा

श्यामजीकृष्ण वर्मा का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा था कि उसने ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा पाई है जो केवल प्राचीन संस्कृत भाषा के ही विद्वान नहीं बल्कि जिन्होंने मूर्त्तिपूजा आदि का खण्डन और एक ईश्वर की पूजा का समर्थन करके सारे धर्म-सम्प्रदायों में बड़ी हलचल डाल दी है। स्वामीजी शुद्ध एकेश्वरवाद के मानने वाले हैं और अपने धार्मिक सिद्धान्तों को वेद पर निर्भर करते हैं। इस प्रगति-समर्थक देशोद्धारक का नाम 'दयानन्द सरस्वती स्वामी' है जिनके भाषण के लालित्य और लेख की गंभीरता का मैं स्वयं साक्षी हूँ, क्योंकि जब मैं बम्बई में था तो मैंने प्रशंसित स्वामीजी को आर्यसमाज के उत्सव में धर्मविषय पर उपदेश देते सुना था।

श्यामजीकृष्ण वर्मा की अकृतज्ञता

श्यामजीकृष्ण वर्मा शिक्षा समाप्त करके और बैरिस्टरी पास करके भारत वापस आगये। वह उदयपुर, रतलाम आदि कई देशी राज्यों में उच्च पदों पर रहे। उन्होंने पुष्कल धन संग्रह किया, परन्तु आर्यसमाज के कार्य्यों में न कभी सहयोग दिया, न कभी किसी प्रकार की सहायता की। अन्त में वह विलायत चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया और वह क्रान्तिकारी दल के नेता समझे जाने लगे जिससे ब्रिटिश सरकार की उन पर कड़ी दृष्टि रहने लगी; तब वह पकड़े जाने के भय से पैरिस चले गये। अन्त को योरुप के किसी नगर में ही उनका देहान्त होगया।

दयानन्द-प्रकाश

दयानन्द-प्रकाश में ऐसा लिखा है कि एक दिन मोनियर विलियम्स स्वामीजी से मिले और उनसे बातचीत करके बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि आपके विचारों का प्रचार योरुप में भी होना चाहिये। यदि आप योरुप जाने का सङ्कल्प करें तो आपका व्यय-भार मैं

अपने ऊपर लेता हूँ। उसके उत्तर में महाराज ने उन्हें धन्यवाद दिया और कहा कि भारत में अविद्यान्धकार फैला हुआ है, यहाँ सुधार की परम आवश्यकता है। फिर विना अंग्रेजी सीखे वहाँ जाना व्यर्थ है और इसमें बहुत समय लगेगा। पुनः आयु भी अधिक शेष नहीं है। इन कारणों से योरुप जाना नहीं बन सकता।

भ्रम-संशोधन

दयानन्द-प्रकाश का यह लेख भ्रमोत्पादक है। मोनियर विलियम्स इन दिनों भारत में ही नहीं थे। ऊपर लिखा जा चुका है कि अक्तूबर सन् १९८० में उन्होंने स्वामीजी के संस्कृत-पत्र का जो स्वामीजी ने श्यामजीकृष्ण वर्मा को लिखा था अनुवाद एथिनियम पत्र में छपवाया था। उनका स्वामीजी से साक्षात् केवल एक बार ही हुआ था और वह सन् १९७४-७५ में जब स्वामीजी प्रथम बार बम्बई गये थे। इसका विवरण पहले आ चुका है। मोनियर विलियम्स ने स्वयं इस मिलन का उल्लेख अपने उस लेख में किया है जो उन्होंने स्वामीजी के पूर्वोक्त पत्र के साथ उक्त समाचार पत्र में छपाया था।

स्वामीजी का सुधार-कार्य्य सर्वग्राही था। उसमें धार्म्मिक, सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, नीतिक, शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकार का सुधार सम्मिलित था। वह चाहते थे कि आर्य जाति सब प्रकार से समुन्नत हो। वह समाज के देह में से सब प्रकार के रोगों को दूर करना चाहते थे, वह समाज के मस्तिष्क को सब विकारों से मुक्त करना चाहते थे। इसी लिये उन्होंने आर्यसमाज का एक नियम यह रक्खा था कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् आत्मिक, सामाजिक और शारीरिक उन्नति करना।

स्वामीजी और गोरक्षा

उन्होंने देखा कि गोरक्षा आर्य्यावर्त की उन्नति का मूल है। गोवध से देश की भयंकर हानि हो रही है। दूध, घी दिन प्रतिदिन महँगा हो रहा है और पर्य्याप्त मात्रा में लोगों को खाने को नहीं मिलता। इसी से उनके शरीर दुर्बल और निर्बल होते चले जा रहे हैं, अनेक प्रकार के रोग उन्हें घेर रहे हैं। कृषि के लिये बलवान् और पुष्ट बैल नहीं मिलते, उनकी संख्या भी कम हो रही है और किसान लोग भूखों मर रहे हैं।

गोवध रोकने का यत्न

अतः उन्होंने गोरक्षा को भी अपने सुधार-कार्य का एक प्रधान अङ्ग बना लिया था। गोरक्षा पर उन्होंने स्थान २ पर व्याख्यान दिये। गोकरुणानिधि पुस्तक लिखी। राजपूताने के एजेंट से, पश्चिमोत्तर प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर म्योर साहब से गोवध बन्द करने का अनुरोध किया था। उनके व्याख्यानों को सुनकर बीसियों मुसलमान और ईसाई गोरक्षा के समर्थक हो गये थे। महाराज ने अन्त को यह विचार किया कि यदि तीन करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षरों से एक निवेदन पत्र भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया की सेवा में भेजा जाय तो संभव है कि गोवध बन्द हो जाय। इसी विचार से उन्होंने चैत्र कृष्ण ९ सं० १९३८ को एक विज्ञापन बम्बई से गोरक्षा के लाभ और गोवध की हानियाँ दिखाते हुए और निवेदन पत्र के लिये हस्ताक्षर करने के लिये प्रचरित किया और उसे सब आर्यसमाजों में तथा देश के राजों महाराजों और संभ्रान्त व्यक्तियों के पास भेजा और बड़े बल से कार्य्यारम्भ किया।

मेमोरियल स्वयं लेकर जायेंगे

कहते हैं कि महाराज का यह विचार था कि वह विलायत जाकर स्वयं उस निवेदन पत्र को महाराणी की सेवा में प्रस्तुत करेंगे।

निवेदनपत्र के लिये आर्य्यसामाजिक पुरुषों ने बड़े उत्साह से कार्य किया। लाखों हस्ताक्षर कराये, परन्तु महाराज का अक्तूबर सन् १८८३ में देहान्त हो गया, अतः वह निवेदनपत्र न भेजा जा सका और सारा श्रम विफल रहा।

गोकृषि-रक्षिणी सभाएं

स्वामीजी ने अनेक स्थानों पर गोकृषिरक्षिणी सभाएं स्थापित की थीं जिनका काम कुछ दिन तक बहुत अच्छी तरह से चला परन्तु फिर शिथिल पड़ गया।

राष्ट्रभाषा-प्रचार

स्वामीजी की दिव्य दृष्टि ने देख लिया था कि सारे भारतवर्ष में एक भाषा का प्रचार होना चाहिये क्योंकि ऐसा हुए विना न धर्म प्रचार का ही कार्य्य सुगमता से हो सकता है और न जातीयता के भावों का संचार ही हो सकता है। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा होने की केवल हिन्दी (आर्यभाषा) में ही योग्यता है। इसी विचार से गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में ही लिखे, व्याख्यान भी उसी भाषा में दिये, पत्र-व्यवहार भी उसी भाषा में किया। आर्यसमाजियों को उसके लिखने की रुचि दिलाई। स्वामीजी और उनके अनुयायियों के द्वारा आर्यभाषा का जो प्रचार और विस्तार हुआ है उसके लिये देश सदा ऋणी रहेगा। पंजाब जैसे उर्दू-आक्रान्त देश में आर्य-भाषा के प्रचार का सेहरा सदा के लिये आर्यसमाजियों के सिर रहेगा। जहाँ पहले यह दशा थी कि यदि किसी पत्र का पता नागराक्षरों में लिखा होता था तो वह वापस डेड-लेटर आफिस चला जाता था वहाँ आज आर्यभाषा में समाचार-पत्र और पुस्तकें प्रका-शित होती हैं और आर्यभाषा जानने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जाती है।

उदयपुर

महाराज बम्बई से जब लौटे तो रतलाम आये। वहाँ से उन्होंने महाराणा सज्जनसिंह को सूचना दी कि हम उदयपुर आते हैं। महाराणा ने उत्तर भेज दिया कि हमारे राज्य में किसी स्थान पर भी पहुँचने की सूचना देने से राज्य की ओर से सवारी आदि का प्रबन्ध हो जायगा। रतलाम से जावरा होते हुए रेल में सवार होकर २५ जुलाई सन् १८८२ को महाराज चित्तौड़ पहुँच गये। वहाँ के हाकिम ने उनका प्रेम और श्रद्धापूर्वक आतिथ्य किया। चित्तौड़ से महाराज ने अपने आगमन का समाचार महाराणा के पास भेज दिया और उन्होंने मार्ग के सब कर्म्मचारियों को आज्ञा देदी कि स्वामीजी को मार्ग में कोई कष्ट न होने पावे। महाराज चित्तौड़ से रेल पर सवार होकर नींबाहेड़ा पहुँचे। महाराणा ने नींबाहेड़ा पर सवारी भेजने का प्रबन्ध कर दिया था, परन्तु श्रावण का महीना था, वर्षा हो रही थी, इस कारण सवारी के पहुँचने में विलम्ब हुआ।

नींबाहेड़ा के राजकर्म्मचारियों ने महाराज के लिये पालकी का प्रबन्ध कर दिया। महाराज शरीर से हृष्ट-पुष्ट थे, पालकी उनका भार सहन न कर सकी और थोड़ी दूर

बोझ से पालकी टूट गई चल कर टूट गई। अतः महाराज को कई कोस पैदल चलना पड़ा। फिर हाथी और बग्घी जो उदयपुर से महाराज के लिये भेजे गये थे मिल गये और महाराज उन पर सवार होकर ११ अगस्त १८८२ को सकुशल उदयपुर पहुँच गये। महाराणा की ओर से उनका समारोहपूर्वक स्वागत किया गया और उन्हें नौलखा बाग़ में जो उस समय सज्जननिवास के नाम से अभिहित था उतारा गया। महाराणा ने महाराज की सेवा-शुश्रूषा का भार धर्म्मसभा को सौंप दिया था और उसके सभापति ने सब प्रबन्ध कर दिया था। थोड़े दिन रहने के पश्चात् महाराज ने अन्यत्र जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु महाराज ने उनसे उदयपुर में ही चातुर्मास्य करने का अनुरोध किया और उन्होंने भी महाराणा के अनुरोध की रक्षा करना उचित समझा।

महाराणा का अनुराग जिस दिन महाराज उदयपुर पहुंचे उससे अगले दिन महाराणा अपने परिषद्वर्ग के साथ महाराज की अभ्यर्थना को आये और कुछ दिन पीछे एकबार प्रातःकाल और एक बार सायङ्काल के पश्चात् श्रीसेवा में उपस्थित होने लगे। महाराज प्रतिदिन प्रातः काल गोवर्धन-विलास पर्वत की ओर घूमने जाया करते थे। भ्रमण करके जब लौटते थे तो बाग़ से गोल चबूतरे पर बैठ कर कुछ देर तक ध्यानावस्थित हो जाते थे। यदि किसी दिन महाराणा अधिक सवेरे आ जाते थे तो वह महाराज के ध्यान भङ्ग होने तक बाग़ में टहलते रहते थे। जब महाराज ध्यान से उठते तो उनके पास आकर बातचीत करते। किसी किसी दिन महाराज को अपने साथ गाड़ी में सवार कराकर बाग़ में घूमते और वार्त्तालाप करते रहते। महाराणा के चले जाने के पश्चात् महाराज महल में जाकर ब्राह्मीपाक खाते और दुग्ध पान करते और वेद-भाष्य के कार्य्य में लग जाते।

महाराणा का पठन पं० मोहनलाल के एक साथी थे जिनका नाम जगन्नाथ झारखण्डी था। पण्डितजी और उनके साथी ने महाराज से रात्रि में दर्शनशास्त्र पढ़ने आरम्भ किये। इन्हें देखकर महाराणा की इच्छा भी संस्कृत पढ़ने की हुई। जब उन्होंने उसे महाराज से प्रकट किया तो महाराज ने उन्हें पढ़ाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। महाराज ने उन्हें मनुस्मृति ७,८,९ अध्याय पढ़ाये। महाराणा संस्कृत नहीं जानते थे इसलिये महाराज श्लोकों का पदच्छेद और सन्धि आदि स्लेट पर लिखा दिया करते थे। दो तीन मास में ही महाराणा को संस्कृत का साधारण ज्ञान होगया था और वह सरल श्लोक, कविता आदि समझने में समर्थ हो गये थे। महाराणा ने मनु-स्मृति के उपर्युक्त तीन अध्यायों के अतिरिक्त महाभारत के उद्योग और वनपर्व के वह अंश जिनका सम्बन्ध चरित्रगठन और राजनीति से है तथा षड्-दर्शन के संगृहीत अंश और विदुर प्रजागरादि नीति और राजनीति के मर्म महाराज से पढ़े।

दशहरे का उत्सव क्रमशः दशहरे का उत्सव आगया। महाराणा की यह रीति थी कि दशहरे के उत्सव में प्रति दिन नवीन वस्त्र पहन कर जाया करते थे और उत्सव से लौटते समय महाराज के पास आया करते थे। एक दिन महाराज भी उत्सव देखने पधारे थे। महाराज महाराणा को पुराने ढंग के

वस्त्र पहने हुए देखकर बहुत प्रसन्न होते थे क्योंकि उनकी पुरानी बातों में बहुत आस्था थी। महाराज महाराणा से वस्त्रों के नाम पूछा करते थे।

निरीह पशुओं की वकालत

उदयपुर में दशहरे के अवसर पर सैकड़ों भैंसे और बकरे मारे जाते थे महाराज इस हिंसाकार्य को देखकर चित्त में बहुत दुःखी थे। एक दिन जब महाराणा उत्सव से लौटते हुए महाराज के पास आये तो महाराज ने हँसी का भाव धारण करके कहा कि आप राजा हैं, न्यायाधीश हैं, मैं बकरे आदि पशुओं का वकील बन कर एक मुकद्दमा आपके सामने रखता हूँ। इनका मारना अन्याय है और इससे पाप के सिवाय और कोई लाभ नहीं। महाराणा ने महाराज की बात मान ली, परन्तु यह कहा कि पशुहत्या एक दम बन्द करने से कोलाहल मच जायगा, उसे धीरे धीरे बन्द करना होगा। ऐसा करने पर भी उसे कहां तक कम कर सकेंगे यह नहीं कहा जा सकता। इसके पश्चात् महाराज से परामर्श कर के महाराणा ने पशुहत्या किसी अंश तक कम कर दी।

बृहत् हवन

महाराज ने महाराणा से एक बृहत् हवन कराने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने उस के लिए सामग्री, घृत आदि का प्रबन्ध करा दिया और सुपठित ब्राह्मणों को उसके करने के लिये नियत कर दिया। यह हवन नील-कण्ठ महादेव के मन्दिर के निकट कई दिन तक होता रहा था और उसकी पूर्ण आहुति महाराज ने महाराणा के हाथ से दिलवाई थी। महाराज ने महाराणा के महल में भी प्रति दिन हवन होने की व्यवस्था कर दी थी। और इसके लिये महाराणा ने एक ब्राह्मण को नियत कर दिया था। परन्तु महाराणा की असमय मृत्यु हो जाने पर उन के उत्तराधिकारी को यह समझाकर कि गृह्य होम से ही महाराणा सज्जनसिंह की मृत्यु हुई उसे बन्द करा दिया।

राजकुमार का जन्म

महारानी गर्भवती थीं। एक दिन महाराज ने मौज में आकर महाराणा से कहा कि पुत्र होगा। महाराणा ने कहा कि यदि पुत्र न हुआ तो आप यहां से जाने न पायेंगे। परमेश्वर का ऐसा अनुग्रह हुआ कि पुत्र ही हुआ। इस पर महाराणा ने आनन्द-प्रकाशपूर्वक स्वयं अपने हाथ से महा-राज को पत्र लिखा और एक मोहर उनकी सेवा में भेजी। महाराज ने उस मोहर का रुपया और उस में कुछ रुपए अपनी ओर से मिला कर ग़रीबों में बाँट दिया।

महलों में वेश्या का नृत्य

महाराणा के महल में प्रायः वेश्याओं का नृत्य हुआ करता था। महाराज एका-न्त में उन्हें वेश्याओं के दोष समझाया करते थे। महाराज महा-राणा से कहा करते थे कि यदि संगीत की पिपासा है तो वह दूसरे प्रकार भी मिट सकती है। महाराज ने उन से कहा कि वेदगान कराया कीजिये, हम उसकी शिक्षा देने को उद्यत हैं। इस पर महाराणा ने अपने वेतनभोगी गायक इनायत खां को वेदगान सीखने का आदेश किया, परन्तु वह न सीख सका। पराड्या मोहनलाल ने कुछ वेदगान महाराज से सीखा था।

महाराज १२ बजे तक वेदभाष्य लिखाने में व्यस्त रहते थे, १२ बजे उठकर स्नान-

कार्यक्रम

भोजन करने के पश्चात् लेटते और दो चार करवटें लेकर उठ बैठते और चिट्ठियों के उत्तर लिखाते और प्रूफ़ देखते। चार बजे चबूतरे पर फ़र्श बिछ जाता और लोग आने लगते। थोड़ी देर में ही भीड़ लग जाती। प्रायः सभी धार्मिक संप्रदायों के मनुष्य आते और महाराज से प्रश्नोत्तर करते थे। व्याख्यान भी उसी चबूतरे पर होते थे। महाराणा भी प्रायः व्याख्यानों में उपस्थित होते थे। दीपक जलने के समय तक सभा रहती थी।

अमूर्त का ध्यान कैसे करें?

एक दिन जब महाराज प्रातःकाल ध्यान से उठे तो महाराणा ने उन से पूछा कि जब आप किसी मूर्त्तिमान् (उपास्य देव) को मानते ही नहीं तो ध्यान किस का करें। महाराज ने उत्तर दिया कि किसी मूर्त्तिमान् पदार्थ को मान कर ध्यान नहीं करना चाहिये। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वसृष्टि का कर्त्ता, सृष्टि को एक क्रम में चलाने वाला, नेता, पालनकर्त्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी है, उसका स्मरण कर के उसकी महिमा का ध्यान करना चाहिये परमेश्वर के गुणों का चिन्तन, उस की महिमा का वर्णन, संसार के उपकार में चित्तवृत्ति लगाने की प्रार्थना करना यही ध्यान है।

आप मन्दिर के महन्त बन जावें

एक दिन महाराणा ने एकान्तमें अत्यन्त विनम्र भाव से निवेदन किया कि राजनीति के सिद्धान्त के अनुसार आप को मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करना चाहिये। यह तो आप जानते हैं कि यह राज्य एकलिंग महादेव के अधीन है। आप एकलिंग के मन्दिर के महन्त बन जावें। कई लाख रुपये पर आप का अधिकार हो जावेगा और एक अर्थ में यह राज्य भी आप के अधीन रहेगा। महाराज बड़े शान्त प्रकृति के थे और उन्हें क्रोध बहुत कम आता था। परन्तु महाराणा के इस प्रस्ताव को सुन कर उन्हें आवेश आगया और कड़क कर बोले कि आप लोभ देकर मुझसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा भङ्ग कराना चाहते हैं। यह छोटा सा राज्य और उसके मन्दिर जिससे मैं एक दौड़ में बाहर हो सकता हूँ मुझे कभी भी वेद और ईश्वर की आज्ञा भङ्ग करने पर उतारू नहीं कर सकते। मैं कदापि सत्य को छोड़ वा छिपा नहीं सकता। आगे से आप विचार कर बात कहा करें। महाराणा महाराज के वचनों को सुन कर एक दम स्तम्भित हो गये, उन्हें कदापि ऐसे वचनों की आशा न थी। अन्त को महाराणा को यही कहते बना कि मैंने यह सब यह देखने के लिये कहा था कि आप इसके खण्डन पर कितने दृढ़ हैं। मुझे ज्ञात न था कि आप अपने विचारों पर इतने दृढ़ हैं। अब मुझे आप के दृढ़ विश्वास का पूर्व की अपेक्षा अधिक निश्चय हो गया।

मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता

इससे पूर्व भी महाराणा ने महाराज से कहा था कि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें इससे जन साधारण आप के विरुद्ध हो जाते हैं, आप नीति का अवलम्बन करके अन्य विषयों का उपदेश करें ताकि लोग शीघ्र आप की बात को मान लें। महाराज ने यह उत्तर दिया था कि मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता और न छिपा सकता हूँ चाहे कोई कितना ही विरोधी हो।

स्वदेशी चिकित्सा और स्वदेशी वस्त्र

महाराज कहा करते थे कि अपने देश के वैद्यों से चिकित्सा करानी चाहिये और स्वदेशी वस्त्र पहनने चाहियें।

आप का स्मारक चिन्ह बनना चाहिये

एक दिन कविराज श्यामलदास ने महाराज से कहा कि आप का कोई स्मारक चिन्ह बनना चाहिये तो उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा न करना, बल्कि मेरे शव की भस्म किसी खेत में डाल देना, काम आयगी, स्मारक न बनाना, ऐसा न हो कि मूर्त्ति का पूजन होने लगे। वीर्य्य के विषय में कहा करते थे कि वीर्य का नाश आयु का नाश है, यह वीर्य बड़ा रत्न है। यदि मार्ग में कोई स्त्री आ जाती तो महाराज उसकी ओर पीठ कर लिया करते थे। स्वामी गणेशपुरी एक साधु थे जो स्त्रियों को पढ़ाया और रागरंग कराया करते थे। उसके विषय में महाराज ने कहा था कि यह उसका ढोंग और व्यभिचार है। साधु को चाहिये कि स्त्री को आँख से भी न देखे क्योंकि यह ब्रह्मचारी की आँख में घुस जाती है।

वीर्य का नाश आयु का नाश है

हमें भडुवेपन की बातें नहीं रुचतीं

एक दिन एक मुसलमान वकील महाराज से बातें कर रहे थे। बीच में उन्होंने एक बार महाराज से प्रश्न किया कि यह जो अच्छे २ घरानों की सुन्दर २ स्त्रियाँ वेश्या बन जाती हैं इसका क्या कारण है? महाराज ने कुछ क्रुद्ध हो कर कहा कि हमें ऐसे भडुएपन की बातें नहीं रुचतीं, किसी अन्य से पूछना।

धर्म के कारण जागीर जाने दो

महाराज को मनुस्मृति पढ़ाते हुए महाराज ने कहा कि स्वामी की वह आज्ञा माननी चाहिये जो धर्मानुकूल हो, अधर्म के अनुकूल आज्ञा कभी नहीं माननी चाहिये। इस पर ठा० मनोहरसिंह जागीरदार सर्दारगढ़ ने कहा कि महाराणा हमारे स्वामी हैं, यदि हम इनकी धर्म के प्रतिकूल आज्ञा को न मानें तो यह हमारी जागीर छीन लें। महाराज ने उत्तर दिया कि कुछ चिन्ता नहीं। यदि धर्म्म के कारण धन वा जागीर चली जावे, अधर्म करने और अधर्म का खाने से तो भीख माँग कर खाना अच्छा है।

हें हें यह क्या उत्तर है?

एक दिन महाराज किसी से बातें कर रहे थे कि एक देशी ईसाई बीच में कहने लगा कि मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। महाराज ने कहा कि जब हम बात कर चुकें तब तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देंगे, परन्तु वह न माना और यही कहता रहा कि मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये। तब महाराज ने उपस्थित सज्जनों से कहा कि आप थोड़ी देर धैर्य रक्खें, पहले इसके ही प्रश्नों का उत्तर दे दूँ। फिर उससे कहा कि बोलो तुम्हारे क्या प्रश्न हैं? उसने कहा कि हम कहाँ से आये हैं, कहाँ हैं और कहाँ जायेंगे? महाराज ने उत्तर दिया कि तुम पोल में से आये हो, पोल में हो और पोल में जाओगे। वह कहने लगा कि हें हें यह क्या उत्तर है? महाराज ने कहा कि अलग बैठ कर सोचो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मिल गया। (ईसाई विश्वास के अनुकूल तो यह उत्तर समीचीन ही था—संग्रहकर्त्ता)।

महाराज ने चारण पाठशाला के विद्यार्थियों की एक दिन परीक्षा ली और उन्हें

विद्यार्थियों की परीक्षा

भोजन खिलाया और उपदेश दिया कि वेद-वेदाङ्ग पढ़ने का यत्न करना चाहिये।

सरदार-पाठशाला

महाराज ने यह भी प्रस्ताव किया था कि राज्य के सर्दारों के पुत्रों को शिक्षा के लिये एक पाठशाला होनी चाहिये जिसमें शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा दी जावे। यह प्रस्ताव महाराणा ने स्वीकार भी कर लिया था और पाठशाला के भवन का चित्र भी बन गया था, परन्तु पश्चात् महाराणा के रोगग्रस्त हो जाने के कारण आगे कुछ कार्य न हुआ।

पाठक्रम-निर्माण

महाराज ने सरकारी पाठशालाओं के लिये श्रेणीवार पाठ-क्रम भी बनाया था और उसे महाराणा ने प्रचलित कर दिया था।

नागराक्षर प्रचार

महाराज का यह भी प्रस्ताव था कि राज्य के न्यायालयों में सब कार्य देवनागरी लिपि में हो और जिससे इसमें सुगमता हो। उन्होंने अरबी भाषा के शब्दों के, जो न्यायालयों में प्रचलित थे संस्कृत के पर्यायवाची शब्द बतला दिये थे।

महाराणा के लिये दिनचर्य्या

महाराज ने महाराणा को निम्न प्रकार दिनचर्य्या का उपदेश किया था:—

शय्यात्याग, शौचादि, रात्रि के ३ बजे। शौच से निवृत्त होकर एक प्याला ठंढे जल का पीना वा रात्रि को चित्रक की छाल जल में भिगोकर प्रातःकाल उस जल को पीना। फिर एक घड़ी तक परमेश्वर की उपासना करना।

तत्पश्चात् पैदल वा घोड़े पर भ्रमण करना। पैदल भ्रमण करना अधिक अच्छा है। मार्ग में सब वस्तुओं को ध्यानपूर्वक देखना। हर वस्तु को ध्यानपूर्वक देखने की बान सारी आयु भर रखना अच्छा है।

भ्रमण से लौट कर दिन को जिस राजप्रासाद में रहें उस में घृत का हवन कराना।

दैनिक होम

हवन से न केवल वायु ही शुद्ध होती है प्रत्युत वृष्टि भी। हवन से वहां की ही शुद्धि नहीं होती जहां हवन होता है, उससे सब नगर को लाभ पहुँचता है और महान् उपकार होता है।

९ बजे तक राज्य का आवश्यक कार्य करना।

११ बजे तक भोजन और मनोविनोद।

१२ बजे तक विश्राम यदि इच्छा हो।

४ बजे तक न्यायकार्य।

तत्पश्चात् शौचादि से निवृत्त हो कर अश्वादि पर सवार होकर सेना, उद्यान, प्रासाद, नगर, सड़क आदि का निरीक्षण सूर्य्यास्त तक।

सूर्य्यास्त पर महल में आकर ग्रन्थादि पढ़ना, ईश्वराराधन वा विद्या-विज्ञान की बातें सुनना, विद्वानों से सत्संग व वार्त्तालाप करना, इतिहास का सुनना।

तत्पश्चात् भोजन करके आध घण्टे तक टहलना और फिर टहलते हुए गाना सुनना परन्तु इस ओर अधिक न झुकना चाहिये। कविता सुनना भी अच्छा है, परन्तु वह शृङ्गार रस की न हो।

फिर निश्चिन्त होकर पूरे छः घण्टे सोना। स्त्रियों के साथ न सोना। रति के लिये भी सप्ताह वा पक्ष का नियम रखना।

दिनचर्य्या का उपदेश देकर महाराज ने महाराणा से पूछा कि आप इस के अनुकूल कार्य्य करेंगे वा नहीं तो उन्होंने कहा कि अवश्य करूंगा और अगले ही दिन से उन्हों ने तदनुकूल आचरण करना आरम्भ कर दिया।

वेश्यागमन का त्याग

महाराज के उपदेश से महाराणा ने वेश्यागमन का कुव्यसन त्याग दिया था, बहु विवाह से भी उन्हें घृणा हो गई थी। उन्हीं दिनों एक स्थान से विवाह का प्रस्ताव हुआ था, परन्तु महाराणा ने उसे तुरन्त अस्वीकार कर दिया।

हमें ऐसे धंदों से क्या काम

एक दिन जब महाराणा से मिलकर महाराज चलने, लगे तो कोई पचास पैर ही गये होंगे कि कुछ पटेल लोग महाराज से मिले और उन से अपने मुक़द्दमे के सम्बन्ध में जो न्यायालय में चल रहा था कुछ कहा। महाराज ने भी उनके उत्तर में कुछ कहा और हाथ के संकेत से उन्हें चले जाने को कहा महाराणा भी कुछ अन्तर पर खड़े हुए यह दृश्य देख रहे थे। मौलवी अब्दुर्रहमान जज उनके साथ थे। महाराणा ने मौलवी को पटेलों के पास भेजा कि उनसे पूछो कि उनकी महाराज से क्या बातचीत हुई थी। वह गये तो पटेलों ने कहा कि हमने स्वामीजी से अपने मुकद्दमे के विषय में कहा था, परन्तु उन्होंने कहा कि हम साधु हैं, हमें राजदर्बार के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है, महाराणाजी से ही कहो। मौलवी साहब ने यह सब बातें महाराणा से आकर कहीं तो महाराणा ने कहा कि मैंने क्या कहा था। मौलवी, तुमने सांसारिक धंदों से सर्वथा पृथक् रहने वाला ऐसा पुरुष कोई देखा है ? ऐसा होना कठिन है।

ब्राह्मणों की जागीरें ज़ब्त करलो और जूते पहना दो

एक दिन महाराणा के सामने एक धर्मपुस्तक का कुछ अंश पढ़ा गया जिसका अभिप्राय यह था कि यदि कोई किसी ब्राह्मण को एक जोड़ी जूता पहना देवे तो उसे सारी पृथ्वी के दान करने का पुण्य होता है। महाराज भी उस समय उपस्थित थे। महाराज ने महाराणा से कहा कि यदि यह सच है तो आपने जो लाखों रुपये की जागीरें ब्राह्मणों को दे रक्खी हैं उन्हें स्वायत्त कर लीजिये और एक ब्राह्मण को जूते पहना दीजिये आप को सारी पृथ्वी के दान करने का पुण्य प्राप्त हो जायगा।

माला-जाप व्यर्थ है

महाराज माला जपने को भी व्यर्थ बतलाते थे और कहते थे कि यदि कोई राज्य-सेवा छोड़कर दर्बार के नाम की माला जपने लगे तो दर्बार उसे व्यर्थ समझेंगे या नहीं। राम राम के लगातार कहने से शब्द और अर्थ दोनों बिगड़ जाते हैं (मरा, मरा होजाता है) अतः मनुष्य को परमेश्वर के ध्यान और ज्ञान से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिये।

एक दिन प्रातःकाल महाराणा महाराज के पास आये और उन्हें अपने साथ बग्घी में बिठाकर महलों को ले गये। मार्ग में शीतला का मन्दिर पड़ता था। वहाँ कुछ स्त्री-पुरुष

मूर्तिपूजा खण्डन

एकत्र थे। महाराज ने उनके इकट्ठे होने का कारण पूछा उनसे कहा गया कि यह लोग शीतला की पूजा करने आये हैं। इस पर महाराज ने जो कुछ कहा उसका सार यह था कि जब कोई शिल्पी किसी वस्तु को बनाता है तो उससे उसकी कलाकुशलता तो अवश्य प्रकट होती है, परन्तु उसके यह अर्थ नहीं हैं कि शिल्पी स्वयं वा अन्य लोग उसकी पूजा करने लगें। जो वस्तु जिस कार्य के लिये बनाई जाय उससे वही कार्य लेना चाहिये। यह मूर्त्तियाँ पाषाण की हैं इनमें चैतन्य शक्ति का समावेश कैसे हो सकता है, खेद है कि दर्बार ने इन्हें कैसे होने दिया। इस पर महाराणा ने कहा कि मैं आपका अभिप्राय समझ गया, आपका यह उपदेश समय पाकर उत्तम फल देगा, परन्तु यदि मैं इसे अभी बन्द कर दूं तो बहुत बखेड़ा हो जायगा। फिर शम्भु-निवास महल में पधार कर महाराज ने दो घण्टे तक मूर्त्तिपूजा के विषय में वक्तृता दी।

आप तो अवतार के भी अवतार हैं

एक दिन महाराणा ने महाराज से पूछा कि रामचन्द्रजी पूर्णावतार थे कि नहीं। महाराज ने उत्तर दिया कि यदि वह अवतार थे तो आप तो अवतार के भी अवतार हुए क्योंकि ऐसा प्रसिद्ध है कि उदयपुर का राजवंश लव के वंश में है। फिर महाराणा ने पूछा कि इसकी मीमांसा कैसे हो सकती है? महाराज ने उत्तर दिया कि रामायण द्वारा ही इसकी मीमांसा हो सकती है। इस पर महाराज ने वाल्मीकीय रामायण मँगवा कर उसका वह अंश पढ़ने को कहा जिसमें नारद का वाल्मीकि के साथ रामचरित के सम्बन्ध में कथनोपकथन हुआ है। महाराणा उस अंश को निकाल कर धीरे २ पढ़ने लगे। तब महाराज ने पण्ड्या मोहनलाल से उसे पढ़ने को कहा और कई श्लोकों को महाराणा से स्लेट पर लिखवा कर और उनका पदच्छेद कराकर महाराणा को दिखा दिया कि वाल्मीकि महाराजा रामचन्द्र को मनुष्य ही मानते थे। केवल टीकाकारों की माया से ही उन्हें ईश्वर का अवतार बना दिया गया है।

स्वामीजी गोरक्षा के घोर पक्षपाती थे

महाराज गोरक्षा के परम पक्षपाती थे। उनकी इच्छा थी कि भारत के राजाओं, महाराजाओं, रईसों और प्रजावर्ग के तीन करोड़ हस्ताक्षर कराकर गोवध बन्द करने के लिये एक मेमोरियल महाराणी विक्टोरिया की सेवा में भेजा जाय। महाराणा सज्जनसिंह तथा महाराजा जोधपुर और बूँदी ने भी हस्ताक्षर कर दिये थे। कहते हैं कि महाराजा जयपुर के हस्ताक्षर कराने के लिये महाराणा स्वयं जयपुर गये थे।

अंग्रेज़ी पढ़ने का उद्योग

पण्ड्या मोहनलाल ने एक दिन महाराज को Heley's Grammar पढ़ते देखा था। पड्याजी का कथन है कि महाराज ने अंग्रेजी अक्षर लिखने भी सीख लिये थे और वह लिफ़ाफ़ों पर स्थान का नाम अंग्रेजी में अपने हाथ से लिखने लगे थे।

अन्धे साधु की कृतघ्नता

गिरानन्द एक अन्धा साधु संभवतः मसूदा से ही महाराज के साथ था। महाराज ने उसे अपने साथ इसीलिये रखा था कि उसे कुछ शिक्षा देकर किसी योग्य बनादें ताकि वह उपदेशक का कार्य करके स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध कर सके। परन्तु उसकी प्रकृति नीच थी। उसने महाराज

की दया का यह बदला दिया कि एक दिन पुलिस में यह रिपोर्ट करने चला गया कि स्वामी जी मुझे मेरे देश को नहीं जाने देते। पुलिस ने ऐसी अनर्गल रिपोर्ट लिखने से इनकार कर दिया। जब उसकी इस दुष्टता का वृत्त महाराज को पता लगा तो उन्होंने उसे निकाल दिया।

एक दिन महाराज नौलखा बाग़ के चबूतरे पर पद्मासन लगाये ध्यान में बैठे थे। इतने में एक संन्यासी वेषधारी उधर आनिकला। महाराज की दिव्य मूर्त्ति के दर्शन कर वह वहीं ठिठक रहा। उसने अनुमान से ही जान लिया कि यही दयानन्द सरस्वती हैं। जब महाराज का ध्यान खुला तो उसने हाथ जोड़ महाराज से निवेदन किया कि मैं बिहार देशनिवासी ब्राह्मण हूँ, मैंने दर्शन-शास्त्र का अनुशीलन किया है, विशेषतः वेदान्त शास्त्र का। मैंने वैराग्य के कारण संसार त्याग दिया है, मैंने संन्यासी का वेष धारण कर लिया है और नाम भी संन्यासियों जैसा ही रख लिया है, मेरा नाम सहजानन्द है। परन्तु मैंने विधिपूर्वक संन्यास किसी से नहीं लिया है। आप की ख्याति मुझे श्रीचरणों तक लाई है। आप संन्यास देकर मुझे कृतार्थ कीजिये। महाराज ने उन्हें कुछ दिन प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी और फिर उन्हें योग्य और सुपठित समझ कर संन्यासाश्रम में दीक्षित कर लिया।

संन्यास-प्रार्थी

नौलखा बाग़ के समीप ही एक बृहत् सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वत को उसी के तीर तीर जाया करते थे। एक दिन सहजानन्द ने देखा कि महाराज पद्मासन लगाये जल पर ध्यानावस्थित हैं। सहजानन्द यह देख कर विस्मित हुए परन्तु साथ ही गुरुदेव की योगविद्या में निपुणता उनके हृदय पर अङ्कित हो गई और श्रीचरणों में उनका अगाध प्रेम हो गया। कभी कभी महाराज लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। जब ऐसा करते थे तो एक दिन पूर्व सब से कह दिया करते थे कि कल हमारी कोठरी के पास कोई न आये और न कोई द्वार खटखटाये। परन्तु सहजानन्द इतने दयापात्र हो गये थे कि उन्हें खिड़की में से महाराज को योगारूढ अवस्था में देखने की आज्ञा दे दी जाती थी। ऐसी अवस्था में श्वास-प्रश्वास की गति रुक जाती थी और महाराज का शरीर सर्वथा निष्कम्प हो जाता था। उनके मुखमण्डल पर दिव्य आभा खेलने लगती थी। सहजानन्द को एक से अधिक बार इस अनुपम दृश्य से अपने नेत्रों को तृप्त और पवित्र करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कहते हैं कि महाराज २४ घण्टे तक असम्प्रज्ञात समाधि लगा सकते थे।

जल पर ध्यानावस्थित

लम्बी समाधि

सहजानन्द को महाराज ने संन्यास-धर्म्म और योग विषय की शिक्षा देकर प्रचार के लिये बाहर भेज दिया।

एक दिन महाराणा तथा सहजानन्दादि श्रीसेवा में उपस्थित थे और विविध विषयों पर वार्त्तालाप हो रहा था कि महाराज ने कहा कि पं सुन्दरलालजी आ रहे हैं यदि पहले से सूचना दे देते तो यान का उचित प्रबन्ध हो जाता। महाराणा ने इस पर कहा कि यान का प्रबन्ध अब भी हो सकता है, परन्तु महाराज बोले कि अब तो वह बैलगाड़ी में आ रहे हैं। उस का एक बैल श्वेत है और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं, वह कल यहां पहुँच जायंगे। अगले दिन

परोक्षदर्शन

सप्तत्रिंश अध्याय

पण्डित सुन्दरलाल उदयपुर पहुँच गये और महाराज का कथन अक्षरशः सत्य निकला।

एक दिन दो साधु महाराज से मिलने आये और अनेक विषयों पर उनसे कथनोपकथन हुआ। जब वह चलने लगे तो महाराज से बोले कि आप अधिकारी लोगों को ही उपदेश दिया करें। जो लोग आप के व्याख्यानों में आते हैं वह सब ही तो अधिकारी नहीं होते। इस का महाराज ने जो उत्तर दिया उस का अभिप्राय यह था कि धर्म के विषय में अधिकारानधिकार का प्रश्न उठाना सर्वथा व्यर्थ है। धर्मोपदेश सुनने का मनुष्यमात्र को अधिकार है। आप की जाति और धर्म के सैंकड़ों और सहस्रों मनुष्य विधर्मी हो रहे हैं और आप अधिकारानधिकार का पचड़ा लिये बैठे हैं। पहले उन्हें तो बचाइये, अधिकारानधिकार का विचार पीछे होता रहेगा।

अनधिकारियों को उपदेश न दिया करें

महाराज का यह उत्तर कितना महत्वपूर्ण था और इससे इनकी उदारता कैसी विशद रूप में झलकती है, यह मनन करने योग्य है। इसी अधिकारानधिकार के प्रश्न ने तो स्त्रीजाति और शूद्रों को सदा के लिये विद्या से वञ्चित किया और इसी ने धर्म के महन्तों और ठेकेदारों की गद्दियाँ स्थापित कीं, जिन्होंने जनता के मस्तिष्कों पर ताले लगा कर देश को रसातल पहुँचा दिया। दयानन्द तो आया ही इसलिये था कि वह इन तालों को तोड़कर मनुष्यों को मानसिक दासता से छुड़ाये और आज दयानन्द से कहा जाता है कि उन तालों को न तोड़ो, बल्कि उन पर अपने ताले और लगा दो। इसे दयानन्द क्यों मानने लगा था।

अधिकारानधिकार का पचड़ा

एक दिन पण्ड्या मोहनलाल ने महाराज से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी?

महाराज ने जो उत्तर दिया उसका सार यह था कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये विना ऐसा होना दुष्कर है। इसी लिये मैं चाहता हूँ कि देश के नृप गण अपने २ राज्य में धर्म्म, भाषा और भाव में एकता उत्पन्न करें। पं० मोहनलाल ने इस पर आपत्ति की कि जब आप का उद्देश्य एकता उत्पन्न करने का है तो आप मतमतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं, इससे तो अनैक्य बढ़ता है। महाराज ने उत्तर दिया कि धर्माचार्यों और नेताओं की असावधानी और प्रमाद से जाति के आचार-विचार, रहन-सहन दूषित हो जाते हैं और भाव एक नहीं रहते। आर्य्य जाति की यही दशा हुई और यदि इसे संभाला न गया तो यह नष्ट हो जायगी। धर्माचार्यों के प्रमाद के कारण करोड़ों मुसलमान हो गये और अब ईसाई हो रहे हैं। यदि जाति को कड़ुए उपदेशों के कोड़े से न जगाया गया और कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट न किया गया तो इसकी मृत्यु में सन्देह ही क्या है। मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर ही नहीं रहा हूँ। इसके कारण मैं अनेकों कष्ट सहता हूँ, गालियाँ और ईंट पत्थर खाता हूँ, विष तक भी मुझे दिया जा चुका है, परन्तु जाति और धर्म के लिये मैं सब कुछ सहन करता हूँ।

जातीय उन्नति के साधन

महाराज के वचन को सुनकर पण्ड्या मोहनलाल गद्गद होगये और भक्ति-रस में सने हुए शब्दों में कहा कि यदि दो चार धर्माचार्य

यदि २,४ दयानन्द होते

भी आपके विचार के हो जायं तो स्वल्प समय में ही आर्यजाति का बेड़ा पार हो सकता है।

उदयपुर के मुसलमान जज मौलवी अब्दुर्रहमान से धर्म विषय में वार्त्तालाप हुआ था।

मुसलमान जज से शास्त्रार्थ

उसका सार हम पाठकों की भेंट करते हैं। यह शास्त्रार्थ ११ सितम्बर सन् १८८२ अर्थात् भाद्रपद कृ० १४ सं० १९३९ को आरम्भ हुआ और १७ सितम्बर को समाप्त हुआ। निम्नलिखित ७ प्रश्न मौलवी साहब ने किये थे। एक २ प्रश्न पर एक २ दिन कथनोपकथन होता था। सारा शास्त्रार्थ लिखा गया था और अविकल रूप से पं० लेखराम कृत दयानन्द-चरित उर्दू में छपा है। अन्तिम दिवस महाराणा भी शास्त्रार्थ में आये थे और उन्होंने कहा था कि स्वामीजी जो कहते हैं वह ठीक है। मौलवी साहब व्यर्थ दुराग्रह करते हैं।

मौलवी के सात प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न नं० १—भिन्न २ धर्म्मों की भिन्न २ भाषाओं में भिन्न २ पुस्तकें हैं इससे सिद्ध होता है कि उनमें से हर एक ही देश के रहने वालों और एक ही भाषा बोलने वालों के लिये बनी है। कोई ऐसी भी पुस्तक है जो सब मनुष्यों की भाषाओं पर अधिकार रखती हो और सृष्टि-क्रम के अनुकूल हो।

महाराज ने उत्तर दिया कि ऐसी पुस्तक वेद है। वह किसी सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं बल्कि ज्ञान का ग्रन्थ है, साम्प्रदायिक ग्रन्थ पक्षपात से भरे होते हैं और जिसमें पक्षपात हो वही सम्प्रदाय है। वेद की भाषा किसी देश वा जाति विशेष की भाषा नहीं। ऐसी ही भाषा व्यापक हो सकती है न कि किसी एक देश की भाषा, जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। वेद की भाषा विद्या की भाषा है और उसका बोलने वाला परब्रह्म और सुनने वाले अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, चार ऋषि थे। इन्हीं ऋषियों ने परमेश्वर से वेद को सुनकर दूसरों को सुनाया। इनको वेद इस कारण दिया था कि वह ही पुण्यात्मा और सर्वोत्तम थे, परमेश्वर ने उन्हें वेद की भाषा का भी ज्ञान दे दिया था। इसका प्रमाण यह है कि विना कारण के कार्य नहीं होता, ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी है और वेद स्वतःप्रमाण हैं।

मौलवी—ऐसी बातें तो सब मतों वाले अपनी २ पुस्तकों के विषय में कहते हैं।

स्वामीजी—ऐसी बात दूसरे मत की पुस्तकों में नहीं है और न वह सिद्ध ही कर सकते हैं।

मौलवी—सब किताब वाले सिद्ध कर सकते हैं।

स्वामीजी—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मत वाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते और यदि कर सकते हैं तो बतलाइये कि मुहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुँचा।

मौलवी—जैसे चार ऋषियों के पास वेद आया था।

मौलवीसाहब ने विना सोचे ऐसा कह दिया। कुरान के मुहम्मद साहब के पास पहुँचने की तो विचित्र गाथा है। वह मुहम्मद साहब के हृदय में प्रकाशित नहीं हुआ जैसे वेद चार ऋषियों के हृदय में प्रकाशित हुए थे। उसकी आयतों को तो जिब्राईल फरिश्ता उनके पास लाया करता था और इसे सब ही मुसलमान मानते हैं।

प्रश्न नं० २—सारी दुनिया के मनुष्य एक ही वंश के हैं वा पृथक् २ के।

उत्तर—एक वंश के नहीं, पृथक् २ वंश के हैं। सृष्टि की आदि में उतने ही जीव मनुष्य का शरीर धारण करते हैं जितने गर्भ सृष्टि में इस योग्य होते हैं और वह अनेक होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अब भी सब अनेक माँ-बाप की सन्तान हैं। यह बात प्रत्यक्षादि ८ प्रमाणों से भी सिद्ध है।

मौलवी साहब ने आठों प्रमाणों के लक्षण पूछे जो उन्हें बता दिये गये। फिर अन्य प्रश्नों के उत्तर में महाराज ने कहा कि मनुष्यों के मुखादि अवयव एक से हैं, परन्तु उनके रंगों और शरीर की लम्बाई आदि में भेद है। यह भेद एक ही माँ बाप की सन्तानों में भी पाये जाते हैं। एक ही देश और जाति में भी पाये जाते हैं।

मौलवी—कई जातियाँ जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी आदि एक दूसरे से भिन्न हैं। उनकी आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती। चीनियों के दाढ़ी नहीं होती और तिकोने मुँह के होते हैं।

स्वामीजी—उनमें भी भेद है। देश, काल, माता पिता के शरीर, रज वीर्य और वात, पित्त, कफ के संयोग-वियोग के कारण भी भेद हो जाते हैं।

मौलवी—संसार में तीन प्रकार की जातियाँ पाई जाती हैं। एक वह जिनके दाढ़ी होती है जैसे हिन्दी, फिरंगी, दूसरे वह जिनके दाढ़ी नहीं होती जैसे चीनी, तीसरे वह जिन के बाल घूंघर वाले होते हैं, जैसे हबशी तो फिर मनुष्यों के तीन ही भेद हुए।

स्वामीजी—भूटियों को किस में रक्खोगे, वह तीनों से नहीं मिलते ?

मौलवी—जैसा भेद इन तीनों में है वैसा इनमें नहीं। इसका कारण भिन्न २ जातियों का सम्मिश्रण हो सकता है !

प्रश्न नं० ३—मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा।

उत्तर—१ अरब ९६ करोड़ कई लाख वर्ष मनुष्य की उत्पत्ति को हुए। और २ अरब वर्ष से कुछ ऊपर और रहेगी। इस का प्रमाण विद्या और ज्योतिःशास्त्र से है और विस्तार पूर्वक ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में लिखा है।

प्रश्न नं० ४—आप धर्म के नेता हैं वा ज्ञान के, अर्थात् आप किसी मत को मानते हैं वा नहीं।

स्वामीजी—जो धर्म्म ज्ञान से सिद्ध हो उसे मानता हूँ।

मौलवी—आप ने कैसे जाना कि परमेश्वर ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया।

स्वामीजी—वेदों को देखने और आप्त पुरुषों की साक्षी जो उनके ग्रन्थों और परम्परा से हम तक पहुँची है।

मौलवी—परसों यह निश्चय हो गया था कि उत्तर युक्तिपूर्वक होंगे न कि ग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर, फिर आप ग्रन्थों का उल्लेख क्यों करते हैं।

स्वामीजी—युक्तिसंगत बात चाहे मौखिक हो चाहे लिखित। इसे सब बुद्धिमान् मानते हैं और आप भी मानते होंगे।

मौलवी—परमेश्वर का चार ऋषियों को वेदों की शिक्षा देना युक्ति वा बुद्धि से कैसे सिद्ध होता है।

स्वामीजी—विना कारण के कार्य नहीं हो सकता। अतः ज्ञान का भी कोई कारण होना

चाहिये। और वह अनादि और अनन्त होना चाहिये। ऐसा कारण परमेश्वर ही हो सकता है। जैसे परमेश्वर जगत् का निमित्त कारण है उसी प्रकार वह ज्ञान का भी कारण है। यदि वह ऋषियों को वेद का ज्ञान जो सृष्टिक्रम के अनुकूल है, न देता तो वह आगे को न चलता। परमेश्वर ने एक २ ऋषि को एक २ वेद अलग २ और क्रमशः पढ़ाया क्योंकि एक ही समय में वे सारे वेद नहीं पढ़ सकते थे, उनकी बुद्धि परिमित शक्ति वाली थी। जितना समय उनकी बुद्धि की शक्ति के अनुसार अपेक्षित था उतने समय में ही पढ़ाया। वेद का प्रकाश शब्दार्थ-सम्बन्धपूर्वक ऋषियों के हृदय में परमेश्वर ने किया। उसके लिये सर्वव्यापक होने से जिह्वा आदि उपकरणों की आवश्यकता न थी। परमेश्वर ऋषियों के आत्मा में भी था। अतः उसने उसके आत्मा में शब्द और उनके अर्थों का ज्ञान दिया। यदि परमेश्वर उनके आत्मा से पृथक् होता तो शब्दों को बोलने और सुनाने की आवश्यकता होती। वेदों के चार ब्राह्मण ही वास्तव में पुराण हैं जो वेद के अनुकूल होने की सीमा तक ही माननीय हैं। आधुनिक पुराण ग्रन्थ भागवत आदि साम्प्रदायिक मतवाद के ग्रन्थ होने से अप्रामाणिक हैं। धर्म्म वह है जो पक्षपातरहित, न्याययुक्त, सत्यसन्ध और असत्य से पृथक् हो। वेद ऐसे ही धर्म्म का उपदेश करता है और यही आर्य्यों का धर्म्म है।

मौलवी—पक्षपात आप किसे कहते हैं।

स्वामीजी—जो अज्ञानवश वा काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंगति से अपने स्वार्थ के कारण सत्य और न्याय को छोड़ कर अंगीकार किया जावे उसी का नाम पक्षपात है।

मौलवी—यदि कोई पक्षपात से रहित हो और आर्य न हो तो आर्य उसके साथ खान-पान व विवाह का सम्बन्ध उसी प्रकार करेंगे वा नहीं जिस प्रकार वह आपस में करते हैं।

स्वामीजी—खान-पान, विवाह आदि का सम्बन्ध धर्म्म वा अधर्म से नहीं है, यह तो देशाचार और जाति के व्यवहार से है। परन्तु दूसरे धर्म वालों से ऐसा वर्ताव करना हानिकारक ही होता है। यदि कोई विद्वान् ऐसा करे भी तो उसकी जाति के लोग उससे घृणा करने लगेंगे और फिर जाति उस लाभ से वञ्चित रह जायगी जो उसकी विद्या से उसे पहुँचता।

प्रश्न नं० ५—जैसे अन्य मत वाले अपनी २ धर्मपुस्तक और उसकी भाषा को सर्वोत्तम बताते हैं और जिस प्रकार की युक्ति देते हैं आपने भी वेदों के विषय में ऐसा ही किया वेदों की कोई विशेषता प्रकट न की।

स्वामीजी—हम इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि वही पुस्तक सर्वज्ञ ईश्वरोक्त हो सकती है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध और सृष्टिक्रम के अनुकूल हो। ऐसी पुस्तक केवल वेद ही हैं। मुख्य मत यह हैं पौराणिक, जैन, यहूदी और ईसाई और कुरानी। इन सब में ही असम्भव बातें हैं। पौराणिक एक शरीरधारी व्यक्ति से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, परन्तु शरीर बहुत सी वस्तुओं के संयोग से बनता है और स्वयं सृष्ट पदार्थ है वह जगत् का स्रष्टा कैसे हो सकता है, जैनी जगत् का न आदि मानते हैं न अन्त। परन्तु जगत् एक संयुक्त पदार्थ है, अतः उसकी उत्पत्ति भी है और विनाश भी। यहूदी, ईसाई और मुसलमान अभाव से भाव मानते हैं जो कभी हो नहीं सकता।

प्रश्न नं ६—आप किन २ वस्तुओं को अनादि मानते हैं।

स्वामीजी—परमात्मा, जीव और जगत् के उपादान कारण प्रकृति को, साधारण कारण

काल व आकाश, तथा समवायी कारण को। परमात्मा जगत् का निमित्त कारण है। कोई ऐसी जात वस्तु नहीं जिसके यह चारों कारण न हों।

मौलवी साहब—संभव है कि जगत् का (उपादान) कारण जिसे आप अनादि कहते हैं किसी अन्य कारण का कार्य्य हो।

स्वामीजी—अनादि कारण उसी का नाम है जो किसी का कार्य न हो। सब वैज्ञानिक मानते हैं कि जहाँ तक किसी वस्तु की अवस्था परिवर्तित हो सकती है या जहाँ तक उसका विभाग हो सकता है उससे आगे की दशा को कारण कहते हैं।

प्रश्न नं ७—यदि वेद ईश्वरोक्त होते तो इनका लाभ संसार के सब मनुष्यों को पहुँचना चाहिये था जैसे सूर्य्य, जल, वायु का लाभ सब को पहुँचता है।

स्वामीजी - सूर्य्यादि की भांति वेदों का लाभ भी सब को पहुँचता है क्योंकि धर्म्म और विद्या के ग्रन्थों का आदिकारण वेद ही हैं। अन्य सब पुस्तकें वेदों से पीछे बनी हैं। वेदों में किसी का खण्डन-मण्डन नहीं है। जैसे वैज्ञानिक सूर्य्यादि से अधिक उपकार लेते हैं वैसे ही वेद के पढ़ने वाले वेदों से अधिक उपकार लेते हैं। वेदों से अधिक प्राचीन कोई पुस्तक संसार भर में नहीं है। वेदों की भाषा सब भाषाओं का मूल है। जब बाईबल कुरान आदि नहीं बने थे तब वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक मानने योग्य थी ही नहीं। वेद सृष्टि के आदि में ऋषियों को दिये गये थे अतः यह कहना नहीं बन सकता कि कोई समय ऐसा नहीं था जब सब मनुष्यों ने वेदों को माना हो।

यह धर्मालाप यहीं समाप्त हो गया।

उदयपुर से महाराज ने बाबू दुर्गाप्रसाद रईस फर्रुखाबाद को मार्गशीर्ष वदी १४ संवत् १९३९ को नाटक के विषय में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की थी (भारत सुदशा प्रवर्त्तक में) नाटक का विषय तो नाम मात्र भी नहीं आना चाहिये, जो अच्छा विषय भी लिखना हो तो वह प्रश्नोत्तर व अन्य प्रकार से लिखा जावे। नाटक नाम तमाशे का है क्योंकि तुम्हारे नाटक को देख कर लखनऊ के समाज में नाटक का व्याख्यान ही होने लगा। जब हम ने मनह किया तो कहने लगे कि अपने फर्रुखाबाद समाज के पत्र में नाटक क्यों छपता है। यह नाटक से बिगाड़ का उदाहरण है।

एक दूसरे पत्र में महाराज ने ला० कालीचरण रईस फर्रुखाबाद को लिखा था कि तुम आर्यसमाज के पत्र में नाटक का विषय मत छापो, यह अनुचित बात है। यह आर्य-समाज है भडुआ समाज नहीं जो तुम नाटक का विषय छापते हो। ऐसा करना भडुआ-पन की बात है।

महाराज ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया था कि राष्ट्र-निर्माण के लिये एक लिपि और एक भाषा का होना परम आवश्यक है इसके लिये वह देवनागरी लिपि और आर्य भाषा (हिन्दी) को ही उपयुक्त समझते थे, इस कारण उन्होंने अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे। सन् १८८२ में सरकार ने एक कमीशन नियत किया था कि सरकारी दफ्तरों में कौनसी लिपि रक्खी जावे। स्वामीजी ने भी इसके लिये यत्न किया था। एक पत्र में उन्होंने बाबू दुर्गाप्रसाद रईस फर्रुखाबाद को उदयपुर से शुद्ध श्रावण सु० ३ संवत् १९३९ को निम्न प्रकार लिखा था कि आज कल सर्वत्र अपनी आर्यभाषा के राजकार्य्य में प्रवृत्ति होने के

अर्थ (भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन हुआ है उसमें) पंजाब आदि अहातों से मेमोरियल भेजे गये हैं परन्तु मध्यप्रान्त फर्रुखाबाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये। ऐसा ज्ञात हुआ है और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र आया था। उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गये और हम को लिखा है कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिये। अब कहिये हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं। जो यहां एक काम हो तो कुछ चिन्ता नहीं है, इसलिये आप को अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेज कर बनारस आदि स्थानों से और जहां २ परिचय हो सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जायेगी।

स्वामीजी कभी २ अपने अनुयायियों की अकर्मण्यता पर खिन्न हो उठते थे। ऐसी ही अकर्मण्यता के ऊपर ला० कालीचरणजी के विषय में उन्होंने बा० दुर्गाप्रसाद को उपर्युक्त पत्र में लिखा था कि बड़े आश्चर्य्य का विषय है कि पुकारते तो हैं हमारी उन्नति हो परन्तु जब उन्नतिकारक विषय आ पड़ता है तब ऐसे निरुत्साही और भयातुर होकर चुपचाप बैठ रहते हैं। क्या ऐसी ही बातों से उन्नति होने की आशा करते हैं! देखिये लाला कालीचरणजी ने प्रथम चिट्ठी पर चिट्ठी भेजी और बड़ी शीघ्रता के साथ लिखा कि (मुरादाबाद वाले जगन्नाथदास निर्मित प्रश्नोत्तरी के) विस्तारपूर्वक उत्तर प्रमाणों के साथ भेजिये। जब हमने वेदभाष्य के काम को छोड़ प्रमाणसहित उत्तर लिख रजिस्ट्री कराके भेज दिये और उसके साथ एक पत्र भेजा कि शीघ्र छपवाकर प्रसिद्ध कर दो। उस शीघ्रता का फल यह हुआ कि अब दो महीने व्यतीत हुए एक अक्षर भी नहीं छपवाया। लिखा कि प्रेसएक्ट होने वाला है उसको देखे पश्चात् छपवावेंगे। यह उनको केवल किसीके बहकाने से भ्रममात्र हुआ है क्योंकि जो ऐसा होता तो भारतमित्र आदि में अवश्य छपता, अथवा अन्य पुरुषों के द्वारा भी सुनने में आता, सो केवल प्रेस एक्ट के भ्रम होने से डर गये हैं। भला ऐसे ऐसे सद्यःकर्त्तव्य कर्म्मों के करने में भ्रम मात्र से डर कर निरुत्साही हो जाना अवनति का कारण नहीं तो क्या है ?

स्वीकार-पत्र लिखने की चिन्ता

हम नहीं कह सकते कि क्या कारण था जिससे महाराज को अपना स्वीकारपत्र लिखने की बड़ी चिन्ता थी। जब महाराज जुलाई–सितम्बर सन १८८० में मेरठ में थे तब भी उन्होंने परोपकारिणी सभा का स्थापित करना सोचा था और उसके नियमादि की पाण्डुलिपि भी तैयार की गई थी, परन्तु उस समय उसकी रजिस्ट्री नहीं हो सकी थी। यह सङ्कल्प महाराज का शिथिल नहीं हुआ था और वह उनका लक्ष्य बना रहा था अतः जो वह उदयपुर विराज रहे थे तो उन्होंने अधिक विलंब करना उचित न समझा और फाल्गुन कृष्ण ५ सं० १९३९ = २७ फरवरी सन् १८८३ को 'स्वीकार-पत्र' लिखकर राज्यनियम के अनुसार उसे रजिस्ट्री कर दिया। हो सकता है कि महाराज को यह ज्ञात हो गया हो कि उनका शरीर अधिक दिन रहने वाला नहीं है। मैडम ब्लैवैटस्की ने उनके परम पदप्राप्ति के पश्चात् लिखा था कि महाराज ने उनसे कहा था कि मैं सन् १८८३ का अन्तः न देखूँगा।

अन्यथा यह समझ में नहीं आता कि ऐसे समय जब कि वह स्वस्थ थे इतने दिन पहले से उन्हें यह चिन्ता क्यों थी। यदि वह रुग्ण होते तो हमें इस चिन्ता का कारण ढूँढने की आवश्यकता न होती। —संग्रहकर्त्ता

स्वीकार-पत्र

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेईस सज्जन आर्य पुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उसको परोपकार-सुकार्य में लगाने के लिये अध्यक्ष बनाकर यह 'स्वीकार-पत्र' लिखे देता हूँ कि समय पर काम आवे।

इस सभा का नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस महाशय इसके सभासद् हैं।

१—श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्य-कुलकमलदिवाकर महाराणाजी श्री १०८ सज्जनसिंहजी वर्मा जी० सी० एस्० आई० उदयपुराधीश राज मेवाड़ सभापति।

२—लाला मूलराज साहब एम्० ए० एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर प्रधान आर्यसमाज लाहौर, उपसभापति।

३—श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी राज मेवाड़ मंत्री १।

४—लाल रामशरणदास रईस व उपप्रधान आर्यसमाज मेरठ मंत्री २।

५—पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलालजी शर्मा उदयपुर जन्मस्थान मथुरा, उपमंत्री।

६—श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुराधीश सभासद्।

७—श्री राव तख्तसिंहजी बेदले, राज मेवाड़। ,,

८—श्री मद्राजराणा श्री फतहसिंहजी वर्मा, भीलवाड़ा। ,,

९—श्री मद्रावत श्री अर्जुनसिंहजी वर्मा, आसीन्द।

१०—श्रीमन्महाराज श्री गजसिंहजी वर्मा, उदयपुर।

११—श्रीमद्रावत बहादुरसिंहजी वर्मा, मसूदा ज़िला अजमेर।

१२—रावबहादुर पं० सुन्दरलाल सुप्रिंटेंडेंट वर्कशाप अलीगढ़, आगरा।

१३—राजा जयकृष्णदास सी० एस्० आई० डिप्टी कलक्टर बिजनौर, मुरादाबाद।

१४—साहू दुर्गाप्रसाद, कोषाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद।

१५—साहू जगन्नाथप्रसाद फर्रुखाबाद।

१६—सेठ निर्भयराम प्रधान आर्यसमाज फर्रुखाबाद ब्यावर राजपूताना।

१७—लाला कालीचरण रामचरण मंत्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद।

१८—बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट छावनी मुरार ग्वालियर।

१९—लाला साईदास मंत्री आर्यसमाज लाहौर।

२०—बाबू माधवदास मंत्री आर्यसमाज दानापुर।

२१—राव बहादुर राजागल राजेश्वरी पं० गोपालराव हरिदेशमुख मेम्बर कौन्सिल गवर्नर बम्बई व प्रधान आर्यसमाज बम्बई पूना।

२२—राव बहादुर महादेव गोविन्द रानडे जज पूना।

२३—पण्डित श्यामजीकृष्ण वर्मा प्रोफ़ेसर संस्कृत, यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड लण्डन, बम्बई।

स्वीकार-पत्र के नियम

(१) उक्त सभा जैसे कि मेरी जीवितावस्था में मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके निम्नलिखित परोपकार के कामों में लगाने का अधिकार रखती है वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे:—

[१] वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में।

[२] वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में।

[३] आर्यावर्त्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में खर्च करे और करावे।

(२) जैसे मेरी उपस्थिति में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे ही मेरे पीछे तीसरे वा छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब किताब समझने और परतालने के लिये भेजा करे और वह सभासद् वहाँ जाकर कुल आमदनी और खर्च की जांच परताल किया करे और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर करे और इस परताल की एक २ प्रति प्रत्येक सभासद् के पास भेजे और यदि यन्त्रालय के प्रबन्ध में कुछ त्रुटि देखे तो उस के सुधार के लिये अपनी सम्मति लिख कर प्रत्येक सभासद् के पास भेज देवे और प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी २ सम्मति सभापति के पास लिख भेजे और सभापति सब की सम्मति से यथोचित प्रबन्ध करे, इस कार्य में कोई सभासद् आलस्य या अनुचित व्यवहार न करे।

(३) इस सभा को उचित है कि जैसा यह परम धर्म और परमार्थ का काम है वैसा ही उसको उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे।

(४) प्रागुक्त तेईस आर्य सज्जनों की सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जावे अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्वका है वही अधिकार सभा को है और होगा। यदि उक्त सभासदों में से कोई सभासद् स्वार्थ में पड़कर इन नियमों के विरुद्ध काम करे या कोई अन्य मनुष्य हस्तक्षेप करे तो वह सर्वथा झूठा समझा जाय।

(५) जैसे इस सभा को वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे सब पदार्थों की यथाशक्ति रक्षा और उन्नति करने का भी अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार का भी अधिकार है। अर्थात् जब मेरा शरीर छूटे तो न उसको गाड़े, न जल में बहावे, न जंगल में फेंके, सिर्फ चन्दन की चिता बनवावे और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पाँच सेर कपूर, अढ़ाई मन अगर, तगर और दस मन काष्ठ लेकर वेद के अनुसार जैसा कि संस्कारविधि पुस्तक में लिखा है वेदि बनाकर वेद मन्त्रों से जो उसमें लिखे हैं भस्म करे। इसके सिवाय और कुछ वेद के विरुद्ध न करें और जो उस समय इस सभा के कोई सभासद् उपस्थित न हों तो जो कोई उस समय उपस्थित हो वही यह काम करे और जितना धन इस में लगे उतना सभा से ले लेवे और सभा उसको दे देवे।

(६) अपने जीवन में मैं और मेरे पीछे यह सभा इस बात का अधिकार रखती

है कि जिस सभासद् को चाहे पृथक् करके किसी और योग्य सामाजिक आर्य पुरुष को उसका स्थानापन्न नियत कर दे। परन्तु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न किया जायगा, जब तक उसके काम में कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाय।

(७) मेरे सदृश यह सभा सदा स्वीकार-पत्र की व्याख्या या उसके नियमों का पालन या किसी सभासद् के पृथक् करने और उसके स्थान में अन्य सभासद् को नियत करने या मेरे आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे, जो सब सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय हो या होवें और यदि सभासदों की सम्मति में विरोध रहे तो बहुसम्मति के अनुसार काम करें और सभापति की सम्मति को सदा द्विगुण समझें।

(८) किसी दशा में भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों का अपराध के सिद्ध होने पर भी पृथक् न कर सकेगी जबतक कि उनकी जगह में और सभासदों को नियत न करले।

(९) यदि किसी सभासद् का देहान्त हो जाय या वेदोक्त धर्म को छोड़ कर उक्त नियमों के विरुद्ध चलने लगे तो सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से उस को पृथक् करके उस की जगह में किसी और योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्य पुरुष को नियत करें, परन्तु उस समय तक साधारण कामों के अतिरिक्त कोई नया काम न छेड़ा जाय।

(१०) इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार का प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे। परन्तु यदि सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो समय का निर्धारण कर के लेख द्वारा सम्पूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति ले और बहु-पक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

(११) प्रबन्ध का घटाना बढ़ाना या स्वीकार या अस्वीकार करना या किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना या आमदनी व खर्च की जांच-परताल करना या अन्य हानि-लाभ सम्बन्धी विषयों को सभापति वर्ष भर में या छः महीने में छपवाकर चिट्ठी के द्वारा सब सभासदों में प्रचारित करे।

(१२) यदि इस स्वीकार पत्र के विषय में कोई झगड़ा उठे तो उस को राजगृह में न ले जाना चाहिये किन्तु जहाँ तक हो सके यह सभा अपने आप उसका निर्णय करे। यदि आपस में किसी प्रकार निर्णय न हो सके तो फिर न्यायालय से निर्णय होना चाहिये।

(१३) यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य पुरुष को पारितोषिक देना चाहूँ और उसकी लिखत पढ़त कराकर रजिस्टरी करादूँ तो सभा को चाहिये कि उसको मान और दे।

(१४) मुझे और मेरे पीछे सभा को सदा अधिकार है और रहेगा कि उक्त नियमों को देश के किसी विशेष लाभ और परोपकार के लिये न्यूनाधिक करे।

हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती

महाराणा का पुत्र-जन्म पर दान

पुत्र जन्म के हर्ष में महाराणा ने ५००) अनाथालय आर्य्यसमाज फ़ीरोज़पुर को और इसके अतिरिक्त १००) उक्त अनाथालय की सूई का काम करने वाली कन्याओं को दान दिये थे। १२००) वेदभाष्य की सहायता में और एक बढ़िया शाली चादर महाराज को और १००) और एक साधारण दुशाला रामानन्द ब्रह्मचारी को दिया था। इसका उल्लेख महाराज ने अपने ४ मार्च सन् १८८३ के पत्र में जो उन्होंने चित्तौड़ से राजा दुर्गाप्रसाद रईस

फ़र्रुखाबाद को लिखा था, किया है। उसमें महाराणा के महाराज से मनुस्मृति आदि पढ़ने, स्वीकार पत्र के लिखे जाने महाराणा को दिनचर्य्या का उपदेश करने तथा महाराणा के उपरोक्त दान का वर्णन करने के पश्चात् अन्त में महाराज ने लिखा है "वैदिक धर्म्म की प्रथम ही रुचि थी अब विशेष कर हुई। जैसे श्रीमान् आर्यकुलदिवाकर सुशीलता, कृतज्ञता, सुसभ्यता, प्रसन्नता, ज्ञानता आदि शुभगुण कर्म स्वभाव युक्त मैंने देखे वैसे बहुत विरले होंगे।"

जब महाराज ने महाराणा से विदा लेनी चाही तो महाराणा ने २०००) महाराज की भेंट किये, परन्तु महाराज उनके स्वीकार करने पर सहमत न हुए।

विदा-समय सम्मान

महाराणा ने कहा कि हम तो इन्हें रख नहीं सकते क्योंकि इन्हें आप की सेवा में भेंट करने का सङ्कल्प कर चुके हैं। तब महाराणा के आग्रह पर महाराज ने कहा कि यह रुपया परोपकारिणी सभा को दे दिया जाय। उस समय तक उक्त सभा का कोई निधि न था। अतः यह निश्चय हुआ कि एक निधि वैदिकनिधि के नाम से स्थापित किया जाय और उसी में यह रुपया जमा किया जाय, सुतराम, ऐसा ही किया गया। वह रुपया राजकोष में उक्त निधि के नाम से जमा कर दिया गया। पीछे आकर और रुपया भी जो अन्यत्र जमा था इसी कोष में जमा कर दिया गया।

उदयपुर से चलते समय महाराणा ने कहा कि यदि आप षड्-दर्शन का भाष्य करें तो उसकी सहायता में २००००) रुपया मुझ से मँगालें, परन्तु महाराज ने उत्तर दिया कि पहले तो हमें वेदों का भाष्य करना है।

महाराणा का विद्या-प्रेम

चलते समय महाराणा ने एक मानपत्र स्वहस्ताक्षरयुक्त महाराज को दिया जो इस प्रकार था:—

मान-पत्र

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री ५ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती यतिवर्य्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु।

इदन्तु, आप का अठे सात मास का निवास सूंचित्त अत्यन्त आनन्द में रह्यो क्योंकि आप की शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नति दायक है और आप का संयोग सूं ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्य्य में निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवा की म्हां का सभ्य जना सहित दृढ़ आशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वाँ का श्रेष्ठ पुरुषाँ का दृढ़ होवै है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै सो आप में यथार्थ मिल्यो, अब म्हे आप का वियोग का संयोग तो नहीं चाँवाँ हाँ, परन्तु आपका शरीर अनेक पुरुषाँ के उपकारक है जीसूँ अवरोध करणो अनुचित है, तथापि पुनरागमन सूँ आप भी म्हाँ का चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम्। संवत् १९३९ फाल्गुन कृष्ण ५ भौम

हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य

महाराणा ने महाराज को अतिसम्मान पूर्वक विदा किया। महाराज १ मार्च को नींबाहेड़ा पहुँचे और वहाँ से चित्तौड़ पधारे। चित्तौड़ में आपका निवास सात मार्च सन १८८३ ई० तक रहा। इतने में राजाधिराज शाहपुरे का पत्र लेकर उनके भेजे हुए पुरुष महाराज को शाहपुरा लिवा ले जाने के लिये आगये और आप उनके साथ शाहपुरा के लिये चल पड़े।

अष्टाविंश अध्याय

फाल्गुन संवत् १९३९–कार्त्तिक संवत् १९४०

शाहपुरा

राजाधिराज श्री नाहरसिंहजी शाहपुराधीश ने महाराज के दर्शन चित्तौड़ में किये थे जब कि वहां लार्ड रिपन का दर्बार हुआ था। उसी समय वह महाराज के श्रद्धालु भक्त बन गये थे और उसी समय उन्होंने महाराज से शाहपुरा पधारने की प्रार्थना की थी। महाराज ने उसे स्वीकार करते हुए कह दिया था कि अवसर प्राप्त होने पर आवेंगे। अतः जब राजाधिराज को यह सूचना मिली कि महाराज उदयपुर से विदा होकर चित्तौड़ में विराजमान हैं, तो उन्होंने तुरन्त अपने विश्वस्त कर्मचारियों को उनके लिवालाने के लिए भेजा और एक लिखित प्रार्थनापत्र भी श्रीसेवा में प्रेषित किया। महाराज पहले ही शाहपुरा पधारना स्वीकार कर चुके थे, अतः राजाधिराज के भक्ति और प्रेम देख कर वह उनके कर्मचारियों के साथ शाहपुरा के लिए चल पड़े। रूपाहेली स्टेशन तक तो रेल में गये और वहां से राजाधिराज के भेजे हुए यान पर फाल्गुन कृष्णा १५ संवत् १९३९ अर्थात् ९ मार्च १८८३ को शाहपुरा पहुंच गये। राजाधिराज ने महाराज के निवास के लिए राजकीय बाग़ में समुचित प्रबन्ध कर रक्खा था और डेरे आदि लगवा दिये थे, महाराज वहीं ठहर गये। सायंकाल को राजाधिराज भी परिषद्वर्ग सहित श्रीसेवा में उपस्थित हुए। अन्य प्रतिष्ठित नागरिक भी दर्शनों को आये। उस दिन दो घंटे तक महाराज और राजाधिराज का प्रेमालाप होता रहा। पाँच दिन तक इसी प्रकार परस्पर वार्त्तालाप हुआ किया। फिर यह निश्चय हुआ कि राजाधिराज सायङ्काल के ६ बजे से रात्रि के ९ बजे तक श्रीसेवा में उपस्थित रहा करें जिस में १ घंटे तक तो धर्मविषय पर प्रश्नोत्तर और २ घंटे तक पढ़ना हुआ करे। तदनुसार राजाधिराज ने श्रीचरणों में बैठ कर मनुस्मृति (प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ कर) तथा पातञ्जल योगशास्त्र तथा वैशेषिक दर्शन का कुछ भाग पढ़ा। प्रातःकाल जब महाराज भ्रमण को जाया करते थे तो कभी २ राजाधिराज भी उनके साथ चले जाते थे और उनसे एकान्त में प्राणायाम विधि सीखा करते थे।

ब्राह्मणकुमार को संन्यास-दान

महाराज ने एक होनहार ब्राह्मण कुमार को संन्यास दिया था और उसका नाम ईश्वरानन्द रक्खा था और उसी समय उसे विद्योपार्जन के लिये प्रयाग भेज दिया था और वैदिक यन्त्रालय के मैनेजर को लिख दिया था कि जब तक वह पढ़ता रहे उसे ५) रु० मासिक मिलता रहे।

निद्रा पर अधिकार

महाराज का यह नियम था कि मध्यान्ह के भोजन के पश्चात् ग्रीष्मकाल में १६ मिनट और शीतकाल में १४ मिनट निद्रा लिया करते थे। निद्रा उनके इतनी वशवर्तिनी थी कि लेटने के कुछ क्षण पश्चात् ही वह गाढ़ निद्रा से अभिभूत हो जाते थे और घड़ी की सुई के १६ मिनट पर पहुँचते ही १७ वें मिनट में अंगड़ाई लेकर उठ बैठते थे और २-३ मिनट में हाथ मुँह धोकर वेदभाष्य के कार्य्य में लग जाते थे। भृत्य लोग भी महाराज के नियत समय पर शय्या-त्याग करने से परिचित हो गये थे और वह घड़ी की सूई की १६ मिनट पर पहुँचते ही मुँह हाथ धुलाने का जल ठीक करके रख देते थे।

हमें शास्त्रार्थ से क्या काम

एक दिन कुछ लोग महाराज के पास आये और कहने लगे कि यहाँ रामसनेहियों के महन्त हिम्मतराम रहते हैं, आप का यदि उनसे शास्त्रार्थ हो जाय तो उत्तम है। महाराज ने कहा कि हम शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हैं, उन्हें हमारे पास लिवा लाओ। लोग हिम्मतराम के पास गये और उनसे अपना मनोभाव प्रकट किया, परन्तु महन्तजी ने कहा कि भाई हम तो पानी छान कर पीते हैं और राम २ कहते हैं, हमें शास्त्रार्थ से क्या काम।

रामसनेहियों से भेंट

उन्हीं दिनों में शाहपुरा में रामसनेहियों का एक मेला था। उस में ब्यावर के कुछ रामसनेही वैश्य आये हुए थे। एक दिन वह महाराज का व्याख्यान सुनने के लिये आये। उस समय तक व्याख्यान आरम्भ नहीं हुआ था, वह महाराज को राम राम करके बैठ गये। महाराज ने उसका उत्तर 'नमस्ते' शब्द से दिया। थोड़ी देर पश्चात् महाराज ने उनसे पूछा कि तुम लोग इतने दिन से राम राम जपते हो, इस से क्या लाभ है? उन्होंने कहा पहले नाम पीछे नामी, जैसे हमने पहले आप का नाम सुना और पीछे ढूंढते २ आप को पा लिया, जैसे पहले काशी कहते २ और पीछे ढूंढते २ मनुष्य काशी पहुँच जाता है, ऐसे ही राम राम कहते कहते मनुष्य पीछे राम को पा लेता है। महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने तो कभी पहले तुम्हारा नाम जपा नहीं, परन्तु फिर भी मैंने तुम्हें अपने सम्मुख बैठे हुए कैसे पालिया। केवल नाम लेने से ही परमेश्वर नहीं मिल सकता। उसके लिये साधन करना आवश्यक है। केवल लड्डू २ कहने से ही लड्डू नहीं मिल सकता, उसके लिये उपयुक्त साधन करना होता है।

बाबाजी, स्वामीजी सच कहते हैं

यह बातें हो ही रहीं थीं कि पाँच पाँच छः छः वर्ष के बालक जो उन वैश्यों की गोद में बैठे हुए थे हठात् उठ कर कहने लगे बाबाजी, स्वामीजी सच कहते हैं। लड्डू २ कहने से क्या लड्डू मिल सकते हैं? यह सुन कर सब लोग विस्मित हो गये तब महाराज ने कहा कि यह बालक पक्षपाती नहीं है, इन्हों ने किसी के कहने से ऐसा नहीं कहा। अब इन बालकों की सरलोक्तिपूर्ण मध्यस्थता से हमारे तुम्हारे शास्त्रार्थ की सुन्दर मीमांसा हो गई।

रविवार को महाराज वेदभाष्य का कार्य्य नहीं किया करते थे। एक रविवार को राजपुरोहित छविमल व्यास महाराज के पास आये और 'नमो नारायण' कह कर बैठ गये। महाराज ने उनका 'नमस्ते' शब्द से अभिवादन किया और कहा कि आइये आज हमारी छुट्टी है, और आप से शास्त्रचर्चा करने की सुविधा है। व्यासजी ने कहा कि छुट्टी-मुक्ति तो हमारे लिए हो सकती है क्योंकि हम संसार-बंधन में बद्ध हैं। आप तो संसार-बन्धन में हैं नहीं, फिर आप की छुट्टी वा मुक्ति कैसी? महाराज ने कहा कि हमारी वेदभाष्य के कार्य्य से छुट्टी है। व्यासजी ने कहा कि वेद-भाष्य धर्म्म कार्य से छुट्टी कैसी? महाराज ने कहा कि धर्म्म-कार्य से नहीं, वेद-भाष्य के कार्य से छुट्टी है। फिर महाराज ने कहा कि कोई शङ्का सन्देह हो तो कहिये। व्यासजी ने उत्तर दिया कि हम तो निःसन्देह हैं, हम किसी शङ्का-सन्देह के निवारण करने के लिये आप के पास नहीं आये, हम तो केवल आप से मिलने के लिये आये हैं। महाराज ने कहा कि निस्सन्देह तो दो ही प्रकार के लोग हो सकते हैं।

राजपुरोहित से वार्त्तालाप

यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः पराङ्गतः।
द्वौ हीमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

अर्थ—दो ही प्रकार के लोग सुख भोगते हैं एक तो वह जो अत्यन्त मूढ़ हो, दूसरा वह जो परम बुद्धिमान् हो, दोनों के बीच के लोग क्लेश पाते हैं।

आप इन दोनों में से कौन हैं? व्यासजी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, परन्तु थोड़ी देर पीछे कहा कि आप जो समझें, आप तो बुद्धिमान् ही हैं।

विद्यार्थी के प्रश्नों का उत्तर

बिहारीलाल नामक एक विद्यार्थी थे। उन्होंने महाराज से तीन प्रश्न किये—

(१) पाणिनि की अष्टाध्यायी के तीसरे अध्याय के दूसरे पाद के १७७ वें सूत्र "भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तुवः क्विप्" में ग्राव-स्तुति अर्थात् पत्थर की स्तुति प्रतिपादित की गई है।

प्रश्न २—पाणिनि के एक सूत्र का उल्लेख करके कहा कि इससे शिव, स्कन्द, विष्णु प्रभृति की मूर्त्ति सिद्ध होती है।

प्रश्न ३—ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं?

महाराज ने इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार दिये:—

उत्तर १- स्तुति अनेक वस्तुओं की होती है जैसे कारीगर कहते हैं, कि यह पत्थर उत्तम है, यह काष्ठ उत्तम है। ग्रावा के अर्थ पत्थर अवश्य हैं, परन्तु इस से पत्थर की मूर्त्ति की सिद्धि नहीं होती।

उत्तर २—उस समय शिव, विष्णु आदि मनुष्यों के नाम होते थे। विदेश आदि जाने पर उनकी मूर्त्तियां रक्खी जाती थीं, परन्तु इस से शिव, विष्णु आदि की पूजा सिद्ध नहीं होती।

उत्तर ३—परमेश्वर सर्वव्यापक है।

इस पर बिहारीलाल ने कहा कि तो फिर मैं प्रस्तरादि में ईश्वर को व्यापक समझ कर उसकी पूजा कर सकता हूँ।

महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारी झाँझ, घन्टे आदि और तुम्हारी वाणी, गले आदि में भी ईश्वर है। तो तुम ईश्वर के एक अंश को आहत करके (घण्टा घड़ियाल बजाकर) उसके दूसरे अंश (प्रस्तरादि) की पूजा करते हो, यह क्या बात है ? और यदि तुम पत्थर में यथार्थ रूप से ईश्वर बुद्धि करके पत्थर को ईश्वर कर सकते हो तो बालू को शर्करा समझ कर भोजन क्यों नहीं करते ?

बिहारीलाल ने महाराज की इस प्रकार की युक्तियाँ सुनकर मूर्त्तिपूजन करना त्याग दिया और वह महाराज के शुद्ध चित्त से अनुयायी हो गये।

विचित्र ज्ञानेन्द्रिय-प्रकाश

शाहपुरा में महाराज खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठ कर वेदभाष्य किया करते थे। टट्टी पर जल छिड़कने के लिए एक हौज था जिस में प्रतिदिन कुएं से जल भर दिया जाता था और उसमें से जल लेकर घीसालाल बोडा ब्राह्मण टट्टी पर छिड़का करता था। हौज प्रतिदिन साफ कर दिया जाता था और उसमें ताजा जल भर दिया जाता था। एक दिन भृत्य ने असावधानी वा प्रमाद से हौज को साफ न किया और उसमें कुछ बासी जल पड़ा रह गया और उसी में ताजा जल भर कर टट्टी पर छिड़क दिया। इसके कुछ ही देर पश्चात् महाराज ने यह बात जानली। उन्होंने तत्क्षणात् वेदभाष्य का कार्य बन्द कर दिया और कहा कि उस जल को फेंक दो और हौज को साफ करके उसमें ताजा जल भरो। और जब तक हौज साफ होकर उसमें ताजा जल न भर कर टट्टी पर न छिड़का गया वेद-भाष्य का कार्य न किया। इस घटना को देख कर घीसालाल चकित होगया। उसने कहा कि स्वामीजी में कैसी अद्भुत शक्ति है, ऐसी बातों के जानने की राजा महाराजाओं में भी शक्ति नहीं होती।

पत्थर पर चढ़े बताशे

महाराज के दुग्ध में बताशे पड़ा करते थे। एक दिन उनके दुग्ध में बताशे डाले जारहे थे कि उन्होंने देखा कि एक बताशे पर सिन्दूर का सूक्ष्म सा दाग लगा हुआ है। उन्होंने भृत्य से कहा कि यह बताशे पत्थर पर चढ़ाये हुए हैं, मैं इन्हें दुग्ध में नहीं डलवाऊंगा, तुम यह बताशे हलवाई को लौटा आओ और फिर कभी उसकी दुकान से बताशे मत लाओ।

महाराज की ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति अति प्रबल थी और हरएक वस्तु को ध्यान से देखना उनका स्वभाव हो गया था यह दोनों घटना इस के समुज्ज्वल दृष्टान्त हैं।

नैयायिक से विनोद-वार्त्ता

एक दिन एक नैयायिक महाराज की ओर आ निकले और लगे न्याय छौंकने। महाराज विनोदप्रिय तो थे ही। उन्होंने भी उन से दो घड़ी मन बहलाने की ठान ली। महाराज ने नैयायिक महाशय से कहा कि 'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' इस का नव्य न्याय की रीति से अर्थ कीजिए। फिर क्या था, उन्होंने अवच्छेदकावच्छिन्न की झड़ी लगादी और लगे फक्किका पर फक्किका झाड़ने। आधे घन्टे तक महाराज उसे सुनकर मन ही मन हँसते और उनके व्यर्थ समय नष्ट करने पर खेद करते रहे। अन्त में महाराज ने गम्भीरतापूर्वक उनसे कहा कि भाई इस का सीधा अर्थ तो यह है कि 'देवदत्त ग्राम को जाता है,' परन्तु आपने

उसे ऐसा जटिल बना दिया दिया कि कोई कुछ भी न समझे और उन्हें उपदेश दिया कि पहले दर्शनों को समझलो और फिर दार्शनिक बातचीत करो।

चौके-चूल्हे का पाखण्ड

महाराज कच्ची-पक्की, निखरी-सिखरी रसोई के पचड़े को नहीं मानते थे। एक दिन एक संन्यासी जो उनके पास अध्ययन करता था चौके के प्रश्न पर रसोइया से बिगड़ बैठा तो महाराज ने उसे भर्त्सना की कि संन्यासी होकर भी चौके-चूल्हे के पाखण्ड से नहीं छूटे। तुम्हें तो चारों वर्णों के परस्पर के भेद भाव को मिटाकर सार्वजनिक बन्धुत्व स्थापित करना चाहिये, परन्तु तुम स्वयं इस बखेड़े में पड़े हो।

स्वामीजी की सत्य-प्रियता

जिन दिनों महाराज शाहपुरे में थे उन्हीं दिनों फर्रुखाबाद के पण्डित गोपालरावहरि उनका जीवनवृत्तान्त 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' में लिखा करते थे। उन्होंने महाराज के प्रथम बार चित्तौड़ पधारने के वृत्तान्त में लिख दिया था कि महाराणा महाराज से प्रति दिन दो बार मिला करते थे। यह बात सत्य न थी। इस वृत्तान्त के विषय में एक नवीन वेदान्ती साधु अमृतराम ने महाराज को शाहपुरे में पत्र भेजा कि गोपालरावहरि ने आपके सम्बन्ध में ऐसा मिथ्या लिखा है। महाराज सत्य को सर्वोच्च स्थान देते थे और असत्य से उन्हें अत्यन्त घृणा थी। महाराज ने उस साधु का पत्र पण्डित गोपालरावहरि को भेज कर लिख दिया कि उस समय उदयपुराधीश से मेरा समागम केवल तीन बार ही हुआ था। उनको यह भी चेतावनी दी कि जब आपको मेरा ठीक २ वृत्तान्त विदित ही नहीं है तो इसके लिखने में साहस कभी न कीजिए। थोड़ा सा भी असत्य मिल जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य भी बिगड़ जाता है। ऐसा ही निश्चय रक्खो।

लेटते ही सोजाते थे

रात्रि को दस का पहला घन्टा बजते ही पलंग पर लेट जाते थे और लेटते ही गहरी नींद सो जाते थे। महाराज का निद्रा पर यह अधिकार देखकर सब को ही आश्चर्य होता था।

जब महाराज उदयपुर में ही थे तब ही जोधपुर से महाराज प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह के पत्र श्रीसेवा में आये थे जिन में उन से जोधपुर पधारने की विनीत प्रार्थना की गई थी। महाराज ने उसी समय शाहपुरा से लौट कर जोधपुर जाने का वचन देदिया था। अतः जब शाहपुरा में महाराजा जसवन्तसिंहजी जोधपुराधीश का निमन्त्रण आया तो महाराज ने जोधपुर की मरु भूमि को अपने अमृतोपम उपदेश की वर्षा से सिञ्चित करने का सङ्कल्प कर लिया। रावराजा तेजसिंह और कर्नल सर प्रतापसिंह दीर्घकाल से महाराज के दर्शनों की आकांक्षा और उत्कण्ठा रखते थे और कई बार पत्र द्वारा श्रीचरणों में प्रार्थना कर चुके थे। उन्होंने यह प्रार्थना महाराजा जसवन्तसिंह के परामर्श से ही की थी। उनकी ऐसी भक्ति और आग्रह देखकर महाराज का भक्त-वात्सल्य और परोपकार का भाव उमड़ आया और उनके अनुग्रह-मेघ ने बरसने का सङ्कल्प कर लिया और ज्येष्ठ वदी ४ सं० १९४० प्रस्थान के लिये नियत करदी।

जोधपुराधीश एक वेश्या नन्हींजान पर बुरी तरह आसक्त थे और यह बात सब कोई

शाहपुराधीश की चेतावनी

जानता था। शाहपुराधीश को जब ज्ञात हुआ कि महाराज जोधपुर अवश्य जायंगे तो उन्हें एक बात की चिन्ता हुई। वह यह कि महाराज जोधपुर जाकर भी इस पाप कर्म्म की भरपूर निन्दा करेंगे, कहीं ऐसा न हो कि महाराज को कुछ हानि पहुँच जाय। अतः उन्होंने प्रेम से विह्वल होकर महाराज को एक हलकी सी चेतावनी देना अपना कर्त्तव्य समझा और महाराज से निवेदन किया कि जहां आप जारहे हैं वहाँ वेश्याओं का अधिक खण्डन न कीजिए।

चेतावनी का परिणाम

महाराज तलवारों की छाँह और तोप के मुँह पर भी सत्य बात के कहने और अपना कर्त्तव्य पालन करने से चूकने वाले व्यक्ति न थे। उनके हितेच्छुओं ने खटके के अवसरों पर कितनी वार ऐसी चेतावनियाँ नहीं दी थीं और कितनी वार उन्होंने उनकी अवहेलना नहीं की थी। इस चेतावनी का भी वही परिणाम हुआ जो ऐसी अनेक चेतावनियों का अनेक बार इससे पहले हो चुका था। महाराज ने कड़क कर उत्तर दिया कि मैं बड़े २ कँटीले वृक्षों को नहुरने से नहीं काटा करता। उनके लिये तो अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।

सम्मान-प्रदर्शन

विदा के समय शाहपुराधीश ने २५०) वेद-भाष्य की सहायतार्थ दिये और वेद-धर्म्म-प्रचारार्थ एक उपदेशक ३०) रु० मासिक पर रखने का वचन दिया। और निम्न लिखित मान-पत्र श्रीसेवा में अर्पित किया—

मानपत्र

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के चरणारविन्दों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की वारंवार नमस्तेऽस्तु।

अपरंच, यहां आपका विराजना सार्द्धद्वय मास हुआ, तथापि आपके सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी की आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते, परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म्म उपदेश ग्रहण, पुनः सत्याचरण, असत्य का त्याग और आपके मुखारविन्द से श्रवण की अभिलाषा देख के आपने वहाँ पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है, मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका पधारना ही उत्तम है।

यही समझ कर यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की। आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे।

सं० १९४० मिति ज्येष्ठ कृष्णा ४ हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य,

नियत तिथि ज्येष्ठ कृष्णा ४ अर्थात् २६ मई सन १८८३ को महाराज शाहपुरा से विदा हुए। शाहपुराधीश ने अतिसम्मानपूर्वक उन्हें विदा किया और बहुत दूर तक उनके साथ बग्घी में सवार होकर गये।

अजमेर

२८ मई सन १८८३ को महाराज अजमेर पहुँच कर सेठ फतहमल की कोठी में उतरे। अजमेर महाराज केवल एक ही दिन ठहरे, परन्तु उस दिन भी उपदेश और शङ्का-समाधान का कार्य करते रहे। महाराज के आगमन की सूचना पाते ही लोग उनके पास इकट्ठे हो जाते थे।

प्रतिकृति और रामानन्द के वेतन के सम्बन्ध में महर्षि का पत्र (पृष्ठ १९२)
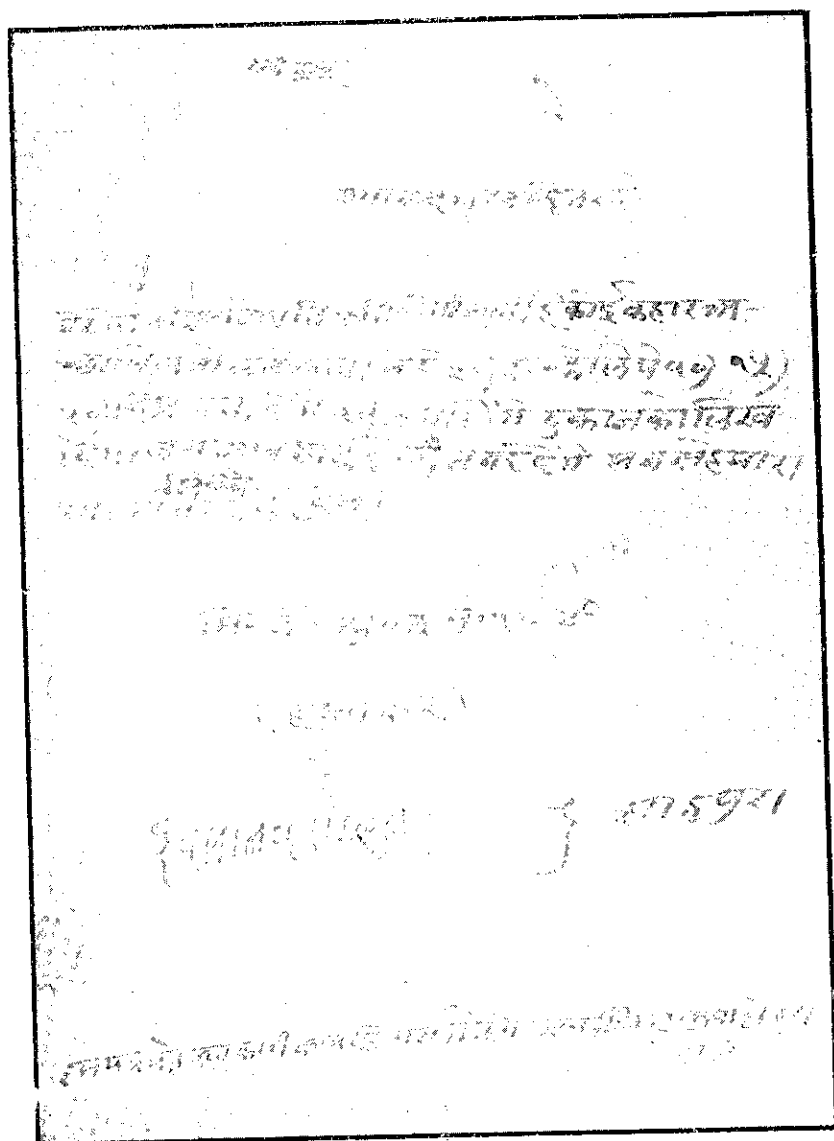
उस दिन एक सेठजी आये जो जैन थे। उन्होंने कहा कि संसार में त्याग ही मुख्य बात है। महाराज ने कहा कि यह असम्भव है। सेठजी से महाराज ने संसार का लक्षण पूछा परन्तु वह न बतला सके। फिर धर्म्म-अधर्म्म पर बात चीत हुई। भूत-प्रेत का प्रसङ्ग आया जिसे महाराज ने ढकोसला बताया। महाराज के सुप्रसिद्ध शिष्य राव बहादुर गोपालराव हरि देशमुख जज पूना के पुत्र लक्ष्मण रावजी असिस्टेंट कलक्टर खानदेश महाराज से योगाभ्यास सीखने के लिये अजमेर आये हुए थे।

जैन सेठ से वार्त्तालाप

अजमेर में लोग जोधपुर की स्थिति को जानते थे कि महाराजा एक वेश्या के फंदे में हैं और यह स्पष्ट ही था कि महाराज उनके इस दुराचार के विरुद्ध खुले शब्दों में उपदेश किये विना नहीं रहेंगे और इसलिये महाराज के हितचिन्तक अनिष्ट की शङ्का करते थे, वैसे भी लोग मरु भूमि को न केवल प्राकृतिक दृष्टि से ही वरन् धार्मिक दृष्टि से भी ऊसर समझते थे। अतः कुछ भक्तों ने भावी विपत्ति के भय से महाराज से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि भगवन् वह मूल राक्षस का देश है वहां न जाइये। परन्तु महाराज धुन के धनी थे और एक बार वचन देकर उसे लौटाना जानते ही न थे, उन्होंने हितेच्छुओं के हृदय से निकले हुए वचनों पर कर्णपात न किया और इतना ही कहा कि यदि लोग हमारी उंगलियों की बत्तियाँ बना कर जलादें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश करूँगा।

मूलासुर के देश में न जाइये

महाराज २९ मई सन् १८८३ को १२ बजे अजमेर से सवार हुए और पाली स्टेशन पर पहुँचे। इस समय पाली तक ही रेल थी और वहाँ ही महाराज के लिये यानादि का जोधपुर राज्य की ओर से प्रबन्ध था। म० लक्ष्मणरावजी भी महाराज के साथ थे। पाली पर चारण नवलदान और मुंशी दामोदरदास यानादि लिये हुए उपस्थित थे। एक हाथी, तीन रथ, एक सेज-गाड़ी, तीन ऊँट और चार सवार उनके साथ थे। पाली में महाराज अग्रवालों के बाग में उतरे और वहां का हाकिम भी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ।

दूसरे दिन महाराज ने प्रातःकाल ही जोधपुर के लिए प्रस्थान कर दिया। पाली से जोधपुर १८ कोस है, मार्ग में महाराज और उनके साथियों को बहुत कष्ट हुआ। बड़े ज़ोर की वर्षा होने लगी जिस से सब लोग और सारा सामान भीग गया। झंझावात से रथ आदि की छत तक उड़ गई। उस दिन सबने रोपट में डेरा किया। वहां के जागीरदार ठाकुर गिरधारीसिंह ने बड़े उत्साह से महाराज का आतिथ्य किया और वह महाराज के अनुयायी हो गये। वहां से रात्रि में ही महाराज ने कूच कर दिया और प्रातःकाल ३१ मई को जब जोधपुर दो कोस रह गया तो महाराज वायुसेवनार्थ यान से उतर पड़े और पैदल चलने लगे। अन्य साथियों ने भी महाराज का अनुकरण किया। राज्य की ओर से राव राजा जवानसिंह ने कुछ दूर बढ़कर महाराज का स्वागत किया। जोधपुर में उन्हें नज़र बाग़ के सामने भैया फ़ैज़ुल्लाखाँ की कोठी में ठहराया गया। महाराज के पहुँचते ही सर कर्नल प्रतापसिंह महाराजा

जोधपुर के मार्ग में कष्ट

जोधपुर में स्वागत

के लघु सहोदर और राव राजा तेजसिंह महाराज के स्वागत को आये। सर प्रतापसिंह ने नमस्ते करके २५) नक़द और एक मोहर महाराज की भेंट की। महाराज की सेवा के लिये उन्होंने समुचित प्रबन्ध कर दिया, उनके लिये सवत्सा दुग्धवती गौ भेजदी, उनके भोजन, शयनादि की सुव्यवस्था करदी और एक गार्ड जिस में ६ सिपाही और एक हवलदार था उनकी रक्षा और चार सेवक उनकी सेवा के लिये नियत कर दिये। इस प्रकार सर प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह ने महाराजा के सुख और सुविधा के उपकरण प्रस्तुत करने में कोई त्रुटि नहीं की। महाराजा जसवन्तसिंह के गले में पीड़ा थी अतः वह महाराज के स्वागत के लिये स्वयं न पधार सके थे।

महाराजा दर्शनों को आये

महाराज के जोधपुर पहुँचने के सत्रह दिन के पश्चात् महाराजा उनके दर्शनों को आये और आते ही नम्र नमस्कारपूर्वक १००) रुपये और ५ मोहर श्रीचरणों में भेट कीं। महाराज कुर्सी पर विराजमान थे। महाराजा ने उन के सामने कुर्सी पर बैठना शिष्टसम्मत न समझा, अतः वह फर्श पर ही बैठने लगे। महाराज ने उन्हें कुर्सी पर बैठने को कहा परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि आप हमारे स्वामी और हम आपके सेवक हैं। तब महाराज ने उनका हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बिठलाया। कुशल-प्रश्नानन्तर महाराज ने उनसे पूछा कि कहिये क्या इच्छा है तो उन्होंने उत्तर में कहा कि मैं श्रीचरणों में शिक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा से उपस्थित हुआ हूँ। यह सुनकर महाराज ने अपना उपदेश-भाण्डार खोल दिया

उपदेश-गङ्गा

और उन्हें सुधर्म, सुकर्म और राजनीति के अनर्घ रत्नों से निहाल कर दिया। महाराज ने उनके पूर्वज जयचन्द के दृष्टान्त से आरम्भ करके स्वदेश-द्रोह और फूट के दोष दिखाते हुए ऐक्य और स्वदेश-प्रेम के गुण बतलाये, मनुस्मृति के अनुसार राजा-प्रजा के धर्म्म वर्णन किये, राजनीति के गूढ़ तत्त्व समझाये। महाराज ने लगभग तीन घण्टे तक अपने उपदेश के अटूट धारा-प्रवाह को प्रवाहित रक्खा। महाराजा ने आयु भर में ऐसा सारगर्भित, ऐसा मर्मस्पृक् उपदेश कभी न सुना था। उसे सुनकर उन्हें असीम आनन्द हुआ और यह पहला सम्मिलन बड़ी प्रसन्नता और प्रीति के साथ समाप्त हुआ। महाराज से विदा होते हुए महाराजा ने निवेदन किया कि आपका यहाँ पधारना दुर्लभ है, आप जब तक यहाँ रहें, उपदेश से जनता को कृतार्थ करते रहें।

व्याख्यान-माला

इसके दूसरे दिन से ही महाराज के मध्यान्होत्तर में ४ बजे से ६ बजे तक फ़ैजुल्लाखां की कोठी के सहन में विविध विषयों पर व्याख्यान होने लगे। सैकड़ों लोग व्याख्यान सुनने आने लगे। उन्होंने पहले कभी ऐसे व्याख्यान नहीं सुने थे। श्रोताओं की आँखे खुलने लगीं, जिन बातों को वह ब्रह्म का वाक्य समझ रहे थे वह महाराज के उपदेश के प्रकाश में भ्रममूलक दिखाई पड़ने लगीं। उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ, मनुष्य जन्म के उद्देश्य का ध्यान हुआ। महाराज के व्याख्यानों में उन्हें नित्य नया आत्मिक भोजन मिलता था जिसे पहले चखना तो दूर, जिसकी गन्ध भी उनके नासापुटों तक न पहुँची थी। महाराज के सदुपदेशों को सुनकर हरएक श्रोता यह अनुभव करता था कि वह ज्ञान और आनन्द की गङ्गा में

स्नान कर रहा है। महाराज अपने व्याख्यानों में क्षत्रियों के चरित्र-संशोधन और गोरक्षा पर बहुत बल देते थे। वह यह जानते थे कि महाराजा का नन्हींजान वेश्या से विशेष सम्बन्ध है, और इसी भय से कि कहीं महाराज उनके इस दुष्कर्म की सभा में निन्दा न कर बैठें पहले व्याख्यान से पूर्व ही रावराजा तेजसिंह ने डरते २ महाराज से निवेदन कर दिया था कि भगवन्, आप महाराजा के चरित्र के विषय में कुछ न कहें। महाराज को यह बात बहुत अखरी और उन्होंने आवेश के साथ उनसे कहा कि आप मुझ से झूठ बुलवाना चाहते हैं, मैं जो कुछ कहूँगा सत्य ही कहूंगा। मैं जो कुछ कहता हूँ वह असभ्यतासूचक वा किसी व्यक्ति का नाम निर्देशपूर्वक नहीं होता। महाराज ने भरी सभा में वेश्या-गमन के दोषों को दिखाने और वेश्या-गामियों को फटकारने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया और इस सम्बन्ध में वही शब्द कहे जो वह सदा कहा करते थे अर्थात् क्षत्रिय सिंह हैं और वेश्या कुतिया हैं।

आप मुझ से झूठ बुलाना चाहते हैं

वेश्या-गमन की निन्दा

लोक में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि यही बात महाराज ने महाराजा जसवन्तसिंह से कही थी। यह घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक दिन महाराज महाराजा के बंगले पर पधारे थे। उस समय महाराजा के पास नन्हींजान बैठी थी। महाराज के आगमन की सूचना मिलते ही महाराज ने कहारों को आज्ञा दी कि नन्हीजान की पालकी उठाकर लेजाओ। पालकी उठाते हुए उसका एक ओर का कन्धा झुक गया तो महाराजा ने उसे अपने कन्धे वा हाथ का सहारा दे दिया। इतने में ही महाराज भी आ पहुंचे और उन्होंने महाराजा को पालकी को सहारा देते हुए देख लिया। यह दृश्य देख कर महाराज को बहुत क्रोध आया और उन्होंने महाराजा से कहा कि राजपुरुष सिंह के समान और वेश्याएं कुतिया के समान हैं। सिंहों को कदापि न चाहिए कि वह कुतियाओं से समागम करें। कुतियों पर आसक्त होना कुत्तों का ही काम है, न कि अच्छे मनुष्यों का और लड़कों पर मोहित होने वाले तो शूकर और कौए ही होते हैं। सहस्रों धिक्कार हैं ऐसे जीवों पर ?

मिथ्या किंवदन्ती

देवेन्द्रबाबू ने जो अनुसन्धान जोधपुर जाकर किया उसमें इस घटना का उन्हें कोई प्रमाण नहीं मिला, हाँ इतना अवश्य सिद्ध हुआ कि महाराज ने एक बार महाराजा के भ्राता महाराज किशोरसिंह से कुचामन के ठाकुर के पुत्र कुँवर शेरसिंह के सामने यही बात अवश्य कही थी, जिसे वह नीची ग्रीवा किये सुनते रहे, परन्तु मन में वह महाराज से अप्रसन्न हो गये। ऐसे विरले ही मनुष्य होते हैं जो हितेच्छु उपदेष्टा से अपने दोषों को सुनकर उनके त्यागने का यत्न करते हों। अधिकतर तो ऐसे ही होते हैं, जो दोषों को सुनकर चिढ़ जाते हैं और उपदेष्टा से ही द्रोह करने लगते हैं। सच है—

अप्रियस्य तु तथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

अर्थात्—अप्रिय सत्य का कहने और सुनने वाला दोनों ही दुर्लभ हैं।

एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में भी राजाओं के व्यभिचार का बड़े कड़े शब्दों में खण्डन किया और कहा कि यह

राजाओं को फटकार

लोग वेश्याओं के पीछे कुत्तों के समान फिरते हैं। इतना ही नहीं सर प्रतापसिंह को निम्न लिखित पत्र लिख कर उन्हें और महाराजा को चरित्र-संशोधन के विषय में सचेत किया:—

सर प्रतापसिंह को पत्र

श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा प्रतापसिंहजी आनन्दित रहो। यह पत्र बाबा साहब को भी दृष्टिगोचर करा दीजिए।

मुझको इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्यादि में वर्तमान—आप और बाबा साहब रोगयुक्त शरीर वाले हैं। अब कहिए इस राज्य का कि जिस में १६ लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं, उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं, सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है, तथापि आप लोग अपने शरीर का आरोग्यसंरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं, यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है, मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझ से सुनकर सुधार लेवें जिस से मारवाड़ को क्या अपने आर्य्यावर्त्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्मके भी बहुत कम चिरञ्जीव, स्वल्पायु होते हैं। इस के हुए विना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती है। इस पर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिए। आगे जैसा आप लोगों की इच्छा हो वैसा कीजियेगा। आश्विन वदि ३ शनिवार संवत् १९४०।

इन बातों से नन्हीजान बहुत घबराई। इसे भय हुआ कि महाराज के उपदेश से कहीं महाराजा उसका परित्याग न कर दें। वह महाराज की पक्की शत्रु बन गई।

नन्हीजान शत्रु होगई

अन्य लोगों में भी कुछ लोग महाराज के विरुद्ध हो गये। भैया फ़ैजुल्लाखां मुसाहिब-आला की उन दिनों जोधपुर में तूती बोल रही थी। वह एक प्रकार से राज्य के कर्त्ता धर्त्ता बने हुए थे। महाराजा पर उनका प्रभाव था या नन्हीजान का। बड़े २ जागीरदार और सरदार भी उनका मुँह तकते रहते थे। फ़ैजुल्लाखाँ भी ३ बार महाराज से मिलने आये थे। धर्म्म विषय पर उन्होंने महाराज से बात चीत भी की थी। महाराज तो सत्य कहने में किसी से लचते न थे। अपने एक व्याख्यान में महाराज ईसाई मत की आलोचना कर रहे थे कि भय्या फ़ैजुल्लाखाँ मुसाहिब-आला का भतीजा मोहम्मद हुसैन एक तलवार की मूठ पर हाथ रख कर खड़ा होगया और महाराज से बोला कि आप हमारे मत के विषय में कुछ भी न कहें। महाराज ने उसे तो इस प्रकार के वचन कहकर कि तुम अभी अनुभवशून्य हो, खड्ग पर केवल हाथ धरना ही जानते हो उसे कोश से निकाल नहीं सकते, मैं ऐसी गीदड़ भबकियों से डरने वाला नहीं हूं, शान्त कर दिया और वह लज्जित हो कर बैठ गया इसके पश्चात् महाराज ने इस्लाम धर्म्म की, खूब कड़ी समालोचना की जिससे फ़ैजुल्लाखाँ और अन्य मुसलमान उनके शत्रु बनगये।

शत्रुओं का दल बनगया

मुसलमान नवयुवक आपे से बाहर

एक दिन जब वह महाराज से मिले तो उन्होंने अपने क्रोध को इन शब्दों में प्रकट

मुस्लिम राज्य में जीते न बचते

किया कि यदि मुसलमानों का राज्य होता तो लोग आप को जीवित न छोड़ते और उस समय आप ऐसा भाषण भी न कर सकते। महाराज ने कहा कि मैं भी उस समय ऐसा ही कार्य करता, दो राजपूतों की पीठ थपेड़ देता और वह आप की अच्छी तरह ख़बर ले लेते।

मुझे मनुष्य की रक्षा की आवश्यकता नहीं

जिस पहाड़ की ओर महाराज प्रातःकाल हवा खाने जाया करते थे उस पर हिंस्र पशु बहुत रहते थे। दरबार साहब ने स्वामीजी से कहा कि आप का अंधेरे में अकेले उस ओर जाना ठीक नहीं है, परन्तु स्वामीजी ने इस पर कोइ कर्णपात न किया। तब दरबार ने राव राजा तेजसिंह से कहा कि स्वामीजी की रक्षार्थ रिसाले का एक सवार नियत करादो कि जब स्वामीजी टहलने जाया करें तो वह कुछ दूर उनके पीछे २ रहा करें। जब स्वामीजी को यह ज्ञान हुआ तो उन्होंने सवार को अपने साथ रहने से रोक दिया और कहा कि जो परमात्मा सब प्राणियों की रक्षा करता है वही मेरी रक्षा करेगा।

चक्रांकितों की समालोचना

एक दिन महाराज ने चक्राङ्कितों की भी अपने व्याख्यान में कड़ी समालोचना की जिस से चक्रांकित लोग भी महाराज से चिढ़गये। उनके मत का एक पण्डित श्रीराम पार्वतीय जोधपुर आया हुआ था और अपने शिष्य मेहता विजयसिंह के मन्दिर में ठहरा हुआ था, उसने महाराज से शास्त्रार्थ करने को कहा, परन्तु प्रतिबन्ध यह लगाया कि मेहताजी शास्त्रार्थ के मध्यस्थ हों। महाराज ने कहा कि जिस दिन शास्त्रार्थ करना हो हमारे स्थान पर आजाओ या हमें लिखो तो हम आपके स्थान पर आजावें, परन्तु मेहताजी को मध्यस्थ नहीं कर सकते क्योंकि प्रथम तो वह आप के शिष्य और आप के मतानुयायी हैं, दूसरे वह संस्कृत नहीं जानते। श्रीराम अपनी हठ से न टला और शास्त्रार्थ न हुआ।

चक्रांकित मत पर बात-चीत

एक दिन मेहता विजयसिंह एक पण्डित को साथ लेकर महाराज के पास आये और चक्राङ्कित मत पर बातचीत आरम्भ की। पण्डित ने वह 'तप्ततनु' वाला मंत्र जिस पर उक्त मन्त्र वाले अपने मत को वेदमूलक बतलाते हैं, प्रस्तुत किया। महाराज ने उसके शुद्ध अर्थ करके बतला दिया कि इस से शरीर को दग्ध करना किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। मेहता विजयसिंह और उनके साथी पण्डित को कुछ उत्तर न बन आया परन्तु मन ही मन बहुत कुढ़े।

इस प्रकार जोधपुर का सारा ही वातावरण महाराज के विरुद्ध होगया था। उच्च पदस्थ क्षत्रिय तो इस कारण से रुष्ट थे कि वह भरी सभा में उनके दुराचारों के लिए उन्हें फटकारते थे। मुसलमान भी इस्लाम की कड़ी आलोचना के कारण उन से द्वेष करने लगे थे। चक्राङ्कित लोग उनसे अलग जलते थे। पौराणिक ब्राह्मणों का उनसे विरोध करना तो स्वाभाविक ही था क्योंकि वह समझते थे कि मूर्त्तिपूजा, श्राद्धादि के खण्डन से महाराज उनकी जीविका ही छीनना चाहते हैं। नन्हीजान समझती थी कि वह उसका सर्वस्व ही हरण करना चाहते हैं। वह उनका अनिष्ट करने में क्यों चूकने वाली थी।

महाराज को जोधपुर आये हुए चार मास व्यतीत हो गये। इस बीच में महाराजा

महाराजा और स्वामीजी का मिलन

तीन वार फैज़ुल्लाखां के बाग़ में महाराज के दर्शनार्थ आये और कई २ घण्टे उपस्थित रहकर उन के सत्य और हितकर उपदेशों से लाभ उठाते रहे। महाराज भी तीन वार राई के बाग़ में जहाँ महाराजा निवास करते थे पधारे और अपनी सत्य शिक्षा से महाराजा को कृतकृत्य किया। महाराजा पर महाराज के सत्संग और उपदेश का इतना प्रभाव तो पड़ा कि वह उनके उपदेश को स्वीकार करने लगे और जहाँ तक बुद्धि का सम्बन्ध है वहाँ तक उनके उपदेशों की युक्तियुक्तता के आगे उन्होंने सिर झुका दिया और हृदय से उनका सम्मान भी करने लगे। इस का प्रमाण एक घटना से मिलता है जो महाराज की मृत्यु के ८। ९ वर्ष पीछे की है। एक दिन रात्रि के समय भाटी अर्जुनसिंह और नन्हीजान में कुछ बातें हो रही थीं। किसी प्रसङ्ग में स्वामीजी के विषय में भी कुछ बात चीत होने लगी। उन्होंने स्वामीजी का उल्लेख कुछ अपमानजनक शब्दों में किया। महाराजा ने उसे सुन लिया। उन्होंने अतिक्रुद्ध होकर कहा कि तुम उनके महत्व को क्या जानते हो, मैं जानता हूँ और सत्य कहता हूँ कि यदि मैं महाराजा तख़्तसिंह का पेशाब हूँ और यदि स्वामीजी इस समय जीवित होते तो मैं राज्य छोडकर और संन्यास लेकर उनके साथ चला जाता।

महाराजा पर उपदेश का प्रभाव

मुझे वैदिक-धर्मी लिखाओ

महाराजा के विश्वासों पर महाराज के उपदेशों का पूर्ण प्रभाव पड़ा था और वह वैदिक सिद्धान्तों के पूर्ण विश्वासी बनगये थे। सन् १८९१ में जब जनसंख्या हुई तो मुंशी हरदयालसिंह ने जो उस समय जोधपुर में बड़े उच्च पद पर स्थित थे, नन्हीजान से कहा कि महाराजा से पूछ कर बताओ कि उन का धर्म्म क्या लिखा जावे। नन्हीजान ने स्वयं ही कह दिया कि वैष्णव लिख दो। परन्तु सर प्रतापसिंह ने कहा कि नहीं, उन्हें वैदिक-धर्मी लिखो नहीं तो स्वयं दर्बार से पूछलो। इस पर उनसे पूछा गया तो उन्हों ने कहा कि मेरा मत वैदिक है।

चरित्र पर प्रभाव न पड़ा

यह सब कुछ होते हुए भी महाराजा के चरित्र पर महाराज के उपदेशों का कोई प्रभाव पड़ा हुआ प्रतीत नहीं होता। न तो उन्होंने नन्हीजान का ही परित्याग किया और न मद्यपान ही छोड़ा, मांसभक्षण को तो वह पाप ही नहीं समझते थे। सर प्रतापसिंह ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि दर्बार ने एकवार स्वामीजी से स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मैं मदिरा पीता हूँ और समझता हूं कि मैं बहुत बुरा करता हूं। किन्तु मांस खाते हुए यह मेरे मन में कभी नहीं आता कि मैं पाप करता हूं। मैं मांस खाना कभी नहीं छोड़ूंगा। क्षत्रियों के लिए उसे छोड़ना युक्तियुक्त और सम्भव भी नहीं है, इस पर आप चाहे जो कहें।

स्वामीजी की दिन-चर्य्या

जोधपुर में महाराज की दिनचर्य्या इस प्रकार थी कि प्रातः काल के चार बजे उठकर कुल्ला दातन करके थोड़ी सी सौंफ फांक कर दो चार घूंट जल पीते थे और फिर ४, ५ करवट लेते और ५ बजे भ्रमण करते चले जाते। दो कोस के लगभग जाते थे। जाते हुए कुछ मन्द गति से और लौटते हुए इतनी द्रुत गति से चलते थे कि डेरे पर पहुंचते २ पसीने

में तर होजाते थे। डेरे पर आकर पसीने को कपड़े से पूंछते न थे, वरन् उस पर रेत लगा देते थे। जंगल में शौच से निवृत्त होकर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर आध घण्टे के लगभग ध्यानावस्थित हो जाते थे। जूता बहुत मजबूत पहनते थे और भ्रमण को जाते समय हाथ में एक मोटा सोटा रखते थे। भ्रमण से लौट कर १५। २० मिनट कुर्सी पर बैठकर हवा लेते थे और एक ग्लास जल मिश्रित दुग्ध पान करते थे। ८ बजे से वेद-भाष्य का लिखाना आरम्भ करते और ग्यारह बजे तक उस में व्यस्त रहते। उसके पश्चात् स्नान करके थोड़ी देर एक कोठरी में जाकर और उसके द्वार बन्द करके व्यायाम करते थे। बारह बजे भोजन करते और एक पान खाकर आधा या पौन घण्टा पलंग पर लेट जाते, परन्तु सोते न थे। फिर उठकर थोड़ा सा जल पीते और दो चार मिनट बैठे रहते। तत्पश्चात् सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के प्रूफ़ शोधते और पत्रों के उत्तर लिखाते। तीन बजे फिर स्नान करके सारे शरीर पर मुलतानी मिट्टी लगाते और मस्तक भुजा और वक्षः स्थल पर चन्दन लगाते, चार बजे व्याख्यान स्थल में पधारते उस समय एक रेशमी धोती पहने होते थे। सिर पर पगड़ी होती थी और एक चादर शरीर पर डाल लेते थे। ६ बजे तक व्याख्यान देकर ८ बजे तक जो कोई कुछ पूछता उसको उत्तर देते। १० बजे तक बैठे रहते और समाचार पत्रादि सुनते। १० बजते ही सो जाते। उस समय कोई बैठा होता तो उससे स्पष्ट कह देते कि अब मेरे सोने का समय हो गया है, शेष बात कल कीजिए। भोजन केवल एक ही समय किया करते थे। रात्रि में सोने से पहले दुग्धपान किया करते थे। महाराज का आम बड़ा प्यारा फल था। आम चूस चूस कर दूध पिया करते थे। उस समय जो भी पास बैठे होते उन्हें भी आम खिलाते और तदुपरान्त दूध पिलाते। कभी २ अमरस और दही का श्रीखण्ड भी बनवाते थे।

स्वामीजी सहसा घबरा उठे

फ़ैज़ुल्लाखां के बाग़ के द्वार में दोनों ओर दुमंज़िले मकान हैं। उन्हीं दिनों (यह घटना आषाढ़ मास की है) द्वार के ऊपर के कमरे में कोई पण्डितजी ठहरे हुए थे। उनके लिए बड़ी महारानी ने कुछ फलादि ४। ५ खवासों के हाथ भेजे थे। वह जब द्वार पर आई, और पण्डितजी को पूछा कि कहाँ हैं तो किसी ने यह समझकर कि वह महाराज को पूछती हैं, वहाँ उनसे कह दिया कि बाग़ के बीच के बँगले में हैं, पहुंच कर उन्होंने पहरेदारों से पूछा। उन मूर्खों ने भी यही समझा कि पण्डितजी से उनका अभिप्राय स्वामीजी से है और कह दिया कि ऊपर हैं और वह बेधड़क ऊपर चली गईं। पहरेदारों ने उन्हें न रोका। उस समय महाराज पलंग पर लेटे हुए थे। उन्होंने जो करवट ली तो बरामदे में वह स्त्रियां खड़ी दिखाई दीं। उन्हें देखकर वह सहसा उठकर ज़ोर से चिल्लाये। चारण नवलदान साथ की कोठरी में लेटा हुआ था। वह शोर सुनकर घबरा गया, उसे भय हुआ कि किसी घातक ने महाराज पर आक्रमण किया है। वह नंगे सिर और नंगे पैर भागता हुआ महाराज के कमरे में गया। महाराज ने रोषपूर्ण शब्दों में कहा कि कैसा अन्याय है कि स्त्रियां हमारे सामने आगईं। यह तुम्हारे प्रबन्ध की त्रुटि है, इन्हें, निकाल दो। उसने स्त्रियों को तो नीचे उतार दिया और महाराज से निवेदन किया कि पहरेवालों के प्रमाद से ऐसा हुआ है। महाराज ने कहा कि इन्हें बदलवादो। इस पर उन्हें बदल दिया गया। नये पहरेदार

जो आये उनसे कह दिया गया कि किसी स्त्री वा लड़की को बँगले के पास न आने दो।

सन्ध्या शब्द की सिद्धि

काशी के एक पण्डित महाराजा किशोरसिंह के कुँवर अर्जुनसिंह को पढ़ाया करते थे। उनसे महाराज का 'सन्ध्या' शब्द की सिद्धि पर विचार हुआ था, यह विचार तीन दिन तक होता रहा। अन्त को पण्डितजी को स्वीकार करना पड़ा कि महाराज का पक्ष सत्य है।

मैं स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के योग्य नहीं हूं

गणेशपुरी एक साधु जोधपुर से २० कोस के अन्तर पर रहा करते थे, जिनकी विद्वत्ता की बड़ी ख्याति थी। एक दिन राव राजा जवानसिंह ने उन्हें जोधपुर बुलाया और उनसे कहा कि महाराज से शास्त्रार्थ कीजिए। दो तीन दिन तक तो वह टालते रहे, परन्तु अन्त को उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं स्वामीजी से परिचित हूं और मैंने उनके ग्रन्थ भी देखे हैं, मैं उनसे शास्त्रार्थ करने के योग्य नहीं हूँ। वह जो कुछ कहते हैं सत्य है, मैं शास्त्रार्थ करने उनके सम्मुख नहीं जाऊंगा।

आपके पूर्वपुरुष कितने वीर थे

एक दिन महाराज सर प्रतापसिंह के साथ जोधपुर का दुर्ग देखने गये। वहां उन्होंने उनके पूर्वज महाराजा प्रतापसिंह का, हाथ का बना चित्र देखकर सर प्रतापसिंह से कहा कि देखिए आपके पूर्व पुरुष कैसे शूरवीर थे।

नवीन वेदान्त पर वार्तालाप

एक दिन राव राजा सोहनसिंह श्रीसेवा में आये और निश्चलदास का प्रवृत्ति-रत्नाकर ग्रन्थ साथ लाये और जीव ब्रह्म की एकता पर बातचीत करने लगे। उन्होंने नवीन वेदान्तियों के चार महावाक्य प्रस्तुत करके कहा कि देखिए यह वेद के वाक्य हैं, इनसे जीव ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। महाराज ने उत्तर दिया कि प्रथम तो यह वेद के वचन नहीं हैं, दूसरे इनके अर्थ वह नहीं हैं जो नवीन वेदान्ती करते हैं। फिर उन वाक्यों के ठीक अर्थ करके बतलाये। राव राजा दो तीन दिन तक महाराज से इस विषय पर विचार करते रहे। अन्त में उन्हें निरुत्तर होना पड़ा। राव राजा ने इसी बातचीत के बीच में महाराज से प्रश्न किया कि आप जीव हैं वा ब्रह्म ? तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैं जीव हूँ। राव राजा ने कहा कि मैं तो ब्रह्म हूँ। क्योंकि पण्डित का यही लक्षण है कि समदर्शी हो और चर अचर में ब्रह्म को देखे। महाराज ने कहा कि यदि आप ब्रह्म हैं तो ब्रह्म के गुण आप में होने चाहिएं जो हम आप में नहीं देखते और कई वेदमन्त्रों को उद्धृत करके ब्रह्म के गुण वर्णन किये। इस पर रावराजा बोले कि यदि मैं चाहूँ तो सब कुछ जान सकता हूँ जब मैं शुद्ध होजाऊंगा तो ब्रह्म होजाऊंगा। महाराज ने कहा कि ब्रह्म में अशुद्धता कहां से आई और यदि आई तो आप शुद्ध क्यों नहीं हो जाते। इसका राव राजा कोई उत्तर न देसके। राव राजा ने इस वार्तालाप के पीछे महाराज से इस विषय पर कोई प्रश्नोत्तर न किये। वैसे वह श्रीसेवा में आते रहे और श्रीचरणों में प्रीति-प्रदर्शन करते रहे।

शाक्त मत पर वार्तालाप करने में अरुचि

एक दिन उक्त रावराजा के भाई रावराजा शिवनाथसिंह जो संस्कृतज्ञ थे महाराज के दर्शनों को आये और शाक्त मत के विषय में कुछ पूछने लगे, परन्तु महाराज ने इस विषय पर बातचीत करने में अरुचि प्रकट की और उनसे केवल इतना ही कहा, आप तो स्वयं पण्डित हैं।

महाराज की अरुचि का कारण यही प्रतीत होता है कि इस विषय पर विचार करने में अश्लील बातें आये विना नहीं रह सकती थीं जिनसे महाराज बचना चाहते थे।

महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी

महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी पंडित शिवनारायण भी महाराज से मिलने आया करते थे। परन्तु वह कोई विवादग्रस्त बातें न करते थे, वह सदा महाराज की प्रशंसा ही किया करते थे और उन्हें अपने समय का अद्वितीय तत्वदर्शी विद्वान् समझते थे।

जैनी के प्रश्नों का उत्तर

एक दिन एक जैनी और एक वेदान्ती गृहस्थ महाराज के दर्शनों को आये और दोनों ने ५) ५)रु० महाराज की भेट किये। उनके साथ एक पण्डित भी थे जो प्रश्नों की एक तालिका बनाकर लाये थे। महाराज ने सब प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया।

साधु का शंकासमाधान

एक दिन एक साधु दस बीस मनुष्यों की मण्डली के साथ महाराज के पास आया। उसने जीव ब्रह्म की एकता पर प्रश्न किये। महाराज ने उनके उत्तर दे दिये। उन्हें सुनकर वह कहने लगा कि आप चाहे दोनों को एक मानें वा पृथक् पृथक्, आपको अधिकार है। महाराज ने कहा कि यदि कोई शङ्का शेष हो तो उसका समाधान करलो, परन्तु उसने कहा कि हम तो साधु हैं हमें इस से क्या और चला गया।

नव्वाब से बात-चीत

नव्वाब मुहम्मदखाँ विलायती भी कभी कभी महाराज के दर्शनों को आया करते थे, परन्तु धर्मविषय पर बातचीत न करते थे। एक दिन महाराज ने उनसे कहा कि कुरान में लिखा है कि (क़यामत के दिन) ख़ुदा अर्श (तख़्त) पर बैठेगा और अपनी पिंडली दिखावेगा। यह कैसी बात है, परन्तु उन्होंने कहा कि हम शीआ हैं। ऐसी बातों को नहीं मानते।

बेड़ा कभी का डूब जाता

महाराज कहा करते थे कि हिन्दू राजाओं की दुराचार के कारण बहुत बुरी दशा है। उन के राज्य कभी के नष्ट होजाते, वह यदि अबतक अवशिष्ट हैं तो यह उनकी रानियों के पतिव्रत धर्म्म की सत्ता है। अन्यथा राजाओं के कुकर्म तो ऐसे हैं कि उन से बेड़ा कभी का डूब जाता।

महाराज अपने अधीन पुरुषों के हित का कितना ध्यान रखते थे, वह नीचे के उदाहरण से प्रकट होता है:—

परहित-चिन्ता

रामानन्द ब्रह्मचारी महाराज के साथ जोधपुर था, उसकी माता वृद्ध और रुग्ण थी उसके जीवन की आशा न थी, इसलिये महाराज को यह चिन्ता थी कि उसका देहपात होने की दशा में उसके दाहकर्म में कोई विघ्न न पड़े। अतः उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला ९ संवत् १९४० को जोधपुर से मंत्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद को लिखा कि जब कभी उसका शरीर छूट जाय तो उसके अन्त्येष्टि कर्म के लिये ५०) रुपये लाला निर्भयरामजी की कोठी से लेलेना और हमारे हिसाब में लिखा देना और उन रुपयों से घृत और सुगन्ध्यादि पदार्थों को लेकर जैसा विधान षोडश-संस्कारविधि के पुस्तक में लिखा है, उसके अनुसार मृतक कर्म करादेना और इस काम के कराने में किसी प्रकार आलस्य न करना और इस बात को प्रत्येक सभासद को विदित कर देना जिससे समय पर सहायक होवें।

कहते हैं कि किसी नगर में एक पहलवान रहता था जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था। वह अकेला ही रहट को चलाकर अपने स्नान करने के लिए एक हौज़ भरा करता था। वह और अन्य लोग भी यह समझते थे कि अन्य कोई इस प्रकार हौज़ को नहीं भर सकता। घटनावश महाराज ने भी उस नगर में पदार्पण किया। महाराज का यह नियम ही था कि वह प्रातःकाल भ्रमणार्थ नगर से बाहर जाया करते थे। एक दिन महाराज ने भी उसको हौज़ भरते देख लिया। उसके पश्चात् एक दिन वायु सेवन के लिये वह उस ओर से होकर गुज़रे तो उनके जी में आई कि हौज़ को भरें। रहट को चला कर महाराज ने हौज़ भर दिया और वायु सेवनार्थ आगे चले गये। जब पहलवान आया और उसने हौज़ भरा हुआ पाया तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा। उसे यह सोच हुआ कि आज मेरा समकक्ष कौन उत्पन्न होगया। उसने वहां के रहने वालों से पूछताछ की तो उन्होंने कहा कि एक साधु अभी २ हौज़ भर कर आगे को गया है। पहलवान साधु के दर्शन करने की प्रतीक्षा में वहीं बैठा रहा। थोड़ी देर में महाराज बड़ी द्रुत गति से उधर को आते हुए दिखाई दिये। पहलवान ने दौड़कर उनका आगा रोक लिया और उनसे पूछा कि बाबाजी हौज़ तुमने भरा है? महाराज ने कहा कि हां। फिर उसने कहा कि हौज़ भरकर तुम थके नहीं। महाराज ने उत्तर दिया कि थकना तो दूर, हमारा व्यायाम तक पूरा न हुआ और इसी लिए हमें टहलने के लिए आगे जाना पड़ा। पहलवान यह सुनकर हकाबका रहगया और स्वामीजी अपने आसन को लौट आये।

पहलवान का मद चूर्ण

कुचामन के ठाकुर केसरीसिंहजी जोधपुर के बड़े जागीरदारों में से थे। उन्होंने महाराज के जयपुर में दर्शन किये थे और तभी से वह महाराज के प्रति अनुरक्त हो गये थे। उनके पुत्र कुंवर शेरसिंह एक सदाशय नवयुवक थे और अपेक्षाकृत उन में मद्य-मांस का व्यसन भी कम था। उनकी श्रीचरणों में बड़ी भक्ति थी और महाराज भी उनसे बहुत प्रसन्न थे। वह आजन्म महाराज के अनुयायी रहे।

पिता-पुत्र ठाकुर की भक्ति

राव राजा तेजसिंह के चरित्र पर महाराज का विशेष प्रभाव पड़ा था। महाराज को जोधपुर बुलाने में उन्होंने विशेष उद्योग किया था और महाराज के जोधपुर आने पर राज-परिवार में सब से अधिक सेवा भी उन्होंने ही की थी। कभी २ उन्हें महाराज के चरण दबाने का भी सौभाग्य प्राप्त होता था। महाराज का शरीर इतना सुदृढ़ और सुसंगठित था कि पिंडलियों को बल-पूर्वक दबाने पर भी उन में उँगली न गड़ती थी। किसी अंग पर झुर्री वा ढीलेपन का चिन्ह न था। राव राजा तेजसिंह अपने जीवन के अन्तिम दिवस तक महाराज के भक्त बने रहे।

राव राजा पर प्रभाव

महाराजा सर प्रतापसिंह ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि स्वामीजी के समागम से पहले प्रचलित पौराणिक धर्म्म के विषय में विशेषतः ब्राह्मणों के अयथा और शून्यगर्त्त आधिपत्य के सम्बन्ध में हमारे मन में अनेक संशय उठते और उनसे कभी २ हमारा चित्त आन्दोलित हो उठता था।

सर प्रतापसिंह

जब स्वामीजी जोधपुर पधारे तो उनसे बातचीत करके और उनके व्याख्यान सुनकर हमारे सब संशय एक २ करके दूर होगये और वैदिक धर्म्म में हमारा विश्वास पूर्ण रूप से दृढ़ और परिपक्व हो गया।

एक दिन सर प्रतापसिंह ने महाराज से पूछा कि किसी प्रकार हमारी भी मोक्ष हो सकती है तो महाराज ने उत्तर दिया कि आपके लिए एक ही मोक्ष-मार्ग है और वह निष्पक्ष न्याय करना है।

न्याय से मोक्ष

एक दिन राव राजा जवानसिंह ने महाराज से निवेदन किया कि आप कोई सुयोग्य शिष्य बनाइये जिससे आपका कार्य बीच में ही न रुक जाय। महाराज ने कहा कि न तो कोई ऐसा सुयोग्य पुरुष है जिसे मैं शिष्य बनाऊं और न मुझे किसी शिष्य से कोई आशा है। सभी आर्यसमाजी पुरुष मेरे शिष्य हैं और उन्हीं पर मुझे भरोसा है।

सभी आर्यसमाजी मेरे शिष्य हैं

कोई २ यह कहते हैं कि महाराज का जोधपुर जाने में यह अभिप्राय था कि गोरक्षा के आन्दोलन में महाराजा जसवन्तसिंह की सहायता प्राप्त करें और उनसे गोरक्षा के मेमोरियल पर हस्ताक्षर करावें। परन्तु राव राजा तेजसिंह ने देवेन्द्र बाबू के सन्मुख इसका खण्डन किया और कहा कि स्वामीजी को जोधपुर केवल उपदेश के लिये ही बुलाया गया था। गोरक्षा के मेमोरियल पर तो दरबार ने स्वामीजी के यहां पधारने से पहले ही हस्ताक्षर कर दिये थे। वह मेमोरियल महाराणा उदयपुर ने दरबार के पास भेजा था और दरबार ने उस पर महाराणा के अनुरोध से ही हस्ताक्षर किये थे। जान पड़ता है कि महाराजा जयपुर को छोड़कर राजपूताने के प्रायः सभी राजगण ने उक्त मेमोरियल पर हस्ताक्षर कर दिये थे।

जोधपर जाने का उद्देश्य

यह सत्य है कि उदयपुर से कविराज श्यामलदास ने जोधपुर के चारण मुरारदान को पत्र लिखा था कि दरबार से उक्त मेमोरियल पर हस्ताक्षर करने का निवेदन करें परन्तु यह बात उसी समय की होगी जिस समय महाराणा उदयपुर ने जोधपुर दरबार से हस्ताक्षर करने के लिए अनुरोध किया था। इस पत्र के आने पर जब मुरारदान ने दरबार से स्वामीजी के गोरक्षा के आन्दोलन में सहायक होने की प्रार्थना की थी तो दरबार ने प्रसन्नतापूर्वक उसके अनुकूल सम्मति प्रकट की थी और कहा था कि इस कार्य में स्वामीजी की सहायता करना हमारा एकान्त कर्त्तव्य है।

जिस समय महाराज जोधपुर पहुंचे थे उस समय जोधपुर में (मलेरिया) शीत-ज्वर का प्रकोप था। महाराज कोठी के ऊपर के कमरे में सब खिड़की और द्वार खोलकर एकान्त में सोया करते थे। उन दिनों आमों की ऋतु थी और महाराज आम अधिक मात्रा में खाया करते थे।

स्वामीजी आम बहुत खाते थे

जोधपुर निवास के चार महीने के लगभग सुखपूर्वक व्यतीत होगये। सितम्बर के अन्तिम सप्ताह के आरम्भ में २५ वा २६ तारीख़ की रात्रि में उनका कहार कल्लू नामक ६०० । ७०० रुपये का माल (रुपये और मोहर) कमरे में से चुराकर खिड़की की राह से भाग गया। यह कहार बड़े परिश्रम और प्रेम से महाराज की सेवा किया करता था और

कहार ने चोरी करली

महाराज को उस पर पूरा विश्वास था। रामानन्द ब्रह्मचारी को महाराज की आज्ञा थी कि खिड़की के पास सोया करे। उस रात्रि को वह भी वहाँ न सोया। पहरेवालों ने भी अपने कार्य्य में प्रमाद किया। प्रातःकाल होते ही चोरी की सर्वत्र चर्चा फैल गई। पुलिस में रिपोर्ट की गई। कर्नल मुहैयुद्दीनख़ाँ कोतवाल और पुलिसवालों ने महाराज से बहुतेरा पूछा कि आप का किस पर सन्देह है, परन्तु उन्होंने कोई उत्तर न दिया। पुलिसवालों ने पकड़ धकड़ भी की परन्तु चोर का पता न लगा। कल्लू किस प्रकार गायब होगया किसी की समझ में न आया। सम्भव है वह पहले ही महाराज के किसी शत्रु से गठ गया हो और जोधपुर में ही किसी जगह छिपा रहा हो और सुयोग पाकर जोधपुर से चला गया हो, अन्यथा समझ में नहीं आता कि ढूंढ़-भाल होने पर भी उसका पता न चला। सम्भव है पुलिसवालों ने भी केवल दिखावे मात्र के लिये ही अनुसन्धान किया हो। कोतवाल ने रामानन्द को हवालात में बन्द करने की चेष्टा की परन्तु महाराज ने इसका विरोध किया। इस चोरी के सम्बन्ध में वह किसी को भी कष्ट देना नहीं चाहते थे। जितने सेवक उनके पास थे वह सभी धूर्त्त थे। जब किसी अपराध पर महाराज उन्हें डाँटते तो हाथ जोड़ते और जो हुकम, जो हुकम, कहते परन्तु महाराज के पीछे उनकी बातों पर हँसते। ऐसी बातें देखकर महाराज को जोधपुरवास से ग्लानि होगई और जोधपुर के मनुष्यों के ऊपर से उनका विश्वास उठ गया और उन्होंने वहाँ से चलने का सङ्कल्प कर लिया परन्तु २७ सितम्बर को उन्हें प्रतिश्याय होगया, २८ को भी शरीर ठीक न हुआ। २९ सितम्बर की रात्रि को यथानियम उन्होंने दुग्ध पिया जिसे धौड़ मिश्र रसोइये ने पिलाया। यह शाहपुरे से ही महाराज के साथ आया था। महाराज दुग्ध पीकर पीकर सो गये परन्तु बीच में ही उदरशूल के कारण उनकी निद्राभङ्ग होगई। उनका जी मिचलाने लगा और उन्हें तीन बार वमन हुई। परन्तु उन्होंने किसी को जगाया नहीं। स्वयं ही कुल्ला करके पलंग पर लेट जाते थे। ३० सितम्बर के प्रातःकाल महाराज देर से उठे और उठते ही एक वमन और हुई तब महाराज को सन्देह हुआ कि उन्हें कोई विषाक्त पदार्थ खिलाया गया है अतः उन्होंने उसे निकाल ने के लिये जल पीकर एक वमन स्वयं करडाली। पहले भी उन्हें कई वार विष दिया गया था और वमन करके उन्होंने एक बार उसे शरीर से निकालने में सफलता भी प्राप्त की थी। इस वार भी विष-प्रयोग का सन्देह होने पर उन्होंने उसी रीतिका अवलम्बन किया, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। वमन करने के पश्चात् उन्होंने कहा कि हमारा जी उलटा आता है शीघ्र अग्निकुण्ड में धूप डालकर सुगंधि फैलादो और दुर्गन्धि को बाहर निकाल दो। उनकी आज्ञा का तत्काल पालन किया गया। वमन करने में उन्हें बहुत कष्ट होता था इस से उनकी अंतड़ियों और यकृत् पर शोथ आ गया था, छाती और उदर में बड़ा तीव्र शूल चलता था। महाराज ने राव राजा तेजसिंह को बुलवाया और उन्होंने सब हाल कहा और यह स्थिर हुआ कि चिकित्सा के लिये किसी हिन्दू चिकित्सक को बुलाया जाय। अतः डा० सूरजमल को जिनकी नियुक्ति कारागार पर थी बुलाना निश्चित हुआ। राव राजा तेजसिंह के आने से पहले ही महाराज ने शूल के उप-

धूर्त्त सेवक

रोग का आक्रमण

विष का सन्देह

शमनार्थ अजवायन का क्वाथ पकवा कर पीलिया था। उस से शूल तो कम न हुआ दस्त और आने लगे। यह शूल इतना बढ़ा कि उनके सारे शरीर में प्रविष्ट होगया और श्वास के साथ बड़े वेग से उठता था। महाराज को असीम कष्ट था परन्तु न वह कभी कराहे और न कभी हाय आदि का शब्द उन के मुख से निकला। डाक्टर सूरजमल से महाराज ने कहा कि शूल बहुत तीव्र है और प्यास भी है। डाक्टर ने नाड़ी देखी तो महाराज को कुछ ज्वर भी था। उन्होंने उस के उतारने के लिये Diaphoretic mixture दिया और छाती और उदर को गर्म जल की बोतल से सिकवाया। उससे ज्वर तो जाता रहा परन्तु उदरशूल और यकृत का शोथ ज्यों का त्यों बना रहा और अन्तर्दाह में भी कुछ कमी न हुई। महाराजा प्रतापसिंह को जब महाराज के रोगी होजाने का समाचार मिला तो उन्होंने डाक्टर अलीमरदानखाँ को राव राजा तेजसिंह के साथ महाराज की चिकित्सा के लिये भेजा। वह एक तीसरे दर्जे का हास्पिटल असिस्टेंट था परन्तु पहले दर्जे का खुशामदी और कपटी था। उसने दर्बार की चापलूसी करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था और धन भी बहुत कुछ संग्रह कर लिया था और जोधपुर के प्रख्यात डाक्टरों में गिना जाने लगा था। डाक्टर अलीमरदानखाँ ने आकर एक पट्टी तो महाराज के पेट पर बंधवाई और यकृत और अंतड़ियों की सूजन दूर करने के लिये उसने सैलेवेशन पिल्स (salevation pills) देने को कहा, उसने डाक्टर सूरजमल से कहा कि स्वामीजी बहुत बलवान् हैं, इन्हें चार मनुष्यों के बराबर औषधि देनी चाहिये। एक (salevation pill) में ३ ग्रेन केलोमल (calomal) और एक चौथाई ग्रेन अफ़ीम होती है। डाक्टर अलीमरदानखाँ ने महाराज के लिये शहर के हस्पताल से ६ गोलियाँ बनवा कर भेज दीं। जब गोलियाँ आईं तो महाराज ने डाक्टर सूरजमल से पूछा कि मैं इन्हें खाऊँ वा नहीं। डाक्टर सूरजमल ने कहा कि खा सकते हैं। उक्त डाक्टर ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि मेरा अन्तःकरण डाक्टर अलीमरदानखाँ की दवा खिलाने को नहीं करता था, परन्तु एक तो मैं दूसरे डाक्टर की चिकित्सा में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता था, दूसरे मेरी स्त्री संग्रहणी रोग से बहुत पीड़ित थी, तीसरे जेल के काम से बहुत कम छुट्टी मिलती थी और मैं स्वयं मनोयोग से स्वामीजी कि चिकित्सा नहीं कर सकता था, मैंने स्वामीजी को अलीमरदानखाँ की दवा खाने से निषेध नहीं किया।

डाक्टर अलीमरदान खाँ का परिचय

इन्हें चौगुनी मात्रा दो

हम समझते हैं कि डाक्टर सूरजमल जब हृदय से अलीमरदानखाँ की दवा पिलाना नहीं चाहते थे तो उनका कर्त्तव्य था कि महाराज को अपनी सम्मति स्पष्ट बतला देते। महाराज को उन पर विश्वास था। उस विश्वास की उन्हें रक्षा करनी चाहिए थी। यदि वह कह देते कि अलीमरदानखाँ की दवा न खाइए तो निश्चय ही महाराज उसे न खाते। यदि ऐसा होता तो कौन जाने संभवतः महाराज का शरीर बच ही जाता। ऐसी दशा में हम डाक्टर सूरजमल को किसी प्रकार भी इस अपराध से मुक्त नहीं कर सकते। यदि हम उनके विषय में यह विचार करें कि इस कारण से कि पहले उनकी चिकित्सा आरम्भ करके फिर अलीमरदानखाँ की चिकित्सा कराई गई जो उनसे योग्यता और दर्जे

डाक्टर सूरजमल का अपराध

में कम था वह रुष्ट होगये और क्रोध के वशीभूत होकर ही जान बूझ कर उन्होंने महाराज को अलीमरदानखाँ की दवा खाने से निषेध नहीं किया तो अधिक अनुचित न होगा। अस्तु, महाराज ने वह गोलियां खालीं, परन्तु उनके खाने से उदरशूल में कुछ अन्तर न पड़ा। १ अक्तूबर को अलीमरदानखां ने महाराज के ग्लास भी लगाये, उससे वह पीड़ा तो बन्द होगई जो खाँसने के साथ होती थी परन्तु और किसी रोग में कमी न हुई। २ अक्तूबर को अलीमरदानखाँ ने * पेट साफ़ करने के लिए जुल्लाब (रेचक) देने का प्रस्ताव किया। महाराज ने इसे स्वीकार कर लिया और कहा कि जिससे रोग निवृत्त हो वैसा कीजिये। महाराज ने अलीमरदानखाँ से पूछा कि कितने दस्त आवेंगे तो उसने कहा कि ६-७ दस्त से अधिक नहीं आवेंगे। उसने डाक्टर सूरजमल से फिर वही बात कही कि स्वामीजी हृष्ट पुष्ट हैं, इन्हें जुल्लाब भी चौगुनी मात्रा में देना चाहिये। महाराज ने फिर डाक्टर सूरजमल से पूछा कि रेचक ले लेवें ? और उन्होंने फिर भी यही उत्तर दिया कि ले सकते हैं। महाराज ने जुल्लाब ले लिया। तीसरी तारीख़ के ९ बजे तक कोई दस्त न आया। महाराज ने जब उससे कहा कि अभी तक तो एक भी दस्त नहीं आया तो उसने कहा जुल्लाब बहुत हलका है जब मल फूल जायगा तब दस्त आवेंगे। दस बजे से दस्त आने आरम्भ हुए। ४ तारीख़ के प्रातःकाल तक ४० के लगभग दस्त आये। ४ तारीख़ को जब अलीमरदानखाँ आया तो महाराज ने उससे कहा कि आप तो कहते थे कि ६-७ दस्त आवेंगे, मुझे तो तीस से अधिक दस्त होगये। यह सुन कर अलीमरदानखाँ चुप हो गया। उस दिन दिन-भर दस्त आते रहे और सायङ्काल को यह दशा होगई कि दस्त आने पर मूर्छा होने लगी। यह जुल्लाब कम्पाउन्ड जलाप पाउडर (Compound jalap powder) का था। साधारणतः उसमें ३। ४ ग्रेन केलोमल (calomel) दिया जाता है, परन्तु अलीमरदानखाँ ने ८ ग्रेन दिया। इस प्रकार महाराज के शरीर में १८ ग्रेन तो salevation pills में और ८ ग्रेन जुल्लाब में सब २६ ग्रेन (calomel) पहुँचा दिया गया। डाक्टर सूरजमल ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि स्वामीजी का शरीर बहुत बलिष्ठ था अतः वह उसे सहन कर गये। यदि किसी साधारण मनुष्य को इतना (calomel) दिया गया होता और उसे इतने दस्त आगये होते तो निश्चय ही उसका प्राणान्त हो जाता। ५ तारीख़ को दस्तों की दशा वही रही। जिससे महाराज इतने निर्बल होगये कि ४-५ मनुष्यों की सहायता के बिना करवट लेना वा उठना बैठना असम्भव हो गया। महाराज ने अलीमरदानखाँ से कहा कि अब तो दस्त बन्द हो जाने चाहिएं तो उस ने यह उत्तर दिया कि दस्तों को दवा से बन्द करने में रोग के बढ़ जाने का भय है, दस्तों का अपने आप बन्द होना ही अच्छा है। (calomel) के अधिक मात्रा में खाने का दूसरा परिणाम यह हुआ कि महाराज के गले, जिह्वा, तालु, सिर और मस्तिष्क पर आँवले पड़

रोग की वृद्धि

* पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि रेचक लेने का प्रस्ताव महाराज ने स्वयं किया था। परन्तु यदि अलीमरदानखाँ महाराज की चिकित्सा में जान बूझ कर गड़बड़ कर रहा था जैसा स्पष्टतया ज्ञात होता है तो यही मानना होगा कि रेचक देने का प्रस्ताव उसने ही किया था।

—संग्रहकर्त्ता
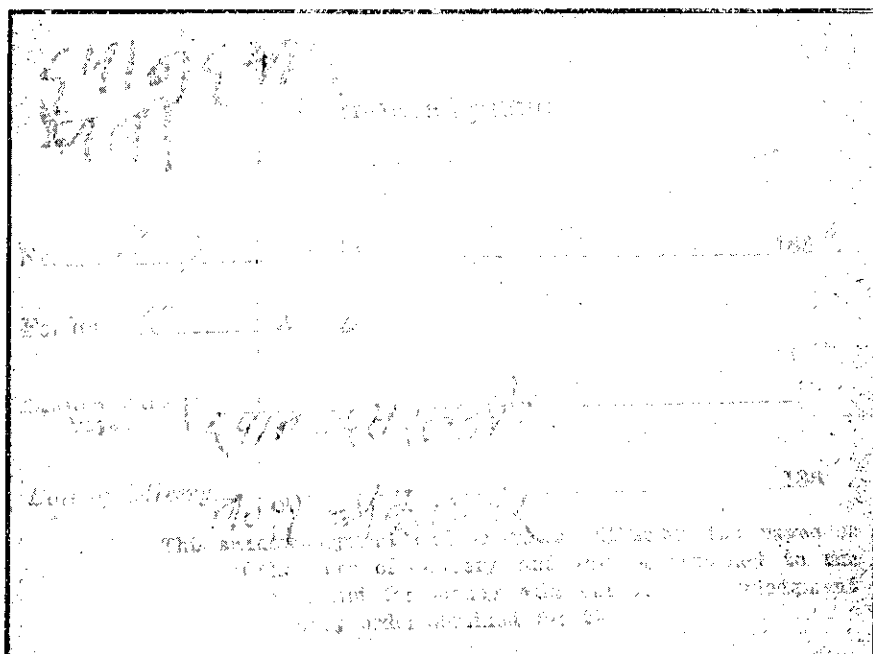
मृत्यु से १५ दिन पहले के महर्षि दयानन्द सरस्वती के अन्तिम हस्ताक्षर (तारीख ११ अक्टूबर १८८३)

यह एक वी० पी० फ़ार्म का ऐकनालिजमेंट का टुकड़ा है।

इसके दूसरी ओर जोधपुर की मोहर लगी है।

(श्री मामराजजी, डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर की कृपा से प्राप्त) (पृष्ठ ७०७)

गये जिस के कारण बात-चीत करने में भी अत्यन्त कष्ट होने लगा। शूल, दस्त, उदर शूल के कष्ट तो थे ही हिचकियाँ भी आने लगीं। १६ अक्तूबर तक अलीमरदानखाँ की चिकित्सा रही। रोग में कुछ कमी न हुई, दस-पन्द्रह दस्त प्रति दिन आते रहे; शूल तो मुख्य रोग था ही, अब आँवलों और हिचकियों का रोग और बढ़ गया। जब दस्त किसी तरह बन्द न हुए तो अलीमरदानखाँ ने बिस्मत Bismuth और डोनर की एस्ट्रिंजेंट पिल्स (Doner's astringent pills) बनवा कर दीं। महाराज उन गोलियों को भी खाते रहे और दही और मठा भी पीते रहे। पहले जब कभी उनके उदर में कुछ गड़-बड़ होती थी तो दही और मठा पीने से वह दूर हो जाती थी। उन्होंने पूर्व अनुभव के कारण ही दही और मठा पीना आरम्भ किया, परन्तु किसी प्रकार भी दस्त बन्द होने में न आये।

स्वामीजी के रोगी होने की प्रथम सूचना

आश्विन शुक्ला ११ संवत १९४० अर्थात् १२ अक्तूबर सन् १८८३ तक जोधपुर से बाहर किसी को यह पता तक न चला कि स्वामीजी रुग्ण हैं और उनके रोग ने ऐसा भयङ्कर रूप धारण कर लिया है। उक्त तारीख़ को 'राजपूताना गज़ट' में उनके रोगी होने का समाचार छपा जो आर्य्य-समाज अजमेर के एक सभासद की दृष्टि पड़ गया। उसने अन्य सभासदों से कहा। पहले तो सब के मन में यह आई कि यह बात मिथ्या है और महाराज के किसी शत्रु ने छपादी है। यदि बात सच्ची होती तो अवश्य ही कोई पत्र वा तार आता। परन्तु फिर मन न माना और सोचा कि सम्भव है कि बात सच्ची हो। तब एक सभासद लाला जेठमल को जोधपुर भेजा गया। यह जब जोधपुर पहुँचे तो महाराज की दशा को देखकर शोक में निमग्न हो गये। उन्होंने महाराज से कहा कि भगवन्! यह क्या हुआ, और

यह तो शरीर का धर्म ही है

अधिक शोक यह है कि आपने किसी समाज को सूचित भी नहीं किया। महाराज ने उत्तर दिया कि रोग की दशा को क्या लिखता, यह तो शरीर का धर्म्म ही है। उसमें सुख दुःख होते ही रहते हैं, मैं सूचना देकर करता ही क्या? इसके अतिरिक्त आप लोगों को भी क्लेश होता।

आर्यसमाज अजमेर की सूचना

लाला जेठमल ने आर्य्यसमाज अजमेर को महाराज की विपन्न दशा की सूचना दी और उसने बम्बई, फ़र्रुख़ाबाद, मेरठ, लाहौर आदि आर्य्यसमाजों को तार द्वारा सूचित किया और सामाजिक जगत् में एकदम कोलाहल मच गया। तार पर तार आने लगे। सामाजिक पुरुष ख़बर के लिये दौड़ पड़े।

दो योग्य डाक्टर होते हुए अयोग्य की चिकित्सा

उस समय जोधपुर में दो सुयोग्य डाक्टर उपस्थित थे। एक डा० रोडम्स जो रेज़िडेन्सी सर्जन थे, दूसरे डाक्टर नवीनचन्द्र गुप्त। अत्यन्त आश्चर्य है कि उनके होते हुए महाराज को उन्हें नहीं दिखाया गया और उन्हें १५, १६ दिन तक अलीमरदानखाँ जैसे अयोग्य और निम्न कोटि के चिकित्सक के हाथों में रहने दिया गया। राव राजा तेजसिंह आदि को भी यह न सूझी कि जब अलीमरदानखाँ की दवा से कोई लाभ नहीं हो रहा है और दिन-प्रतिदिन रोगी की दशा बिगड़ती जाती है तो उसकी

चिकित्सा बन्द करके किसी अन्य की आरम्भ की जाय। सरप्रताप-सिंह और महाराजा जसवन्तसिंह ने इतनी भी परवाह नहीं की कि एकबार महाराज को देख तो आवें। इसका एक कारण हो सकता है कि अलीमरदानखाँ उन्हें विश्वास दिलाता रहा हो कि रोगी की दशा अच्छी है और कोई चिन्ता की बात नहीं है। परन्तु रावराजा तेजसिंह तो कई बार आये। और अपनी आँखों से महाराज के घोर कष्ट को देख कर भी उन्हें चिकित्सा बदलने की चिन्ता न हुई। उनसे तो पहले ही महाराज ने कह दिया था कि किसी हिन्दू डाक्टर को बुलाना चाहिये और इसी कारण सब से प्रथम डाक्टर सूरजमल को बुलाया गया था। ऐसा होते हुए भी अलीमरदानखाँ की चिकित्सा क्यों कराई गई और राव राजा ने दरबार वा सर प्रतापसिंह से क्यों न कहा कि स्वामीजी मुसलमान डाक्टर से चिकित्सा कराना नहीं चाहते हैं। फिर जब उसकी चिकित्सा दिन-प्रतिदिन हानिकर हो रही थी तो उस समय तो राव राजा को समझ आनी चाहिये थी और उस की चिकित्सा तुरन्त ही बन्द कर देनी चाहिये थी। यह विश्वास नहीं होता कि अलीमरदानखाँ ने महाराज की चिकित्सा सद्भाव से की हो। यह भी असम्भव नहीं है कि वह नन्हींजान के षड्यंत्र में सम्मिलित हो। यदि उच्च चरित्र का व्यक्ति होता तो उस पर कोई सन्देह न भी होता, परन्तु वह एक क्षुद्राशय व्यक्ति था, इस से उसका षड्यन्त्र में भाग लेना ऐसी बात नहीं है जिस का विश्वास न हो सके। महाराज के प्रति मुसलमानों के जो भाव थे उनका उल्लेख किया जा चुका है। अतः यह भी सन्देह होता है कि अलीमरदानखाँ ने उन्हीं दुर्भावों से प्रेरित हो कर महाराज के रोग बढ़ाने का प्रयत्न किया। कुछ ही हो, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि उसने चिकित्सा बड़ी अयोग्यता से की। महाराज के साथ कोई विचक्षण पुरुष नहीं था, जो थे वह अल्पानुभवयुक्त थे, अतः वह तो चिकित्सा के सम्बन्ध में कोई सम्मति दे ही नहीं सकते थे और देते भी तो वह ग्राह्य न होती। हमें तो शोक रावराजा तेजसिंह और सर प्रतापसिंह पर है जिन्हों ने इस ओर दृष्टिपात तक न किया और महाराज को मृत्यु की ओर अग्रसर होने दिया।

राव राजा तेजसिंह का अपराध

हिन्दू से मुसलमान डाक्टर के हाथों में

अलीमरदानखाँ का असद्भाव

लोक में यह किंवदन्ती है कि महाराज को उनके रसोइया ने दुग्ध में पिसा हुआ काच दिया था। उस रसोइये का नाम जगन्नाथ बताया जाता है। परन्तु जोधपुर में जितने मनुष्यों से देवेन्द्र बाबू ने पूछा उन में से किसी ने भी जगन्नाथ का नाम नहीं लिया। पण्डित लेखरामजी कृत उर्दू जीवनचरित में लिखा है कि उस रात्रि को धौड़ मिश्र ने महाराज को दुग्ध पिलाया था। जगन्नाथ नाम का कोई रसोइया महाराज के साथ था इसका प्रमाण भी कहीं नहीं मिलता। कोई नहीं बतला सकता कि वह कौन था, कहाँ का रहने वाला था और कब से महाराज के साथ था? लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि महाराज को यह ज्ञात हो गया था कि उन्हें जगन्नाथ ने विष दिया है और जगन्ननाथ ने उन से स्वीकार भी कर लिया था

जगन्नाथ रसोइया कौन था ?

मनगढ़न्त गाथा

कि मैंने यह पाप किया है। इस पर महाराज ने उसे कुछ भी न कहा बल्कि उसे कुछ रुपये मार्ग व्यय के लिए देकर कह दिया कि तू भागजा, अन्यथा पकड़ा जायगा और वह तुरन्त भाग गया। कोई २ तो यहाँ तक कहते हैं कि कुछ वर्षों के पश्चात् लोगों ने जगन्नाथ को गंगा तट पर राजघाट ज़िला अलीगढ़ में देखा था और वह विक्षिप्त अवस्था में था। हमें तो यह सारी गाथा कल्पित और मनगढ़न्त प्रतीत होती है। न जाने यह किस के मस्तिष्क की उपज है। किसी ने यह बात प्रचलित की और श्रद्धालु जनों ने इस कारण कि उस से महाराज की दया के अपार होने का प्रमाण मिलता है उसे झट सत्य मान लिया। पण्डित लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित में भी कहीं जगन्नाथ के नाम और इस घटना का उल्लेख नहीं है। उसका उल्लेख केवल एक नोट में है जो प्रकरण से अलग दिया हुआ है और ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त जीवनचरित के छपते २ मास्टर आत्मारामजी को कहीं से इस कथा का पता लगा, और उन्होंने एक जगह उसे नोट के रूप में लिख दिया।

राव राजा तेजसिंह का मिथ्या विचार

राव राजा तेजसिंह तथा अन्य लोगों ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि हमारा विश्वास है कि उस रात्रि को कल्लू कहार ने ही महाराज को दूध पिलाया था। उससे पहली रात्रि को ही चोरी हुई थी। कल्लू ने ही कोई विषैली वस्तु दूध में मिला कर दी होगी। यदि ऐसा हुआ हो तो इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि उसने यह पाप कर्म नन्हीजान से मिल कर ही किया होगा। परन्तु हमारी धारणा यह नहीं है कि कल्लू ने चोरी भी की और विष भी दिया। चोरी जिस रात्रि को हुई उस से अगली रात्रि को ही विष नहीं दिया गया। बल्कि उसके एक दो दिन बाद दिया गया।

पिसे हुए काँच के चिन्ह न थे

डाक्टर सूरजमल ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि जो चिन्ह महाराज के शरीर में प्रकट हुए वह पिसे हुए काँच के नहीं थे।

इसमें तो सन्देह नहीं कि महाराज को विष दिया गया। पिसा हुआ काँच हो वा संखिया। मैंने मेरठ के एक प्रसिद्ध और अनुभवी डाक्टर से पूछा था तो उन्होंने कहा था कि पिसे हुए कांच और संखिया के चिन्ह लगभग एक से हैं। दोनों में तीव्र उदर-शूल और अन्तर्दाह होता है, वमन और दस्त होते हैं, परन्तु पिसे हुए कांच से दस्तों में रक्त आने लगता है। यह चिन्ह स्वामीजी के रोग में नहीं था, इस लिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उन्हें पिसा हुआ कांच ही दिया गया। अधिक सम्भव यह है कि उन्हें संखिया दिया गया। अजमेर के हकीम पीरजी से जब स्वामीजी के रोग का हाल कहा गया तो उनकी भी यही सम्मति हुई थी कि स्वामीजी को संखिया दिया गया है।

अब प्रश्न यह है कि विष किसने दिया। पण्डित नानूराम ब्रह्मभट्ट का जो शाहपुरा से स्वामीजी को जोधपुर लिवाने के लिये गये थे, कथन है कि कलिया नामी व्यक्ति ने एक माली से मिल कर नन्हीजान के प्रोत्साहन से दूध में विष मिला कर स्वामीजी को पिला दिया। इस कलिया का नाम ही जगन्नाथ कहा जाता है। मुन्शी देवीप्रसादजी राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ का विश्वास है कि नन्हीजान ने एक माली को लालच देकर स्वामीजी के रसोइये कलिया को बहकवा कर दूध में विष घुलवा दिया। राव राजा तेजसिंह ने दयानन्द-जन्म-शताब्दी पर यह कहा था कि स्वामीजी के पास एक कल्लू रसोइया (कहार?)

रहता था उसने दो अशर्फी और एक दुशाला चुराया था। उस पर स्वामीजी ने मेरे सामने उसे उसके पाप के लिये बहुत ताड़ना की। इसके पश्चात् उसने कुछ दुरात्माओं से मिल कर न मालूम खाने के अन्दर या दूध में कुछ चीज़ दी कि सवेरे उठते ही बहुत जोरों के साथ स्वामीजी को जुकाम की शिकायत हुई। उन को मालूम हो गया कि मुझ को कोई जहर दिया गया है। तब वे पानी में नमक मिला कर क़ै करने लगे, किन्तु कोई फ़ायदा न हुआ और पसली में शूल शुरू हो गया तब मुझ को बुलाया और कहा कि श्री दरबार को अर्ज़ करो कि मेरी पसली में बहुत ज़ोर का शूल चलता है और मेरी बीमारी सुन कर बहुत से आर्य्य लोग यहां आएंगे उन को कष्ट होगा इस लिए मेरा अजमेर जाना ठीक है। राव राजा के अनुसार उनकी सूचना देने पर दरबार स्वामीजी के पास आये और उन्हें आबू भेज दिया गया। (देखो बाबू पूर्णचन्द्रकृत 'दिव्य दयानन्द' पृष्ठ ३७ व ३८)।

इस कथन में राव राजा साहब ने सत्य को सर्वथा दबा दिया है। उनके कथन से यह ज्ञात होता है कि जैसे ही स्वामीजी पर रोग का आक्रमण हुआ वैसे ही उन्हें आबू भेज दिया गया। १५-१६ दिन तक स्वामीजी जोधपुर में घोर कष्ट पाते रहे, परन्तु राव राजा उस की ओर संकेत तक नहीं करते। इससे अधिक असत्य क्या होगा कि उन्होंने देवेन्द्रबाबू से यहां तक कह दिया कि जहां तक मुझे मालूम है डाक्टर अलीमरदानखाँ ने स्वामीजी को कोई औषधि नहीं दी। विष देने वाले धौड़ मिश्र हो वा जगन्नाथ उपनाम कल्लो या कलिया, परन्तु यह बात सत्य नहीं मालूम होती कि स्वामीजी ने यह जानते हुए कि मुझे जगन्नाथ ने विष दिया है उसे रुपये देकर जोधपुर से भगा दिया हो।

मलेरिया का विष या आमों का विकार ?

डाक्टर सूरजमल ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि रात्रि में वमन का हो जाना मलेरिया के विपाक्त स्पर्श से असम्भव नहीं है और आमों के अधिक मात्रा में खाने से यकृत का बिगड़ जाना भी सम्भव हो सकता है। परन्तु हमें इन दोनों सम्मतियों में सार दिखाई नहीं देता क्योंकि मलेरिया का यदि प्रकोप होता तो ज्वर का होना अवश्यम्भावी था। महाराज को आरम्भ में ही थोड़ा सा ज्वर हुआ था और वह भी डायाफोरेटिक मिक्सचर (Diaphoratic mixture) के देने से जाता रहा था। आमों के अधिक मात्रा में खाने से यकृत में इतना विकार नहीं हो सकता था और अँतड़ियों के शोथ और शूल के तो आम कारण हो ही नहीं सकते थे।

रोगवृद्धि का मुख्य कारण

डाक्टर सूरजमल ने यह निश्चित सम्मति प्रकट की थी कि दस्तों की संख्या और छालों का मुख्य कारण Calomal का अत्यधिक मात्रा में देना ही था। यह सम्मति उनकी वास्तव में ठीक है।

एक और सन्देह

महाराज को दूध के साथ कोई विष वा विषैली वस्तु दी गई हो महाराज को यह सन्देह अवश्य हो गया था कि उन्हें विष दिया गया है और इसी कारण उन्होंने जल पीकर स्वयम् वमन कर डाली थी। परन्तु साथ ही यहां यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने इस बात को प्रकट क्यों नहीं किया। यदि जो उपचार किये गये उनसे रोग शान्त हो जाता और फिर वह इस बात को प्रकट न करते तो कुछ बात न थी, परन्तु जब उनकी पीड़ा बढ़ती ही गई और कोई

उपचार सफल न हुआ तो उन्हें अपना सन्देह प्रकट कर देना चाहिए था ताकि रोग का ठीक निदान हो जाता और उपर्युक्त उपचार किया जाता। ऐसा न करके उन्होंने चिकित्सकों को चिकित्सा में कोई सहायता न दी और चिकित्सकों से यह आशा रक्खी कि वह आँख पर पट्टी बाँध कर लक्ष्य भेद करलेंगे। इसके हमारी समझ में दो ही कारण आते हैं। या तो महाराज को निश्चय हो गया था कि उनका शरीर बचने वाला नहीं है और या उन्होंने परम दयालुता के कारण अपना सन्देह प्रकट न किया क्योंकि यदि वह प्रकट कर देते तो अवश्य ही उनके आस पास रहने वाले मनुष्यों और भृत्यों पर आपत्ति आती, जो उन्हें कभी अभीष्ट न हो सकती थी।

इस राक्षस भूमि में क्यों आगये

प्रथम वार ही जब डाक्टर सूरजमल महाराज को देखने गये थे तो डाक्टर महोदय ने उनसे कहा था कि आप ऋषितुल्य लोग हैं, आप इस राक्षस भूमि में क्यों आगये। अन्त को डाक्टर सूरजमल ने जोधपुर की अवस्था और महाराज के शरीर की इतनी भयावह दशा को देख कर लाला जेठमल से कहा कि जितना शीघ्र भी हो सके उतना शीघ्र महाराज को जोधपुर से अन्यत्र लेजाना चाहिये।

आबू भेजने का प्रस्ताव

१५ अक्तूबर को अलीमरदानखाँ भी महाराज की दशा को देख कर डर गया और उसने यह प्रस्ताव किया कि स्वामीजी के शरीर में गर्मी बहुत है, इन्हें आबू भेज देना चाहिये। वहाँ के ठण्डे जलवायु से उनके स्वास्थ्य को लाभ पहुँचने की अधिक सम्भावना है। उसने सोचा होगा कि यदि जोधपुर में ही महाराज का देहपात होगया तो सारा कलङ्क उसी के माथे पर रहेगा। उस दिन रेजिडेन्सी सर्जन डाक्टर रोडम को भी बुलाकर महाराज को दिखाया गया और उनकी भी यही सम्मति हुई। तदनुसार महाराज के आबू भेजने का उपक्रम होने लगा। आबू पर जोधपुर राज्य के बँगले को सुसज्जित करने को लिख दिया गया। १६ अक्तूबर को तीसरे पहर महाराजा जसवन्तसिंह और सर प्रतापसिंह महाराज को विदा करने आये। जोधपुराधीश ने महाराज से कहा कि ऐसी दशा में आपके मेरे राज्य से पधारने में मेरी अपकीर्त्ति है। परन्तु आपकी यह दशा देख कर

जोधपुराधीश का सद्व्यवहार और सम्मान प्रदर्शन

मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ। तत्पश्चात् २५००) रुपये और दो दोशाले महाराज की भेंट किये। यात्रा की सब तैयारी हो गई। दर्बार ने अपनी फ़लालेन की पेटी अपने हाथ से महाराज के बांध दी ताकि उन्हें लेटने में कष्ट न हो। यह समझ कर कि महाराज का शरीर विशाल है, उनकी पालकी में ३२ कहार लगाये गये ताकि १६, १६ कहार बारी बारी से पालकी को ले चलें। खस के दो डेरे और एक पंखा, कुली और परिचारक और रक्षक साथ कर दिये गये। डाक्टर सूरजमल, चारण नवलदान और मुरारदान को आबूरोड़ रेलवे स्टेशन तक महाराज के साथ जाने की आज्ञा हुई। महाराज को हाथों के सहारे कई मनुष्यों ने ऊपर के कमरे से धीरे २ उतार कर पालकी में लिटाया। उस समय जोधपुराधीश महाराजा जसवन्तसिंह, कर्नल सर प्रतापसिंह, रावराजा तेजसिंह तथा राज्य के अन्य सुप्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। जब महाराज की पालकी उठाई गई तो सम्मान

प्रदर्शनार्थ दर्बार ने स्वयं उसमें कन्धा दिया और महाराज के अपने राज्य में विपद्-ग्रस्त होने पर अत्यन्त दुःख प्रकाशित करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्र और वाष्पावरुद्ध कण्ठ से पुनः जोधपुर पधार ने की प्रार्थना की और बाग़ के दर्वाज़े तक पैदल पालकी के पीछे २ आये। अन्य बहुसंख्यक लोग बहुत दूर तक पालकी के साथ गये।

पालकी का फ़र्श टूट गया

थोड़ी दूर चलकर महाराज के शरीर-भार से पालकी का बेत का फ़र्श टूट गया, अतः उसके नीचे बांस बांधे गये। डाक्टर सूरजमल प्रत्येक दस्त के पश्चात् एस्ट्रिंजेन्ट पाउडर (Astringent powder) देते थे जिसे वह अपने साथ लेगये थे। रात्रि भर चलकर प्रातःकाल रोपट पहुँचे। रोपट में एक दिन और एक रात रहे। महाराज को मार्ग में भी और रोपट में भी ५, ४ दस्त हुए। महाराज को गर्मी बहुत लगती थी। रात्रि में भी यात्रा में आठ तह का भीगा कपड़ा सिर पर रक्खा रहा और सिर पर पङ्खा होता रहा, परन्तु फिर भी गर्मी कम न हुई। हिचकी भी आही रही थीं। दिन में कई २ वार मूर्छा हो जाती थी। जब रोपट में ठहरे हुए थे तो महाराज तो लेटे हुए थे और रामानन्द हवन कर रहा था कि इतने में दो ब्राह्मण आये। उन्होंने दो वेद मन्त्र पढ़े। महाराज ने उन्हें सुन कर दोनों को एक २ रुपया दान दिलवाया। ग्राम में ब्राह्मणों को जब यह ज्ञात हुआ कि एक साधु ब्राह्मणों को रुपये बांट रहा है तो वह एकादशी माहत्म्यादि लेकर आये, परन्तु महाराज ने कहा कि यह धूर्त्त हैं, इन्हें निकाल दो। महाराज रोपट में झील के किनारे संन्यासियों के मन्दिर के पास ठहरे थे। वहाँ के संन्यासी आकर महाराज के पैर छूने लगे तो महाराज ने कहा, यहाँ मल मूत्र पड़ने से इन्हें कष्ट होगा हमें अन्यत्र ले चलो। तदनुसार उन्हें दूसरे स्थान पर लेगये। १८ अक्तूबर को महाराज पाली पहुँच गये। जोधपुर से पाली तक महाराज को बहुत धीरे २ लेजाया गया क्योंकि उनके यकृत और अँतड़ियों में शोथ था और जल्दी चलने से उनके उदर में पीड़ा हो जाती थी और अंतड़ियों पर जोर पड़ता था। बीच २ में कहारों को धीरे २ चलने के लिये सावधान करना पड़ता था।

रोग का भयङ्कर रूप

दो ब्राह्मणों को दान

आबू की चढ़ाई का प्रबन्ध

पाली पहुँच कर मुंशी हरनामदास ओवरसियर को आबू तार दिया गया कि स्वामीजी बीमार होकर आबू आ रहे हैं और जोधपुर के बँगले में ठहरेंगे। उन्होंने आबू रोड पर पालकी का प्रबन्ध कर दिया। पाली में महाराज दो दिन ठहरे और जो दशा थी वही बनी रही। पाली से जेठमल महाराज के लिये दवाई लेने अजमेर चले गये। वहाँ उन्होंने सब सभासदों को महाराज की दशा से परिचित किया तो सब की यह सम्मति हुई कि वहाँ के पीरजी नामक प्रसिद्ध हकीम से ओषधि लेनी चाहिये। पीरजीने सब हाल सुनकर कहा था कि स्वामीजी को संखिया दिया गया है। अतः उनकी ओषधि लेकर जेठमल मार-वाड़ जंकशन पर जिसे साधारणतया लोग खारची स्टेशन कहते हैं आ गये। उधर पाली से रेल में सवार होकर महाराज भी खारची पहुँच गये और जेठमल उन से मिल गये। यद्यपि डाक्टर सूरजमल को आबूरोड तक महाराज के साथ जाने की आज्ञा थी परन्तु महाराज ने उन्हें पाली से ही लौटा दिया। महाराज जानते थे कि उनकी स्त्री पीड़ित है

अतः अपने स्वाभाविक दयाभाव से उन्होंने डाक्टर को अधिक कष्ट देना न चाहा। पीरजी की दवा से प्यास और हिचकी को कुछ शान्ति होती रही। खारची तक महाराज पत्रादि पर हस्ताक्षर करते रहे, यद्यपि हस्ताक्षर करने में उनका हाथ काँपता था। खारची पर जब गाड़ी पहुँची तो महाराज ने गाड़ी से स्वयं उतरने का उद्योग किया परन्तु मुख पर धूप पड़ने से मूर्छा आगई। तब लोगों ने हाथों में लेकर उन्हें उतारा और स्टेशन के बरामदे में पलंग पर लिटा दिया। खारची से रामानन्द को ६) रुपये देकर विदा कर दिया और उससे कह दिया कि अब तू हमारे पास पढ़ने के योग्य नहीं रहा। जेठमल खारची से अजमेर चले गये और महाराज आबू रोड के लिये रेल पर सवार होगये। जिला अलीगढ़ के ठाकुर भूपालसिंह महाराज के अनन्य भक्त थे। वह मसूदा और शाहपुरा होते हुए खारची पर ही आ मिले थे और वहीं से महाराज के साथ हो लिये थे। २१ अक्टूबर को प्रातःकाल के पाँच बजे महाराज आबूरोड पर पहुँचे। वहाँ मुन्शी हरनामदास ने उनके लिये पालकी का प्रबन्ध कर रक्खा था। वहाँ उन्हें पालकी में लिटा दिया गया और आबू पर्वत की चढ़ाई आरम्भ हुई। मार्ग में कोई दो मील चलकर कहारों ने पालकी को सड़क के किनारे रख दिया और स्वयं विश्राम करने लगे।

विपन्न दशा

आबू से डाक्टर लछमनदास जो मीरा ज़िला शाहपुर पंजाब के रहने वाले थे अजमेर जारहे थे। वह आबू पर नियत थे। उनकी बदली अजमेर को होगई थी, वह घोड़ी पर सवार थे। जब वह महाराज की पालकी के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि उसमें एक जन भगवे वस्त्रधारी संन्यासी लेटा हुआ है। उन्हें उसका परिचय पाने की जिज्ञासा हुई। उन्होंने पूछा तो उन्हें बताया गया कि संन्यासी प्रसिद्ध स्वामी दयानन्द हैं और भयङ्कर रोगग्रस्त होने के कारण आबू जा रहे हैं। उस समय महाराज को हिचकियाँ लग रही थीं और संज्ञा-रहित अवस्था में थे और उसी अवस्था में उनका दस्त निकल जाता था। डाक्टर लछमनदास ने अपने पास से एमोनिया की शीशी निकाल कर उसमें से थोड़ा सा एमोनिया पानी में घोलकर थोड़ी २ मात्रा में तीन बार महाराज को दिया। उससे महाराज ने आखें खोल दीं और कहा मुझे किसी ने अमृत दिया है जिससे मेरी अचेतनता भी दूर होगई और मेरी जिह्वा भी खुलगई। तब महाराज के एक साथी ने कहा कि यह एक पञ्जाबी डाक्टर हैं जो आपकी अवस्था को देख कर रुदन कर रहे हैं। इन्होंने कोई श्वेतरंग की ओषधि पानी में मिलाकर तीन बार आपको पिलाई है जिससे आपको कुछ आराम मालूम देता है। महाराज ने प्रेमभरी दृष्टि से डाक्टर लछमनदास की ओर निहारा परन्तु वह फिर अचेत हो गये। डाक्टर लछमनदास ने उसी समय निश्चय कर लिया कि उनकी नौकरी रहे या जाये, वह महाराज के साथ आबू जाकर उनकी सेवा और चिकित्सा करेंगे। रात्री के ८ बजे वह महाराज के साथ आबू पर जोधपुर राज्य के बंगले पर पहुँचे, जिसे सर प्रतापसिंह ने पहले से ही महाराज के

डाक्टर लछमनदास का मिलना

मुझे किसी ने अमृत दिया है

आबू पहुँच गये

लिए सुसज्जित करादिया था। दो तीन सेवक उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

डाक्टर लछमनदास का प्रेम और परिश्रम

डाक्टर लछमनदास ने महाराज को आराम से पलंग पर लिटा दिया और उसी समय डाक्टर गुरुचरणदास से जो हस्पताल के इनचार्ज थे, हस्पताल की चाबियाँ लेकर किसी अनुभूत औषधि की २४ मात्राएं बनाकर लाये और रात्रि में तीन २ घण्टे पीछे एक २ मात्रा महाराज को दी। आबू पहुँचने से पहले महाराज को दिन-रात में ४०० दस्त आते थे, ऐसा डाक्टर लछमनदास ने देवेन्द्रबाबू को अपने पत्र में लिखा था। परन्तु हमें यह ठीक प्रतीत नहीं होता। जोधपुर में पहले २ दस्तों की संख्या ३०-४० से अधिक न थी। सम्भव है जोधपुर से आबू पहुँचते २ उस संख्या में कुछ वृद्धि होगई हो। डाक्टर लछमनदास का यह अनुमान मात्र है और दूसरों से सुना हुआ है। जिसने उनसे ऐसा कहा होगा उसने भी दस्तों को गिना थोड़ा ही होगा, अनुमान ही कर लिया होगा। रोगी से समवेदना रखने वाले मित्र रोगी की दशा बताने में अत्युक्ति भी करदिया करते हैं। रात्रि में केवल तीन ही दस्त

दशा सुधरने लगी

हुए। प्रातःकाल डाक्टर ने दूध में अरारोट पकाकर दो दो घन्टे के अन्तर से महाराज को दिया। १० बजे महाराज सचेत भी हो गये और उनकी हिचकियां भी बन्द हो गईं। उस दिन सारे दिन में एक और रात्रि में एक केवल दो दस्त हुए। दूसरे दिन अर्थात् २३ अक्टूबर को दिन भर में दस बारह बार करके दो सेर दूध का अरारोट महाराज को पिला दिया गया। रात्रि में उन्हें पाँच घन्टे निद्रा भी आई। तीसरे दिन २४ घन्टे में केवल एक ही दस्त हुआ और तीन सेर दूध का अरारोट पिला दिया गया। उस दिन महाराज को और कोई पीड़ा न हुई। इन तीन दिन में १८, २० तार प्रतिदिन महाराज का स्वास्थ्य पूछने के लिये आये जिनका उत्तर भी डाक्टर लछमनदास को ही देना पड़ा और अंग्रेजी की चिट्ठियों का उत्तर भी वही लिखते थे क्योंकि महाराज के पास उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति अंग्रेज़ी जानने वाला न था। चौथे दिन डाक्टर लछमन दास आबू के प्रधान मेडिकल आफ़िसर के पास इस विचार से गये ताकि उनसे एक दो मास का बिना वेतन अवकाश लेकर महाराज की चिकित्सा निश्चिन्त होकर करसकें। डाक्टर स्पेन्सर ने उन्हें देख कर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया और कहा हमने तुम्हें अजमेर जाने की आज्ञा दी थी तुम वहाँ क्यों नहीं गये। वहां के सिविल सर्जन के दो तार आ चुके हैं तुम चार दिन से बेपता थे। हमने समझा था कि या तो तुम किसी खड्ड में गिर गये या तुम्हें सिंह आदि कोई हिंस्र पशु खा गया। इस पर डाक्टर लछमनदास ने सब वृत्तान्त उन से कहा और छुट्टी की याचना की और कहा कि स्वामीजी हमारे धार्मिक और जातीय नेता हैं, उनकी सेवा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। बहुत कुछ

डाक्टर लछमनदास को छुट्टी न मिली

अनुनय विनय करने पर भी उसका हृदय न पसीजा और उसने छुट्टी देनी स्वीकार न की और यह कहा कि हम और डाक्टर गुरुचरण स्वामीजी की चिकित्सा भली प्रकार कर लेंगे। डाक्टर लछमनदास ने जोधपुर के बँगले पर आकर अपना त्याग पत्र लिख कर एक भृत्य को डाक्टर स्पेन्सर के पास पहुँचाने के लिये दिया, परन्तु महाराज ने उसे देख लिया और स्वयं अपने

स्वामीजी ने त्यागपत्र फाड़ डाला

हाथ से उसे फाड़ डाला। क्या ठिकाना है महाराज के पर-हित चिन्तन का! मृत्यु के मुख में पड़े हुए भी, जबकि डाक्टर लछमनदास के रहने से मृत्यु का कवल होने से बचने की कुछ आशा थी उन्हें यह सह्य नहीं हुआ कि उनके कारण डाक्टर को कुछ क्षति पहुँचे। अगले दिन २५ अक्तूबर को डाक्टर ने दूसरा त्यागपत्र लिख कर डाक्टर स्पेन्सर को

त्याग पत्र दिया पर अस्वीकार

दिया परन्तु उसने उसे अस्वीकार कर दिया। उस दिन कर्नल सर प्रतापसिंह भी आबू पहुँच गये थे। उनके द्वारा डाक्टर स्पेन्सर ने महाराज को कहला भेजा कि आप डा० लछमनदास को अजमेर जानेदें हम स्वयं आपकी चिकित्सा करेंगे। इस पर महाराज ने तथा अन्य लोगों ने डाक्टर लछमनदास को समझाया और उन्हें अजमेर जाने पर बाध्य किया! डाक्टर साहब दो तीन दिन की चिकित्सा के लिये ओषधि लिख आये। विदा होते समय

डाक्टर लछमनदास

उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि यदि फिर आपको कुछ पीड़ा हो तो आप अजमेर चले आवें और मुझे पण्डित भागमल साहब जज के बँगले से बुलवालेवें। इतना कह कर वह विदा हुए। विदा होते समय उनके तथा महाराज के नेत्र अश्रुपूर्ण थे। कर्नल सर प्रतापसिंह ने महाराज से बहुत पूछा कि यदि अलीमरदानखां ने आप को विष दिया हो तो आप कहदें, हम उस पर अभियोग चलावें। परन्तु महाराज ने कोई उत्तर न दिया। उनके चले जाने के बाद डा०

रोग का पुनः आक्रमण

स्पेन्सर की चिकित्सा आरम्भ हुई परन्तु वह आरम्भ से ही प्रतिकूल पड़ी और दस्त फिर आने लगे। २४ घंटे में ७, ८ दस्त आगये तब लोगों ने महाराज से अजमेर चलने की प्रार्थना की परन्तु वह राजी न हुए। जब बहुत कुछ कहा गया तो उन्होंने कहा कि २० दिन के पश्चात् चलेंगे। विशेष आग्रह करने पर महाराज ने कहा हमारी इच्छा तो अजमेर जाने की है नहीं, परन्तु आप लोगों का आग्रह है तो अजमेर चले जायंगे।

भक्तों का समूह

मेरठ से मुन्शी लक्ष्मणस्वरूप, फर्रुखाबाद से पं० लक्ष्मीदत्त, बाबू शिवदयालसिंह तथा बम्बई से सेवकलाल कर्सनदास २३ अक्तूबर को ही आबू पहुँच गये थे। ठाकुर भूपालसिंह तो मार्ग से ही महाराज के साथ आबू आये थे। जिस सहृदयता से ठाकुर भूपालसिंह ने महाराज की सेवा की उस सहृदयता से तो कोई पुत्र भी अपने पिता की नहीं करेगा।

भक्त भूपालसिंह की सेवा

वह ही महाराज का मल-मूत्र उठाते थे और मल से सने हुए वस्त्र धोते थे परन्तु तनिक भी घृणा वा ग्लानि नहीं करते थे। इस सेवा के लिये आर्य्यसमाज उनका सदा आभारी रहेगा। उस समय महाराज की यह दशा थी कि निर्बलता सीमा को पहुँच गई थी, बोला बहुत कम जाता था, मुख, जिह्वा, कण्ठ, सिर पर आँवले पड़े हुए थे। बिना दूसरों की सहायता के न उठ बैठ सकते थे और न करवट ही लेसकते थे, हाथ पाँव बहुत ठण्डे थे, पानी तक कण्ठ से नीचे कठिनता से उतरता था, अन्तर्दाह भी अधिक था, परन्तु होश-हवास ठीक थे।

अन्त को २६ अक्तूबर को महाराज आबू से अजमेर के लिये रवाना होगये। अन्तर्दाह

रात्रि में दही खाया

के उपशमनार्थ वह दही खाना चाहते थे, परन्तु मार्ग में किसी स्टेशन पर दही न मिला, आबूरोड पर भी न मिला, यद्यपि एक सेर का १) रुपया देना चाहा। आबूरोड से मन्त्री आर्य्यसमाज नानान को तार दिया कि स्वामीजी अजमेर जारहे हैं, तुम स्टेशन पर दही लेकर उपस्थित रहो। जब गाड़ी नानान पहुँची तो मन्त्री दही लेकर उपस्थित थे। महाराज ने २,३ अञ्जलि भरकर दही खाया। रात्रि के ९ बजे के समय दही का खाना विष होकर लगा। गाड़ी ४ बजे रात्रि के अजमेर पहुँची। कितने ही प्रेमी जन स्टेशन पर महाराज के दर्शनों के लिये आये हुए थे। उन्होंने देखा कि महाराज फर्स्ट क्लास के दर्जे में लेटे हुए हैं और दो तीन आर्यपुरुष पास बैठे हैं। महाराज की दशा देखते ही सब लोग घबरा गये। चार मनुष्यों ने महाराज को गाड़ी से उतारा, परन्तु उतरते ही मूर्छित हो गये। फिर उन्हें पालकी में अत्यन्त सावधानी से लिटा कर बहुत धीरे २ मसूदे के ठाकुर साहब के बँगले पर ले गये और एक कमरे में पलङ्ग पर लिटा दिया। उस समय भी महाराज गर्मी २ चिल्ला रहे थे यद्यपि वह समय सर्दी का था और अन्य लोगों को सर्दी मालूम हो रही थी। इस पर कमरे के सब द्वार खोल दिये गये, परन्तु फिर भी महाराज गर्मी २ ही कहते रहे। स्टेशन से ही एक मनुष्य को डाक्टर लछमनदास को बुलाने के लिए पण्डित भागमल की कोठी पर भेज दिया गया था। उसने जाकर डाक्टर लछमनदास को जगाया और वह उठकर तुरन्त ही मसूदा की कोठी पर पहुँच गये। उन्होंने जाकर महाराज को देखा तो उन्हें निमोनिया के पंजे में पाया। उन्होंने झल्ला कर कहा कि स्वामीजी ने कोई अपथ्य किया है। इस समय उन्हें यह ज्ञात न हुआ कि क्या अपथ्य किया है और उन्होंने नियमपूर्वक निमोनिया की चिकित्सा आरम्भ करदी। ९ बजे उन्हें ज्ञात हुआ कि मार्ग में आते हुए रात्रि में स्वामीजी ने दही खाया था। वह राय भागमल की कोठी से मसूदा की कोठी पर चले आये ताकि हर समय महाराज के पास रहकर उनकी चिकित्सा कर सकें। उन्होंने देवेन्द्र बाबू को लिखा था कि दिनरात परिश्रम करने से स्वामीजी की दशा कुछ सुधरी। उन्होंने स्वामीजी के कमरे में अग्नि सिलगवा कर उसे गर्म कर रक्खा था। उन्हें थोड़ी देर के लिये कहीं जाना पड़ा। उनके पीछे महाराज ने आग्रह करके अपना पलंग दरवाजे के पास डलवा लिया जहाँ शीतल वायु आ रही थी। जब डाक्टर वापस आये तो उन्होंने महाराज का पलंग दरवाजे के पास पड़ा देखा। वह सेवा करने वालों पर बहुत बिगड़े तो उन्होंने कहा कि कि हम क्या करें, स्वामीजी ने हमें ऐसा करने पर बाध्य कर दिया। इस कुपथ्य से रोग का पुनः आक्रमण होगया।

सब लोग घबरा गये

दशा कुछ सुधरी

स्वामीजी का अपथ्य

रोग का पुनः आक्रमण होने पर श्री महाराज ने अपने स्वीकार पत्र की प्रतियां सब लोगों को बंटवाई और कई शाल आदि जिनका मूल्य १०००) या १२००) होगा डाक्टर लछमनदास के सामने रखवाये और उन्हें देने चाहे। डाक्टर साहब ने कहा कि महाराज यदि मेरे पास धन होता तो मैं इतना धन आपके एक २ लोम पर निछावर कर देता। इस

डाक्टर लछमनदास ने पुरस्कार न लिया
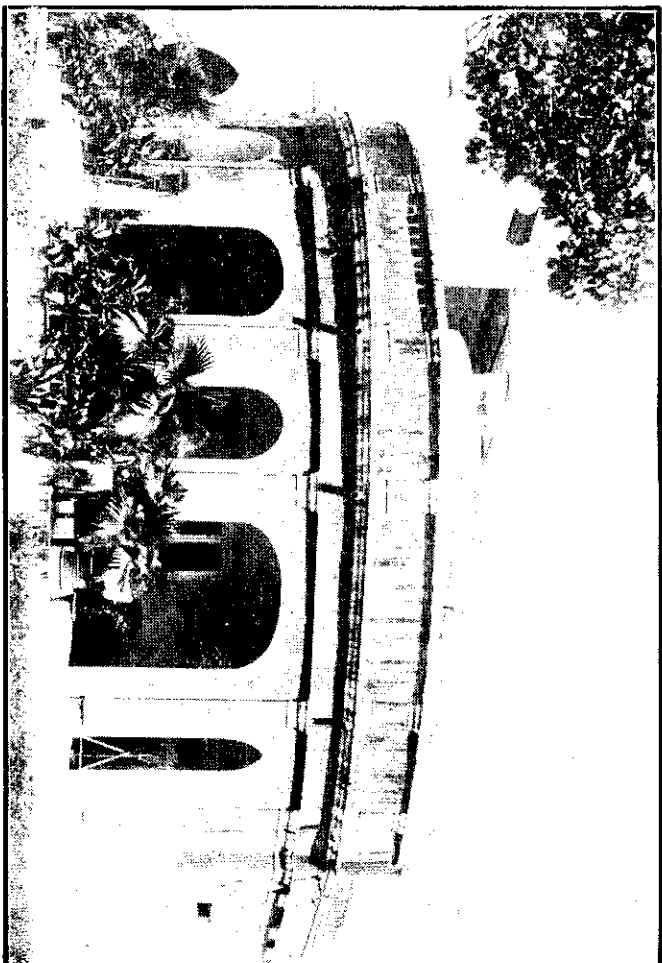
राजा भिनाय की कोठी अजमेर

इस में महर्षि दयानन्द का देहावसान हुआ था। (पृष्ठ ७१६)

पर महाराज ने कहा कि सच्चे आर्य और आर्य्यावर्त्त के सपूत ऐसे ही होते हैं। यह कहते हुए महाराज के नेत्रों में आंसू डबडबा आये और डाक्टर साहब के नेत्रों से भी अश्रुधारा बह निकली।

डाक्टर लछमनदास के प्रति कृतज्ञता

अजमेर पहुँचने के दूसरे दिन राय भगतराम जज और सरदार भगतसिंह एग्जीक्यूटिव इञ्जीनियर महाराज को देखने आये तो उन्होंने डाक्टर लछमनदास की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि इन्होंने मेरी सेवा बड़े प्रेम से की है और जो भी ओषधि मुझे इन्होंने दी उसका तात्कालिक फल हुआ है। यदि मैं इनके साथ ही अजमेर चला आता तो बहुत अच्छा होता। दोनों महानुभावों ने महाराज को सान्त्वना दी कि अब भी परमेश्वर आप को शीघ्र नीरोग कर देवेगा। महाराज ने उनसे यवनों के छल का वर्णन किया इससे प्रतीत होता है कि उन्हें सन्देह था कि अलीमरदानखां ने उन्हें ओषधि में विष दिया है। दोनों महानुभाव थोड़ी देर बैठ कर कचहरी चले गये। तब महाराज ने कहा कि हमें मसूदा ले चलो। परिचर्य्या करने वालों ने कहा कि ऐसी दशा में कैसे ले चलें, जब आप को आराम हो जायगा तब ले चलेंगे तो महाराज ने कहा कि दो दिन में आराम हो जायगा।

ओषधि में विष

पण्डित गुरुदत्त का अजमेर में आगमन

२९ अक्तूबर को लाहौर से पण्डित गुरुदत्त और लाला जीवनदास आगये। और उदयपुर से पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या भी आ पहुंचे जिन्हें महाराणा सज्जनसिंह ने महाराज का स्वास्थ्यसमाचार लाने और चिकित्सा में साहाय्य करने के लिए भेजा था। महाराणा ने उनसे यह भी कह दिया था कि यदि महाराज का देहपात होजाय तो हमें सूचित करना और हमारे अजमेर पहुँचने तक शव का दाह न होने देना ताकि हम श्री महाराज के अन्तिम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें।

महाराणा की चिन्ता

एक और किंवदन्ती

डाक्टर लछमनदास कहते हैं कि स्वामीजी ने अलीमरदान खाँ से कहा था कि हमें कोष्ठ बद्ध है, आप हमें जुल्लाब दे दीजिये और उससे अंग्रेजी रेचक ओषधियों के नाम और गुण भी पूछे थे। अलीमरदान खां ने और रेचकों के साथ क्रोटन ऑइल (Croton oil) का भी उल्लेख किया था और उसका यह गुण बताया था कि जिह्वा पर उसकी एक बूँद रखते ही दस्त आने लगते हैं। साथ ही उसने उसके दोष भी बता दिये थे। परन्तु महाराज ने उसे ही खाना पसन्द किया। प्रथम उन्होंने दो बूंद खाईं। उससे दस्त नहीं आये। फिर दो बूँद और खाईं परन्तु फिर भी कोई दस्त न हुआ, तब दो बूँद और खाईं। उनके खाते ही दस्त जारी होगये और उनकी संख्या ६०० तक पहुँच गई।

हमें यह बात अलीक प्रतीत होती है। डाक्टर लछमनदास ने तो यह बात किसी से सुनी ही होगी, वह स्वयं तो जोधपुर में थे ही नहीं। डाक्टर सूरजमल जो रोग के आरम्भ से महाराज को देखते रहे और जोधपुर से पाली तक उनके साथ रहे क्रोटन ऑइल (Croton oil) का जिक्र तक नहीं करते और न दस्तों की संख्या छः सौ बताते हैं। अतः डाक्टर सूरजमल का ही कथन अधिक विश्वसनीय है।

डाक्टर लछमनदास ने फिर परिश्रम किया और निरन्तर प्रयत्न करने से वह फिर महाराज को नीरोगता की ओर ले आये। जब उन्होंने महाराज के शरीर की अवस्था कुछ संभली देखी तो वह राय भागमल के यहां भोजन करने चले गये और रोगी सेवकों से कह गये कि अब ऐसा न होने पावे कि स्वामीजी फिर शीतल वायु लगा बैठें। परन्तु शोक है कि उनके चले जाने के बाद महाराज ने फिर अपना पलङ्ग बाहर बरामदे में निकलवाने पर आग्रह किया और उसे निकलवा कर ही छोड़ा। दो तीन घंटे के पश्चात् जब डाक्टर साहब वापस आये तो क्या देखते हैं कि महाराज का पलङ्ग बरामदे में पड़ा हुआ है और उनके पास पराड्या मोहनलाल और एक दो पुरुष और बैठे हुए हैं और महाराज शुद्ध वायु की प्रशंसा कर रहे हैं। जब यह लोग चले गये तो डाक्टर साहब ने महाराज का पलङ्ग फिर कमरे के भीतर डलवाया और पण्डित गुरुदत्त से कहा कि स्वामीजी को आज फिर रोग का आक्रमण होगा और तीव्र आक्रमण होगा। रात्रि में डाक्टर लछमनदास और पण्डित गुरुदत्त बारी बारी से जागते रहे। ११ बजे के समीप डाक्टर साहब सोगये और पण्डित गुरुदत्त जागते रहे। अभी बारह भी बजने नहीं पाये थे कि पण्डित गुरुदत्त ने डाक्टर साहब को जगाकर कहा कि स्वामीजी का श्वास चलता हुआ प्रतीत नहीं होता और नाड़ी भी नहीं मिलती। डाक्टर साहब तुरन्त उठे और उन्होंने ग्लास लगाकर कुछ रुधिर फेंफड़ों में से निकाला जिससे श्वास की गति भी ठीक होगई और नाड़ी भी धीमी धीमी और बारीक चलने लगी। और थोड़ी ही देर में दशा संभल गई।

रोग फिर कम हुआ

पुनः कुपथ्य

मुमूर्षु दशा

प० लेखराम कृत उर्दू दयानन्द-चरित में जो चिकित्सा डाक्टर लछमनदास ने की उसके विषय में केवल इतना ही लिखा है कि डाक्टर साहब ने बहुत प्रयत्न किया और अनेक दवाएं दीं परन्तु उनसे लेश मात्र भी लाभ न हुआ। हम डाक्टर लछमनदास के कथन को ही सत्य मानते हैं। उक्त दयानन्द-चरित में २९ अक्तूबर की दशा का जो वर्णन है उससे भी डाक्टर लछमनदास के कथन का समर्थन होता है। उसमें लिखा है कि स्वामीजी का चित्त घबराने लगा, उन्होंने कहा कि हमें बिठादो। जब बिठा दिया तो कहा छोड़दो हम बैठे रहेंगे। सो स्वामीजी बिना सहारे अच्छे प्रकार बैठे रहे। ... परन्तु श्वास शीघ्र शीघ्र चलता था जिसे स्वामीजी रोक २ कर फिर शीघ्र ही बल पूर्वक बाहर निकाल देते थे और कुछ ईश्वर का ध्यान भी करते थे। इतने में संध्या हो गई। ...... जब अर्द्ध रात्रि का समय आया तब स्वामीजी को बहुत घबराहट होने लगी।

भ्रान्त समर्थन

रात्रि को घबराहट

महाराज के पलङ्ग का बाहर बरामदे में डालने का ऊपर के वर्णन में उल्लेख नहीं है परन्तु उनका पलङ्ग पर बिना सहारे बैठे रहना वास्तव में उसी कुपथ्य को प्रकट करता है जिसका उल्लेख डाक्टर लछमनदास करते हैं और उर्दू दयानन्द-चरित का यह लेख कि अर्द्धरात्रि को स्वामीजी को बहुत घबराहट हुई, डाक्टर लछमनदास के उस कथन की पुष्टि करता है कि उन्होंने पण्डित गुरुदत्त से कह दिया था कि आज रात्रि में रोग का तीव्र आक्रमण होगा।

डाक्टर लछमनदास का वर्णन सत्य है

ऋषि दयानन्द मृत्युशय्या पर ।

(पृष्ठ ३९८)
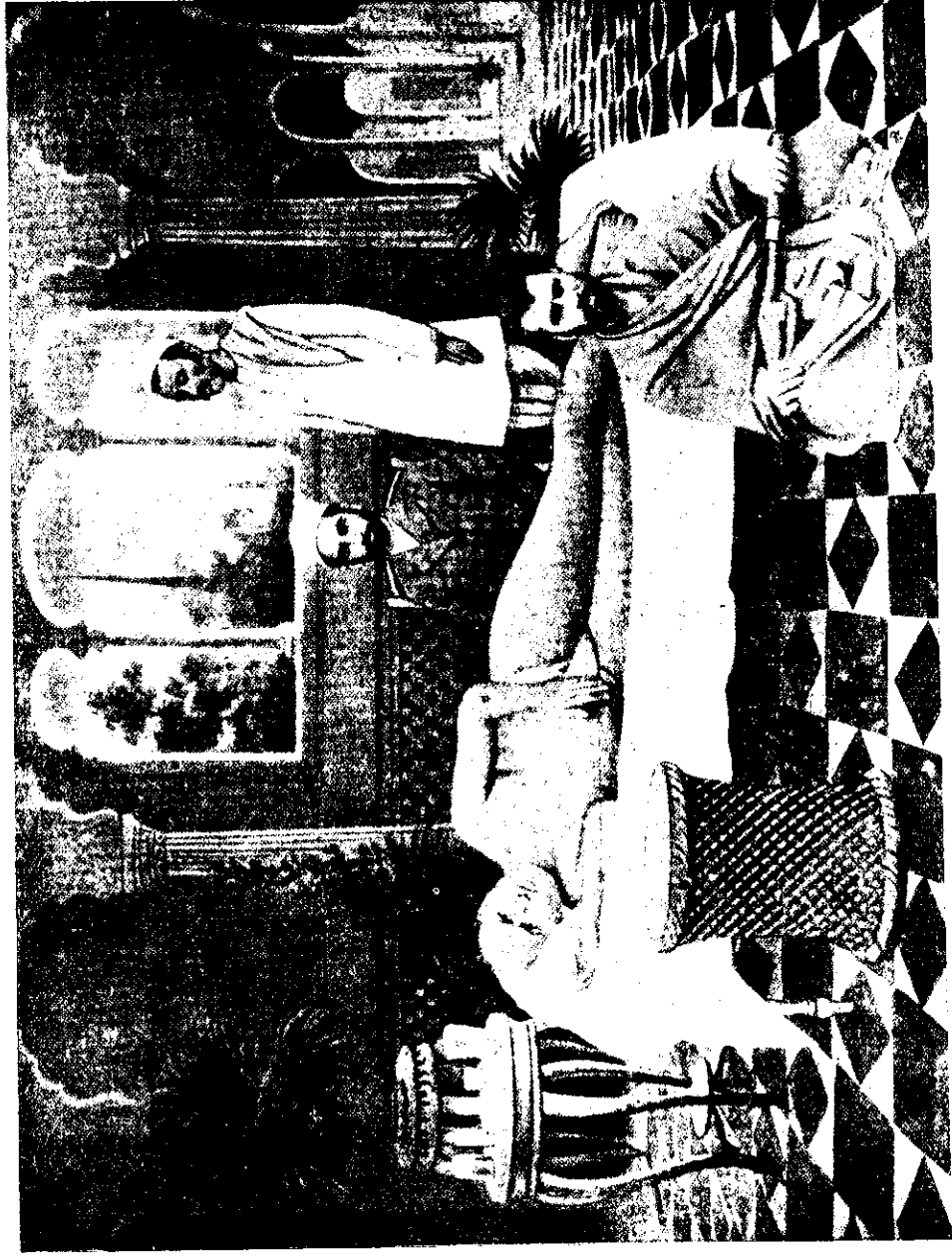
३० अक्तूबर को दीपमालिका का त्यौहार था। उस दिन डा० लछमनदास ने प्रातःकाल होते ही लोगों से कहा कि अब जब तक कोई दूसरा डाक्टर चिकित्सा में योग न देगा तब तक मैं चिकित्सा नहीं करूँगा। लोगों ने उत्तर दिया कि स्वामीजी की सेवा आपके सिवाय न कोई डाक्टर ही कर सकता है और न कोई अन्य मनुष्य। डाक्टर साहब ने कहा कि अब स्वामीजी का अन्त समय मालूम होता है क्योंकि जब ही स्वामीजी के आराम होने की सूरत होती है तब ही वह कोई न कोई कुपथ्य कर बैठते हैं। यदि स्वामीजी का देहपात होगया तो लोग मुझे मूर्ख बताएंगे। जब डाक्टर साहब ने बहुत आग्रह किया तो लोगों ने कहा कि यदि आपकी यही सम्मति है तो आप जिस डाक्टर की सम्मति अपनी सम्मति में मिलानी चाहें उसे ले आवें। इस पर डाक्टर साहब अजमेर के सिविल सर्जन डाक्टर न्यूमैन को लिवा लाये। डाक्टर न्यूमैन ने जब महाराज को आकर देखा तो आश्चर्य से कहने लगे कि रोगी अत्यन्त विशाल काय, सुदृढ़, वीर और रोग को सहने वाला है। इस की आकृति से ही ज्ञात होता है कि इस का रोग असह्य है, परन्तु यह अपने को दुःखी नहीं मानता। यही है जो ऐसे उग्र रोग में भी अपने को सम्भाल रहा है और अभी तक जीवित है। इस पर डाक्टर लछमनदास ने उन से कहा कि यह स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं जिनका नाम आपने सम्भवतः सुना होगा। डाक्टर न्यूमैन ने यह बात सुनकर शोक प्रकट किया और महाराज के धैर्य की प्रशंसा की। उस समय महाराज के कण्ठ में कफ की बड़ी प्रबलता थी जिसके कारण वह बोल नहीं सकते थे और डाक्टर न्यूमैन के प्रश्नों का उत्तर संकेत मात्र से देते थे, परन्तु सुनने और समझने की शक्ति अक्षुण्ण थी। पहले तो डा० न्यूमैन ने महाराज के ब्रह्मचर्य्य-रक्षित शरीर को देख कर कहा कि इन्हें निमोनिया नहीं है, परन्तु जब डाक्टर लछमनदास के कहने पर स्टैथस्कोप यन्त्र लगा कर देखा तो डाक्टर लछमनदास की सम्मति का कि महाराज को एक्यूट डबल निमोनिया है समर्थन किया। जब डाक्टर न्यूमैन ने देखा कि महाराज को कफ बहुत सता रहा है तो उनके मुख में थोड़ा सा गौ का दुग्ध डाला, परन्तु उस से कोई लाभ न हुआ। डाक्टर लछमनदास ने अपने सब नुसखे जो वह महाराज को देते रहे थे डाक्टर न्यूमैन को दिखाये। इन्हें देख कर डाक्टर साहब ने कहा कि निमोनिया के लिए यह बहुत अच्छे हैं, यदि चाहो तो इन औषधियों में डिकाक्शन आफ सेनेगा और बढ़ा दो, नहीं तो उसकी कुछ अधिक आवश्यकता नहीं है। बाह्य उपचार के विषय में डाक्टर लछमनदास ने कहा कि तिरपन तेल मल कर रूई बाँधी जाती है। डाक्टर न्यूमैन ने कहा, मैं ऐसे रोगी के राई की पुलटिस बंधवाता हूँ। इस पर डा० लछमनदास ने कहा कि मैंने योरोपियन लोगों की चिकित्सा में राई की पुल्टिस को लाभकारक पाया है, परन्तु भारतीय लोगों की चिकित्सा में नहीं। यह कह कर डाक्टर न्यूमैन चले गये। उक्त उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि डाक्टर न्यूमैन ने ३, ४ सेर

अब चिकित्सा न करूँगा

अंग्रेज़ सिविल सर्जन का परामर्श

डाक्टर न्यूमैन का आश्चर्य

डाक्टरों में मत-भेद

अलसी को दूध में पका कर उस की पुलटिस बांधने को कहा था। डाक्टर लछमनदास कहते हैं कि राई की पुल्टिस बताई थी।

दस बजे ३, ४ आर्य्य पुरुष डाक्टर न्यूमैन के बँगले पर गये और उनसे कहा कि जब आरम्भ में आपने कहा था कि स्वामीजी को निमोनिया नहीं है तो हम लोग बहुत प्रसन्न हुए थे। इस पर डाक्टर न्यूमैन ने कहा कि स्टैथस्कोप लगाने पर ज्ञात हुआ कि डाक्टर लछमनदास का निदान ठीक है। स्वामीजी को एक्यूट डब्ल निमोनिया है। फिर आर्य्य पुरुषों ने पूछा कि डाक्टर लछमनदास की चिकित्सा कैसी है तो उन्होंने कहा कि यदि दस अंग्रेज डाक्टर भी मिलकर चिकित्सा करते तो इस से बढ़कर न कर सकते थे। मेरा उनसे भेद केवल बाह्य उपचार के विषय में है सो यह अपने २ अनुभव की बात है।

डाक्टर न्यूमैन से परामर्श

डाक्टर लछमनदास बहुत अनुभवी चिकित्सक हैं। फिर आर्य्य पुरुषों ने पूछा कि अन्तिम परिणाम क्या होगा तो डाक्टर न्यूमैन ने कहा कि सम्भव है कि ऐसे रोगी का थोड़े घण्टों में ही प्राणान्त होजाय और यह भी सम्भव है कि वह बचजावे। आर्य्य पुरुषों ने पूछा कि क्या चिकित्सा होनी चाहिये? तो डाक्टर न्यूमैन ने कहा कि वही जो डाक्टर लछमनदास कर रहे हैं। आर्य्य पुरुषों का अन्तिम प्रश्न यह था कि पुल्टिस लगाई जावे कि नहीं। इसका उत्तर डाक्टर न्यूमैन ने यह दिया कि मेरे अनुभव में पुल्टिस लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके पश्चात् आर्य्य पुरुष लौट आये।

मरना जीना दोनों सम्भव हैं

वापस आकर उन्होंने राई की खूब गर्म २ पुल्टिस पीठ पर लगानी आरम्भ करदी। इस पर डाक्टर लछमनदास ने पण्डित गुरुदत्त से कहा कि वैसे स्वामीजी दो चार दिन और जीवित रहजाते परन्तु अब शीघ्र ही उनका शरीर पात होजावेगा। सम्भव है कि आज सन्ध्या तक ही उनका शरीर न रहे। परन्तु लोग ५, ६ घन्टे तक पुल्टिस लगाते ही रहे। परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी की पीठ पर छाले पड़गये। उक्त उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि पुल्टिस केवल आध घड़ी तक ही लगाई गई थी और फिर स्वयं महाराज ने ही यह कह कर कि इस से क्या होता है, उसका लगाना बन्द करादिया था और कहा कि अब हमारा अन्त समय है, सब उपचार छोड़दो। अतः दवा आदि देना बन्द करदिया गया था। ११ बजे महाराज के श्वास की गति बढ़ने लगी और कुछ २ बोलने लगे। उन्होंने कहा कि हम शौच जाएंगे। लोगों ने उन्हें शौच की चौकी पर बिठाया। शौच के पश्चात् स्वयं पानी लिया, हाथ धोये और दातन की, फिर उन्होंने कहा कि हमें पलङ्ग पर लेचलो। पलङ्ग पर कुछ देर बैठ कर लेट गये। श्वास बड़े वेग से चल रहा था और ऐसा प्रतीत होता था कि महाराज श्वास रोक कर ईश्वर का ध्यान करते हैं। किसी ने उस समय उन से पूछा कि आप का चित्त कैसा है तो कहा कि अच्छा है, एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है। लाला जीवनदास ने उनसे पूछा, आप कहाँ हैं तो कहा कि ईश्वरेच्छा में।

राई की खूब गर्म पुल्टिस

आज आराम का दिवस है

चार बजे महाराज ने आत्मानन्द को बुलाया। वह आकर सम्मुख खड़े होगये।

शिष्य से प्रश्न

महाराज ने उनसे कहा कि यातो पीछे खड़े होजाओ या सिरहाने बैठ जाओ तब महाराज ने उनसे पूछा कि आत्मानन्द क्या चाहते हो?

शिष्य का उत्तर

उन्होंने कहा कि ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे होजाएं। इस पर कुछ देर ठहर कर महाराज बोले कि यह देह है, इसका अच्छा क्या होगा। फिर आत्मानन्द के सिर पर हाथ रख कर बोले कि आनन्द से रहना।

एक संन्यासी गोपालगिरि काशी से महाराज को देखने आये थे उनसे भी महाराज ने यही प्रश्न किया जो आत्मानन्द से किया था और उन्होंने भी वही उत्तर दिया जो आत्मानन्द ने दिया। तब उनसे भी महाराज ने यही कहा कि गोपालगिरि अच्छे प्रकार से रहना। महाराज ने दो दुशाले और २००) रुपये मंगवाये और कहा कि आधे २ आत्मानन्द और पण्डित भीमसेन को देदो, परन्तु उन्होंने न लिये।

संन्यासी से भी वही प्रश्न

चार बजे के समय बाहर से आये हुए आर्य्य पुरुष महाराज के समीप गये और सामने खड़े होगये। महाराज ने सबको ऐसी कृपादृष्टि से देखा कि उसका वर्णन नहीं होसकता, मानों वह सब से यह कह रहे थे कि उदास क्यों होते हो, सबको धैर्य्य धारण करना चाहिये।

उस समय महाराज के मुख पर किसी प्रकार के शोक वा घबराहट के चिन्ह न थे। अपने घोरतम कष्ट को इस प्रकार सहन करते थे कि मुख से एक बार भी हाय या अन्य कष्टसूचक शब्द न निकलता था। महाराज बड़ी सावधानी से रहे और बात-चीत करते रहे। इतने में पाँच बज गये। महाराज से किसी ने पूछा कि महाराज आप श्रीमानों का चित्त कैसा है तो कहा अच्छा है, तेज और अन्धकार का भाव है। इस बात को लोग कुछ न समझे। जब साढ़े पाँच बजे तो महाराज ने कहा कि जो लोग हमारे साथ हैं तथा दूरस्थ स्थानों से आये हैं उन्हें बुलाकर हमारे पीछे खड़ा करदो, सामने कोई खड़ा न हो। जब सब लोग आगये तो महाराज ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोलदो और छत के दो रोशनदान भी खुलवा दिये और पूछा कि कौनसा पक्ष, क्या तिथि और क्या वार है? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आदि अमावस्या और मङ्गलवार है। यह सुनकर छत और दीवारों की ओर दृष्टि की, फिर कई वेद मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरोपासना की और भाषा में ईश्वर का गुण कीर्त्तन किया और फिर बड़ी प्रसन्नता और हर्षपूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे और कुछ देर तक समाधिस्थ रहकर आँखें खोलदीं और यों कहने लगे कि हे दयामय, हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आहा!!! तैने अच्छी लीला की। महाराज उस समय सीधे लेट रहे थे, यह शब्द कहकर उन्होंने स्वयं ही करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक कर एकदम बाहर निकाल दिया। महाराज की मानवी लीला समाप्त हुई और उनका आत्मा नश्वर देह को छोड़कर जगत्-जननी की प्रेममयी गोद में जा विराजा। महाराज के शरीर छूटने के समय छः बजे थे।

मृत्युसान्निध्य में अपूर्व सावधानी

तेज और अन्धकार का भाव है

वेदपाठ और ईश्वर-स्तुति

तेरी यही इच्छा है

मृत्यु दृश्य ने नास्तिक को आस्तिक बना दिया

महाराज के मृत्युदृश्य को पण्डित गुरुदत्त चुपचाप खड़े हुए देख रहे थे। वह यद्यपि आर्य्यसमाज के सभासद् थे, परन्तु ईश्वर के अस्तित्व में उनको सन्देह था। उन्होंने देखा कि एक योगी और ईश्वर का सच्चा विश्वासी मृत्यु पर कैसे विजय पासकता है। इस दृश्य को देख कर उनके सारे सन्देह दूर होगये जो उस समय तक किसी युक्ति से दूर न हुए थे और वह सच्चे आस्तिक बन गये।

हम शव को गाड़ेंगे

उनके परलोकगमन का समाचार सुनकर दो संन्यासी आये और कहने लगे हम उनके शरीर को संन्यासियों की प्रचलित रीति के अनुसार गाड़ेंगे, जलाने नहीं देंगे। आर्य्य पुरुषों ने उन्हें समझा दिया कि श्रीमहाराज पहले से ही अपने शव की अन्त्येष्टि के विषय में सब कुछ लिख गये हैं, उसी के अनुसार कार्य्य होगा। इस पर वह यह कहते हुए चले गये कि यद्यपि स्वामीजी हमारे प्रतिपक्षी थे, परन्तु फिर भी थे तो हमारे ही। यदि हमारी मण्डली यहाँ होती तो हम शव को बलात् छीन लेजाते, परन्तु क्या करें हम केवल दो ही हैं।

पण्डित सुन्दरलाल आगये

मरने से कुछ ही देर पहले महाराज ने कहा था कि पण्डित सुन्दरलाल को बुलाओ। इस पर लोगों ने कहा कि वह नहीं आये। तब महाराज ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि नहीं वह आगये। लोगों के आश्चर्य्य की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि महाराज की मृत्यु के पश्चात् ही वह आगये। अजमेर में प्रातःकाल महाराज उठ कर बैठ जाया करते थे और ईश्वरोपासना किया करते थे। ईश्वर तेरी इच्छा यही है, बहुधा यह वाक्य कहा करते थे और "अग्ने नय सुपथा राये" इत्यादि मन्त्र बहुत पढ़ा करते थे।

नाई को ५) रुपये

मरने से एक दो दिन पहले महाराज ने एक नाई से क्षौर कराया तो उपस्थित पुरुषों से कहा कि इसे ५) रुपये दे दो। लोगों ने उसे १) रुपया दिया। वह महाराज के पास गया और कहा कि १) रुपया मिला है। इस पर उन्होंने उसे ४) रुपये और दिलवाये।

जो इच्छा हो वह भोजन बनाओ

मृत्यु के दिन भी महाराज ने क्षौर कराया था। उन की इच्छा स्नान करने की थी परन्तु लोगों ने स्नान न करने दिया तब उन्होंने भीगे कपड़े से सिर पूछा। उस रोज़ महाराज ने यह भी कहा था कि जो इच्छा हो वही भोजन बनाओ। जब भोजन बन गया तो उसे एक थाल में सजा कर महाराज के सामने लाया गया। महाराज ने उसे एक दृष्टि से देख कर कहा कि ले जाओ परन्तु लोगों ने आग्रह किया कि आप भी कुछ खाइये इस पर उन्हों ने चनों के पानी की एक चमची ली।

दो सुधारक एक ही समय में रुग्ण

जिन दिनों स्वामीजी अजमेर में रोग शय्या पर पड़े हुए थे, उन्हीं दिनों नवविधान ब्राह्मसमाज के प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्र सेन भी रोग पीड़ित थे। एक पत्र प्रेरक का २८। १०। १८८३ का लिखा हुआ एक लेख स्टेट्समैन कलकत्ता के १। ११। १८८३ के अङ्क में प्रकाशित हुआ
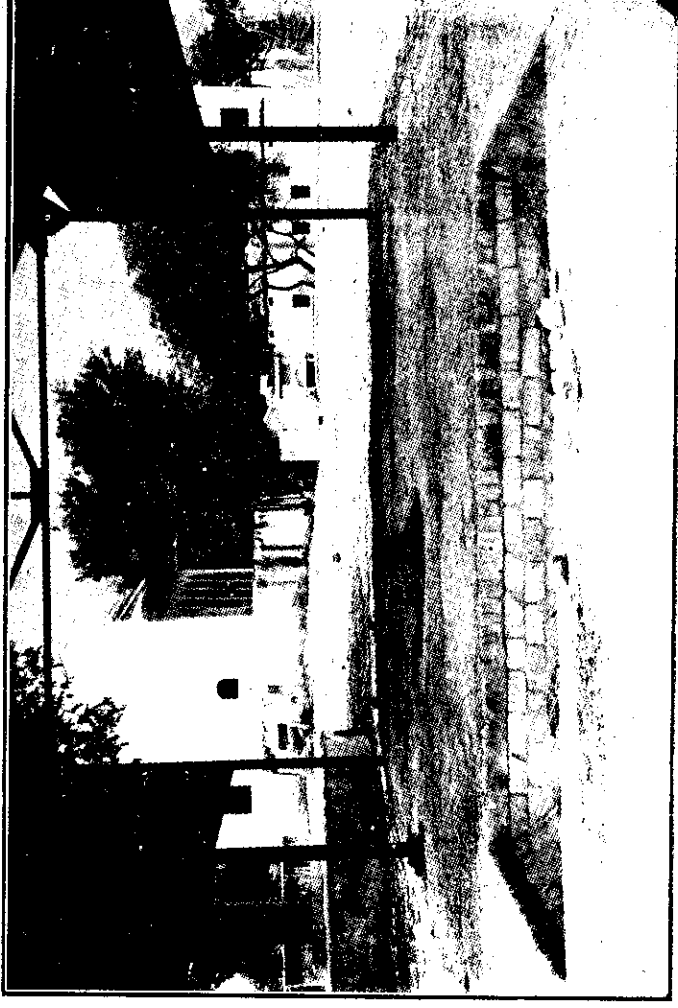
मलूसर श्मशान, अजमेर
इस श्मशान भूमि में ही ऋषि दयानन्द का अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न हुआ था,
अब वहां एक पक्की वेदी बनादी गई है। (पृष्ठ ७१३)

श्रीमद्दयानन्द साधु-आश्रम
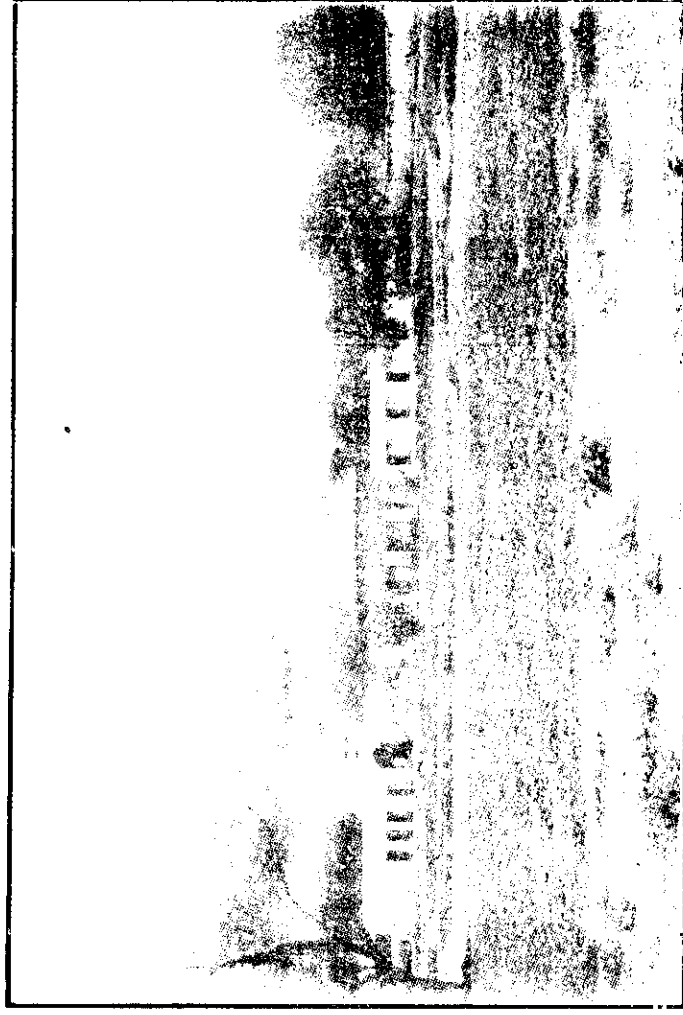
आनासागर के तट पर यह शाहपुरा वालों का बाग़ है, जिसमें अजमेर में प्रायः महर्षि दयानन्द रहते थे। बाद में इसमें वैदिक आश्रम रहा और निर्वाण अर्द्धशताब्दी के अवसर पर इस बाग में ब्रह्मपारायण महायज्ञ हुआ। इसी बाग़ में ऋषि दयानन्द की अस्थियें डाली थीं। (पृष्ठ [illegible])

था उस में लिखा था कि यह भारत का दौर्भाग्य है कि उसके सब से बड़े दो सुधारक केशवचन्द्र और दयानन्द एक ही समय में रोगाक्रान्त हैं।

महाराणा की अन्तिम दर्शन की कामना

यह हम पहले कह चुके हैं कि महाराणा सज्जनसिंह की यह प्रबल इच्छा थी कि यदि महाराज का देहान्त हो जाय तो उन की अन्त्येष्टि क्रिया ४, ५ दिन तक न की जाय ताकि हम उनके अन्तिम दर्शन कर सकें। परन्तु लोगों ने ऐसा करना उचित न समझा और ३१ अक्तूबर को उनकी अन्त्येष्टि क्रिया कर दी गई। अरथी तैयार की गई, उस पर चारों ओर केले के पत्ते और पुष्पादि लगाये गये। महाराज के शव को स्नान करा कर चन्दनादि से चर्चित करके और नवीन वस्त्र पहना कर उस पर रक्खा गया। तब सब लोग उसके चारों और खड़े हो गये और आध घन्टे तक वेदमन्त्र पढ़ते रहे। तत्पश्चात् अरथी उठाई गई। उसके आगे रामानन्द ब्रह्मचारी, गोपालगिरि संन्यासी पं० वृद्धिचन्द और मुन्नालाल नंगे पैर वेद-मन्त्र पढ़ते जाते थे। उसके पीछे आर्य्य पुरुषों, हिन्दुस्तानियों, पंजाबियों, बंगालियों, महाराष्ट्रों का बृहत् समूह था। राय भागमल जज, पंडित सुन्दरलाल सुपरिटेन्डेन्ट पोस्टल वर्कशाप अलीगढ़, बाबू शरच्चन्द्र मजूमदार, प्रधान ब्राह्मसमाज अजमेर तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुष थे। श्मशान यात्रा अजमेर के आगरा दरवाजे, नया बाजार, अनाज मण्डी, दरगाह बाजार, डिग्गी बाजार होती हुई नगर के दक्षिण भाग में पहुँची। महाराज की आज्ञा थी कि उन के शव का नगर के दक्षिण में दाह किया जाय। वहां अरथी उतारी गई और संस्कारविधि के अनुसार वेदी बनाई गई। इतने वेदी तैयार हुई, राय भागमल ने अत्यन्त मर्मस्पृक् शब्दों में महाराज के गुण वर्णन किये फिर पण्डित सुन्दरलाल ने कुछ कहना आरम्भ किया, परन्तु थोड़ा सा कथन करने के पश्चात् ही उनका जी भर आया और वह आगे कुछ न कहसके।

शवदाह की तैयारी

श्मशान यात्रा

अन्त्येष्टि क्रिया

जब वेदी तैयार हो गई तो उस में चन्दन आदि काष्ठ चयन करके उस पर महाराज के शव को रक्खा और उस पर चन्दन, काष्ठ, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य रख कर रामानन्द और आत्मानन्द ने अग्नि प्रवेश कराई और संस्कारविधि लिखित वेदमन्त्रों से घृत की आहुतियाँ देकर शव को भस्मीभूत किया। उस समय सायङ्काल के छः बजे थे जब लोग इस कार्य्य से निवृत्त हुए तत्पश्चात् सब लोग स्नान करके अपने २ घर चले गये।

अगले दिन पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने स्वामीजी के धन और वस्तुओं की सूची बना कर और उस पर प्रतिष्ठित पुरुषों के हस्ताक्षर करा कर परोपकारणी सभा के मन्त्री की स्थिति से अपने अधिकार में ले लिया।

दाह-संस्कार की सामग्री

महाराज के शवदाह में निम्न लिखित सामग्री का प्रयोग हुआ था:—

१—घृत तीन मन तीस सेर .... मूल्य .... ८४।=)

२—चन्दन दो मन दो सेर एक पाव	....	....	⊛
३—केशर चालीस तोला	... .	मूल्य	२१॥)
४—कपूर ५ सेर	....	मूल्य	५)
५—कस्तूरी नौ माशा	....	मूल्य	९)
६—अगर चार सेर	....	मूल्य	१)
७—चीनी तीन सेर चार छटांक	....	मूल्य	१)
८—शरीराच्छादन	....	मूल्य	९–)॥।
९—एक दुशाला	....	मूल्य	५०)
१०—पलाशादि काष्ठ सोलह मन	....	मूल्य	८)
११—रथी निर्माण तख्ता	....	मूल्य	२॥)
१२—खदिर का स्रुवा	....	मूल्य	१)
१३—वस्तुओं के लाने की मजदूरी	....	....	२)

महाराज की मृत्यु का संवाद सारे भारतवर्ष में फैल गया। विद्वन्मण्डली में हा हा कार मच गया। उनके कट्टर से कट्टर विरोधियों ने शोक प्रकट किया। पण्डित गट्टूलाल शास्त्री सरीखे विपक्षी ने कहा कि दयानन्द से हमारा अनेक विषयों पर मत भेद होते हुए भी हम यह बात मुक्त कण्ठ से स्वीकार करेंगे कि दयानन्द ने इस देश में वेद-सम्बन्धी चर्चा और जिज्ञासा का उदय किया है और गोरक्षा के आन्दोलन का सूत्रपात करके सारे भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का उद्योग किया है।

पण्डित गट्टूलाल की समवेदना

सारे हिन्दूजगत् पर शोक की घटा छा गई। नगर २ में शोक सभाएं हुईं। देश भर में स्यात् ही कोई समाचार पत्र होगा जिस में उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट न किया गया हो। बहुत से पत्रों में तो लम्बे २ अग्र लेख लिख कर उनका गुणकीर्त्तन और उन के कार्य्य की प्रशंसा की गई। हम उन्हें यहां उद्धृत कर के ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते।

सर्व शोक की घटा

श्री महाराणा सज्जनसिंह उदयपुराधीश ने अपने शोक सन्तप्त हृदय का उद्गार निम्न लिखित कविता द्वारा प्रकट किया था:—

महाराणा का शोकोद्गार

दोहा

नभ चर ग्रह ससि दीप दिन, दयानन्द सह सत्व।
वय त्रेसठ † वत्सर विचे, पायो तन पञ्चत्व॥

⊛ देवेन्द्र बाबू के नोट में चन्दन के मूल्य की रकम कट फट गई थी अतः पढ़ी नहीं गई।

† स्वामीजी का जन्म संवत् १८८१ में और देहान्त संवत् १९४० में हुआ, अतः मृत्यु समय उनका वयःक्रम ५९ वर्ष का था, तरेसठ का न था। —संग्रहकर्त्ता.

अष्टाविंश अध्याय

कवित्त

जाके जीह जोर तें प्रपञ्च फिलासफिन को,
भारत सो समस्त आर्य्य मण्डल तें मान्यो मैं ।
वेद के विरुद्धी मत मत के कुबुद्धी मन्द,
भद्र मद्र आदिन पै सिंह अनुमान्यो मैं ।
ज्ञाता खट ग्रन्थन को वेद को प्रणेता जेता,
आर्य्य विद्या अर्क हू को अस्ताचल जान्यो मैं ।
स्वामी दयानन्द जू के विष्णुपद प्राप्त हू तें,
पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यो मैं ।।

मुन्शी देवीप्रसाद, राजरसनामृत पृष्ठ २५ से रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा के राजपूताने के इतिहास पृष्ठ ११४२ पर उद्धृत ।

एक मर्मस्पृक् ललित उद्गार

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रतिष्ठित समाचारपत्र तथा नेताओं में यहाँ तक कि विरोधियों ने भी ऋषि दयानन्द की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए और उनका गुणगान और धर्म और जाति की जो सेवाएं की थीं उनका वर्णन किया। यदि हम उन सब लेखों का संग्रह करें तो बड़ा भारी ग्रन्थ बन जायगा इसलिये हम उन सब का उल्लेख न करके केवल एक संस्कृत कविता जो अत्यन्त ललित और मर्मस्पृक् है उद्धृत करने पर संतोष करते हैं। यह कविता कविवर रामदास छबीलदासजी वर्म्मा ने केम्ब्रिज से भेजी थी जहां वह ऋषि के देहावसान के समय विद्याध्ययन कर रहे थे।

अहो नितान्तं हृदयं विदूयते निशम्य लोकान्तरमुन्नताशयम्।
सम्प्रस्थितं वेदविदामनुत्तमं श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीं कविम्॥ १॥

वेदों के जानने वालों में सर्वोत्तम, मेधावी, उन्नताशय श्री दयानन्द सरस्वती के परलोक-गमन को सुनकर हृदय को अत्यन्त दुःख होता है।

दीपपंक्तिचितभूतले सति व्योम्नि तारकगणैस्समुज्ज्वले।
शोकजालतिमिराकुले तु सत्युत्ससर्ज स शरीरबन्धनम्॥ २॥

पृथ्वी पर दीपकों की पंक्ति के जलने पर, तारागणों से आकाश के प्रकाशित होने पर और शोक रूपी अन्धकार के फैलने पर उसने शरीर के बन्धन को छोड़ दिया।

निःशेषपीताखिलशास्त्रसारः पूतान्तरात्मा निगमाग्निजालैः।
ज्ञानोत्तमैकाञ्जनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैकनिध्यानविशुद्धचेताः॥ ३॥
स्वकीयदेशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथन्नु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स मनश्चकार॥ ४॥

जिसने शास्त्रों के समस्त सार को पी लिया था, वेद की अग्नि से जिस का अन्तरात्मा पवित्र हो गया था, जिसने अपने नेत्रों में उत्तम ज्ञान का अंजन लगाया था, जिसका चित्त ब्रह्म का ध्यान करने से शुद्ध हो गया था, जो अपने देश की उन्नति में सर्वथा संलग्न था, जिसके स्वप्न में भी स्वार्थ-बुद्धि नहीं आई थी, उस ने इस सब कार्य को छोड़कर द्युलोक जाने का क्यों विचार किया?

विज्ञाय तस्याद्भुतचारुवृत्तं दिवौकसो जातकुतूहलाः किम्।
तद्दर्शनायात्मनिकेतनं तमजूहवन्दिव्यगुणैरुपेतम्॥ ५॥

क्या कहीं स्वर्ग के देवताओं ने उस के अद्भुत और सुन्दर चरित्र को सुनकर कुतूहलवश उस दिव्यगुणों से युक्त पुरुष को अपने गृह पर उस का दर्शन करने के लिये तो नहीं बुलालिया?

कृतयुगोचित एष जनः किल न चिरमर्हति वस्तुमसौ मयि।
मनसि संकलितं कलिनेति किं स च हृतोऽखिलसाधुमनोरथैः॥ ६॥

क्या कहीं कलियुग ने यह सोचकर कि यह पुरुष सत्य युग के उपयुक्त गुणों से युक्त है और अधिक काल तक मुझ में रहने के योग्य नहीं है, सब शुभ मनोरथों से तो उसे नहीं हर लिया?

गुणानपेक्षेण निजप्रभुत्वं कालेन किं दर्शयितुं हृतः सः।
नृदेहभाक् प्राक्तनकर्मयोगात् पुनः प्रपन्नः प्रकृतिं निजां वा॥ ७॥

क्या कहीं काल ने जो गुणों की अपेक्षा नहीं करता, अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए तो उसे

नहीं हर लिया ? क्या कहीं वह अपने पूर्वकालीन कर्मों के योग से मनुष्य शरीर को पाकर फिर अपनी प्रकृति को तो प्राप्त नहीं हो गया ?

संदेहदोलामधिरूढमेवं मनो न निश्चेतुमलं मदीयम् ।
चित्रं निगूढं चरितं विधातुर्वेत्तुं क्षमः को वद मानुषो ऽस्मि ॥ ८ ॥

इस प्रकार सन्देह के हिंडोले पर आरूढ मेरा मन कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता । विधाता का चरित्र विचित्र और अत्यन्त गूढ़ है उसे जानने को कौन मनुष्य समर्थ है ?

दिनानि पूर्वं कतिचित्स आसीदसंहताम्मन्नयनोत्सवाय ।
स्मृतेस्स पन्थानमितो ऽधुना तत् कथं विधेः स्याल्लषितं प्रमेयम् ॥ ९ ॥

कुछ दिन पहले जो हमारे नेत्रों को आनन्द देने वाला था वह अब यहाँ से स्मृति के पथ में पहुंच गया । विधाता की इच्छा क्योंकर जानी जा सकती है ?

तातगेहवसतिर्विमानिता संश्रितश्चरम एव चाश्रयः ।
धर्मतत्त्वपरिबोधने रतस्तेन सोढमपि दुर्वचो नृणाम् ॥ १० ॥

उसने पिता के घर की अवहेलना कर के संन्यासाश्रम का आश्रय लिया, वह धर्म के तत्त्व को जनाने में लगा रहता, उसने मनुष्यों के दुर्वचनों को भी सहन किया ।

स्वं विहाय मुहुरुच्छ्रितं पदं वारिदः श्रयति वाहिनीतटम् ।
केवलं परहिते कृतश्रमा लाघवं न गणयन्ति सज्जनाः ॥ ११ ॥

जैसे मेघ अपने ऊंचे पद को छोड़कर वारवार नदी के तट का आश्रय लेता है ऐसे ही परहित के लिए परिश्रम करने वाले सज्जन अपने अपमान का विचार नहीं करते ।

यः पाखण्डमतैकखण्डनरतो वेदाख्यशास्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि ।
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भान् समारोपय-
द्दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥ १२ ॥

जो वेद नामक शुभ शास्त्रों से पाखण्ड मतों के खण्डन में निरन्तर लगा हुआ था, जिस की युद्ध में शास्त्रों की बलवती सेना सेवा करती थी , जिस ने सत्पक्ष और सभाओं के मिष से दिशाओं में विजय का स्तम्भ स्थापित किया था । अब उसके समान पुरुष कहाँ मिल सकता है ?

एक एव खलु पद्मिनीपतिरेक एव दिवि शीतदीधितिः ।
एक एव च स वेदविद्भुवि द्वित्वमत्र न कदा श्रुतं मया ॥ १३ ॥

पद्मिनी का पति (सूर्य) एक ही है, आकाश में एक ही चन्द्रमा है । ऐसे ही पृथ्वी पर वेद के जानने वालों में वह अकेला था, मैंने इस विषय में दूसरे के अस्तित्व को कभी नहीं सुना ।

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः ।
यात एष तु सकृत्सदग्रणीर्बोभवीति विषयो न नेत्रयोः ॥ १४ ॥

सूर्य भी फिर दृष्टिगोचर होता है, आकाश में चन्द्रमा भी फिर दिखाई देता है परन्तु यह सत्पुरुषों का अग्रणी एक बार जाकर फिर नेत्रों का विषय नहीं होगा ।

इन्द्रियार्थोद्भवं ज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम् ।
तच्च्युतस्स महात्मातः स्मृतावेव निधीयताम् ॥ १५ ॥

इन्द्रिय और अर्थों से उत्पन्न ज्ञान सर्वथा प्रमाणिक नहीं होता । इसीलिये वह महात्मा उस से प्रथक् हो गया, अब उसे स्मृति में ही रखिये ।

संस्कृता भारती येन वृद्धिं यायादनारतम् ।
तस्य नामामरं च स्यादित्येतद् व्यवसीयताम् ॥ १६ ॥

जिस से संस्कृत वाणी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो और उसका नाम अमर हो, ऐसा यत्न करना चाहिये ।

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च ।
साधूनां मरणात्पश्चादभिधानं तु जीवति ॥ १७ ॥

ऋषि, कवि और विद्वान् सब लुप्त हो गये, साधुओं की मृत्यु के पीछे उन का नाम ही जीवित रहता है ।

को नाम श्रीदयानन्दात्साधीयान् दृश्यते जनः ।
उज्जीवितार्षविद्या येनास्माभिर्निरपेक्षिता ॥ १८ ॥

श्री दयानन्द के समान साधुपुरुष कौन दीखता है जिसने हम से उपेक्षा की गई आर्ष विद्या को पुनर्जीवित किया ।

सैवैषा नीयतां पुष्टिं स्वकीयहितवृद्धये ।
शास्त्रतत्त्वावबोधेन यूनां संस्क्रियतां च धीः ॥ १९ ॥

उस आर्ष विद्या की अपने हित की वृद्धि के लिए पुष्टि करो, शास्त्र के तत्वज्ञान से युवकों की बुद्धि संस्कृत करो ।

(अन्तर्लापिका)

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधिति-
धर्मः परः कः कवि वाचि कः स्थितः ।
का कण्ठभूषा न यमाद्बिभेति कः,
स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी ॥ २० ॥

१—सूर्य पद्मिनी का कौन है ? २—परम धर्म कौन सा है ? ३—कवी की वाणी में कौन स्थित है ? ४—कण्ठ का भूषण क्या है ? ५—यम से कौन नहीं डरता ?

इनके उत्तर क्रमशः यह हैं । १—स्वामी, २—दया, ३—आनन्द, ४—सरस्वती, ५—यमी ।

ऋषि के कुछ वस्त्र आदि आर्यसमाज मेरठ शहर में थे । खेद है कि उक्त आर्यसमाज ने उन्हें बेच दिया । उनका जूते का जोड़ा और एक हुलासदानी पड़ी रह गई थी । जूते का जोड़ा तो असावधानी से गुम हो गया, हुलासदानी जन्म-शताब्दी पर प्रदर्शिनी में रक्खी गई थी ।

परिशिष्ट संख्या १

जन्मस्थान और नाम

भगवान् दयानन्द का जन्म संवत् १८८१ वि० में काठियावाड़ प्रदेश के अन्तर्गत मोरवी राज्य के एक ग्राम में हुआ था। उनके जन्मस्थान के विषय में निश्चित रूप से हम इतना ही कह सकते हैं। वह संन्यासी थे और संन्यासियों का यह व्रत होता है कि वह अपने आदि नाम और जन्मस्थान को प्रकट न करें। उन्होंने अपने स्वलिखित जीवन-चरित में यह भी कहा है कि गुजरात के लोगों में मोह अधिक होता है और यदि उनके कुटुम्बियों को उनका पता लग जायगा तो वह उनके कार्य्य में बाधा डालेंगे। सम्भवतः यही दो कारण उनके अपना नाम और जन्मस्थान छिपाने में थे। इनके अतिरिक्त यदि और भी कोई कारण रहा हो तो हमें ज्ञात नहीं। यह बात भी कि उनका जन्मस्थान मोरवी राज्य के अन्तर्गत था स्वलिखित जीवनचरित में लिखी है और इसी लिये हम उसे निश्चित और असन्दिग्ध समझते हैं।

काठियावाड़ में राजकोट और मोरवी प्राञ्चलवासियों में अनेक लोगों का यह विश्वास है कि भगवान् का जन्म जडेश्वर महादेव के मन्दिर के निकट वर्त्ती किसी छोटे से ग्राम में हुआ था। कइयों का मत है कि उनका जन्मस्थान टाना ग्राम था और कई कहते हैं कि उन्होंने सज्जनपुर अथवा जीवापुर ग्राम में जन्म लिया था और कोई उस पुण्य-भूमि का नाम मिताना बताते हैं। परन्तु हमारी सम्मति में इनमें से किसी को भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता। मिताना में एक भी घर औदीच्य ब्राह्मणों का नहीं है और भगवान् ने औदीच्य ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था, इसलिए जो लोग उस ग्राम को इस कीर्त्ति का अधिकारी बनाना चाहते हैं उनका प्रयास वृथा है। बात यह है कि जब किसी महापुरुष का जन्म-स्थान सुनिश्चित रूप से निर्धारित नहीं होता तो उसके विषय में इसी प्रकार का मतभेद होजाया करता है। यूनान के महाकवि होमर के जन्मस्थान होने का सात भिन्न २ गावों की ओर से दावा किया जाता है। महापुरुषों के जीवनचरित्र-लेखक उनके ग्रन्थों के व्याख्या-कर्त्ता अथवा उनके अनुयायी तुच्छ से तुच्छ घटना वा घटना-सादृश्य की भित्ति पर अनुमान और कल्पना-

का विशाल मन्दिर खड़ा कर देते हैं। भगवान दयानन्द के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी ऐसाही हुआ है। घटनासादृश्य के कारण ही लोगों ने प्रागुक्त ग्रामों को उनका जन्मस्थान कहना आरम्भ किया है। यह स्पष्ट ही है कि भगवान् काठियावाड़ और ब्राह्मण के कुलोत्पन्न थे क्योंकि इतना यह स्वलिखित जीवनी में स्वयं हमको बता गये हैं। जडेश्वर महादेव का मन्दिर काठियावाड़ में बड़ा प्रसिद्ध है। उसके पास ही जीवापुर है। जीवापुर का एक ब्राह्मण-पुत्र भी घर छोड़ कर निकल गया था और काशी में जाकर संन्यासी होगया था। ऐसे ही टाना भी जडेश्वर के मन्दिर के निकट ही है। वहां के भी एक ब्राह्मण कुमार ने संसार से विरक्त होकर काशी में संन्यास ग्रहण करके अद्वैताश्रम नाम धारण किया था और काशी में रहने वाले गुजराती संन्यासियों के बीच में उसने ख्याति और प्रतिपत्ति प्राप्त की थी। इन दोनों ब्राह्मण कुमारों के गृहत्याग करने और काशी में जाकर संन्यास ग्रहण करने की कथा जडेश्वराञ्चल में बहुत प्रसिद्ध है। घटनासादृश्य के कारण वहां के रहने वालों ने यह अनुमान कर लिया कि भगवान् दयानन्द ने जडेश्वर के मन्दिर के निकटवर्त्ती किसी छोटे से ग्राम में जन्म लिया था और वह भी घर से निकलकर अध्ययनार्थ काशी चले गये थे और उनका जन्मस्थान टाना, मिताना, जीवापुर, अथवा सज्जनपुर था। परन्तु उनका यह अनुमान असत्य है। इन स्थानों में से कोई भी भगवान् की जन्मभूमि नहीं था।

दयानन्द मोरवी राज्य के रहने वाले थे, भगवान् ने स्वरचित आत्मचरित के एक स्थल में लिखा है "मैंने मोरबी राज्य के अन्तर्गत एक नगर में जन्म ग्रहण किया था"। यही बात उन्होंने एक अन्य अवसर पर मोरवी राज्य के समीप राजकोट नगर में महाराजा मोरवी से कही थी। उक्त महाराजा के दीवान ने एक पत्र में जिसका आवश्यक भाग नीचे उद्धृत किया जाता है लिखा था * "His Highness had the pleasure to attend a lecture delivered by Swami Dayanand Saraswati in 1875 in Rajkot. After the lecture the Swamiji met His Highness and in the course of conversation told his Highness that he was born in his state and was his subject."

इसका अभिप्राय यह है कि महाराजा साहब स्वामी दयानन्द सरस्वती के एक व्याख्यान में गये थे जो उन्होंने सन् १८७५ में राजकोट में दिया था। व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी महाराजा साहब से मिले थे और उनसे वार्तालाप के बीच में कहा था कि मैंने मौरवी के राज्य में जन्म लिया था और मैं आपकी प्रजा हूँ। इस पत्र के पढ़ने के पश्चात् इसमें कोई संशय नहीं रहता कि भगवान् दयानन्द मोरवी राज्य के रहने वाले थे।

परन्तु पूना नगर में एक व्याख्यान में अपना जीवनचरित वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था कि "मैंने ध्राङ्गध्रा राज्य के सीमान्तवर्ती एक नगर में जन्म लिया था" इस कारण कोई २ यह मानते हैं कि उनका जन्म टङ्कारा ग्राम में हुआ था। टङ्कारा ग्राम अपेक्षाकृत बड़ा है और मोरवी और ध्राङ्गध्रा राज्य के सीमान्त पर अवस्थित है।

* यह पत्र मोरवी के दीवान ने स्वर्गीय बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को लिखा था
—संग्रहकर्त्ता.

श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास का जो बड़ौदा राज्य में विद्याधिकारी पद पर आरूढ़ थे कथन है कि बातों बातों में स्वामीजी ने मुझसे कहा था कि मैंने बांकानेर के सीमान्त स्थित किसी स्थान में जन्म लिया था"

इन तीनों उक्तियों में बहुत बड़ा पार्थक्य दिखाई देता है, कहां मोरवी, कहां ध्राङ्गध्रा और कहां बांकानेर ? ऊपर की दृष्टि से पार्थक्य अवश्य है, परन्तु वास्तव में पार्थक्य नहीं है क्योंकि एक अर्थ में बांकानेर को ध्राङ्गध्रा कहा जा सकता है। काठियावाड़के हरएक इतिहासज्ञ को यह बात ज्ञात है कि ध्राङ्गध्रा राजकुल के एक सदस्य ने ही बांकानेर का राज्य स्थापित किया था। अतः बांकानेर को ध्राङ्गध्रा राज्य का एक अंश कहा जा सकता है और उसे ध्राङ्गध्रा कहने में मूलतः कोई दोष नहीं है। इसलिए जो बात उन्होंने पूना के व्याख्यान में कही थी और श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास से कही वह दोनों वास्तव में एक ही हैं। ऐसे ही जो कुछ उन्होंने स्वलिखित आत्मचरित में अथवा महाराजा साहब मोरवी से कहा उसमें और जो कुछ श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास से कहा उसमें कोई असामञ्जस्य नहीं है, क्योंकि बांकानेर की सीमा जहां समाप्त होती है उसी स्थान से मोरवी राज्य आरम्भ होता है। इसलिए मोरवी राज्य की सीमा पर जो स्थान हो चाहे वह मोरवी राज्य के ही अन्तर्गत हो उसे बांकानेर का सीमान्तवर्त्ती स्थान कहा जा सकता है और ऐसा कहने से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि भगवान् ने मोरवी राज्य में जन्म ग्रहण नहीं किया था।

जैसा हम पहले कह आये हैं भगवान् का यह भाव था कि मैं अपनी जन्मभूमि के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ न कहूंगा परन्तु इसके साथ ही मिथ्या भी नहीं कहूंगा। अपने जन्मस्थान के विषय में लोगों को संशयजाल में आच्छन्न रखने के भाव से ही उन्होंने एक ही बात को भिन्न २ प्रकार से वर्णन किया। इससे तो यह सिद्ध होता है कि वह अपने जन्म-स्थान को गुप्त रखने में बहुत सावधानी से काम लेते थे। परन्तु यह सिद्ध नहीं होता कि उनकी एतद्विषयक उपरोक्त उक्तियाँ एक दूसरे के विरुद्ध हैं। इसे वचनकौशल भले ही कहा जाय परन्तु उसमें मिथ्यात्व वा कपट का लेशमात्र भी नहीं है, न किसी असत् अभिप्राय से उसका अवलम्बन किया गया था।

कई लोगों का यह मत है कि भगवान् का जन्म मोरवी राज्यान्तर्गत रामपुर ग्राम में हुआ था। परन्तु यह विश्वास भ्रमयुक्त है। मोरवी राज्य में दो रामपुर हैं, एक छोटा दूसरा बड़ा। छोटे रामपुर में तो कोई औदीच्य ब्राह्मण बसता ही नहीं है और स्वामीजी औदीच्य ब्राह्मण थे। अतः छोटा रामपुर उनका जन्मस्थान हो ही नहीं सकता। बड़े रामपुर में औदीच्य ब्राह्मणों के घर अवश्य हैं परन्तु वह सबके सब यजुर्वेदी हैं और स्वामीजी सामवेदी थे जैसा उन्होंने स्वरचित आत्मचरित में लिखा है अतः बड़ा रामपुर भी उनकी जन्मभूमि होने के गौरव से गर्वान्वित नहीं हो सकता। दूसरे यह बात है कि छोटे वा बड़े रामपुर में से कोई भी बांकानेर का सीमान्तवर्त्ती नहीं है।

श्री महाराज का जन्मस्थान टङ्कारा ही था।

अब यह देखना चाहिये कि भगवान् ने अपने लिखे हुए आत्मचरित में कोई ऐसा निदर्शन दिया है कि नहीं जिसके अनुसार खोज करने से हम किसी स्थानविशेष पर अङ्गुली

रख सकें कि यह इस अलौकिक यश का भागी है, यह वह पुण्यभूमि है जहां से महाराज की मानवी लीला का आरम्भ हुआ। जिन्होंने उस आत्म-चरित की गहरी दृष्टि और सूक्ष्म भाव से आलोचना की होगी उन्होंने देखा होगा कि इस विषय में उसमें दो निदर्शन वा सङ्केत विद्यमान हैं।

प्रथम निदर्शन तो यह है कि महाराज का जन्मस्थान कोई क्षुद्र ग्राम नहीं था, बल्कि नगर था। एक स्थल पर यह शब्द हैं कि "मैंने मोरवी राज्यान्तर्गत किसी नगर में जन्म ग्रहण किया था"। इससे आगे एक और स्थल पर उन्होंने अपनी जन्मभूमि का नगर के नाम से उल्लेख किया है। शिवरात्रि का व्रत धारण करके जब वह व्रत के उद्यापन के लिए एक शिवालय में गये तो वहां का वर्णन करते हुए लिखते हैं "हमारे नगर के बाहर शिव का एक विशाल मन्दिर था" इत्यादि। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि भगवान का जन्मस्थान एक नगर था।

दूसरा निदर्शन यह है कि जब महाराज ने विद्योपार्जनार्थ काशी जाने का प्रस्ताव किया था तो उनकी माता ने उसका अत्यन्त विरोध किया था और उनके काशी जाने के सङ्कल्प को रोका, तब उन्होंने हताशचित होकर अपने पिता से यह कहा था कि "हमारी जमादारी के ग्राम विशेष में जो अमुक अध्यापक रहते हैं उसके पास अध्ययनार्थ जाने की अनुमति दे दीजिए"। यहां जमादारी नहीं बल्कि जमेदारी शब्द होना चाहिए। मराठी भाषा में जमेदार राजकर उगाहने वाले को कहते हैं। आत्मचरित में उन्होंने यह भी लिखा है कि 'हमारे पिता जमादार (अर्थात् जमेदार वा राजकर-संग्रहकर्त्ता) थे"। सम्भवतः उनके पिता उसी नगर के जमेदार थे, उसी के आधीन कुछ ग्राम भी थे और उन ग्रामों से करसंग्रह करने का कार्य्य भी भगवान् के पितृदेव को ही सौंपा हुआ था।

उपर्य्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्टतया सिद्ध हो जाती है कि भगवान् के पितृदेव का निवासस्थान एक नगर था और वह परगने वा ताल्लुक का सदर मकाम था। जैसे एक परगने वा तहसील वा ताल्लुक के अधीन बहुत से ग्राम होते हैं वैसे ही जमेदारी के अधीन भी कई ग्राम होते हैं।

उपर्य्युक्त निदर्शनों से यह भले प्रकार प्रमाणित होगया कि श्रीमहाराज के जन्मस्थान होने का सौभाग्य एक नगर को प्राप्त था और वह नगर जमेदारी का सदर मक़ाम था और उनके पिता उसके जमेदार थे। इनसे यह पता भी लग गया कि उस नगर के समीप एक शिवमन्दिर भी था और यही भी ज्ञात होगया कि वह मोरवी राज्य के सीमान्त पर स्थित था। अब हमें यह देखना है कि मोरवी राज्य में कोई ऐसा स्थान है भी या नहीं जिसमें यह सब गुण मिलते हों। यदि हम ऐसे स्थान को ढूंढ निकालने में कृतकार्य्य हो गये तो फिर बिना सङ्कोच के कह सकेंगे कि वही श्रीमहाराज का जन्म स्थान है। मोरवी राज्य के अन्तर्गत केवल एक ही स्थान ऐसा है जो इन सब गुणों से विशिष्ट है। टङ्कारा एक नगर वा क़स्बा है, वह जमेदारी का सदर मक़ाम भी था, उसके पास एक शिवमन्दिर भी है जो बस्ती से बाहर है और और वह मोरवी राज्य की सीमा पर भी स्थित है। अतः हम बिना किसी भय के कह सकते हैं कि श्रीमहाराज की जन्मभूमि टङ्कारा ही है।

भगवान् दयानन्द ने आत्मचरित आर्य्यभाषा में लिखा था और फिर अंगरेज़ी में अनुवादित

हो कर थियोसोफिस्ट (Theosophist) में छपा था। आर्य्य भाषा में जो आत्मचरित मिलता है वह उसी अंगरेज़ी अनुवाद का अनुवाद है। उसमें नगर शब्द टाउन (Town) शब्द का अनुवाद किया गया है, परन्तु हम नहीं कह सकते कि आर्य्यभाषा के असली आत्मचरित में क्या शब्द था जिसका अंगरेज़ी में टाउन शब्द से अनुवाद किया गया है? यह पता नहीं लग सकता कि आर्य्यभाषा के असली आत्मचरितका क्या हुआ और कहां गया? सुनते हैं वह परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है, परन्तु कई बार यत्न करने पर भी उक्त सभा के किसी कर्म्मचारी वा अधिकारी ने कुछ भी पता नहीं दिया। कुछ कर्म्मचारियों ने तो यह कह दिया कि हमने उसे कभी आंख से देखा ही नहीं। सभा के सहकारी मन्त्री ने एक बार अवश्य कहा था कि असली आत्मचरित की पाण्डुलिपि सम्भवतः है तो सही और उसके ढूंढने का वचन भी दिया था, परन्तु यह ज्ञात नहीं कि उन्होंने उसके विषय में कोई अनुसन्धान किया कि नहीं और वह मिली कि नहीं। स्वामीजी के जीवनचरित के सम्बन्ध में जो वस्तु सब से अधिक मूल्यवान और सब से अधिक प्रामाणिक थी उसके सुरक्षित रखने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इससे अधिक दुःख की और क्या बात हो सकती है।

अस्तु फ़र्रुखाबाद से बहुत वर्ष पूर्व आर्य्यभाषा में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम था "स्वामी दयानन्द की कुछ दिनचर्य्या"। उसमें आत्मचरित का भी कुछ अंश प्रकाशित हुआ था। जिसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि असली आत्मचरित से लिया गया है अथवा अंगरेज़ी अनुवाद का अनुवाद है। उसमें (Town) टाउन शब्द की जगह अरबी का 'क़स्बा' शब्द है। क़स्बे के अर्थ हैं बड़ा ग्राम जहां हाट, बाज़ार, थाना, डाकघर आदि हों। अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कोष वैब्सटर्स डिक्शनरी (Webster's Dictionary) में टाउन (Town) शब्द के अर्थ यह हैं "A place larger than a village" अर्थात् जो स्थान ग्राम की अपेक्षा बड़ा हो उसे टाउन कहते हैं। अतः क़स्बा और टाउन समानार्थवाची हैं। यद्यपि कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ जैसे बड़े नगरों को भी Town कह सकते हैं परन्तु बहुत करके उन्हें सिटी शहर (City) कहते हैं। अतः महाराज के जन्मस्थान को क़स्बा कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मोरवी में कोई स्थान ऐसा नहीं है जिसे वास्तविक अर्थों में 'सिटी' कहा जा सके। इससे सिद्ध होता है कि स्वामीजी का जन्मस्थान मूल आत्मचरित में किसी ऐसे शब्द से अभिहित किया गया था जिसके अर्थ क़स्बा के थे। इन सब विचारों को सामने रखकर हम यह निष्कर्ष निकालने में भूल नहीं करते कि उनका जन्मस्थान प्रथम क़स्बा था, दूसरे उसके अधीन कुछ ग्राम थे और तीसरे वह बांकानेर वा मोरवी राज्य का सीमान्तवर्त्ती था।

अब यह देखना चाहिए कि मोरवी राज्य के अन्तर्गत कौन २ से ऐसे स्थान हैं जिन्हें क़स्बा (Town) कहा जा सकता है। मोरवी राज्य में तीन वा चार ही ऐसे स्थान हैं जो क़स्बा वा नगर शब्दवाच्य हो सकते हैं, मोरवी, मवानिया, टङ्कारा और तेजपुर। परन्तु इन में से सिवाय टङ्कारा के कोई भी बांकानेर राज्य के सीमान्त पर स्थित नहीं है। टङ्कारा ही केवल ऐसा स्थान है जिसमें उपर्युक्त तीनों लक्षण पूर्णतया घटते हैं। टङ्कारा क़स्बा है, इसका सब से पुष्ट प्रमाण तो प्रत्यक्ष प्रमाण ही है। कोई मनुष्य भी उसे देखकर क्षुद्र ग्राम नहीं कह सकता, वह बहुत बड़ा स्थान है और सर्वथा क़स्बा शब्द से अभिहित होने के योग्य

है। दूसरे इसका लिखित प्रमाण भी उपस्थित है। टङ्कारा को सन् १८३४ में मोरवी के ठाकुर साहब जियाजी बावजी ने सुन्दरजी शिवजी के पास ६ लाख कोरी वा ३॥ लाख रुपये में बन्धक (रहन) रक्खा था और एक बन्धक-पत्र (रहननामा) लिखा दिया था। उस रहन नामे में टङ्कारा को कस्बा शब्द से वर्णन किया गया है। दूसरी बात भी अर्थात् यह कि टङ्कारा के अधीन कुछ ग्राम थे उसी रहननामे में लिखी हुई है। उसमें टङ्कारा को ताल्लुक कहा गया है और यह लिखा है कि टङ्कारा ताल्लुक ६ ग्राम सहित सुन्दरजी शिवजी के पास रहन किया जाता है। काठियावाड़ एजेन्सी (Agency) आफिस की रिपोर्टों में भी टङ्कारा ताल्लुक का उल्लेख किया जाता है। टङ्कारा में तीसरा लक्षण भी मिलता है। बांकानेर और मोरवी राज्य की सीमा जडेश्वर महादेव के मन्दिर पर्य्यन्त है और टङ्कारा जडेश्वर के मन्दिर से पश्चिम की ओर अढ़ाई तीन कोस की दूरी पर स्थित है। अत: उसे बांकानेर का सीमान्तवर्त्ती स्थान कहने में कोई दोष नहीं है। टङ्कारा का पूर्वी द्वार बांकानेर-द्वार कहलाता है।

टङ्कारा के क़स्बा होने के अन्य भी कई प्रमाण मिलते हैं। मोरवी अञ्चल के बहुत से वृद्ध पुरुष जानते हैं कि एक समय में टङ्कारा समृद्ध, सम्पन्न, जनपूर्ण और वाणिज्यस्थल था। सन् १८७१ में मोरवी राज्य की प्रथम जनसंख्या हुई थी। उस समय टङ्कारा में ४९०३ स्त्री-पुरुष निवास करते थे। सन् १८८१ में टङ्कारा की जनसंख्या ५७२४ थी *। ऐसा सुनने में आया है कि किसी समय में टङ्कारावासियों की संख्या ८००० थी। उसकी समृद्धि भी बहुत बड़ी थी और उसमें अच्छे धनाड्य, सम्पन्न और साहूकार लोग रहते थे। भगवान् दयानन्द के पिता की गणना भी साहूकारों में थी और वह उच्चकोटि के सम्पन्न और सम्भ्रान्त लोगों में थे। उनके अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण गृहस्थ भी धनवान् और सम्पत्तिशाली थे। वह इस समय के ब्राह्मणों के समान निःस्व और निरक्षर नहीं थे और न आजकल के टङ्कारावासी ब्राह्मणों के समान भिक्षोपजीवी ही थे। वह पुण्यार्थ दी हुई जागीरों को भोगकर सुख से दिनपात करते थे और दान-दक्षिणा द्वारा भी उनके पास धन का अच्छा आगम होता था। उनका अधिक समय पूजा-पाठ, होम-याग, सन्ध्या-गायत्री आदि में अतिवाहित होता था। उनमें से अनेक तेजस्विता, शूरता, वीरता आदि गुणों से भी अलंकृत थे। वह अस्त्र धारण करके "मुल्कगिरी" फौज † के आक्रमणों से अपने धन-धान्य और घर-बार की

* काठियावाड़ गज़ेटियर पृ० ६६३

† मुल्कगीरी फ़ौजः—जब कभी काठियावाड़ के राजाओं से कर प्राप्त करना कठिन होजाता था तो मुग़ल शासक सेना भेज कर बलात् कर वसूल करते थे। जब मुग़लों के शासन अस्त होने पर काठियावाड़ में मरहठों के प्रभाव का सूर्य उदय हुआ तो मरहटा शासक गण ने उसी प्रथा का अनुकरण किया। जो सेना कर उगाहने जाती थी वह जब तक सब कर वसूल न होजाता था लूटमार करती रहती थी, उस सेना का नाम 'मुल्कगीरी फ़ौज' था। इस सेना के अत्याचार बड़े भयङ्कर होते थे। यदि उसके मार्ग में कोई रुकावट डालता वा प्रतिरोध करता था तो उसके उत्पीड़नों की कोई सीमा न रहती थी। वह शस्य परिपूरित क्षेत्रों को नष्ट कर देती थी। लोगों के चौखट, किवाड़ तक उखाड़ कर ईंधन की जगह जलाती और अपनी रोटी पकाती थी। उसके अमानुषिक अत्याचारों से राजा और प्रजा दोनों ही क्षुण्ण और भीतचित्त रहते थे। इन अवर्णनीय अत्याचारों से काठियावाड़ की रक्षा करने

रक्षा करते थे। कई वार उन्होंने इस फ़ौज को युद्ध में परास्त किया था और उसके पाशविक अत्याचारों से टङ्कारावासियों को मुक्त किया था। उस समय टङ्कारा में वाणिज्य की व्यवस्था भी अच्छी थी। उसके बाजार व्यापारियों के आने जाने से सदा ही जनपूर्ण रहते थे और दुकानें माल से डटी रहती थीं। कोई वस्तु वहां दुष्प्राप्य नहीं थी। जो वस्तु मोरवी में नहीं मिलती थी वह टङ्कारा में सुलभतया प्राप्त हो जाती थी।

उपर्य्युक्त बातों पर दृष्टि रखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भगवान् दयानन्द का पृथिवी पर अवतरण टङ्कारा ही में हुआ था। जो लोग उनका जन्मस्थान मोरवी वा किसी अन्य ग्राम को बताते हैं वह भूल करते हैं।

इस बात के कि टङ्कारा ही महाराज की जन्मभूमि थी और भी कई प्रमाण मिलते हैं।

राजकोट एजेन्सी आफ़िस के हेडक्लर्क श्री राव बहादुर विट्ठलराव ने अपने एक पत्र में लिखा था:—

I and my grandfather had the pleasure of seeing Swami Dayanand at the Didwana Civil Station in January 1875 in the Lakhtar Utara. The Swamiji then said in the course of conversation that he was originally a subject of the Morvi State. He said then something about Tankara but I do not remember properly now whether he then said that he was a native of Tankara or Morvi ....He had conversation with the Swamiji for about half an hour at night time........Swamiji was then on his way from Rajkot to Ahmedabad.

इसका अर्थ यह है: "सन् १८७५ के जनवरी मास में डिडवाना के सिविल स्टेशन पर लखतार के उतारे में मुझे और मेरे पितामह को स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शनों का आनन्द प्राप्त हुआ था। तब स्वामीजी ने बातचीत में कहा था कि वह आरम्भ में मोरवी राज्य की प्रजा थे। इसके पश्चात् उन्होंने टङ्कारा के सम्बन्ध में कुछ कहा था, परन्तु मुझे अब ठीक २ स्मरण नहीं है कि उन्होंने यह कहा था कि वह टङ्कारा के रहने वाले थे अथवा मोरवी के। स्वामीजी से हमारा वार्त्तालाप रात्रि के समय लगभग आधे घन्टे तक हुआ था। उस समय स्वामीजी राजकोट से अहमदाबाद जा रहे थे।

इस पत्र से यद्यपि यह सिद्ध नहीं होता कि महाराज का जन्मस्थान टङ्कारा था तथापि यह अवश्य मालूम होता है कि उनका टङ्कारा से कुछ सम्बन्ध अवश्य था, नहीं तो वह टङ्कारा का नाम क्यों लेते?

स्वामीजी महाराज की जाति के एक पुरुष बल्लभजी नामक ने राजकोटवासी श्रीमान्,

---

के उद्देश्य से कर्नल वाकर ने सन् १८०७-८ में एक सुव्यवस्था की जो जमाबन्दी बन्दोबस्त के नाम से प्रसिद्ध है। उसके पश्चात् मुलकगीरी फ़ौज के आक्रमण बन्द होगये और काठियावाड़ में सुश्रृंखला स्थापित होगई।

प्राणलाल सुकुल से कहा था कि "उनके नाम मूलशङ्कर दयाराम दोनों ही थे। इसका कारण यह है कि काठियावाड़ में यह प्रथा है कि पुत्रों और कन्याओं के असली नाम के अतिरिक्त एक प्यार का नाम भी रक्खा करते हैं। भगवान् के पिता का नाम कर्शन (कृष्ण) जी लालजी तिवाड़ी था और वह सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। कहते हैं कि उनका गोत्र गौतम था।* उनका कोई वंशधर न रहा, अतएव उनकी भूमि, घरबार आदि सारी सम्पत्ति उनकी बहिन के वंशधर को मिली थी। अब उनके घर में एक व्यक्ति पोपट नामी ब्राह्मण वास करता है। पोपट के पिता कल्याणजी, कल्याणजी के पिता बोगा और बोगा के पिता मङ्गलजी थे। यह मङ्गलजी उनके उत्तराधिकारी हुए थे"

इसके अतिरिक्त हमें इस विषय में एक और भी प्रमाण उपलब्ध हुआ है। श्रीयुत गणपति केशवराम शास्त्री ने १ सितम्बर सन् १९११ को आर्य्य प्रतिनिधि सभा बम्बई के मन्त्री महोदय को ऋषि दयानन्द के जन्मस्थान, तथा उनके पितृवंश के सम्बन्ध में एक विवरण पत्र लिखा था। वह गुजराती में था। हम उसकी कुछ पंक्तियों का भाषानुवाद नीचे उद्धृत करते हैं:—

"स्वामी दयानन्द औदीच्य ब्राह्मण थे और उनका असली निवास स्थान टङ्कारा था। उनके पिता वहां के कामदार अथवा वैभटदार (स्थानीय शासनकर्त्ता) थे। उस समय टङ्कारा मोरेबा † पन्थ उपनाम भाऊ साहब के ठेके में था।"

इस बात के कि भगवान् दयानन्द का जन्मस्थान टङ्कारा ही था, हमें और भी दो एक प्रमाण हस्तगत हुए हैं। बेडोयान बतोलन वासी एक वृद्ध ब्राह्मण भाईशङ्कर ने कहा था— "दयानन्द टङ्कारा के निवासी थे।" यह बात उक्त ब्राह्मण ने कई वार स्वामी अद्वैताश्रम से सुनी थी, जिनका नामोल्लेख हम पहले कर आये हैं।

खानपुर ग्राम के रहनेवाले जो टङ्कारा से ३॥ कोस है, जोषी गौरीशङ्करदेव कर्शन ने कहा था कि "हमने अपने टङ्कारा वासी मामा से सुना था कि स्वामी दयानन्द टङ्कारा के रहनेवाले थे। वह धर्मशास्त्र पढ़ने के लिये काशी चलगये थे और कुछ काल पीछे उन्होंने एक नया पन्थ वा धर्म्म चलाया था। वह औदीच्य ब्राह्मण थे।"

प्रभुराम आचार्य्य जो उस समय रईपाला ग्राम में रहते थे, आरम्भ में टङ्कारा के रहने वाले हैं। उन्होंने कहा था कि केशरबाई ‡ और प्रेमबाई से हमने सुना था कि "दयाराम टङ्कारा से निकल कर बड़े रामपुर के हनुमान के मन्दिर में एक रात रहे थे। उनका शरीर उन्नत और तेजःपूर्ण था। केशरबाई ने राजकोट में स्वामीजी के दर्शन किये थे। जब वह टङ्कारा लौट आई तो उसने बातों बातों में यह कहा था कि सम्भवतः यही संन्यासी त्रिवाड़ी के घर से निकल कर गये थे और सम्भवतः काशी में पढ़ने के लिये इन्होंने गृह त्याग किया था, उस समय ऐसा ही जनरव था।"

ध्रोल निवासी पण्डित छेलाराम यागेश्वर व्यास ने कहा था कि "हमने अपने पिता

* कर्शनजीलालजी का गोत्र गौतम नहीं बल्कि 'दाल्भ्य' था।

† मोरेबा पन्थ नहीं बल्कि मेंडेल नारायण।

‡ कर्शनजीलालजी त्रिवाड़ी की जाति की कोई वृद्धा स्त्री।

को अनेक बार कहते हुए सुना था कि दयानन्द टङ्कारा के रहने वाले और कर्शनजी त्रिवाड़ी के पुत्र थे।"

टङ्कारा के कोई २ वृद्ध पुरुष यह भी कहते हैं कि जब भगवान् राजकोट में ठहरे हुए थे तो एक दिन वह टङ्कारा गुप्तरूप से अपने घर के दर्शन करने गये थे। यह बात कहां तक सत्य है यह कहना कठिन है, परन्तु संन्यासी परमहंसों में यह प्रथा प्रचलित है कि घरसे निकलने और संन्यास ग्रहण करने के कुछ नियत वर्षों के पश्चात् उन्हें एक बार अपनी जन्मभूमि का दर्शन करना आवश्यक है और यह प्रथा संन्यासियों का एक अवश्यम्पालनीय धर्म्म समझा जाता है। इसलिये यदि दयानन्द ने भी इसका पालन किया हो तो कुछ आश्चर्य्य नहीं है।

पण्डित लेखराम ने भी भगवान् का जन्मस्थान टङ्कारा ही निश्चित किया था।

बम्बई के प्राणजीवन दास कहते हैं कि स्वामीजी ने उनसे कहा था कि उनका जन्म मोरवी नगर के निकट एक ग्राम में हुआ था।

अतः इस में कोई भी सन्देह नहीं रहता कि भगवान् का जन्मस्थान होने की पुण्य-कीर्त्ति टङ्कारा के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान को प्राप्त नहीं हो सकती। यह सौभाग्यश्री केवल उसी की है और इस में कोई दूसरा नगर वा ग्राम भाग लेने का अधिकार नहीं रखता।

भगवान् दयानन्द के पिता कौन थे?

हम उपर लिख आये हैं कि भगवान् दयानन्द के पिता का नाम कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी था। आर्य्यसमाजिक जगत् में यह प्रसिद्ध है कि उनका नाम अम्बाशङ्कर था। स्वर्गीय पण्डित लेखराम ने जो सामग्री ऋषि-जीवन लिखने के लिये एकत्रित की थी वह कितने ही दिन तक अस्तव्यस्त अवस्था में पड़ी रही। घातक की छुरी से सन् १८९६ की छटी मार्च को पण्डितजी का देहावसान हो गया और वह उस सामग्री का उपयोग न कर कर सके। उनकी मृत्यु के पश्चात् उक्त सामग्री के कुछ भाग को पुस्तकाकार में छपवा दिया गया और वही आज पण्डित लेखरामरचित दयानन्द-जीवनी के नाम से प्रसिद्ध है। यह कहना कठिन है कि उसका कितना अंश ग्राह्य और कितना अग्राह्य ठहरता यदि पण्डितजी स्वयं उसके आधार पर ऋषिजीवन-कथा वर्णन करते। अब तो उसका जो भाग प्रकाशित हो गया है उस सब का उत्तरदायित्व पण्डितजी पर ही समझा जाता है। वास्तव में ऐसा समझना न्यायसमन्वित नहीं है। वह तो केवल सामग्री एकत्र कर गये हैं। उस में से केवल उसी को माननीय ठहराना चाहिये जो विश्लेषण, विवेक और तर्क से सत्य सिद्ध हो और अन्य को त्याग देना विवेकी लेखक का कार्य्य है। सारी सामग्री को बिना इतस्ततः के स्वीकार कर लेना कदापि उचित नहीं है। अतः यदि उसमें कोई बात ऐसी मिले जो प्रामाणिक न हो वा जो भ्रान्त प्रतीत होती हो उसके विषय में यह मति स्थिर कर लेना कि वह प्रशंसित पण्डितजी को मान्य थी युक्ति और न्यायसङ्गत नहीं हो सकता और ऐसा करने से हम कभी कभी उनके साथ घोर अन्याय करने के अपराधी हो सकते हैं। उक्त सामग्री-संग्रह में एक स्थान पर लिखा है कि प्रशंसित पण्डितजी से अमृतसर में एक संन्यासी ने कहा था कि ऋषि के पिता का नाम अम्बाशङ्कर था और वह संन्यासी अपने को उनका

सहोदर बतलाता था। इस में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि उसका ऋषि सहोदर होना सर्वथा ही असत्य है और इसलिये उसकी दूसरी बात को भी जब तक उसका पुष्ट प्रमाण न मिले, सहसा स्वीकार कर लेना ठीक नहीं है। सम्भव है कि पण्डितजी के पास उक्त संन्यासी की उक्ति की पुष्टि में अन्य प्रमाण भी रहे हों जिनके कारण उनकी यह धारणा हो गई हो कि संन्यासी ने इस विषय में जो सूचना उन्हें दी थी वह सत्य थी, परन्तु हमारे सम्मुख कोई ऐसा प्रमाण नहीं है और इसलिये केवल इस आधार पर कि पण्डित लेखरामजी की सङ्कलित सामग्री में एक स्थल पर ऋषि के पिता का नाम अम्बाशङ्कर लिखा है इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थिर नहीं करना चाहिये और स्वतन्त्ररूप से खोज करके उनके पिता का वास्तविक नाम जानने का यत्न करना चाहिये।

[स्वर्गीय देवेन्द्र बाबू ने इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान किया है वह बहुत ही प्रशंसनीय है। इस के लिये वह महीनों और वर्षों जगह २ फिरे हैं, अनेक लोगों से मिले हैं, बड़ौदा, मोरवी आदि राज्य के पुराने पत्रों की छानबीन का यत्न किया है, एक से अधिक बार काठियावाड़ की यात्रा की है, जिस सूत्र से भी सम्भव हुआ है, पता लगाने और सत्य को खोज निकालने का प्रयास और परिश्रम किया है और आत्मचरित में दिये हुए निदर्शनों की कसौटी पर हरएक सूचना को जो उन्हें मिली कस कर देखा है और अन्त में उसे ही स्वीकार किया है जो उस पर ठीक उतरी है। उनका निश्चय है कि भगवान् कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी के पुत्र थे। उन्हें टङ्कारा में किसी अम्बाशङ्कर नामक व्यक्ति का पता नहीं लगा जो ऋषि के जन्मकाल में वा उसके आस पास टङ्कारा में वैसा समृद्ध सम्पन्न, उच्चराज्य कर्म्मचारी हो जैसा आत्म चरित में दिये हुए निदर्शनों के अनुकूल ऋषि का पिता होना चाहिये था। किसी सूत्र से भी उन्हें यह पता नहीं लगा कि भगवान् दयानन्द अम्बाशङ्कर के पुत्र थे। — संग्रहकर्त्ता]

कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी में वह सब लक्षण घटते हैं जो स्वामीजी ने अपने पिता के वर्णन किये हैं अर्थात् वह उच्च कोटि के राज्य-कर्म्मचारी, जमेदार वा वैभटदार थे जिनका काम अपने अधीन ग्रामों से राज्यकर संग्रह करना तथा अन्य शासनसम्बन्धी कार्य करना था, जिनके वशवर्त्ती राज्य के कुछ सिपाही भी थे, जो एक अच्छी सम्पत्ति के स्वामी थे, जो साहूकार थे और लोगों को रुपया ऋण पर देते थे, जिनका एक पुत्र घर छोड़कर निकल गया था, जो सामवेदी औदीच्य कुलोद्भव ब्राह्मण थे और जो घोर शैव थे। इनमें से एक बातका अकाट्य प्रमाण भी मिलता है। उन प्रमाणों की उपस्थिति में सिवाय उक्त निश्चय के और किसी निश्चय पर पहुंचना अति दुष्कर है। और यह स्वीकार करना पड़ता है कि स्वामीजी के भौतिक शरीर के जनक कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी ही थे। अतः इसमें सन्देह नहीं रहता कि यह कहना कि ऋषि दयानन्द के पिता का नाम अम्बाशङ्कर था भ्रमपूर्ण है, मिथ्या है. पण्डित लेखराम की सङ्कलित सामग्री के आधार पर आजकल सभी मानरहे हैं कि स्वामी दयानन्द अम्बाशङ्कर के पुत्र थे। जनसाधारण में यह विश्वास क्षन्तव्य होसकता है, परन्तु जीवन वृत्त-लेखकों में नहीं, क्योंकि उनका कर्त्तव्य है कि वह ऐसे अज्ञात और सन्दिग्ध विषयों पर पूरी गवेषणा के पश्चात् अपना मत स्थिर करें। हमें दुःख है कि ऋषि

के चरित-लेखकों ने इस विषय में कोई अनुसन्धान और अन्वेषण नहीं किया और सबने ही इस भ्रान्त कथा को बिना बिचारे ग्रहण करके उसके प्रचार में योग दिया है। इस प्रकार यह भारी भूल विस्तार पाती चलीगई और इसका यह परिणाम हुआ कि क्या आर्य्य-सामाजिक साहित्य में और क्या अन्य साहित्य में स्वामी दयानन्द अपने असली पिताके पुत्र वर्णित न होकर एक दूसरे ही मनुष्य के पुत्र कहलाये जारहे हैं। आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक के पिता के सम्बन्ध में यह महाभ्रम प्रचलित होरहा है और आर्य्यसमाज नीरव है! जो आर्य्यसमाज अन्य असत्यों का प्रतिवाद करने में व्यस्त और बद्धपरिकर है वही आर्य्यसमाज इस घोर असत्य के प्रतिवाद में निश्चेष्ट है।

स्वामीजी के पिता के सम्बन्ध में जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं आत्मचरित में हमें चार निदर्शन मिलते हैं प्रथम वह साहूकार थे, दूसरे वह ज़मींदार थे, तीसरे वह जमेदार थे, और चौथे वह घोर शिवभक्त थे।

अब हमें यह देखना होगा कि टङ्कारा में सामवेदी औदीच्य ब्राह्मणों में उपर्य्युक्त चार लक्षण युक्त कोई पुरुष था वा नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी देखना होगा कि यदि उक्त लक्षणविशिष्ट कोई पुरुष था तो उसका कोई पुत्र गृहत्यागी हुआ था कि नहीं।

इस विषय में जितना अन्वेषण किया गया है उससे यही सिद्ध हुआ है कि टङ्कारा में सामवेदी औदीच्य ब्राह्मणों में केवल एक पुरुष कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी ही ऐसे थे जिनमें यह सब लक्षण पाये जाते हैं।

अब हम एक २ लक्षण को लेकर सिद्ध करेंगे कि कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी इन सब लक्षणों से युक्त थे।

कर्शनजी लालजी साहूकार

कर्शनजी लालजी गोण्डाल के समीपस्थ एक छोटे से ग्राम से एक ब्राह्मण-कुमार मङ्गलजी लीलाधर रावल को टङ्कारा ले आये थे और उसके साथ उन्होंने अपनी कन्या प्रेमबाई का विवाह करदिया था। और जब उनका एक पुत्र गृहत्यागी होगया और अन्य पुत्र मरगये तो उन्होंने अपने वंशविलोप की सम्भावना देखकर अपने जामाता मङ्गलजी को ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर अपना घर-बार, व्यापार और धन-सम्पत्ति सब उसे ही देदी थी। मङ्गलजी के एक पुत्र हुआ जिसका नाम बोगा रावल हुआ। बोगा का पुत्र कल्याणजी और कल्याणजी का पुत्र पोपट प्रभाशङ्कर रावल हुआ। यही पोपट रावल अब कर्शनजी लालजी के घरमें रहते और उनके दौहित्र के वंश की रक्षा करते हैं।

इन पोपट रावल के पास एक पुरानी खाता वही देखी गई थी जो कर्शनजी लालजी के लेनदेन की बही थी। उसके देखने से ज्ञात हुआ कि उनका लेनदेन बहुत विस्तृत था। उसके एक स्थल में लिखा है कि पौष सुदि ८ संवत् १८५८ को उन्होंने बगला मेघपुर के ग्रासिया * मनुजी तथा मथुजी गज्जनजी की भूमि १८००० कोरी में गिरो रक्खी थी। दूसरे स्थल में लिखा है कि उन्होंने उसी बगला मेघपुर के उदयसिंहजी बोजाजी की भूमि

* ग्रासिया शब्द ग्रास से निकला है। ग्रास के अर्थ हैं अन्न ग्रासा जिसे ग्रास अर्थात् ग्राम व भूमि दी जाय उसे ग्रासिया कहते हैं।

सम्वत् १८७३ में १॥-) सैंकड़ा व्याज पर १५०० कोरी में बन्धक रक्खी थी। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि कर्शनजी लालजी एक धनाढ्य पुरुष थे जो लोगों को सहस्रों रुपया ऋण दे सकते थे और एक अच्छे साहूकार थे।

कर्शनजी लालजी ज़मींदार

पूना में अपना जीवनवृत्त वर्णन करते हुए भगवान् ने कहा था "हमारी विस्तृत भूसम्पत्ति थी"। इससे सिद्ध होता है कि उनके पिता ज़मींदार थे। काठियावाड़ में ज़मींदार शब्द प्रचलित नहीं है। जिसे अन्य प्रान्तों में ज़मींदार कहते हैं इसे काठियावाड़ में 'ग्रासिया' कहते हैं। अतः कर्शनजी लालजी ग्रासिया थे।

जामनगर राज्य के जोड़िया ताल्लुक में एक ग्राम है जिसका नाम कौशिया है। वहां यह बात अब भी प्रसिद्ध है कि कर्शनजी लालजी कौशिया के ग्रासिया थे। कौशिया के कुछ भाग का अब तक भी कर्शनजी लालजी के भागिनेय के वंशधर भोग करते हैं। कर्शनजी की दो बहिनों का विवाह जामनगर राज्य के अन्तर्गत हरियाना ग्राम में हुआ था। कर्शनजी लालजी ने पौष वदि ११ संवत् १८८३ को अपने एक भानजे को ३६ बीघा और दूसरे भानजे को २४ बीघा कौशिया की भूमि का दानपत्र लिख दिया था। यह ६० बीघा भूमि अवतक उनके भानजों के उत्तराधिकारियों के पास चली आती है। कर्शनजी ने कौशिया की कुछ भूमि अपनी विधवा पुत्रवधू मोंगीबाई के भरण-पोषण के लिए भी दान की थी। मोंगीबाई का विवाह उनके छोटे पुत्र वल्लभजी से हुआ था। विवाह के एक मास पीछे ही वल्लभजी का वयःक्रम १४,१५ वर्ष का था। कर्शनजी ने यह सोचकर कि मेरी मृत्यु के पीछे मेरी विधवा पुत्रवधू को उदरपूर्त्ति की चिन्ता न रहे और धनाभाव के कारण वह कष्ट न पावे मोंगीबाई को न केवल कौशिया की भूमि ही दी थी बल्कि कुमारिया मेघपुर, जीवागढ़ और धूरकोट प्रभृति स्थानों में जो उनके शिष्य और यजमान बसते थे उन की वृत्ति भी उन्होंने मोंगीबाई के नाम करदी थी। मोंगीबाई के भतीजे के पुत्र जोड़िया ग्रामनिवासी बालाशङ्कर भीमजी देव कहते थे कि "हमने मोंगी बाई को अनेक बार कहते सुना था कि उसके श्वशुर धनाढ्य पुरुष थे।"

कौशिया की कुछ भूमि कर्शनजी लालजी ने अपने जामाता मङ्गलजी को भी दी थी जो अब तक उनके वंशधर उपर्युक्त पोपट रावल के अधिकार में है। कुछ वर्ष हुए जामनगर के एक दुष्ट पुरुष ने भूमिकर के अधिकारी से शिकायत करके पोपट रावल की भूमि के छिनवाने का यत्न किया था। उक्त अधिकारी ने उनसे यह प्रमाण मांगा था कि उनके पास वह भूमि किस प्रकार आई और उसपर उन्हें स्वत्व रखने का क्या अधिकार है। इस पर उन्होंने ५ फ़र्वरी सन् १९०५ में भूमि करके अधिकारी की सेवा में अपने स्वत्व की रक्षा में जो आवेदन पत्र दिया हम उसके कुछ अंश का गुर्जर भाषा से अनुवाद करके पाठकों की भेट करते हैं।

"मुझ से मेरे पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध में पूछताछ की गई है। मैं प्रकट करता हूं कि मेरा कर्शनजी त्रिवाड़ी से सम्बन्ध है जिसने यह भूमि दान की थी। कर्शनजी के पिता लालजी थे और लालजी हरिभाई त्रिवाड़ी के वंश में थे। कर्शनजी की कन्या मेरे पूर्वज

मङ्गलजी लीलाधर से विवाही थी। मङ्गलजी के पुत्र बोगा रावल थे और बोगा रावल के पुत्र कल्याणजी थे। मैं पोपट रावल उन्हीं कल्याणजी रावल का पुत्र हूं।"

कर्शनजीलालजी जमेदार

ऋषि ने अपने आत्मचरित में लिखा है कि उनके पिता जमादार अर्थात नगर के फ़ौजदार और राजस्व-संग्रहकर्त्ता थे। हम पहले बता आये हैं कि यह शब्द 'जमादार' नहीं वरन् 'जमेदार' होना चाहिए और यह कि जमेदार शब्द मराठी भाषा का है, गुजराती भाषा का नहीं है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मोरवी राज्य के टङ्कारा ताल्लुक में मराठी शब्दों का प्रचार कैसे हुआ ?

हमने जो ऊपर श्रीयुक्त गणपति केशवराम शास्त्री के पत्र का उद्धरण दिया है उससे पाठकों ने जान लिया है कि कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी टङ्कारा के कामदार वा वैभटदार अर्थात् स्थानीय शासनकर्त्ता थे और उस समय टङ्कारा मोरोबा पन्थ उपनाम भाऊसाहब के अधीन था, शास्त्री महोदय के इस कथन में कि टङ्कारा मोरोबा पन्थ उपनाम भाऊसाहब के अधीन था आंशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं है। मोरोबा पन्थ भाऊ टङ्कारा का अधिकारी तो था, परन्तु वह टङ्कारा के तत्कालीन स्वामी गोपाल मेड़ेल नारायण भाऊ का कर्म्मचारी मात्र था। गोपाल मेड़ेल नारायण बड़ौदा के करोड़पति सेठ थे। मोरवी के ठाकुर बाघजी ने जैसा हम पहले लिख चुके हैं टङ्कारा ताल्लुक को सेठ सुन्दरजी शिवजी के पास गिरो रख दिया था और फिर गोपाल मेड़ेल नारायण ने सेठ सुन्दरजी शिवजी को रुपया चुकाकर टङ्कारा पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। नीचे हम बम्बई सरकार के कागज़ात में से कुछ उद्धरण देते हैं जिस से टङ्कारा के इतिहाससम्बन्धी अनेक आवश्यक बातें ज्ञात होती हैं।

"For the first year after Colwalker's settlement (which happened in 1807-1808 A. D.) the management remained in the hands of the Chief. It was then transferred in mortgage for a debt to seth Sunderji Sewji, who held it for some years and then made it over, in Sambat 1868 (A. D. 1811-12) to Mairal Narain, by whom, as a private transaction his claims were discharged; but no final settlement being thus promoted further embarrassment accrued and a new arrangement was made in Sambat 1882 (A. D. 1825-26) under the Government Bhandari, for a fixed period of fifteen years, on the conclusion of which the debt being considered to have been discharged the Taluka is to be restored to the Morvi Chief."*

उल्लिखित उद्धरण का अर्थ यह है कि सन् १८०७-८ में कर्नल वाकर के बन्दोबस्त के पीछे एक वर्ष तक टङ्कारा मोरवी राज्य के शासनाधीन रहा। इसके पश्चात् ऋण के बदले

* Selections from the records of Bombay Government No. XXXIX New Series.

सुन्दरजी श्योजी के पास रहन रक्खा गया *। सुन्दरजी ने कुछ वर्षों तक उसे अपने अधीन रक्खा और संवत् १८६८ में उसे मेड़ेल नारायण † के हवाले कर दिया और उनका जो कुछ दावा टङ्कारा पर था उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार प्रायः ३० वर्ष तक संवत् १८६८ से १८९७ ‡ तक टङ्कारा ताल्लुक बड़ौदा के प्रसिद्ध सेठ गोपाल मेड़ेल नारायण भाऊ के शासनाधीन रहा। इसी कारण टङ्कारा निवासियों के मुख से आज भी "भाऊ का वक्त" यह शब्द सुनने में आते हैं। अतः यह सिद्ध होगया कि जिस समय स्वामी दयानन्द टङ्कारा भूमि को पवित्र करके अवतीर्ण हुए उस समय टङ्कारा भाऊ के शासनाधीन था और उनके पिता कर्शनजीलालजी त्रिवाड़ी भाऊ के समय में ही टङ्कारा के जमेदार थे।

हम इस विषय पर कि कर्शनजी राजकीय कर्म्मचारी थे और भी एक दो प्रमाण उपस्थित करते हैं।

संवत् १८६९ के सम्भवतः वैशाख मास में मालवे के मीना लोगों ने टङ्कारा ताल्लुक के अधीन कागद्री ग्राम को लूटना और वहां अनेक अत्याचार करने आरम्भ किये। इस विद्रोह के निवारण के लिये टङ्कारा से फौजदार नागर निर्भयशङ्कर और कर्शनजी त्रिवाड़ी कागद्री गये। मीना लोगों के युद्ध में निर्भयशङ्कर इस बुरी तरह घायल हुए कि दो तीन दिन के भीतर ही उन की मृत्यु होगई। कर्शनजी को मीना लोग पकड़ कर मालवा ले गये और कारागार में बन्द कर दिया, परन्तु कुछ दिन के पश्चात् उन्हें छोड़ दिया।

इस से प्रमाणित होता है कि कर्शनजी एक उच्च कोटि के राजकर्म्मचारी थे अर्थात् या तो वह स्वयं फौजदार थे अथवा फौजदार के सहकारी थे। यदि ऐसा न होता तो वह निर्भयशङ्कर के साथ मीना विद्रोह के दमनार्थ क्यों जाते ?

कर्नल वाकर के सन् १८०७-८ के जमाबन्दी बन्दोबस्त से पहले मालवा राज्य और मोरवी की बहुत बड़ी शत्रुता थी और दोनों राज्य एक दूसरे को अपमानित और अपदस्थ करने की चेष्टा करते रहते थे। § कागद्री विद्रोह के समान अनेक विद्रोह उपस्थित होते और एक राज्य के उच्च कर्मचारी दूसरे राज्य के उच्च कर्मचारियों के अधीन इलाकों पर आक्रमण करके उन्हें पकड़ कर कैद कर लिया करते थे। कर्शनजी के कागद्री विद्रोह के दमनार्थ जाने और मीना लोगों की कैद में पड़ने से यह सिद्ध होता है कि वह उच्च पदस्थ राजकर्मचारी

* सेठ सुन्दरजी के पास टङ्कारा के रहन किये जाने का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

† सुन्दरजी के पास टङ्कारा मोरवी के राजा ने रहन किया था और फिर सुन्दरजी ने उसे अमरेली के दीवान विट्ठलराव देवाजी के द्वारा मेड़ेल नारायण के पास रहन कर दिया था। उस समय विट्ठलराव देवाजी बड़ौदा राज्य के प्रतिनिधि वा दीवान की स्थिति से काठियावाड़ में रहते थे।

‡ संवत् १८९७ के पश्चात् कुछ समय तक टङ्कारा ठाकुर साहब मोरवी के आधीन रहा, परन्तु मोरवी राज्य से कर प्राप्त न होने के कारण संवत् १८९९ में सरकार ने उसे ज़ब्त कर लिया और जूनागढ़ निवासी नागर मङ्गलजी गौरी शङ्कर को उसका शासक नियत कर दिया।

§ एक बार मोरवी के राजा पृथ्वीराज मालवे के राजा डोसाजी को पकड़ कर मोरवी ले आये थे और उसे कैद में डाल दिया था।

और सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी के राजपदारूढ़ व्यक्ति होने का और भी प्रमाण मिलता है। हम एक बार इस से पूर्व रईशाना निवासी प्रभुराम तेजराम आचार्य्य के पत्र का कुछ अंश उद्धृत कर चुके हैं। उसी पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि "कर्शनजी त्रिवाड़ी दरबारी थे, परन्तु हम यह ठीक नहीं कह सकते कि वह किस पद पर नियत थे तो भी उनके दरबारी होने में सन्देह नहीं है क्योंकि टङ्कारा में दरबार गढ़ के पश्चिमी द्वार के समीप अब भी एक स्थान है जो कर्शनजी के अस्तबल के नाम से प्रसिद्ध है, यह निश्चय है कि यह स्थान दरबारगढ़ के भीतर है और वहां सिवाय दरबारियों के अन्य किसी को घोड़ा बांधने का अधिकार नहीं था और न हो सकता था।" कर्शनजी का निवासगृह टङ्कारा के जीवापुर महल्ले में था और वहां से यह अस्तबल बहुत ही निकट था।

इस से यह भी स्पष्टतया प्रतिपादित होता है कि कर्शनजी राजसंसृष्ट व्यक्ति वा टङ्कारा के जमेदार थे।

कर्शनजी घोर शिवभक्त

ऋषि ने अपने आत्मचरित में यह लिखा है कि "मेरे पिता घोर शैव थे। उन्होंने मुझे भी शिवोपासना का उपदेश दिया था और दस वर्ष की आयु से ही मुझे शिवपूजा करनी सिखाई थी।" एक और स्थल पर उन्होंने लिखा है कि "जहां कहीं भी शिव-पुराण की कथा हुआ करती थी पिताजी मुझे वहां लेजाया करते थे, माता के तीव्र प्रतिवाद करने पर भी वह मुझ से शिवजी की पूजा कराया करते थे।"

कर्शनजी ने टङ्कारा के बाहर थोड़ी सी दूर पर शिवजी का एक मन्दिर भी बनवाया था जिस का नाम कुबेरनाथजी का मन्दिर है। वह अब भी विद्यमान है और प्रागुक्त पोपटजी रावल उनकी पुत्री प्रेमबाई के वंशधर अब भी उसकी सेवा पूजा करते हैं। यह मन्दिर टङ्कारा के राजकोट द्वार से बाहर निकलते ही बांई ओर डेमी नदी के घाट पर दृष्टि-गोचर होता है। जब प्रेमबाई विधवा होगई तो वह अपने जीवन पर्य्यन्त कुबेरनाथजी की सेवा-पूजा करती रही। अब भी जब कभी पोपट रावल दो चार दिन के लिये टङ्कारा से बाहर चले जाते हैं तो सेवा-प्रार्थना का कार्य्य उन की फुआ बेनी बाई करती है।

शिव मन्दिर के निर्माण करने से उज्ज्वलरूप से सिद्ध होता है कि कर्शनजी सातिशय शिवनिष्ठ पुरुष थे।

कर्शनजी के पुत्र का गृहत्याग

टङ्कारा में यह बात प्रसिद्ध चली आती है कि जो ब्राह्मण कुबेरनाथ के मन्दिर के प्रतिष्ठाता थे उनका पुत्र घर से निकल कर चला गया था।

टङ्कारा निवासी कालिदास कर्शनजी एक गौड़ ब्राह्मण थे, वह साहूकार थे और लेन-देन किया करते थे। उनकी माता बहुत वृद्ध थी। उस से ज्ञात हुआ था कि जीवापुर महल्ले में एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण रहते थे जो दरबार में नौकर थे। उनका पुत्र घर बार छोड़ कर चला गया था। इस पर टङ्कारा में बहुत गड़बड़ मची थी। इस से भी यही प्रमाणित होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी का ही पुत्र गृहनिष्क्रान्त हुआ था क्योंकि कर्शनजी त्रिवाड़ी का घर जीवापुर महल्ले में था और वह दरबार में नौकर भी थे तो उपर्य्युक्त वर्णन अन्य किसी व्यक्ति पर नहीं घट सकता।

टङ्कारा में देवचन्द भगवान नामक एक वैश्य निवास करते थे। जिनका देहान्त अब से थोड़े ही वर्ष पहिले हुआ है। उनका जन्म संवत् १८८१ में हुआ था और ऋषि दयानन्द ने भी इसी संवत् में जन्म ग्रहण किया था। उस से उस की आयु प्रायः ९० वर्ष की थी। उसने उन से कहा था "भाऊ के समय में एक ब्राह्मण कर्म्मचारी थे। उनका नाम कर्शनजी त्रिवाड़ी था। उनका घोड़ा दरबार में बँधा करता था। उनका एक पुत्र दयाराम था। वह उन के घोड़े को प्रतिदिन दो बार नदी * पर जल पिलाने लेजाया करता था। दयाराम को लोग दयाल दयाल भी कहा करते थे। फिर वह एक दिन घर छोड़ कर निकल गया"।

इस से भी सिद्ध होता है कि कर्शनजी का पुत्र घर से निकल गया था। इस प्रकार सब के सब निदर्शन जो भगवान के स्वलिखित आत्म-चरित में उनके पिता के सम्बन्ध में मिलते हैं टङ्कारा के कर्शनजीलालजी त्रिवाड़ी में घट जाते हैं। अतः कोई सन्देह नहीं रहता कि कर्शनजीलालजी त्रिवाड़ी ही वह पुण्यश्लोक व्यक्ति थे जिन के घर वेदप्रमाण देशभक्त, योगी भगवान दयानन्द ने जन्म लिया था।

ऋषि का आदि नाम क्या था

उपर्य्युक्त अन्वेषण से सिद्ध होता है कि ऋषि का आदि नाम दयाराम और उप नाम दयाल था। परन्तु लोक में यह प्रसिद्ध है कि उनका आदि नाम मूलशङ्कर था और इस प्रसिद्धि का कारण यह है कि पण्डित लेखराम के नाम से जो दयानन्द जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है उस में मूलशङ्कर ही उनका आदि नाम लिखा है। इस विषय में जो प्रमाण वहां दिया गया है यह है। "पण्डित ज्वालादत्त कान्यकुब्ज और मिस्टर रामदास छबीलदास बैरिस्टर-एट-ला बम्बई और कई दीगर साहब ने जैसे कि ठाकुर मुकन्दसिंह रईस छलेसर की ज़बानी मालूम हुआ कि स्वामीजी का जन्मनाम मूलशङ्कर था। सन् १८७६ के अख़ीर में ब मुकाम देहली जो कैसरी दरबार हुआ था उस में स्वामीजी के डेरे पर चन्द काठियावाड़ के रऊसा भी तशरीफ़ लाये थे। उन्होंने स्वामीजी को मूलशङ्कर नाम से पुकारा था जिन्हें स्वामीजी ने जुदा लेकर मने कर दिया" (बाब १ भाग १ पृ० ३) "महाशय काहनजी कुबेरजी जो सन् १८९२ में बमुकाम टङ्कारा रियासत मोरवी की तरफ़ से कामदार थे बयान करते थे कि उनका एक करीबी चचा मूलशङ्कर नाम संवत् १९०० विक्रमी के करीब ज़माने में घर से भाग गया था। मगर अब उसका या उस की तसवीर का शनाख़्तकुनिन्दा कोई जिन्दा नहीं। मैंने जब स्वामीजी के इब्तदाई हालात उन्हें सुनाये तो वह उन की अक्सर तसदीक़ करते थे (पृष्ठ ३)

हमारी सम्मति में यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है। प्रथम न तो उन रईसों के नाम बताए गये हैं जो स्वामीजी के डेरे पर आये थे जिस से आगे कुछ अनुसन्धान किया जा सकता और न यह ही बताया गया है कि उस समय स्वामीजी के डेरे पर कौन कौन लोग उपस्थित थे। जिन के द्वारा इस संवाद का मिलना बताया गया है उन में से पण्डित ज्वालादत्त और ठाकुर मुकन्दसिंह जीवित नहीं हैं और मिस्टर रामदास छबीलदास अपने तारीख़ ५ नवंबर १९०९ के पत्र में इस घटना की सत्यता से सर्वथा नकार करते हैं। वह लिखते हैं:—

* डेमी नदी टङ्कारा के नीचे बहती थी। अब वह शुष्क और जलहीन होगई है, परन्तु इस समय उस पर नौकाएं चलती थीं।

"You want to know whether Dayanand's original name was मूलशङ्कर. I never heard till I met you that मूलशङ्कर was his orginal name. It is absolutely false that I gave out in 1877 on the occasion of the Delhi Darbar मूलशङ्कर as his original name. I never attended the Darbar of 1877."

अर्थात् आप जानना चाहते हैं कि क्या दयानन्द का आदि नाम मूलशङ्कर था। जब तक मैं आप से नहीं मिला, मैं नहीं जानता था कि उनका आदि नाम मूलशङ्कर था। यह सर्वथा मिथ्या है कि देहली दरबार के अवसर पर सन् १८७७ में मैंने उनका आदि नाम मूलशङ्कर बताया था। मैं सन् १८७७ के दरबार में गया ही न था।"

इन प्रमाणों के विषय में हमें निम्न लिखित वक्तव्य है।

पण्डित लेखराम ने यह नहीं लिखा है कि पण्डित ज्वालादत्त आदि ने स्वयं उन से उपर्युक्त बात कही थी और हमारे विचार में पण्डितजी को यह बात स्वयं प्रागुक्त पुरुषों से ज्ञात भी नहीं हुई थी, नहीं तो वह इस सम्बन्ध में मिस्टर रामदास छबीलदास का नामोल्लेख न करते जो स्पष्टतया इस घटना का खण्डन करते हैं। जब वह दिल्ली दरबार में गये ही नहीं थे तो पण्डित लेखराम से ऐसी बात कैसे कह सकते थे। ऐसा अनुमान होता है कि किसी अन्य से सुनकर पण्डित लेखराम ने नोट कर दिया होगा और उनके पीछे वह नोट बिना किसी छानबीन के ज्यों का त्यों छाप दिया गया।

महाशय काहनजी कुबेरजी का वर्णन बहुत ही अस्पष्ट है। पिताओं के पुत्रों के घर से भागने की घटनाएं भारतवर्ष में प्रति वर्ष होती रहती हैं, यह ठीक होगा कि महाशय काहन के चचा मूलशङ्कर उसी वर्ष में, वा उसके लगभग गृहत्यागी हुए हों जिसमें स्वामीजी ने अपना पितृ-गृह छोड़ा था, परन्तु इतने से ही यह परिणाम नहीं निकाला जासकता कि वह मूलशङ्कर और दयानन्द एक ही व्यक्ति थे। पण्डितजी ने यह नहीं लिखा कि स्वामीजी के और उक्त मूलशङ्कर के पिता के घर रहने के समय की कौन २ सी घटनाओं में समानता पाई गई थी। ऐसे निर्बल प्रमाण के आधार पर इस निश्चय पर नहीं पहुँचा जासकता कि स्वामीजी का आदि नाम मूलशङ्कर था।

श्रीमान् प्राणलाल सुकुल ने अपने पत्र में जो पहिले उद्धृत किया जाचुका है, यह लिखा था कि ऋषि का नाम "मूलशङ्कर और दयाराम दोनों ही थे"। इससे पण्डित लेखराम के कथन की पुष्टि होती है।

टङ्कारा के एक और वृद्ध पुरुष ने कहा था कि 'दयानन्द का आदि नाम मूलजी था' इससे भी अनुमान होता है कि ऋषि का आदि नाम मूलशङ्कर होना असम्भव नहीं है।

प्राणलाल सुकुल, प्रभुराम आचार्य्य, देवचन्द भगवान इस विषय में एकमत हैं कि भगवान् का आदि नाम 'दयाराम' था और यह भी अनुमान होता है कि संन्यास ग्रहण करते समय जो उन्होंने दयानन्द नाम रक्खा इसका कारण भी यही होगा कि उनका बाल्यकाल का नाम दयाराम था। अब भी हम देखते हैं कि जो लोग गृहस्थ त्याग कर संन्यास धारण करते हैं वह अपना संन्यास-आश्रम का नाम बहुधा गृहस्थाश्रम के नाम से मिलता जुलता रखते हैं। अतः यह बात जी को लगती है कि उनका पूर्व नाम दयाराम ही होगा।

दूसरा प्यार का नाम सम्भव है मूलजी हो वा मूलशङ्कर ही हो। इस विषय में हम निश्चय रूप से कुछ नहीं कह सकते।

भगवान् के पूर्वपुरुष।

गुजरात के इतिहास में यह प्रसिद्ध है कि गुजरात में औदीच्य वा औदीच्य सहस्र ब्राह्मणों को अन्हलवाड़ा के राजा मूलराज सोलङ्की प्रायः एक सहस्र वर्ष हुए उत्तर भारत के अन्तर्गत गान्धार, कुरुक्षेत्र, निमिषारण्य प्रभृति स्थानों से लाये थे और वह संख्या में एक सहस्र थे। इसी कारण उनका नाम औदीच्य (उत्तरदेशीय) सहस्र पड़ गया। राजा मूलराज ने उन्हें भूमि, ग्राम, रत्न, धनादि देकर सिद्धपुर में बसाया और फिर वह गुजरात के अनेक स्थानों में फैल गये।

सामवेदी त्रिवाड़ी भी उन्ही औदीच्य सहस्रों के अन्तर्गत थे और वह भी आदि में सिद्धपुर में ही आकर बसे थे, परन्तु यह नहीं कहा जासकता कि वह सिद्धपुर में उत्तर भारत के किस स्थान से आये थे।

सामवेदी औदीच्य त्रिवाड़ियों के विषय में एक और जनश्रुति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उनके एक शास्त्रज्ञ और धर्म्मनिष्ठ पूर्वज तीर्थयात्रा के उद्देश्य से सिद्धपुर से कच्छ गये थे और भुज नगर में एक धर्म्मशाला में जाकर ठहरे थे। उस समय भुज के अधिपति एक यज्ञ के अनुष्ठान में लगे हुए थे और इस कारण से नगर में खूब समारोह होरहा था। जन साधारण में यज्ञशाला और यज्ञ के उपकरणों के देखने का बड़ा कुतूहल था और अनेक लोग यज्ञमण्डप आदि के देखने को आते जाते थे। उन्हीं दर्शकों में यह सिद्धपुर निवासी त्रिवाड़ी भी थे। एक दिन वह यज्ञ भूमि में पहुँच गये। उन्होंने देखा कि यज्ञकार्य्य के सम्पादन के लिए अनेक स्थानों से बहुत से ऋत्विक् ब्राह्मण आये हुए हैं और यज्ञकार्य्यों में व्यापृत हैं। जब वह यज्ञस्थल को देख कर लौटने लगे तो उन्होंने कहा कि "यज्ञकार्य्य शास्त्रविहित प्रणाली के अनुसार सम्पादित नहीं होरहा है। यज्ञवेदी ठीक नहीं बनी है क्योंकि उसके नीचे एक गौ की अस्थि है। ऐसे अविहित यज्ञ करने से राजा का अनिष्ट होगा।" होते होते यह बात कच्छ- अधिपति के कानों तक पहुँच गई। उन्होंने सिद्धपुरागत त्रिवाड़ी को बुलाकर उनसे कहा कि "आप गौ की अस्थि बाहर निकाल दें, नहीं तो जो कुछ अबतक व्यय हुआ है आपको देना पड़ेगा।" यह सुनकर उन्होंने भूमि खुदवाई और गौ की अस्थि बाहर निकलवादी। यह देख कर सबको आश्चर्य्य हुआ और कच्छपति के मन में उनके प्रति गहरी श्रद्धा होगई। कच्छपति ने उनसे साग्रह अनुरोध किया कि वह ही यज्ञ का सम्पादन करावें, परन्तु उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया और यज्ञकार्य्य राजपुरोहित की अध्यक्षता में ही समाप्त हुआ। यज्ञ की समाप्ति पर जब भूमिदान का समय आया तो कच्छपति ने उन त्रिवाड़ी महाशय को २०० बीघा भूमि, दो बाग और दो गृह दान किये। और वह तीर्थयात्रा की समाप्ति के पश्चात् भुज नगर में ही रहने लगे। वहां उनका वंश विस्तार और उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और समय पाकर कच्छ में सामवेदी औदीच्य त्रिवाड़ियों की संख्या वृद्धिंगत होगई।

कच्छ के राजाओं के वंशधर समय समय पर काठियावाड़ पर आक्रमण करके अनेक स्थानों पर अपना अधिकार स्थापित करते रहे। कच्छ के राजघराने से काठियावाड़

के अनेक राजाओं ने अपना सम्बन्ध जोड़ना आरम्भ करदिया ताकि वह इन आक्रमणों से सुरक्षित रहें। कहते हैं कि संवत् १५९२ में कच्छ राजपरिवार के चार व्यक्ति जो आपस में भाई-भाई थे, अस्सी हजार सिपाही, प्रचुर धन सामग्री और अनेक ब्राह्मणों को साथ लेकर सौराष्ट्र में आये और उनमें से ज्येष्ठ भ्राता जाम रावल ने संवत् १६०२ (सन् १५३५ ई०) में जामनगर का राज्य स्थापित किया। इस से सिद्ध होता है कि जाम रावल के साथ बहुत से ब्राह्मण कच्छ से काठियावाड़ में आकर बसने लगे थे। जाम रावल के पुत्र रेवाजी ने ११ वष तक मोरवी का सूबा (कलक्टर) रूप से शासन किया था। रेवाजी के साथ भी कुछ ब्राह्मण आये थे और उन्होंने भी काठियावाड़ को ही अपना निवास स्थान बना-लिया था। इन ब्राह्मणों में उपर्युक्त त्रिवाड़ी औदीच्य के भी वंशधर थे। इनमें से जो जामजी के साथ आये थे वह पहले काठियावाड़ आये और फिर मोरवी के अन्तर्गत वर्षा-मेरि ग्राम में गये। वहां उनके दो दल होगये। एक दल मोटा वड़ाल में और दूसरा टङ्कारा में आकर बस गया। पहले दल के वंश में अब कोई नहीं है। दूसरे दल के वंश में एक व्यक्ति मेघजी त्रिवाड़ी हुआ। उसके दो पुत्र हुए एक विश्रामजी दूसरा डोसाजी। जब जीवा मेहता ने जीवापुर ग्राम बसाया तो उसने वहां विश्रामजी को भूमि दान देदी और वह वहां ही रहने लगे। जीवापुर में अब जो घर सामवेदी त्रिवाड़ियों के हैं वह इन्हीं विश्रामजी के वंशधर हैं। डोसाजी टङ्कारा ही रहे। वह एक विद्वान् पुरुष थे और उनके पास संस्कृत ग्रन्थों का अच्छा सञ्चय था। उनके पुत्र कुमारजी हुए और कुमारजी के पुत्र बेलजी हुए। पोपट रावल की फुआ बेनीबाई के अनुसार कर्शनजी त्रिवाड़ी के बेलजी चचेरे भाई होते थे।

इस से यह सिद्ध होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी के पूर्वपुरुष कच्छ से आये थे। इसकी पुष्टि एक और घटना से होती है। कर्शनजी ने अपने दूसरे पुत्र वल्लभजी का विवाह कच्छ में ही किया। उनकी पुत्रवधू मोगीबाई कच्छ ही की रहने वाली थी। यह नैसर्गिक बात है कि मनुष्य जिस स्थान में बहुत दिन तक रहता है उसे ही अपना देश समझने लगता है और वहां ही उसके विवाहादि सम्बन्ध होते हैं। यदि वह घटनावश किसी दूसरे स्थान पर जाता है तो वह यही यत्न करता है कि उसके विवाहादि सम्बन्ध पहिले ही देश में हों। यही कारण था कि कर्शनजी ने अपने पुत्र का विवाह भी कच्छवासिनी मोगीबाई के साथ किया था।

इस से पहले हम पोपट रावल के एक आवेदन पत्र का कुछ अंश उद्धृत कर आये हैं जो उन्हों ने जामनगर के भूमिकर के अधिकारी को दिया था। उस में लिखा है कि कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी के पूर्वपुरुष हरिभाई त्रिवाड़ी थे। कौशिया ग्राम की भूमि जो जामनगर के अन्तर्गत है इन्हीं हरिभाई त्रिवाड़ी को दान में मिली थी। इसके कई प्रमाण मिलते हैं। पोपटरावल के पास कई दान पत्र थे जिनके द्वारा कौशिया ग्राम की भूमि हरि भाई त्रिवाड़ी को दान दी गई थी। पोपट रावल से वह दानपत्र हरियाना के अम्बाराम केवलराम जानी ले आये और उन्हें अपने पास रख लिया। उन में से एक दानपत्र में लिखा था कि "संवत् १७०९ माघ कृष्णा चतुर्थी रविवार को कौशिया की कुछ भूमि हरि भाई त्रिवाड़ी, दिवेश्वर और अम्बाईदास जारेचा, भोजराजजी और बोजाजी ने दान दी" दूसरे दानपत्र में लिखा था कि "सवंत् १६८७ वैशाख कृ० चतुर्थी सोमवार को कौशिया की कुछ भूमि हरिभाई त्रिवाड़ी प्रभृति को साहबजी भोजराजजी और बोजाजी ने दान दी"।

तीसरे दान-पत्र में लिखा था कि "संवत् १६६९ से संवत् १६९० के बीच में कौशिया की १२० बीघा भूमि भिन्न २ समय में भिन्न २ जाम साहबों ने हरिभाई त्रिवाड़ी प्रभृति को दान दी।" इस १२० बीघा भूमि में से ४८ बीघा जाम रणमलजी ने वल्लभदास और ठाकुर मुकुन्दजी को दी थी, परन्तु पीछे से वह हरिभाई त्रिवाड़ी के ही हस्तगत हो गई थी।

इन दानपत्रों से प्रकट होता है कि हरि भाई त्रिवाड़ी सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से अठारहवीं शताब्दी के पहिले भाग तक जीवित थे। भगवान् दयानन्द के जन्मकाल तक यह समय प्रायः दो सौ वर्ष होता है। अतः यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि हरिभाई त्रिवाड़ी कर्शनजी के पिता लालजी से तीन चार पीढ़ी पहिले होंगे।

उपर्य्युक्त दानपत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि कौशिया ग्राम की भूमि के प्रदातृगण खेमानि ग्रासिया थे। जाम नगर के अधिपति जाम रावलजी के वंश में एक व्यक्ति खेमजी हुए हैं। उन्हीं खेमजी के वंशधर खेमानी नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

इन दानपत्रों से एक बात और भी सिद्ध होती है। वह यह कि कर्शनजी के पूर्वजों का जाम साहबों से बहुत सम्बन्ध था यदि ऐसा न होता तो वह उन्हें भूमि प्रदान क्यों करते ? इस के अतिरिक्त यह अनुमान करना भी सङ्गत प्रतीत होता है कि हरिभाई के पूर्वपुरुष जाम साहबों के साथ कच्छ से आये थे और यही कारण था कि जाम साहब तथा उनके परिवार के खेमानी ग्रासियों ने हरिभाई को भूमि प्रदान करके सम्मानित किया था।

हरिभाई त्रिवाड़ी के इस प्रकार पूजित और समादृत होने का दूसरा कारण यह अनुमोदित होता है कि वह शास्त्रदर्शिता, स्वधर्मनिष्ठा और कर्म्मकाण्ड-श्रेष्ठता के कारण भी प्रसिद्ध थे नहीं तो केवल इस के हेतु से कि यह जाम राजपरिवार के साथ आये हुए ब्राह्मणों के कुलों में उत्पन्न हुए थे इतने आदर और सत्कार के पात्र न समझे जाते। उनकी शास्त्रदर्शिता और स्वधर्म्मनिष्ठा इस से भी प्रकट है कि धूरकोट, जीवागढ़ और मेघपुर के रहने वाले गृहस्थों ने उन्हें अपना गुरु बनाया था और यह गुरुशिष्य-सम्बन्ध कर्शनजी के समय तक अविच्छिन्नरूप से चला आता था क्योंकि कर्शनजी ने इस यजमानवृत्ति की अधिकारिणी अपनी विधवा पुत्रवधू मोंगीबाई को किया था।

भगवान् ने अपने लिखित आत्म-चरित में भी एक जगह कहा है कि "माता पिता और अन्य वयोवृद्ध अभिभावकगण मुझे कुलप्रथा के अनुसार शिक्षा देने लगे।" इससे भी स्पष्ट होता है कि जिस कुल में उन्होंने जन्म लिया था उस में शिक्षाप्राप्ति और शास्त्राध्ययन की कुछ विशेष प्रणाली थी।

जिस परिवार में भगवान् उत्पन्न हुए वह विशाल परिवार था। आत्म-चरित वर्णन करते हुए पूना में उन्होंने कहा था कि "हमारा परिवार इस समय १५ भागों में विभक्त है।" अतः वह परिवार जिसके १५ भाग हो सकें वास्तव में विशाल होगा। हम पहले ही कह चुके हैं कि त्रिवाड़ीयों का परिवार दो दल में विभक्त हो गया था एक बड़ाल में जा बसा और दूसरा टङ्कारा में रहने लगा। टङ्कारा में सामवेदियों के घर हैं ही और बड़ाल निवासी बेलजी कर्शनजी के चचेरे भाई ही थे अतः टङ्कारा और बड़ाल दोनों जगह ही भगवान् के कुटुम्बीगण निवास करते थे और वह बहुसंख्यक थे इस में कुछ सन्देह नहीं है।

परिशिष्ट संख्या २

आर्य्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी

महाराज से कर्नल आल्काट और ब्लैवैट्स्की का सम्बन्ध जिन्होंने न्यूयार्क अमेरिका में एक सभा थियोसोफिकल (ब्रह्मज्ञानी) सोसाइटी के नाम से सन् १८७५ में स्थापित की थी, इस प्रकार आरंभ हुआ कि बंबई के एक भाटिया मूलजी ठाकरसी अमेरिका गये थे। ट्रेन में उनका और कर्नल और मैडम का साक्षात् होगया। जब मूलजी ठाकरसी भारत को लौट आये तो उनसे कर्नल ने महाराज के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। वह पत्र उन्होंने महाराज को दिखाकर उसका समुचित उत्तर कर्नल को भिजवा दिया। फिर कर्नल के साथ महाराज का पत्र-व्यवहार आरम्भ होगया। महाराज ने कर्नल के पत्रों का हिन्दी में और अपने पत्रों का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने का भार श्यामजी कृष्णवर्मा, मूलराज और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को सौंपा और इस प्रकार पत्र-व्यवहार होता रहा।

सबसे पहला पत्र कर्नल आल्काट ने न० ७१ ब्राडवे न्यूयार्क से १८ फर्वरी सन् १८७८ को लिखा जिसका भावानुवाद हम नीचे देते हैं।

सेवामें परम माननीय पण्डित दयानन्द सरस्वती भारतवर्ष पूजनीय गुरु! अमेरिका के कितने ही निवासी और अन्य विद्यार्थी जो सच्चे मन से आत्मविद्या की खोज करना चाहते हैं आपके चरणों में आते हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमें ज्ञान-ज्योतिः दीजिए। वह भिन्न भिन्न व्यवसाय और वृत्ति रखने वाले हैं, भिन्न २ देशों के निवासी हैं, परन्तु ज्ञानोपार्जन और अधिक उत्तम बनने के उद्देश्य में एकमत हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने तीन वर्ष हुए अपने को एक सभा में संगठित किया जिसका नाम थियोसोफिकल सोसाइटी है। यह जानकर कि ईसाई धर्म्म में कोई बात ऐसी नहीं है जो उनकी बुद्धि वा अन्तःकरणस्थ ज्ञान को परितृप्त कर सके, अपने चारों ओर उक्त धर्म्म के जघन्य मन्तव्यों के दुष्प्रभावों को देखकर और यह देखकर कि उक्त धर्म्म के नेता पाखण्डी, लोलुप और विषयासक्त हैं और उसके उपासकों के जीवन असत्यपूर्ण और अपवित्र हैं; यह देखकर कि पाप को छिपाया और उसे उपेक्षणीय समझा जाता है और पुण्य और ज्ञान को यह कहकर कि वह ईसाई धर्म्म मण्डल की उपस्थित स्थिति के लिए हानिकारक हैं अलग रख दिया जाता है, वह संसार से एक ओर हटकर खड़े होगये और ज्ञानज्योति के लिए पूर्व की ओर मुड़े

और उन्होंने प्रकाश्य भाव से कह दिया कि हम ईसाई धर्म्म के शत्रु हैं। उनकी कर्त्तव्य प्रणाली की इस साहसिकता के कारण जन साधारण का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उन सब प्रभावसम्पन्न पत्रों और मनुष्यों के निन्दापात्र बन गये जिनके सांसारिक लाभ अथवा निजी विचार उपस्थित कार्यक्रम के साथ आबद्ध हैं।

हमें नास्तिक, धर्म्मविद्रोही और म्लेच्छ कहा गया है। १८ मास हुए कि इस नगर में जिसमें दश लाख से अधिक ईसाई रहते हैं हमने अपने में से एक व्यक्ति के शव को पृथ्वी के गर्भ में रक्खा और ऐसा करते हुए हमने अग्नि के चिन्हों, दीपकों और प्राचीन सर्पवेष्टित ताओं आदि का व्यवहार किया। उसके छः मास पश्चात् हमने शव को उसके अस्थायी विश्राम स्थल से निकाला और अपने वंश के प्राचीन आर्य्यों की प्रथा के अनुसार उसे जलाकर भस्मसात् कर दिया।

हमें केवल नवयुकों और उत्साहशील पुरुषों की ही सहायता की आवश्यकता नहीं है, वरन् बुद्धिमान और पूजनीय पुरुषों के साहाय्य की भी अपेक्षा है। इस कारण हम आपके चरणों में उन्हीं भावों से आते हैं जिन भावों से कि बालक अपने माता पिता के चरणों में आते हैं और कहते हैं कि गुरु महोदय हमारी ओर देखिए और हमें बताइए कि कि हमें क्या करना चाहिए, हमें आप अपना परामर्श और साहाय्य प्रदान कीजिए। यहाँ करोड़ों मनुष्य हैं जो आत्मज्योति से अलग पड़े हैं और प्रकृति के विषयानुराग और अन्धकार में रींग रहे हैं। वह इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं कि वह मार्ग भूले हुए हैं, दुराग्रही और दुःखी, हैं किन्तु वह पूर्व देशों में प्राचीन धार्म्मिक तत्वज्ञान के विरुद्ध युद्ध करने में अपने धन, बुद्धि के प्रयत्न और अतर्पणीय पुरुषार्थ को व्यय करते हैं और मूर्ख जनता को अपने असत्य धर्म्म को स्वीकार करने की रुचि दिलाते हैं। अपने सदस्यों के द्वारा हमें पत्रों में लेख लिखने का अवसर प्राप्त है। हम ईसाई जगत् में पूर्वीय विचारों का वास्तविक रूप फैलाएंगे। और जो देश ईसाई नहीं हैं उनमें ईसाई धर्म्म के जिसे यह झूठे पादरी उनकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते हैं कर्म्मगत प्रभावों को प्रकट करेंगे। पूर्वीय विद्याओं के विद्वान् कहलाने वाले (ईसाई) जो संस्कृत वा अन्य प्राचीन भाषाओं को सीख लेते हैं वह वेदों और दूसरी पवित्र पुस्तकों का अन्यथा अनुवाद कर देते हैं और उनका अङ्ग भङ्ग कर डालते हैं। हम उनके शुद्ध अनुवाद जो पण्डितों के किये हुए हों और मूल पर भी उन्हीं की टीका हो छापने और प्रचरित करना चाहते हैं।

क्या आप हमारी सोसाइटी के कारेस्पांडिंग फ़ैलो का प्रमाण पत्र स्वीकार करके हमारी मानवृद्धि करेंगे? आपकी अनुकूल दृष्टि और कृपा हमें बहुत ही शक्तिशाली बना देगी, हम आपकी शिक्षा के अधीन हैं। सम्भवतः हम प्रकाश्य और अप्रकाश्य भाव से उस पवित्र कार्य्य की सफलता की गति तीव्रतर कर सकें जिसमें आप इस समय लगे हुए हैं क्योंकि हमारा रणक्षेत्र सारा भारतवर्ष है और हम अपना कर्त्तव्य कर्म्म हिमालय से कन्या कुमारी तक कर सकते हैं। पूज्यपाद आपने अपने देश वासियों के हृदय-आवरणों और छद्मवेशों के भीतर प्रवेश करना ज्ञात कर लिया है। आप हमारे हृदयों के भीतर दृष्टिपात कीजिए और देखिये कि हम सत्य कहते हैं। हम आपके पास अभिमानपूर्वक नहीं वरन

विनयपूर्वक आते हैं। हम आपका परामर्श स्वीकार करने और आपके बताये हुए कर्त्तव्य के अनुसार करने के लिए उद्यत हैं। यदि आप हमें एक पत्र लिख देंगे तो आपको ठीक २ ज्ञात हो जायगा कि हम क्या जानना चाहते हैं और वह वस्तु जिसकी हमें आवश्यकता है मिल जायगी।

यह पत्र महाराज को लाहौर में मिला। उसे पढ़कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि अमेरिका में भी उनके उपदेश से साहमत्य रखने वाले लोग हैं। वह यह समझने लगे कि थियोसोफ़िस्टों के द्वारा योरूप और अमेरिका में वैदिक सिद्धान्तों का भले प्रकार प्रचार होसकेगा अतः उन्होंने खुले मन से कर्नल और मैडम का स्वागत किया।

इस पत्र के पढ़ने से कोई भी यह नहीं कह सकता कि पत्र-लेखक के चित्त में सिवाय इसके और कोई भाव विद्यमान था कि वह एक सरल भावयुक्त ज्ञानपिपासु है, वह एक पथभ्रान्त पथिक के समान है जो तमसाच्छन्न निविड़ वन में रात्रि के समय उससे बाहर निकलने का मार्ग जोह रहा हो, वह तृषार्त्त चातक के समान है जो जलबिन्दु की आशा में चञ्चु खोले हुए वारिद की ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रहा हो, वह अन्धकार में है और ज्योति की लालसा रखता है, वह अज्ञान में है और ज्ञान की खोज में है, एक ज्ञानपिपासु शिष्य की भांति वह ज्ञानी गुरु के अनुसन्धान में व्यापृत है, वह गुरु के चरणों में अपना मस्तक झुकाना चाहता है, वह उसके उपदेश और आदेश को शिरोधार्य्य करना चाहता है। पत्र में कहीं भी कुटिलता, दम्भ, कपट, असद्भाव का चिन्ह मात्र तक नहीं है। वह आरम्भ से अन्त तक सरल और सद्भाव से परिपूर्ण है। महाराज का हृदय अत्यन्त सरल था। वह दूसरों को भी वैसा ही सरलहृदय समझते थे जैसे वे स्वयं थे। वह स्वयं उतने निष्कपट थे, इतने उदारचेता थे कि किसी की ओर सन्देहदृष्टि से देखना जानते ही न थे। उन्होंने सरलचित्तता से कर्नल और मैडम का विश्वास कर लिया, उनको वैसे ही समझ लिया जैसा उनके शब्दों से प्रकट होता था। महाराज ने २१ एप्रिल सन् १८६८ को उक्त पत्र का संस्कृत में उत्तर दिया जिसका भाषानुवाद हम नीचे देते हैं।

स्वस्ति श्रीयुत अनिन्द्य गुणों से अलंकृत, सनातन सत्य धर्म्म के प्यारे, पाखण्ड मत से निवृत्तचित्त अद्वैत ईश्वर की उपासना के इच्छुक बन्धुवर्ग महाशय श्रीयुत हेनरी एस० आल्काट प्रधान व श्रीमती मैडम एच० पी० ब्लैवैट्स्की मन्त्री तथा थियासोफ़िकल सोसाइटी के सभासदों के प्रति दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद हो।

यहां कुशल है और वहां आपके कुशल की नित्य आशा करता हूँ।

श्रीमानों ने जो पत्र श्रीमन्महाशय मूलजीठाकरसी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, तुलसीराम यादवजी के द्वारा मेरे पास भेजा है उसे देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ।

अहो अनन्त धन्यवाद के योग्य एक, सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र एकरस, व्यापक, सच्चिदानन्द, अनन्त, अखण्ड, अजन्मा, निर्विकार, अविनाशी, न्याय, दया, विज्ञानादि गुण के आकर, सृष्टि, स्थिति, प्रलय के मुख्य निमित्त कारण, सत्य, गुण कर्म्म, स्वभाव वाले निर्भ्रान्त, अखिल विद्यायुक्त, जगदीश्वर की कृपा से पाँच सहस्र वर्षों का समय बीतने के पश्चात् महाभाग्य के उदय से असमस्त व्यवहार वाले, हमारे प्यारे आप पाताल देश निवा-

सियों का हम आर्यावर्त्त निवासियों के साथ फिर परस्पर प्रीति का उद्भव, परोपकार और पत्र-व्यवहार का समय आया है।

मैं आपके साथ अत्यन्त प्रेम से पत्रव्यवहार करना स्वीकार करता हूँ। आगे को आप को इच्छानुसार मेरे पास श्रीयुत मूलजी ठाकरसी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि के द्वारा पत्र भेजने चाहिएं। मैं भी उन्हीं श्रीमानों के द्वारा आपके पत्रों का उत्तर दूँगा। जहाँ तक मेरा सामर्थ्य है सहायता भी दूंगा।

ख्रीस्तादि मतों के सम्बन्ध में जैसी आपकी सम्मति है वैसी ही मेरी भी है। जैसे ईश्वर एक है वैसे ही सब मनुष्यों का भी एक ही मत होना चाहिए। वह धर्म्म एक ईश्वर की उपासना, उसकी आज्ञा का पालन, सर्वोपकार, सनातन वेदविद्या द्वारा प्रतिपादित, आप्त विद्वानों द्वारा सेवित, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध सृष्टि-क्रम से अविरुद्ध, अन्याय, पक्षपात-रहित, धर्म्मयुक्त, आत्मा को प्रीतिकर, सब मतों से अविरुद्ध, सत्यभाषणादि लक्षणों से प्रकाशमान, सब को सुख देने वाला, सब मनुष्यों से सेवनीय है। ऐसा जानना चाहिये।

मेरा यह निश्चय है कि इससे भिन्न क्षुद्राशय, छल, अविद्या, स्वार्थसाधन, अधर्म्म-युक्त मनुष्यों ने ईश्वर का जन्म, मृतकों को जिलाने, कुष्ठादि रोग के दूर करने, पर्वतों को उठाने, चन्द्रमा के टुकड़े करने आदि जितनी बातें फैला रक्खी हैं वह सब अधर्म्मयुक्त, परस्पर विरोध के उपयोग से सब के सुख का नाश करने वाली होने के कारण सब के दुःख की उत्पन्न करने वाली हैं।

मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि कब ऐसा होगा जब परमेश्वर की कृपा और मनुष्यों के प्रयत्न से इनका नाश होगा और परम्परा से आर्य्यों से सेवित एक सत्य धर्म्म सब मनुष्यों में निश्चित होगा।

जब श्रीमानों का पत्र आया था तब मैं पञ्जाब देश के लाहौर नगर में निवास करता था। वहां भी आर्य्यसमाजस्थ बहुत से विद्वान् श्रीमानों के पत्र को देखकर आनन्दित हुए थे। मैं निरन्तर एक स्थान में नहीं रहता हूँ अतः पूर्वोक्त महाशयों के द्वारा ही पत्र भेजना श्रेयस्कर होगा।

यद्यपि बहुत कार्य्य के कारण मुझे अवकाश नहीं रहता तथापि आप सरीखे सत्य धर्म्म की वृद्धि में शरीर, मन और आत्मा से लगे हुए, सबके प्रिय करने में निष्ठा रखने वाले, सत्य धर्म्म की उन्नति से सब मनुष्यों का प्रिय करने वाले, दृढ़ उत्साह से युक्त श्रीमानों के अभीष्ट साधन के लिए मुझे अवश्य समय निकालना चाहिए, मैंने यह निश्चय कर लिया है। अतः परोपकार के लिए मैं आप और आप मुझ से सुखपूर्वक पत्र-व्यवहार करें। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पुरुषों के लिए विस्तारपूर्वक लिखने से क्या।

यह जानना चाहिये कि यह पत्र सं० १९३५ विक्रमाब्द को वैशाख कृ० ५ आदित्य-वार को लिखा गया है।

२१ मई सन् १८७८ को स्वयं मैडम ब्लैवैट्स्की ने एक पत्र हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा था कि हमने २५० पुस्तकें सजिल्द और उतनी ही बिना जिल्द की सीधी बंबई भेजदी हैं। यदि मैं किसी घटनावश जिसमे मेरा अभिप्राय मृत्यु से है भारत वर्ष में न आसकूं तो

आप इन पुस्तकों को किसी आर्य्यसामाजिक पुस्तकालय की भेंट कर दीजिये। मृत्यु के अतिरिक्त हमें और कोई वस्तु उचित समय पर आर्यावर्त्त पहुँचने से नहीं रोक सकती। जब मैं आर्यावर्त्त पहुँचूंगी तो बहुत सी पुस्तकें आपके निर्दिष्ट आर्य्यसमाज को दे दूँगी। मैं बहुतसी पुस्तकें इंगलैण्ड से लाऊँगी और कर्नल आलकाट भी लावेंगे ऐसी मुझे आशा है। अन्त में उन्होंने लिखा था कि मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं ऐसे सुखसे श्वास कभी नहीं लेती जैसे उस समय लेती हूँ जब कि मैं या तो भारत को पत्र लिखती हूँ या वहां से मेरे पास पत्र आते हैं। मुझे ऐसा भान होता है कि मैं हरबार आनन्दभरित मातृभूमि (आर्यावर्त्त) को अपने आत्मा का एक अंश भेज रही हूँ।

वह भारत भूमि को "मातृभूमि" कहती हैं और उसके प्रति आगाध श्रद्धा और भक्ति प्रकट करती हैं। पाठक! इससे अधिक श्रद्धा का उल्लेख किन शब्दों में हो सकता है!

इस पत्र पर कर्नल ने भी अपनी सही की। थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्य्यसमाज की शाखा बनाने के प्रस्ताव के विषय में उन्होंने लिखा कि ऐसे प्रस्ताव के प्रस्तुत करते समय कि हमारी सोसाइटी अपने को आर्य्यसमाज की शाखा के नाम से प्रसिद्ध करे जो पण्डित दयानन्द सरस्वती और मेरे आदेशों के अधीन रहे। मैं उन जैसे बुद्धिमान् और पवित्रात्मा शिक्षक और मार्गप्रदर्शक का आज्ञावर्त्ती होना साभिमान स्वीकार करता हूँ।

इन थियोसोफिस्टों को महाराज को अपना अधिनायक बनाने की इतनी शीघ्रता थी कि उस पत्र के लिखने के दूसरे ही दिन अर्थात् २२ मई सन् १८७८ को ही सोसाइटी का एक अधिवेशन बुलाकर यह निश्चय करदिया गया कि थियोसोफिकल सोसाइटी अपनी और अमेरिका तथा योरुप और अन्य देशस्थ शाखाओं की ओर से आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द पण्डित को अपना अधिनायक और प्रमुख स्वीकार करती है। और आगस्टस गस्टम रेकार्डिंग सेक्रेटरी ने इस निश्चय को अपने २२ मई के पत्र में लिखकर भेज दिया।

इसके साथ ही थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्य्यसमाज की शाखा बनाना भी स्वीकार किया गया। २३ मई सन् १८७८ के पत्र में कर्नल ने हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा कि आपकी गत मास (एप्रिल) की २१ तारीख की चिट्ठी पहुँची जिसका भाव यह ज्ञात होता है कि हम आपके इस उत्तर की प्रतीक्षा न करें कि आप हमारी थियोसोफिकल सोसाइटी को अपने आर्य्यसमाज की शाखा होना पसन्द करते हैं या नहीं। सोसाइटी का एक अधिवेशन हुआ और यतः बहुत से सभासद् उपस्थित थे अतः सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि सोसाइटी दोनों सभाओं के मिलजाने और उसका नाम बदल जाने के प्रस्ताव को स्वीकार करती है।....उस पत्र में उन्होंने यह भी लिखा कि उस निश्चय की प्रतिलिपि भेजते हैं आप उसे स्वामीजी के पास पहुँचादें और यह भी प्रस्ताव किया कि (नाम परिवर्त्तन के कारण) मैं नये प्रमाण पत्र की पाण्डुलिपि भेजता हूँ जिसे हम प्रचरित करना चाहते हैं और यदि आप कोई और अच्छा प्रस्ताव न करें तो मैं इस नये ढंग के प्रमाण पत्र को छपवाना उचित समझता हूँ और यतः आर्य्यसमाज के माननीय प्रमुख हमसे इतनी दूर हैं कि हम हर प्रमाण पत्र को उनके हस्ताक्षर के लिए नहीं भेज सकते अतः हम विनय-

पूर्वक प्रार्थना करते हैं वह निर्दिष्ट स्थान पर संस्कृत वा अन्य भाषा में जैसी उनकी प्रचलित रीति हो हस्ताक्षर करदें ताकि उसकी (प्रतिलिपि) शेष प्रमाणपत्रों पर छपवादी जावे और यदि वह अपनी वा आर्य्यसमाज की किसी मुद्रा का प्रयोग करते हों तो उसे भी लगा दें और हम उसे भी छपवा लेंगे। हमारा यह विचार है कि पृथ्वी भर में अपने सभासदों के पास नये प्रमाण पत्र भेजदें कि वह पुराने प्रमाणपत्रों के स्थान में अपने पास रक्खें।

२९ मई सन् १८७८ को कर्नल ने एक पत्र और लिखा जिसमें लिखा था कि आज हमें अपने कार्यालय के पत्र के उत्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती के हितकर पत्र पाकर परम हर्ष हुआ। हम यह अनुभव करते हैं कि उन्होंने न केवल हमारे प्रमाण पत्र को स्वीकार किया है बल्कि जिन अत्यन्त कृपायुक्त शब्दों में उन्होंने अपने निश्चय से हमें सूचना दी है उनसे भी हमें बहुत सम्मानित किया है।

मैं यह आपको बता नहीं सकता कि यह अनुभव करके कि हमने आर्य्यसमाज के साथ ऐसा निकट भ्रातृसम्बन्ध स्थापित किया है मैं कितना प्रसन्न हूँ। उसका प्रत्युत्तर रूपी संबोधन समुद्र पार से आता हुआ हमें ऐसा प्रतीत हुआ जैसा रक्षकवृन्द का शब्द उस पथिक को प्रतीत होता है जो चारों ओर हिंस्र पशुओं से घिरा हो और जिसे वन में रात्रि होगई हो। क्योंकि जैसे यह ईसाई हम सरीखे म्लेच्छों और ईसाई धर्म्म के अविश्वासियों के शत्रु हैं वैसे बड़े शत्रु पशु और कहाँ हैं। परन्तु जब आपकी कृपा का हाथ हमारे ऊपर है तो हम शत्रुओं का तनिक भी भय नहीं करते।

३० मई सन् १८७८ को एक तीसरा पत्र कर्नल ने हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा कि हम अपने सभासदों के पास नये प्रमाणप्रत्र भेज देते यदि माननीय स्वामी हमारे नाम के परिवर्त्तन और आर्य्यसमाज के साथ सम्बन्ध को स्वीकार कर लेते। अब जब वह स्वीकार कर लेंगे तो नये प्रमाणपत्र पुराने सदस्यों के पास भेज दिये जायंगे।

इन पत्रों के पढ़ने से यह विस्पष्ट है कि थियोसोफिस्ट लोग आर्य्यसमाज से अपना सम्बन्ध स्थापित करने और महाराज को अपना अधिनायक बनाने के लिए अत्यन्त उत्सुक और लालायित थे और उन्हें बड़ी २ भारी बीत रही थी कि कब महाराज की स्वीकृति आवे और कब वह आर्य्यसमाज के साथ सम्मिलित हों। महाराज के प्रथम पत्र से उन्हें ज्ञात होजाना चाहिए था कि महाराज दृढ़ आस्तिक हैं और ईश्वर में उनका अटल विश्वास और प्रगाढ़ और निश्चल भक्ति है। अतः जब उन्होंने आर्य्यसमाज के साथ थियोसोफिकल सोसाइटी का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव किया तो यह जान बूझकर किया कि स्वामीजी और आर्य्यसमाज आस्तिक और ईश्वर के विश्वासी हैं।

५ जून सन् १८७८ को कर्नल ने एक लम्बा पत्र महाराज के पास भेजा जिसका भाषानुवाद हम नीचे देते हैं।

सेवा में पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी।

पूज्यपाद गुरु! जो सद्भावपूर्ण पत्र आपने अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक भ्राता हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बंबई वाले के द्वारा हमें भेजा है वह सकुशल हमारे हाथों में पहुँच गया है। थियोसोफिकल सोसाइटी के समस्त सभ्यों और अधिकारियों को जो आशीर्वाद आपने उन

को और उनके कार्य्य को दिया है और जो कामना उनके स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए आपने प्रकट की है उससे परम प्रसन्नता हुई है। उसके प्रत्युत्तर में हम केवल अपनी आशा ही प्रकट कर सकते हैं कि आपकी संसार में उस काल तक स्थिति रहे जब तक आपका उपकार-मय उद्देश्य पूर्ण हो और मनुष्य जाति आपके बुद्धयनुकूल उपदेश को सुनने और उससे लाभ प्राप्त करने के लिये तैयार हो।

२—माननीय महोदय! विश्वेश्वर की प्रकृति और गुणों की जो परिभाषा आपने की है उससे हमें प्रतीत होता है कि पश्चिम के हम तुच्छ विद्यार्थियों ने अपने आर्य्य पूर्वजों की शिक्षा के अशुद्ध अर्थ नहीं किये हैं। वह परम (तत्व) जिसका ध्यान करने और जिस तक अपनी उच्च कामनाओं को पहुँचाने का आप अपने शिष्यों को उपदेश करते हैं वह वही अनादि ईश्वर तत्व है जिसका निर्देश हम ईसाइयों को कर रहे हैं कि वही तुम्हारी आराधना का उपयुक्त विषय है न कि तुम्हारा निष्ठुर, निर्दय और दोलारूढ़ मोलक-जिहोवा *। परन्तु जब हम स्वयं ही शिक्षा की इतनी अधिक आवश्यकता रखते हैं तो हमारे लिए दूसरों को शिक्षा देना अति कठिन कार्य्य है। हमें दिन-प्रतिदिन अपनी अयोग्यता का अधिक से अधिक ज्ञान होता जाता है और यदि हमें यह विश्वास न होता कि जिस किसी ने सत्य का बहुत थोड़ा सा अंश भी जान लिया है इसे उस ज्ञान को अपने भ्राता को जिसे उसकी अधिक आवश्यकता है प्रदान करने में कृपणता नहीं करनी चाहिए। हमारी यह रुचि होती है कि हम सर्वसाधारण की दृष्टि से अलग रह जावें जबतक कि हमें उस ज्ञान के उपार्जन का पर्य्याप्त समय न मिल जावे जिसको हमें प्रदान करने का आपने वचन दिया है।

३—मैंने वह प्रस्ताव, जो कौंसिल ने थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्य्यसमाज से सम्बद्ध करने और यदि आपको हमारा कार्य्य अच्छा लगे, तदनुसार उस का नाम परिवर्तन करने के विषय में सर्वसम्मति से स्वीकार किया है, विनयपूर्वक भ्राता हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास भेज दिया है। यतः हम यह मानते हैं कि हम आर्य्य वंश के हैं और हमारे पार्थिव और दैवी वस्तुओं के ज्ञान का आदिम स्रोत आर्य्य हैं अतः यदि आप आज्ञा दें तो हम थियोसोफिस्ट लोग अपने को आपका शिष्य कहने और पश्चिम भर में आर्य्यसमाज और उसके सिद्धान्तों का ठीक २ ज्ञान फैलाने में अपना गौरव समझेंगे। हमें आज्ञा दीजिए कि हम आपको अपना गुरु, पिता और अधिनायक कहें और हम अपने कार्य्यों से ऐसे महान् अनुग्रह का अपने आप को पात्र सिद्ध करने का यत्न करेंगे। वैदिक तत्वज्ञान में हम बालकों के समान हैं। हमें शिक्षा दीजिए कि हम लोगों से क्या कहें और कैसे कहें। हम आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं और हम उसका पालन करेंगे।

४—आपकी बुद्धि में जो आवश्यक वा उपयुक्त बात हो वा जो की जानी चाहिये हम उसे अपनी शक्ति भर करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यहाँ की जनता नीच, दुराग्रही और अज्ञानी है। उसकी धार्म्मिक उपासना इन्द्रियों से अर्थात् भय, अभिमान, लोलुपता, भीरुता और विद्वेष से अपील करती है। उसके धर्म्ममन्दिर और गिरजे एक दूसरे से बाह्य ठाठ-बाट में स्पर्धा करते हैं और दुराचार और पाप मखमल और रेशमी वस्त्रों के भीतर

* मोलक—यहूदियों का एक क्रूर देवता। जिहोवा—इबरानी भाषा में ईश्वर का नाम।

और मुलायम गदेलों में जिन पर वह गिरजा में जाकर बैठते हैं बिना भय के सुखपूर्वक निवास करते हैं। उसके पुजारी और पुरोहित सदाचारविरुद्ध कार्य्यों की उपेक्षा करते हैं और जो लोग उन्हें मुक्तहस्त होकर धन देते हैं और धर्म्म की उच्च स्वर से दुहाई देते हैं उन्हें वह ईश्वर और स्वर्गस्थ सन्त जन के नित्य साहचर्य्य के पुण्य का वचन देते हैं। फिर भी हर नगर और उपनगर में बहुत से विचारशील, सद्हृदय नर और नारी ऐसे हैं जो प्रसन्नता-पूर्वक आर्य्यसमाज में सम्मिलित हो जायंगे यदि उन्हें आर्य्यसमाज और उन की सच्चाइयों का ज्ञान हो जायगा जिनके प्रचार के लिए उसने जन्म लिया है। उन मनुष्यों के पास हम प्रेस (समाचार पत्र और पुस्तकों) द्वारा ही पहुँचा सकते हैं क्योंकि हमारे पास कोई पण्डित वा स्वामी नहीं हैं जो वेदि पर आकर उनकी व्याख्या कर सके। आपकी शिक्षाओं के प्राप्त होने पर जो कुछ कि हम अपनी तुच्छ योग्यताओं के अनुसार कर सकते हैं उसके करने के लिए हम उद्यत और उत्सुक हैं। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि जितना शीघ्र भी आपको अपने बहुसंख्यक और गुरुतर कार्य्यों से अवकाश मिल सके उतना शीघ्र हमें अपनी शिक्षाएं भेजिये।

५—क्या आप समस्त भारतवर्ष के आर्य्यसमाजों को यह विश्वास दिलावेंगे कि पृथिवी की दूसरी और सुदूरवर्त्ती ऐसे नर-नारियों की सभा है जिसके धर्म्म के सम्बन्ध में तुम्हारे जैसा दार्शनिक विचार है, जो तुम्हारे जैसे धार्म्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा देती है और भविष्य जीवन (परलोक) के सम्बन्ध में तुम्हारे जैसे विश्वासों से आनन्द लाभ करती है, जो तुम्हारे जैसे मनोवेगों से सञ्चालित है। हम उस सहानुभूति के तार द्वारा जो हृदयों से हृदयों तक फैला हुआ है और जो समान प्रकार से स्पन्दित होता है अपने आर्य्य भ्राताओं को भ्रातृप्रेम और पारस्परिक विश्वास का संदेश भेजते हैं।

६—हम आपसे प्रश्न करते हैं कि आर्य्यसमाज के नियम क्या हैं? उसका कार्य्य किस प्रकार किया जाता है? उसके कौन लोग सदस्य हो सकते हैं और विशेषकर कौन लोग नहीं हो सकते? भिन्न २ धार्म्मिक सम्प्रदायों और मनुष्यसमूहों के प्रति इस देश में और योरुप में हमारी क्या कार्य्यप्रणाली होनी चाहिए? जिज्ञासुओं को पश्चिमी भाषाओं की कौनसी पुस्तकें ब्रह्म विषयक विचारों के जानने के लिए पढ़ने के लिए बतानी चाहिएं? मनुष्य की उत्पत्ति। उसकी अन्तिम गति और शक्तिएं क्या हैं? सृष्टि क्या है? भारतवर्ष में जो नियम प्रचलित किये गये हैं उनमें किस सीमातक परिवर्त्तन किया जावे कि वह पश्चिमी जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अनुकूल होजावें। हमें यह जानना आवश्यक है कि इदानीन्तन आत्मवादियों से जिनकी संख्या लाखों हैं, मृत आत्मा के अस्तित्व की संज्ञापक घटनाओं, (phenomena) कारणों, कार्य्यों, माध्यमों (वह लोग जिनके द्वारा मृत आत्माएं अपने को प्रकट करती और बातचीत करती हैं) की प्रकृति और उसके हानि लाभों के विषय में क्या कहें? जीवित मनुष्य सदा से उस यवनिका को फाड़ फेंकने का यत्न करते देखे गये हैं जो कब्र और चिता के किनारे लटका हुआ है। मानवी हृदय सदा से यह आश्वासन पाने के लिए उत्कण्ठित रहा है कि मृत आत्माएं उसकी सहानुभूति की पहुँच से बाहर नहीं चली गई हैं। न माता अपने मृत शिशुओं के विषय में यह समझ सकती है कि

वह उसकी गोद से सदा के लिए अलग होगये हैं। न पत्नी अपने मृत पति के विषय में और न प्रेमी अपनी मृत प्रणयिनी के विषय में नित्यवर्त्ती वियोग को समझ सकती है। यही उद्दीप्र और अतर्पणीय लालसा है जिसके सहारे पश्चिम का इदानीन्तन आत्मवाद इतना अधिक बढ़ गया है और उसके पोषकों का सब से घोर विरोध हमें सहना पड़ा है। माध्यमों वा आत्मशरीर-प्रतीति-शक्ति-सम्पन्न लोगों की संख्या सहस्रों है जिनकी शारीरिक बनावट वा आयस्कान्तिक उगद़ारों की सहायता से अनेक प्रकार के बाह्य चमत्कारों की प्रवर्त्तक बुद्धिसम्पन्न सत्ताएं लेख, वाणी, टकोरों, मृत आत्माओं की छायाओं द्वारा तथा अन्य प्रकार से बातचीत करती रही हैं। सहस्रों मनुष्य ऐसी सत्ताओं से जिज्ञासा करते हैं और लाखों मनुष्य यह विश्वास रखते हैं कि उनके मृत बन्धुजन स्वयं उनसे बातचीत करते हैं और वह अपने प्रकृतिमय रूप को दृष्टिगोचर करते हैं। हम पूछते हैं कि हमारा इन लोगों और उनकी रीति नीति के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए हमारे वचन सुस्पष्ट, विशिष्ट और विश्वासजनक होने चाहिएं। मैं आपके पत्र के उस भाग से जिसमें आप मृत पुरुषों को पुनर्जीवित करने, कुष्ठियों को अच्छा करने, पर्वतों को हटाने, चन्द्रमा के टुकड़े करने के चमत्कारों का उल्लेख करके कहते हैं कि इनसे धर्म्म के विरोधी भाव प्रकट होते हैं और उनसे अनेक अनिष्ट होंगे, मैं स्पष्ट समझता हूँ कि आप इन अलौकिक चमत्कारों को असत्य समझते हैं। आप इनको तत्वज्ञान के अध्ययन और मनुष्य की नैसर्गिक आत्मिक शक्तियों से बहुत नीच कोटि का समझते हैं। यह बुद्धिमत्ता है और हम उसे ऐसा ही मानते हैं। परन्तु हर स्थान की जनता के समान यहां की जनता भी तत्वज्ञान से विमुख है और वह अलौकिक चमत्कारों के लिए लालायित रहती है। उसके हृदय को हम केवल कल्पना शक्ति और इन्द्रियों के द्वारा ही प्रभावित कर सकते हैं। माध्यम उन्हें अलौकिक चमत्कार दिखाते हैं और हम उनके सामने तत्वज्ञान के वाद-विवाद रखते हैं जिन्हें वह स्वीकार नहीं करते। संभवतः हमने उत्तमोत्तम प्रणालियों का प्रयोग नहीं किया। यही विश्वास कि संभवतः ऐसा ही हो शिक्षा और मार्गदर्शन के लिए हमें आपके चरणों में भेजता है।

७—मेरे विचार में बहुत ही उन्नति होजायगी यदि हम पश्चिम की जनता के सामने वैदिक तत्वज्ञान का अविकल देदीप्यमान् और मनोरञ्जक स्वरूप रक्खेंगे। अमेरिका का एक अत्यन्त योग्य पत्र-सम्पादक जो हमारी सोसाइटी का सदस्य है और जिसके पत्र की ५०००० प्रतियाँ बिकती हैं, कहता है कि वर्त्तमान काल में पूर्वीय धर्म्मों के विवरण की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि उससे यह प्रकट हो जायगा कि ईसाइयों के विश्वास, कथामाला और कार्यकलाप कहाँ से चुराये गये हैं और हर एक नूतन धर्म्म किस प्रकार आर्य्य धर्म्म से निकला है। हमारा एक और सदस्य जो भाषाविज्ञान का पण्डित है और जो अंग्रेज़ी भाषा की उत्पत्ति और अन्तिम स्थान पर एक पुस्तक प्रकाशित करने वाला है कहता है कि ईसाई बिशप हीबर ने जन्द-अवस्था का अनुवाद करने में उसका अङ्गविच्छेद कर डाला है और उसने मुझसे प्रार्थना की कि जब तुम आर्य्यावर्त्त जाओ तो पश्चिम के भाषाविज्ञों के पास जातियों के उद्गम और परिभ्रमण तथा भाषाओं की उत्पत्ति का स्पष्टतर विवरण भेजना पश्चिम वालों को पूर्व वालों से इतनी अधिक सीखने योग्य बातें हैं कि मैं नहीं

जानता कि आप से वह प्रश्न करने में अपनी लेखिनी को कैसे रोकूं। मैंने पहले ही इतने प्रश्न कर दिये हैं कि यदि आप अपने अमूल्य समय का आधा भाग भी उनके उत्तर देने में व्यय करें तो भी पर्य्याप्त न हो। परन्तु आपके निकट और इर्दगिर्द बहुत से पण्डित और आर्य्य विद्वान् रहते होंगे जो एक ही जन्मभूमि रखने वाले और एक ही धर्म्म के मानने वाले होने के विचार से हमें बहुमूल्य सहायता देने पर सहमत होंगे। हम आपसे इतनी दूर हैं और शिष्य और गुरु के बीच पत्र द्वारा विचार प्रकट करने का ऐसा अकिञ्चित्कर और असन्तोप जनक ढंग है कि हम में से कई व्यक्ति अध्ययन तथा अपने लोगों में प्रचार कार्य्यार्थ अपने को सज्जित करने के लिये अतिशीघ्र आर्य्यावर्त्त जाना सर्वथा आवश्यक समझते हैं कि जितना हम वहाँ दो वा तीन वर्षों में सीख सकें उतना यहाँ बीस वर्ष अध्ययन में व्यय करने पर भी न सीख सकेंगे। मनुष्य जीवन का अल्प होना हम में से उन्हें जो अधेड़ वा बूढ़े हैं, चेतावनी देता है कि यदि हम कुछ भलाई करना चाहते हैं तो हमें समय नष्ट न करना चाहिए। परन्तु हम आपसे शुद्ध उत्कण्ठा परन्तु सम्मान के साथ प्रार्थना करते है कि जब तक अमेरिका से प्रस्थान करें तब तक हमें उपर्य्युक्त विषयों में शिक्षा देवें।

८—और अब मैं आपको प्रणाम करता हुआ और आप के निरन्तर स्वास्थ्य और और आनन्द के लिये प्रार्थना करता हुआ अपनी सारी सोसाइटी की ओर से आप की आज्ञा लेकर अपना नामोल्लेख करना चाहता हूँ कि मैं हूँ आप का विनीत शिष्य और अनुगामी,

हेनरी एस० आल्काट प्रेसिडेण्ट,
थियोसोफिकल सोसाइटी।

इस चिट्ठी को पढ़कर पाठकों को ज्ञात होगया होगा कि पत्रलेखक एक स्थान में भी तो नहीं कहता, संकेत तक नहीं करता कि उसकी ईश्वर में आस्था नहीं है। इस के विरुद्ध वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि वह परम (तत्व) जिस का ध्यान करने और जिस तक अपनी उच्च कामनाओं को पहुँचाने का आप अपने शिष्यों को उपदेश करते हैं वह वही अनादि ईश्वर तत्व है जिस का निर्देश हम ईसाइयों को कर रहे हैं। यहां पत्रलेखक अपने को उसी ईश्वर का उपासक बतलाता है जिस का महाराज उपदेश करते थे और जिसके विषय में वह अपने सब से पहले पत्र में उसे लिख चुके थे।

अपने निजू पत्रों में ही नहीं वरन् समाचार पत्रों में भी कर्नल ने स्वामीजी को थियोसोफिकल सोसाइटी का धार्मिक गुरु और शिक्षक स्वीकार किया। २९ मई सन् १८७८ को एक पत्र उन्होंने न्यूयार्क से 'इण्डियन स्पेक्टेटर' के सम्पादक को लिखा जिस में हमें यह शब्द मिलते हैं:—

"थियोसोफिकल सोसाइटी ने इस बुद्धिसंगत धर्म्म को स्वीकार किया है और उसी का वह प्रचार करती है और इस बात ने कि (धर्म्म) उन सिद्धान्तों में विद्यमान है जिन की माननीय स्वामी दयानन्द सरस्वती पण्डित व्याख्या करते हैं, हमें अपनी सोसाइटी को आर्य्यसमाज से सम्बद्ध करने और उसके प्रमुख को अपना सर्वोच्च धार्मिक शिक्षक, मार्ग-दर्शक और अधिनायक मानने और स्वीकार करने पर उद्यत किया है।"

सरल और शुद्ध अन्तःकरण रखने वाले, निष्कपट और सत्यपरायण स्वामीजी को और अन्य किसी को भी यह कैसे सन्देह हो सकता था कि यह सारा विनय भाव, भक्ति-प्रदर्शन, शिष्यत्व-स्वीकरण किसी अन्य ही उद्देश्य से है। अतः उन्होंने यह विश्वास कर लिया कि थियोसोफिकल सोसाइटी आस्तिकों का समुदाय है और वह वेद को मानते हैं। यह पत्र महाराज को ७ जुलाई सन् १८७८ को मिला जब वह अमृतसर थे और ६ जुलाई का रुड़की से इस पत्र का संस्कृत में उत्तर लिखा और बिना संकोच के थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्य्यसमाज की शाखा बनाना स्वीकार कर लिया। यही नहीं, प्रमुख आर्य्यसभाजियों और समाजों को भी इसकी सूचना देनी आरम्भ करदी। २७ जुलाई सन् १८७८ के पत्र में वह एक सज्जन को लिखते हैं कि थियोसोफिकल सोसाइटी आर्य्यसमाज की शाखा बन गई और अमेरिकावाले बराबर वेद को मानते हैं और उसी की शिक्षा के इच्छुक हैं। कर्नल के पत्र का उत्तर देने से पूर्व ही उन्होंने आर्य्यसमाज का थियोसोफिकल सोसाइटी से सम्बन्ध करना निश्चित कर लिया था क्योंकि ९ जुलाई सन् १८७८ के पत्र में उन्होंने लाहौर आर्य्य समाज के प्रधान और मन्त्री को लिखा था कि परसों कई चिट्ठियाँ अमेरिका से आई हैं..... आर्य्यसमाज थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ लगाया गया और उसका नाम यह नियत हुआ है कि थियोसोफिकल सोसाइटी आफ़ दि आर्य्यसमाज आफ़ इण्डिया और यहां यह नियम रक्खा जावे कि आर्य्यसमाज आफ़ थियोसोफिकल सोसाइटी और मुद्रा भी खुदवानी चाहिये।........आर्य्यसमाजों के प्रधान और मन्त्रियों की सूची बनाने की तैयारियां होने लगीं।

महाराज के संस्कृत पत्र का अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

स्वस्ति श्रीमद्वर्य्य गुणाढ्य, सब के हित करने की इच्छा रखने वाले, विद्वानों के आचारयुक्त, एक ईश्वर की उपासना में तत्पर, ईश्वरोक्त वेदविद्या में उत्पन्न प्रीतिवाले, प्रियवर, पाताल देश के निवासी बन्धुवर्ग, आर्य्यसमाज के साथ एक सिद्धान्त को प्रकाशित करने वाली थियोसोफिकल (सोसाइटी) के सभापति श्रीयुत हेनरी एस० आलकाट प्रधानादि तथा उक्त सभा के सब सभासदों को दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद हो।

यहां ईश्वर के अनुग्रह से कुशल है और आप की नित्य चाहते हैं।

श्रीमानों के भेजे हुए सब पत्र आर्य्यसमाज के प्रधान श्रीयुत हरिश्चन्द्र द्वारा मुझे मिल गये और उन में लिखित वृत्तान्त को जान कर मुझे और यहां के प्रधान मन्त्री और सभासदों को अत्यन्त आल्हाद हुआ। इस उत्तम कार्य में प्रवृत्ति के लिये ईश्वर को सहस्रशः धन्यवाद देना योग्य है कि जिस अद्वितीय सर्वशक्तिमान्, सकल जगत् के स्वामी, सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न और धारण करने वाले परमात्मा ने आप और हमारे समान पृथ्वी के निवासी सब मनुष्यों के ऊपर जिनके मन बहुत समय से पाखण्ड मतों के दुष्ट उपदेश के प्रभाव से अन्धकार मय होगये थे पूर्ण कृपा करके पुनर्वार उस दुःख के निमित्त कारण कपटयुक्त मतों के विनाश के लिये स्वोक्त सब सत्य विद्याओं के कोश वेदों में प्रीति उत्पन्न की अतः हम सब भाग्यशाली हैं यह निश्चित जान कर वह अपने कृपाकटाक्ष से हमारे इस सर्वहितकारी कार्य्य को प्रतिक्षण उन्नत करे हम यही प्रार्थना करते हैं।

१—श्रीमानों के भेजे हुए अपनी सभा के प्रमाण पत्र पर मैंने अपने हस्ताक्षर करके और मुद्रा लगा कर आपके पास वापस भेज दिया है वह आप को शीघ्र ही मिल जायगा। आप यह जान लीजिये कि आपने जो लिखा है कि आर्य्यावर्त्तीय आर्य्यसमाज की शाखा थियोसोफिकल सोसाइटी (The Theosophical Society of the Arya Samaj of India.) यह नाम रहेगा सो हमें भी स्वीकार है।

२—सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिये जिस प्रकार चारों वेदों की भूमिका में लिखी है। उस का यह संक्षेप है।

सब मनुष्यों को शुद्ध स्थान में बैठ कर आत्मा, मन, प्राण और इन्द्रियों को समाहित करके सगुण और निर्गुण प्रकार से ईश्वर की उपासना करनी चाहिये।

इस उपासना के तीन अङ्ग हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। इन में से हरएक के दो दो भेद हैं।

जिस में ईश्वर के गुणों का कीर्त्तन किया जाता है यह सगुण स्तुति है। यथा:—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजु० अ० ४० । मं० ८ ॥

वह सर्वव्यापक है, वह बिना कालक्षेप के सब जगत् का कर्त्ता, अनन्त वीर्य्य वाला है, न्याय, सकल विद्यादि सत्य गुणों से युक्त होने के कारण पवित्र है, सर्वज्ञ, सब के आत्मा का साक्षी, सामर्थ्ययुक्त होने से सब जगह सब के ऊपर विराजमान है, अपने सामर्थ्य योग और एकरस होने से सदा वर्तमान है। उसने सर्वदा एकरस वर्तमान जीव रूपी प्रजाओं के लिये वेदोपदेश से यथावत् अर्थों का उपदेश किया है। इस प्रकार सगुण रीति से सब मनुष्यों को उसकी स्तुति करनी चाहिये।

वह कभी भी जन्म लेने और शरीर धारण करने से अवयव वाला नहीं होता, न उसमें कोई छेद (व्रण) होता है वह पाप करके अन्यायकारी नहीं होता।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥
अथर्व० कां० १३ अनु० ४ मं० १६ । १७ । १८ । २० ॥

यहाँ नौ नकारों से दो की संख्या से आरम्भ करके नौ की संख्या तक के वाच्य भिन्न ईश्वर का निषेध करके वेद एक ही ईश्वर का निश्चय करता है।

जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से सगुण और अपने विरुद्ध गुणों के अभाव से निर्गुण होते हैं वैसे ही ईश्वर भी अपने गुणों के भाव से सगुण और विरुद्ध गुणों के अभाव से निर्गुण है।

इस प्रकार जहाँ यह कहा जाता है कि ईश्वर ऐसा नहीं है वह निर्गुण स्तुति जाननी चाहिये।

अथ प्रार्थना

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ यजु० अ० ३२। मं० १४

हे अग्ने, सर्वप्रकाशक ईश्वर! जिस धारणावती बुद्धि को विद्वानों के समुदाय तथा विज्ञानी लोग उपासते (अपनाते) हैं, आप कृपा करके आज मुझे उसी बुद्धि और सत्य विद्यायुक्त भाषा से मेधावी कीजिये।

जिस मनुष्य ने विद्या और बुद्धि की याचना की उसने सभी शुभ गुणों की याचना की। इस प्रकार सगुण रीति से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये।

मा नो वधीरिन्द्र मा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।

आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सह जानुषाणि॥

ऋ० १। १०४। ८॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥

ऋ० १। ११४। ७॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।

वीरान्मा नो रुद्रभामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥

हे दुष्टरोग, दोष और पापीजनों के दूर करने वाले ईश्वर, आप कृपा करके हमें न मारिये अर्थात् हमें अपने स्वरूप, आनन्द, विज्ञान, प्रेम, आज्ञापालन, शुद्ध स्वभाव से कभी दूर न कीजिये, आप हम से दूर न रहिये, हमारे प्यारे, अभीष्ट भोगों से हमें पृथक् न कीजिये। हे सर्वशक्तिमन्! आप हमारे गर्भों को भय युक्त न कीजिये, हे भगवन् हमारे सहज (स्वभाव) सम्बन्ध रखने वाले सुख साधनों को छिन्न विच्छिन्न न कीजिये।

हे रुद्र, सब दुष्टकर्मशील जीवों को उनके कर्मों का फल देकर रुलाने वाले ईश्वर! आप हमारे विद्यावृद्ध पुरुषों तथा हमारे छोटे जनों को न मारिये, उनका हम से वियोग मत कीजिये। हे भगवन्! हमारे विद्या और वीर्यसेचन में समर्थ पुरुषों तथा विद्या और वीर्य्यसिक्त जनों को तथा सद्गुणसम्पन्न अन्य वस्तुओं को नष्ट न कीजिये। हमारे पालन करने वाले पिता और अध्यापकों को तथा हमारा मान्य करने वाली माता वा विद्या का नाश न कीजिये, जो हमारे सुख रूप, लावण्य गुण युक्त शरीर हैं उनका नाश न कीजिये।

हे सब रोगों का उच्छेद करने वाले ईश्वर! आप अपनी कृपा से हमारे छोटे पुत्रों को न मारिये, हमारी आयु को क्षीण न कीजिये, हमारी इन्द्रियों, गौओं, हमारे वेगवान् अग्नि आदि पदार्थों का नाश न कीजिये। पापों के करने से हमारे प्रति क्रोधित होकर आप हमारे वीर पुरुषों को न मारिये। हम सदा आप ज्ञानस्वरूप को ही ग्रहण करते हैं। इस प्रकार निर्गुण रीति से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये।

अथ उपासना

न्याय, दया, ज्ञान, सब का प्रकाशक होने आदि गुणों से वर्तमान, सर्वत्र व्यापक, अन्तर्यामी परमेश्वर की जिस प्रकार स्तुति, प्रार्थना की गई है उसे वैसा ही निश्चय करके और उसमें आत्मा, मन और इन्द्रियों को स्थिर करके उसमें दृढ़ स्थिति रखना उसकी आज्ञा में सदा वर्तमान रहने का नाम सगुणोपासना है।

सारे क्लेश, दोष, नाश, निरोध, जन्म, मरण, शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, मद, मात्सर्य्य, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि रहित परमेश्वर को जान कर, वह सर्वज्ञ होने से हमारे सब कर्म्मों को देखता है यह भय करके सब प्रकार से पाप का न करना इस प्रकार निर्गुणोपासना करनी चाहिये।

इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना, उपासना भेद से सगुण और निर्गुण लक्षण युक्त तीन प्रकार की मानसी क्रिया को करके ईश्वर की उपासना चाहिये।

३—आर्य शब्द का अर्थ—जो अपनी विद्या, शिक्षा, सर्वोपकार, धर्म्माचरण से युक्त होने के कारण इस योग्य है कि लोग उसे जानें, उसकी संगति करें, उसे प्राप्त करें वह 'आर्य' है।

आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः । पाणिनि अ० ६ । २ । ५८ ॥

वेद और ईश्वर का ज्ञाता और उसकी आज्ञा का पालन करने से ब्राह्मणत्व होता है।

आठवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष पर्य्यन्त समय तक सुनियम में रह कर, जितेन्द्रिय रहकर विद्वानों के सत्संग, सुविचारों से वेद के अर्थों को सुनकर मनन और निदिध्यासन करके सब विद्याओं के ग्रहण करने के उद्देश्य से ब्रह्मचर्य्य का सेवन और तत्पश्चात् अपनी स्त्री से ऋतु काल में समागम करना और पराई स्त्री का त्याग कुमारत्व है।

इस अर्थ के वाचक ब्राह्मण और कुमार शब्द जब परे हों तो समानाधिकरण होने से उनके पूर्व स्थित आर्य्य शब्द का प्रकृति स्वर होता है। इस नियम के कारण आर्य्य शब्द के उपरोक्त ही अर्थ जानने चाहियें।

विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।

ऋ० १ । ५१ । ८ ॥

वेदों के जानने वालों ने वेदों में आर्य शब्द के अर्थ देख कर उत्तम पुरुषों का नाम आर्य्य रक्खा। जब सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव हुआ तो नाम रखने की इच्छा हुई। फिर ऋषियों ने वेद के अनुसार मनुष्य के दो भागों श्रेष्ठ और दुष्ट के दो नाम रक्खे—श्रेष्ठों का आर्य और दुष्टों का दस्यु। इस मन्त्र में ईश्वर ने मनुष्य को आज्ञा दी है कि हे मनुष्य! तू उत्तम गुण, कर्म्म, स्वभाव और विज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ गुण, स्वभाव, कर्म्म का आचरण करने वाले परोपकारी विद्वानों को आर्य जान और जो उनके विरुद्ध हैं उन्हें दुष्ट गुण, स्वभाव, कर्मों का आचरण करने, दूसरों की हानि करने में तत्पर रहने वालों को दस्यु जान। इन व्रत में रहने वाले, सत्याचरणादि युक्त आर्य्यों को सिद्ध कर और विद्या शिक्षा आदि से उनका शासन कर। और जो व्रत में न रहने वाले, सत्याचरण के विरुद्ध आचरण करने वाले हैं उन का नाश कर और उन्हें दण्ड दे।

इस से स्पष्ट है कि आर्य्यों के स्वभाव से विरुद्ध दस्यु और दस्युओं के स्वभाव से विरुद्ध आर्य्य होते हैं।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाया दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणाधमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ ऋ० १। ११७। २१॥

अध्वर्यू (दस्यु) दुष्ट मनुष्य को दग्ध करें और आर्य मनुष्य के लिए विद्या और शिक्षा से सिद्ध बहुत प्रकार का प्रकाश करें।

यहाँ भी आर्य, दस्यु मनुष्यों के ही नाम जानने चाहिएं। यह दोनों नाम पूर्वकाल में मनुष्य सृष्टि के समय कुछ काल पीछे वेद के अनुसार विद्वानों ने रक्खे थे।

आदि सृष्टि हिमालय प्रान्त में हुई थी। जब वहाँ मनुष्यों की संख्या वृद्धि के कारण बहुत बड़ा समुदाय हो गया तो दो पक्ष हो गये, एक श्रेष्ठों का, दूसरा अश्रेष्ठों का। उन के स्वभावों की विरुद्धता के कारण उन में विरोध हो गया। फिर जो आर्य थे वह इस देश में आ गये। फिर उन के सम्बन्ध से इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त हो गया क्योंकि आर्य्यावर्त्त के अर्थ हैं, वह देश जहाँ 'आर्य' रहते हों।

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं ब्रह्मनिर्मितं देशं आर्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ *
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ मनु० अ० २ श्लो० १७, २२॥

विद्वानों के संग के कारण सरस्वती और दृषद्वती का नाम देवनदी है। जो सिन्धु नदी पश्चिम में है और उत्तर से दक्षिण दिशा में वर्तमान समुद्र को जाती है उसी का नाम सरस्वती है। जो ब्रह्मपुत्रा नदी पूर्व दिशा में है और उत्तर दिशा से दक्षिण में वर्तमान समुद्र को जाती है उसी का नाम दृषद्वती है। इन दोनों नदियों के बीच में जिस देश की विद्वान् आर्य्य लोगों ने मर्यादा बाँधी है उस देश का नाम आर्य्यावर्त्त जानो। जिस देश की पूर्व की सीमा पूर्वीय समुद्र और पश्चिम सीमा पश्चिम का समुद्र है, उत्तर की सीमा हिमालय और दक्षिण की विन्ध्याचल पर्वत हैं उसे ज्ञानी लोग आर्य्यावर्त्त जानते हैं। आर्य्यों की सभा वा समाज का नाम आर्य्यसमाज है। दस्युओं के भावों को त्याग कर आर्य्यों के गुणों को ग्रहण करने के लिये जो सभा हो वह भी आर्य्यसमाज का नाम प्राप्त करती है। इस के यह अर्थ हैं कि सब शिष्ट सभाओं का नाम आर्य्य रखना उनका परम भूषण है। इस में कोई क्षति नहीं समझनी चाहिये।

४—यदि मनुष्य स्वयं सत्य शिक्षा, विद्या, न्याय, पुरुषार्थ, सौजन्य, परोपकार के आचरण करे तो उसे प्रयत्न कर के अपने बन्धु वर्ग से भी वैसा ही आचरण कराना चाहिये। संक्षेपतः यह उत्तर है। इस का विस्तृत ज्ञान तो वेदादि शास्त्रों के अध्ययन और श्रवण से प्राप्त करना योग्य है। और मैंने जो वेदभाष्य, सन्ध्योपासन, आर्य्याभिविनय, वेद-विरुद्ध

* 'तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते'। वर्तमान मनुस्मृति में ऐसा पाठ है। —संग्रहकर्ता.

मत खण्डन, वेदान्ति-ध्वान्ति निवारण, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आर्य्योद्देश्य-रत्नमाला, आदि ग्रन्थ बनाये हैं उन के देखने से भी वेद के उद्देश्य का ज्ञान हो सकता है।

५—जो चेतनत्व है वही जीवत्व है। जीव निश्चय रूप से चेतन स्वभाव है जिस के लक्षण इच्छा आदि हैं। वह निराकार, अविनाशी और अनादि है। वह न कभी उत्पन्न होता है, न उस का कभी नाश होता है। इस का विचार वेदों में और आर्य्यों के रचे हुए ग्रन्थों में बहुत सी युक्तियों द्वारा किया गया है। यहाँ विस्तारपूर्वक लिखने के अवकाश के अभाव से थोड़ा सा ही प्रकाशित किया जाता है।

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। यजु० अ० ४०, मं० २

जीव का सौ वर्ष तक प्रयत्न करना धर्म्म है। जीने की इच्छा करे यह इच्छा उसका लक्षण है।

इस मंत्र में 'सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु' वाक्य से सुख की इच्छा करने से उस का सुख लक्षण प्रकट होता है। 'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु' इस वाक्य से दुःख के त्याग की इच्छा करने से उस का दुःख लक्षण प्रकट होता है। 'योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः' इस वाक्य से उसका द्वेष लक्षण प्रकट होता है।

वेदाहमेतं पुरुषम्। यजु० अ० ३३ मं० १८

इससे उस का ज्ञान लक्षण प्रकट होता है।

यतः जीव चेतन स्वरूप है अतः जो जो उस के अनुकूल होता है उस से उसे सुख का अनुभव होता है और वह सदा उसकी इच्छा करता है, जो जो उस के प्रतिकूल होता है उससे उसे दुःख का अनुभव होता है उससे वह द्वेष करता है और सुख की प्राप्ति और दुःख की हानि के लिये सदा प्रयत्न करता है। इन के अन्तर्गत जीव के और बहुत से सूक्ष्म लक्षण हैं यह समझना चाहिये।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति। न्याय० १।१।१०॥

यह जानना चाहिये कि जीव के इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, और ज्ञान जीवात्मा के लिंग (लक्षण) हैं।

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि। वैशे० अ० ३। आ० २। सू० ४॥

उदरस्थ वायु को बाहर निकालना प्राण, बाहर की वायु को भीतर लेना अपान, नेत्रों का बन्द करना निमेष, खोलना उन्मेष, प्राण धारण करना जीवन, मन अर्थात् ज्ञान, फेंकना आदि का करना गति, किसी विषय में इन्द्रियों का लगाना वा हटाना, हृदय के अन्दर कार्य करना, क्षुधा, पिपासा, ज्वर, रोगादि विकार, धर्म का करना, अधर्म का करना, जाति (समष्टि) के अभिप्राय से एकत्व, व्यक्ति (व्यष्टि) के अभिप्राय से बहुत्व संख्या, पहले अनुभव का ज्ञान में अङ्कित रहना, संस्कार, परम सूक्ष्मत्व परिमाण, एक का दूसरे से भेद, मिलना संयोग, मिल कर अलग होना वियोग यह जीव के धर्म्म (लक्षण) हैं।

महाभारत में मोक्षधर्मान्तर्गत भरद्वाज के वचन में कहा गया है कि मानस अग्नि का

नाम जीव है। इस का यह अर्थ समझना चाहिये कि जो मन अर्थात् अन्तःकरण में विद्यमान इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान के प्रकाश से संयुक्त पदार्थ हैं उसकी जीव संज्ञा है। परन्तु जीव, शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण से भिन्न चेतन है क्योंकि वह अनेक अर्थों का एक साथ मेल करने वाला है जैसे मैंने जिसे कान से सुना था उसे आँख से देखता हूँ, जिसे आँख से देखा था उसे हाथ से छूता हूँ, जिसे हाथ से छूआ था उसे जिह्वा से चखता हूँ, जिसे जिह्वा से चखा था उसे नाक से सूँघता हूँ, जिसे नाक से सूँघा था उसे मन द्वारा जानता हूँ, जिसे मन से जाना था उसे चित्त से स्मरण करता हूँ, जिसे चित्त से स्मरण किया था उस का बुद्धि से निश्चय करता हूँ, जिसे बुद्धि से निश्चय किया था उस का अहङ्कार से अभिमान करता हूँ; इत्यादि प्रत्यभिज्ञाओं से जो वर्त्तमान है वह आत्मा का स्वरूप सब से पृथक् है, यह जानना योग्य है, क्योंकि जो श्रोत्रादि मार्गों से, जो अपने २ विषय में ही वर्त्तमान रहते हैं और दूसरे विषयों से सम्बन्ध नहीं रखते, पृथक् २ ग्रहण किये हुए शब्दादि अर्थों का संधान करने वाला है वही जीव है। कोई दूसरे के देखे हुए पदार्थ का स्मरण नहीं करता, न श्रोत्र का स्पर्श के ग्रहण करने में सामर्थ्य है, न त्वचा का शब्द के ग्रहण करने में। परन्तु जो कान से सुना हुआ घट का शब्द था मैं उसी को हाथ से छूता हूँ जिससे पूर्व काल में देखे हुए पदार्थ के अनुसन्धान से फिर उसी अर्थ का पूर्वोक्त दर्शन प्रत्याभिज्ञा द्वारा वर्तमान काल में होता है उस उभयदर्शी, सब साधनों में व्यापक, सब के अधिष्ठाता, ज्ञानस्वरूप जीव का ही यह धर्म्म सिद्ध होता है। ऐसा मानना योग्य है।

इस प्रकार वेदशास्त्र के ज्ञान और समाधि योग में विचार करने से बहुत से आर्य्यों को जीव के स्वरूप का ज्ञान हुआ, होता है और होगा।

६—जब जीवात्मा शरीर को छोड़ता है तब यह कहा जाता है कि मृत्यु हो गई। परन्तु इस देहाभिमानी जीव की मृत्यु शरीर से वियोग के बिना नहीं होती। शरीर छोड़कर यह आकाश में रहता है और ईश्वर की व्यवस्था से अपने किये हुए पाप पुण्य के अनुसार दूसरे शरीर को प्राप्त करता है। शरीर को छोड़ने के पश्चात् जब तक यह आकाश में वा गर्भ में वा बालकपन की अज्ञ अवस्था में रहता है तब तक उसे कोई विशेष ज्ञान नहीं होता। उस समय उस की सोए हुए वा मूर्छित जीव की सी अवस्था होती है।

प्रश्न—यदि इसको बात करने, किवाड़ खटखटाने, दूसरे शरीर में प्रवेश करने का सामर्थ्य है तो फिर यह प्यारे स्थान, धन, शरीर, वस्त्र, भोजन, स्त्री, पुत्र, बन्धु मित्र, भृत्य, पशु, यान आदि प्रिय वस्तुओं को क्यों प्राप्त नहीं कर लेता। तथा

यदि यहाँ कोई यह कहे कि जब कोई किसी का सम्यक् प्रकार से ध्यान करे तो उस के समीप पहुँच जावे।

उत्तर—यहाँ हम यह कहते हैं कि जब किसी का कोई प्यारा मर जाता है तो फिर उस का दिन रात सम्यग्ध्यान करने पर भी वह क्यों नहीं आजाता। यदि कोई कहे कि पूर्व सम्बन्धियों के पास नहीं आता दूसरों के पास जाता है तो यह नहीं बन सकता, क्योंकि पूर्व संबंधियों में ही प्रीति होती है जिन से संबंध नहीं होता उन से प्रीति देखने में नहीं आती।

इस जगत् का स्वतन्त्र रूप से विना अधिष्ठाता के होना संभव नहीं है क्योंकि इस

सब का अधीश्वर न्यायकारी, सर्वज्ञ, सब जीवों के पाप पुण्य के फल का देने वाला ईश्वर जागरूक रहता है। अतः श्रीमानों ने जो मृतक का प्रतिबिंब मेरे पास भेजा है उसमें निश्चय ही कपट और धूर्तता का व्यवहार है। जैसे एक इन्द्रजाली अपने चातुर्य्य से आश्चर्य्य-कारी विपरीत व्यवहारों को सत्य व्यवहारों के समान दिखा देता है यह भी वैसा ही प्रतीत होता है। जैसे कोई सूर्य्य वा चन्द्रमा के प्रकाश में अपनी छाया के कण्ठ और शिर के ऊपर बिना पलक झपकाये स्थिर दृष्टि रखकर कुछ काल पश्चात् शुद्ध आकाश में ऊपर को बिना पलक झपकाए देखने से अपनी छाया से भिन्न उस के प्रतिबिंब की महती मूर्त्ति देखता है ऐसे ही यह व्यवहार भी हो सकता है। संस्कृत विद्या में भूत शब्द से उस सशरीर प्राणी का ग्रहण होता है जो होकर न रहे।

और जो निर्जीव देह सामने विद्यमान है जब तक उस का दाहादि नहीं किया जाता तब तक उस की 'प्रेत' संज्ञा रहती है। यह आप्तवचन है कि ईश्वर के समान न कोई हुआ और न होगा।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥

मनु० अ० ५। श्लो० ६५॥

मृत गुरु के शव का पितृमेध करने वाला शिष्य प्रेतहारों के समान दश रात में शुद्ध होता है।

यहाँ भूत शब्द के अर्थ हैं भूतकाल में स्थित। 'प्रेतस्य', 'प्रेतहारैः' इनमें प्रेत शब्द का अर्थ मृतक के शरीर का है। जैसे यहाँ 'पितृमेधं समाचरन्' मरे हुए पितृ शरीर के दाह के समान गुरु के मृत शरीर का दाह करना 'पितृमेध' संज्ञा को प्राप्त करता है वैसे ही मृतकों के शरीर का विधिवत् दाह करना 'नृमेध' कहलाता है। इतना प्रसंगवश कहते हैं।

जैसा भूत, प्रेत में इदानीन्तनों का अभिप्राय है वैसा होना संभव नहीं है क्योंकि वह मूल से ही मिथ्या और भ्रान्तिरूप है। इस विषय में सन्देह नहीं है कि भूत, प्रेत हैं वा नहीं किन्तु हम निश्चयपूर्वक जानते हैं कि यह सब कपटजाल है। विस्तार करने की आवश्य-कता नहीं। इतने से ही आप अधिक जान लेंगे।

७—जिस शिक्षा को आप मुझसे ग्रहण करना चाहते हैं वह परमार्थ और व्यवहार भेद से बहुत विस्तृत है, उसे पत्र द्वारा लिखना अशक्य है। वह संक्षेप में मेरे रचे हुए ग्रन्थों में लिखी हुई है और विस्तारपूर्वक वेदादि शास्त्रों में है। परन्तु इसका उत्तर देने के लिये मैंने श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिख दिया है कि मेरी बनाई हुई छोटी पुस्तिका आर्य्यो-देश्य-रत्नमाला का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके तुरन्त आपके पास भेज दें सो जानिये कि वह शीघ्र भेज देंगे। उसके देखने से संक्षेप में आपको सदुपदेश की शिक्षा हो जायगी।

८—वेदों के अनुसार नीचे लिखी रीति से मृतक की क्रिया करनी चाहिये। वह विस्तारपूर्वक संस्कारविधि में लिखी है यहाँ भी उसे संक्षेप में लिखते हैं।

जब कोई मनुष्य मर जावे तो उसके शव को भली प्रकार स्नान कराकर उस पर सुगन्धित पदार्थों का लेप करें और मैले वस्त्र अलग करके सुगन्धियुक्त नये वस्त्रों से उसे

ढक दें और श्मशान भूमि में ले जावें वह इतना लंबा गढ़ा खोदें जो ऊपर को हाथ उठाये खड़े मनुष्य के बराबर हो और इतना चौड़ा हो जितनी मनुष्य के दोनों हाथों को फैलाने से चौड़ाई होती है। जंघा के बराबर गहरा और नीचे से १२ अंगुल चौड़ा हो। ऐसी वेदि रच कर उस पर जल छिड़कें। जितना शरीर का बोझ हो उतना घी लेवें और उसे कपड़े में छान कर उसमें प्रति सेर एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केसर अच्छी भांति मिलावें चन्दन, पलास, आम आदि की लकड़ी लेकर वेदि के गढ़े के बराबर उसके टुकड़े करके नीचे से आधी वेदि को उससे भर दें। उसके ऊपर बीच में शव को धर कर कपूर, गूगल, चन्दनादि का चूर्ण शव के चारों ओर बखेर दें। फिर उस पर वेदि के तट से १२ उंगल ऊंची लकड़ी चुन दें और उसमें आग दे दें। थोड़ा २ घी लेकर यजुर्वेद के उनतालीसवें अध्याय के प्रत्येक मन्त्र को बोल कर चारों ओर से जलावें। फिर जब शव भस्मीभूत हो जावे तो लौट कर किसी जलाशय में वा अपने २ घर में आकर स्नानादि करके निःशोक हो जावें और यथायोग्य अपने २ कार्य करें। फिर दाह के दिन से तीसरे दिन जब सब वेदि ठण्डी हो जावे तो वहां जाकर, अस्थिसहित सब भस्म को लेकर, किसी दूसरे शुद्ध देश में गढ़ा खोद कर, गढ़े में उसे रखकर गढ़े को मिट्टी से ढक दें। इतना ही वेदोक्त, सनातन, उत्तमोत्तम मृतकसंस्कार है, न इससे अधिक है, न इससे न्यून।

आपके मित्र के शरीर की जो अस्थि आपके पास हैं उन्हें भी किसी जगह गढ़ा खोद कर, उसमें रख कर मिट्टी से ढक देना चाहिये।

९—दोनों पत्र आपके लिखे अनुसार इंग्लैण्ड देश भेज दिये गये।

१०—जब आपका निश्चय हो जाय तब सभा के नाम में परिवर्त्तन कर दीजिये। विद्वानों की सभा का यह नियम है कि जब कोई नया कार्य्य करना हो तो उसे उत्तम और विद्वान् सभासदों से निवेदन करके उनकी अनुमति से करना चाहिये। सभा का जो कार्य्य सब के उपकार के विरुद्ध हो उसे कभी न करना चाहिये। जो कार्य्य का फल परिणाम में आनन्द हो उसे यथासमय विना विलम्ब के पुरुषार्थ से करना चाहिये। अतः जब अवसर प्राप्त हो तो वहां की सभा का नाम आर्य्यसमाज रखने में मेरी समझ में कोई हानि नहीं है।

११—आगे को श्रीमान् जो पत्र मेरे पास भेजें वह मेरे ही नाम से भेजें, परन्तु पूर्व लिखित श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि के द्वारा ही भेजें अर्थात् पत्र के ऊपर मेरा और लिफ़ाफ़े के ऊपर श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि का नाम लिख कर भेजें।

सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्वशक्तिमान्, दयासागर, न्यायाधीश परब्रह्म को असंख्य धन्यवाद देने चाहिये कि जिसकी कृपा से आपके साथ हमारा और हमारे साथ आपका संप्रीति और उपकार का समय प्राप्त हुआ। इस अमूल्य समय को पाकर आप और हम ऐसा प्रयत्न करें कि भूगोल में पाखण्ड मत, पापाचरण, अविद्या, दुराग्रह आदि दोषों के दूर होने से वेद, प्रमाण, सृष्टिक्रम के अनुकूल एक सनातन, सत्य मत फैले।

पत्र द्वारा बहुत ही थोडा कार्य्य होता है। जब तक आमने सामने परस्पर बातचीत नहीं होती तबतक पूरा लाभ नहीं होता। परन्तु हमें आशा है कि जिस परमेश्वर के अनुग्रह से पत्र द्वारा बातचीत हुई है उसकी ही कृपा से कभी हमारा साक्षात् समागम भी होगा। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पुरुषों को अधिक लिखने से क्या।

श्रावण वदी ११ शुक्रवार संवत् १९३५ अर्थात् २६ जुलाई सन् १८७८ ई०।

इस पत्र को पढ़ने के पश्चात् किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि स्वामीजी निम्न बातों को मानते थे:—

१—परमेश्वर एक है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, निराकार, निर्विकार, अविनाशी, अनादि, अनन्त, न्यायकारी, दयालु, जीवों को उनके पाप पुण्य के अनुकूल अपनी न्याय-व्यवस्था से अशुभ और शुभ फल देने वाला, जन्म-मरण के बन्धन में न आने वाला, सृष्टिकर्त्ता, धारण और संहार करने वाला है। उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी योग्य है।

२—जीव अनादि, अविनाशी है। वह इस वर्त्तमान शरीर को छोड़ने के पश्चात ईश्वर की न्याय-व्यवस्था से अपने कर्मानुसार शरीरान्तर को प्राप्त होता है।

३—मनुष्य मरने के पश्चात् भूत वा प्रेत बन कर कोई कार्य नहीं कर सकता, न वह अपनी छाया को ही प्रकट कर सकता है, न किसी माध्यम द्वारा उसका जीवात्मा बुलाया जा सकता वा बातचीत आदि कर सकता है यह सब धूर्त्तों का फैलाया हुआ कपटजाल है। जादू टोना भी मिथ्या है।

४—वेद ईश्वरोक्त हैं और सर्व सत्य विद्यायुक्त और धर्म विषय में परम प्रमाण है।

स्वामीजी का उपर्य्युद्धृत पत्र कर्नल को अवश्यमेव अगस्त सन् १८७८ की किसी तारीख को मिल गया होगा। इस पत्र के पाने के पश्चात् वह कई मास अमेरिका में रहे, परन्तु उन्होंने एक पत्र में भी स्वामीजी के उपर्य्युक्त मन्तव्यों से मतभेद प्रकट नहीं किया।

स्वामीजी को कर्नल के पत्रों से यह पक्का विश्वास हो गया था कि थियोसोफिस्ट लोगों के वही सिद्धान्त हैं जो आर्य्यसमाज के हैं। उन्होंने अपनी २७ जुलाई सन् १८७८ की चिट्ठी में राय मूलराज एम० ए० को लिखा था कि अमेरिका वाले बराबर वेद को मानते हैं और उसकी शिक्षा के इच्छुक हैं और यही कारण था कि वह थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्य्यसमाज की शाखा बनाने पर सहमत हो गये।

१५ फर्वरी सन १८७९ को मैडम और कर्नल बम्बई पहुँच गये और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उन्हें अपने ही बंगले पर ठहराया। जहाज से उतरने पर उन्होंने देखा कि केवल १०–१२ मनुष्य ही उनके स्वागत को आये हैं। इससे उन्हें कुछ खेद हुआ क्योंकि वह समझते थे कि सोसाइटी का आर्य्यसमाज से सम्बन्ध हो जाने से आर्य्यसमाज के सदस्य उन का बड़े उत्साह और समारोह से स्वागत करेंगे। उनकी खिन्नता और भी बढ़ गई जब उन्होंने देखा कि अन्य सम्प्रदायों जैन, हिन्दू, पारसी आदि के लोग तो उनसे मिलने आते हैं, परन्तु आर्य्यसमाज के सभासद नहीं आते। उन्होंने अनुसन्धान किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने ७००) रु० जो उन्होंने उसके पास भेजा था आर्य्यसमाज बंबई को नहीं दिया है और न किसी को यह बतलाया है कि आर्य्यसमाज के लिये अमेरिका से रुपया आया है और इस बात को गुप्त रखने के लिये स्वयं उसने आर्य्यसमाज के सभासदों को उनसे मिलने से रोक दिया है। मैडम और कर्नल को हरिश्चन्द्र के कपटपूर्ण व्यवहार से बहुत दुःख हुआ। वह आर्य्यसमाज का सभापति था और थियोसोफिकल सोसाइटी का भी सदस्य बन गया था, उनमें और स्वामीजी में पत्र व्यवहार भी उसके ही द्वारा होता था

जो रुपया आया था वह उसकी प्राप्ति भी स्वीकार करता रहा था। अतः वह उनका विश्वास पात्र बन गया था और उन्हें उस पर अविश्वास करने का कोई कारण न था। जब उसने उनके साथ यह विश्वासघात किया तो स्वभावतः ही उन्हें दुःख होना था। उन्होंने हरिश्चन्द्र से रुपये वापस माँगे तो वह बहुत चकराया और इधर उधर की बातें बनाने लगा। जब उसकी कोई बात न चली तो अन्त में उसने कहा कि मैंने यह रुपया इसलिये नहीं दिया था कि स्वयं स्वामीजी ने मुझे ऐसी आज्ञा दी थी। उसका यह कथन सर्वथा मिथ्या था। महाराज ने २५ मई सन् १८७९ के पत्र में अलीगढ़ से अपने कार्य्यकर्त्ता मुन्शी समर्थदान को स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि "हमें हरिश्चन्द्र ने एक बार लिखा था अमेरिका वाले कुछ धन भेजना चाहते हैं। उसके पश्चात् जब वह हमसे मिला तो हमने उससे कह दिया था कि इस बात को सर्व साधारण में और विशेषतः आर्य्य समाजियों से प्रचरित कर दो कि अमेरिका वाले आर्य्यसमाज की सहायता के लिये धन भेजना चाहते हैं और जो धन आवे उसे दाताओं के नाम सहित पत्रों में मुद्रित करादो। उसने यह उत्तर दिया था कि मैं अमेरिका वालों की इच्छा के अनुसार कार्य्य करूँगा। हमने उससे कह दिया था कि जो धन प्राप्त हो उसे तीन कार्य्यों में व्यय करना।

(१) वेदों के सम्बन्ध में ज्ञान और पुस्तक-प्रचार में, (२) सदाचार की शिक्षा देने वाली सभाओं की सहायता में और (३) दीन दरिद्रों की सहायता में। परन्तु अब ज्ञात होता है कि उसने इन कार्य्यों में से एक भी नहीं किया।

हरिश्चन्द्र को कर्नल के आग्रह पर वह रुपया लौटाना पड़ा। उधर आर्य्यसमाज बम्बई ने चैत्र शु० १ सं० १९३६ को एक विशेष अधिवेशन में प्रस्ताव स्वीकार करके उसे आर्य्यसमाज से निकाल दिया। तब उसने यह कहना आरम्भ किया कि आर्य्यसमाज के सभासदों के वर्त्ताव से घृणित होकर मैंने आर्य्य समाज के सभापतित्व को स्वयं त्याग दिया है और मैडम के क्रूर स्वभाव के कारण मेरा सम्बन्ध उनसे भी शिथिल हो गया है। इसी आशय का एक पत्र उसने थियोसोफिकल सोसाइटी न्यूयार्क के कारेस्पांडिंग सेक्रेटरी डब्ल्यू० क्यू० जज को २४ मार्च सन् १८७९ को लिखा और नेटिव ओपिनियन नामक समाचार पत्र में भी ऐसी ही निराधार बातें प्रकाशित कराईं। तब तो कर्नल को प्रकाश्य रूप से हरिश्चन्द्र की सारी पोल खोलनी पड़ी जिससे जनता को सत्य सत्य वृत्तान्त ज्ञात हो गया।

हरिश्चन्द्र एक कुशल फोटोग्राफर था और इस मिष से उसे राजा महाराजाओं, सम्भ्रान्त व्यक्तियों और उच्च पदस्थ अंग्रेजों से मिलने का अवसर प्राप्त होता रहता था। वह सुधार तथा अन्य सार्वजनिक कार्य्यों में अग्रभाग लेने का दिखावा किया करता था। भगवद्गीता पर उसने एक भाष्य भी लिखा था जिसे लोगों ने पसन्द किया था। इस प्रकार समाज में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, परन्तु इस नीच कार्य्य से उसकी वैसी ही अप्रतिष्ठा हो गई। इण्डियन स्पेक्टेटर ने तो उसकी ऐसी धूल उड़ाई कि उसे बम्बई में मुख दिखाना दूभर हो गया और अन्त को वह इंग्लैण्ड चला गया। महाराज ने वेदभाष्य का चन्दा प्राप्त करने का कार्य्य भी हरिश्चन्द्र को ही सौंप रक्खा था। उसमें भी उसने बहुत गड़बड़ की थी। वह काम भी महाराज ने उससे निकाल लिया और मुं० समर्थदान को उससे हिसाब

लेने को भेजा, परन्तु वह डेढ़ मास तक टालमटोल करता रहा और फिर भी उसने हिसाब साफ न किया।

कर्नल और मैडम के बम्बई पहुँचने के ४ दिन के पश्चात् ही महाराज संवत् १९३५ के कुम्भ पर वैदिक धर्म्म प्रचारार्थ २० फर्वरी सन् १८७९ को ज्वालापुर पहुँच गये थे। उन्हें दोनों महानुभावों के आगमन का समाचार मिल गया था, अतः उन्होंने मुं० समर्थदान को १० मार्च सन १८७९ को एक चिट्ठी लिखी कि बम्बई जाकर अमेरिका वालों से मिलना और उनका समाचार लिखना।

कर्नल और मैडम ने महाराज को लिखा कि हम आप से मिलने आते हैं, परन्तु उन्होंने यह समझ कर कि मेले के जमघट में कर्नल और मैडम को वृथा कष्ट होगा उत्तर दे दिया था कि आप यहाँ आने का कष्ट न करें, हम स्वयं ही आप से मिल लेंगे।

कर्नल और मैडम की आर्य्यसमाज बम्बई के सभासदों ने बड़े प्रेम से सेवा शुश्रूषा की और उनके कई व्याख्यान कराये जिन्हें सुनने के लिये सहस्रों मनुष्य आते थे। वह व्याख्यान मुद्रित भी हुए थे। उनमें भी उन्होंने कोई बात ऐसी नहीं कही जिससे यह पाया जाता कि उनका महाराज से सिद्धान्तविषय में कोई मतभेद है।

महाराज को हरिद्वार में दस्तों का रोग हो गया और वह वहां से देहरादून चले गये। अभी महाराज देहरादून ही थे कि मैडम और कर्नल २९ अप्रेल सन् १८७९ को बम्बई से चल कर सहारनपुर पहुँच गये। आर्य्यसमाज सहारनपुर के सदस्यों ने उनका प्रेमपूर्वक आतिथ्य सत्कार किया। ३० अप्रेल को उनका एक व्याख्यान इस विषय पर हुआ कि अमेरिका में हम से कैसा बर्ताव किया जाता है और हम अमेरिका से भारतवर्ष क्यों आये हैं। सायं काल को आर्य्यसमाज ने उन्हें देशी ढंग पर भोज दिया जिसे उन्होंने सहर्ष खाया। उन्होंने सहारनपुर से महाराज को तार दिया कि हम आप के दर्शनार्थ देहरादून आते हैं परन्तु महाराज ने उन्हें उत्तर दिया कि आप को यात्रा में कष्ट होगा हम स्वयं ही सहारनपुर आते हैं। तदनुसार वैशाख शु० १० सं० १९३५ = १ मई सन १८७९ को महाराज सहारनपुर पहुँच गये। २ मई को वहीं रहे और ३ मई को कर्नल और मैडम को साथ लेकर मेरठ चले गये। आर्य्यसमाज के सदस्यों ने रेलवे स्टेशन पर उनका स्वागत किया और कर्नल और मैडम को एक बंगले में और महाराज को दूसरे बंगले में ठहराया। बाबू छेदीलाल की कोठी पर सायंकाल उन्हें भोज दिया गया जिसमें सब भोज्य द्रव्य निरामिष और देशी ढंग का था। कर्नल और मैडम सब से मिलते समय 'नमस्ते' कहते थे। ४ मई को महाराज का व्याख्यान ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना और उपासना के विषय पर हुआ। व्याख्यान के अन्त में कर्नल ने खड़े होकर कहा कि यदि आप लोग कल पधारें तो मैं कुछ अपने विचार आप के सामने रखना चाहता हूँ। तदनुसार ५ मई को विज्ञापन देकर कर्नल का व्याख्यान कराया गया। उसमें उन्होंने पहले तो अमेरिका का कुछ वर्णन किया। बहुत सी बातों में वहाँ की प्रशंसा करके कहा कि धार्म्मिक विषय में वहाँ और समस्त योरुप में ईसाई मत और पादरियों के कारण घोर अन्धकार फैल रहा है। अतः हमने ५ वर्ष से न्यूयार्क में एक सोसाइटी थियोसोफिकल सोसाइटी के नाम से स्थापित की है और स्वामीजी को अपना गुरु और

मार्गदर्शक निर्वाचित किया है। हमें आशा है कि उनके चरणों की कृपा से हम अपने उद्देश्य में सफल होंगे, इत्यादि।

जब सभा विसर्जन हो गई तो आर्य्यसमाज के सदस्य, दश ईसाई और चार योरोपियन जिनमें एक गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेड मास्टर थे बैठे रह गये। मैडम ने ईसाइयों को लक्ष्य करके कहा कि जो कुछ पूछना हो पूछिये, परन्तु किसी ने कोई प्रश्न न किया। योरोपियन हेड मास्टर ने कुछ प्रश्न किये जिनके सन्तोषजनक उत्तर पाकर वह चुप हो गये।

कर्नल और मैडम से जो बात-चीत महाराज की सहारनपुर और मेरठ में हुई उस से महाराज को पूर्ण विश्वास हो गया कि दोनों महानुभाव वैदिक धर्म्म के अनुयायी हैं, जिस का प्रमाण यह है कि जब ७ मई को दोनों व्यक्ति बम्बई चले गये तो ८ मई को महाराज ने आर्य्यसमाज शाहजहाँपुर के मंत्री को एक पत्र लिखा जिस में उन की बहुत प्रशंसा की। उस पत्र का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

हमें "ज्ञात हुआ कि जैसे उन (कर्नल और मैडमों के पत्रों से उन की बुद्धि प्रकट होती है उन के मिलने से सौ गुनी अधिक योग्यता प्रकट हुई। और अत्यन्त सभ्यता उन की हम को प्रकट हुई।" सहारनपुर और मेरठ में उन से लोगों के मिलने, प्रश्नोत्तर करने आदि का उल्लेख करते हुए महाराज लिखते हैं कि "जिस किसी ने सत् शास्त्रों में जो कुछ शङ्का करी उस का उत्तर सत्यार्थ मिलता रहा अर्थात् अमेरिका वाले साहबों ने सब के चित्त पर निश्चय कर दिया कि जितनी भलाई और विद्या हैं वह सब वेदों से ही मिल सकती हैं और जितने वेदविरुद्ध मत हैं वह सब पाखण्डी हैं।.........उक्त साहबों से जो हमारा समागम हुआ है यह इस आर्य्यावर्त्त आदि देशों के मनुष्यों की उन्नति का कारण है। जैसे कि एक परम औषधि के साथ सुपथ्य का मेल होने से शीघ्र ही रोग का नाश हो जाता है इसी प्रकार के समागम से आर्य्यावर्त्तादि देशों में वेद मत का प्रकाश होने से असत्य रूपी रोग का नाश शीघ्र ही हो जावेगा। और उक्त साहबों का आचरण और स्वभाव हम को अत्यन्त शुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि यह लोग तन, मन, धन से सब प्रकार वेद मत की सहायता करने में उद्यत हैं जो बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उक्त साहबों के विषय में यह बात उड़ा दी थी कि यह लोग जादू जानते हैं और जालसाजों की भाँति छल-कपट की बातें करते हैं यह सब बात उनकी मिथ्या ही है क्योंकि जिसको जादू कहते हैं वह सीधे रास्ते में पदार्थ-विद्या है। उस विद्या को मूर्ख लोगों ने जादू समझा है। उन्होंने मूर्खों के भ्रम दूर करने के लिए और सन्मार्ग में चलाने के लिये धारण किया है कुछ दोष नहीं है।" अन्त में महाराज लिखते हैं कि "इन साहबों के पूर्व पत्रों और सात दिन की बात चीत करने से निश्चय हो गया है कि इनका तन, मन, और धन सत्य के प्रकाश और असत्य के नाश करने और सब मनुष्यों के हित करने में है जैसा कि अपने लोगों का सर्वथा निश्चय से उद्योग है।"

फिर ५ मई सन् १८७९ के पत्र में महाराज ने मेरठ से बम्बई को लिखा है कि "साहब (कर्नल) की और हमारी सम्मति मिल गई है, किसी प्रकार का भेद नहीं है और जो कुछ हरिश्चन्द्र ने उनके चित्त में शङ्का डाली थी वह सब निवृत्त हो गई है। साहब अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण सज्जन पुरुष हैं। उन में किसी प्रकार का छल-छिद्र नहीं है। परन्तु हरिश्चन्द्र

ने ऐसा कपट किया कि जिसको हम कथन नहीं कर सकते हैं, परन्तु अब सावधान रहना चाहिये ।

फिर एक पत्र में जो ५ मई का हो है महाराज लिखते हैं कि "उक्त साहबों की अपने समाज से कोई बात विरुद्ध नहीं है अर्थात् अनुकूल आचरण-स्वभाव है क्योंकि चार पाँच दिन से जो हम उन के साथ बात चीत करते हैं तो सर्वथा यह लोग शुद्ध अन्तःकरण प्रतीत होते हैं और थियोसोफिकल सोसाइटी में जो हमारा नाम लिखा गया है यदि तुम उस पत्र को भेज देते तो हम साहब को दिखला देते परन्तु ज़बानी जो साहब से कहा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि हमारी थियोसोफिकल सोसाइटी का अभी तक यह प्रयोजन था कि सब मतों के लोग उस में प्रविष्ट हों और अपनी अपनी सम्मति देवें। अब आर्य्यसमाज के नियमों को समझ कर जिस प्रकार आपकी आज्ञा होगी उसी प्रकार किया जावेगा। आगे को ऐसा न होगा और जो आर्य्यसमाज के नियमों को पसन्द नहीं करता है वह थियोसोफिकल सोसाइटी में नहीं रहेगा।

इसके पश्चात् १५ दिसम्बर सन् १८७९ तक कर्नल और मैडम का साक्षात्कार महाराज से नहीं हुआ। १५ दिसम्बर सन् १८७९ को उक्त दोनों महानुभाव महाराज से काशी में महाराजा विजय नगर के बाग़ में मिले। उनके साथ मिस्टर सिनेट इलाहाबाद के दैनिक अंग्रेज़ी पत्र पायोनियर के संपादक और एक योरुपियन महिला भी थीं। आपस में योग विषय पर बात चीत हुई। इस बार मिस्टर वाल मैजिस्ट्रेट काशी ने महाराज के व्याख्यानों को बन्द कर दिया था और उस अनुचित आज्ञा को हटवाने में कर्नल और मि० सिनेट ने विशेष यत्न किया। कर्नल के कई व्याख्यान काशी में हुए जिन में उन्होंने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और अपने व्याख्यानों में यहाँ तक कहा कि वेद जैसा प्राचीन और ज्ञानपूर्ण कोई ग्रन्थ दूसरा नहीं है। इसी वेद से सब जगह ज्ञान फैला है।........हमारी सभा में सब धर्म्म वाले सम्मिलित हो सकते हैं परन्तु वे नहीं जो ईश्वर और परलोक को नहीं मानते। इन्होंने थियोसोफिस्ट नाम का एक अंग्रेज़ीपत्र निकाला उसके आरम्भ और अन्त में 'नमस्ते' शब्द रहता था। यहाँ तक भी कर्नल और मैडम ने किसी शब्द, कर्म्म वा संकेत द्वारा यह प्रकट नहीं किया कि वह वेदानुयायी वा ईश्वर में विश्वास रखने वाले नहीं हैं, परन्तु कुछ काल पश्चात् आर्य्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध के विषय में जनता में कुछ भ्रम फैलने लगा, अतः उस की निवृत्त्यर्थ महाराज ने २६ जुलाई सन् १८८० = श्रावण बदी ५ सं० १९३७ को मेरठ से निम्न विज्ञापन 'विशिष्ट विज्ञापन' के नाम से प्रचरित किया।

सब सज्जनों को विदित हो कि आर्य्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी का जैसा संबंध है वैसा प्रकाशित कर देना मुझ को अत्यन्त उचित इस लिये हुआ कि इस विषय में मुझ से बहुत मनुष्य पूछने लगे और इस का ठीक आशय न जान उलटा निश्चय कर कहने लगे कि आर्य्यसमाज थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखा है, इत्यादि भ्रम की निवृत्ति कर देनी आवश्यक हुई। जो ऐसी ऐसी बातों के प्रसिद्ध रीति से उत्तर न दिये जायं तो बहुत मनुष्यों को अत्यन्त भ्रम बढ़कर विपरीत फल होने का संभव हो जाय। इस लिये सब आर्य्यों और अनार्य्यों को उस का सत्य २ वृत्तान्त विदित करता हूँ कि जिस से सत्य की दृढ़ता और भ्रमोच्छेद हो के सब को आनन्द ही सदा बढ़ता जाय। बाबू हरिश्चन्द्र

चिन्तामणि जो किसी समय बंबई आर्य्यसमाज के प्रधान थे उन से न्यूयार्क नगर अमेरिका की थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रधान कर्नल एच० एस० आल्काट साहब बहादुर और मैडम एच० पी० ब्लैवैट्स्की आदि से कुछ दिन आगे पत्र द्वारा एक दूसरी सभा के नियम आदि जान के सं० १९३५ के चैत्र में मेरे पास भी पत्र न्यूयार्क से आया था कि हम को भी आर्य्यावर्त्तीय प्राचीन वेदोक्त धर्मोपदेश विद्या दान कीजिए। मैंने उस के उत्तर में अत्यन्त प्रसन्नता से लिखा कि मुझ से जितना उपदेश बन सकेगा यथावत् करूँगा। इस के पश्चात् उन्हों ने एक डिप्लोमा मेरे पास भेजा कि जो थियोसोफिकल सोसाइटी आर्य्यावर्त्तीय आर्य्य समाज की शाखा करने के विचार के निमित्त था। जब वह डिप्लोमा फिर यहाँ से वहाँ गया तो सभा करके सभासदों को सुनाया तब बहुत से सभासदों ने इस बात से प्रसन्न हो कर उस को स्वीकार किया और बहुतों ने कहा कि हम ठीक ठीक जानने के पश्चात इस बात को स्वीकार करेंगे।

जब वहाँ ऐसा विरुद्ध पक्ष हुआ तब फिर मेरे पास वहाँ से पत्र आया कि अब हम क्या करें। इस पर मैंने पत्र लिखा कि यहाँ आर्य्यावर्त्त में अब तक भी बहुत मनुष्य आर्य्य समाज के नियमों को स्वीकार नहीं करते, थोड़े से करते हैं तो वहाँ वैसी बात के होने में क्या आश्चर्य है? इसलिये जो मनुष्य आर्य्यसमाज के नियमों को अपनी प्रसन्नता से मानें वह वेदमतानुयायी और जो न मानें वह केवल सोसाइटी के सभासद रहें, उनका अलग होना अच्छा नहीं, इत्यादि विषय लिख के मैंने बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास पत्र भेजा और उनको लिखा कि इस पत्र की अंग्रेजी करा शीघ्र वहाँ भेज दीजिये। परन्तु उन्होंने वह पत्र न्यूयार्क में न भेजा। जब समय पर पत्र का उत्तर वहाँ न पहुँचा तब जैसा उत्तर मैंने दिया था वैसा ही वहाँ दिया गया कि जो वेदों को पवित्र सनातन ईश्वरोक्त मानें वह वेद की शाखा में गिने जायं और आर्य्यसमाज की शाखा रहें परन्तु वह सोसाइटी की भी शाखा रहें क्योंकि वह सोसाइटी के एक अङ्गवत् हैं। अर्थात् न आर्य्यसमाज थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखा और न थियोसोफिकल सोसाइटी आर्य्यसमाज की शाखा है, ऐसा सब सज्जनों को जानना उचित है। इससे विपरीत समझना किसी को योग्य नहीं। देखिये, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस समय बम्बई में आर्य्यसमाज का स्थापन हुआ उसी समय न्यूयार्क में थियोसोफिकल सोसाइटी का आरम्भ हुआ। जैसे आर्य्यसमाज के नियम लिखके माने गये वैसा ही नियम थियोसोफिकल सोसाइटी के निश्चित हुए। और जैसा उत्तर मैंने तीसरे पत्र में बाहर लिख के वेद की शाखा और सोसाइटी के लिये भेजा था उसके पहुँचने के पूर्व ही न्यूयार्क में वैसा ही कार्य्य किया गया। क्या यह सब कार्य्य ईश्वरीय नियम के अनुसार नहीं हैं? क्या ऐसे कार्य्य अल्पज्ञ जीव के सामर्थ्य से बाहर नहीं हैं कि जैसे कार्य्य पृथ्वी के ऊपर जिस समय में हों वैसे ही भूमि के तले अर्थात् अमेरिका में उसी समय हो जायं? यह बड़ी अद्भुत बातें जिसकी सत्ता से हुई हैं, अर्थात् ५ सहस्र वर्षों के पश्चात् आर्य्यावर्त्तीय धार्म्मिक मनुष्यों और पातालस्थ अर्थात् अमेरिका निवासी मनुष्यों का वेदोक्त सनातन सुपरीक्षित धर्म्म व्यवहारों में बान्धवीय प्रेम प्रकट किया है, उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा को कोटि २ धन्यवाद देता हूँ कि हे सर्वशक्तिमन्, सर्वव्यापक, दयालो, न्यायकारिन्, परमात्मन्! जैसा आपने कृपा से वह कृत्य किया है वैसे भूगोलस्थ सब धर्म्मात्मा व विद्वान

मनुष्यों को उसी वेदोक्त सन्मार्ग में स्थिर शीघ्र कीजिये कि जिससे परस्पर विरोध छूट कर मित्रता हो के सब मनुष्य एक दूसरे की हानि करने से पृथक् हो के अन्यों का सदा उपकार किया करें। वैसा ही हे मनुष्यो! आप लोग भी उसी परब्रह्म की प्रार्थना पूर्वक पुरुषार्थ करें कि जिससे हम सब लोग एक दूसरे को दुःखों से छुड़ाते और आनन्द से युक्त रहें।........

ओ३म् मिति श्रावण वदि ५ सोमवार संवत् १९३७
हस्ताक्षर स्वामी दयानन्द सरस्वती।

१० सितम्बर सन् १८८० को कर्नल और मैडम महाराज से भेंट करने मेरठ आये जहाँ महाराज पहिले से विराजमान थे। उन्होंने योगविषय में महाराज से प्रश्नोत्तर किये। प्रसङ्ग ऐसा था ही जिसमें ईश्वर का विषय आना आवश्यक था। जब इन्होंने ईश्वर के अस्तित्व में कुछ सन्देह प्रकट किया तो महाराज एक दम विस्मित हो उठे। जिन्हें वह अब तक ईश्वर का विश्वासी समझते रहे थे और जो स्वयं भी अपने को आस्तिक प्रकट करते रहे थे उन्हें नास्तिकता के गर्त्त में पतित देखकर विस्मय होना ही था, जब एक बार सन्देह जागृत हो गया फिर तो अन्य बहुत सी बातें नये रूप में स्मृतिपथ पर आरूढ़ हो गईं और उनके कितने ही कार्य्य सन्दिग्ध दृष्टि पड़ने लगे। जिनके समागम को उन्होंने उपर्य्युद्धृत विशिष्ट विज्ञापन में ईश्वरप्रेरित लिखा था वह आसुरीभाव-परिचालित दिखाई देने लगा। महाराज ने जैसे ही कि उन्हें अमेरिका वालों की नास्तिक मनोवृत्ति का पता लगा उनसे स्पष्ट रूप में पूछा कि ईश्वर के विषय में आपके क्या विचार हैं। इस प्रश्न का करना था कि वह एक दम घबरा उठे कि अब सारी पोल खुल जायगी। स्पष्ट प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने में आनाकानी करने लगे। महाराज ने उन्हें तीन दिन तक समझाया, युक्तियों पर युक्तियाँ दीं, जिनका कोई उत्तर उनसे न बन पड़ा। महाराज ने उनसे बहुतेरा कहा कि ईश्वर विषय पर शास्त्रार्थ कर लो, परन्तु वह उद्यत न हुए और ऐसे घबराये कि मेरठ में ठहरना तक दूभर हो गया और १२ सितम्बर को अमृतसर चल गये।

इस प्रकार सन्देह की मात्रा कर्नल और मैडम के व्यवहार से दिनों दिन बढ़ती ही गई। और उसका बढ़ना स्वाभाविक ही था। महाराज के हृदय में कोई छल-छिद्र न था परन्तु दूसरी ओर कपटजाल और कूट नीति के अतिरिक्त अन्य कुछ न था। वास्तव में बात यह थी कि कर्नल और मैडम केवल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये महाराज को एक उपकरण बनाना चाहते थे। उनका अभिप्राय उनके द्वारा विदेश में अपने विचारों के प्रचार के निमित्त एक वेदि प्राप्त करना और भारतवासियों से परिचित होना था जो उनके भारत आगमन के थोड़े दिन पीछे ही प्रकट हो गया था। उनकी चाल में आकर अनेक आर्य्य-समाजी थियोसोफिकल सोसाइटी के सभासद् बन गये। जहाँ भी वह गये आर्य्यों ने उन की सेवा-शुश्रूषा करने में कोई त्रुटि न की और इस प्रकार उनके लिये कार्य्यक्षेत्र का द्वार खुल गया। वह ऊपर से तो महाराज के प्रति श्रद्धा भक्ति प्रकट करते रहे परन्तु भीतर से कूट नीति का अवलम्बन करके अपने विचारों का प्रचार करते रहे। मेरठ में उन्होंने ईश्वर-वादी होने से ही नकार कर दिया और शास्त्रार्थ से भाग निकले। उसके पश्चात् उनकी अनेक लीलाएं इसी प्रकार की हुईं जो कोई सद्भावयुक्त मनुष्य कदापि नहीं कर सकता, इतना ही नहीं, मैडम ने शिमले से एक अत्यन्त असभ्यतापूर्ण पत्र महाराज को लिखा जिन्हें वह

एक बार नहीं, अनेक बार स्पष्ट शब्दों में अपना सर्वोच्च धर्म्मगुरु मान चुकी थीं। यह उनके लिये सर्वथा अनुचित था।

यह सब बातें देखकर महाराज ने चाहा कि इन लोगों से सारी बातें स्पष्ट रूप से हो जानी चाहियें। इसी उद्देश्य से वह बम्बई गये। वहाँ कर्नल और मैडम पहले से ही ठहरे हुए थे। स्टेशन पर कर्नल और आर्य्यसमाज के अनेक प्रतिष्ठित सभासद् उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे। सब ने महाराज से प्रेमपूर्वक नमस्ते कहा और कर्नल उन्हें बालकेश्वर गोशाला को लिवा ले गये जहाँ वह स्वयं ठहरे हुए थे और वहीं ठहराया। महाराज ने कई बार यत्न किया कि उनसे सब बातों पर खुले शब्दों में विचार हो जाय, परन्तु कर्नल इसे किसी न किसी प्रकार टालते रहे यहाँ तक कि महाराज को बम्बई आये हुए दो मास से अधिक हो गये। जनवरी से मार्च का महीना आ गया परन्तु कर्नल से ईश्वर विषय पर बात चीत करने का अवसर न आया। अब महाराज के लिये अधिक प्रतीक्षा करनी असह्य हो गई और उन्होंने सेठ पन्नाचन्द आनन्दजी और राव बहादुर गोपाल राव हरि-देशमुख को कर्नल के पास भेजकर कहलाया कि या तो आप हम से विचार कर लें नहीं तो हम प्रकाश्य सभा में भाषण देकर सारी लीला को प्रकट कर देंगे। इस पर कर्नल ने १७ मार्च सन् १८८२ को विचार करने को कहा परन्तु उन्होंने ऐसा न किया। तब २१ मार्च को कर्नल और मैडम के नाम एक चिट्ठी बा० जनकधारीलाल दानापुर निवासी से जो उनके दर्शनों और आर्य्यसमाज बम्बई के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आये थे इस आशय की लिखाई कि मेरठ में आप ने एक व्याख्यान दिया था जिससे ज्ञात हुआ कि आप लोगों को ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह है और आप लोगों ने जो चिट्ठी पहले अमेरिका से लिखी थी उसमें अपने धर्म्म का नाम थियोसोफ़िस्ट लिखा था। हम ने थियोसोफ़िस्ट शब्द के अर्थ अंग्रेज़ी जानने वालों से पूछे तो उन्होंने कोष को देखकर 'थियोसोफ़ी' शब्द के अर्थ ईश्वर की बुद्धिमत्ता बतलाये थे। इससे हमने आप को आस्तिक समझा था और इस कारण आप से मित्रता करने में मुझे कोई रुकावट नहीं रही थी। अब आप के व्याख्यान इसके विपरीत देखते हैं। आप से और हम से मित्रता हो चुकी है अतः कल के दिन अथवा जितना शीघ्र हो सके आप मेरे पास चले आओ वा मुझे अपने पास बुलालो वा कोई अन्य स्थान नियत करो कि जहाँ हम दोनों मिलकर इस विषय में शास्त्रार्थ करें। यदि आप से हो सके तो हमारे मन से ईश्वर का विचार उठा दो और अपने जैसा बना लो, अन्यथा हम से हो सकेगा तो हम आप को ईश्वर का प्रमाण देंगे और आप को अपने जैसा बनावेंगे।

यह पत्र महाराज ने बम्बई के एक रईस को दिया और कहा कि इसे कर्नल और मैडम को दे आओ और इसका उत्तर ले आओ। उनसे महाराज ने यह भी कहा कि उन से हमारी ओर से कहना कि हमें बम्बई में आये कितने ही दिन हो गये। हम जिस दिन बम्बई उतरे थे तो स्टेशन पर हम से मिलने आप दोनों गये थे और उसी समय हमने आप से कहा था कि ईश्वर विषय में हमारा और आप का समान विचार हो जाना अत्यन्त आवश्यक है तो आपने कहा था कि इसमें शीघ्रता क्या पड़ी है, एक न एक दिन हो रहेगा। हमने उत्तर दे दिया था कि यह सब से आवश्यक बात है, इसमें विलंब करना उचित नहीं है परन्तु आप लोगों ने अब तक उसका कोई प्रबन्ध नहीं किया। हमें इस बात की बड़ी

इच्छा है, यदि आप इससे नकार करेंगे तो हम में और आप में मित्रता रहनी कठिन हो जायगी क्योंकि हम नास्तिकों के खण्डन करने में आलस्य करना पाप समझते हैं।

पत्रवाहक गये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि कर्नल दिसूर चले गये हैं। उन्होंने मैडम को पत्र दिया और महाराज का सन्देश पहुँचाया परन्तु मैडम ने पत्र का लिखित उत्तर न देकर कहला भेजा कि हमें आप से इस विषय में शास्त्रार्थ करने का अवकाश नहीं है।

२२ मार्च को महाराज ने दूसरा पत्र मैडम के पास भेजा कि कर्नल ने हमें वचन दिया था कि हम शीघ्र ही इस विषय में शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु वह उसे पूरा किये बिना ही अन्यत्र चले गये। सो यदि तीन चार दिवस के भीतर आप अकेली अथवा कर्नल सहित इस बखेड़े को न निबटा लोगी तो मैं २८ मार्च सन् १८८२ मंगलवार को फ्रामजी कावसजी हॉल में आप के विरुद्ध वक्तृता दूँगा।

जब मैडम ने इस पत्र का कोई उत्तर न दिया तो एक विज्ञापन छपाकर बाँटा गया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उपर्युक्त तारीख को फ्रामजी काऊसजी हॉल में सन्ध्या के ६ बजे आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के भूत और वर्त्तमान सम्बन्ध पर वक्तृता देंगे। इसके अनुसार महाराज ने व्याख्यान दिया और उसमें कर्नल और मैडम के पत्र पढ़कर सुनाये और उनसे सिद्ध किया कि इन लोगों के व्यवहार में कैसा परस्पर विरोध रहा है। उन्होंने कहा था कि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती की आज्ञानुसार चलेंगे, परन्तु उन्होंने उनकी आज्ञा के विरुद्ध किया। हम ने कहा था कि आप थियोसोफिस्ट पत्र में भूत, प्रेत, पिशाच आदि की कथाएं और उनके विद्यमान होने के विषय में लेख न छापें क्योंकि ऐसी योनियों का कोई अस्तित्व नहीं है, परन्तु वह न माने। हम ने एक पत्र कर्नल से कुक साहब को लिखाया था जिस में हम ने यह लिखने को कहा था कि कौन सा धर्म्म ईश्वर प्रणीत है, परन्तु ईश्वरप्रणीत का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द न लिख कर उस के स्थान में 'Most divine' शब्द लिखा। जब हमने उस पत्र को एक अन्य मनुष्य से पढ़वाया तब हमें यह बात ज्ञात हुई। जब हम से कर्नल फिर मिले तो हमने उक्त शब्द कटवाकर अपने आशय के अनुसार शब्द लिखाये। कर्नल ने पत्र में से उक्त शब्द काट तो दिया, परन्तु अपने थियोसोफिस्ट पत्र में वह Most divine शब्द ही छापा। पहले उन्होंने अपने को ईश्वर और वेदों का विश्वासी प्रकट किया था परन्तु अब उन में अविश्वास प्रकट करने लगे। पहले कहा था कि सभासदों से कोई फ़ीस नहीं ली जायगी, परन्तु पीछे १०) फ़ीस लगा दी। यह जिस धर्म्म के मानने वालों में व्याख्यान देते हैं उसी धर्म्म की प्रशंसा करने लग जाते हैं।

महाराज ने इन की योगविद्या की भी पोल खोली और कहा कि कर्नल और मैडम प्राचीन योगविद्या के विषय में कुछ भी नहीं जानते। मैडम कहती थीं कि मैं योगशास्त्र के अनुसार योगाभ्यास करती हूँ परन्तु जब उन से पातञ्जल योगशास्त्र के विषय में प्रश्न किये गये तो वह सर्वथा अनभिज्ञ पाई गईं। जो योगी होता है वह भीतर और बाहर से एक सा होता है परन्तु यह लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। योगी कभी नास्तिक नहीं होता परन्तु यह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। यह संभव है कि यह मेस्मरिज्म और पश्चिमीय विज्ञान के विषय में कुछ जानते हों। जो कुछ चमत्कार यह दिखाते हैं वह किसी गुप्त कला आदि का कौशल मात्र है परन्तु इन का यह कहना कि हम यह चम-

त्कार बिना कला आदि के सहारे केवल प्राकृतिक शक्तियों और अपनी इच्छा शक्ति से दिखाते हैं सर्वथा झूठ बोलना है।

इस प्रकार थियोसोफ़िकल सोसाइटी के प्रवर्त्तकों की पोल खोल कर महाराज ने आर्य्यसमाज का सम्बन्ध थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सदा के लिये तोड़ दिया।

व्याख्यान के पश्चात् महाराज ने निम्न लिखित विज्ञापन आर्य्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सम्बन्ध-विच्छेद की सूचनार्थ सब आर्य्यसमाजों में भिजवा दिया।

थियोसोफ़िस्टों की गोलमाल पोलपाल

श्री स्वामीजी ने और आर्य्यसमाज के लोगों ने इन के पूर्व पत्रों से यह अनुमान किया था कि इन से आर्य्यावर्त्त देश का कुछ उपकार होगा परन्तु वह अनुमान व्यर्थ हो गया, क्योंकि (१) जो जो इन्होंने प्रथम अपनी चिट्ठियों में प्रसिद्ध लिखा था कि हमारी थियोसोफ़िकल सोसाइटी आर्य्यसमाज की शाखा हुई उससे यह लोग बदल गये।

(२) इन्होंने कहा था कि वेदोक्त सनातन धर्म्म के ग्रहण और संस्कृत विद्या पढ़ने को विद्यार्थी होने के लिये आते हैं, वह तो न किया किन्तु अब किसी धर्म्म को नहीं मानते और न कुछ किसी धर्म्म की जिज्ञासा की, न आज तक संस्कृत विद्या पढ़ने का आरम्भ किया और न करने की आशा है।

(३) इन्होंने कहा था कि जो इस सोसाइटी के सभासदों से फ़ीस आवेगी वह आर्य्यसमाज के लिये होगी और बहुत सी पुस्तकें भेंट की जायंगी। वह तो कुछ भी न किया परन्तु जो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास ७००) रुपये भेजे थे वह भी निगल के बैठ रहे। पुस्तकों का दान करना तो दूर रहा किन्तु जिन बाबू छेदीलाल और बाबू शिवनारायण आर्य्यसमाज मेरठ के सभासदों ने उनके सत्कार में स्थान, यान, सवारी और खान पान आदि में सैंकड़ों रुपये व्यय किये इतने पर भी मैडम एच० पी० ब्लैवैट्स्की और एच० एस० कर्नल आल्काट साहब ने जो एक पुस्तक उन को दिया था उस के २०) झट ले लिए और लज्जित भी न हुए। इसके सिवाय सहारनपुर, अमृतसर, और लाहौर आदि के आर्य्यसमाजों ने बहुत सा सत्कार किया वह भी इन्होंने नहीं समझा और स्वामीजी ने भी जहाँ तक बना इनका उपकार किया। उस को न मान कर व्यर्थ लिखते हैं कि हम ने स्वामीजी का बहुत साहाय्य किया परन्तु स्वामीजी कहते हैं कि कुछ भी नहीं किया। और जो किया हो तो प्रसिद्ध क्यों नहीं करते हैं, सो कुछ भी प्रकट नहीं करते फिर कौन मान सकता है?

(४) प्रथम इन्होंने अपने पत्रों में और यहां आपके स्वामीजी और सब के सामने ईश्वर को स्वीकार किया। फिर उसके विरुद्ध मेरठ में स्वामीजी और अनेक भद्र पुरुषों के सामने दोनों ने कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। क्या यह पूर्वापर विरोध नहीं है? तब स्वामीजी ने कहा कि तुम ईश्वर के मानने का खण्डन करो और हम मण्डन करें, जो सच हो उसको मान लीजिए, तब इन्होंने इस बात को भी स्वीकार नहीं किया।

(५) वे जब आर्य्यावर्त देश में आने लगे तब एक समाचार 'इण्डियन स्पेक्टेटर' में पत्र तारीख़ २४ जुलाई सन् १८७८ में छपवाया था कि * न हम बुद्धिस्ट हैं न हम

* उनके स्वयं शब्द यह थे "हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को सर्वोच्च धर्मगुरु मानते हैं।

क्रिश्चियन और न हम ब्राह्मण अर्थात् पुराणमत के मानने वाले हैं, किन्तु हम आर्य्यसमाजी हैं। अब इससे विरुद्ध स्पष्ट छपवाया कि हम बहुत वर्षों से बुद्धिस्ट थे, और अब भी हैं। क्या यह कपट और छल की बात नहीं है और जनवरी सन् १८८० की चिट्ठी से सिद्ध होता है कि वह ईश्वर को मानते थे और आठ महीने के पश्चात् उसी सन् के अक्तूबर * के महीने में मेरठ में कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। यह उनका छल नहीं तो क्या है ?

(६) यहां आके आर्य्यसमाज की शाखा थियोसोफिकल सोसाइटी प्रथम स्वीकार करके पश्चात् कहा कि मुख्य सोसाइटी न आर्य्यसमाज की शाखा और न आर्य्यसमाज मुख्य सोसाइटी की शाखा है किन्तु जो एक दूसरे वेद की शाखा दोनों की साझे की है। इस से विरुद्ध अब छाप के प्रकट किया कि हमारी सोसाइटी कभी आर्य्यसमाज की शाखा नहीं हुई थी और हम आर्य्यसमाज से बाहर हैं। क्या यह भी इनकी विपरीत लीला नहीं है कि जब इन्होंने बम्बई में सोसाइटी बनाई थी उस में स्वामीजी के कहने सुनने और लिखे बिना उनका नाम अपने मन से सभासदों में लिख लिया था। जब यह प्रथम मेरठ में मूल जी के साथ मिले थे तब स्वामीजी ने कहा था कि बिना हमारे कहे सुने तुमने सोसाइटी में नाम क्यों लिखा, जहाँ लिखा हो काट दें। तब कर्नल आल्काट साहब ने कहा कि हम इस के आगे ऐसा कभी नहीं करेंगे, जहाँ लिखा है वहाँ से निकाल भी देंगे। फिर भी जब काशी में मिले तब तक इन्हों ने सोसाइटी से स्वामीजी का नाम नहीं निकाला। तब स्वामीजी ने कड़ा पत्र लिखा कि जहाँ हमारा नाम लिखा हो वहाँ से शीघ्र निकाल दो तब उन्होंने तार भेजा कि अब हम क्या लिखें, तब स्वामीजी ने तार में उत्तर दिया कि जब हमने प्रथम वैदिक धर्म्मोपदेशक लिखा था वैसा लिखो। न मैं तुम्हारा वा अन्य किसी सभा का सभासद् हूं किन्तु एक वेदमार्ग को छोड़ के किसी का संगी मैं नहीं हूं। इस पर भी जब वह शिमले में थे तब ब्लैवैट्स्की ने ऐसी असभ्यता की चिट्ठी लिखी कि जिस को कोई सभ्य स्वीकार न करे। क्या यह इन को योग्य था कि स्वामीजी ने कभी इन को न लिखा था और न कहा था। उस पर भी इन्होंने स्वयं स्वामीजी का नाम लिख लिया था। क्या यह लज्जा की बात नहीं है ?

(७) जो इन्होंने मेरठ में प्रतिज्ञा की थी कि आज पीछे आर्य्यसमाज के सभासदों को अपनी सोसाइटी के साथ होने को कभी नहीं कहेंगे। इसीके दो दिन पीछे जब बाबू छेदीलालजी अम्बाले तक इनके साथ गये तब मार्ग में बहुत समझाते गये कि आप हमारी सोसाइटी के साथ हूजिये और पत्र शिमले से बाबूजी के पास भेजा कि आप सोसाइटी के सभासद हूजिये।

(८) ऐसी २ छल कपट की बातें देख कर स्वामीजी ने आर्य्यसमाज मेरठ के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान दिया था कि इन की सोसाइटी में किसी वेदानुयायी को सभासद होने की कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि जैसे नियम आर्य्यसमाज के हैं वैसे इन की सोसाइटी के नहीं। इस पर शिमले में मेडम ब्लैवैट्स्की की ने असभ्यता और झूठ की भरी हुई

प्रचलित अर्थों में हम न बौद्ध हैं और न ब्राह्मण धर्म्म के हैं जैसा साधारणतया उसके अर्थ लिये जाते हैं और ईसाई तो निश्चयपूर्वक हैं ही नहीं।"

* अक्तूबर के स्थान में सितम्बर होना चाहिये क्योंकि कर्नल और मेडम तभी महाराज से मेरठ में मिले थे।

चिट्ठी लिखी और स्वामीजी ने भी उसका यथायोग्य उत्तर दिया। उस के पश्चात् स्वामीजी ने विचारा था कि जब हम बम्बई जावेंगे तब हम इन से सब बातों को स्पष्ट करलेंगे। ऐसा ही आर्य्यसमाज बम्बई चाहती थी। जब स्वामीजी बम्बई में पहुंचे तब बहुत सभासद और कर्नल साहब भी स्टेशन पर आये थे। जब स्वामीजी स्थान पर आ पहुँचे पश्चात् इन से स्वामीजी की बहुत सी बातें हुई और स्वामीजी ने यह भी विदित कर दिया कि आप से और भी बहुत बिषयों में बात करनी है तब उक्त साहब ने स्पष्ट उत्तर न दिया। जब कुक साहब के विषय में बात चीत करने के लिये स्वामीजी के पास आये तब भी कहा कि आप का और हमारा विचार हो जाना चाहिये था, तब कर्नल साहब ने कहा कि हाँ करेंगे। इस पर भी स्वामीजी ने पानाचन्द आनन्दजी और राव बहादुर गोपालराव हरिदेशमुख द्वारा कहलाया कि आप लोग मुझ से बात चीत करने को आवें नहीं तो हम को प्रसिद्ध भाषण देना होगा। तब पानाचन्द आनन्दजी ने इन्हों से पूछ के स्वामीजी से कहा कि १७ मार्च सन् १८८२ को कर्नल साहब बात चीत करने को आवेंगे, फिर भी न आये और बंबई से दिसूर पहुँच कर पत्र लिखा कि मैं नहीं आसका, परन्तु मैडम ब्लैवैट्स्की आप से बात चीत कर लेंगी। वह भी नहीं आई।

तब स्वामीजी का भाषण आर्य्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के पूर्वापर विरोध अर्थात् इनकी थियोसोफिकल सोसाइटी का पूर्व क्या सम्बन्ध था, अब क्या है इस विषय पर व्याख्यान कराने के अर्थ आर्य्यसमाज बम्बई ने एक दिन पूर्व नोटिस छपवा कर प्रसिद्ध कर दिया। तो भी मैडम ब्लैवैट्स्की ने स्वामीजी के पास आके बात चीत न की। तब स्वामीजी ने भाषण दिया।

इस पर अपने थियोसोफिस्ट पत्र में लिखते हैं कि हम से विना कहे सुने स्वामीजी ने व्याख्यान दिया। क्या यह बात इनकी झूठ नहीं थी? उसमें इनकी चिट्ठियाँ पढ़ पढ़कर सुनाई कि जिसमें इनके पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार का प्रकाश किया और यह कहा कि यह लोग कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ। ऐसा कहते हैं कि हम आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति करने के लिये आये हैं परन्तु उन्नति के बदले इनके काम अवनतिकारक विदित होते हैं। देखो स्वामीजी ने अनेक वार इस बात के करने से रोका कि तुम थियोसोफिस्ट समाचार (पत्र) में भूत, प्रेत, पिशाचादि का होना न लिखिये, यह विद्या के विरुद्ध असम्भव है और जो बातें विद्या से विरुद्ध हैं उनको मत लिखो क्योंकि यह समाचार (पत्र) इस देश और योरुप में भी जाता है, सब लोग जान जायेंगे कि आर्य्यावर्त्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के मानने वाले हैं। इस बात को अब तक नहीं माना। और पूर्व पत्रों में लिखा था कि जो आप उपदेश करेंगे सो हम मानेंगे। क्या इस बात को भी कोई सच कह सकता है?

(९) जो पत्र कुक साहब को लिखा था वह कर्नल आलकाट साहब ने अपने हाथ से लिखा था और स्वामीजी ने लिखवाया (था) उसमें most divine अर्थात् कौन सा धर्म्म ईश्वरीय गुणयुक्त है यह स्वामीजी के अभिप्राय से विरुद्ध लिखा था। जब इनके गये पश्चात् स्वामीजी ने उस पत्र की नक़ल बंचवाई तो अशुद्ध विदित हुआ। फिर इस पर स्वामीजी के पास कर्नल आलकाट साहब आये और तब वह शब्द कटवा दिया अर्थात् उस के स्थान में ऐसा लिखवाया था कि जब आप और मुझसे संवाद होगा तब विदित हो

जायगा कि कौन धर्म्म ईश्वरप्रणीत है और कौनसा नहीं। इतने पर भी इन्होंने वैसा ही अशुद्ध छपवाया। क्या ऐसी बात इनको कर्त्तव्य थी ? देखो यह इनकी सोसाइटी के नियमों में थियोसोफिस्ट अर्थात् ईश्वर को मानने वाले, इस सोसाइटी में फ़ीस नहीं ली जाती, इस धर्म्म से कोई धर्म्म उत्तम न कहना, न जानना और सदा क्रिश्चियन धर्म्म के विरुद्ध रहना चाहिये। जो अजन्मा किसी का बनाया नहीं, जिसने यह सब बनाया है, उस ईश्वर को न मानना। दस दस रुपये फ़ीस लेना और जिस धर्म्म का व्याख्यान देते हैं उसीको सब से उत्तम कहने लग जाते हैं। क्या यह खुशामदी और भाटों की लीला से कम है।

अब विशेष लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं। इतने नमूने से ही सब कोई समझ लेंगे। परन्तु इस पत्र के लिखने का यही प्रयोजन है कि इन की सोसाइटी और इनके साथ सम्बन्ध रखने से आर्य्यावर्त्त देश के और आर्य्यसमाजों को सिवाय हानि के कुछ भी लाभ नहीं, क्योंकि इन लोगों का अन्तरीय अभिप्राय क्या है इस को वे ही जानते होंगे। जो इन का अन्तर ही निष्कपटी होता तो ऐसा पूर्वापर-विरुद्ध व्यवहार क्यों करते। जब यह भयङ्कर नास्तिक, वाचाल और स्वार्थी मनुष्य हैं तो आर्य्यावर्त देश और आर्य्य-समाजस्थ आदि आर्य्यों को उचित है कि इन से सम्बन्ध और देशोन्नति की आशा न रक्खें। देखो और भी थोड़ा सा इन के प्रपञ्च का नमूना। प्रथम स्वामीजी का नाम लेते थे। जब स्वामीजी इन के जाल में न फँसे तो अब कोटहूमीलाल का नाम लेते हैं कि जिस को न किसी ने देखा और न पूर्व सुना था। जो कभी उस के नाम से स्वार्थ सिद्ध न होगा तो गौत्र कोट हूमीसिंह नाम शायद लेंगे। अब कहते हैं कि वह हमारे पास आता और बातें (करता) और चमत्कार दिखलाता है, देखो यह उन का फ़ोटोग्राफ़ है, चिट्ठियाँ और पुष्प ऊपर से गिरते हैं, खोई हुई वस्तु निकलती है, इत्यादि सब बातें इन की सच्ची नहीं, क्योंकि दूसरे को तो जाने दो परन्तु जब प्रथम कर्नल आलकाट और मैडम ब्लैवैट्स्की के साथ बम्बई में आये थे तब कुछ वस्त्रादि की चोरी हुई थी। उस के लिये बहुत सा यत्न पुलिस आदि से कराया था। उन को क्यों नहीं मँगवा लिया था, जब अपने पदार्थ न मँगवा सके तो शिमले की बात को सच्ची कौन विद्वान् मानेगा। जब स्वामीजी और मैडम से मेरठ में योगविषय में बात हुई थी तब कहा था कि योगशास्त्र और साँख्य की रीति से मैं योग करती हूँ। तब स्वामीजी ने इन से उस शास्त्रोक्त योग की रीति पूछी, तब कुछ भी उत्तर न दे सकीं। अर्थात् जैसे कि मैस्मरिजम जैसे बाज़ीगर तमाशा करते हैं उसी प्रकार की इन की भी बातें हैं। जो योग को थोड़ा भी करते हैं वह भीतर और बाहर से सरलता भरा हुआ एक व्यवहार करते हैं। झूठ कपट से पृथक्, सो वैसा व्यवहार इन का नहीं है। जो योगविद्या को कुछ भी जानते तो ईश्वर को न मानकर भयङ्कर नास्तिक क्यों बन जाते। इनके योगविद्या के न जानने में ईश्वर का न मानना ही प्रमाण है। इस लिये यही निश्चय है कि इनकी सोसाइटी और इन की पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इसलिये इन से पृथक् रहना अत्युत्तम है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

इस प्रकार आर्य्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी का सम्बन्ध विच्छेद हो गया

और इस नाटक पर सदा के लिये पटक्षेप हो गया। यह दोनों संस्थाओं के लिए ही अच्छा हुआ। थियोसोफ़िकल सोसाइटी से देश को जो लाभ पहुँचता था वह गत ५० वर्ष में सब ने देख लिया। उसने भ्रान्त विश्वासों के फैलाने के अतिरिक्त कोई ऐसा कार्य्य नहीं किया जिस से भारत के धार्मिक इतिहास पर स्थिर प्रभाव पड़ा हो। न योगविद्या का ही प्रचार किया जिस का उस ने बीड़ा उठाया था, न प्रकृति की गुप्त शक्तियों के उद्घाटन और प्रसुप्त कलाओं के जागरण के हमें चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं जिन से लोगों के ज्ञान में वृद्धि होकर इनका कुछ उपकार हुआ हो। इस के प्रतिकूल भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनी, शङ्खिनी, डाकिनी आदि में अत्यन्त हानिकर विश्वास की मात्रा में अवश्य वृद्धि हो गई है, या यह हुआ है कि पुराणों के व्यर्थ और बुद्धि के प्रतिकूल अनुष्ठानों को विज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध करने का यत्न किया गया है। हाँ श्रीमती एनीबेसण्ट ने शिक्षा का प्रशंसनीय कार्य्य अवश्य किया है और राजनीति-क्षेत्र में भी उन्होंने उत्तम प्रयत्न किया है और इस के लिए वह अवश्य ही धन्य-वाद की पात्र हैं।

आर्य्यसमाज के लिए भी यह सम्बन्ध-विच्छेद श्रेयस्कर हुआ, नहीं तो न जाने कितने आर्य्यसमाजी भ्रमजाल में फँसते और आर्य्यसमाज भी क्या जाने क्या रूप धारण कर लेता, और जो वेद और विद्या का प्रचार और धर्म्म-संस्कार का महान् कार्य्य उस के द्वारा संपादित हुआ है वह बिना हुआ ही रह जाता, आस्तिकता का प्रबल सहायक होने के स्थान में वह नास्तिकता का पृष्ठपोषक बन जाता।

जो लोग यह कहते नहीं थकते कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सिद्धान्त-निर्माण में पालिसी से काम लिया उन के लिये यह सम्बन्धविच्छेद अत्यन्त शिक्षाप्रद है। यदि ऐसा होता तो वह थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सम्बन्ध अलग करने से पहले बहुत कुछ संकोच करते और अपने सहायकों और मित्रों से ऐसे अकुण्ठित भाव से अलग न हो जाते।

कर्नल ने महीनों पीछे अर्थात् जुलाई सन् १८८२ थियोसोफ़िस्ट पत्र के परिशिष्ट में महाराज के उन पर लगाए हुए दोषों के निराकरण का कुछ प्रयत्न किया परन्तु वह अत्यन्त निर्बल और अयुक्तिसंगत सिद्ध हुआ।

उन का उत्तर यह था कि हमने कभी नहीं छिपाया कि हम बौद्ध हैं और हमने अपनी २९ मई सन् १८७८ की चिट्ठी में जो हमने इण्डियन स्पेक्टेटर के सम्पादक को लिखी थी लिख दिया था कि हम बौद्ध हैं। हमने अपनी सोसाइटी को आर्य्यसमाज की शाखा इस लिये बनाया था कि जो सिद्धान्त बौद्ध मत के हैं वही स्वामी दयानन्द सरस्वती की व्याख्या के अनुसार वेदों में थे। हमने २२ फ़र्वरी की चिट्ठी में लिख दिया था कि ब्राह्मसमाज Personal God को मानती है और आर्य्यसमाज ऐसे ईश्वर में विश्वास करती है जो Personal होने से दूर है। फिर आप कहते हैं कि स्वामीजी की २१ अप्रेल सन् १८७६ की चिट्ठी Personal God की प्रशंसा में थी उस पर हमने २४ सितम्बर सन् १८७८ की चिट्ठी में यह आक्षेप किया था कि या तो स्वामी दयानन्दजी के ईश्वर विषय में जो विचार हैं वह हम तक ठीक २ नहीं पहुँचे या उन के विश्वास ईश्वर विषय में ऐसे हैं जिन से थियो-सोफ़िकल सोसाइटी और उसके सभासद मतभेद रखते हैं। हमें ज्ञात होता है कि स्वामीजी Personal ईश्वर को मानते हैं। मैं ऐसे ईश्वर को नहीं मान सकता। आप (हरिश्चन्द्र

चिन्तामणि) स्वामीजी से पूछ कर स्पष्ट रूप से बताएं कि आर्य्यसमाज कैसे ईश्वर को मानता है। इसका उत्तर न तो स्वामीजी ने दिया और न हरिश्चन्द्र ने। हरिश्चन्द्र ने अपने ३० सितंबर सन् १८७८ के पत्र में केवल इतना लिखा कि जब आप बंबई आवेंगे, सारी बातों का निर्णय हो जावेगा जिससे स्पष्ट तथा प्रकट होता है कि बंबई आने से पहले हमारा मत बौद्ध था।

कर्नल का प्रत्युत्तर प्रथम तो म० रतनचन्द बेरी० सम्पादक आर्य्य ने जो उन दिनों लाहौर से प्रकाशित होता था, दिया और फिर पण्डित उमरावसिंह रुड़की निवासी ने दिया जो कि एक पैम्फ्लेट के रूप में छापकर प्रचरित किया गया। इस के पश्चात् थियोसोफिस्टों ने कोई उत्तर देने का साहस नहीं किया।

भारतवर्ष में आने के पश्चात् सितम्बर सन् १८८० तक यद्यपि वह इस अन्तर में दो बार स्वामीजी से मिलकर बातचीत कर चुके थे उन्होंने यह नहीं कहा कि हमारा ईश्वर में विश्वास नहीं है। ऐसी दशा में स्वामीजी इसके अतिरिक्त क्या समझते कि थियोसोफिस्ट लोग वैसे ही ईश्वरविश्वासी हैं जैसे कि वह स्वयं हैं। यदि २९ मई सन् १८७८ को ही कर्नल इण्डियन स्पेक्टेटर पत्र में लिख चुके थे कि हम बौद्ध हैं तो फिर इस बात को उन्होंने स्वामीजी से क्यों छिपाया। स्वामीजी को यह ज्ञात भी कैसे होता कि वह उक्त पत्र में अपने को बौद्ध-मतानुयायी प्रकट कर चुके हैं। इसके यही अर्थ हैं कि उन्होंने स्वामीजी को अपनी स्वार्थसिद्धि के उद्देश्य से धोखा दिया। स्वामीजी ने कब, कहाँ और किस से कहा कि वेदों में वही सिद्धान्त लिखे हैं जो बौद्धमत के हैं? ऐसा कहना नितान्त मिथ्या है। इसका कोई प्रमाण भी कर्नल नहीं देते जहाँ स्वामीजी ने ऐसा कहा हो। कर्नल ने कभी किसी ऐसी चिट्ठी का उल्लेख तक नहीं किया जिसमें उन्होंने स्वामीजी से ईश्वर विषय में मतभेद प्रकट किया हो। न ऐसी चिट्ठी की लिपि कर्नल ने कभी पेश की। वास्तव में ऐसी चिट्ठी कोई कभी थी ही नहीं और न वह कभी स्वामीजी के पास आई। कर्नल का कथन तो इसी बात से मिथ्या ठहरता है कि उसके लिखने की तारीख २४ सितम्बर १८७८ और उत्तर में हरि-श्चन्द्र चिन्तामणि की चिट्ठी की तारीख ३० सितम्बर १८७८ बताते हैं। ६ दिन के भीतर चिट्ठी का अमेरिका से आना और उसके उत्तर का जाना असम्भव था जब तक यह न मान लिया जावे कि वह चिट्ठी कर्नल ने किसी 'महात्मा' द्वारा भिजवाई और उसका उत्तर भी उसी महात्मा द्वारा मँगवाया, और कि वह विद्युत् की द्रुत गति से आये और गये। एक बात और भी है, यदि कर्नल और मैडम की स्वामीजी के ईश्वर विषयक सिद्धान्तों से एकता न थी और २४ सितम्बर १८७८ की चिट्ठी का उत्तर स्वामीजी की ओर से उनके पास नहीं पहुँचा था तो उन्होंने स्वामीजी को अपना धर्म्मगुरु क्यों बनाया और बिना इस बात को ठीक तौर पर जाने कि स्वामीजी के ईश्वर विषय में सिद्धान्त उनके अपने विचारों से मिलते हैं वा नहीं वह अमेरिका से चल क्यों दिये और यदि चल भी दिये थे तो स्वामीजी से प्रथम भेट के समय उनका प्रथम प्रश्न यह होना चाहिये था कि आप का ईश्वर के सम्बन्ध में क्या विचार है। जो कोई भी निष्पक्ष होकर इस विषय में विचार करेगा वह इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि थियोसोफी की इन महान् मूर्त्तियों ने जान बूझ कर स्वामीजी और अर्य्यसमाज को धोखा दिया। स्वामीजी ने सरलचित्तता से उनका विश्वास कर लिया। **बस यही उन का सब से बड़ा अपराध था।**

परिशिष्ट संख्या ३

मुंशी इन्द्रमणि का मुक़द्दमा ।

बहुत दिनों की बात है कि एक मुसलमान ने उर्दू में एक पुस्तक 'रद्दे-हनूद' के नाम से हिन्दू धर्म के विरुद्ध लिखी थी। उसके उत्तर में चौबे बद्रीदास ने 'रद्दे-मुसलमान' नामक पुस्तक लिखी। उसके पश्चात् मौ० उबैदुल्ला ने जो हिन्दू से मुसलमान हुआ था सन् १२७४ हिजरी में एक पुस्तक 'तोह् फ़तुल-हिन्द' लिखी जिसमें हिन्दुओं के देवताओं और महापुरुषों की घोर निन्दा की। उसके उत्तर में उसी वर्ष मुन्शी इन्द्रमणि ने फ़ारसी भाषा में 'तोह-फतुल-इस्लाम' नामक पुस्तक लिखी। इस के उत्तर में एक मुसलमान ने 'ख़ल-अतुल-हनूद' नामक पुस्तक सन् १२८१ हिजरी अर्थात् १९२२ विक्रमी सन् १८६५ ई० में लिखी और मुन्शी इन्द्रमणि ने उसका मुँहतोड़ उत्तर सन् १८६६ ई० अर्थात् सं० १९२३ वि० में अपनी पुस्तक 'पादाशे-इस्लाम' में दिया। मुसलमानों की ओर से दो और पुस्तकें 'एजाज़े मुहम्मदी' और 'हदयतुल अस्नाम' प्रकाशित हुईं जिनका उत्तर मुन्शी इन्द्रमणि ने १८६७ में 'हमलए हिन्द' व 'समसामे हिन्द' और सन् १८६८ में 'सौलते हिन्द' नामी पुस्तकें लिख कर दिया। एक मुसलमान ने एक गन्दा काव्य हिन्दू धर्म के विरुद्ध मस्नवी-असूलें-दीने हिन्दू, नाम से लिखा। उसका उत्तर भी मुंशी इन्द्रमणि ने 'मस्नवी असूले दीने अहमद' काव्यमय पुस्तक लिखकर सन् १८६९ में दिया। सन् १८७३ में एक अत्यन्त गंदी पुस्तक एक मुसलमान ने 'तेग़े फ़क़ीर बर गर्दने शरीर' लिखी। अब तक दोनों ओर से एक दूसरे के मत के ऊपर कटाक्ष होते रहे परन्तु उनसे किसी पक्ष में उत्तेजना न हुई। 'हमलए हिन्द,' 'समसाने हिन्द' व 'सोलते हिन्द' के दो संस्करण हो चुके थे। किसी मुसलमान को उत्तेजना न हुई थी। पहल तो मुसलमानों ही की ओर से हुई थी। सब से पहली पुस्तक तो हिन्दू धर्म के विरुद्ध एक मुसलमान ने ही लिखी थी। मुन्शी इन्द्रमणि तो मुसलमानों के आक्रमणों का केवल उत्तर देते रहे थे। मुंशीजी की उपर्युक्त तीनों पुस्तकों का तीसरा संस्करण मुरादाबाद में छपा। तब मुसलमानों को 'जामे जमशेद' नामी मुरादाबाद के एक मतान्ध समाचार पत्र ने भड़काया और अपने १६ मई सन् १८८० के अङ्क में यहाँ तक लिखा कि 'यदि मुन्शी इन्द्रमणि का यही हाल रहा तो बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनायगी। आखिर एक रोज

गला और छुरी नज़र आयगी। तअज्जुब है कि इस मतबा (छापेखाने) का इजरा जिसमें एक खास गिरोह के मज़हब की मज़म्मत (निन्दा) की किताबें छपती हैं साहब मैजिस्ट्रेट ने क्योंकर मंज़ूर फ़रमाया है। हम गवर्नमेंट से इल्तिजा (विनीत निवेदन) करते हैं कि इन किताबों को जलवादे और मतबा बन्द करादे।

उक्त समाचार पत्र के उपर्य्युक्त लेख के अनुवाद को पढ़ कर पश्चिमोत्तर प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने मुरादाबाद के मैजिस्ट्रेट को लिखकर ब्यौरा पूछा और उसमें यह भी लिखा कि मुंशी इन्द्रमणि पर दृष्टि रक्खें ताकि वह किसी उपद्रव के उत्पन्न करने का कारण न बने। मैजिस्ट्रेट ने वह चिट्ठी डिप्टी मैजिस्ट्रेट मौलवी एमादअली को रिपोर्ट लिखने को दी और उन्होंने रिपोर्ट लिखकर चिट्ठी मैजिस्ट्रेट जिले को वापिस कर दी। इस चिट्ठी का पता मुंशी जी को भी लग गया और वह मैजिस्ट्रेट से मिले तो मैजिस्ट्रेट ने कहा कि हम विद्रोह के कोई चिन्ह नहीं देखते, तुम विद्रोह न करना। इसके पश्चात् मैजिस्ट्रेट रामपुर गये और वहाँ से लौटते ही उन्होंने और ही मूर्त्ति धारण करली। सम्भव है वहाँ उन्हें विश्वास दिलाया गया हो कि मुसलमान बहुत बिगड़ रहे हैं। उन्होंने २२ जुलाई सन् १८८० को कचहरी में बैठते ही हिन्दुस्थान के दण्ड-विधान की २९२ और २९३ धाराओं में मुंशीजी पर वारण्ट निकाल दिया। जब वह पकड़े हुए आये तो उनकी पुस्तकों में से तीन बातें छांटकर उनसे पूछा कि तुमने यह बातें कहा से लिखी हैं। मुंशीजी ने कहा कि मुझे समय मिले तो उत्तर दे सकता हूँ। मैजिस्ट्रेट ने कहा कि हम पचीस जुलाई को तुम्हारा बयान सुनेंगे और २६ जुलाई को मुकद्दमा करेंगे और मुंशीजी को १०००) की जमानत पर छोड़ा जो एक सज्जन ने तुरन्त ही दाखिल करदी। मुंशीजी ने दो बातों का उत्तर तो पुस्तकें प्रस्तुत करके दे दिया तीसरी बात के लिए कहा कि मैंने 'रद्दे मुसलमान' पुस्तक से नक़ल की है, यदि समय मिले तो पुस्तक पेशकर सकता हूँ, परन्तु मैजिस्ट्रेट ने समय न दिया और मुंशीजी पर ५००) जुर्माना कर दिया और इंस्पेक्टर पुलिस को भेजकर मुन्शीजी के घर से सब पुस्तकें मँगवा कर नष्ट करादीं। समय न दिये जाने के हुक्म की नक़ल भी मैजिस्ट्रेट ने न दी और इस लिए उस का अपील भी न हो सका।

महाराज का मुन्शी इन्द्रमणि से प्रथमवार साक्षात् दिल्ली दरबार के अवसर पर हुआ था उसके पश्चात् महाराज ने उन्हें चाँदापुर के मेले में शास्त्रार्थ में सहायता देने के लिए बुलाया था और फिर अलीगढ़ में भी उनसे बातचीत हुई थी। जब सन् १८७९ में महाराज मुरादाबाद गये तो भी उनसे विचार परिवर्त्तन न हुआ। यद्यपि महाराज का कई विषयों में मुन्शीजी से मतभेद था, परन्तु किसी मौलिक विषय पर न था। जब महाराज मुरादाबाद चलने लगे तो साहू श्यामसुन्दर आदि से कह आये थे कि आर्य्यसमाज का प्रबंध मुन्शीजी के परामर्श से ही करना। उनसे हमारा जिन बातों में मतभेद है हम उसे आपस में समझ लेंगे। अतः जितने दिन वह आर्य्यसमाज के सभासद् रहे आर्य्यसमाज के प्रधान रहे और सब कार्य उनके ही परामर्श के अनुसार होता रहा। मुन्शी इन्द्रमणि वैष्णव सम्प्रदाय के थे, परन्तु वह अद्वैतवादी नहीं थे और मूर्त्तिपूजा के घोर विरोधी थे और वेदों में उसका विधान नहीं मानते थे। इन्हीं सब कारणों से उनसे स्वामीजी का सख्य भाव होगया था।

परिशिष्ट संख्या २

जिन दिनों मुन्शी जी पर अभियोग चला था और उन्हें ज़िला मैजिस्ट्रेट ने अर्थ-दण्ड दिया था, स्वामीजी मेरठ थे। मुन्शीजी मुक़द्दमे की अपील करना चाहते थे, परन्तु उसके व्यय के लिए उनके पास धन न था। वह मेरठ में स्वामीजी के पास आये और कहा कि मैंने जो पुस्तकें लिखीं वह वैदिक धर्म्म की रक्षा के लिए लिखीं। यह मुक़द्दमा भी मुझ पर इसी लिए चलाया गया। यह वैदिक धर्म्म की शिक्षा का प्रश्न है अतः आपको इसमें मेरी सहायता करनी चाहिए। बात ठीक थी, स्वामीजी ने स्वीकार करली। और आर्य्य-समाजों में अगस्त १८८० को मुन्शीजी के मुकद्दमे की सहायतार्थ धन भेजने की चिट्ठी लिख दी और मेरठ में एक कमेटी बनादी गई कि जो रुपया इस फ़ण्ड में आवे चाहे वह स्वामीजी के वा मुन्शी इन्द्रमणि के पास आवे मेरठ में लाला रामशरणदास के पास जमा किया जावे और कमेटी की आज्ञा से ख़र्च किया जावे। यह कमेटी ही रुपये का हिसाब रक्खे और जब तक काम पूरा न हो तब तक धन की आय-व्यय की राशि कमेटी के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य को न बतलाई जावे। यह सब बातें मुन्शीजी ने स्वीकार करली थीं। इसके पश्चात् साहब जज की अदालत में अपील किया गया।

इस मुक़द्दमे के विषय में हिन्दू समाचार-पत्रों ने ख़ूब आन्दोलन किया। भारत तथा स्थानिक सरकार को मेमोरियल भेजे गये। भारतीय सरकार ने मैजिस्ट्रेट से मुकद्दमे की मिसल मँगाई तो उन्होंने लिख दिया कि अपील अदालत में है। भारत सरकार ने फिर लिखा कि अपील के पश्चात् तुरन्त भेज दो।

महाराज की चिट्ठी पर रुपया आना आरम्भ हो गया। २५०) तो स्वामीजी के पास और शेष रुपये मुंशीजी और लाला रामशरणदास के पास आये। स्वामीजी ने वह २५०) भी लालाजी के पास ही भेज दिये। परन्तु जो रुपया मुंशीजी के पास आया वह उन्होंने लाला रामशरणदास के पास न भेजा और न उसका हिसाब ही भेजा। लालाजी ने कई वार स्वयं मुंशीजी को हिसाब भेजने को लिखा, परन्तु उन्होंने न भेजा। एक वार साहू श्यामसुन्दर से भी हिसाब भेजने को कहलाया, परन्तु फिर भी न भेजा। अतः जब मुंशीजी ने लालाजी से ६००) मांगे तो उन्होंने न दिये और यह भी मुन्शीजी को न बताया कि कितना रुपया उनके पास चन्दे में आया है। जब महाराज देहरादून से लौट रहे थे तब लाला रामशरणदास मेरठ के रेलवे स्टेशन पर उन से मिले और सारा वृत्त कहा। महाराज ने उन से कहा कि ६००) तो भेज दो, कहीं काम न बिगड़ जाय और मैं मुन्शीजी को अलीगढ़ पहुँच कर समझा दूँगा। उन्होंने ६०० भेज दिये। महाराज ने अलीगढ़ पहुँचकर मुन्शीजी को तार द्वारा अलीगढ़ आने को कहा परन्तु वह न आये। इस पर मुन्शीजी ने एक विज्ञापन छपवाया कि मुझे रुपया नहीं मिलता है अब तक कुल ६००) मिले हैं। रुपया सीधा मेरे पास भेजा जावे। इस पर उनके पास और रुपया आने लगा। परन्तु अपने हिसाब न देने के विषय में कुछ न लिखा, सारा दोष लाला रामशरणदास और स्वामीजी पर रक्खा। महाराज ने आगरे पहुँच कर मुन्शीजी को फिर लिखा कि हिसाब लेकर आजाओ तो उसके उत्तर में लाला रामशरणदास के विषय में अत्यन्त असभ्य शब्द लिखे और यह भी लिखा कि पहले उनका हिसाब देखा जावे तब हम अपना दिख-

लावेंगे। महाराज ने लालाजी को लिख कर हिसाब मँगवा लिया। मुन्शी इन्द्रमणि और उन के शिष्य जगन्नाथदास आगरा गये तो महाराज ने हिसाब माँगा। उन्होंने कहा पहले लालाजी का हिसाब दिखा दो तब हम दिखायेंगे। महाराज ने दिखा दिया और फिर उन से हिसाब दिखाने को कहा तो उनके शिष्य ने बैग पर हाथ धर कर कहा कि ओ हो हिसाब का क़ागज मुरादाबाद भूल आये। लालाजी के हिसाब में उन्होंने एक भूल पकड़ी कि गुरुदासपुर आर्य्यसमाज का २५०) कहीं जमा नहीं है। स्वामीजी ने कहा कि यह रुपया मेरे पास आया था और मैंने लालाजी के पास भेज दिया था, न जाने उन्होंने क्यों जमा नहीं किया, मैं उन्हें लिख कर पूछूंगा। उसी दिन लालाजी को स्वामीजी ने लिख दिया कि यह मेरे लेखक की भूल है। एक ही दिन आपके भेजे हुए २५०) और आर्य्यसमाज लाहौर के भेजे हुए १५०) आये थे और सब ४००) आर्य्यसमाज लाहौर के नाम से जमा हो गये। महाराज ने मुन्शीजी से कहा कि स्मृति से ही लिखा दीजिये तो, २०००) का हिसाब तो बतलाया शेष को कह दिया की स्मरण नहीं है, मुरादाबाद जाकर सब हिसाब भेजूंगा। इस पर जब महाराज ने अधिक बलपूर्वक हिसाब मेरठ भेज देने के लिये कहा तो दोनों गुरु चेले कहने लगे कि हम से हिसाब लेनेवाला कौन है? इसके मालिक हम हैं। हमी पर सब मामला चला है, हमारे ही नाम चन्दा आता है हमारा ही है। जगन्नथदास ने यह भी कहा कि यदि कोई आप से वैदिक यन्त्रालय का हिसाब मांगे तो क्या आप देदेंगे। इस पर महाराज ने कहा कि कल लेते आज ही लेलो, यहाँ कोई बात गुप्त नहीं है। जब भी आर्य्य समाज का कोई प्रतिष्ठित सदस्य लेना चाहे उसे कोई रोकटोक नहीं है। फिर महाराज ने मुन्शीजी को अलग लेजा कर समझाया कि एक तो वह बात थी जब आपने कहा था कि यह सब वैदिक धर्म वालों का कार्य है और आज आप यह कहते हैं कि यह सब आप अकेलों का है। मुन्शीजी! यदि मैं ऐसा जानता तो एक क्षण भर भी आप के पास न ठहरता और आप की कुछ भी शक्ति न थी कि आप अकेले इस प्रकार सहायता पा सकते। मैं तो अब भी यही समझता हूँ कि यह सब वैदिक धर्मवालों की बात है। इस पर मुन्शीजी कुछ शान्त हुए और कहा कि मैं मुरादाबाद पहुँचते ही हिसाब भेजदूँगा। परन्तु फिर भी न भेजा।

साहब जज के यहां जो अपील किया गया था उसका निर्णय २२ सितम्बर सन १८८० को हुआ उन्होंने ५०० की जगह १००) जुर्माना रक्खा, हाईकोर्ट से भी जजसाहब का फ़ैसला बहाल रहा। उसके पीछे सरकार ने १००) जुर्माना जो हाईकोर्ट से रह गया था क्षमा कर दिया। स्वामीजी ने इस मुकद्दमें में बहुत यत्न किया। उनके अनुरोध से मिस्टर सिनेट सम्पादक 'पायोनियर' इलाहाबाद ने मुन्शीजी के पक्ष में प्रबल लेख लिखे। उधर महाराज ने कर्नल आल्काट से भी प्रयत्न करने को कहा और उन्होंने यह वचन दिया कि मैं इस विषय में होममेम्बर से मिलकर बात-चीत करूँगा। यह इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम था कि मुन्शीजी का शेष अर्थदण्ड भी क्षमा होगया। इस सब का बदला मुन्शीजी ने जो दिया वह कृतघ्नता की सीमा तक पहुँचता है और इस बात का जीवित उदाहरण है कि लोभ अच्छे २ पुरुषों को भी गिरा देता है।

आर्य्यसमाज मेरठ ने सब हिसाब 'आर्य्यसमाचार' पत्र मेरठ में छपा दिया। सब आय १५१६) और सब व्यय ९६३।।।=)।।। हुआ जिस में से मुन्शीजी केवल ६००) का ही अपने पास पहुँचना स्वीकार करते हैं। ९००) तो नक़द उनके पास पहुँचे, २३) स्वयं उन्होंने व्यय किये और शेष अन्य व्यय हुआ। व्यय के पश्चात् ५५२–)। बचे जिस में से बहुत सा रुपया तो दानदाताओं की इच्छा के अनुसार लौटा दिया गया, कुछ लोगों ने उपदेशक मण्डली को दिया। यदि मुन्शी इन्द्रमणि का यह असद्भाव न होता तो यह सब रुपया जमा रहता जो आगे को इसी प्रकार के कार्यों में लगता।

इस के पश्चात् मुन्शीजी और उनके शिष्य आर्य्यसमाज के कट्टर विरोधी बन गये और अपने जीवन पर्यन्त बने रहे।

आर्य्यसमाज मुरादाबाद ने गुरु और शिष्य को इस अनार्योचित व्यवहार के कारण महाराज की सम्मत्यनुसार २९ मई सन् १८८२ को आर्य्यसमाज की सदस्यता से पृथक् कर दिया। इस कार्य के लिये सब ने महाराज और आर्य्यसमाज मुरादाबाद की प्रशंसा की, इस प्रकार यह काण्ड समाप्त हुआ।

परिशिष्ट संख्या ४

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म्म जिसको सदा से सब मानते आयें, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न होसके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मतवाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जाने वा माने उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते, किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो २ आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्म्मयुक्त चाल-चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्म्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व-सामर्थ्य से धर्मात्माओं को चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँतक होसके वहांतक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें

परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म्म से पृथक कभी न होवे इसमें श्रीमान महाराजा भर्तृहरिजी आदि ने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूँ:—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १ ॥ भर्तृहरिः ॥
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्,
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये,
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ २ ॥ महाभारते ॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ ३ ॥ मनु० ॥
सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ४ ॥
नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥ ५ ॥ उ० नि० ॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा २ मानता हूँ उन २ का वर्णन संक्षेप से यहां करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने २ प्रकरण में कर दिया है इनमें से:—

प्रथम "ईश्वर" कि जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है, जिसके गुण, कर्म स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसीको परमेश्वर मानता हूँ॥

२—चारों "वेदों" (विद्या धर्म्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और वेदों के चार ब्राह्मण, छः अङ्ग उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ॥

३—जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध

है उसको "धर्म" और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको "अधर्म्म" मानता हूँ ॥

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूँ।

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ ॥

६—"अनादि पदार्थ" तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण' कर्म्म, स्वभाव भी नित्य हैं ॥

७—"प्रवाह से अनादि" जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है। वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूं ॥

८—"सृष्टि" उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना ॥

९—"सृष्टि का प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण, कर्म स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं ? उसने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी ॥

१०—"सृष्टि सकर्तृक" है, इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का "कर्त्ता" अवश्य है ॥

११—"बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है। जो २ पाप कर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसलिये यह "बन्ध" है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है ॥

१२—"मुक्ति" अर्थात् सर्व दुःखों में छूट कर बन्धरहित, सर्वव्यापक ईश्वर और उस की सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

१३—"मुक्ति के साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं ॥

१४—"अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको 'अनर्थ' कहते हैं ॥

१५—"काम" वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय ॥

१६—"वर्णाश्रम" गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं ॥

१७—"राजा" उसीको कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्याय धर्म की सेवा, प्रजाओं में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे ॥

१८—"प्रजा" उसको कहते हैं जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते ॥

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो "न्यायकारी" है, उसको मैं भी ठीक मानता हूं ॥

२०—"देव" विद्वानों को और अविद्वानों को "असुर", पापियों को "राक्षस", अनाचारियों को "पिशाच" मानता हूं ॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूं ॥

२२—"शिक्षा" जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उनको "शिक्षा" कहते हैं ।

२३—"पुराण" जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूं, अन्य भागवतादि को नहीं ।

२४—"तीर्थ" जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूं, इतर जलस्थलादि नहीं ।

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा" इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—"मनुष्य" को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूं ॥

२७ "संस्कार" उसको कहते कहते हैं कि जिससे शरीर मन और आत्मा उत्तम होवें। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है, इसको कर्त्तव्य समझता हूं और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये ।

२८ "यज्ञ" उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं ॥

२९—जैसे "आर्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं ॥

३०—"आर्य्यावर्त्त" देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है, इन चारों के बीच में जितना देश है उसको "आर्य्यावर्त्त" कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी 'आर्य' कहते हैं ॥

३१—जो साङ्गोपांग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है ॥

३२—"शिष्य" उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है ॥

३३—"गुरु" माता पिता और जो सत्य को ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी "गुरु" कहाता है ॥

३४—"पुरोहित" जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे ॥

३५—"उपाध्याय" जो वेदों का एक देश वा अंगों को पढ़ाता हो ॥

३६—"शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह "शिष्ट" कहाता है ॥

३७—प्रत्यक्षादि आठ "प्रमाणों" को भी मानता हूँ ।

३८—"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को "आप्त" कहता हूँ ॥

३९—"परीक्षा" पांच प्रकार की है इसमें से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता, विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये ॥

४०—"परोपकार" जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें श्रेष्ठाचार और सुख बढ़ें उसके करने को परोपकार कहता हूँ ॥

४१ "स्वतन्त्र", "परतन्त्र" जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है ।

४२—"स्वर्ग" नाम सुखविशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है ॥

४३—"नरक" जो दुःखविशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति होना है ॥

४४—"जन्म" जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ ॥

४५—शरीर के संयोग का नाम "जन्म" और वियोगमात्र को "मृत्यु" कहते हैं ॥

४६—'विवाह' जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह "विवाह" कहाता है ॥

४७—"नियोग" विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—"स्तुति" गुण कीर्त्तन, श्रवण और ज्ञान होना इस का फल प्रीति आदि होते हैं।

४९—"प्रार्थना" अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है॥

५०—"उपासना" जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्व व्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है॥

५१ "सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो २ गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो २ नहीं हैं उनसे पृथक् मान कर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उस के और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना होती है॥

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इन की विशेष व्याख्या इसी "सत्यार्थ-प्रकाश" के प्रकरण २ में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो २ सब के सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं और जो मत-मतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे" जिससे सब लोग सहज से धर्म्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु॥

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा॥ शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाशः सम्पूर्त्तिमगमत्॥

परिशिष्ट संख्या ५

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

(१) ऋग्वेद भाष्य—इस में मूलमन्त्र, पदपाठ, संस्कृत में पदार्थभाष्य, अन्वय और भावार्थ देकर पुनः आर्य्यभाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दे दिया गया है। महर्षि ने तो केवल संस्कृत भाष्य की रचना की थी। उस की भाषा पण्डितों ने बनाई है। यह भाष्य केवल मण्डल ७। सूक्त ६१। म० २ तक ही हुआ है। ऋषि दयानन्द अपने जीवन काल में इसे समाप्त नहीं कर सके।

(२) यजुर्वेद भाष्य— इस में ऋग्वेद के समान ही मूल मन्त्र, पदपाठ पदार्थ-भाष्य, अन्वय, भावार्थ संस्कृत में और आर्य्य भाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दिये गये हैं।

(३) यजुर्वेद भाषा-भाष्य—इस में ऋषि दयानन्द रचित संस्कृत भाग को हटा कर केवल भाषा में अन्वयानुसारी पदार्थ और भावार्थ संकलित किया गया है।

(४) ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका—ऋषि दयानन्द जिस वेदभाष्य की रचना कर रहे थे उसकी यह भूमिका है। यह सम्पूर्ण संस्कृत में है और इसका अनुवाद आर्य्यभाषा में भी किया गया है। वेद की उत्पत्ति, रचना, प्रामाण्य-अप्रमाण्य, वेदोक्त धर्म आदि अनेक विषयों पर स्पष्ट विचार किया गया है। पूर्व के वेदभाष्यकारों के अनेक अनार्ष मतों का विवेचन करके सप्रमाण वैदिक आर्य्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। वेद के सिद्धान्तों को समझाने के लिये यह ग्रन्थ अपूर्व है।

(५) सत्यार्थप्रकाश—इस ग्रन्थ में १४ समुल्लास हैं। प्रथम १० समुल्लासों में आर्य्य वैदिक सिद्धान्तों का युक्ति, तर्क और वेद, शास्त्र, दर्शनों और स्मृति के आधार पर मण्डन किया गया है और पिछले ४ समुल्लासों में आर्यावर्त्तीय मतों और बाइबल और क़ुरान के मतों की समीक्षा की गई है। यह एक युगान्तर कारीपुस्तक है इसने भारतवर्ष में जनता की विचार धारा को ही परिवर्त्तित कर दिया है।

(६) संस्कार विधि—इस में गृह्य सूत्रों के अनुसार गर्भाधान से अन्त्येष्टि कर्म तक १६ संस्कारों को वैदिक रीति के अनुसार करने की पद्धति और वर्णों और आश्रमों के नित्य धर्म-कर्मों का विधान किया गया है।

(७) आर्य्याभिविनय—इस ग्रन्थ में ऋषि ने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना के के लिये चारों वेदों से कुछ मन्त्रों का संग्रह करके उन को अर्थ सहित दिया है।

(८) पञ्चमहायज्ञविधि—इस में ऋषि ने सन्ध्या (ब्रह्मयज्ञ), अग्निहोत्र (देवयज्ञ) बलिवैश्वदेव (भूतयज्ञ) पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ इन पाँचों के करने की विधि और मन्त्रों पर संस्कृत भाष्य और सरल अनुवाद भी दिया है।

(९) संस्कृत-वाक्यप्रबोध—संस्कृत के आरम्भिक शिक्षा के लिये व्यावहारिक विषयों पर सरल संस्कृत वाक्यों द्वारा बालकों को शिक्षा दी गई है। इस से संस्कृत वाक्यों का सुगमता से बोध हो जाता है।

(१०) व्यवहार भानु—बालकों को शिष्ट, आर्यव्यवहार की शिक्षा देने और अज्ञान की कुशिक्षा को निवारण करने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की है।

(११) शास्त्रार्थ काशी—इस में, काशी में ऋषि दयानन्द के साथ जो श्री विशुद्धानन्द का शास्त्रार्थ हुआ है उसका विवरण दिया गया है। जो प्रस्तुत 'जीवन-चरित' में पृष्ठ १६८ से १७१ तक है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है। इसका भाषानुवाद भी साथ ही है।

(१२) वेदविरुद्धमतखण्डनम्—इस ग्रन्थ में वल्लभ आदि मतों के प्रति प्रश्न और उनका खण्डन किया गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है और इसका अनुवाद हिन्दी में पण्डित भीमसेन शर्मा ने किया है।

(१३) शिक्षा-पत्रीध्वान्त-निवारणम्—इस ग्रन्थ में सहजानन्द आदि के मतों का खण्डन किया गया है। यह ग्रन्थ भी संस्कृत में है। इसका हिन्दी अनुवाद 'स्वामी नारायणमत-खण्डन' के नाम से प्रसिद्ध है।

(१४) भ्रमोच्छेदन—इस ग्रन्थ में बनारस के राजा शिवप्रसादजी की ओर से श्री स्वामी विशुद्धानन्द की प्रश्नावली के कारण उत्पन्न हुए भ्रम को दूर किया गया है। उक्त भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजाजी के दूसरे निवेदन के उत्तर में पण्डित भीमसेन का उत्तर अनुभ्रमोच्छेदन नाम से छपा है।

(१५) भ्रान्ति-निवारण—इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य पर पं० महेश्चन्द्र न्याय रत्न (आफिशियेटिङ्ग प्रिंसिपल संस्कृत कालेज कलकत्ता) के किये भ्रान्ति युक्त आक्षेपों का खण्डन किया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है, साथ ही अनुवाद भी दिया गया है।

(१६) वेदान्तध्वान्त-निवारणम्—इस ग्रन्थ में नवीन वेदान्त के मत का अच्छी प्रकार विवेचन किया गया है।

(१७) सत्य धर्म विचार (मेला चांदापुर)—चांदापुर के मेले के अवसर पर धर्म्म चर्चा करने के लिये जो आर्य्य ईसाई और मुसलमानों के बड़े २ विद्वान् सत्य निर्णय के लिये एकत्र हुए थे उस का विस्तृत विवरण म० दयानन्द-जी० च० पृ० ३९१ से ४०२ में है।

(१८) आर्योद्देश्य-रत्नमाला—इस ग्रन्थ में आर्यों के १०० उद्देश्यों को संग्रह किया गया है।

(१९) गोकरुणानिधि—इस ग्रन्थ में स्वामीजी ने गौ आदि उपकारी पशुओं का वध बन्द करने और उनके पालने पर बल दिया है। गौ आदि पशुओं की ओर से एक प्रकार

से मर्मस्पर्शी अपील है। इसके अंत में गो-कृष्यादि-रक्षिणी सभा की योजना भी सम्मिलित है।

(२०) वेदाङ्ग-प्रकाश — पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया-भाग को स्पष्ट करने के लिये लौकिक और वैदिक व्याकरण के अंशों को एक साथ लेकर भाषा में व्याकरण के विषय को अति सुगम कर दिया है। सिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के भीतर आये अनेक अवैदिक अनार्ष बातों को दूर करके व्याकरण को स्वच्छ कर दिया है और भट्टोजी दीक्षित आदि की अनेक त्रुटियों को भी दर्शाया है।

वेदाङ्ग प्रकाश में वेदार्थ को स्पष्ट करने वाले इतने ग्रन्थों का समावेश है।

१ वर्णोच्चारण शिक्षा	८ पारिभाषिक
२ नामिक	९ स्त्रैणताद्धित
३ सन्धिविषय	१० धातुपाठ
४ कारकीय	११ अव्ययार्थ
५ सामासिक	१२ गणपाठ
६ सौवर	१३ उणादिकोष
७ आख्यातिक	१४ निघण्टु
	१५ निरुक्तम्

इन खण्डों में पठन पाठन विषय में एक विशेष क्रम है, उस क्रम से पढ़ने से व्याकरण और संस्कृत विद्या और वेद विद्या का विशेष रूप से बोध हो जाता है।

(२१) अष्टाध्यायी-भाष्यम्।

पाणिनीय अष्टाध्यायी के ऊपर सूत्र क्रमानुसार ऋषि दयानन्द का यह अति उत्तम भाष्य है। इसका प्रकाशन उनके जीवन काल में न हो सका। लाहोर के श्री डा० पण्डित रघुवीर एम्० ए० (डी० लिट्) द्वारा सम्पादित करा कर श्रीमती परोपकारीणी सभा ने इसका प्रथम भाग प्रकाशित किया है। यह भाष्य स्थान २ पर खण्डित है। बड़े खेद से लिखना पड़ता है कि ऋषि दयानन्द के इस अमूल्य ग्रन्थ की रक्षा यत्नपूर्वक नहीं की गई। इस भाष्य में ही दीक्षित और काशिकाकार जयादित्य आदि की व्याकरण विषक अनेक त्रुटियां दर्शाई हैं। संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में यह एक अद्भुत पुस्तक है।

(२२) इनके अतिरिक्त—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में तथा पृथक् भी प्रकाशित होता है। इसी प्रकार 'स्वीकार पत्र' 'आर्यसमाज के नियम' भी पृथक् छपे हैं।

श्री परोपकारिणी सभा ने वेद, इन समस्त ग्रन्थों को संकलित कर श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर (संवत् १९८१ वि० अर्थात् १९२५ ई०) पर दो भागों में प्रकाशित किया था।